

पंचलब्धि

शिविर

-: वक्ता एवं लेखिका :-

डॉ. श्रीमती उज्ज्वला दि. शहा

एम.बी.बी.एस., डी.सी.एच., डी.जी.पी.

-: संपादक :-

पं. दिनेशभाई शहा

एम.ए., एल.एल.बी.

-: प्रकाशक एवं प्राप्तिस्थान :-

वीतरागवाणी प्रकाशक

१५७/९, निर्मला निवास, सायन (पूर्व), मुंबई - ४०००२२.

टेलिफोन : ९७५७३ ९३६३७

Website : <http://www.jainsiddhant.org>

Mobile Application : JainSiddhant

पंचलब्धि शिविर

प्रथम संस्करण

महावीर जयंती १० अप्रैल २०२५

१००० प्रत

हमारे प्रकाशन

१) जैनतत्त्व परिचय	- मराठी, हिन्दी, गुजराती, इंग्लिश	४०/-
२) जिनागम का कारण-कार्य रहस्य	- मराठी, हिन्दी, गुजराती, इंग्लिश	२५/-
३) करणानुयोग परिचय	- मराठी, हिन्दी, गुजराती	२५/-
४) पंचलब्धि	- मराठी, हिन्दी, गुजराती	२५/-
५) भक्तामर स्तोत्र प्रवचन	- मराठी	१५/-
६) स्वानुभव	- मराठी	६/-
७) परमात्मा कसे बनाल !	- मराठी	६/-
८) सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जीवकाण्ड एवं अर्थसंदष्टि	- हिन्दी	१५०/-
९) सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका कर्मकाण्ड एवं अर्थसंदष्टि	- हिन्दी	१५०/-
१०) सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार एवं अर्थसंदष्टि	- हिन्दी	१००/-
११) सर्वज्ञप्रणीत जैन भूगोल	- हिन्दी, गुजराती	१००/-
१२) सर्वज्ञकथित जैन सिद्धान्त (भाग १ और २)	- हिन्दी	२५०/-
१३) पंच परावर्तन	- हिन्दी	१५०/-
१४) गोम्मटसार कर्मकाण्ड शिविर (भाग १ और २)	- हिन्दी	३५०/-
१५) गुणस्थान शिविर	- हिन्दी	२००/-
१६) लब्धिसार-क्षपणासार शिविर (भाग १ और २)	- हिन्दी	४००/-
१७) पंचलब्धि शिविर	- हिन्दी	२००/-

मूल्य रु. २००/-

'उज्ज्वल' टीम - समय समर्पण

निशा शेठ, अहमदाबाद	स्क्राइबर, प्रूफ रीडर, प्रबंधक		
राजीव जैन, बेंगलोर	स्क्राइबर, प्रूफ रीडर	प्रवीण आंबेकर, चिखली	स्क्राइबर
सुषमा चाणेकर, नासिक	स्क्राइबर, प्रूफ रीडर	हर्षिता वधानी, मुंबई	स्क्राइबर
पिनांग शाह, कोयम्बतूर	स्क्राइबर	हार्दिक वधानी, मुंबई	स्क्राइबर
विनीता जैन, उदयपुर	स्क्राइबर	तेजल शाह, मुंबई	स्क्राइबर
मीनू जैन, कोलकता	स्क्राइबर	हेतल शाह, नैरोबी	स्क्राइबर

-: दातारों की नामावलि :-

शीतल और क्षितिज शाह (डलास)	\$ १५००	मेहुल और उर्मि शाह (डलास)	\$ २००
अनिता और सुरेश शाह (डलास)	\$ १०००	पुष्प वैद्य (डलास)	\$ १२५
चंदा और विकास जैन (शिकागो)	\$ ५००	किन्नरी और समित शाह (डलास)	\$ १०८
विमी और मिकी शाह (डलास)	\$ ५००	अवनी शाह (डलास)	\$ १००
जूली और धर्मेश कामदार (डलास)	\$ २५१	आशका और कौशल शाह (डलास)	\$ ५०
मनीषा और आशीष दोशी (डलास)	\$ २५०	स्वाती कलमकर (डलास)	\$ ५००
निशा शेठ (अहमदाबाद)	\$ २५१		

मनोगत 'उज्ज्वल' टीम का

डॉ. उज्ज्वलाजी शहा द्वारा देवलाली शिबिर में पढ़ाये गये 'पंचलब्धि शिबिर' पुस्तक का कार्य पूर्ण होने पर मन अत्यंत उल्लसित है। जयसेनाचार्य की अध्यात्मभाषा में निज शुद्धात्मभावनारूप सविकल्प स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा, नेमिचन्द्र आचार्य की आगमभाषा में तीन करण परिणाम द्वारा, पं. टोडरमलजी द्वारा देखो 'तत्त्वविचार की महिमा !', गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा 'हूं परमात्मा छुं एम अनुभव कर !' - सभी ज्ञानियों द्वारा बताया स्वानुभव का मार्ग कुंदकुंदाचार्य द्वारा समयसार गाथा ८ में बताये गये मेंढे को - मुझे - आप प्रत्यक्षरूप से समझा रही हैं ऐसा प्रतीत हुआ।

आपका परम उपकार है जो आपने अपने शिबिरों को पुस्तकरूप देने के कार्य में स्वीकृति प्रदान की। आप दोनों की जिनवाणी के प्रचार-प्रसार के लिये प्रतिबद्धता, मेहनत और लगन हमारे लिये आदर्श है। सातिशय पुण्योदय ही होगा जो आपसे परिचय हुआ। आप दोनों को शत शत नमन हैं ! - **निशा शेठ** (अहमदाबाद)

हम सबका उत्कृष्ट पुण्योदय है कि इस अनुपम, मधुर, अत्यंत ज्ञानवर्धक वाणी को हम लिपिबद्ध कर पा रहे हैं। मैं भी इस वाणी को लिपिबद्ध होते देखने का साक्षी बन रहा हूं। आपके कंठ से ये अमृत इसीप्रकार झरता रहे ! - **राजीव जैन** (बेंगलोर)

आप दोनों का अत्यंत उपकार है कि इस कार्य में हमें सम्मिलित किया। इन शास्त्रों का अभ्यास करने से करणानुयोग बहुत ही सरल और रसप्रद लगता है। जीव के परिणाम, कर्मों की अवस्थाएँ और उनका फल समझने से वस्तुस्वरूप का ज्ञान होने में मदद हो रही है। मुझे तो सारे प्रवचन शिबिरों में सुनने का अवसर भी प्राप्त हुआ है, यह काम करते-करते उसकी रिक्विजन भी हो गयी। - **सुषमा चाणेकर** (नासिक)

पांच लब्धि के स्क्राइब स्वाध्याय द्वारा मेरी कई मिथ्याभ्रान्ति दूर हुयी। सम्यक्त्व सन्मुख मिथ्यादृष्टि का पूरा वर्णन इतनी सूक्ष्मता से किया है जैसे पं. टोडरमलजी ही साक्षात् समझा रहे हों। पंचलब्धि का स्वरूप समझकर पुरुषार्थपूर्वक सम्यक्त्व प्राप्त कर, भवसागर से पार निकलकर पंचमगति को प्राप्त करूं यही उद्देश्य है। यह पुस्तक हर एक जीव को मोक्षमार्ग पर ले जाने में उत्तम है। - **पिनांग शाह** (कोईम्बतूर)

ऐसा प्रतीत होता है जैसे मेरे जीवन में अनंत पुण्य कर्म का उदय हुआ है। आपकी वाणी लिपिबद्ध करते हुए मेरे अंतर्मन में माँ जिनवाणी का श्रवण, मनन एवं भेदज्ञान चल रहा है जिसके फल स्वरूप मेरा मोक्षमार्ग प्रशस्त हो रहा है। पंचलब्धि पुस्तक प्रकाशित होने से लाखों अन्य साधर्मों का जीवन भी प्रकाशमान होगा ऐसा मेरा विश्वास है। धन्य हैं आप, मैं कृतज्ञ हूं, नमन करती हूं। - **विनीता जैन** (उदयपुर)

आप दोनों का जीवन बहुत ही प्रेरणादायक है। आपके शिबिरों से हमने जिनवाणी के अमूल्य सिद्धान्त सीखे हैं, स्क्राइब करने से जैन सिद्धान्तों का रिक्विजन भी बहुत अच्छे से हो जाती है। पंचलब्धि स्क्राइबिंग करते-करते सम्यग्दर्शन होने के पूर्व जीव के भावों में कितनी तारतम्यता और कर्मों में कितनी उथल-पुथल होती है वह जानकारी प्राप्त हुयी। हमें जिनवाणी की सेवा करने का भी बहुत ही सुंदर अवसर प्राप्त हुआ है। - **हार्दिक एवं हर्षिता वधानी** (मुंबई)

आपने सरल और सुगम शैली में करणानुयोग से हमारा परिचय करवाया जिससे बहुत सारी भ्रान्तियां दूर हुयी, बहुत अच्छा स्वाध्याय हुआ। आपका बहुत धन्यवाद आपने हमें इस शुभ कार्य में सहभागी बनाया। - **मीनू जैन** (कोलकता)

प्रकाशकीय

मैंने कभी सपने में भी सोचा नहीं था कि जिनागम के आधार से लिखी गयी इतनी सारी पुस्तकों का मैं प्रकाशन करूंगा। जो कार्य जिस विधि से, जिस निमित्त से, जैसा होना है अवश्य होकर ही रहता है। अपनी इच्छा से वह नहीं होता, ना ही अपनी इच्छा से रुकता है।

मेरी पत्नी डॉ. उज्ज्वला सोलापुर की 'श्राविका' मासिक पत्रिका में बेटियों के नाम पत्ररूप लेख लिखती थी। उसको पुस्तकरूप बनाने की वाचकों की मांग बढ़ती गयी। तब वह 'जैनतत्त्व परिचय' तथा मेरे द्वारा गुरुदेवश्री कानजी स्वामी के गुजराती प्रवचनों का मराठी अनुवाद 'भक्तामर प्रवचन' - दो पुस्तकें प्रकाशित करने के लिये मैंने अनेक जगह कोशिश की परंतु कोई तैयार नहीं था। मुझे डी.टी.पी., प्रूफ रीडिंग, प्रिंटिंग, पेपर व्यवस्था आदि की कुछ भी मालूमात नहीं थी। फिर भी मैं इस क्षेत्र में कूद पड़ा। बाद में उज्ज्वला ने भी अनेक पुस्तकें लिखी, पं. टोडरमलजी के अनेक ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद किया। मैंने भी अनेक पुस्तकों का मराठी अनुवाद किया, इतना ही नहीं, मेरे तथा उज्ज्वला द्वारा देवलाली में हुये शिबिरों की वर्ड-टू-वर्ड पुस्तकें हमारी स्क्राइब टीम ने स्क्राइब की - इन सबका प्रकाशन का काम भी मैंने खूब निभाया है। अभी तक हमारे यहां 'वीतरागवाणी प्रकाशक' नाम से १७ टायटल्स के मराठी, हिन्दी, गुजराती, इंग्लिश में मिलकर २८ पुस्तकों के १०-१०, १२-१२ संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

शिबिरों की वर्ड-टू-वर्ड पुस्तकें बनाने की बात इ.स. २०२२ से शुरू हुयी। तब 'पंचपरावर्तन शिबिर' तथा 'जैन सिद्धान्त प्रवेशिका शिबिर १ और २' ऐसी तीन पुस्तकें प्रकाशित की थी और हमने तीनों की १०००-१००० पुस्तकें अपने स्वर्खर्च से विनामूल्य वितरित कर दी थी। उसके बाद फरवरी २०२४ में 'गुणस्थान शिबिर' तथा 'कर्मकाण्ड शिबिर १ और २' इन तीन पुस्तकों को प्रकाशित करके वैसे ही स्वर्खर्च से विनामूल्य वितरित कर दी। इसमें से एक-एक पुस्तक ६५०-६५० या अधिक पृष्ठों की बड़ी साइझ की पुस्तकें हैं। आज भी इन ग्रंथों की मांग हो रही है परंतु हमारे पास एक भी प्रत उपलब्ध नहीं है। इस वक्त 'लब्धिसार-क्षपणासार शिबिर १ और २' तथा 'पंचलब्धि शिबिर' ये तीन ग्रंथ प्रकाशित करते हुये मुझे बहुत आनंद हो रहा है कि जिनवाणी के

इन दुरूह विषयों को सरलतम भाषा में प्रकाशित करने का सुअवसर मुझे प्राप्त हो रहा है। इन सभी पुस्तकों की दर्जनों बार प्रूफ रीडिंग करते समय इन विषयों का पुनः पुनः अनेकों बार अभ्यास होता है, मेरे लिये यह भी एक बड़ी उपलब्धि है।

वाचकों का बढ़ता हुआ स्नेह तो मिल ही रहा है, दातारों के उपकार भी बढ़ते जा रहे हैं। आज तक हम दोनों ने कभी भी किसीके पास दान के लिये अपील नहीं की है, फिर भी लोग स्वयं ही दान का वर्षाव करते रहते हैं और उसका हम आनेवाले प्रकाशनों के लिये सदुपयोग करते रहते हैं। हमारे स्क्राइबर्स टीम के और जिनके निर्देशन-गाइडन्स-मेहनत से यह काम हो रहा है उस अहमदाबाद की निशा शेठ के जितने आभार व्यक्त किये जायें वे कम हैं। उनके प्रतिदिन के अथक मेहनत और तीव्र लगन के कारण यह असंभवसा कार्य संभव हो गया है। उनका तो आगामी अनेक पुस्तकों का स्क्राइबिंग का काम पूर्ण हो गया है, नये-नये अन्य अनेक शिबिरों की वर्ड-टू-वर्ड पुस्तकें बनाने की उनकी योजना भी तैयार है।

हमारे स्क्राइबर्स की मेहनत तो जबरदस्त है ही लेकिन उनके कुटुंबीजन भी उनके इस कार्य में बहुत बड़ा योगदान दे रहे हैं। निशा शेठ के साथ जिनेश शेठ, सुषमा चाणेकर के साथ अशोक चाणेकर, राजीव जैन के साथ अलका जैन, हेतल शाह के साथ विक्रम शाह, हर्षिता और हार्दिक वधानी तो दोनों ही स्क्राइबर्स हैं। अन्य भी मीनू जैन, विनीता जैन, पिनांग शाह, प्रवीण आंबेकर के परिवार के सदस्य बहुमूल्य सहकार दे रहे हैं। वे सभी बधाई के पात्र हैं। मैं इन सबका अत्यंत आभारी हूं।

कार्य होने में अनेक निमित्त स्वयमेव आ मिलते हैं। यहां लेखिका, वक्ता, स्क्राइबर्स, निर्देशक, वाचक, दातार, प्रकाशक तथा और भी अनेक लोग जो जिनवाणी माँ की सेवा में प्रतिबद्ध हैं, हम सब मिलकर यह कार्य सुचारुरूप से करते रहेंगे।

जय जिनेन्द्र।

- पं. दिनेशभाई शहा

मेरी बात

यह बात 'पंचलब्धि' पुस्तक की नहीं है, पंचलब्धि विषय पर हुये शिबिरों की नहीं है, परंतु 'पंचलब्धि शिबिर' में हुये व्याख्यानों के अक्षरशः यानी वर्ड-टू-वर्ड पुस्तक की है। इ.स. १९९२ से हम हर साल जुलाई-अगस्त में होनेवाले प्रशिक्षण शिबिरों में जयपुर जाते थे। १५ दिन के इन शिबिरों में हमने अनेक विद्वानों से अनेक विषय आत्मसात किये। उसमें से एक विषय था गुणस्थान। ब्र. पं. यशपालजी जैन (अण्णाजी) की गुणस्थान की कक्षा में हम दोनों हर साल बैठते थे, हर साल परीक्षा में प्रथम क्रमांक से उत्तीर्ण होते थे। इ.स. १९९२ में हमने ढूंढ़ारी भाषा में प्रकाशित पं. टोडरमलजी द्वारा लिखित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका के जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार-क्षपणासार ग्रंथ की दो-दो प्रतियां लायी। उसी साल हम दोनों ने अपने-अपने व्यवसायों से निवृत्ति ली थी। द्रव्यानुयोग के अनेक ग्रंथों का अनेकबार आद्योपांत स्वाध्याय होने के बाद हमने इन ग्रंथों को पढ़ना प्रारंभ किया।

भाषा ढूंढ़ारी, विषय नया और कठिन था। समझानेवाले कोई मार्गदर्शक भी नहीं थे। परंतु मेरे हठ और जिद के कारण हमने अभ्यास चालू रखा। घर पर सामूहिक स्वाध्याय में भी मैंने पढ़ाया। तब तक 'जैनतत्त्व परिचय', 'करणानुयोग परिचय' और 'कारण कार्य रहस्य' पुस्तकें लिखकर हमने प्रकाशित की थी। सामान्य वाचकों ने और विद्वानों ने भी उन्हें खूब सराहा था। ब्र. पं. यशपालजी बारंबार आग्रह करते थे कि 'पंचलब्धि' विषय पर आपको पुस्तक लिखनी है। यहां तक कि उन्होंने जुलाई के शिबिर में 'पंचलब्धि' विषय पर मेरी कक्षा रखी। वह पहला अवसर था कि प्रशिक्षण शिबिर में किसी महिला वक्ता की कक्षा रखी गयी थी। उसके बाद जयपुर और देवलाली में मेरे अनेक शिबिर हुये। प्रशिक्षण शिबिरों में भी मैंने इस विषय पर कक्षा ली। पूर्व पुस्तकों की पत्ररूप शैली में मैंने 'प्रथमोपशम सम्यक्त्व पूर्व की पंचलब्धि' पुस्तक लिखना पूर्ण किया। लिखने के बाद पुस्तकरूप से प्रकाशित होने तक अनेक प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है। प्रूफ रीडिंग एवं प्रकाशन की भी सारी व्यवस्था हम दोनों ही देखते हैं। प्रिंटिंग करवाना, प्रकाशन और वितरण की सारी व्यवस्था दिनेशजी ही सम्हालते हैं।

इस 'पंचलब्धि' पुस्तक पर देवलाली में कई बार, तारंगा, भोपाल, ज्ञानोदय

दीवानगंज, भोपाल के सत्यपालजी जैन के यहां, उदयपुर, डासाला आदि अनेक जगह शिबिर हुये हैं। देवलाली में २६/०१/२०१८ से ३०/०१/२०१८ तक हुये पंचलब्धि शिबिर की यह वर्ड-टू-वर्ड पुस्तक बनी है।

आज तक 'जैन सिद्धान्त भाग १ और २', 'पंचपरावर्तन', 'कर्मकाण्ड शिबिर भाग १ और २', तथा 'गुणस्थान शिबिर' ये पुस्तकें शिबिरों में हुये व्याख्यानो को स्क्राइब करके बनायी हैं। इस बार 'लब्धिसार-क्षपणासार शिबिर भाग १ और २' तथा 'पंचलब्धि शिबिर' पुस्तकें प्रकाशित कर रहे हैं। इसमें हमारे स्क्राइबर्स का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। मैं तो पांच दिन के शिबिर में एक विषय तीस घण्टों में सिखाती हूं परंतु वही बात स्क्राइब करके, प्रूफ रीडिंग करके, प्रकाशित होकर तैयार होने में एक-एक पुस्तक के लिये कम से कम १५ महीने लगते हैं। जिसके लिये अहमदाबाद की निशा शेठ के निर्देशन में हमारी स्क्राइबर्स और प्रूफ रीडर्स की पूरी टीम रोजाना छह-छह घण्टे मेहनत करती है। मेरे पास जब तैयार मॅटर आता है तब हम दोनों भी तीन-तीन प्रूफ, वह भी तीन-तीन बार चेक करते हैं। हम जब प्रूफ रीडिंग करते हैं तब तक तो हमारे स्क्राइबर्स आगामी पुस्तकों पर काम शुरू करते हैं।

अभी तक 'जीवकाण्ड' के दोनों शिबिरों के ६० प्रवचन तथा 'तत्त्वार्थसूत्र अध्याय १, सूत्र ८' पर हुये २८ घण्टों के प्रवचन अकेले श्री राजीव जैन (दिल्ली/बेंगलोर) ने स्क्राइब करके पूर्ण किये हैं। 'सम्यग्दर्शन शिबिर' तथा 'आस्रव और ५ भाव' शिबिर का स्क्राइबिंग चल रहा है। 'जैन सिद्धान्त' तथा 'पंचपरावर्तन' का गुजराती अनुवाद कच्छ-माधापुर की रोहिणी कोटक ने पूरा किया है। उसका स्क्राइबिंग का काम पिनांग शाह (कोइम्बतूर), नूतन जैन (लखनादौन) और प्रूफ रीडिंग का काम हेतल शाह (नैरोबी) सम्हाल रहे हैं।

पांच लब्धि संबंधी बहुत सारी गलतफहमियां समाज में तथा विद्वानों में भी पायी जाती हैं। हम संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं तो हमें क्षयोपशमलब्धि है, हमने गुरुदेवश्री को सुना है तो ४०-४५ सालों से हमारी देशनालब्धि है आदि अनेक भ्रांतियां चल रही थी। पंचलब्धि पुस्तक में उस संबंधी आगम के आधार से न्यायपूर्वक विवेचन किया है। पांचों लब्धि का काल मिलकर भी अंतर्मुहूर्त ही होता है, अधिक नहीं। शिबिरों में क्षयोपशम की परिभाषा समझाने के लिये थोड़ी मेहनत जरूर करनी पड़ती है परंतु एक बार वह समझ में आये तो आगे का विषय समझना आसान हो जाता है।

बारंबार अभ्यास से कठिन से कठिन विषय भी आसान लगता है - आत्मसात होता है। पंचलब्धि के बारे में भी ऐसा ही हुआ। जब पहली बार लब्धिसार-क्षपणासार पढ़ा था तो कुछ समझ में नहीं आता था, रोना आता था और विचार आता था कि हम क्यों पढ़ रहे हैं ? ढूंढारी ग्रंथ के आधार से मैंने घर पर सामूहिक स्वाध्याय कराया था। उसके बाद उसका विशेषार्थ सहित आधुनिक हिन्दी भाषा में अनुवाद किया, हिन्दी ग्रंथ के आधार से भी सामूहिक स्वाध्याय कराया। जब पंचलब्धि पुस्तक लिखी तो और सूक्ष्मता से अध्ययन हुआ। पूरा अर्थ खुल गया - विषय ख्याल में आया।

शिविरों के माध्यम से यह विषय लोगों तक पहुंचाने की कोशिश की। लोग भी बहुत उल्लास के साथ उसमें जुट गये। उदयपुर के महाविद्यालय की बालिकाओं ने उत्साह के साथ शिविर अटेंड किया। पंचलब्धि पुस्तक में तथा शिविरों में अनेक नये शब्दों का व्युत्पत्ति अर्थ बताकर उन प्रक्रियाओं को समझाया है जैसे स्थितिबंधापसरण, प्रकृतिबंधापसरण, स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात, गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, आगाल, प्रत्यागाल, अंतरकरण, उपशमकरण, अंतरपूरन आदि।

मूल पंचलब्धि पुस्तक में लिखकर समझाने की कोशिश की है परंतु फिर भी पढ़कर समझना कठिन ही होता है। इस पुस्तक के आधार से जो शिविर हुये उनमें इस विषय को और अधिक सरल करने का प्रयत्न किया। लोगों के प्रश्नों का उसी समय समाधान कराया गया। शिविर में जो-जो बोला था, लोगों के प्रश्न तथा उनका समाधान - जैसा का वैसा स्क्राइब करके उस 'पंचलब्धि शिविर' पुस्तकरूप से आपके सामने प्रस्तुत करते हुये हमें अत्यंत समाधान हो रहा है।

आशा है वाचकगण इसका लाभ उठायेंगे।

- डॉ. उज्ज्वला दि. शहा

- विषय सूची -

१. कर्म के दस करण.....	१
२. मूलप्रकृति, उत्तरप्रकृति.....	२१
३. प्रशस्त-अप्रशस्त प्रकृतियां.....	४३
४. निषेक रचना, अनुभाग रचना.....	६४
५. क्षयोपशम.....	८५
६. शंका-समाधान; पांच लब्धि.....	१०६
७. कर्म - बंध, उदय; शंका-समाधान.....	१२७
८. प्रथमोपशम सम्यक्त्व की पात्रता.....	१४७
९. प्रथमोपशम सम्यक्त्व की पात्रता - विशेष चर्चा.....	१६९
१०. क्षयोपशमलब्धि.....	१८९
११. शंका-समाधान, विशुद्धिलब्धि - १.....	२१०
१२. शंका-समाधान, विशुद्धिलब्धि - २.....	२३०
१३. कषायस्थान, देशनालब्धि.....	२५१
१४. देशना, देशनालब्धि.....	२७१
१५. देशनालब्धि - विशेष चर्चा - १.....	२९२
१६. देशनालब्धि - विशेष चर्चा - २.....	३१३
१७. प्रायोग्यलब्धि.....	३३३
१८. प्रायोग्यलब्धि - कांडकघात, बंधापसरण.....	३५३
१९. प्रायोग्यलब्धि - प्रकृतिबंधापसरण.....	३७४
२०. करणलब्धि.....	३९४
२१. करणलब्धि - अधःकरण.....	४१३
२२. करणलब्धि - अधःकरण - विशेष चर्चा.....	४३३
२३. करणलब्धि - अपूर्वकरण.....	४५२
२४. करणलब्धि - अपूर्वकरण - विशेष चर्चा.....	४७२
२५. करणलब्धि - अनिवृत्तिकरण.....	४९१
२६. करणलब्धि - प्रथमोपशम सम्यक्त्व.....	५१२
२७. प्रथमोपशम सम्यक्त्व.....	५३३
२८. प्रथमोपशम सम्यक्त्व - विशेष चर्चा.....	५५४

१. कर्म के दस करण

ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

ॐ शुद्धात्मने नमः ॥

णमो अरिहंताणं । णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं ।

णमो उवज्झायाणं । णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

सम्यग्दर्शनचरनगुण पाय कुकर्म खिपाय ।

केवलज्ञान उपाय प्रभु भए भजौं शिवराय॥१॥

जिनवानी के ज्ञान तैं होत तत्त्व श्रद्धान ।

चरण धारि केवल लहै पावै पद निरवान॥२॥

नेमिचन्द आल्हादकर माधवचन्द प्रधान ।

नमौं जास उज्जास तैं जाने निजगुण थान॥३॥

लब्धिसार कौं पाय कै करि कै क्षपणासार ।

हो है प्रवचनसार सों समयसार अविकार॥४॥

जिनेन्द्र भगवान की वाणी में हमें चारों ही अनुयोगों का उपदेश प्राप्त हुआ है। उसमें से करणानुयोग के आधार से हम अपनी ही बात देखने जा रहे हैं। जीव का कल्याण स्वयं को जानने में और स्वयं की शुद्ध अवस्था प्रगट करने में है। हर जीव सुख चाहता है और सुख जीव की ही पर्याय है; परिपूर्ण अनंत सुख जो है, वह उसकी मोक्ष पर्याय है। प्रत्येक जीव का हित उसकी अपनी ही मोक्ष अवस्था प्रगट करने में है। चारों ही अनुयोगों का सार-तात्पर्य वीतरागता है और वह कैसे प्राप्त करनी है वह ट्रिक हमें मालूम होनी चाहिये। कोई भी अनुयोग बेकार का नहीं है क्योंकि बेकार का होता तो तीर्थंकर भगवान उसका उपदेश नहीं देते। आचार्यों ने जो इतने ग्रंथों की रचना की है - चारों ही अनुयोगों के ग्रंथों की रचना की है, तो बेकार की बातें तो वे करते नहीं।

हम अभी यहां जो विषय देखने जा रहे हैं उसका नाम है पंचलब्धि। पांच लब्धि यह नाम भी अलग-अलग अर्थों में आता है। हमारा विषय है सम्यग्दर्शन के पूर्व होनेवाली पंचलब्धि; कौनसा सम्यग्दर्शन ? तो कहते हैं प्रथमोपशम। ये सारे

पारिभाषिक शब्द हैं, हमें उनका अर्थ मालूम नहीं है फिर भी उनका अर्थ मालूम करते हुये हम आगे बढ़ेंगे। पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार नामक ग्रंथ लिखा है, उसके आधार से ये बातें चलेगी। केवल उसीके आधार से नहीं, उसमें द्रव्यानुयोग आदि अन्य ग्रंथों का आधार लेकर सबकी चर्चा की है। मूलग्रंथ लब्धिसार आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने लिखा है। उनका नाम तो सुना होगा। उनके द्वारा रचित कोई दूसरे ग्रंथ मालूम है ? *श्रोता: जीवकाण्ड।* उन्होंने गोम्मटसार जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार, त्रिलोकसार आदि बहुत सारे मूलग्रंथों की रचना की है।

फिर एक चामुण्डराय हो गये, कौन थे वे ? *श्रोता: बाहुबलीजी...* श्रवणबेलगोला में बाहुबली भगवान की मूर्ति बनवायी, अभी होने जा रहा है न महामस्तकाभिषेक ! उनका क्या इतना ही कार्य था ? क्या उसी कार्य से वे जाने जाते हैं ? वे तो करणानुयोग के अच्छे जानकार थे। उन्होंने कर्णाटक भाषा में इन गोम्मटसारादि ग्रंथों की टीका लिखी थी। बाद में केशववर्णीजी हो गये, उन्होंने संस्कृत भाषा और कर्णाटक लिपि में उनकी टीकायें लिखी थी। पं. टोडरमलजी साहब जयपुर में रहते थे। उन्होंने दूंदारी भाषा में इन सभी ग्रंथों की भाषाटीका सरल भाषा में लिखी। सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका तीनों ही ग्रंथों का नाम है - सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जीवकाण्ड, सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका कर्मकाण्ड और सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार। इन ग्रंथों पर हमारे अभी तक बहुत सारे शिबिर भी हो चुके हैं। फिर भी अभी हम बिलकुल शुरू से देखेंगे क्योंकि अनेक नये लोग आये हैं और उनका यह कहना है कि हमें कुछ समझेंगे कि नहीं समझेंगे ? समझना तो हमारा स्वभाव है और केवलज्ञान आत्मा में से उत्पन्न होनेवाला है। किसी परपदार्थ के कारण, किसीके समझाने या अन्य किसीके कारण ज्ञान होनेवाला नहीं है।

अभी आपने जो पंचास्तिकाय ग्रंथ पर गुरुदेवश्री के प्रवचन में सुना है; देखो यह पूरा तत्त्व का सार जो है, जो हम कहेंगे द्रव्यानुयोग की बातें यहां बता रहे हैं। अभी देखा न कि प्रत्येक द्रव्य की अस्ति अपने में अपने से है, पर से उसकी अस्ति नहीं है। अस्ति भी पर से नहीं है और उसकी पर्याय भी पर से होनेवाली नहीं है। यहां हम कर्मों की बातें देखेंगे। यहां बार-बार निमित्त का कथन करने में आयेगा क्योंकि करणानुयोग में निमित्त की मुख्यता से कथन होता है। किसी द्रव्य में निमित्त से कार्य बिलकुल नहीं होता, परंतु निमित्त अवश्य उपस्थित होता ही है। हमारा यह सारा विषय द्रव्यानुयोग का है। बहुत बार हो भी चुका है, फिर भी करणानुयोग पढ़ने की शुरुआत करते समय

हम इसे याद करते हैं कि प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है; उसकी अस्ति - उसकी सत्ता अपने में है और वह स्वयं अपने में उत्पाद-व्ययरूप से परिणमन करता है। उसके लिये उसको परद्रव्य की रंचमात्र भी अपेक्षा, कोई प्रेरणा, कोई धक्का देना चाहिये ऐसा बिलकुल नहीं। अभी पूरे घंटे में गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचन में आपने-हमने यही सुना है। ख्याल में आयी बात ? यही वस्तु का स्वरूप है। यह वस्तु का स्वरूप निश्चित करने से हमें क्या लाभ होगा ? हमें आत्मा की अनुभूति करके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र प्राप्त करना है तो उसके लिये इन सभी बातों को जानना जरूरी है। जब इन बातों को जानते हैं तो जीव में क्या होता है, कर्मों में क्या होता है - थोड़ी जिज्ञासा तो होती है कि नहीं ?

लोगों का प्रश्न है न, अरे ! तिर्यचों को भी इसे जाने बिना सम्यग्दर्शन होता है तो इन सब बातों में आप हमें क्यों उलझा रही हैं ? आप क्रिकेट मॅच देखते हैं तो कौन जीता-कौन हारा इतना जानने से समाधान होना चाहिये। परंतु क्रिकेट मॅच दिनभर देखते हैं, फिर उसके हायलाइट्स देखते हैं, फिर उस पर चर्चा चलती है कि उसमें क्या-क्या हुआ है ! जिसको जिस विषय में रस है उसको उसकी पूरी बातें सभी अँगल से जानने की रुचि होती है। चारों ही अनुयोग के द्वारा हमें अपनी ही शुद्ध अवस्था प्रगट करनी है। उसमें ये सारी बातें अगर हमारे ख्याल में हो, हमारे ज्ञान में हो तो मोक्षमार्ग का स्वरूप बिलकुल क्लिअर हो जाता है। जैसे शास्त्र में कहा है न ? हाथ में रखे आंवले के समान- हस्तामलकवत् यह स्पष्ट जानने में आता है।

पं. टोडरमलजी ने लब्धिसार ग्रंथ में शुरुआत में लब्धिसार की भूमिका लिखी है और उसमें कर्मों की अवस्थाओं का वर्णन किया है। ये जो जीव और कर्म की सारी अवस्थाएँ हम देखने जा रहे हैं; जीव में हम कहेंगे, जीव की विशुद्धि बढ़ रही है, जीव के परिणाम निर्मल हो रहे हैं। परंतु निर्मल परिणाम, उससे और निर्मल, उससे और निर्मल यह बताने के लिये उसी समय होनेवाली कर्मों की अवस्थाओं के द्वारा उसका ज्ञान कराया जाता है। कर्म को समझने के लिये हमें कर्म की अवस्थाएँ नहीं देखनी हैं, जीव की उस समय कैसी अवस्था है वह देखनी है। जैसे अॅटमॉस्फेरिक टेम्परेचर हम मर्क्युरी की अवस्था में बताते हैं - इतनी डिग्री टेम्परेचर है कहते हैं। पारा-मर्क्युरी क्या बताता है, उसकी अवस्था से हमें तापमान को बताना है। ऐसे ही यहां कर्मों की अवस्था देखकर हमें जीव के परिणामों को समझना है कि जीव की विशिष्ट विशुद्धि में कर्मों में

ऐसी बातें होती हैं। कर्म के कारण जीव की अवस्था नहीं होती और जीव के कारण कर्मों में कुछ हेराफेरी नहीं होती।

हमने ऐसा ही सुना है और समझा है कि हमें राग-द्वेष कम करने हैं और कर्मों को काटना है। तो कर्मों का उपशम करना चाहते हो कि क्षय करना चाहते हो ? बोलो, चॉइस इज युअर्स ! क्या करना चाहिये ? *श्रोता: कुछ कर ही नहीं सकते।* कुछ कर ही नहीं सकते यह पहले निश्चित करना है। हमारे अभिप्राय में, मान्यता में जो सब कचरा भरा है न, वह सारे ही अनुयोगों के द्वारा साफ करके हमें हमारी अपनी मान्यता सही करनी है। क्योंकि वहीं से धर्म की शुरुआत होती है। हम तो कुछ न कुछ क्रियायें करके धर्म की शुरुआत होना मानते हैं और पूरा मनुष्यभव उसके पीछे गंवा देते हैं। यह मनुष्यभव कितना दुर्लभ है, यह तो हमने हर शास्त्र में पढ़ा है। करणानुयोग के आधार से भी बहुत बार इसको निश्चित किया है।

अभी हम अपने विषय को आगे बढ़ायेंगे। वैसे यह विषय बहुत बड़ा है और वैसे कहा जाये तो कहीं भी किसी पुस्तक में पंचलब्धि विषय के बारे में दो-चार पेजेस से ज्यादा वर्णन नहीं है। आपके हाथ में यह पुस्तक है न 'प्रथमोपशम सम्यक्त्व पूर्व की पंचलब्धि', करीबन २०० पेजेस् की है। इसमें सारे ही अनुयोगों का विशेषतः द्रव्यानुयोग, करणानुयोग का मेल बिठाने की कोशिश की है। हमारा मूल आधार ग्रंथ है लब्धिसार। अभी जो हमने मंगलाचरण गाया था वह पं. टोडरमलजी ने लब्धिसार ग्रंथ की भाषाटीका ढूंढारी भाषा में लिखी है उसीका यह मंगलाचरण है। लब्धिसार ग्रंथ को जानना क्यों जरूरी है ? मैं ग्रंथ में से कुछ पढ़कर बताना चाहती हूं कि आत्मा का हित मोक्ष है और उसीके लिये विवेकी जीवों को उपाय करना चाहिये। विवेकी जीव यानी जो सयाने हैं, बुद्धिमान हैं।

यह मनुष्यभव पाकर इतनी बुद्धि मिली है तो हमारी सारी बुद्धि और हमारा सारा प्राइम टाइम हम किसमें लगाते हैं ? बोलो अश्विनी ? पैसा कमाने में। पैसा कमाने के पहले उसके लिये कुछ एज्युकेशन लेने में। हम हमारी पूरी जिंदगी का हिसाब लगाते हैं तो पच्चीस-तीस साल तो करीबन हो ही जाते हैं क्योंकि डिग्री और फिर सुपर डिग्री और क्या-क्या करना है। फिर इतना पढ़ा है तो उसका फायदा क्या ? हां, कमाना चाहिये। इतना सब कमाने से फायदा क्या ? भोगना भी चाहिये और यह सब

करते-करते मनुष्यभव समाप्त होने का समय आ जाता है। फिर ऐसा लगता है कि हमने क्या पाया ? मेरा प्रश्न है जो कुछ यहां कमाया है, इसमें से परभव में कितना लेकर जायेंगे कुणाल ? श्रोता: कुछ भी नहीं। फिर क्यों कमाते हो ? कहते हैं बीवी के लिये, बच्चों के लिये, अपने भविष्य के लिये। मान लेते हैं कुछ ले जाने की फॅसिलिटी होती तो ? हां डॉक्टरसाहब ? यहां कितना छोड़कर चले जाते राजीवजी ? श्रोता: कुछ नहीं छोड़ते। बहुत बुरा हाल है। किसका ? बाकी लोगों का कि अपना ? किसीका कोई बुरा हाल किसी दूसरे के कारण नहीं होता है।

ये सब बाह्य जो संयोग हैं न, वे हमारे से बिलकुल जुड़े हैं। उनका अस्तित्व जुड़ा है, पहले यह निश्चित करो। उनके कारण हम ना सुखी हैं, ना दुःखी हैं। फिर भी उन्हींके पीछे लगते हैं, उनको सुधारने के विकल्प करते रहते हैं। संयोग जो होते हैं वे ठीक या अठीक हैं यह हमारी कल्पना है। संयोग ठीक और अठीक होते हैं क्या ? पुद्गलद्रव्य हैं उनमें से कुछ अच्छे पुद्गल हैं और कुछ बुरे पुद्गल हैं, लिस्ट बनाओ उनकी। ऐसा कुछ है ही नहीं, यह हमारी मान्यता में है। यह हमारी ठीक-अठीकवाली ऐसी मान्यता जो है इसका कारण क्या है ? हमने अपने को 'मैं स्वयं जीव हूं' नहीं मानकर यह जो प्राप्त शरीर है, उसरूप 'मैं हूं' मान लिया है और कर्म दिखता नहीं है परंतु उसका अस्तित्व है, उसका निमित्तपना भी बनता है और उसके निमित्त में जीव स्वयं विभावरूप परिणमन करता है। देखो, निमित्त कुछ नहीं करता। जीव स्वयं उन निमित्तों का अवलंबन लेकर विभावरूप परिणमता है। परंतु कथन निमित्त से होता है और कार्य उपादान से होता है। यहां कर्मों के कथन आयेंगे, कर्मों के उदय में ऐसा हुआ कहेंगे। कर्म है कि नहीं किसने देखा है ? यदि कर्म नहीं होते तो सभी के अनंत गुण समान होने से सभी जीव समान होने चाहिये थे, फिर इतनी विविधता क्यों है ? कोई एकेन्द्रिय, तो कोई द्वीन्द्रिय, कोई त्रीन्द्रिय हैं। संज्ञी पंचेन्द्रियों में भी कितनी व्हरायटी है- कोई तिर्यच हैं, कोई मनुष्य हैं, कोई देव हैं, कोई नारकी हैं। हम मनुष्यों की बात करते हैं, देव-नारकी कहां देखे किसीने ? उसमें भी प्रश्न चिह्न लगाते हैं न ? तो कहते हैं मनुष्यों में इतनी विविधता क्यों है ? किसीकी बुद्धि कम है, किसीकी ज्यादा है, कोई रोगी है, कोई निरोगी है। दिखने में भी कितनी व्हरायटी है - एक ही मां-बाप के चार बच्चे होंगे तो उनमें कितनी अलग-अलग बातें होती हैं।

इसमें कर्म का कार्य, उसका निमित्तपना दिखायी देता है, कर्म दिखायी नहीं

देता है। परंतु ये सभी बातें जाननेवाले कौन हैं ? तो कहते हैं सर्वज्ञ भगवान्। सर्वज्ञ भगवान् केवल सर्वज्ञ नहीं हैं, पहले वे पूर्ण वीतरागी हुये हैं। कषायों से रहित हुये हैं, राग-द्वेष नहीं रहे, पूर्ण वीतरागी हुये बाद में सर्वज्ञ हुये। वीतरागी और सर्वज्ञ भगवान् ने जो बातें बतायी हैं वे पूर्ण सत्य हैं। इन्होंने पहले स्वयं आत्मा का अनुभव किया था, उसमें स्थिरता द्वारा उन्होंने वीतरागता और सर्वज्ञता प्रकट की थी। ऐसी सहज वस्तुव्यवस्था होती है कि अरिहंत अवस्था यानी पूर्ण शुद्ध अवस्था प्रगट होने पर उनकी वाणी खिरती है। यह पूरा उपदेश उनके द्वारा, उनके निमित्त से प्राप्त होता है। ऐसे ही वीतरागता और सर्वज्ञता प्राप्त करके सीधे सिद्ध बन जाते तो हमें उपदेश कहां से मिलता ? ऐसा होता है न ! यह सहज वस्तुव्यवस्था है कि यह सारा उपदेश हमें सर्वज्ञ-वीतराग अरिहंत तीर्थकरों के द्वारा मिला है। उसको अनेक गणधरों ने, आचार्यों ने अपनाया है। स्वयं आत्मा का अनुभव किया है, आत्मस्थिरता द्वारा उच्च चारित्र दशा प्राप्त की है। उन्होंने भी यह मोक्षमार्ग का स्वरूप लिखकर रखा हमारे-आपके लिये। ये ग्रंथ हमें चौबीस घंटे उपलब्ध हैं और उनके अभ्यास द्वारा हम अपना कल्याण कर सकते हैं। गुरुदेवश्री कानजीस्वामीजी ने इन ग्रंथों का अर्थ इतना स्पष्ट करके बताया है कि कहीं कोई संदेह न हो। प्रत्येक जीव अपना अनुभव करके इस भव को सार्थक बना सकता है। जब सम्यग्दर्शन होता है, तो जीव में और कर्मों में क्या बातें होती हैं उसका विशेष स्पष्टीकरण हम पंचलब्धि पुस्तक के आधार से यहां देखनेवाले हैं।

मैं लब्धिसार ग्रंथ में से पढ़ रही थी कि आत्मा का हित मोक्ष है। तो मोक्ष के लिये उपाय करना चाहिये। मोक्ष का उपाय क्या है ? तो कहते हैं संवर और निर्जरा। यह संवर क्या होता है ? बंध की हानि। हर समय जीव के कर्म का बंध हो रहा है। क्यों ? क्योंकि जीव मोह-रागद्वेष कर रहा है। क्यों ? क्योंकि पुराने कर्मों का उदय है। नहीं समझे ? जीव और कर्म अनादि से ही बंधी हुयी अवस्था में हैं। ऐसा कभी नहीं था कि पहले जीव प्युअर फॉर्म में था और बाद में कर्म आकर उसके साथ जुड़ गये। कर्मों की ऐसी विशेषता होती है कि कर्म का बंध होने के बाद वे विशिष्ट मर्यादा के लिये उस बंधी हुयी अवस्था में रहते हैं। उनकी स्थिति यानी उनका काल पूरा हुआ, ड्युरेशन पूरी हुयी, उनका कॉन्ट्रैक्ट पूरा हुआ, तो वे छोड़कर चले जाते हैं। वे परमाणु निकल जाते हैं यानी वे कर्म से अकर्मरूप होते हैं। कर्म के अलग-अलग भेद हैं, उसके अनुसार जीव के परिणाम के साथ या संयोगों के साथ उनका निमित्त बनता है। कर्म छोड़कर जाता

है न, तो भाड़ा देकर जाता है। इसको हम कर्म का उदय कहते हैं, फल कहते हैं, विपाक कहते हैं - उसीके ये अलग-अलग नाम हैं। कर्म का उदय होता है यानी कर्म का फल मिलता है यानी अंत अ टाइम यहां तीन बातें होती हैं। उसकी विशेषता हम बाद में देखेंगे, अभी तो स्थूल चर्चा चल रही है।

पुराने कर्मों का उदय चलता है। कौनसे कर्मों का उदय होता है ? आठों कर्मों का उदय हर समय चलता है। अब यहां जीव में क्या हो रहा है ? अभी आठ कर्मों के उदय में क्या-क्या बातें होती हैं, छोड़ दो। पुराने कर्मों का उदय हो रहा है। उसी समय जीव के मोह-रागद्वेष परिणाम हो रहे हैं। देखो, एक ही समय में अनेक बातें होती हैं, प्रत्येक द्रव्य की पर्याय अपने में अपने से होती है। हम कहेंगे निमित्त-नैमित्तिक संबंध है, परंतु वैसा कहने से किसी द्रव्य की पर्याय किसी अन्य द्रव्य ने बदली ऐसा कभी भी नहीं होगा। तो कहते हैं पुराने कर्मों का उदय होता है, उसी समय जीव के मोह-रागद्वेष परिणाम होते हैं और उसी समय में नये कर्म आकर बंध जाते हैं। हर समय ये तीनों ही बातें एक समय में हो रही हैं। जीव और कर्म अनादि से बंधे हैं तो हर समय उदय भी चल रहा है और उसके उदय में यहां जीव मोह-रागद्वेष भी कर रहा है और हर समय नये कर्मों का बंध भी हो रहा है। बंध है तो फिर बंधे हुये कर्म सत्ता में पड़े रहेंगे, फिर वे उदय में आयेंगे - हर समय ऐसे ही चल रहा है।

तो इसमें से जीव छूटेगा कैसे ? छूटने का कोई उपाय होगा कि नहीं होगा ? होना ही चाहिये क्योंकि इस चक्र से छूटकर जिनकी मोक्ष अवस्था प्रगट हुयी है, ऐसे अनंत जीव हैं। जो अनंत जीवों ने किया है वह पॉसिबल है इसलिये किया है और कैसे करना उसका मार्ग भी अरिहंत भगवान ने बताया है। हम उस मार्ग को सुनकर, समझकर, अपनाकर उस पर आगे बढ़ सकते हैं। बंध की हानि होती है उसका अर्थ क्या है ? जो नया बंध होता है, बहुत सारी प्रकृतियां बंधती हैं परंतु उनके बंध में रुकावट आती जाती है। कहां कितनी प्रकृतियों का बंध रुकता है वगैरह डिटेल्स अलग हैं; पहले जितनी प्रकृतियां बंधती थी उतनी नहीं बंधेंगी। कैसे ? जीव को आत्मानुभूति होती है तभी से संवर और निर्जरा शुरू होते हैं। संवर यानी बंध की हानि, विशिष्ट मात्रा में कर्मों का बंध रुकता चला जाता है। परंतु अनादि से बंधे पड़े हैं न, भले ही उनमें से पुराने कर्म छूटते चले गये, नये-नये बंधते चले गये, बहुत सारा स्टॉक सत्ता में पड़ा है। सत्ता में पड़ा है, उसमें से अधिक मात्रा में खिर जाना उसको कहेंगे निर्जरा।

हम आपको लौकिक उदाहरण देते हैं। पानी से भरी हुयी एक बड़ी टंकी है। टंकी में ऊपर से पांच नलों में से पानी आ रहा है और उसी साइड के पांच नल नीचे की ओर लगे हैं, उनमें से पानी बाहर जा रहा है। तो वह टंकी कब खाली होगी ? कभी नहीं। हमारे साथ भी क्या हो रहा है ? कर्मबंध के कारण कौनसे हैं ? मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग; इनके कारण हर समय नये-नये कर्मों का आना चल रहा है और हर समय पुराने कर्मों का उदय होकर बहुत सारे परमाणु छूट भी रहे हैं। परंतु उसमें जीव को क्या मिला ? मिथ्यात्व कायम है। जीव अनादि से क्या कर रहा है ? कभी शुभभाव करके पुण्यकर्म बांधता है तो कभी अशुभभाव करके पापकर्म बांधता है। वह टोटल कितना पुण्य-पाप बांधता है उसका हिसाब बाद में लगायेंगे। तो कभी शुभभाव करता है और कभी अशुभभाव करता है। परंतु उनसे बंध होता है कि बंध से छुटकारा होता है पहले यह नक्की करना है। हां, बंध ही होता है। इसके फल में चेंज होगा क्योंकि हमारे एक सदृश परिणाम नहीं होते। हर भव में मनुष्य नहीं बने रहे; कभी तिर्यच हो गये, कीड़े मकोड़े हुये, निगोद पर्याय में गये, नारकी हुये, देव हुये। पुण्य और पाप करते रहे और उसके फलस्वरूप अनेक योनियों में भ्रमण करते रहे। जिसको चौरासी लाख योनियां कहो या चौदह जीवसमास कहो; अलग-अलग नाम दो, पर इन सभी पर्यायों में घूम-घूमकर हम अभी मनुष्य बने हैं।

बंध की हानि कैसे होती है और बंधे हुये परमाणु अधिक मात्रा में कैसे खिर जाते हैं, उसका भी एक सायन्स है। कौनसे गुणस्थान में क्या-क्या होता है उसका सायन्स है। देखो, एक होती है थिअरी और एक होते हैं फॅक्टस्। सर्वज्ञ भगवान ने बताये हैं वे सारे फॅक्टस् हैं और हमारे सायंटिस्ट जो बताते हैं, वह क्या होती है ? थिअरी; फिर उसे प्रूव भी करते हैं। हमारा विश्वास किस पर है ? हमारे सायंटिस्ट ने थिअरीज् लिखी हैं उस पर हमारा इतना भरोसा है और सर्वज्ञ के ऊपर कितना भरोसा है ? नहीं समझे ? एक पॅथॉलॉजिस्ट की रिपोर्ट पर कितना भरोसा है ? हां, २०० पर्सेंट और सर्वज्ञ ने जो बातें बतायी हैं उस पर कितना विश्वास है ? कहता है किसने देखा है ? ये नरक-स्वर्ग कहां होते हैं ? आपको किसीका लेटर आया क्या स्वर्ग से कि 'मैं यहां हूं, अच्छा हूं' ? सायंटिस्ट की मेरी परिभाषा किसीको मालूम है ? निलेशभाई याद है ? जिसकी खोज कभी पूरी नहीं होती उसको हम कहेंगे सायंटिस्ट और जिसको खोजने के लिये कुछ बाकी ही नहीं है उसको कहेंगे सर्वज्ञ, वे तीन काल और अलोक सहित

पूरा लोक यानी लोकालोक को जानते हैं, सभी अनंत द्रव्य, उनके अनंत गुण और उनकी अनादि अनंत पर्यायों को एक समय में युगपत् स्पष्ट जानते हैं; उनको हम वीतरागी, सर्वज्ञ कहते हैं। उन्होंने जो बातें बतायी हैं वे परम सत्य हैं - उन्होंने हमारे कल्याण का मार्ग बताया है।

यहां कहते हैं बंध की जो हानि है, वह संवर है और जो ऑलरेडि बंधा हुआ सत्ता में पड़ा है, वह अधिक मात्रा में खिर जाना उसे कहेंगे निर्जरा। संवर और निर्जरा यही मोक्ष का उपाय है। वह कैसे मिलेगा ? सम्यग्दर्शन और सम्यक् चारित्र से मिलेगा, सम्यग्ज्ञान उसीमें गर्भित है। यहां यही लिखते हैं कि मोक्षमार्ग क्या है ? सम्यग्दर्शन और सम्यक् चारित्र मोक्षमार्ग है। उसीके साथ उन्होंने सम्यग्ज्ञान को भी ले लिया। अब यह सम्यग्दर्शन क्या है ? सम्यक् यानी सही, दर्शन यानी अभिप्राय-मान्यता। आत्मा की अनुभूति होती है उसीके साथ सम्यग्दर्शन होता है। अभी समाज में ऐसी मान्यता प्रचलित है, उपदेश भी ऐसा दे रहे हैं कि भगवान के द्वारा या आचार्यों के द्वारा बताया हुआ जो मार्ग है उसे हमने सुना, हमने ग्रंथ पढ़े; हमारा इस पर पूरा भरोसा है, विश्वास है यही सम्यग्दर्शन है। परंतु ऐसा नहीं है। देखे बिना प्रतीति किसकी हुयी ? देखे यानी जाने बिना। किसको जाने बिना ? जब आत्मा की अनुभूति होती है, अतीन्द्रिय आनंद का वेदन होता है तब अनुभूतिपूर्वक जो प्रतीति हुयी कि 'हां, यह मैं हूं' उसको कहेंगे सम्यग्दर्शन हुआ। सम्यग्दर्शन कैसे होता है हमारे सभी आचार्यों के ग्रंथों में वही बात बतायी है। वह उपदेश हम गुरुदेवश्री के प्रवचनों में हर रोज सुनते आ रहे हैं। वही बात हम करणानुयोग के माध्यम से यहां देखेंगे।

सम्यग्दर्शन को दर्शनलब्धि कहते हैं। लब्धि यानी प्राप्ति, उपलब्धि। हम कहते हैं कि हम यहां शिबिर में आये हैं तो हमें क्या उपलब्धि हुयी ? हम लौकिक में लब्धि किसमें समझते हैं ? पैसे में; पूरे सालभर में कितना मिला इसका हिसाब भी रखते हैं। नहीं समझे ? एक हिसाब सरकार के लिये और एक हिसाब अपने लिये। परंतु यहां हम कौनसे भाव कर रहे हैं, उसमें हमारा कितना नुकसान और कितना फायदा हो रहा है उसका विचार हम कभी नहीं करते। केवल जो सुनी-सुनायी बातें हैं या जिसे धर्म समझ लिया है - हम इकट्ठे हुये, भगवान के दर्शन किये, पूजा-पाठ किया, यात्रा की, दान दिया बस हमने धर्म किया ऐसा मान लेते हैं। क्या सचमुच वह धर्म है ? हमें उससे कितना लाभ हुआ ? लाभ होना इसको लब्धि कहते हैं। लब्धि क्या है ? मोक्ष की प्राप्ति

ही सच्ची लब्धि है। मोक्ष अवस्था है, वह जीव की अवस्था है। मोक्ष कहां है ? जीव की पर्याय में। वह जीव की अवस्था है तो जीव की अवस्था जीव के बाहर नहीं होती, जीव में होती है और जीव की अवस्था कर्म के कारण नहीं होती, अपने से होती है।

अभी तो घंटे भर सुना न गुरुदेवश्री का प्रवचन, क्या सुना ? उत्पाद-व्यय-ध्रुवता यह सत् का लक्षण है और सत् द्रव्य का लक्षण है। कौनसे द्रव्य का ? *श्रोता: सभी द्रव्यों का। सभी द्रव्यों का।* यह जो हम सुनते हैं न, उसे समझकर हमें आत्मसात करना है, प्राप्त करना है। क्या प्राप्त करना है ? हमें अपना स्वरूप समझना है। दूसरी भाषा में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र प्रकट करना है, वही हमारी लब्धि है। कहते हैं इन सबका; किसका ? सम्यग्दर्शन का, सम्यक् चारित्र का, गुणस्थानों का - उसके लिये मोक्षमार्ग का जो उपदेश है, इन सबको अच्छी तरह जानना चाहिये क्योंकि यही आत्मा का प्रयोजनभूत कार्य है। इन कर्मों को जानना आत्मा को जानने के लिये कार्यकारी है, इसके लिये हम यहां लब्धिसार के आधार से समझेंगे, हम आगे बढ़ेंगे।

यहां पंचलब्धि का विषय शुरू करने से पहले कर्मों के कुछ नाम, उनकी अवस्थायें, उनके पारिभाषिक शब्द इनके बारे में थोड़ी स्थूल चर्चा करेंगे। वैसे हमने अनेक शिबिरों में बहुत विस्तार से चर्चा की थी। अभी हमारा वह विषय नहीं है, परंतु सामान्य तरीके से यहां जो विषय चलेगा उसको जानने के लिये बिलकुल प्राथमिक से चलेंगे। हां, किसीके कुछ प्रश्न होंगे तो उत्तर अवश्य मिलेगा। कंडिशन यह है कि प्रश्न लिखितरूप से यहां टेबल पर रखना। जब उसका विषय आयेगा, प्रसंग आयेगा या एक घंटे के अंत में पांच-दस मिनट में, उनका उत्तर यहां दिया जायेगा। कोई भी प्रश्न अनुत्तरित नहीं रहेगा। यहां अभ्यासी जन बहुत हैं, हमारे से भी अधिक अभ्यासी हैं। वे यदि हायर पॉइंट्स पर चर्चा करते रहेंगे, तो हमारी उनके साथ चर्चा की जुगलबंदी चलेगी तो सभी लोग कहेंगे कि यह क्या चल रहा है ? हमें वैसा नहीं चाहिये। शास्त्र में बहुत सूक्ष्म विवेचन और सूक्ष्म चर्चा भी है। शास्त्र में एक-एक विषय पर हजारों पेजेस का कथन है, परंतु हम यहां बिलकुल स्थूलरूप से हमें जितना आवश्यक है, विशेषतः कर्म संबंधी जो पारिभाषिक शब्द हैं, उन्हें देखकर हम आगे बढ़ेंगे।

देखो, हमें तो अपनी बात समझनी है, परंतु हम यहां कर्मों की अवस्थाओं के आधार से आगे बढ़ेंगे। लब्धिसार की भूमिका में पहले ही कर्मों की दस अवस्थायें

बतायी हैं, उसको कहते हैं दस करण। करण का अर्थ समझते हो ? करण शब्द के अर्थ बतायेंगे आप ? चेतन आपको मालूम है करण के क्या-क्या अर्थ होते हैं ? *श्रोता: करण परिणाम को कहते हैं।* परिणाम को करण कहते हैं, गणित के सूत्रों को करण कहते हैं। मन को भी अंतःकरण कहते हैं। इन्द्रियों को करण कहते हैं, एक करण नाम का कारक भी होता है। एक ही शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। यहां दस करण यानी दस अवस्थायें। किसकी ? कर्मों की। ये अवस्थाओं के नाम हैं, किसी कर्म के नाम नहीं हैं। बंध नाम का कोई कर्म है क्या ? उदय नाम का कोई कर्म होता होगा ? निधत्ति और निकाचित नाम का तो कोई कर्म होता होगा, क्यों ? निधत्ति और निकाचित का हौवा बनाकर रखा है - विद्वान डराते हैं कि निकाचित और निधत्ति नाम के कर्म बंधेंगे। वह किसी कर्म का नाम नहीं है, वह कर्म की अवस्था है। वह कब होती है, क्या होती है, उन अवस्थाओं का कैसे नाश होता है वह सारी चर्चा आयेगी।

दस करण

१) बंध	२) सत्त्व	३) उदय	४) उदीरणा	५) उत्कर्षण
६) अपकर्षण	७) संक्रमण	८) उपशम	९) निधत्ति	१०) निकाचित

यहां चार्ट में कर्म की दस अवस्थाओं के नाम लिखे हैं। मैं पढ़ूंगी आप यहां बोर्ड पर देखना। ऊपर लिखा है दस करण - ये कर्मों की दस अवस्थायें हैं। मैं उनमें से दो-दो नाम लूंगी, आप प्लीज रिपीट करना। ऐसा मत समझना कि आप के.जी. क्लास में बैठे हैं। बंध, सत्त्व। *श्रोता: बंध, सत्त्व।* उदय, उदीरणा। *श्रोता: उदय, उदीरणा।* उत्कर्षण, अपकर्षण। *श्रोता: उत्कर्षण, अपकर्षण।* संक्रमण, उपशम। *श्रोता: संक्रमण, उपशम।* निधत्ति और निकाचना। *श्रोता: निधत्ति और निकाचना।* निकाचना के बदले निकाचित भी कहते हैं, बात एक ही है। ये कर्म की दस अवस्थायें हैं।

हम बंध से बात शुरू करेंगे। हम कर्म के घातिकर्म और अघातिकर्म ऐसे दो भेद करेंगे। उनकी विशेषता हम बाद में देखेंगे। फिर आपको घातिकर्म के चार और अघातिकर्म के चार भेद भी बतायेंगे। ये जो आठ कर्म हैं उनको कहेंगे मूलप्रकृति और उनके उत्तरभेद होते हैं, उनको कहेंगे उत्तरप्रकृति। बंध होता है यानी क्या होता है ? बंध यानी आ मिलना। उसमें क्या होता है ? कार्माणवर्गणा जो पुद्गल स्कंध है - वह राँ

मटेरिअल है। किसका ? कर्म का, वह कर्मरूप परिणमित होता है। क्यों होता है ? अपने स्वयं के कारण परंतु वहां जीव के मोह-रागद्वेष निमित्त होंगे। कर्म का बंध होता है यानी कार्माणवर्गणा कर्मरूप परिणमित होती हैं और वे कर्म कुछ काल तक जीव के प्रदेशों के साथ वहां पड़े रहते हैं। हम कहेंगे पुराने कर्म पड़े हैं। हमने देखा था अनादि से ही जीव और कर्म बंधी हुयी अवस्था में पाये जाते हैं। जब नया बंध होता है तब अनंत परमाणु पुराने कर्म में आकर जुड़ जाते हैं। उसको कहेंगे बंध हुआ।

कर्मबंध	
१) प्रकृतिबंध	} — योग के कारण (योग = आत्मप्रदेशों का कंपन।)
२) प्रदेशबंध	
३) स्थितिबंध	} — कषाय के कारण (कषाय = मिथ्यात्व, राग-द्वेष।)
४) अनुभागबंध	

कर्मों के बंध को हम चार प्रकार से समझायेंगे। यह जो एक-एक अवस्था है न, उसमें हम चार प्रकार की बातें बतानेवाले हैं। हम बंध पर घटित करेंगे, बाद में उदय, सत्ता आदि सभी में वैसे ही हम समझेंगे। यहां दूसरा चार्ट है न, ऊपर कर्मबंध लिखा है और नीचे लिखा है कि यह चार प्रकार का होता है। कौनसे चार प्रकार हैं ? आप रिपीट करना। प्रकृतिबंध। श्रोता: प्रकृतिबंध। प्रदेशबंध। श्रोता: प्रदेशबंध। स्थितिबंध। श्रोता: स्थितिबंध। और अनुभागबंध। श्रोता: अनुभागबंध। फिर से- प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबंध और अनुभागबंध। हम उसमें जो प्रकृति देखते हैं न, मूलप्रकृति उस एक-एक प्रकृति के अनेक पेटा भेद-सबडिविजन्स हैं जो उत्तरप्रकृतियां हैं, वे कहां कितनी बंधती हैं, कौनसी बंधती हैं उसको हम कहेंगे प्रकृतिबंध। कार्माणवर्गणा कर्मरूप परिणमित होती हैं और जो मूलप्रकृतियां हैं उन आठ में या आयु बिना सात में विभाजित होती हैं तो उसको हम कहेंगे प्रकृतिबंध। यह प्रकृतिबंध हुआ।

हमने क्या देखा था ? अनंत परमाणुओं का बंध होता है। एक समय में जितने नंबर ऑफ परमाणु बंधते हैं, उसे कहेंगे प्रदेशबंध। आत्मा के प्रदेशों से बंधा इसलिये प्रदेशबंध कहते हैं ऐसा नहीं है। प्रदेशबंध का अर्थ है एक समय में कितनी संख्या में परमाणु बंधते हैं, नंबर ऑफ परमाणु कितने बंधते हैं उसे कहते हैं प्रदेशबंध। आपने सुना भी होगा कि एक समय में अनंत कार्माणवर्गणा बंधती हैं और एक-एक

कार्माणवर्गणा में अनंत पुद्गल परमाणु होते हैं। उसका भी प्रमाण है - अभव्यों से अनंतगुणे और सिद्धों के अनंतवें भाग। उसको हम अनंत कहेंगे। तो इतने अनंतानंत परमाणु एक समय में आकर जीव के साथ जुड़ते हैं; पुराने तो स्टॉक में अनंतानंत पड़े हैं, उनमें ये नये अनंत और आकर मिलते हैं। पुराने में से कुछ अनंत चले जाते हैं और स्टॉक बना रहता है। यह हुआ प्रदेशबंध। यहां तक समझ में आया ? इतने अनंत परमाणु बंधते हैं उनमें अलग-अलग स्थिति पड़ती है कि कितने काल तक वे सत्ता में पड़े रहेंगे। विशिष्ट काल के बाद वे छोड़कर चले जायेंगे उसको कहेंगे स्थितिबंध। बंध के समय में कर्म में अनुभागबंध भी पड़ता है। अनंत परमाणु हैं, उनमें अलग-अलग अनुभाग पड़ता है। अनुभाग यानी फल देने की शक्ति। कितनी डिग्री में उसका फल मिलेगा ? तीव्र मिलेगा, मंद मिलेगा, कैसे होगा ? उसे कहते हैं अनुभागबंध। इसतरह चार प्रकार का कर्मबंध होता है।

चार प्रकार का कर्मबंध कौन कराता होगा और उसका हिसाब कौन रखता होगा ? ऐसा कोई होगा न ? तो कहते हैं कि यह प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध योग के कारण - योग के निमित्त से होता है। योग है जीव का और कर्म में हो रहा है प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध। इनमें आपस में निमित्त-नैमित्तिक संबंध है। होता तो अपने में अपने से है परंतु हम यहां कथन करेंगे कि यहां जीव के ऐसे परिणाम हुये और वहां इतनी प्रकृतियां बंधी, इतने नंबर ऑफ परमाणु आ गये। उसी समय स्थिति और अनुभाग का बंध होता है, उसमें क्या कारण है ? तो कहते हैं जीव के कषाय कितने मंद या तीव्र हैं उसके अनुसार कर्म की स्थिति यानी कर्म कितने काल तक जीव से बंधे हुये रहेंगे यह निश्चित होता है। जहां तीव्र कषाय होते हैं जिसको संक्लेश परिणाम कहते हैं, तब स्थिति अधिक बंधती है। कौनसे कर्म की ? पुण्य कि या पाप की ? दोनों की। इसमें केवल तीन आयु का अपवाद है। कौनसी तीन आयु ? देवायु, मनुष्यायु और तिर्यचायु। बाकी जनरल रूल क्या है ? जहां कषाय तीव्र वहां स्थिति अधिक बंधती है; पाप प्रकृतियों की और पुण्य प्रकृतियों की भी।

अनुभागबंध के डिटेल्स हम बाद में देखेंगे, अभी थोड़ी चर्चा करेंगे। अनुभाग यानी फलदान शक्ति। कुछ पुण्य प्रकृतियां भी बंधती हैं और कुछ पाप प्रकृतियां भी बंधती हैं तो उनमें क्या हिसाब होता है ? जहां तीव्र कषाय है, वहां जो पाप प्रकृतियां बंधती हैं उनका अनुभाग अधिक बंधता है और उसी समय कुछ पुण्य प्रकृतियां भी

बंध रही हैं उनका अनुभाग कैसा होगा ? कम होगा। इसका उलटा क्या होगा ? मंद कषाय - शांत परिणाम। वहां क्या हो रहा है ? पाप प्रकृतियां कम अनुभागवाली बंधेगी और पुण्य प्रकृतियों का अनुभाग ज्यादा बंधेगा। अब इसके लिये बहुत सारी टर्मिनॉलॉजी है, वह हम क्रम से पुस्तक के आधार से देखेंगे। आपके सामने पंचलब्धि पुस्तक है न, उसके आधार से देखेंगे। अभी हमने यह बात देखी थी कि चार प्रकार का बंध है। कौनसा-कौनसा ? प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबंध और अनुभागबंध। उनमें से प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध योग के कारण होता है; स्थितिबंध और अनुभागबंध कषाय के अनुसार होता है। कषाय कहने से अकेला कषाय यानी रागद्वेष नहीं समझना। बंध के जो कारण हैं; कौनसे ? मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग। योग को छोड़कर ये चारों कषाय में गर्भित हैं। इनके कारण स्थितिबंध और अनुभागबंध होता है और योग के कारण प्रदेशबंध और प्रकृतिबंध होता है। दसवें गुणस्थान तक कषाय है और योग भी है तो वहां तक ही स्थितिबंध, अनुभागबंध, प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध होते हैं। बाद में ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें गुणस्थानवालों को योग है परंतु कषाय नहीं है वहां सातावेदनीय एक ही प्रकृति बंधती है। वहां केवल प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध हैं परंतु स्थितिबंध अनुभागबंध नहीं हैं। डिटेल बात हम बाद में करेंगे, अभी आगे बढ़ते हैं।

ये जो दस अवस्थाएँ हैं, उनमें से हमने देखा बंध चार प्रकार का होता है। ऐसे ही चार प्रकार सत्ता में और उदय में होते हैं। जो प्रकृति बंधी है, बंधने के बाद उसका क्या होगा ? सत्ता में पड़ी रहेगी। सत्ता में जो कर्म है उसीको कहेंगे कर्म का सत्त्व यानी प्रकृतिसत्त्व। फिर से- बंध के समय से ही नये कर्म अभी सत्ता में जुड़ गये तो उसको क्या कहेंगे ? अभी इसकी सत्ता चल रही है। कब तक ? जब तक उदय में आकर खिर नहीं जाते हैं तब तक उसे कहेंगे कर्म का सत्त्व है, कर्म की सत्ता है। कौन-कौनसे कर्मों की सत्ता है ? जो-जो बांधे हैं, सभी की सत्ता है। हर समय पुण्य-पाप के बंध में क्लेरिफिकेशन होता है- कभी नरकगति बांधते हैं, कभी देवगति बांधते हैं। मिथ्यादृष्टि मनुष्य हर अंतर्मुहूर्त में चारों ही गति नामकर्म पलट-पलटकर बांधता है; भले ही वह जैनी हो, स्वाध्यायी हो, बहुत सालों से प्रवचन वगैरह करता हो या सुनता हो। मिथ्यादर्शन है तब तक चारों गतियां नियम से बंध रही हैं। एकेन्द्रियजाति से लेकर पंचेन्द्रियजाति तक पांचों का बंध भी हर अंतर्मुहूर्त में पलट-पलटकर हो रहा है। जितने कर्म बंधते हैं, हम सभी कर्मों के नाम देखेंगे - शुभ हो या अशुभ हो - अंतर्मुहूर्त से

अधिक लंबा काल रुकना नहीं पड़ता, वे पलट-पलटकर नियम से बंधते ही बंधते हैं।

अब जो बंधते हैं तो बंधने के बाद क्या होगा ? सत्ता में पड़े रहेंगे। जैसे हम सभी ने सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, एकेन्द्रिय संबंधी बंध किये होंगे कि नहीं किये होंगे ? हम नहीं चाहते कोई बांधे, पर बांध रहे हैं अभी क्या करेंगे ? अरे, हमारी आपकी क्या बात है ? जो जीव तीर्थकर होने जा रहा है, नौवें गुणस्थान तक ये सभी प्रकृतियां उसकी सत्ता में पड़ी रहती हैं। चिंता नहीं करना ! सत्ता में कितनी पड़ी हैं उससे हमारा कोई नुकसान नहीं है। अभी जो हो चुका वह हो चुका। अगर अभी हम चेतते हैं, सम्यग्दर्शन प्राप्त करते हैं तो वे जो प्रकृतियां बंधी हुयी पड़ी हैं न, उनका अन्य प्रकृतिरूप से टर्न होकर जो कुछ होना है वह होगा, बिलकुल जीव के फेवरेबल बात होती है, प्रोव्हाइडेड जीव अपना स्वरूप पहचाने। नहीं तो कभी न कभी वे कर्म उदय में आयेंगे तो उनका फल भोगना पड़ेगा। ये जो कर्मप्रकृतियां सत्ता में पड़ी रहती हैं उसको कहेंगे प्रकृतिसत्त्व। मिथ्यादृष्टि है तो उसकी सत्ता में कर्मों का भरपूर स्टॉक पड़ा हुआ है। वह मिथ्यादृष्टि के योग्य सभी प्रकार के कर्म बांधकर आया है क्योंकि अलग-अलग पर्यायों में अलग-अलग भाव करके बांधे हुये सभी कर्म इकट्ठा करके जीव परभव में चला जाता है। देखो, पैसा कोई परभव में नहीं ले जानेवाला। हर समय के परिणाम से जो-जो कर्म बांधे हैं वे सब इस जीव के साथ परभव में भी चले जाते हैं।

देखो, समय कितना सूक्ष्म है मालूम है ? हमें तो सेकंड मालूम है। नहीं-नहीं, हमारे सायंटिस्ट ने तरक्की की है। अभी नैनो सेकंड भी निकाला। वह क्या होता है ? *श्रोता: टू रेज्ड टू मायनस नाइन।* अच्छा, हमारे यहां तो सर्वज्ञ भगवान ने सेकंड के असंख्यात भेद देखे हैं; सेकंड के नहीं, आवली के। एक सेकंड जो हमें यहां गिनती में आता है, उसमें तो हजारों कोड़ाकोड़ी आवली होती हैं। आवली यह यूनिट है। एक आवली में कितने समय हैं ? तो कहते हैं जघन्य युक्तासंख्यात जितने समय हैं। यह जघन्य युक्तासंख्यात क्या होता है ? जो मिनिमम असंख्यात है न, उसका नाम है जघन्य परीतासंख्यात। उसको जघन्य परीतासंख्यात बार लिखो। नहीं समझे ? जैसे चार संख्या है, उसको हमने चार बार लिखा; चार-चार-चार-चार और आपस में गुणा किया तो कितना होगा ? उसका प्रमाण दो सौ छप्पन आया। यहां क्या करना है ? जघन्य परीतासंख्यात, जघन्य परीतासंख्यात, जघन्य परीतासंख्यात चार बार नहीं, जघन्य परीतासंख्यात बार लिखना और उनको आपस में गुणा करना। यानी अपनी

भाषा में जघन्य परीतासंख्यात रेज्ड टू जघन्य परीतासंख्यात करना। जो उत्तर आयेगा उसे कहते हैं जघन्य युक्तासंख्यात। इतने समय एक आवली में होते हैं और ऐसी हजारों कोड़ाकोड़ी आवली एक सेकंड में होती हैं। कोड़ाकोड़ी यानी करोड़ इन टू करोड़। तो समय कितना सूक्ष्म होगा और ऐसे प्रति समय हम कर्म का बंध कर रहे हैं। कितने परमाणुओं का बंध ? अनंतों का। किसने देखा ? सर्वज्ञ भगवान ने।

हम सर्वज्ञ भगवान को रोज नमस्कार करते हैं परंतु उनकी वाणी पर जरा भी भरोसा नहीं है। नहीं समझे ? हम सुबह-सुबह भगवान को सुनाते हैं। आज सुनाया न ? उनकी कितनी सुनते हैं ? नहीं मालूम ? देखो, एकेन्द्रिय जीव हैं परंतु एकेन्द्रिय के वाणी भी नहीं है और कान भी नहीं है। द्वीन्द्रिय को वाणी है, कान नहीं। त्रीन्द्रिय को वाणी है, कान नहीं। चतुरिन्द्रिय को वाणी है, कान नहीं है। पंचेन्द्रिय को दोनों हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय क्या करते हैं ? बोलते हैं, सुनते नहीं। हम भी क्या करते हैं ? भगवान की जय बोलते हैं। सुबह उठते ही भगवान को सुनाते हैं, है न ! गा-गाकर सुनाते हैं। परंतु भगवान ने बताया हुयी एक भी बात नहीं सुनते। तो हम पंचेन्द्रिय हैं कि नहीं ? जरा नक्की करना।

हम देख रहे थे कि बंध के चार प्रकार हैं, वैसे सत्त्व के भी चार प्रकार होंगे। कौनसे ? जो प्रकृतियां बंधी हैं वे सत्ता में हैं उसे कहेंगे प्रकृतिसत्त्व। जितने प्रदेश पूर्व में बंधे हैं उनमें हर समय नये बंधकर जुड़ते हैं उनमें से पुराने कुछ निकलते हैं परंतु स्टॉक बना रहता है उसे कहेंगे प्रदेशसत्त्व। अब सत्ता में पड़े हुये कर्मों की स्थिति कितनी है ? असंख्यात समयों की - सागरों की स्थिति पड़ी रहती है। कभी-कभी हीनाधिक बंध होता है, एकेन्द्रिय में जाता है तो स्थिति घटती है। पंचेन्द्रिय में आता है तो ज्यादा बांधता है तो स्थिति और बढ़ती है। परंतु एकेन्द्रिय में स्थिति के घटने से उसका कुछ फायदा नहीं होता है। ख्याल में आता है न ? तो इसको कहेंगे स्थिति का सत्त्व, स्थितिसत्त्व। सत्ता में अनुभाग के भी बहुत व्हेरिएशन्स पड़े हैं; परंतु सत्ता में कितना अनुभाग पड़ा है, सत्ता में कौनसी प्रकृति पड़ी है, सत्ता में क्या-क्या पड़ी है, उससे कुछ लेना-देना नहीं है। उससे हमें वर्तमान समय में कुछ लाभ-नुकसान नहीं होता, उनका कुछ निमित्तपना नहीं बनता। नहीं समझे ? जैसे पार्श्वनाथ मुनिराज थे तो तीर्थकर प्रकृति सत्ता में थी और हर समय बांध भी रहे थे। फिर भी जो कोई उपसर्ग हुये तो उसमें तीर्थकर प्रकृति के कारण क्या फर्क पड़ा ? वह सत्ता में थी परंतु तीर्थकर

प्रकृति का उदय कब होता है ? तेरहवें में। अब तीर्थकर की बात छोड़ो, अन्य किसी जीव के केवलज्ञान उत्पन्न होता है तो उनके कोई उपसर्ग नहीं रहता, केवलज्ञानी के कोई उपसर्ग नहीं होता। यह सहज होता है। सत्ता में तीर्थकर प्रकृति पड़ी है, तब तो उपसर्ग हुआ था। ख्याल में आयी न बात ? सत्ता में जो कोई कर्म पड़ा है उससे कोई लाभ या नुकसान नहीं है।

हम कहेंगे हमने इतना पुण्य जोड़ा है - हमने मंदिर बांधे, हमने इतना सब शिबिर का आयोजन किया है, तो हमने इतना सारा पुण्य बांधा है। यह तो सारा उधारी का धंधा है, सत्ता में पड़ा रहेगा। पर सत्ता में पड़ा रहने पर इन दस अवस्थाओं में से कौन-कौनसी अवस्था होगी वह हम नहीं कह सकते। क्योंकि हर समय जीव के परिणाम अलग-अलग होते हैं। अभी यहां उसके शुभ परिणाम चल रहे हैं; कब पलटी खायेगा और बांधा हुआ कर्म भी किसरूप से परिणमित हो जायेगा और किसरूप से उदय में आयेगा यह हम नहीं समझ सकते। उसका सायन्स ही हमें मालूम नहीं है, ख्याल में आती है न बात ? इसलिये अनादि से हमारे सारे जो जन्म-मरण के चक्कर चल रहे हैं न, वे मिट नहीं रहे हैं। हम इस संबंधी जानकारी हासिल करेंगे, उस संबंधी सही ज्ञान होगा, तो हमारा बिलकुल फायदा ही फायदा है।

अभी हम आगे बढ़ते हैं। सत्त्व में भी चार बातें लगेगी। ऐसे ही कर्म उदय में आते हैं तो कौनसी प्रकृतियां उदय में आ रही है ? जैसे हमारी सत्ता में सारी प्रकृतियां पड़ी हैं, परंतु अभी उदयरूप प्रकृतियां कौनसी हैं ? अभी मनुष्यगति के ही परमाणु उदय में आ रहे हैं। अन्य जो गति नामकर्म हैं, उनका क्या होता है वह बात अलग है। पंचेन्द्रिय जाति का उदय चल रहा है, अन्य बंधी हुयी जातियां सत्ता में पड़ी हैं उनका उदय नहीं हो रहा है। उसमें भी प्रकृतिउदय, जितने नंबर ऑफ प्रदेशों का उदय होता है वह प्रदेशउदय, कौनसी स्थितिवाले; अभी वर्तमान में एक निषेक उदयरूप है, उसीका उदय होता है, वह है स्थितिउदय। उदीरणा होकर भी वर्तमान निषेकरूप से उदय होता है यानी जो सत्ता में पड़े हैं, उन प्रत्येक निषेक में से कुछ परमाणुओं की स्थिति घटकर वे उदय में आने योग्य हो जाते हैं, उसे उदीरणा कहते हैं। हम इसको दो-तीन वाक्यों में ही यहां बतायेंगे। अभी हमारे दैनिक स्वाध्याय में धवला की पंद्रहवीं पुस्तक चल रही है। डेढ़ घण्टे के पचास लेक्चर्स उदीरणा पर हो गये हैं। अभी विषय पूरा नहीं हुआ है, शायद और पचास लेक्चर्स हो जायेंगे। हमारे ग्रंथों में इतना मॅटर है

और वह उतना ही इंटरेस्टिंग है, क्यों अश्विनभाई ! ये हमारे दैनिक स्वाध्याय के कुछ स्वाध्यायी आये हैं। हमारे सारे ग्रंथ विस्तृत सूक्ष्म जानकारी एवं चर्चा से भरे हैं ! धवला की १६ पुस्तकें, जयधवला की १६ पुस्तकें और महाधवला यानी महाबंध की ७ पुस्तकें हैं। महाधवला में प्रकृतिबंध पर एक पूरी पुस्तक है, स्थितिबंध पर दो पुस्तकें हैं, अनुभागबंध पर दो हैं, प्रदेशबंध पर दो हैं। एक-एक विषय पर हजार-हजार पेजेस हैं। हमारे पास इतना मॅटर है, जितना हमें कार्यकारी है उतना बिलकुल शॉर्ट में समझकर हम आगे बढ़ेंगे। इतना सब नहीं जानेंगे तो कोई बात नहीं, सम्यग्दर्शन हो जायेगा।

आगे बढ़ते हैं। उदय में भी चार बातें लगानी हैं, उदीरणा में भी लगानी हैं, सब में लगानी हैं। उत्कर्षण का अर्थ होता है कर्म की स्थिति, अनुभाग का बढ़ना, अपकर्षण यानी घटना। जब उसका समय आयेगा, उसका प्रकरण आयेगा तो हम उसकी भी बात करेंगे। संक्रमण का अर्थ है, कुछ परमाणु अन्य सजातीय प्रकृतिरूप होते हैं। सजातीय क्यों कहा ? ज्ञानावरण हैं वे दर्शनावरणरूप नहीं होंगे। दर्शनमोहनीय हैं वे चारित्रमोहनीयरूप नहीं होंगे। कौनसी प्रकृतियां किसमें संक्रमित होती हैं, उसके लिये क्या कंडिशनस हैं, हम यथायोग्य समय पर उसकी बात करेंगे। किसको क्या कहना बस इतनी बात अभी हमें देखनी है। संक्रमण हमने देखा। उपशम का अर्थ होता है कुछ परमाणुओं का अपकर्षण होता है, उत्कर्षण भी होता है, परंतु वे उदयावली में नहीं आ मिलते, वे उसकी योग्यता के नहीं होते। तो उनको क्या कहेंगे ? वे उपशमित हैं, उदय में नहीं आ रहे हैं। जब उसकी बात आयेगी न तब मैं विस्तार से बताऊंगी।

निधत्ति और निकाचित क्या है ? लोग समझते हैं किसी कर्म का नाम होगा निधत्ति और निकाचित। कौनसे कर्म का नाम है ? यह किसी कर्म का नाम नहीं है। निधत्ति-निकाचित क्या होता है ? कर्म की अवस्था है। वैसी अवस्था है ? कुछ परमाणुओं का ना अपकर्षण, ना उत्कर्षण, ना संक्रमण, ना उपशम होता है। क्या होता है ? जिस निषेक में जहां जो परमाणु पड़े हैं, वहीं पड़े रहते हैं। आलसु हैं न ! जल्दी खिर जाने के योग्य नहीं होते हैं। कब खिर जायेंगे ? तो कहते हैं जब सम्यग्दर्शन होता है, उसके पहले करण परिणाम होते हैं - आत्मसन्मुख परिणाम, तब अनिवृत्तिकरण परिणाम में कर्मों का उपशमकरण, निकाचितकरण और निधत्तिकरण नष्ट हो जाता है। हमारे लिये कुछ चिंता की बात नहीं है। अपनी ओर देखो, अपना अनुभव करो तो सब कुछ ऑटोमॅटिक होनेवाला है। आप यह नहीं भी जानेंगे तो भी होनेवाला है। आप

आत्मसन्मुखता नहीं करते न, इसलिये इतना कठिन समझाना पड़ता है। नहीं समझे ? बच्चा दूध नहीं पीता तब मां क्या करती है ? उसकी मुंडी पैरों में पकड़ती है और नाक दबाकर मुंह खुलवाती है और चम्मच से दूध मुंह में डालती है, है न, क्यों अश्विनी ?

ये कर्म की दस अवस्थाएँ हैं। हमने पहला चार्ट देखा था उसमें योग क्या है और कषाय क्या है वह भी लिखा है। योग क्या है ? आत्मप्रदेशों के कंपन का योग कहते हैं। कषाय क्या है ? मिथ्यात्व-रागद्वेष यह कषाय है। हमने क्या देखा कि पुराने कर्मों के उदय में यहां जीव की कुछ अवस्थाएँ बनती हैं। योग क्यों उत्पन्न होता है ? शरीर नामकर्म के उदय से। कौनसे शरीर नामकर्म से ? अभी कर्म के लिये कौनसा शरीर नामकर्म है ? कार्माणशरीर नामकर्म का उदय। उसका उदय कब से चल रहा है ? अनादि से। कब रुकेगा ? तेरहवें गुणस्थान के अंत में रुकेगा। तब तक क्या होगा ? हर समय जीव कर्म का ग्रहण करेगा। शरीर नामकर्म के उदय में जीव में ऐसी कर्माकर्षण शक्ति उत्पन्न होती है, शक्ति यानी यह विभाव है; कर्म के निमित्त में जो-जो हो रहा है - जीव स्वयं कर रहा है, परंतु वे सारे उसके विभाव हैं।

इसमें क्या हो रहा है ? जीव में कर्म को ग्रहण करने की - आकर्षण करने की शक्ति उत्पन्न होती है, जैसे लोहा है और उसमें इलेक्ट्रिक वायर लपेटकर करंट ऑन कर देते हैं तो वह इलेक्ट्रोमैग्नेट हो जाता है। लोहे में मैग्नेटिक पॉवर उत्पन्न होती है। वैसे ही जीव के प्रदेशों में, कार्माणशरीर नामकर्म की बात करेंगे, औदारिकशरीर नामकर्म की बात बाद में करेंगे। कार्माणशरीर नामकर्म का उदय हर समय चल रहा है तो जीव में क्या होता है ? कर्मों को ग्रहण करने की शक्ति उत्पन्न होती है उसके निमित्त से कार्माणवर्गणा कर्मरूप हो जाती हैं। क्यों ? क्योंकि उसी समय जीव के मोह-रागद्वेष परिणाम चल रहे हैं। जीव कहां की कार्माणवर्गणा ग्रहण करता है ? पूरे विश्व में से कार्माणवर्गणा यहां आती है क्या ? नहीं, जितने जीव के प्रदेश हैं, जितनी उसकी अेरिया है वहीं पर स्थित जो कार्माणवर्गणा हैं; वहां तो अनंतानंत पड़ी हैं, उनमें से कुछ कार्माणवर्गणा - अनंतवें भाग प्रमाण कार्माणवर्गणा, जिनमें उस समय कर्मरूप परिणमने की उपादान की योग्यता है, वे ही उस समय कर्मरूप परिणमित होती हैं। क्या कहा ? यह योग क्या है ? जीव में उत्पन्न हुयी कर्मों को आकर्षित करने की शक्ति है। कर्म के जितने परमाणु वहां बंधते हैं वे योग के कारण बंधते हैं। अकेला योग नहीं है, उसके साथ मिथ्यात्व, अविरति वगैरह-वगैरह भी हैं। उसके कारण यथायोग्य

प्रकृतियां वहां बंधती हैं - प्रकृतिरूप परिणमन होता है, वह योग के कारण होता है। अभी तो हम इसकी स्थूल चर्चा करेंगे।

कषाय किसको कहना ? मोह-रागद्वेष के जो परिणाम हैं उसीको यहां कषाय कहेंगे। जिसको हमने मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद और कषाय ऐसा नाम दिया था। इनके कारण कर्म का बंध हो रहा है। जो कर्मबंध होता है उसका उसकी अपनी योग्यता से आठ कर्मों में विभाजन होता है और जीव के परिणाम उसकी अपनी योग्यता से वहां हो रहे हैं। हर समय आठ कर्मों का उदय हो रहा है। परंतु कर्मों का जो बंध होगा वह आठ का नहीं होगा। सात या आठ कर्म बंधते हैं क्योंकि आयु कभी-कभी बंधती है, परंतु अन्य सात कर्म हर समय बंधते हैं, वे निरंतर बंधते हैं। समझ में आयी बात ?

अभी तक हमने देखा कि बंध चार प्रकार का होता है। इसमें जीव के ही योग और कषाय निमित्तभूत होते हैं। परंतु कर्म की अवस्था कर्म में, कर्म के कारण होती है। वह पुद्गल की अवस्था है, उसे जीव नहीं करता। परंतु हम कहेंगे जीव ने कर्म बांधे, जीव ने कर्म को उपशमाया, जीव ने कर्म का क्षय किया। कथन तो ऐसे ही होगा। कथन निमित्त से होता है। शास्त्रों में भी निमित्तों का ज्ञान कराया जाता है। परंतु यह हमारी आपकी समझने की जिम्मेदारी है कि जीव की हर अवस्था जीव में अपने से होती है। हर समय यह बात ख्याल में रखकर ही हमें आगे बढ़ना है। नहीं तो पहले से ही - अनादि से ही जीव की निमित्ताधीन दृष्टि है। निमित्ताधीन दृष्टि का अर्थ होता है निमित्त से ही परद्रव्य का कार्य होता है ऐसी उलटी मान्यता; उसको कहेंगे निमित्ताधीन दृष्टि। शास्त्र में कथन होंगे निमित्त के द्वारा। निमित्त होता है। अन्य द्रव्य स्वयं अपने कार्य करते समय अन्य द्रव्य की पर्याय को कर रहा है ऐसा लगता है। वह लगता है तो हम उसे निमित्त कहते हैं और उसका कथन भी शास्त्र में आता है। परंतु निमित्त के कारण परद्रव्य में कोई कार्य हो जाये, यह बात तीन काल में नहीं होती।

हमने देखा बंध चार प्रकार का है, उसमें जीव के योग और कषाय निमित्तरूप से हैं। कर्म के बंध चार प्रकार के होते हैं। कर्म की आठ मूलप्रकृतियां और उनकी उत्तरप्रकृतियां - इनके बारे में कुछ विशेष बातें हम थोड़ी देर में करेंगे। यहीं रुकते हैं।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२. मूलप्रकृति, उत्तरप्रकृति

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है और उसीके आधार से हम यहां पांच लब्धि का स्वरूप देखने जा रहे हैं। पं. टोडरमलजी ने पूर्व में कर्मकाण्ड में जो विषय समझाया था उसीको थोड़ा प्रसंगानुरूप या यहां समझना आवश्यक है इसलिये लब्धिसार भूमिका में भी कर्मों की कुछ अवस्थाओं का वर्णन किया है, उसकी चर्चा की है। हम भी उसको देखकर आगे बढ़ेंगे। क्योंकि पंचलब्धि के विषय में आगे जब विशेष वर्णन आयेगा तो उसमें कर्मों के नाम और उनकी क्या-क्या अवस्थाएँ होती हैं उसका कथन आनेवाला है। इसलिये पहले से ही उनसे हम थोड़े परिचित होकर आगे बढ़ेंगे।

यहां हमने देखा है कि हर समय पुराने कर्मों का उदय होता है, जीव नये-नये मोह-रागद्वेष के परिणाम करता है और फिर नया-नया कर्म का बंध होता रहता है। यह जो कर्म का बंध हो रहा है उसको ही चार अलग-अलग अपेक्षाओं से बताया है। एक ही समय में जो बंध हुआ है उसका यहां चार पद्धति से वर्णन किया है। जो प्रकृतियां बंधती हैं उसको प्रकृतिबंध कहा, जितने नंबर ऑफ परमाणु बंधते हैं उसको प्रदेशबंध कहा, उसमें कितनी स्थिति पड़ती है उसको स्थितिबंध कहा और वह कितना फल देगा ? उसको कहेंगे अनुभागबंध। इसीके बारे में कुछ प्रश्न हैं।

प्रश्न: प्रदेश में परमाणु आते हैं और प्रकृति में यह कौनसा द्रव्य है और क्या कैसे है यह समझाइये। देखो हमने क्या देखा ? जीव के प्रदेशों में उसके रागद्वेष हो रहे हैं कि थोड़े से उसके प्रदेशों के बाहर भी होते हैं ? *श्रोता: थोड़े से बाहर, थोड़े अंदर होते हैं।* नहीं, जीव के जितने प्रदेश हैं, आत्मप्रदेश - वहीं पर उसकी पर्याय हो रही है, राग-द्वेष भी वहीं पर हो रहे हैं। उतने ही आकाश के प्रदेशों में स्थित जो कार्माणवर्गणा हैं उनमें भी योग्यता है न कर्मरूप परिणमने की ? वे अनंतानंत खचाखच पड़ी हैं, परंतु उनमें से उस समय कुछ कर्मरूप होने के योग्य हैं। जीव के परिणाम यहां निमित्त हैं और वहां कर्म की अवस्था उसमें अपने में होती है। तो क्या होता है ? कार्माणवर्गणा कर्मरूप परिणमित होती हैं और कर्मरूप होकर वहां कर्म जीव के प्रदेशों में कुछ काल तक पड़े रहते हैं। नये कर्म पुराने कर्मों के साथ जुड़ जाते हैं, उसको हम कहते हैं कर्म का बंध हुआ। वहां कार्माणवर्गणा तो उसका रॉ मटेरिअल है, कार्माणवर्गणा

कर्मरूप हुयी। तो कौनसे कर्मरूप हुयी ? अभी हम उनके नाम देखने जा रहे हैं- ज्ञानावरणरूप हुयी या दर्शनावरणरूप हुयी या मोहनीयरूप हुयी उसको हम कहेंगे प्रकृतिबंध। अब उसमें कितने परमाणुओं का किसमें बटवारा होता है ? एक समय में जितनी संख्या में परमाणु आते हैं उसको कहेंगे समयप्रबद्ध; एक समय में बंधनेवाले नंबर ऑफ परमाणु। वे भी हीनाधिक कैसे होते हैं ? जहां जीव का योग ज्यादा है वहां नंबर ऑफ परमाणु अधिक होते हैं, जहां योग कम है वहां परमाणु कम आयेंगे। जैसे योग दोगुणा हुआ तो जो पूरा लॉट है जिसको हम समयप्रबद्ध कहते हैं; वह भी दोगुणा होगा, योग दस गुणा हो जाये तो समयप्रबद्ध भी दस गुणा होगा, योग असंख्यात गुणा हो जावे तो समयप्रबद्ध भी असंख्यात गुणा होगा। योग से उसका निमित्त बनता है बस इतनी बात है। परंतु ज्ञानावरण आदि जो कर्म बने हैं वे परमाणुओं से ही तो बने हैं न, उसको हम कहेंगे प्रकृतिबंध और हर एक में कितने-कितने परमाणु बंधे उसको हम कहेंगे प्रदेशबंध। यह स्पष्ट हुआ ? यही उसका स्वरूप है।

एक प्रश्न है- कर्म जैसे दूसरे गति में साथ में जाते हैं वैसे विस्रसोपचय भी साथ में जाते हैं कि नहीं ? हमने अभी विस्रसोपचय का विषय निकाला नहीं है, परंतु आपका प्रश्न है तो हम उसका उत्तर देंगे। एक समय में कितने कर्म परमाणु जीव के साथ बंधते हैं ? अनंतानंत और सत्ता में पड़े हैं वह तो बात जुदी है। इस विश्व में हमने कितने जीव देखे ? *श्रोता: अनंत।* अनंत। जीवों की जो संख्या है उसको जीवराशिवाला अनंत कहते हैं। अनंत भी अनंत प्रकार के हैं। जीवराशि से भी अनंतगुणा परमाणु एक-एक कर्म परमाणु के साथ जुड़े हुये होते हैं। जीव के परिणाम के कारण नहीं, उनके अपने स्निग्धत्व-रुक्षत्व के कारण। नहीं समझे ? आपने मुंह पर क्रीम लगायी और आते समय धूल उसमें चिपक गयी, धूल आपने तो नहीं लगायी थी न ? उसीतरह कर्म तो जीव के परिणामों के कारण बंधे और कर्मों के साथ जो परमाणु चिपके हुये हैं वे तो उनकी स्निग्धता-रुक्षता के कारण चिपके हैं। वह तो पुद्गल का स्वभाव है, उसका स्वाभाविक परिणामन है। कर्म परमाणु तो अनंत हैं और विस्रसोपचय का गठ्ठा उससे भी अनंतानंतगुणा परमाणुओं का है। वह भी जीव के प्रदेशों में वहीं पर पड़ा है। हां, विस्रसोपचय भी जीव के साथ परभव में जायेगा, पूरा लॉट का लॉट जायेगा। *श्रोता: एक स्कंध होता है ?* हां, उनका एक स्कंध बन जाता है। कार्माणशरीर का विस्रसोपचय जुदा, तेजसशरीर का विस्रसोपचय जुदा, औदारिकशरीर का विस्रसोपचय जुदा। ये

इतने सारे परमाणुओं के गठे के गठे लेकर यह जीव बिचारा अकेला घूम रहा है; शास्त्र में उसको कावड़िया की उपमा दी है। कावड़िया समझते हैं ? वह कावड़ लेकर जाता है न, उसमें क्या होता है ? बोझा। वह बोझा यहां से वहां, वहां से वहां ढोता है। ऐसे ही यह जीव क्या कर रहा है ? इन सब कर्मों का बोझा ढो रहा है। इस गति से वहां, उस गति से वहां - चल रही है उसकी हमाली, थकता नहीं है।

प्रश्न: आत्मप्रदेशों का कंपन किसतरह होता है ? देखो, यहां पर आत्मप्रदेशों का कंपन का अर्थ क्या होता है ? पहले में पहले शरीर नामकर्म का उदय चल रहा है, उसके उदय में जीव में शक्ति उत्पन्न होती है, कौनसी ? कर्माकर्षण शक्ति। उस शक्ति को भावयोग कहते हैं और संपूर्ण आत्मप्रदेशों में एक भी प्रदेश ऐसा नहीं है कि जिसमें भाव योग नहीं है। वहां आत्मप्रदेशों का जो कंपन होता है उसको द्रव्ययोग कहते हैं। प्रदेशों का कंपन यानी द्रव्ययोग और भावयोग के कारण क्या होता है ? कर्म के परमाणु और नोकर्म के यानी शरीर के परमाणु उन प्रदेशों में वहां रुकते हैं कहो, चिपक जाते हैं कहो, उसके कर्म- नोकर्मरूप होते हैं कहो - एक ही बात है। तो यह है आत्मप्रदेशों का कंपन यानी आत्मप्रदेशों का परिस्पंदन; उनका घूमना जो कहेंगे वह बात अलग है। योग सर्वात्मप्रदेशों में है, हमने पिछले शिबिर में इस विषय पर बहुत चर्चा की थी। कोई ऐसा मानते हैं कि बीच में आठ रूचक प्रदेश हैं उनमें कर्मबंध नहीं होता है, घूमना नहीं होता है। परंतु योग सर्वत्र है, सर्वात्मप्रदेशों से कर्म का बंध होता है। उस पर अधिक चर्चा नहीं करेंगे, चर्चा हो गयी है।

प्रश्न: क्या प्रकृतिबंध में कषाय भी कारणभूत नहीं हो सकते ? जैसे कि हम स्थूलरूप से कहते हैं कि मायाचारी के परिणाम में तिर्यचगति प्राप्त हुयी या अति क्रोध करने से नरकायु का बंध होगा। यहां जो कहा है, योग से होता है परंतु वह कौनसा योग है ? उसे शुभयोग-अशुभयोग कहेंगे। शुभयोग यानी शुभ परिणाम के साथवाला योग है। शुभ परिणाम के साथवाला योग है परंतु प्रकृतिबंध का कारण योग ही कहने में आयेगा। योग में भी सकषाययोग, अकषाययोग, मिश्रयोग या शुभयोग, अशुभयोग ऐसे भेद मोक्षमार्गप्रकाशक में बताये हैं। उसकी अभी हम चर्चा करेंगे, पहले प्रकृतियों के नाम वगैरह देखेंगे और उसके आगे हम चर्चा बढ़ायेंगे।

देखो, यह जो चार्ट है, इसमें प्रकृति के भेद बताये हैं, ये भेद बंध में, उदय में,

सत्ता में जहां जो हैं उनको जानना है। प्रकृतियों के भेद कौन-कौनसे हैं ? हमने पहले देखा था मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृति कहते हैं। मूलप्रकृति का अर्थ क्या है ? कर्मों के मुख्य आठ भेद और उत्तरप्रकृति यानी उसके और प्रभेद-सबडिक्विजन्स। यहां नाम लिखे हैं, पहले कर्मों के दो भेद यहां बताये हैं। कौनसे दो भेद बताये हैं ? *श्रोता: घातिकर्म और अघातिकर्म।* घातिकर्म और अघातिकर्म। आप जरा बोर्ड पर देखना। कर्म प्रकृतियां १४८ बतायी हैं और ब्रैकेट में १२२ भी बतायी हैं, उसका कारण बाद में बतायेंगे। घातिकर्म कितने हैं और अघातिकर्म कितने हैं ? देखो, घाति और अघाति मूल दो भेद किये। किसके ? जो कर्म हैं वे दो प्रकार के हैं - घातिकर्म और अघातिकर्म। उनके नाम से उनका स्वरूप ख्याल में आता है।

कर्मप्रकृति - १४८ (१२२)					
घातिकर्म			अघातिकर्म		
ज्ञानावरण	-	५	वेदनीय	-	२
दर्शनावरण	-	९	आयु	-	४
मोहनीय (दर्शनमोहनीय)	-	३	नाम	- (६७)	९३
(चारित्रमोहनीय)	-	२५	गोत्र	-	२
अंतराय	-	५			
		४७			(७५) १०१
उदय ८ का		बंध ७ या ८ का	सत्त्व ८ का		

घाति का अर्थ क्या है ? वह किसका घात करता है ? *श्रोता: आत्मा का।* आत्मा का ? आत्मा नष्ट हो जाता है ? *श्रोता: नहीं, गुणों का।* गुणों का ? गुण नष्ट हो जाते हैं ? *श्रोता: नहीं, पर्याय का।* पर्याय का ? *श्रोता: नहीं, स्वभाव का।* कोई स्वभाव का घात करेगा तो स्वभाव नष्ट होगा, तो जीव स्वभाव रहित हो जायेगा, बराबर है न ? *श्रोता: नहीं।* देखो, जीव अपनी पर्यायरूप से परिणमित हो रहा है। उसका स्वभाव क्या है ? केवलज्ञान, केवलदर्शन उसका स्वभाव है। सभी अनंत गुणों का जो अमर्यादित विकास है उसरूप वह स्वभाव है। परंतु अभी किसरूप से परिणमित हो रहा है ? जीव की

अवस्था कैसी चल रही है ? वह अल्पज्ञानरूप से परिणमित हो रहा है, राग-द्वेषरूप से परिणमित हो रहा है, उसकी वह पर्याय अपने से हो रही है। उसकी जो विभावरूप परिणति हो रही है, अल्पज्ञानरूप परिणति हो रही है - पहले यह नक्की करना है कि वह उसके अपने से परिणमित हो रही है, वहां सामने हमने कर्म की तरफ देखा तो कर्म की कौनसी अवस्थायें चल रही हैं ? घातिकर्मों की उदयरूप अवस्था हो रही है, तो हम क्या कहेंगे ? इन कर्मों ने जीव का घात किया न ? किसका घात किया है ? प्रतिपक्ष का। नहीं समझे ?

ज्ञानावरण ज्ञान के ऊपर आवरण डालता है ऐसा हम कहेंगे। वह उसका नाम पड़ा है परंतु अंदर ज्ञान प्रकट है और ऊपर आवरण आया ऐसा नहीं है। ज्ञान स्वयं हीनरूप परिणमित हुआ वहां सामने ज्ञानावरण कर्मों की उदयरूप अवस्था पायी जाती है। इसको क्या कहेंगे ? यह घातिकर्म है। क्यों ? इसने जीव के गुणों का घात किया ऐसा कथन शास्त्रों में आयेगा, परंतु गुणों का घात किया उसका अर्थ है गुण की जो सामर्थ्य है वह पर्याय में प्रकट नहीं हुयी। जैसी पूर्ण शक्ति है वैसी प्रकट नहीं हुयी या विभावरूप से हो रही है तो हम क्या कहेंगे ? यह घातिकर्म के उदय के कारण हो रहा है। ऐसे घातिकर्म कौन-कौनसे हैं ? वहां नाम क्या लिखे हैं ? देखो- ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय। ज्ञानावरण का अर्थ है कि ज्ञान पर आवरण डालता है। हम कहेंगे आवरण डालता है, कथन में कोई दोष नहीं क्योंकि शास्त्र में इसी प्रकार से कथन करने की पद्धति है। परंतु ऐसा नहीं है कि केवलज्ञान अंदर प्रकट है और ऊपर से आवरण आया - ऐसा नहीं है। जैसे आकाश में सूर्य है और फिर मेघ आते हैं तो पीछे सूर्य है, हम नीचे से नहीं देख सकते, ऐसा यहां नहीं है। पर्याय में प्रकट ही नहीं है। क्यों नहीं है ? कर्म के कारण ? *श्रोता: नहीं।* अपने स्वयं के कारण। पहले यह निश्चित करना। फिर ये कर्मों के नाम भले ही दे दो, हम कहेंगे जीव ने कर्म बांधा, कर्म ने जीव को फल दिया - भले ही कथन करो; मान्यता सही करके फिर ये कथन सुनना और करना। ज्ञानावरण है, उसके भेद हम बाद में देखेंगे।

ज्ञान जीव का स्वभाव है, केवलज्ञान जीव का स्वभाव है। ज्ञान का कार्य है जानना, किसको ? *श्रोता: स्वयं को।* स्व और पर दोनों को - कितने को जानना ? कितना जानना ? *श्रोता: आत्मा को।* आत्मा को अकेले को जानना ? देखो-देखो, जो स्वभाव होता है उसमें कोई लिमिट नहीं होती, मर्यादा नहीं होती। स्व को ही जानता है,

पर को नहीं जानता ऐसी कोई लिमिट नहीं है। पर में थोड़े ही पर को जानता, सबको नहीं जानता ऐसा भी नहीं है। केवल वर्तमान को ही जानता है, भूत-भविष्य को नहीं जानता ऐसा भी नहीं है। सामनेवाले को जानता है और दूरवर्ती पदार्थों को नहीं जानता ऐसा भी नहीं है। जो स्वभाव है वह परिपूर्ण होता है। स्वभाव में कोई मर्यादा नहीं होती है। हां, अभी स्वभाव प्रकट नहीं हुआ है इसलिये हम सब कुछ नहीं जानते। परंतु हमारा-आपका स्वभाव ऐसा ही है क्योंकि स्वभाव बाद में तैयार नहीं होता। जिस वस्तु का जो स्वभाव है वह अनादि से ही होता है, स्वयंसिद्ध होता है। अनादिकाल पहले स्वभाव तैयार हुआ ऐसा भी नहीं है। तैयार होने की बात ही नहीं है। वह है, उसको स्वयंसिद्ध कहेंगे; स्वयंभू नहीं कहेंगे; स्वयंसिद्ध है, वह है, है और है। तीन काल में कभी उसका नाश नहीं होगा, नया उत्पन्न नहीं होगा उसीको स्वभाव कहते हैं। स्वभाव परिपूर्ण होता है, अनादिअनंत होता है। स्वभाव परिपूर्ण पड़ा है परंतु इसकी पर्याय जो प्रकट होती है, जिसको हम अवस्था कहेंगे, वह अनादि से अपूर्ण है, विभावरूप है।

प्रत्येक द्रव्य की कोई न कोई अवस्था हर समय चलती है उसको हम पर्याय कहते हैं। द्रव्य की अपनी अवस्था स्वयं अपने से होती है। आज गुरुदेवश्री के प्रवचन में यही बात सुनी आपने। है न ? यह पंचास्तिकाय तो बहुत मूलभूत ग्रंथ है जिसमें हमारी पूरी मिथ्या मान्यता का भुक्का हो जाये ऐसा है। अभी हम जो देख रहे थे, घाति का अर्थ क्या हुआ ? कर्म की अपनी अवस्था उसके अपने से है और जीव की ज्ञान की अवस्था जो हीनरूप हो रही है वह जीव के अपने से है, तो हम उपचार से क्या कहेंगे ? ज्ञानावरण के कारण जीव के ज्ञान का घात हुआ, दर्शनावरण के कारण जीव के दर्शन का घात हुआ। यह दर्शन क्या होता है ? सामान्य अवलोकन। अभी उसकी चर्चा नहीं करेंगे क्योंकि दर्शन और ज्ञान के विषय में चर्चा करेंगे तो पूरा एक घंटा भी कम पड़ेगा। यह दर्शनावरण भी कर्म का ही एक नाम है।

यहां तीसरा नाम क्या लिखा ? मोहनीय। ज्ञानावरण और दर्शनावरण में ज्ञान और दर्शन की हीनता होती है - ज्ञान और दर्शन कुछ प्रकट है परंतु हीन है। मोहनीय के उदय में क्या होता है ? श्रद्धा और चारित्र की विपरीतता हो जाती है। इसलिये वहां पर मोहनीय में दो नाम लिखे हैं - दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीय में क्या हो रहा है ? यहां जो दर्शन है न, उस शब्द का अर्थ होता है श्रद्धा। ऊपर जो दर्शन नाम था वह है ज्ञानदर्शनवाला दर्शन, जानने-देखनेवाला दर्शन और यहां जो दर्शन है

वह श्रद्धा जिसको हम सम्यक् या मिथ्या कहते हैं। मिथ्यादर्शन दर्शनमोहनीय के मिथ्यात्व के उदय का कार्य है। मोहनीय के उदय में श्रद्धा की विपरीतता हो रही है और चारित्रमोहनीय के उदय में क्या हो रहा है ? रागद्वेष के परिणाम हो रहे हैं। अंतराय के उदय में क्या होता है ? विघ्न आता है। किसमें ? दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य में। अंतराय कर्म भी पांच प्रकार के हैं।

हम अभी फिर चार्ट को देखेंगे। देखो ज्ञानावरण के आगे क्या लिखा है ? *श्रोता: पांच/* पांच। ये जो पांच प्रकार के ज्ञान हैं न, उनके आगे आवरण शब्द लगा देना। तो मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण, केवलज्ञानावरण ये अपने-अपने प्रतिपक्ष का घात करने में निमित्त हैं। मतिज्ञानावरण कर्म केवलज्ञान का घात करेगा कि नहीं करेगा ? उसके उदय में नहीं हो रहा है वह बात अलग है। केवलज्ञानावरण कर्म है वह किसको रोकेगा ? *श्रोता: केवलज्ञान को/* क्या वह मतिज्ञान को रोक सकता है ? *श्रोता: नहीं/* हमें आपको केवलज्ञानावरण का उदय है कि नहीं है ? *श्रोता: है/* फिर भी हमारा मति-श्रुतज्ञान प्रकट है, बात ख्याल में आती है न ? अपने-अपने प्रतिपक्ष के साथ उसका निमित्त बनता है। यहां दर्शनावरण में ९ नाम लिखे हैं; ९ में कौनसे हैं ? पांच प्रकार की निद्रा होती हैं- स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, निद्रा, प्रचला । ये क्रम से अति तीव्र से लेकर मंद उदयावली निद्रायें होती हैं। फिर दर्शनगुण की पर्याय याद करना- चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन उसके साथ आवरण शब्द लगाना है। निद्रा का उदय होता है या नहीं होता बस। जाग्रत अवस्था है तो निद्रा का उदय नहीं है और कभी-कभी निद्रा का उदय होगा। *श्रोता: पांचों का ?* पांचों निद्रा का उदय अट अ टाइम नहीं होता। किसी एक निद्रा का उदय अट अ टाइम होगा। अभी उसकी विशेषता में नहीं जायेंगे।

घातिकर्म की कुल प्रकृतियां कितनी हुयीं ? देखो, ज्ञानावरण की ५, दर्शनावरण की ९, दर्शनमोहनीय की ३। दर्शनमोहनीय में से मिथ्यात्व अनादि से बंधनेवाली प्रकृति है और जब पहली बार सम्यग्दर्शन होता है तब मिथ्यात्व प्रकृति में से उसका अनुभाग घटकर दो प्रकृतियां और तैयार होती हैं - एक सम्यग्मिथ्यात्व और एक सम्यक् प्रकृति। वे बंधनेवाली प्रकृतियां नहीं हैं। जब सम्यक्त्व प्राप्त होगा तो मिथ्यात्व प्रकृति में से सत्ता में तैयार हो जायेंगी। चारित्रमोहनीय की २५ हैं। ये २५ शॉर्ट में बताते हैं, आपने उनके नाम सुने भी होंगे। उसके ये भेद हैं क्रोध, मान, माया, लोभ। ये कर्मों के नाम हैं और

जीव के परिणामों के भी नाम हैं। इनकी चार अलग-अलग जातियां बतायी हैं। वे हैं अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन। हर एक के क्रोध, मान, माया, लोभ। ४ गुणा ४ ये सोलह हो गयी और नौ नोकषाय हैं। कौनसे ? हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद। ये सारी २५ हो गयी। यहां तक बात ख्याल में आयी ? जब जिसका प्रकरण आयेगा, इनके नाम आयेंगे तब हम आपको फिर याद दिलायेंगे। अंतराय की ५ प्रकृतियां कौनसी हैं ? दानांतराय, अंतराय शब्द लगाना। दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य ये जीव के गुण हैं, उनके साथ अंतराय शब्द लगा दो तो वे कर्मों के नाम हो जायेंगे। इसतरह से हमने ये सब किसके नाम देखे ? *श्रोता: घातिकर्मों के। घातिकर्मों के नाम देखे।*

अब चार्ट में दूसरी ओर अघातिकर्मों को देख लेते हैं। अघातिकर्मों में पहला नाम है वेदनीय; उसके दो भेद हैं - सातावेदनीय और असातावेदनीय। आयु के चार भेद हैं - चार प्रकार की आयु है, नरकायु, तिर्यचायु, मनुष्यायु और देवायु। ये आयुक्रम के नाम हैं। आयुक्रम अलग है और गति नामकर्म अलग है। गति यह नामकर्म का भेद है और आयुक्रम ये दोनों जुड़े हैं। आयुक्रम कभी-कभी बंधता है, परंतु बाकी सात कर्म हर समय बंधते हैं। नामकर्म की बहुत सारी प्रकृतियां हैं - ९३ हैं। उनमें शरीर नामकर्म में बंधन नामकर्म और संघात नामकर्म को मिला देते हैं तो ५ और ५ मिलकर १० प्रकृतियां कम हो जाती हैं। वर्ण, रस, गंध, स्पर्श नामकर्म के टोटल २० भेद हैं; उसके बदले केवल वर्णादि ४ कहते हैं तो वे १६ प्रकृतियां और कम हो जाती हैं। इसलिये कभी १४८ को गिनेंगे, कभी १२२ को गिनेंगे। उस अपेक्षा से यहां ब्रैकेट में अलग संख्या लिखी है। ये १२२ लिखी हैं परंतु उनमें बंध कितनी प्रकृतियों का होता है ? किशनजी आप बतायेंगे ? हमने अभी बताया था दो प्रकृतियां जो बंधती नहीं हैं, बाद में तैयार होती हैं। *श्रोता: सम्यक् प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व।* सम्यक् प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व ये बंधनेवाली प्रकृतियां नहीं हैं। तो बंधनेवाली कितनी हैं ? १२० प्रकृतियां बंधनेवाली हैं।

हमने नामकर्म के भेदों को छोड़ा था, उसको देखकर फिर आगे बढ़ेंगे। उसके पहले हम देखते हैं - कर्म में इतना सारा हिसाब है न और हम इनको बांध भी रहे हैं। तो कब बांधते हैं, क्या बांधते हैं, उसमें पुण्य कहां पड़ा है, पाप कहां पड़ा है उसकी भी चर्चा करेंगे। वहां ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय की टोटल कितनी प्रकृतियां लिखी हैं ? *श्रोता: फॉर्टी सेव्हन।* ४७, तो उनमें से पुण्य प्रकृतियां कितनी हैं

यह हमें निश्चित करना है। *श्रोता: सभी पापरूप है।* पीछे कोई कहेंगे ? मालूम नहीं ? सभी पापरूप हैं। *अन्य श्रोता: सत्रह बोल रहे हैं।* सत्रह ? नहीं-नहीं, सभी पापरूप हैं। क्या कहा ? घातिकर्म सभी ४७ प्रकृतियां पापरूप हैं यह निश्चित हुआ। अब अघातिकर्म में देखते हैं। अघातिकर्म चार हैं, हर एक में दो-दो भेद हैं। कौनसे ? उनमें से कुछ प्रशस्त जिनको हम पुण्यप्रकृतियां कहेंगे और दूसरी कौनसी हैं ? अप्रशस्त प्रकृतियां - पापप्रकृतियां। जैसे प्रशस्त में कौनसी हैं ? सातावेदनीय है, आयु में कौनसी हैं ? देवायु है, तिर्यचायु है, मनुष्यायु है। फिर नाम में हम उसको शुभ नामकर्म इतना ही कहेंगे और गोत्र में उच्चगोत्र शुभप्रकृति है। अब पापप्रकृति देखते हैं। अघातिकर्म की पापप्रकृतियां कौनसी हैं ? वेदनीय में ? *श्रोता: असातावेदनीय।* असातावेदनीय। आयु में ? *श्रोता: नरकायु।* नरकायु और नाम में ? *श्रोता: अशुभ नामकर्म।* अशुभ नामकर्म। और गोत्र में ? *श्रोता: नीचगोत्र।* नीचगोत्र। यहां तक समझ में आया ?

हमने आपको एक नियम बताया था, हर समय आठ कर्मों का उदय होता ही है। आयु का उदय चल रहा है कि नहीं चल रहा ? *श्रोता: चल रहा है।* कब खत्म होगा ? मनुष्यायु का उदय खत्म होगा मरण के समय पर। नेक्स्ट समय में क्या होगा ? नयी आयु का उदय चालू होगा। तो जीव को बीच में कुछ रेस्ट नहीं है। यह जीव लटकता रहता है, कहीं ढूँढ़ता फिरता है और कोई इधर चक्कर मारता है - कौन रो रहा है देख रहा है ऐसा कुछ नहीं होता है। मनुष्यायु का यहां उदय समाप्त होते ही इमीजिएट नेक्स्ट समय में दूसरी नयी आयु का उदय चालू हो जाता है। गति का भी उदय चालू हो जाता है, सब कुछ ऑटोमैटिक चालू हो जाता है। चिंता करने की जरूरत नहीं है क्योंकि हर समय हम परिणाम कर रहे हैं, कर्म बांध रहे हैं, वह सारा ऑटोमैटिक रिझर्वेशन कर रहे हैं। कहां का ? आगामी भव का, आप यहां देवलाली में आये हैं - कोई दिल्ली से आये, कोई अमेरिका से आये, कोई बहनें लंदन से आयी हैं। तो आने से पहले क्या-क्या सोचना पड़ा ? रिझर्वेशन करना है, पासपोर्ट बराबर है कि नहीं देखना है। क्यों सूर्याबहन, देखा कि नहीं देखा ? यहां आना है तो कहां रुकना है, पहले मुंबई में आना है, फिर देवलाली में आना है। कितनी-कितनी व्यवस्था करनी पड़ी उनको ! यहां हमें परभव में जाने के पहले कितनी व्यवस्था करनी पड़ती है ? सब कुछ ऑटोमैटिक हो जाता है और उसका हिसाब रखनेवाला कोई नहीं है।

देखो, अभी प्रश्न क्या था ? उदय आठ कर्मों का चल रहा है और बंध कितने

कर्मों का कर रहे हैं ? श्रोता: सात या आठ। सात या आठ। आयु कभी-कभी बंधती है। मान लेते हैं आयु बंधने के समय की बात करेंगे तो आठ कर्मों का उदय चल रहा है, आठ कर्मों का बंध चल रहा है। तो जीव क्या कर रहा है ? शुभभाव कर रहा है या अशुभभाव कर रहा है ? अभी सुबह हमने विधान किया, फिर यहां गुरुदेवश्री का प्रवचन सुना, अभी हम यहां स्वाध्याय कर रहे हैं। यह पाप कर रहे हैं कि पुण्य यानी शुभभाव कर रहे हैं ? यह तय करो। श्रोता: शुभभाव। शुभभाव कर रहे हैं तो शुभभाव करने में कर्म कितने बंध रहे हैं ? आठ। अभी हम आठ को लेकर चल रहे, आठों कर्म बंध रहे हैं कि नहीं ? शुभभाव के काल में आठ कर्म बंध रहे हैं, आयु भी बंध रही है यह मान लेते हैं। आयु कभी भी बंधती है तो अंतर्मुहूर्त तक बंधती है। ठीक है, आयु को छोड़ो या ले लो, तो घाति और अघाति दोनों बंध रहे कि नहीं बंध रहे हैं ? श्रोता: बंध रहे हैं/घाति तो बंध रहे हैं न ? देखो, हम कर रहे हैं शुभभाव, यहां पांच दिन लगातार रोज ६-६ घंटे स्वाध्याय चलेगा। इतना सब शुभभाव करेंगे तो ज्ञानावरणादि चार घातिकर्म बंधेंगे कि नहीं बंधेंगे ? श्रोता: बंधेंगे। उनमें से कितने पुण्यरूप हैं ? श्रोता: सब पापरूप हैं। और अघाति में ? श्रोता: पुण्य और पाप दोनों हैं।

मान लेते हैं पुण्य बंध रहा है। लगातार ६ घंटे किसीको नहीं बंधता, अंतर्मुहूर्त से ज्यादा पुण्य भी नहीं बंधता, पाप भी नहीं बंधता। अंतर्मुहूर्त उसकी लिमिट है, फिर भी हम मानकर चलते हैं। अभी पाप तो बंधा ही बंधा है, पाप तो नियम से बंधेगा ही। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय का डायरेक्ट जीव से निमित्तपना बनता है क्योंकि वे जीव के गुणों का घात कर रहे हैं। उनको जीवविपाकी कर्म कहते हैं, उनका फल जीव को डायरेक्ट मिलेगा। बाकी अघातिकर्म हैं उनमें भी जीवविपाकी कुछ हैं परंतु अधिकतर पुद्गलविपाकी हैं। उनका फल शरीर, वाणी आदिरूप पुद्गल में, संयोगों में मिलता है। शरीर के वर्ण, गंध, रस, स्पर्श में मिलता है। अभी शरीर का वजन कितना हल्का होगा, भारी होगा उसमें उसका फल मिलता है। अलग-अलग संहनन - हड्डी कैसे होगी, आकार यानी संस्थान कैसे होगा; कलर कैसे होगा उन सबमें वे कर्म निमित्त हैं। आपके डीएनए वगैरह हैं न, वह सारा कर्मों में पड़ा है। डोंट वरी, आप सायन्स में जीन्स कहते हैं वह सब उसके अंदर आते हैं। तो कहते हैं कि उनका निमित्तपना जो बनेगा पुद्गल के साथ बनेगा।

देखो, पुण्य प्रकृति कहां बंधी ? श्रोता: अघाति में। अघाति में बंधी, घाति तो

सभी पापरूप ही हैं। घाति तो बंधेगी ही, अब अघाति में क्या-क्या बंधा ? मान लेते हैं पुण्य बंधा। यदि पाप करते हैं तो ? घाति भी पापरूप हैं और अघाति भी पापरूप बंधेगी। पाप प्रकृतियों का फल तो जीव को डायरेक्ट मिलना है। हमने इतना पुण्य कमाया उसका फल किसको मिलेगा ? *श्रोता: संयोगों में/* संयोगों में, शरीर में। जीव को क्या मिला ? उलटा संयोगों में जो कुछ मिला न, पैसा मिला मान लेते हैं, अनुकूलतायें मिलीं उनको देख-देखकर जीव अभिमान करता है, देखो गुरुदेवश्री की भाषा में सुनना है ? पूर्व के पुण्य के उदय में पैसा मिला और पैसा परिग्रह है, इसलिये पूर्व का पुण्य खर्चा किया और पाप इकट्ठा किया। सुनना गुरुदेवश्री के प्रवचन में कितनी बार आया है। हमारे दैनिक स्वाध्याय में नियमसार के प्रवचन 'कारण-कार्य नियम' का सातवां भाग अभी चल रहा है - उसमें बहुत लेक्चरों में आया है। तो यहां जीव को मिला क्या ? हम क्या कर रहे हैं, उसका फल क्या मिल रहा है ? इसमें से छूटेंगे कैसे ? कुछ विचार ही नहीं करते। आप पैसा कमाती हो बेन ? हमारे खाते में जमा करती हो क्या ? नहीं, मम्मी के खाते में जमा करती हो ? अपना खाता जुदा है, पापा का खाता जुदा है और यहां ? यहां पता ही नहीं न क्या हो रहा है ? किसके खाते में क्या हो रहा है ? कितना नुकसान हो रहा है ? हम पुण्य कमाते हैं कि पाप कमाते हैं, इसका कोई हिसाब ही हमें मालूम नहीं है कि कहां क्या हो रहा है। हमें इसका ज्ञान हो जावे तो हम कहां हैं, क्या कर रहे हैं इसका थोड़ा अंदाजा तो आ जाये।

हम क्या मानते हैं ? नहीं-नहीं, हमने पहले इतना पाप किया था, अभी थोड़ा पुण्य करेंगे तो नलीफाय हो जायेगा। बचपन में मेरी ऐसी ही मान्यता थी। क्या ? इतना पाप हुआ है, थोड़ा पुण्य करेंगे तो प्लस-मायनस ईकल हो जायेगा क्योंकि हम स्कूल में गणित सीखते थे न। तो हम प्लस-मायनस करके कितना रह गया इसका हिसाब लगाते थे। यहां ऐसा कोई प्लस-मायनस होनेवाला नहीं। पुण्य किया है, पुण्य भी भोगना पड़ेगा। आप कहेंगे भोगना पड़ेगा, उसमें क्या बात है ? हम भोगेंगे न खुशी से ! परंतु जिसे पुण्य के उदय में गुदगुदी हो रही है न, यह उसकी बंधतत्त्व संबंधी भूल है। उसने मोक्ष को अच्छा नहीं माना, बंध को अच्छा माना है। पुण्य और पाप नलीफाय नहीं होते, ईकलाइज नहीं होते। वे सारे उदयरूप होकर खिर जाते हैं, वे उदयरूप होकर ही नष्ट होते हैं। हां, उनके उदय का फल नहीं भोगना है न, तो एक ट्रिक्स है।

हमारे पास बहुत सारी ट्रिक्स हैं, आप हमें पूछो आपको क्या करना है ? यहां से

कहां जाना है ? *श्रोता: महाविदेह।* महाविदेह, किसके पास ? *श्रोता: सीमंधर।* सीमंधर। दूसरे भगवान नहीं चलेंगे ? बाकी उन्नीस हमारा कल्याण नहीं करेंगे ? हमने हमारा निमित्त निश्चित कर दिया है। यह निमित्ताधीन दृष्टि है। यहां से मनुष्य में से मरकर मनुष्य में जन्म लेने के लिये मिथ्यादृष्टि रहना पड़ेगा। मिथ्यादृष्टि मनुष्य ही मनुष्यायु बांधेगा। हां, सम्यग्दृष्टि देव मनुष्यायु बांधेगा उसमें कोई नवाई नहीं है। परंतु यहां जो फिर मनुष्यायु चाहते हैं उसका अर्थ क्या है ? वे मिथ्यादृष्टि रहना चाहते हैं। हमारे महाराष्ट्र में स्त्रियां कहती हैं सात जन्म यही पति मिले। यानी वह भी महिला ही बनी रहना चाहती है और उसके पति को भी - दोनों को ही मिथ्यादृष्टि रखना चाहती हैं। मनुष्य से मनुष्यायु बांधना चाहते हैं न ? हम तो विदेह में जाना चाहते हैं यानी वहां का मनुष्य बनना चाहते हैं। यानी हम यहां सम्यक्त्व नहीं प्राप्त करना चाहते, यह डिक्लेअर किया न हमने ? मालूम ही नहीं है न, कि कौनसे जीव, कौनसी अवस्था में, कौनसे कर्म बांधते हैं ? किसका उदय हो सकता है, नहीं हो सकता है ? ये सारे नियम हैं। थोड़े नियम जानना आवश्यक है। आपको मेडिसिन का पूरा नॉलेज नहीं है, आपने पूरी डॉक्टरी नहीं पढ़ी है परंतु डॉक्टर के पास जाकर आप सलाह तो ले सकते हैं कि नहीं ले सकते ? हमारे डॉक्टर कौन हैं ? हमारे आचार्य हैं। हम उनसे सलाह तो कर सकेंगे कि हमें कल्याण करना है तो क्या उपाय है ? उसके लिये कर्म की थिअरी कर्म को जानने के लिये नहीं कर रहे हैं, हमारा कल्याण करने के लिये इसकी बात देख रहे हैं।

हमने कर्मप्रकृति के १४८ भेद देखे थे। कर्मबंध होता है तो क्या होता है इसको भी जरा देख लेते हैं। इसमें से छूटने का कोई मार्ग होगा कि नहीं होगा ? हमने पूजायें तो बहुत की। अष्टकर्म दहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा - कितनी बार किया ? क्यों अशोकजी, कितना धूप खेया ? हम पूछते हैं धूप खेने से हमें क्या मिला ? कितने कर्म नष्ट हो गये ? हमारे यहां स्वाध्याय में एक बहन आती है, श्वेतांबर पंथ में से है, वह कहती है हमारे यहां तो केवल अंतराय कर्म और वेदनीय कर्म की पूजा कराते हैं। *श्रोता: हां।* वह भी असातावेदनीय की करते हैं और किसकी ? *श्रोता: अंतराय।* अंतराय की भी, हां, क्या करते हैं आप ? *श्रोता: हम फोन करते हैं और पैसा भेजते हैं तो हमारे गांव में वहां कोई पुजारी होते हैं, वे वहां पूजा कराते हैं।* किसकी ? *श्रोता: वेदनीय की। हमने आज तक ऐसा ही किया है।* क्या करें ? यह मान्यता में मिथ्यात्व पड़ा हुआ है।

आपके पास पंचलब्धि पुस्तक अभी आयी है न, उसमें से दिखाते हैं क्योंकि

आप कहेंगे आप खाली पढ़ रहे हैं और कहां से क्या हो रहा है पता नहीं है। पहले नौ नंबर का पेज निकालना। हमारी ये बात हुयी है, फिर भी हम देखते हैं। देखो, यहां से दूसरा पॅरेग्राफ है, मैं हिंदी में बता रही हूं, किसीके पास गुजराती पुस्तक है तो उसमें देख लेना। **प्रत्येक जीव अनादि से ही कर्म से बद्ध - बंधी हुयी अवस्था में पाया जाता है। ऐसा कभी नहीं होता कि जीव पहले शुद्ध था और बाद में उसने कर्मों को बांधा हो। जिसतरह** इसके लिये उदाहरण क्या दिया ? सोना जो स्वर्णपाषाणरूप से खदान में मिलता है, वह प्युअर फॉर्म में नहीं होता है, वह मिट्टी से मिली-जुली अवस्था में होता है। बाद में उसके ऊपर प्रोसेस करके उसको तपाते हैं, उसमें से शुद्ध सोना अलग निकालते हैं, मिट्टी वगैरह नष्ट हो जाती है। ऐसे ही **जीव और कर्म अनादि से ही एक दूसरे से बद्ध अवस्था में पाये जाते हैं। फिर भी दोनों द्रव्यों का अस्तित्व भिन्न ही रहता है।**

अस्तित्व क्यों भिन्न रहता है ? आपने सबने आज सुबह ही सुना। *श्रोता: सत्ता, द्रव्य।* सत्ता ही द्रव्य का लक्षण है। मैं जीवद्रव्य हूं तो मेरी सत्ता मेरे में, मेरे कारण है। मेरी सत्ता के लिये किसी परद्रव्य की आवश्यकता नहीं है। लोग क्या समझते हैं ? अरे, जीव को रहने के लिये शरीर चाहिये कि नहीं चाहिये ? बोलो ? *श्रोता: नहीं चाहिये।* नहीं चाहिये और अन्न, पानी, हवा सब चाहिये कि नहीं चाहिये ? तो कहते हैं कि एक द्रव्य की सत्ता के लिये दूसरे द्रव्य से कुछ लेना-देना नहीं है। प्रत्येक द्रव्य की सत्ता अपने से है, है न ? सत्ता भी अपने से है, उसका परिणमन भी अपने से है। उसको परिणमन के लिये दूसरे द्रव्य की कोई आवश्यकता नहीं है। हमें मोक्ष प्राप्त करने के लिये तो कोई चाहिये न ? सच्चे देव, गुरु, शास्त्र तो चाहिये न ? बोलो ? *श्रोता: नहीं।* नहीं चाहिये। नहीं चाहियेवाली आवाज नहीं उठती। देखो, निमित्त होता है और हम देशनालब्धि में उसको देखेंगे भी, उसके बिना नहीं होता ऐसा भी कहेंगे। फिर भी वह निमित्त के कारण नहीं होता। निमित्त के रहते हुये निमित्त से परद्रव्य में कुछ नहीं होता यह पहले में पहले निश्चित करना है। ये जो सारे सिद्धान्त हैं न उनको लेकर हमें आगे चलना है। निमित्त का निषेध नहीं है, निमित्त से परद्रव्य में कुछ कार्य होता है इस मान्यता का निषेध है। निमित्त तो होता ही है परंतु फिर भी कार्य होता है उपादान से - द्रव्य की अपनी योग्यता से, जीव की कहो या पुद्गल की कहो। प्रत्येक द्रव्य स्वयं में रहते हुये अपने से परिणमित होता है यह पहले में पहले निश्चित करना है और द्रव्यानुयोग के

इस सिद्धान्त को ख्याल में रखकर हमें आगे बढ़ना है।

देखो यहां क्या कहते हैं- **दोनों द्रव्यों का अस्तित्व भिन्न ही रहता है। तुम तो जानती ही हो कि कर्म पुद्गलद्रव्य है**, क्यों ? वह कार्माणवर्गणा से बना हुआ है और कार्माणवर्गणा नामक पुद्गल स्कंधों से वह बना हुआ है। कर्म बांधना अर्थात् कर्म का बंध होना। जीव स्वयं, स्वयं में, स्वयं की योग्यता से मोह-रागद्वेषरूप परिणमन करता है, उस समय कार्माणवर्गणा, कौनसी ? उसी क्षेत्र में स्थित कार्माणवर्गणा, लिखा नहीं है परंतु समझना। उसी जीवप्रदेशों में - वहां के आकाशप्रदेशों में कार्माणवर्गणा पड़ी हैं यहां उनकी बात है। स्वयं; कौन स्वयं ? कार्माणवर्गणा स्वयं; स्वयं की योग्यता से कर्मरूप अवस्था धारण करती हैं और उनका जीव के साथ संश्लेष संबंध होता है। संश्लेष क्या होता है ? नहीं समझे ? जैसे आपने सुबह स्वेटर पहना था। दोपहर में जरा गर्मी हो गयी तो निकालकर रूम में छोड़कर आ गये। आपके साथ उसका संयोग हुआ था परंतु आपने उसको छोड़ा। कुछ गहनें पहने हैं तो छोड़कर आये। अरे, शरीर की भी बात है, शरीर तो इस भव में संयोग में है उसे यहां छोड़कर चले जायेंगे, परभव में दूसरा शरीर धारण करेंगे। कर्मों के साथ कैसा संबंध है ? संश्लेष संबंध है। आप दिल्ली से आये तो कर्म वहां छोड़कर आये कि साथ में लेकर आये ? श्रोता: लेकर आये। आप नहीं लाये हो, कर्म अपनी योग्यता से आये परंतु हम कहेंगे जहां जीव है वहां उसका कर्म है। तो उसके साथ कैसा बंध हुआ है ? जब तक कर्म उदय में आकर निकल नहीं जाता है, खिर नहीं जाता है तब तक उसके साथ जो संबंध बना है, उसको कहेंगे संश्लेष संबंध है।

देखो, एक बात ख्याल में रखना- जो कार्माणवर्गणा कर्मरूप होती हैं न, वे मात्र जीव के प्रदेशों में स्थित हैं वे ही कर्मरूप होती हैं। परंतु जिस समय कर्म का उदय होकर कर्म परमाणु छूट जाते हैं वे लोक के किसी भी कोने में जा पहुंचते हैं, भले वे शरीर के परमाणु हो या कर्म के परमाणु। बंध के समय वे बाहर से आते हैं ऐसा नहीं है। उसी क्षेत्र में स्थित कार्माणवर्गणा कर्मरूप होती हैं, परंतु छूटते समय कुछ कर्म परमाणु उधर ही रह सकते हैं या पूरे लोक में कहीं पर भी जा सकते हैं। तो देखो **संश्लेष संबंध होता है अर्थात् जीव के असंख्यात प्रदेशों में**; हमने देखा है कि प्रत्येक द्रव्य का कितना क्षेत्र होता है। हमने सुना है, समझा है, तो जीव के असंख्यात प्रदेशों में कर्म का जीव के साथ कैसा संबंध है ? श्रोता: एकक्षेत्रावगाह। एकक्षेत्रावगाह।

यानी क्या है ? जीव के जितने प्रदेश हैं, उनमें वे पूरे युनिफॉर्मली सर्वत्र स्प्रेड हो जाते हैं। बाद में हम आपको स्थिति की निषेक रचना वगैरह बतायेंगे। कोई ७००० वर्ष के बाद उदय में आनेवाला है, कोई ७० कोड़ाकोड़ी सागर के बाद, परंतु कर्म कोई निषेक यानी कतार में खड़े नहीं हैं। वे सारे जहां-वहां फैले हुये हैं क्योंकि इतने अनंतानंत हैं और जीव का आकार तो इतनासा है।

जैसे आपने सुना होगा निगोद का आकार कितना है ? वह आंखों से दिखायी भी नहीं देगा। अरे, मायक्रोस्कोप से भी नहीं दिखेगा। निगोद का शरीर इतना छोटा है और एक शरीर में जीव कितने हैं ? *श्रोता: अनंत।* अनंत और वे अनंतों के सब कर्म भी एक ही हो गये न ? *श्रोता: नहीं, अलग हैं।* हर एक के कर्म अलग हैं, वे कितने क्षेत्र में से नया कर्म धारण करेंगे ? उतने ही क्षेत्र में से। तो उसमें कितने अनंतानंत होंगे ? प्रत्येक समय में उतने ही क्षेत्र में से वे अनंत जीव अपना-अपना नया कर्म ग्रहण करते हैं क्योंकि अनंत जीवों के अपने-अपने परिणाम जुड़े, वहां अनंत जीवों का अपना-अपना कर्मग्रहण जुदा। वे मरेंगे तो अनंतों के अलग-अलग कर्म उनके साथ जायेंगे, वे अपना-अपना कर्म लेकर वहां से निकलेंगे। इससे परमाणु की अनंतता ख्याल में आती है न ? देखो, उसकी अनंतता नहीं, वह जाननेवाले हम हैं, यह हमारे ज्ञान की अधिकता है। हमें तो दूसरों की अधिकता लगती है परंतु बारंबार अपने ज्ञान पर, अपने स्वभाव पर चले जाना। तो कहते हैं कि **जीव के असंख्यात प्रदेशों में यह कर्म एकक्षेत्रावगाह संबंध से रहता है।** यानी जीव के असंख्यात प्रदेशों में कर्म फैले हुये हैं उसको क्या कहेंगे ? एकक्षेत्रावगाह संबंध।

विवक्षित काल के बाद कर्म फिर से अकर्मरूप होता है, जिसको हम कहेंगे उसकी स्थिति पूरी हुयी और वे परमाणु उदय में आकर खिर गये। प्रत्येक कर्म परमाणु में निश्चित है कि वह कितने काल के बाद खिर जायेगा। उसको कहेंगे कर्म का उदय हुआ अथवा उसका दूसरा नाम क्या है ? निर्जरा हुयी। परंतु यह निर्जरा मोक्षमार्गवाली निर्जरा नहीं है। हर समय में जो परमाणु उदयरूप होकर खिर जाते हैं उसको भी निर्जरा कहेंगे, परंतु हम जिसको संवर-निर्जरावाली निर्जरा कहते हैं वह यह नहीं, इसको हम उदय नाम ही रखेंगे। यह सामान्य निर्जरा है। देखो नीचे- **कर्म के उदय के समय कर्म का फल मिलता है। उस फल में जीव इष्ट-अनिष्टपना की कल्पना करके;** क्या करते हैं ? कर्मों का उदय तो हर समय चल रहा है और वह जीव के

खयाल में भी आता है। उसको जो कोई संयोग मिल रहे हैं, जो कोई रागद्वेष के परिणाम हो रहे हैं, जो कोई शरीर की रचना हुयी है उसके खयाल में तो सब आ रहा है। भले ही उसको मालूम नहीं है कि यह कर्म के उदय का फल है, परंतु उसको जानने में तो आ रहा है। जानने में आ रहा है तो उसकी अज्ञानता क्या चल रही है ? यह शरीर मैं हूं, ये मेरे इष्ट हैं और ये मेरे लिये अनिष्ट हैं। तो उसमें क्या होता है ? मोह-रागद्वेष के परिणाम चलते रहते हैं। उससे और क्या होता है ? नये कर्म और बंधते हैं। यानी जब तक मिथ्यात्व है तब तक यही चलेगा जिसको हम रहट कहते हैं - रेंट, क्या कहते हैं ? *श्रोता*: रेंट। रेंट, मराठी में कहते हैं रहाटगाडगं, नहीं समझे ? उसके जो छोटे-छोटे लोटे होते हैं न, ऐसे घूमते रहते हैं। कुए में नीचे जाते हैं, पानी भरकर आते हैं, ऊपर फिर उलटे होते हैं। हमारा भी अनादि से ऐसा ही चल रहा है। हम कर्म बांधते रहते हैं, उसके फल भोगते हैं, फिर नये कर्म बांधते हैं - वही चल रहा है। तो कहते हैं कि नित्य नया कर्म बंधता रहता है। अभी यह बाद की बात पढ़ लेना।

आगे आते हैं पृष्ठ ११, दूसरा पॅरेग्राफ- यहां कर्मप्रकृतियों के नाम बताये हैं। सामान्यपने हम कहते हैं कि कर्म बंधा या कर्म उदय में आया परंतु उन कर्मों की विभिन्न आठ जाति हैं, उनके स्वभाव अर्थात् प्रकृति, हम कहेंगे यह गरम मिजाज़ का है; उसकी प्रकृति कैसी है ? गरम है, क्यों मनीषाबहन ? प्रकृति यानी स्वभाव, प्रत्येक कर्म की अपनी-अपनी जो फलदान शक्ति है - जो जैसी है उसको स्वभाव या प्रकृति कहते हैं। अर्थात् कार्य भिन्न-भिन्न है उसको कर्मप्रकृति कहते हैं। इन आठ कर्मप्रकृतियों को मूलप्रकृति कहते हैं। हमने इनके नाम अभी देखे थे, फिर यहां से पढ़ रहे हैं- (१) ज्ञानावरण (२) दर्शनावरण (३) मोहनीय (४) अंतराय (५) वेदनीय (६) आयु (७) नाम (८) गोत्र। इन्हींको हमने दो में विभाजित किया था, कौनसे दो ? *श्रोता*: घाति और अघाति। घाति और अघाति, यहां तक बात हो गयी। उसके बाद स्वभाव के अनुसार इनकी चर्चा यहां लिखी है, वह हमने कर दी है।

ज्ञानावरण का अर्थ क्या होता है ? **ज्ञान पर आवरण**। यानी वह आत्मा का घात करता है, गुणों का घात करता है कथन आता है परंतु ज्ञान की हीनता होती है। देखो, हम कर्मों की भाषा में बोलेंगे, कर्मों की बातें बतायेंगे। परंतु सर्वत्र यह बात सुनिश्चित करनी है कि जीव की जो ज्ञान की हीन अवस्था हो रही है, वह उसके अपने कारण हो रही है और ज्ञान का यहां विकास हो रहा है वह किसके कारण ? *श्रोता*:

अपने कारण। अपने ही कारण। वहां सामने निमित्त होंगे, जैसे अभी हम पांच लब्धि के बारे में कुछ नहीं जानते थे फिर हमने लब्धिसार से अभ्यास किया, तो कुछ-कुछ बातें समझ में आने लगी। पहले नहीं जानते थे, अभी जानने लगे - किसके कारण ? **श्रोता: ज्ञान।** अपने ज्ञान के कारण। ख्याल में आया ? सामने निमित्त होता है परंतु निमित्त दूसरे की पर्याय में कुछ नहीं करता है पहले यह नक्की करो। फिर भी हम उन कर्मों का यहां ज्ञान करायेंगे। क्यों ? क्योंकि सम्यग्दर्शन होता है तो इन कर्मों में क्या-क्या परिवर्तन होते हैं, वे सब बातें हमें ख्याल में आती हैं।

अभी थोड़ा आगे बढ़ते हैं क्योंकि जो कठिन विषय है न उसको हम थोड़ा समझना चाहते हैं। आगे पृष्ठ १५ - हमने सबके नाम भी देख लिये थे। देखो, जहां **ज्ञानावरण कर्म की पांच उत्तरप्रकृति** लिखी हैं वहां से देखना। उनके नाम क्या है ? (१) मतिज्ञानावरण (२) श्रुतज्ञानावरण (३) अवधिज्ञानावरण (४) मनःपर्ययज्ञानावरण और (५) केवलज्ञानावरण। अब नीचे दर्शनावरण के ९ नाम देखते हैं। पहले में पहले हमने ५ निद्रायें देखी थी (१) स्त्यानगृद्धि (२) निद्रा-निद्रा (३) प्रचला-प्रचला (४) निद्रा और (५) प्रचला। फिर हमें ४ दर्शन मालूम हैं उनके आगे आवरण शब्द जोड़ा (६) चक्षुदर्शनावरण (७) अचक्षुदर्शनावरण (८) अवधिदर्शनावरण (९) केवलदर्शनावरण। यहां तक बात समझ में आयी ?

निद्रा के उदय में क्या-क्या होता है ? **स्त्यानगृद्धि दर्शनावरण कर्म के उदय में जीव को गाढ़ निद्रा आती है, जगाने पर भी नहीं उठता, सोते रहता है। नींद में अनेक कार्य करता है।** आपने सुना होगा नींद में उठकर वह ताला खोलकर घर के बाहर भी चला जाता है, ऐसे भी होते हैं। सुने होंगे आपने ? **श्रोता: देखे भी।** देखे भी हैं, अच्छा। **निद्रा-निद्रा कर्म के उदय में क्या होता है ? आंखें खोलने में असमर्थ रहता है** यानी वह नींद की गहराई बतायी। नींद की टॉप मोस्ट गहराई का नाम है स्त्यानगृद्धि - जीव नींद में कुछ काम करता है फिर भी उसको कुछ पता नहीं चलता है। **प्रचला-प्रचला कर्म के उदय में नींद में मुंह से लार बहती है, हाथ पैर हिलते हैं। निद्रा कर्म के उदय में चलनेवाला खड़ा रहता है, खड़ा था वह बैठता है या लेट जाता है। मद, खेद खेद यानी श्रम आदि मिटाने के लिये वह सोता है। प्रचला कर्म के उदय में जीव आधा-अधूरा सोता है, सोते हुये भी थोड़ा-थोड़ा जानता है।** देखो, मैं कहती हूं अभी सो लो अच्छी तरह से, स्वाध्याय में नहीं हां, क्योंकि यहां से आप सब

पुण्य करके देव में जानेवाले हैं। वहां ना स्त्यानगृद्धि का उदय होता है, ना निद्रा-निद्रा का उदय होता है, ना प्रचला-प्रचला का उदय होता है। तो नींद का सुख यहीं भोग लो। ना देवों में इनका उदय होता है, ना नारकियों में होता है और ना किसी अपर्याप्त अवस्था में होता है। इन्द्रियपर्याप्ति पूरी होने पर ही इनका उदय शुरू हो सकता है। बाकी निद्रा, प्रचला का उदय सबको रह सकता है।

अब आगे बढ़ते हैं। हमने **मोहनीय कर्म के कौनसे दो प्रकार** देखे ? **दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। उनमें दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृति** देखी। देखो, इन तीन प्रकृतियों का नाम बहुत बार आनेवाला है, जब सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है तो इनमें क्या-क्या बातें होती हैं उसे हम आगे देखेंगे इसलिये अभी हम इनसे परिचित हो जाते हैं। **(१) मिथ्यात्व (२) सम्यग्मिथ्यात्व (३) सम्यक् प्रकृति।** अनादि से ही जीव मिथ्यादृष्टि यानी की अज्ञानी है। उसको अपने स्वरूप की पहचान नहीं है। मिथ्यात्व कर्म का उदय ही हर समय चल रहा है और वह हर समय मिथ्यात्व कर्म बांध भी रहा है। जब तक ऐसी बात हो रही है तब तक उसको सम्यग्दर्शन नहीं है। हर समय कर्म बांधते आ रहे हैं न अनादि से ? तो हर समय पुराने कर्मों का उदय चलेगा की नहीं चलेगा ? *श्रोता: चलेगा।* उदय चलेगा तो मिथ्यात्व भी होगा और नया बंध होगा कि नहीं होगा ? *श्रोता: होगा।* होगा। तो उसमें से छूटने का मार्ग क्या है ? उदय है तो बंध है, बंध है तो फिर उदय होगा वह चक्र चलता जायेगा। तो इसमें क्या होना चाहिये कि जो उदय हो रहा था न, कैसे भी करके उसको थोड़ा रोकना पड़ेगा। उदय रुक जायेगा तो यहां जीव मिथ्यात्व नहीं करेगा तो उसको सम्यक्त्व का चान्स है। इसके लिये क्या होता है, कैसे होता है उसकी चर्चा हम पंचलब्धि के प्रकरण में करेंगे।

चारित्रमोहनीय कर्म की पच्चीस उत्तरप्रकृति हैं। हमने अभी उनके नाम भी देखे हैं। अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन हर एक के क्रोध, मान, माया, लोभ। देखो, एक विशेषता है, अभी मिथ्यात्व अवस्था की बात करते हैं। जीव क्रोध कर रहा है तो कौनसा क्रोध कर रहा है ? अनंतानुबंधी का या अप्रत्याख्यानावरणवाला ? *श्रोता: चारों का।* क्रोध कर रहा है तो अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन चारों क्रोध का उदय चल रहा है, परंतु बंध किसका कर रहा है ? *श्रोता: अनंतानुबंधी आदि।* ४ गुणा ४ का यानी १६ का। यानी कर रहा है क्रोध और बांध रहा है क्रोध, मान, माया, लोभ यानी १६ प्रकृतियां बांध रहा

है। लोभ करते समय भी १६ बंध रही हैं, मान करते समय भी १६ बंध रही हैं। मिथ्यादृष्टि की बात कर रहे हैं। कौनसा कषाय करना अच्छा है ? श्रोता: कोई भी नहीं।

हम तो लेबल लगाते हैं - यह बहुत क्रोधी है, यह बहुत लोभी है। अरे, किसीको कायम क्रोध नहीं होता है। क्रोध, मान, माया, लोभ की लिमिट है - किसी भी कषाय का उदय अंतर्मुहूर्त से अधिक नहीं चलता और वह नियम से चारों में से पलट-पलटकर होता ही होता है। हां, कभी क्रोध की हीनाधिक मात्रा बाहर से दिखती है उसकी बात अलग है, परंतु सब जीवों को क्रोध, मान, माया, लोभ चारों पलट-पलटकर होते ही हैं। भले ही वह देवगति का जीव हो, नारकी हो, मनुष्य हो या तिर्यच हो - सबके क्रोध, मान, माया, लोभ चारों में से कोई न कोई कषाय होते रहते हैं। परंतु अंत अ टाइम बंधेंगे सबके सब । वहां १६ का बंध होगा। अब अंतराय की पांच प्रकृति कौनसी-कौनसी हैं ? श्रोता: दानांतराय...। (१) दानांतराय (२) लाभांतराय (३) भोगांतराय (४) उपभोगांतराय (५) वीर्यांतराय।

वेदनीय कर्म की दो उत्तरप्रकृति हैं (१) सातावेदनीय और (२) असातावेदनीय। देखो, साता-असाता में क्या होता है कि जीव किसी संयोग का लक्ष करके उसमें सुख या दुःख मानता है; अभी ठंड का मौसम है और यह पंखा चल रहा है तो असाता का उदय है कि साता का ? श्रोता: असाता का। पंखे का चलना ठंडी में असाता का उदय हो गया और गर्मी में पंखे का चलना ? श्रोता: साता का। साता का उदय ? तो पंखे को क्या करना चाहिये ? मेरा प्रश्न है पंखे का चलना किस कर्म के उदय से हो रहा है ? बोलो धवल ? हुबली से आये हो न ? पंखे का घूमना कौनसे कर्म के उदय में हो रहा है ? श्रोता: कर्म के उदय में नहीं, वह अपनेआप.. हां अपनेआप। देखो, पुद्गल के किसी भी कार्य के लिये जीव का कोई निमित्त नहीं है। नहीं समझे ? जीव की अवस्था में पुद्गल का निमित्त बनेगा, परंतु पुद्गल की किसी अवस्था में जीव का कोई निमित्त नहीं कहा है। शास्त्र में पुद्गल को कालकरण कहा है। याद है ? इसी पंचास्तिकाय में बात आयी थी। कालकरण यानी उसके लिये कालद्रव्य निमित्त है। जीव को निमित्तपने में भी नहीं लिया और हमें लगता है घर के सारे पुद्गलों के कार्य हम ही करते हैं। नहीं समझे ?

रोटी बनाते हैं। श्रोता: खाकरा। खाकरा, अच्छा। जब तक हम घर की चीजें

बराबर रख नहीं देते, उसको कोई उठाता नहीं है। तो हमने क्या माना है ? वह सारा कार्य हम कर रहे हैं। यहां क्या हो रहा है ? देखो, साता के उदय में जीव संयोगों का लक्ष करके उसमें इष्टपने की कल्पना करके उसमें सुख मानता है क्योंकि उसका मोह है न ? मोही जीव को ही साता-असाता के उदय में सुख-दुःख होगा। अरिहंत भगवान को सभी पदार्थ ज्ञान में आ रहे हैं। उनके कौनसे पदार्थों को देखकर सातारूप उदय हो रहा है ? अरे वे तो आत्मिक अनंतसुख का वेदन कर रहे हैं। वहां साता और असाता सत्ता में पड़ा है न, पूर्व में बंधा हुआ, वह धूल जैसे पड़ा है। उसके उदय में कोई सुख-दुःख की बात उनके नहीं हो रही है यह बात यहां बता रहे हैं। हम किसी चीज को विषय करके, उसमें सुख-दुःख की कल्पनायें करते हैं। नहीं समझे ? जहां मिथ्यात्व, अज्ञान पड़ा है वहां मोही जीव को पदार्थ इष्ट-अनिष्ट भासित हो रहे हैं कि ये मेरे लिये अच्छे हैं, ये मेरे लिये बुरे हैं। मोही जीव ये कल्पनायें करता है।

देखो, यह जीव की सृष्टि है; हमने सहजानंद वर्णीजी की 'सुख यहां' पुस्तक पढ़ी है। उसमें आया है कि जीव का संसार कितना है ? अन्यमती मानते हैं कि ईश्वर ने सृष्टि की उत्पत्ति की। यह तो स्वयं ईश्वर है, उसने क्या किया ? उसने सृष्टि उत्पन्न की; कौनसी ? अपने विकल्पों की। उसका संसार कितना है ? जितना उसका विकल्प है उतना। उसने मान लिया यह अच्छा है, यह बुरा है और उसके लिये वह संयोगों को अनुकूल करने की कोशिश करता है। संयोग अपने स्वयं की योग्यता से बनते हैं, बिगड़ते हैं। वे जैसे होने हैं वैसे ही होंगे, परंतु इस जीव की सारी मेहनत, सारे विकल्प उसको ठीकठाक करने में लगते हैं और इसीमें उसका पूरा मनुष्यभव खो जाता है। संयोग कोई अपने हाथ की बात नहीं है। यहां क्या हो रहा है ? साता के उदय में जो संयोग अनुकूल लगता है उसका लक्ष करके यह जीव अपने को सुखी मानता है और असाता के उदय में दुखी मानता है। साता और असाता का उदय और बंध भी अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में पलटता है। उसके सभी संयोग अनुकूल हैं तो साता ही साता रहनी चाहिये थी, असाता क्यों होती है ?

कोई अच्छे से मजे से जामुन खा रहा है, इतने में किसीका फोन आया कि अमुक का ऑक्सिडेंट हुआ है। तो अभी जामुन का क्या हुआ ? मुंह में जामुन के रहते हुये असाता का उदय कैसे शुरू हुआ ? अभी अन्य किसी घटना का लक्ष करके वह दुःखरूप परिणमित हो रहा है। कोई संयोग सातारूप नहीं है और कोई असातारूप

नहीं है वह तो उसके अपने मोह-रागद्वेष के कारण वैसे लगते हैं। हम कहने के लिये कहेंगे अच्छे संयोग मिलते हैं, बुरे संयोग मिलते हैं। नहीं तो सारे अमीर हैं उन्हीं को साता का उदय कहना पड़ता और बाकी जो गरीब हैं, दीन-दुःखी हैं उनको असाता का उदय कहना पड़ता - ऐसा नहीं है। नरक में भी साता-असाता का उदय अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में पलटता है, देवों का भी पलटता है। बंध भी और उदय भी। ख्याल में आयी न बात ? देखो, नामकर्म की ९३ प्रकृति हैं उनकी बात बाद में करते हैं। पहले गोत्रकर्म के भेद देख लेते हैं- उच्चगोत्र और नीचगोत्र।

नामकर्म की बड़ी लंबी-चौड़ी लिस्ट है न, वह पृष्ठ १८ पर है, शॉर्ट में याद रखना है तो वहां ट्रिक भी बतायी है। ९३ के बदले ४२ नाम अगर आप ख्याल में लेते हैं तो याद रखने में आसान होगा। उसमें गति नामकर्म कहने से चार गति नामकर्म मालूम हैं। जाति नामकर्म में एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रियजाति हैं। इसमें से अँट अ टाइम कोई एक गति बंधेगी, कोई एक जाति बंधेगी। अँट अ टाइम दो-चार नहीं बंधेंगी। अंतर्मुहूर्त के बाद पलट-पलटकर बंध सकती हैं। गति, जाति फिर पांच शरीर कौनसे हैं ? *श्रोता: औदारिक*। तेजसशरीर और कार्माणशरीर नामकर्म तो हर समय बंधेंगे, परंतु जब मनुष्यगति और तिर्यचगति बांध रहा है तो औदारिकशरीर का बंध करेगा। जब देवगति, नरकगति बांध रहा तो उसके साथ वैक्रियिकशरीर का बंध करेगा। *श्रोता: आहारक*। एक आहारकशरीर भी होता है। उसी नाम के बंधन और संघात होते हैं, उसका कार्य क्या है दोपहर के प्रवचन में देखेंगे। अभी उनके नाम देख लेते हैं। शरीर का जो आकार है उस संबंधी संस्थान नामकर्म कहते हैं। परभव में जाने पर नया शरीर ग्रहण करते हैं, तब संस्थान नामकर्म का उदय शुरू होता है। उस आकारवाला शरीर बनता है। संहनन में हड्डियों की मज़बूती - उनके नाम क्या-क्या हैं हम देखेंगे। अंगोपांग के उदय में जो द्वीन्द्रियादि जीव हैं उनमें शरीर के अंग और उपांग यानी अवयव और उसके छोटे-छोटे अवयव बनते हैं।

फिर स्पर्श, रस, गंध, वर्ण के जो भेद हैं ऐसे नामकर्म हैं और उन नामकर्म के उदय में उन स्पर्श, रस आदिवाले परमाणु ग्रहण होते हैं। गत्यानुपूर्वी का उदय मोड़वाली विग्रहगति में होता है। उसके उदय में जीव का पूर्वभव का आकार रहता है। विहायोगति यानी जो त्रस जीव हैं उनका चलना है उसमें प्रशस्त, अप्रशस्त दो भेद होते हैं। अगुरुलघु के उदय में ना हल्का, ना भारी ऐसा शरीर बनता है उसको अगुरुलघु

नामकर्म कहते हैं। उपघात यानी अपना ही घात करे ऐसे अवयव बनते हैं ऐसा जो कर्म है उसको उपघात कहते हैं और परघात में निमित्त हो ऐसे अवयव बनते हैं उसको परघात कहते हैं - उसके उदय में वहां शरीर के ऐसे अवयवों की रचना होती है। पर्याप्त जीव श्वासोच्छ्वास करते हैं उसमें उच्छ्वास नामकर्म निमित्त है। आतप और उद्योत- जो सूर्यबिंब के पृथ्वीकायिक हैं उनमें आतप नामकर्म का उदय है और उद्योत नामकर्म का उदय एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तिर्यचों में होता है। त्रस नामकर्म के उदय के कारण द्वीन्द्रियादि सारे त्रस कहलाते हैं। एकेन्द्रिय को स्थावर कहते हैं, उनके स्थावर नामकर्म का उदय पाया जाता है।

बादर और सूक्ष्म- जो प्रतिघातवाला स्थूल टाइप का शरीर है, दूसरे से रोका जाता है उसको बादर कहते हैं और जो शरीर की सूक्ष्म व्हरायटी है जैसे आपके मोबाइल की यहां रेंज नहीं है तो क्या नहीं है ? उसका सूक्ष्म परिणमन है दिखता नहीं, इसतरह शरीर भी सूक्ष्म होते हैं। एक होते हैं पर्याप्त और दूसरे अपर्याप्त जिनके एक भी पर्याप्ति पूरी नहीं होती वे अपर्याप्त नामकर्मवाले हैं और जिनकी पर्याप्ति पूरी होकर यथायोग्य काल में फिर दूसरा भव धारण करेंगे वे हैं पर्याप्त जीव। प्रत्येक और साधारण - एक जीव और एक शरीर उसको कहेंगे प्रत्येक शरीर, जहां एक शरीर और उसके स्वामी अनंत जीव होते हैं जिनको हम निगोद कहेंगे, वे साधारण शरीरवाले होते हैं। स्थिर-अस्थिर का कार्य हम बाद में पढ़ेंगे। शुभ-अशुभ, सुभग-दुर्भग ये जोड़ी-जोड़ी में हैं; उनमें से किसी एक का बंध होगा। सुस्वर-दुस्वर, आदेय-अनादेय, यशस्कीर्ति-अयशस्कीर्ति, तीर्थकर और निर्माण ये नामकर्म के अन्य भेद हैं। उन प्रकृतियों का यथायोग्य बंध होता है और उनका यथायोग्य उदय होता है।

सम्यग्दर्शन होने पर इनमें से कुछ प्रकृतियां बंधती ही नहीं हैं। अति अप्रशस्त हैं वे नहीं बंधेंगी। ऐसे उसके संबंध में कुछ नियम हैं। आगे हम कहेंगे कि जब जीव तत्त्वविचार करता है तो इतनी कर्म प्रकृतियां नहीं बंधेंगी वगैरह-वगैरह तब इनके नाम काम आनेवाले हैं। इसलिये इन सबकी लिस्ट बतायी; यह याद नहीं होगी उसकी चिंता नहीं करनी है। अभी सुनना है आपको और उसको रिपीट नहीं कर सकते तो कोई चिंता की बात नहीं। हमें समझना है और हम विषय समझकर ही आगे बढ़ेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

३. प्रशस्त-अप्रशस्त प्रकृतियाँ

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने गोम्मटसार जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड तथा लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। लब्धिसार अलग ग्रंथ है वह गोम्मटसार का भाग नहीं है। कषायप्राभृत - जयधवला के आधार से उन्होंने लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। पं. टोडरमलजी ने लब्धिसार ग्रंथ की संस्कृत टीका के आधार से सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार नामक भाषाटीका द्वंद्वारी भाषा में लिखी है। उसीके आधार से हम यहां पंचलब्धि का प्रकरण देखने जा रहे हैं।

पंचलब्धि क्या है ? प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है उसके पूर्व में पांच लब्धि होती हैं। अभी हमें मालूम नहीं है प्रथमोपशम क्या है, उपशम क्या है, हम देखेंगे। प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन होता है उसके पूर्व में नियम से जीव की और कर्मों की क्या-क्या अवस्थाएँ होती हैं उसकी चर्चा पंचलब्धि पुस्तक में की है। सम्यग्दर्शन किस विधि से होता है, उसका तो गुरुदेवश्री के हर प्रवचन में यहां अपना अभ्यास चल ही रहा है। किन्तु इस संबंधी जीव और कर्मों के बारे में जो विशेष जानकारी है वह हम देखने जा रहे हैं। उसके पहले हमें कर्मों की कुछ अवस्थाओं का ज्ञान होना आवश्यक है, उनके संबंध में कुछ शब्द हमें मालूम होने चाहिये। जब वहां कहेंगे कुछ अवस्थाएँ पलटनेवाली हैं, कुछ अलग होनेवाली हैं तो मूल में क्या होती हैं यह मालूम हो जाये तो किसरूप से वहां अवस्थाएँ चेंज होती हैं यह बात हमें ख्याल में आती है।

आपका प्रश्न है कि *प्रदेशबंध और प्रकृतिबंध अभी भी क्लिअर नहीं हुआ।* देखो, कर्म का बंध होता है उसका अर्थ क्या होता है ? कार्माणवर्गणा कहते हैं विशिष्ट नंबर ऑफ परमाणुओं के समूह को। वर्गणाओं की विशिष्ट रेंज होती है; कार्माणवर्गणा नाम के स्कंध हैं; उस एक-एक वर्गणा में अनंत परमाणु होते हैं और ऐसी अनंत कार्माणवर्गणा एक समय में कर्मरूप परिणमित होती हैं। इसमें प्रदेशों की यानी परमाणुओं की संख्या बतायी जाती है। ये जो परमाणु ग्रहण हुये और कर्मरूप परिणमित हुये, यह कार्माणवर्गणा एक टाइप की नहीं है। वहां कार्माणवर्गणा में ही आठ प्रकार के अलग-अलग प्रकार हैं। जो कार्माणवर्गणा ज्ञानावरणरूप होने योग्य है वह ज्ञानावरणरूप से परिणमित होती है। प्रदेशबंध में हमने केवल परमाणुओं की संख्या बतायी और प्रकृतिबंध में वह किस प्रकृतिरूप परिणमित होती है वह बात

बतायी जा रही है।

योग के कारण परमाणुओं का ग्रहण हुआ; कौनसे ? कार्माणवर्गणा का ग्रहण हुआ, परंतु जैसे हम भोजन करते हैं, हमने क्या खाया था ? आप कहेंगे हमने रोटी और सब्जी खायी, आप कहेंगे हमने जामुन खाया, कोई कहेंगे हमने हलवा खाया। डॉक्टर को पूछा तो कहेंगे आपने इतना कार्बोहाइड्रेट खाया, इतना प्रोटीन खाया, इसमें से आपको इतनी कैलरीज मिली। उसमें भी कहेंगे जो प्रोटीन है, वह अमायनो एसिडरूप होकर उससे शरीर का अमुक-अमुक अवयव बनेगा। जो उसमें आयर्न है उसका हिमोग्लोबीन बनेगा - वह खून में चला जायेगा, जो कैल्शियम है उसकी हड्डी बनेगी। ऐसे ही यहां कार्माणवर्गणा में कुछ परमाणुओं की अपनी ही योग्यता है कि वह किसी विशिष्ट कर्मरूप परिणमित हो जावे। ज्ञानावरण आदि अलग-अलग प्रकृति हैं अनुरूप होनेवाली कार्माणवर्गणा ही जुदी-जुदी हैं। *श्रोता: ऐसा स्वभाव है ?* उसका वैसा स्वभाव है, स्वभाव को ही प्रकृति कहते हैं। स्वभाव कहो, प्रकृति कहो एक ही बात है।

हमने आपको पूछा मिर्ची कैसी है ? तो आप क्या कहेंगे ? तीखी होती है। करेला कैसा होता है ? कड़वा होता है। यह उसका स्वभाव है, उसकी प्रकृति है। ऐसे ही इन कर्मों की प्रकृति अलग-अलग है। कार्माणवर्गणा स्वयं उस-उस प्रकृतिरूप से परिणमित होती है। यह योग के कारण होता है। कषाय के कारण क्या होता है ? जो बंधी हुयी प्रकृतियां हैं, वे कितने काल तक जीव के साथ रहेंगी वह है उसकी स्थिति। यह तो सामान्य कथन है। फिर उसमें और जो सूक्ष्मता है - विशेषता है वह हम आगे देखेंगे। अनुभाग का अर्थ क्या होता है ? उसमें जो फलदान शक्ति है, वह शक्ति कैसे गिनेंगे ? उसका क्या तरीका है वह भी हम देखने जा रहे हैं। हम यहां तक आये थे, आगे बढ़ने के पहले दुबारा थोड़ा देख लेते हैं; क्योंकि इसमें कन्स्प्यूजन है तब तक क्या होता है ? वे प्रश्न दिमाग में घूमते रहते हैं और आगे का विषय क्या चल रहा है वहां अपना ध्यान नहीं जाता। अभी हम आगे बढ़ते हैं।

श्रोता: निगोदगति क्या है ? देखो निगोद नाम की कोई गति नहीं है। गतियां चार ही हैं - नरकगति, तिर्यचगति, मनुष्यगति, और देवगति। परंतु निगोद जीवों की गति कौनसी है ? *श्रोता: तिर्यचगति।* उनकी तिर्यचगति है। उनकी कौनसी जाति है ? एकेन्द्रिय है कि द्वीन्द्रिय है ? *श्रोता: एकेन्द्रिय है।* एकेन्द्रिय है। वे कौनसे कायवाले हैं ?

पृथ्वीकायिक हैं कि अग्निकायिक हैं कि वायुकायिक हैं ? श्रोता: वनस्पतिकायिक हैं। वनस्पतिकायिक हैं। वनस्पतिकायिक में भी दो व्हरायटी हैं- एक प्रत्येकशरीर और एक साधारणशरीर। वनस्पतियों में ही दो भेद हैं, बाकी जो सारे द्वीन्द्रिय आदि हैं वे प्रत्येकशरीरवाले ही हैं। प्रत्येकशरीर नाम का एक नामकर्म है और साधारणशरीर नाम का एक नामकर्म है। जो साधारण नामकर्म बांधकर एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं, वे निगोद पर्याय में उत्पन्न होते हैं। निगोद का अर्थ क्या है ? एक शरीर और वहां अनंत जीव रहते हैं। एक शरीर अनंत जीवों में कॉमन है यानी साधारण है। श्रोता: सोशिआलिजम। सोशिआलिजम। समान आयुवाले ही एक साथ उत्पन्न होते हैं; अनंत जीव जिनकी आयु समान है, एक समय का भी डिफरन्स नहीं है ऐसे ही जीव एक साथ उत्पन्न होते हैं। जिस शरीर में पर्याप्त उत्पन्न होते हैं वहां सारे पर्याप्त निगोद ही उत्पन्न होंगे। जहां अपर्याप्त हैं, वहां सारे अपर्याप्त ही उत्पन्न होंगे।

इसतरह से वहां उनके शरीर के परमाणुओं का ग्रहण एक साथ होता है जिसको हम कहेंगे उनकी पर्याप्ति भी कॉमन हैं। उनकी पर्याप्ति भी पूर्ण होती है और फिर उनका मरण एक साथ होता है। परंतु हर एक के परिणाम जुदे हैं, मरकर कहां जायेंगे वह बात जुदी है। बाकी वहां रहते हुये उन सबका श्वासोच्छ्वास कॉमन है, उनके शरीर के परमाणुओं का ग्रहण यानी नोकर्मआहार भी सबके लिये कॉमन है। उसको कहेंगे निगोदपर्याय। हमने देखा न, निगोदपर्याय में - एक शरीर में अनंत जीव और उस शरीर की अवगाहना यानी साइझ इतना छोटा है कि वह मायक्रोस्कोप से भी नहीं दिखेगा। आलू या प्याज़ की इतनी सी राई जितनी कटकी होती है उसमें ऐसे असंख्यात शरीर होते हैं और एक-एक शरीर में अनंत जीव होते हैं। इसलिये कंदमूल या अभी आज की फॅशन है न अॅलोव्हेरा, वह फुल ऑफ निगोद है। हमें मालूम नहीं है, जितना दोष आलू, प्याज़ खाने में है, उतना ही अॅलोव्हेरा का इस्तेमाल करने में है। अॅलोव्हेरा या कोई भी कॅक्टस् जाति की वनस्पति है उसमें भी निगोद की अनंत जीवराशि है। उनका किसी भी रूप में इस्तेमाल करना भले ऑप्लिकेशन हो या खाने के लिये हो, उसमें इतने जीवों की हिंसा का दोष जरूर लगता है। ख्याल में आया ?

१४८ प्रकृतियों में उसका नाम आ गया -साधारण नामकर्म। ऐसी पर्याय में जीव उत्पन्न होता है कि वहां जीव है ऐसा मानने के लिये भी कोई तैयार नहीं है। वह आता है न पूजा में 'दमरी रूकन भाग बिकाया' - जिसको कहा है न, कवड़ीमोल से बेचा गया।

श्रोता: यह कौनसे पूजन में आता है ? कौनसे पूजन में है नहीं मालूम ? श्रोता: दसलक्षण पूजा। दसलक्षण पूजा में है। यह हो गयी निगोद की बात, हमारा वह विषय नहीं है, फिर भी यहां प्रश्न आया न इसलिये उसकी चर्चा की। देखो, अपने शास्त्रों में एक-एक विषय पर बहुत कुछ माल है। जितनी सूक्ष्मता से हम पढ़ते जायेंगे उतना उसमें रस भी आता है और उतनी हमें ज्ञान में स्पष्टता भी होती है। हमारा जितना सारा जिनागम अव्हेलेबल है- बहुत कम अव्हेलेबल है, बहुत सारा नष्ट हो चुका है। जितना अव्हेलेबल है उसमें इतनी सूक्ष्मता, इतनी गहराई है। जितना हम पढ़ें उतना ऐसा लगता है कि यह आयु तो पूरी हो जायेगी और हम ऐसे ही जिनागम के ज्ञान से वंचित रह जायेंगे।

प्रश्न है- मोहनीय यानी दर्शनमोहनीय जब बंधता है तो मिथ्यात्वरूप से बंधता है, परंतु उदय में क्या होता है ? तीसरे टुकड़े में सम्यक् प्रकृति कैसे आयेगी ? देखो, मिथ्यात्व बंधनेवाली प्रकृति है। मिथ्यात्व गुणस्थान यानी पहले गुणस्थान में मिथ्यात्व का उदय भी है और मिथ्यात्व का बंध भी है। जीव के परिणाम को भी मिथ्यात्व कहते हैं और कर्म का नाम भी मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व परिणाम के कारण मिथ्यात्व कर्म बंध रहा है। जब सम्यग्दर्शन होता है तो कर्मों में बहुत सारी उथल-पुथल होती है - वह हमने अभी देखी नहीं है। जब उसका नंबर आयेगा तब हम देखेंगे कैसे होता है। तो मिथ्यात्व में जितना अनुभाग है, अभी हमें अनुभाग संबंधी कुछ टर्मिनॉलॉजी मालूम नहीं है, हम स्लोलि अँड ग्रेंज्युअली देखेंगे तब यह बात और स्पष्ट हो जायेगी। तो मिथ्यात्व का अनुभाग अनंतगुणा हीन होकर सम्यक् प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति तैयार होती हैं। भले वे मिथ्यात्व में से उत्पन्न हुयी हैं और लगती हैं सम्यक्त्व से विरुद्ध प्रकृति, परंतु सम्यक् प्रकृति का उदय होने पर जीव सम्यक्त्व से गिरता नहीं है, फिर भी कुछ दोष अवश्य लगता है। उसकी चर्चा जब उसका विषय आयेगा तब करेंगे।

प्रश्न: नामकर्म की प्रकृति आदेय, अनादेय क्या है ? हमने पृष्ठ १८ पर नामकर्म की लिस्ट देखी थी। वहां उसकी चर्चा भी है। प्रश्न: योग के कारण जो कार्माणवर्गणा आकर्षित होती हैं, वे अपने शरीर के आसपास के वातावरण में से आती हैं क्या ? बिलकुल नहीं। हमने यह देखा था कि जीव के जितने प्रदेश हैं, वहीं के परमाणुओं का ग्रहण होकर शरीर बना है। शरीर में जाकर जीव घुसा नहीं है। जीव कहीं से मरकर आया था तो उसके साथ कार्माणशरीर और तेजसशरीर था, उसी क्षेत्र में से औदारिकशरीर संबंधी आहारवर्गणा को ग्रहण करके वहां उसका शरीर बना है। मेरी

भाषा में शरीर डिपॉझिट हुआ है, जहां जीव था। किसी रेडिमेड शरीर में जाकर जीव ने प्रवेश नहीं किया है। सराउंडिंग में से वे परमाणु नहीं आते हैं। जहां जीव विद्यमान है, उसी आकाश के क्षेत्र में वहां के औदारिक या वैक्रियिक शरीर संबंधी परमाणु हो या कर्म संबंधी परमाणु हो - जीव ग्रहण करता है।

प्रश्न: इसका अर्थ है कि हम मुंबई से देवलाली में आये हैं तो यहां के प्रदेशों में से परमाणु ग्रहण कर रहे हैं ? आप यहां बैठे हैं, अभी इतना आकाश का क्षेत्र रोका है न ? वहीं पर बहुत सारे परमाणु हैं, वहां से ग्रहण होता है। अब अमेरिका से, लंडन से बहनें आयी हैं, कितने भाई भी आये हैं। अभी वहां के परमाणुओं को यहां बुलायेंगे क्या ? क्या करेंगे ? जो गोरे हैं, वे गोरे परमाणु क्यों ग्रहण करते हैं ? काले लोग काले ही परमाणु क्यों ग्रहण करते हैं ? अफ्रीका से कोई आया है तो वहां हैं तो काले, यहां आने पर गोरे होते हैं क्या ? नहीं। उसी जाति के परमाणु ग्रहण करके शरीररूप परिणमित होंगे क्योंकि उनका उस-उस वर्णवाले नामकर्म का उदय है। फिर आप बाहर से उसको कुछ भी लगा लो, फेअर अँड लव्हलि और क्या-क्या करो तो वह कर्म कुछ बदलनेवाला नहीं है।

प्रश्न: योग जीवद्रव्य के सभी प्रदेशों में होता है कि कषाय के अनुसार थोड़े प्रदेशों में होता है ? बिलकुल नहीं। सर्वात्म प्रदेशों में योग होता है। शरीर नामकर्म का उदय उसमें निमित्त बनता है। संपूर्ण योगस्थान आदि समझने के लिये योग कौनसे जीवप्रदेशों में कैसा होता है उसका विस्तार वह अलग विषय है। अभी हम आगे बढ़ेंगे। *श्रोता: कर्म पूरे आत्मप्रदेशों में है ?* हां, कर्म पूरे आत्मप्रदेशों में है, कर्मों का उदय भी सर्वात्म प्रदेशों में होगा, परंतु वहां जो योग है वह जीव का विभावभाव है और वहां कर्म को निमित्त कहा गया है परंतु योग सर्वात्म प्रदेशों में है। जीवद्रव्य की पर्याय अधूरी होगी की संपूर्ण प्रदेशों में होगी ? *श्रोता: संपूर्ण में होगी ?* आपने सीखा है न जितना बड़ा द्रव्य, उतना बड़ा उसका प्रत्येक गुण और उतनी बड़ी प्रत्येक गुण की पर्याय - भले वह विभाव हो या स्वभाव हो। आपको क्रोध आता है - गुस्सा आता है तो सिर में आता है कि पैर में आता है ? सिर में आता है ? स्वभाव हो या विभाव हो वह पर्याय तो पूरे आत्मप्रदेशों में होगी, समझ में आया ? आगे बढ़ते हैं।

हमने नामकर्म के नाम देखे थे। हमने ९३ के बदले ४२ में इनको देख लिया

था। उनमें जो पहले १४ नाम हैं उनको कहेंगे पिंड प्रकृति। पिंड प्रकृति क्यों कहा ? गति नामकर्म कहने से चार गति नामकर्म हमारे ख्याल में आते हैं। जाति नामकर्म कहने से पांच अलग-अलग जाति नामकर्म यानी कौनसी जाति ? हिन्दू मुस्लिम वह नहीं। *श्रोता: एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय...* एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति और पंचेन्द्रियजाति। फिर शरीर नामकर्म कौन-कौनसे हैं ? तेजसशरीर, कार्माणशरीर, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, आहारकशरीर नामकर्म ये पांच हैं। बंधन भी उसी नाम के हैं और संघात भी उसी नाम के हैं। किसीने संघात के बारे में भी प्रश्न पूछा था कि उसका कार्य क्या होता है ? तो छिद्र रहित शरीर की रचना होती है। छिद्र रहित का अर्थ क्या है ? मान लेते हैं उंगलियों की रचना हुयी। यहां पूरा हाथ, उंगलियां एक ऐसा जुड़ा हुआ है कि बीच-बीच में कहीं होल्स भी हैं ? *श्रोता: जुड़ा हुआ है।* छिद्र रहित एक स्कंधरूप रचना हो जाती है वह संघात नामकर्म का कार्य है।

अभी संस्थान नामकर्म का कार्य क्या है ? जीव का कोई न कोई आकार है। जीव का आकार स्वयं अपने से है। जीव असंख्यातप्रदेशी है और हमने देखा था प्रत्येक द्रव्य में उसका आकार होता है कि नहीं होता है ? रूपी को आकार होता है कि अरूपी को होता है ? *श्रोता: दोनों को होता है।* क्यों ? *श्रोता: प्रदेशत्व गुण है।* प्रत्येक द्रव्य में प्रदेशत्व गुण है तो द्रव्य का आकार अवश्य होगा। परंतु यहां जीव का अरूपी असंख्यातप्रदेशी आकार होने पर भी, जिस कर्म के निमित्त से उसका जो कुछ यथायोग्य आकार पाया जाता है उसको संस्थान नामकर्म कहते हैं। यहां से जीव मर गया, अब कोई जीव सीधा जाता है और कोई मोड़ से जाता है। आपको मालूम है, मरने के बाद छहों दिशाओं में गमन हो सकता है- पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, ऊपर या नीचे। तिरछा गमन नहीं करता और कहीं-कहीं मोड़ लेकर जाना पड़ता है। तो जहां मोड़वाली गति है वहां नया आकार अभी उसने धारण नहीं किया है। क्यों ? वह मोड़वाली गति है, उसमें उसके जो नया संस्थान नामकर्म है उसका उदय शुरू नहीं हुआ है, उसका उदय वहां पहुंचने पर होता है। बीच में फिर उसका कौनसा आकार होता है ? पूर्वभव का आकार ही वहां कायम रहता है और वह कार्य गत्यानुपूर्वी नामकर्म का है।

जैसे कोई मनुष्य मर गया और अभी तिर्यच में उत्पन्न हुआ है। मान लेते हैं यहां का कोई आदमी मर गया और अमेरिका का कुत्ता होनेवाला है। बहुत पुण्य कमाया है

न ! नहीं समझे ? अरे, वहां बच्चे को तो बेल्ट लगाकर, कुर्सी में बांधकर कार के पीछे की सीट पर बिठाना पड़ता है और कुत्ता आगे पीछे के सीट पर कैसे भी घूमता है। सुबह मालिक कुत्ते को लेकर घूमने के लिये जाता है, प्लास्टिक की बॅग और झाड़ू लेकर। उसको कुत्ते की टट्टी इकट्ठी करते-करते जाना पड़ता है और बच्चे को डायपर लगाकर बैठना है। तो वह कुत्ता पुण्यवाला है न ? यहां से आदमी मर गया और वहां उत्पन्न हुआ, मान लेते हैं दो मोड़ से गया क्योंकि उसको टर्न लेकर जाना है। तो वहां उसका कौनसा आकार होगा ? *श्रोता: मनुष्यगति।* तिर्यचगति का उदय शुरू हुआ है और तिर्यचगत्यानुपूर्वी का उदय है, परंतु अभी उसका मनुष्य का आकार बदला नहीं है। पर है कौन ? कुत्ता। वह कुत्ता है, किस आकार का है ? मनुष्य के आकार का है। गत्यानुपूर्वी का कार्य है कि पूर्वभव का आकार वहां कायम है। क्योंकि विग्रहगति में संस्थान नामकर्म का उदय शुरू नहीं होता है, वहां पहुंचने पर शुरू होता है।

शास्त्र में संस्थान के भी छह अलग-अलग भेद बताये हैं। समचतुरस्रसंस्थान, न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान आदि - आप उनके नाम पढ़ लेना। हम इसमें इसलिये विशेष अधिक जानकारी नहीं दे रहे हैं क्योंकि हम आगे के विषय पर अधिक विस्तार से चर्चा करना चाहते हैं। अलग-अलग छह संस्थान नामकर्म के उदय पाये जाते हैं; देखो, हम छह नाम बताते हैं- समचतुरस्रसंस्थान, न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान, स्वातिसंस्थान, कुब्जकसंस्थान, वामनसंस्थान और हुंडकसंस्थान। केवली भगवान को कौनसे संस्थान नामकर्म का उदय है ? समचतुरस्र, एक मत है न सबका ? *श्रोता: नहीं। श्रोता: अरिहंत भगवान कि सिद्ध भगवान ?* सिद्धों के कोई कर्म ही नहीं है तो आपका प्रश्न ही गलत है। अरिहंत भगवान की बात है। *श्रोता: समचतुरस्र।* केवली भगवान को छहों संस्थानों का उदय हो सकता है - हम सामान्य केवली की बात कर रहे हैं। तीर्थकरों को समचतुरस्रसंस्थान है क्योंकि वे सम्यक्त्व के साथ आये हैं तो सम्यक्त्व के साथ जन्म लेनेवाले को समचतुरस्रसंस्थान ही होता है, नारकी की बात नहीं है, हां।

संहनन की बात अलग है, संहनन क्या होता है ? हड्डियों की मजबूती होती है। कौनसे टाइप की हड्डी है, किस टाइप के जॉइंटस् है, उसका वेष्टन यानी पेरीऑस्टीयम कहेंगे, उसका कव्हरिंग है, वह किस टाइप का है ? वज्र की ही हड्डी, वज्र का ही वेष्टन और वज्र के ही जॉइंटस् होते हैं उसको कहेंगे वज्रवृषभनाराचसंहनन। जो तद्भव मोक्षगामी जीव हैं, उनके जन्म से ही यह संहनन होता है। इस संहनन के कारण मोक्ष

नहीं होता है, परंतु क्षपकश्रेणी योग्य पुरुषार्थ - उतनी आत्मस्थिरता इस संहननवाले को ही होती है। यह संहनन केवल मोक्ष में जाने के लिये आवश्यक नहीं, सातवें नरक में जानेवाले को भी यह संहनन होना आवश्यक है। यह संहनन है इसलिये दोनों ओर जायेंगे यह भी नियम नहीं है क्योंकि भोगभूमि के पुरुष क्या, स्त्रियों को भी वज्रवृषभनाराचसंहनन ही होता है। अन्यत्र कहीं भी स्त्री को ऊपर के तीन संहनन नहीं होते हैं। फिर भी वहां चौथे गुणस्थान के ऊपर पुरुषार्थ नहीं है। वहां से कोई भी जीव मात्र देव में ही जाता है - मिथ्यादृष्टि हो या सम्यग्दृष्टि। ऐसे कुछ नियम हैं। यानी संहनन है इसलिये उसके कारण ये बातें होती हैं ऐसा बिलकुल नहीं है। यह तो निमित्त का कथन है। कौनसे जीवों के कौनसे निमित्त की उपस्थिति में कौनसा कार्य हो सकता है उसका हमें यहां अंदाज़ा आता है। संहनन भी छह प्रकार के होते हैं, उसकी भी चर्चा - एक-एक का क्या स्वरूप है यह वहां पुस्तक में बताया गया है।

देखो, विहायोगति और संस्थान के बारे में मैंने बता दिया। आप अभी यह पूरा प्रकरण पढ़ लेना क्योंकि हर एक के हाथ में अभी पुस्तक है। अब जो प्रश्न आया था न आदेय-अनादेय के बारे में, उसकी बात करेंगे, देखो, पृष्ठ ३४ हर एक नामकर्म और उसका क्या कार्य होता है; कार्य का अर्थ है उसका क्या निमित्त बनता है उसकी यहां चर्चा है। **आदेय नामकर्म के उदय में प्रभा अर्थात् कांतिसहित शरीर उपजता है।** ऐसा नहीं कह रहे हैं कि गोरा शरीर उपजता है। यह गोरा या काला तो वर्ण नामकर्म के उदय में होगा। परंतु हमने ऐसे भी लोग देखे हैं जो सांवले हैं, काले वर्ण के भी होते हैं परंतु तेजःपुंज दिखते हैं। यह आदेय नामकर्म के उदय का फल है। अनादेय यानी उससे उलटा होगा - **प्रभारहित शरीर या कांतिरहित शरीर उपजता है।** यह तो निमित्त बताया है, अलग-अलग नामकर्मों के उदय में ये बातें होती हैं।

तीर्थकर नामकर्म की भी बात पढ़ लेते हैं। तीर्थकर नामकर्म का बंध मिथ्यादृष्टि को नहीं होता जो बांधना चाहते हैं। क्यों बांधना चाहते हैं ? कोई भी किसी भी प्रकार का बंध जो चाहते हैं यानी जो बंध चाहते हैं उसका अर्थ क्या है ? वे मोक्ष नहीं चाहते। कोई दलील करते हैं न, तीर्थकर प्रकृति बांधी तो मोक्ष निश्चित है। नहीं ? जब तक तीर्थकर प्रकृति बांधी है न, बंधती रहेगी फिर उसका उदय भी भोगना पड़ेगा। नहीं समझे ? जिन्होंने तीर्थकर प्रकृति बांधी है, वे तेरहवें गुणस्थान में एक अंतर्मुहूर्त रहकर जल्दी मोक्ष नहीं जा सकते। उन्हें रुकना पड़ेगा, समवसरण की रचना होगी, दिव्यध्वनि

छूटेगी, उनको यथायोग्य कुछ साल तो यहां रुकना ही पड़ेगा। क्योंकि तीर्थकर प्रकृति ऐसी है कि उसका उदय कुछ सालों तक तो जरूर चलेगा, बाद में उनका मोक्ष होगा।

देखो, तीर्थकर नामकर्म बांधना चाहते हैं, है न ? तो कितने जीव तीर्थकर नामकर्म बांध सकते हैं ? *श्रोता: चौबीस।* क्या यह सही है ? *श्रोता: नहीं।* अरे, अभी वर्तमान में प्रथम तीन नरकों में प्रत्येक में असंख्यात जीव तीर्थकर प्रकृति बांधनेवाले हैं। सौधर्म से लेकर सर्वार्थसिद्धि तक असंख्यात देव हैं और प्रत्येक स्वर्ग में असंख्यात जीव हैं जो तीर्थकर प्रकृति अभी वर्तमान में बांध रहे हैं। सर्वार्थसिद्धि में और मनुष्यपर्याय में भी संख्यात जीव तीर्थकर प्रकृति बांध रहे हैं। चौबीस तो हम भरतक्षेत्र की चौबीसी की अपेक्षा बात करते हैं। भरतक्षेत्र में जब २४ तीर्थकर होते हैं; कहां ? अभी हम कहेंगे आदिनाथ से लेकर महावीर तक चौबीस तीर्थकर हुये उतने काल में पूरे ढाईद्वीप में कितने तीर्थकर हुये होंगे ? *श्रोता: १७०/१७० अंटे अ टाइम होते हैं।* हमने चौथे काल में टोटल पूछे। *श्रोता: असंख्यात।* असंख्यात। क्योंकि वह तो करीबन १ कोड़ाकोड़ी सागर का काल है। इसकी बात छोड़ो, एक सौधर्म इंद्र जिसकी आयु दो सागर से थोड़ी ज्यादा है, वह कितने तीर्थकरों के पंचकल्याणक अटेंड करता होगा ? *श्रोता: असंख्यात।* क्योंकि विदेहक्षेत्र के १ तीर्थकर की आयु १ पूर्व कोटि होगी और पल्य के असंख्यातवें भाग में असंख्यात पूर्व कोटियां चली जायेगी। एक सौधर्म की जो दो सागर की आयु है, उसमें असंख्यात तीर्थकर होंगे। ख्याल में आती है न बात ? तो एक कोड़ाकोड़ी सागर में कितने तीर्थकर होंगे ? हमें काल का भी अंदाजा नहीं है, क्या-क्या होता है मालूम नहीं है।

यहां मुख्य बात क्या है ? पृष्ठ ३५, नीचे से तीसरा पैरेग्राफ- **नामकर्म की इन तिरानबे प्रकृतियों का वर्णन पढ़कर तुम कौनसी प्रकृति बांधने का विचार कर रही हो ?** लोग पूछते हैं हमें यह कर्म नहीं बांधना है, यह कर्म बांधना है तो क्या करें ? अन्य नहीं तो कम से कम तीर्थकर प्रकृति तो बांधना योग्य है कि नहीं ? इस बात का निर्णय सर्वप्रथम होना चाहिये। हमें अभिप्राय में क्या पड़ा है उसको देखना है। इन सब प्रकृतियों के नाम मालूम ना हो तो भी कोई बात नहीं। परंतु सर्वाधिक महत्वपूर्ण एक बात निर्णयपूर्वक जानना अति आवश्यक है। वह बात है कि कोई भी कर्म बांधने योग्य नहीं है। *श्रोता: यह अभिप्राय ?* यह निर्णय, अभिप्राय सही होना चाहिये। क्योंकि हम चाहते तो हैं मोक्ष और कुछ न कुछ प्रकृतियां बांधने जैसी हैं ऐसा

मानते हैं। यह प्रकृति नहीं बांधनी है और यह बांधनी है मानते हैं और दूसरा प्रश्न क्या होता है ? हम कैसे परिणाम रखें ? बराबर है न ? बोलो, अभी कैसे रखें ? हम परिणामों को कंट्रोल कर सकते हैं यह दूसरी मिथ्या मान्यता है। तो हम क्या करें, खाली देखते रहे ? खाली देखते रहने के लिये अभूतपूर्व पुरुषार्थ लगता है। नहीं समझे ? क्योंकि हम देखने-जानने के अलावा कुछ कर ही नहीं सकते - ना कर्मों में कुछ कर सकते हैं, ना अपने रागादि परिणामों में कुछ हेरफेर कर सकते हैं। हम तो उनको जुदा जान सकते हैं। पहले में पहले वे अपने स्वभाव में नहीं हैं यह जानना है। वह तो छोड़ देते हैं और कुछ न कुछ हेराफेरी करना चाहते हैं क्योंकि हमने इतने सारे कर्म देखे न ? इनमें से कौनसे रखने हैं, कौनसे छोड़ने हैं इसका हमारा हिसाब चालू हो जाता है। है न !

आगे देखते हैं- **किसी भी कर्म के फल में-** फल में यानी **उदय में प्राप्त होनेवाली सामग्री में जिसे रुचि है**, हमारे इतने अच्छे संयोग प्राप्त हुये हैं, क्यों ? हमने पूर्व में पुण्य कमाया था, देखो अभी हम उसका फल भोग रहे हैं। यानी क्या है ? कर्म का फल उसे अच्छा लगता है। कर्म का अच्छा फल क्यों मिला ? हमने पुण्य कर्म बांधे थे। तो उसको बंध भी अच्छा लगता है। जिसको बंध अच्छा लगता है, उसको मोक्ष अच्छा लगता है कि नहीं लगता है ? करता तो है मोक्ष की बातें परंतु उसकी सात तत्त्वों संबंधी भूल - विपरीत मान्यता चल रही है। तो कहते हैं **सामग्री में जिसे रुचि है, उसमें सुखबुद्धि है, मुझे वह उदय प्राप्त हो तो कितना अच्छा, ऐसी जिसकी बुद्धि है, वह कर्म के बंधन को उपादेय मानता है।** उपादेय यानी करने जैसा मानता है यह उसकी मिथ्याबुद्धि है। मिथ्या मान्यता है। **बंधतत्त्व संबंधी तथा सातों तत्त्व संबंधी उसकी विपरीत मान्यता है।**

अपना विषय अभी तत्त्व की विपरीत मान्यता का नहीं चल रहा है परंतु यहां से हमें वह घटित करना है। हम कर्मों के नाम, उनका स्वरूप देख रहे हैं। उसमें हमें तय करना है कि कर्मों की अवस्थाओं का ज्ञान करके कर्मों में हमारा पुरुषार्थ चलेगा कि नहीं चलेगा ? पहले में पहले यह निश्चित करना है। पुरुषार्थ जीव की पर्याय है वह जीव में होगी, कर्मों में उसका कुछ नहीं चलेगा। परंतु जीव स्वयं अपने में पुरुषार्थ करता है तो वहां नियमरूप से कर्मों की कौन-कौनसी अवस्था होती है, इसका यहां ज्ञान कराया जाता है।

अभी हमने देखा था नामकर्म की कुछ प्रशस्त यानी पुण्य प्रकृतियां हैं और कुछ अप्रशस्त यानी पाप प्रकृतियां हैं। कहते हैं **नामकर्म की उत्तरप्रकृतियों में से कुछ प्रकृतियां प्रशस्त हैं - पुण्यरूप हैं और कुछ अप्रशस्त हैं - पापरूप हैं।** अप्रशस्त किसको कहेंगे ? *श्रोता: पाप प्रकृतियों को।* पाप प्रकृतियों को अप्रशस्त कहेंगे। **पुण्य परिणामों से यानी शुभभावों से यानी विशुद्ध परिणामों से प्रशस्त प्रकृति बंधती है** विशुद्ध शब्द यहां मंद कषाय के लिये आता है। कहीं-कहीं पुण्य परिणामों के लिये भी विशुद्ध परिणाम कहते हैं। वीतरागता ऐसा इसका यहां अर्थ नहीं है। **और पाप परिणामों से - अशुभभावों से - संक्लेश परिणामों से अप्रशस्त प्रकृति बंधती है।** यह कर्म पुद्गलद्रव्य है, कौनसी प्रकृति बांधना चाहिये, कौनसी नहीं बांधना चाहिये, यह बात जीव के हाथ की नहीं है।

यहां आगे लिखा है देखो- **कर्म पुद्गलद्रव्य है - परद्रव्य है। उसे बांधना या छोड़ना तो किसी भी जीव के आधीन नहीं है - अरिहंत भगवान भी कर्म की एक भी अवस्था को पलटा नहीं सकते।** जब वे छद्मस्थ थे, यह सारे कर्म वगैरह उन्होंने आगम से जान लिये थे। आत्मा के गुण वगैरह कुछ प्रत्यक्ष तो नहीं थे। ऐसी अवस्था में उन्होंने इतना पुरुषार्थ किया कि चार घातिकर्म नष्ट हो गये। हम कहते हैं न, चार घातिकर्मों का नाश करके केवलज्ञानी हो गये। सब कुछ प्रत्यक्ष हो गया तो अघातिकर्मों का नाश करने में इतना समय क्यों लगा ? पुरुषार्थ की कमी थी ? ख्याल में आता है ? कर्म अपने कारण स्वयमेव स्वसमय पर नष्ट हो जाते हैं। उसके जो कुछ नियम होंगे उनके अनुसार उनका कार्य चलेगा। यह हमारी जो मान्यता पड़ी है न, किसीने जल्दी पुरुषार्थ किया हो और कोई अटक गये ऐसा कुछ नहीं है। बाहुबली भगवान को मुनि दीक्षा लेने के बाद एक साल तक केवलज्ञान नहीं हुआ। क्यों ? *श्रोता: शल्य।* शल्य बाकी थी ? अरे, शल्य हो तो मुनि नहीं हो सकते। हां, कोई कहते हैं मान के कारण। अरे, ऐसा कुछ नहीं है। वे तो साल भर में केवली हो गये, आदिनाथ भगवान को एक हजार वर्ष लगे तो ? यह कवि कल्पना है कि भरत की भूमि पर खड़ा हुआ हूं इस शल्य के कारण केवलज्ञान नहीं हुआ। ऐसी बातें मुनि के मन में नहीं हो सकती। ख्याल में आती है न बात ? हमें जानना है कि अपने अभिप्राय में क्या पड़ा है। आगे बढ़ते हैं देखो-

यहां क्या लिखा है देखो- **तुम पूछोगी, 'जिन शुभभावों से प्रशस्त प्रकृति**

बंधती हैं वे शुभभाव तो जीव के परिणाम हैं। उन्हें तो हम सोच समझकर कर सकते हैं न ? वह तो हमारे बस की बात है न ?' यही प्रश्न है न, हम कौनसे परिणाम रखें ? पाप छोड़कर पुण्य करना चाहिये कि नहीं चाहिये ? **बेटियों, हे जीवों ! बेटी भी नहीं, जीव तरीके से पुकार रहे हैं। इसी मिथ्या मान्यता से अनादिकाल से यह जीव ग्रसित है।** क्या उसने अभी तक पुण्य परिणाम नहीं किये थे ? शास्त्र में तो आता है अनंतों बार मुनिव्रत धारण करके नौवें ग्रैवेयक तक गया। कोई ऑर्डिनरी जीव ग्रैवेयक नहीं जा सकता। ऊपर के तीन उत्तम संहननवाले मुनि ही ग्रैवेयक जा सकते हैं, जो अभी पंचमकाल में इन संहनन के साथ कोई उत्पन्न भी नहीं होंगे। वह भी शुक्ललेश्या सहित ग्रैवेयक की देवायु बांधी हो तो मिथ्यादर्शन होने पर भी द्रव्यलिंगीपना होने से वहां तक जा सकते हैं - मिथ्यादृष्टि की बात है। ऐसा भी अनंत बार ग्रैवेयक गया यानी उसने कोई पुण्य परिणाम करना बाकी नहीं छोड़ा है। केवल पुण्य परिणाम करने से, व्रतादि ग्रहण करने से उसका कोई फायदा नहीं होता है, यह कहना चाहते हैं।

शरीर से जीव की भिन्नता को तो सभी संप्रदाय के लोग मान्य करते हैं। परंतु रागादि भावों से अपनी भिन्नता; जो राग है न, पुण्य के परिणाम हैं, पाप के परिणाम हैं जो अपने में उत्पन्न हो रहे हैं, उनसे मैं जुदा हूं यह बात जिनागम के बिना अन्यत्र नहीं बतायी है। क्योंकि 'मैं' पना हम अपने स्वभावभाव में धारण करेंगे और पर्याय में जो विभावरूप परिणामन हो रहे हैं, वे अपने में होते हुये भी वह हमारा कायमी स्वभाव नहीं है इसतरह से वहां अपना निर्णय होगा तो ही सम्यग्दर्शन प्राप्त हो सकता है। विशिष्ट रागभाव को करने योग्य मानना उसकी आस्रव और बंध में उपादेयबुद्धि है। रागभाव करना मेरे हाथ की बात है, मैं चाहूं वैसे विकार को पलटा सकता हूं या कर सकता हूं ऐसा माननेवाले जीव ने जीवतत्त्व और आस्रव- बंधतत्त्व को एकमेक माना है। सात तत्त्वों का स्वरूप उसने सही नहीं पहचाना, उसकी मान्यता सही नहीं है।

हम ऐसा भी देखते हैं, पूजा के समय में कोई दूसरा विचार आता है कि नहीं आता ? रोज़ आता है। स्वाध्याय करने बैठे, अरे, कुकर का गॅस बंद किया कि नहीं किया ? नहीं-नहीं, अशुभ तो आता है। और शुभ ? शुभ तो हम सोच समझकर करते हैं ऐसा लगता है कि नहीं लगता ? यही मिथ्या मान्यता है - शुभ भी आता है, अशुभ भी आता है। उस भूमिका के योग्य वे बातें आती रहती हैं, परंतु वह मेरा स्वभावभाव नहीं है यह निश्चित करना है। हमें कुछ शुभभाव आता है, कुछ व्रतादि करते हैं तो हमें

उसीमें अहंबुद्धि हो जाती है। देखो मैं पहले नहीं करता था, अभी बहुत कुछ कर रहा हूँ मानता है और बाकी लोग भी कहते हैं - आप बहुत आगे बढ़ गये ! अभी द्रव्यानुयोग के बारे में जितना बोलेंगे उतना कम है। क्योंकि गुरुदेवश्री ने हर प्रवचन में इस बात को बहुत अच्छी तरह से समझाया है। इसको थोड़ा गौण करके हम आगे देखते हैं। हमने १४८ का हिसाब देखा था। उसमें जो शरीर नामकर्म है, उसी नामकर्म का बंधन है, उसी नामकर्म का संघात है। ५, ५ और ५ मिलकर १५ होते हैं, उसके बदले शरीर नामकर्म कहने से सब आ गये तो वहाँ हमने १० कम गिने हैं। जहाँ वर्ण, गंध, रस, स्पर्श को विस्तार से कहेंगे तो २० भेद होते हैं और अभेद कहेंगे तो केवल ४ हैं, तो १६ वहाँ कम हो गये। इसतरह से २६ को कम करेंगे तो उसकी टोटल होती है १२२। उनमें से हमने बंधने योग्य कितनी देखी थी ? १२० प्रकृति।

हमने सुबह चार्ट देखे थे जो पृष्ठ ३८ पर हैं। हमने प्रशस्त और अप्रशस्त कर्म देखे थे न, नामकर्म में उसकी बात देखते हैं। आप पुस्तक में पृष्ठ ३९ देखना, सबके पास हैं न पुस्तकें ? हां। देखो नामकर्म के दो भेद किये हैं- शुभ नामकर्म और अशुभ नामकर्म। हमें गति, जाति, शरीर सबमें लगाना है। जैसे गति में देवगति, मनुष्यगति शुभ नामकर्म हैं और तिर्यचगति, नरकगति अप्रशस्त कहो या अशुभ नामकर्म हैं। एक पंचेन्द्रिय जाति ही शुभ प्रकृति है, बाकी चार अशुभ हैं। सभी शरीर, सभी बंधन, सभी संघात शुभ प्रकृति हैं। अंगोपांग में भी सभी को शुभ में गिना है। स्पर्शादि में दोनों होती हैं - शुभ स्पर्श, अशुभ स्पर्श - वर्ण, रस, गंध सबमें ऐसे ही लगाना। हमने संहनन के छह नाम देखे थे, उसमें टॉपमोस्ट फर्स्ट नाम वज्रवृषभनाराचसंहनन है वह शुभ प्रकृति है, बाकी पांच अशुभ प्रकृति हैं। संस्थान में भी पहलेवाला समचतुरस्रसंस्थान है वह शुभ है, बाकी पांच अशुभ हैं।

विहायोगति में नाम ही है प्रशस्त और अप्रशस्त - वह समझना आसान है। अगुरुलघु प्रशस्त है, परघात प्रशस्त है, उपघात अप्रशस्त है। उच्छ्वास प्रशस्त प्रकृति है क्योंकि वह पर्याप्त नामकर्म के साथ बंधती है। आतप और उद्योत भी प्रशस्त हैं। अब त्रस बादर, पर्याप्त, प्रत्येक नामकर्म हैं वे प्रशस्त हैं और इनके अपोझिट जो हैं - हम युगल में गिन रहे हैं - स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण कैसी हैं ? अप्रशस्त हैं। स्थिर आदि में भी हमने छह युगल देखे थे, उनमें से जो पहला नाम लेते हैं - स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति ये प्रशस्त हैं और बाकी सब अप्रशस्त हैं। तीर्थकर

और निर्माण भी प्रशस्त हैं। इसके बारे में हमने चर्चा की थी कि शुभभाव करने पर भी घातिकर्म तो बंधते हैं, वे तो अप्रशस्त ही हैं। फर्क कहां पड़ता है ? अघातिकर्मों में पड़ता है।

यहां नीचे का पैरेग्राफ देखते हैं, टेबल बना है न, उसके बाद सेकंड पैरेग्राफ- इसतरह यह बात सिद्ध होती है कि पुण्य - शुभभाव करने से बंध होता ही है, बंध का अभाव नहीं होता है। परंतु सम्यग्दर्शन प्राप्त करके, हमें बंध का अभाव करना है तो उपाय क्या है ? तो कहते हैं सम्यग्दर्शन प्राप्त करके मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय मिटते हैं। उत्पन्न नहीं होने को हम यहां मिटते हैं भी कहेंगे। जीव के अभी मिथ्यात्व भी नहीं है और अनंतानुबंधी कषाय भी नहीं है। उस समय से विशिष्ट प्रकृतियों का बंध होना रुकता है। सम्यग्दर्शन हुआ तो सभी प्रकृतियों का बंध एक साथ नहीं रुकता है, ग्रंज्युअली विशिष्ट प्रकृतियों का बंध रुकता चला जाता है। पहले में पहले अति अप्रशस्त प्रकृतियां बंधने से रुकती हैं - यह नॅचरल प्रोसेस है। तो उसको कहते हैं वे प्रकृतियां अभी नहीं बंधेंगी, उनके बंध का नाश हुआ, तो कहेंगे बंध की व्युच्छिति हुयी। उसको हम विस्तार से बाद में देखनेवाले हैं।

पहले बंध होता था, वह अभी नहीं होगा। मिथ्यात्व दशा में ये सारी प्रकृतियां बंधती थी। सम्यक्त्व होने पर इतनी विशिष्ट प्रकृति नहीं बंधेंगी, उसकी टोटल हम देखेंगे। सामान्य से कहना है तो ४१ प्रकृतियां वहां नहीं बंधेंगी, तो यह क्या हुआ ? बंध में हानि हुयी, बंध में कटौती हो गयी तो उसको कहेंगे संवर। संवरपूर्वक निर्जरा भी होती है। बंध की इतनी हानि हुयी, इतनी प्रकृतियां बंधना रुकी। अब यहां सम्यक्त्व हुआ। जीव के शुद्धोपयोग भी बारंबार होगा तो जो बंधे हुये कर्म हैं, वे भी अधिक मात्रा में खिरने लगेंगे, उसको कहेंगे निर्जरा होती है। बंध की हानि संवर है और सत्त्व की हानि सत्त्व यानी सत्ता में पड़े हुये - उनमें कटौती होना वह निर्जरा है और यही मोक्षमार्ग है, यही लब्धि है क्योंकि इसी मार्ग पर चलकर हमें मोक्ष की प्राप्ति होती है। यहां तो केवल प्रकृति का बंध रुकता है उसकी चर्चा की। परंतु हमने बंध के चार प्रकार देखे थे, याद है ? क्या है ? श्रोता: प्रकृतिबंध। प्रकृतिबंध। श्रोता: प्रदेशबंध। प्रदेशबंध। श्रोता: स्थितिबंध। स्थितिबंध। श्रोता: अनुभागबंध। अनुभागबंध।

नेक्स्ट जो दो वाक्य हैं न, उनमें करेक्शन करना। जीव सम्यक्त्व प्राप्त करता

है तब, अभी कौन-कौनसे बंध की हानि होती है उसको हमें देखना है। यहां लिखा है न **बंध की हानि होती है**। 'चारों प्रकार के' वहां नहीं होना चाहिये; पेन्सिल से या पेन से उसको स्ट्राइक कर दो, तब बंध की हानि होती है इतना ही रखो। क्यों नहीं होता उसकी बात करेंगे हम। यानी **विशिष्ट प्रकृतियों का बंध रुक जाता है**। वह बात सही है। हमने ४१ प्रकृतियों का बंध रुकता है वह बात देखी। *श्रोता: क्या निकालना है ?* पांच शब्द निकालना है 'इन चारों ही प्रकार के' इसको काट दो। बंध की क्या-क्या हानि होती है ? तो विशिष्ट प्रकृतियों का बंध रुक जाता है। ४१ प्रकृतियों का बंध रुकेगा वह तो बात सही है। 'कम संख्या में प्रदेश बंध होता है' यह बात सही नहीं है।

योग किसको ज्यादा होता है ? मिथ्यादृष्टि को कि अरिहंत भगवान को ? *श्रोता: अरिहंत भगवान*। अरिहंत भगवान को ज्यादा होता है ? *श्रोता: हां, अरिहंत भगवान को ज्यादा होता है*। कौन बोल रहे हैं ? क्यों ? ज्यादा होता है ऐसा कहीं नहीं लिखा। कहां लिखा है ? मोक्षमार्गप्रकाशक में। किसके साथ कम्पेअर किया ? द्वीन्द्रिय से। मोक्षमार्गप्रकाशक में यह बात लिखी है कि कोई द्वीन्द्रिय जीव चल रहा है और अरिहंत भगवान स्थिर हैं तो किसका योग ज्यादा होगा ? देखो, संज्ञी पंचेन्द्रिय के योग्य जो योग होते हैं, उनकी रेंज अलग है और एकेन्द्रियों के योग हैं, द्वीन्द्रियों के योग हैं, त्रीन्द्रियों के योग हैं, उनकी अपनी-अपनी रेंज जुदी-जुदी है। द्वीन्द्रिय से किसी भी संज्ञी पंचेन्द्रिय की कंपॅरिझन करेंगे तो पंचेन्द्रिय का योग तो ज्यादा ही होगा। परंतु मिथ्यादृष्टि हो, चौथे गुणस्थानवाला हो, मुनिराज हो या सयोगकेवली हो - कहीं भी संज्ञी पंचेन्द्रिय के योग्य जो हीनाधिकता होती है वह सभी पॉसिबल है, जिसको हम परिणामयोग कहते हैं। जन्म के प्रथम समय होनेवाले योग की बात नहीं है, उसको उपपादयोग कहते हैं। शरीरपर्याप्ति तक लगातार वृद्धि होती है उसको एकांतवृद्धियोग कहते हैं, उसकी बात यहां नहीं है। परंतु बाद में होनेवाले परिणामयोग की जो रेंज है, वह कहीं पर भी हो सकती है। इसलिये सम्यग्दर्शन होने पर प्रदेशबंध की संख्या कम हो जायेगी यानी समयप्रबद्ध का प्रमाण कम हो जाये ऐसा नियम नहीं है। इसलिये वह लाइन काट देना। कौनसी ? 'कम संख्या में प्रदेशबंध होता है' लाइन काट दो। बाकी सब ठीक है।

अभी स्थिति कितनी बंधेगी ? अंतःकोड़ाकोड़ी से नीचे बंधेगी। पहले अनेक कोड़ाकोड़ी सागरों का बंध होता था - स्थिति बहुत बंधती थी, अब पुण्यप्रकृति हो या पापप्रकृति हो वह कोड़ाकोड़ी सागर से भी नीचे बंधेगी। अंतः यानी लेस दें;

कोड़ाकोड़ी यानी करोड़ गुणा करोड़ सागर को कोड़ाकोड़ी सागर कहते हैं और अंतः यानी उससे कम। आयु बिना सभी कर्मों की स्थिति इतनी कम होती है, *श्रोता: तो आपने ऐसा गलत क्यों छापा ?* गलत लिखा इसलिये गलत छापा। तब इतना अभ्यास भी नहीं था। कितनी बातें कभी हमने सुनी थी और वैसी लिखते हैं न ! *श्रोता: गलती निकल गयी।* गलती निकल गयी पर पुस्तक में रह गयी। इस पुस्तक के नये संस्करण में हमने गलती सुधार भी दी है। जो पुरानी प्रतियां हैं न उसमें जो गलती रह गयी थी वह अभी निकाल दी है।

कर्मों के स्थिति और अनुभाग के बारे में क्या होता है ? देखो, अप्रशस्त कर्मों में अनुभाग अभी कम ही बंधेगा और प्रशस्त यानी जो पुण्य प्रकृतियां है उनका अनुभाग बढ़कर बंधेगा। फायदा ही फायदा है कि नहीं है ? देखो क्या कहते हैं- **सम्यक्त्व होने पर तो ये बातें होती ही हैं। परंतु जब जीव स्वयं का स्वरूप जानने के लिये उत्सुक होता है**, अभी उसके अंदर जिज्ञासा जाग्रत हुयी है- अरे मैं कौन हूं ? वक्ता कुछ बताना चाहते हैं, मुझे समझ में नहीं आता है, परंतु कोई अद्भुत बात है ऐसा उसे लगता है। पहली बार हम धर्मचक्र यात्रा में गये थे न, तब हम इस तत्त्वज्ञान से अधिक परिचित हुये। बचपन से मूल दिगंबर जैन तो थे ही, धार्मिक क्रियायें भी बहुत करते थे। लोग हमारी फैमिली को धार्मिक भी मानते थे। ऐसे यात्रा करने में बहुत रुचि थी, मुनियों के प्रवचन भी बहुत सुनते थे, उनका आना जाना भी बहुत था, उन्हें आहारदान देना वगैरह सब चलता था।

परंतु सही तत्त्वज्ञान क्या है वह जब हम धर्मचक्र यात्रा में गये न, तब मालूम हुआ। पं. बाबूभाई मेहता ने सन १९७५ में धर्मचक्र यात्रा निकाली थी। १०० दिन की पूरे भारतभर की यात्रा थी और कंडिशन क्या थी ? रोज़ आपको प्रवचन सुनने हैं। बाकी तो जो दिनचर्या होती है जैनियों की - किसीको रात्रिभोजन नहीं करना है, कंदमूल नहीं खाना है, अपनी रसोई अपनेआप बनाकर खानी है, वगैरह-वगैरह, वहां वे सारी कंडिशनस थी। तब द्रव्य, गुण, पर्याय से लेकर सभी बेसिक सिद्धान्त के प्रवचन हमने पहली बार सुने। रोज़ प्रवचन तो होते ही थे। हमारी १७ बसें चलती थी, हम हज़ार यात्री थे और कभी-कभी मुकाम पर पहुंच नहीं पाये तो रास्ते में कहीं जंगल में भी पथारी डालकर वहां बैठ जाते थे, कभी छोटे गांवों में भी। वहां प्रवचन तो होते ही होते थे। जब वह सब सुना तो ख्याल में आया कि यह कुछ अलग बात है क्योंकि तत्त्वज्ञान कुछ

अलग बात है और ये केवल क्रियायें वह कुछ अलग बात है।

जिसको हम धर्म समझकर करते थे, वह बात कुछ अलग थी और यह धर्म का सच्चा स्वरूप कुछ अलग है इस बात का पता चला। आत्मा क्या है यह जानने की तीव्र जिज्ञासा उत्पन्न हुयी। सोचा अरे, ये सब विद्वान क्या कहते हैं, कुछ तो अलग बात है ! हम हमारी जो लौकिक गतिविधियाँ हैं उनमें संतुष्ट होकर बैठते हैं। क्योंकि मेडिकल की पढ़ाई पूर्ण की थी, प्रॅक्टिस भी अच्छी थी, दो बेटियाँ थी - सब कुछ यथायोग्य ठीकठाक चल रहा था। अपने को सुखी मानते थे। ऐसे ठीकठाक में यह सुना तो ऐसा गजब हुआ ! हमने इतनी मेहनत की, इतने तीन-तीन तो गोल्ड मेडल्स हैं मेरे पास, हां, मेडिकल के, तो भी इस तत्त्वज्ञान के सामने वे कुछ मायने ही नहीं रखते। अरे, इसकी कोई कीमत ही नहीं है, जो हम सुन रहे हैं वह कुछ अद्भुत बात है, पहले यह जिज्ञासा अंदर हुयी।

तब तो गुरुदेवश्री क्या कहते हैं वह पहली बार सुना; गुरुदेवश्री भी गिरनार में, भोपाल में और बैंगलोर में तीन जगह इस यात्रा के साथ थे, हम उनके साथ जॉइन हुये थे। यात्रा ऐसी ही अरेंज की थी कि गुरुदेवश्री का भी हमें तीन जगह लाभ मिले। वहां पंचकल्याणक हुआ था - बैंगलोरवाले इस बार नहीं आये है। हां, तो बैंगलोर का पंचकल्याणक ८ दिन तक था, भोपाल का वह पिपलानीवाला पंचकल्याणक भी ८ दिन का था और वहां गिरनार में भी एक पंचकल्याणक हुआ था। गुरुदेवश्री के प्रवचन सुने तब लगा गुरुदेवश्री क्या कहते हैं, कुछ अद्भुत बात जरूर है। खाली 'आहाहाहा' और 'समझाणु कांई' गुजराती के ये दो ही शब्द समझ में आते थे। मगर जो गहराई थी ! अभी उस एक-एक वाक्य पर हम एक-एक घंटा बोले इतना मॅटर निकलता है। उस समय ऐसी बुद्धि नहीं थी न, क्योंकि कुछ बेसिक अभ्यास ही नहीं था। बस इतनी बात ख्याल में आयी कि यह कुछ गजब की बात है। यह जो जिज्ञासा है न अंदर की, वह जिज्ञासा भी विशिष्ट काम कर देती है। वह सब बात अभी क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि वगैरह में आयेगी।

यहां क्या लिखते हैं देखो- **जब जीव स्वयं का स्वरूप जानने के लिये उत्सुक होता है, तत्त्वज्ञानसंबंधी अपने आत्मासंबंधी उसे जिज्ञासा और रुचि उत्पन्न होती है।** अरे यह क्या है ? मैं कौन हूं ? इस शरीर की स्थिति तो अल्प है क्योंकि हम देखते

हैं न, कोई व्यक्ति अभी तो बोल रहा था, अरे देखते-देखते कहां चला गया ? हम कहते हैं न जीव निकल गया। अभी भी शरीर तो जीव नहीं है, जीव से जुदा ही है। तो मैं सच में हूं कौन ? ऐसी अंदर से जिज्ञासा जाग्रत हो जाती है। यह जिज्ञासा जाग्रत होने के लिये जैन होना आवश्यक नहीं है, जैन कुल में जन्मना आवश्यक नहीं है यह मेरा कहना है। आप जीव तो हैं ही ! तो कहते हैं **अपने आत्मा संबंधी उसे जिज्ञासा और रुचि उत्पन्न होती है तभी से उसी समय से अर्थात् सम्यक्त्व के पूर्व होनेवाली पांच लब्धि में भी कर्मों में कितने सारे परिवर्तन होते हैं, कर्मों की शक्ति किसतरह ढीली पड़ती जाती है, इन सब बातों को हम देखेंगे तो तुम कहोगी, हम बिना वजह कर्मों से डर रहे थे।**

ऐसे होता है न ! बच्चा अंधेरे कमरे में जाने से डरता है तो मां लाइट ऑन कर देती है। तब वह जाने से नहीं डरता या मां उसका नाम पुकारती रहती है, फिर वह जाकर आता है। जब तक मां की आवाज़ सुनायी देती है, तब तक उसे भरोसा है कि नहीं-नहीं अभी मुझे कोई डेंजर नहीं है। हम शास्त्र में कर्मों की जो बातें देख रहे हैं, इससे हमें पता चलता है कि कर्म जीव को कुछ लाभ-नुकसान नहीं करते - फायदा भी नहीं होने देते हैं और ना ही उसका कोई नुकसान करते हैं। वे तो जड़ हैं, उसकी अपनी अवस्था अपने से चेंज हो रही है और जीव तो परिपूर्ण है। उसका संपूर्ण सामर्थ्य उसमें है, परंतु उसने अपने सामर्थ्य को पहचाना नहीं है, स्वीकारा नहीं है और कर्म के उदय में जीव स्वयं भूल करता है और मानता क्या है ? कर्म ने मुझे रखड़ाया है। यह कर्म मुझे तकलीफ दे रहा है - शनि की साढ़ेसाती है और ऐसा है, वैसा है, करके स्वयं रोते बैठता है। तो कहते हैं ऐसा करने की कोई ज़रूरत नहीं है।

श्रोता: कर्मदहन पूजन भी करते हैं। अरे कर्मदहन करते हैं परंतु जिन्होंने कर्मदहन किया है उन सिद्धों की वह पूजन है। सिद्धचक्र विधान में कर्मदहन नाम की पांचवीं पूजन है। *श्रोता: कर्मों का कर्मदहन हुआ, जीव का कहां हुआ ?* यह कर्मदहन किसने किया ? कर्म नष्ट कैसे हुये ? किस प्रोसेस से हुये ? अभी सम्यग्दर्शन तो दूर है। अभव्यों के भी प्रायोग्यलब्धि तक कर्मों में क्या-क्या अवस्थाएं होती हैं - भले टेम्परी हैं परंतु उनके भी होती हैं। हम ये सभी बातें क्रम से देखनेवाले हैं। हम जो कर्मों से डर रहे थे उसकी कोई आवश्यकता ही नहीं है। आपने आज सुबह गुरुदेवश्री के प्रवचन में सुना- प्रत्येक द्रव्य का अस्तित्व अपने से है, अपने में है - उसका होवापणु कहो,

अस्तित्व कहो, एक्झिस्टन्स कहो, उसे परद्रव्य से कोई नाता ही नहीं है। ना उससे नुकसान है, ना उससे कोई फायदा होनेवाला है - कुछ नहीं है। परंतु हमने ऐसा मान रखा है कि कर्म हमें सम्यक्त्व नहीं होने देते। कर्म हमें रखड़ाते हैं, कर्म ने हमें ऐसा किया, वैसा किया कर्म संबंधी सही ज्ञान होने पर हमारा भय और हमारा जो विपरीत अभिप्राय है, वे निकल जाते हैं।

यहां पृष्ठ ४२ पर पहले पैरेग्राफ में एक प्रश्न है कि **इन सबको जाने बिना सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकती ?** प्रश्न क्या है ? सम्यक्त्व किसको हो सकता है ? अरे, चारों गति के जीवों को होता है। तिर्यचों को भी होता है ? हां, बिलकुल होता है। नारकियों को भी होता है ? होता है। तो तिर्यच कितना जानते हैं ? घातिकर्म, अघातिकर्म उसके भेद-प्रभेद कितना जानते हैं ? वे सब कितने सुखी हैं न, उनको कुछ याद नहीं करना पड़ता है। तो यह बिना जाने सम्यक्त्व होता है कि नहीं होता है यह प्रश्न है।

जब मेडिकल में हम सीखते हैं तो हमें फार्माकॉलॉजी में सब सिखाते हैं; क्या ? कोई मेडिसीन-दवाई है, उसका जो कुछ केमिकल स्ट्रक्चर है, वह शरीर में जाने पर उसमें क्या-क्या प्रोसेस होते हैं, उसकी कौनसे अवयव में कहां जाकर क्या अक्शन होती है, फिर वह रोग कैसा निर्मूल होता है, फिर वह दवाई कैसे शरीर के बाहर जाती है - वह पूरा चक्र उसमें समझाया जाता है। आप डॉक्टर के पास जाते हैं- उसको सब मालूम है, आपको कुछ नहीं मालूम। आपको डॉक्टर ने बताया यह दवाई है, यह ले लो। आपको फायदा होगा कि नहीं होगा ? *श्रोता: होगा।* होगा और डॉक्टर बीमार होगा तो क्या ? केवल नॉलेज से उसका रोग दूर होगा क्या ? उसको भी दवाई तो लेनी पड़ेगी। बात समझ में आयी न ? यहां कर्मों की विशेष जानकारी है तो लाभ होगा और फिर जो कुछ नहीं जानते हैं, उनको सम्यक्त्व नहीं होगा ऐसा है क्या ? तो कहते हैं ऐसा नहीं है।

दूसरा सवाल, फिर हम क्यों जाने ? निषेध किसका हो रहा है ? *श्रोता: जानने का।* क्या जानने का ? करणानुयोग जानने का। जानने का निषेध कहां हो रहा है ? दिनभर तो हम जान ही रहे हैं। टीव्ही को ऑन करके हम पूरी दुनिया की न्यूज-खबरें सुनते रहते हैं। कौन ? यह जीव पूरी दुनिया की खबर सुननेवाला - अपने से बेखबर है

और सबकी खबर रखता है। वह क्यों जान रहा है ? उसमें रुचिपूर्वक जान रहा है और यह करणानुयोग क्यों नहीं जानना चाहता ? वह ऐसा समझता है कि यह बोझ है। इसको बिना जाने भी कार्य हो सकता है ? हो सकता है। परंतु जितनी सूक्ष्मता से हम कर्म और जीव के स्वरूप को जानेंगे, उनके लक्षण जानेंगे, उतनी उनकी भिन्नता बिलकुल स्पष्टरूप से ख्याल में आयेगी।

अभी तो शरीर मैं हूं ऐसा मानकर बैठा है, शरीर के लक्षण जुड़े हैं, मेरे लक्षण जुड़े हैं। ख्याल में आती है न बात ? ज्ञान मेरा लक्षण है और स्पर्श, रस, गंध वर्ण शरीर का लक्षण है; परंतु हमने कहां लक्षण के द्वारा लक्ष्य को पहचाना है ? हमने तो शरीर को 'मैं' माना है। यहां तो हम कर्मों के जितने डिटेल्स जानेंगे, उतनी उनकी भिन्नता बिलकुल क्लियरली हमारे ख्याल में आती है, भेदज्ञान के लिये बहुत पुष्टी मिलती है। अन्य भी जो कर्मों के सिद्धान्त हैं, कर्मों में कैसी-कैसी बातें होती हैं उनका ज्ञान होता है तो हमें उनकी भिन्नता का बिलकुल भरोसा हो जाता है। यह सारा कार्य केवल तत्त्वज्ञान से और आत्मस्थिरता से होनेवाला है।

लोगों का प्रश्न क्या है ? दिन रात आत्मा-आत्मा करने से कुछ होगा कि कुछ करने से फल मिलेगा ? क्या करना चाहते हैं ? उपवास करेंगे, यात्रा करेंगे, कुछ दान देंगे, तो फायदा होगा कि नहीं होगा ? प्रश्न तो यही है, है न ? इसीका यहां हमें उत्तर मिलता है। कर्मों की अवस्थाएँ और जीव के परिणामों का निमित्त नैमित्तिक संबंध है। जीव मात्र तत्त्वज्ञान का अभ्यास करने लगता है, उसकी उसे जिज्ञासा होती है, तत्त्वज्ञान संबंधी विचार चलते हैं तो कर्मों में कितनी सारी उथल-पुथल हो जाती है - वह सारा हम यहां पढ़ने जा रहे हैं।

देखो, पृष्ठ ४२, लास्ट पैरेग्राफ- **उसी प्रकार** यानी वहां दवा का दृष्टांत दिया था **कोई जीव यदि कर्म के संबंध में कुछ नहीं जानता हो, तो भी उसे सम्यक्त्व तो हो सकता है। हां, इतना जरूरी है** कंडिशन क्या है ? **कि उसे जिनेन्द्र कथित** पहली में पहली कंडिशन सर्वज्ञ वीतरागी द्वारा बताये हुये तत्त्व होने चाहिये। क्यों ? जो वीतरागी और सर्वज्ञ हैं, वे ही सच्चा मार्ग बता सकते हैं। दूसरी कंडिशन **प्रयोजनभूत सात तत्त्वों का** सात तत्त्वों के नाम अभी बताने की आवश्यकता नहीं है। मालूम है न ? नहीं मालूम ? जीवतत्त्व, अजीवतत्त्व, आस्रवतत्त्व आदि सुना है ? हां, उनका **ज्यों का त्यों**

श्रद्धान होना चाहिये। ज्ञान तो सातों तत्त्वों का होगा। परंतु श्रद्धान में क्या वह तत्त्व रखने लायक है या छोड़ने लायक है या आश्रय करने लायक है या प्रकट करने लायक है ? उसका ज्यों का त्यों श्रद्धान होना आवश्यक है। श्रद्धान में हम उसको किसरूप से लेते हैं वह मुख्य है। ज्ञान तो सातों तत्त्वों संबंधी होना चाहिये, परंतु उस संबंधी हमने उलट-पुलट मानकर रखा है। इनके बारे में वह मान्यता सही हो जाये उसको कहेंगे सात तत्त्व संबंधी ज्यों का त्यों श्रद्धान होना चाहिये।

परीक्षा द्वारा तत्त्वनिर्णय किया हो, परीक्षा द्वारा का उन तत्त्वों का सही निर्णय करना यह महत्व का है। पहले-पहले हम नाम सीखते हैं- छह द्रव्य क्या हैं ? सात तत्त्व क्या हैं ? देव क्या है ? गुरु क्या है ? शास्त्र किसको कहना ? सच्चे देव का लक्षण क्या है ? उसके बाद हम परीक्षा करके उसका निर्णय करेंगे यह महत्व की बात है। **स्व-पर का भेदज्ञान हो**, स्व में मात्र अपना त्रिकाली स्वभावभाव रखना है और पर में राग, शरीर और अन्य परवस्तु सब पर में रखना है। स्व और पर का भेदज्ञान हो, **अपना स्वरूप यथार्थ भासित हो**, यानी अपना ज्ञानमात्र स्वरूप है, जिसको शुद्धात्मा कहेंगे, वह ध्रुव स्वभावभाव की बात है उसका हमें अनुभव हो जावे। **कर्म के बंध में और उसके फल में प्राप्त सामग्री में कर्तृत्व, भोक्तृत्व बुद्धि ना हो**। हमें तो जो संयोग मिला है उसमें यह मैंने किया, मेरे पुरुषार्थ से बना है ऐसा हम मानने लगते हैं - तो ऐसा ना हो। **शरीरादि और रागादि में अहंबुद्धि, ममत्वबुद्धि ना हो**। तो क्या होगा ? तो सम्यक्त्व हो सकता है। कंडिशन डाली न ! *श्रोता: बहुत टफ है*। सरल है। अरे, अपनी बात अपने में करनी है, दूसरे किसीकी कोई अपेक्षा नहीं है। यह सबसे सरल में सरल बात है। जो स्वाधीन है, सहज है, सुखमय है, सुलभ है; क्या है ? आत्मा का अनुभव। वह तो नहीं करते हैं, विकल्प करते बैठते हैं और हम परद्रव्यों की हेराफेरी में लगे रहते हैं। इसलिये हमारे करने योग्य कार्य रह जाता है, बाकी दुनियादारी में हम फंसे रहते हैं।

बस अपना अभी समय हो गया, रुकेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

४. निषेक रचना, अनुभाग रचना

सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र ने लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीकी टीका के आधार से पं. टोडरमलजी ने लब्धिसार-क्षपणासार नामक भाषाटीका ढूंढ़ारी भाषा में लिखी है। उसके आधार से हम यहां पांच लब्धि का स्वरूप देख रहे हैं। उसको जानने के पहले कर्मों की जो विशिष्ट अवस्थायें होती हैं, उनकी हम यहां चर्चा कर रहे हैं। बहुत सारे प्रश्न आये हैं। लोग आगे नहीं बढ़ना चाहते, है न।

प्रश्न: संश्लेष संबंध और संश्लेष परिणाम में क्या अंतर होता है ? देखो, संश्लेष संबंध कहा, संश्लेष परिणाम नहीं कहा था; संक्लेश कहा था। आपके पास पुस्तक है ? पृष्ठ २३ निकालना, नीचे की दो लाइन- **उनके प्रदेशों का परस्पर संश्लेष संबंध** यानी कर्मों का और आत्मा का संश्लेष संबंध है। अब पृष्ठ ३६ निकालना, दूसरी लाइन में लिखा है **संक्लेश परिणाम** पाप परिणाम, तीव्र कषाय को क्या कहेंगे ? संक्लेश। संक्लेश अलग बात है, संश्लेष अलग बात है। **प्रश्न:** निगोद का जीव पर्याप्त भी होता है क्या ? निगोद में भी पर्याप्त, अपर्याप्त, बादर और सूक्ष्म ऐसे भेद होते हैं।

प्रश्न: हर निगोदिया श्वास के अठारहवें भाग में मर जाता है ? नहीं, सभी लब्धिअपर्याप्त - एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के - उनकी इतनी छोटी आयु हो सकती है। निगोद अपर्याप्तों की मिनिमम इतनी हो सकती है परंतु पर्याप्त निगोद अंतर्मुहूर्त तक रहते हैं, उससे ज्यादा उनकी आयु नहीं होती। **प्रश्न:** क्रोध का उदय चल रहा है और मान-माया-लोभ और क्रोध सभी बंध रहे हैं, क्यों बंध रहे हैं ? ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है। क्योंकि जीव के परिणाम के कारण कर्म बंधते हैं। उसका क्रोध भले अनंतानुबंधी आदि चाररूप हो, परंतु बंधते तो सभी १६ हैं। **प्रश्न:** टीव्ही पर शो देखा कि एक लड़की आंखों पर पट्टी बांधकर कोई भी किताब के किसी भी पन्ने पर कोई भी लाइन पढ़ सकती है। यह ज्ञान का कौनसा प्रकार है ? कुअवधिज्ञान होगा।

प्रश्न: नामकर्म में स्थावर पाप कर्म है और बादर, प्रत्येक पुण्य कर्म है तो - उनका एक साथ बंध कैसे होता है ? जो नामकर्म एक साथ बंधते हैं उनके मेरी भाषा में पॅकेज होते हैं। नहीं समझे ? जो बादर प्रकृति बांधता है, वह उसी समय सूक्ष्म प्रकृति नहीं बांधता है। वह जिस समय पर्याप्त का बंध कर रहा है, उसी समय अपर्याप्त का बंध नहीं होगा। जो त्रस नामकर्म बांध रहा है, वह उसी समय स्थावर

नामकर्म नहीं बांध रहा है। मान लेते हैं कोई त्रस नामकर्म का बंध कर रहा है उसके साथ विहायोगति बंधेगी परंतु स्थावर नामकर्म के साथ विहायोगति नहीं बंधेगी, एकेन्द्रियजाति नामकर्म के साथ संहनन नामकर्म नहीं बंधेगा, इसतरह से यथायोग्य ग्रुप ऑफ़ प्रकृतियां एक साथ बंधती हैं। नामकर्म में उनका ही बंध संभव है। हां, ज्ञानावरण की पांचों की पांचों हर समय बंधती हैं। मिथ्यादृष्टि को दर्शनावरण की नौ की नौ हर समय बंध रही हैं। इसतरह से कौनसी बंधती हैं, कितनी बंधती हैं, उसके नियम हैं। देवगति संबंधी बंध हो रहा है तो कितनी बंधेगी, नरकगति संबंधी कितनी बंधेगी, मनुष्यगति बांध रहा है तो कौनसी बंधेगी और उनमें कितने व्हेरिएशन्स - कितने भंग हो सकते हैं, यह सब कर्मकाण्ड का विषय है।

प्रश्न: कर्तृत्व, भोक्तृत्व बुद्धि कैसे छोड़े ? मिथ्यात्व छोड़कर सम्यक्त्व प्राप्त करते ही सब छूट जाता है और उसके लिये तत्त्वनिर्णय करना आवश्यक बात है। गुरुदेवश्री के हर एक प्रवचन में हम वही बात सुनते आये हैं, वही करना है। अकेला कर्तृत्व-भोक्तृत्व नहीं छूटता, शरीर में या रागादि में जो अहंबुद्धि है; एकत्व-ममत्व-कर्तृत्व-भोक्तृत्व वह सब कुछ छूट जाता है। प्रवचन, पूजा करते हुये भी मिथ्यादृष्टि की कर्तृत्वबुद्धि कायम रहती है। अलग-अलग विकल्प आते रहते हैं। विकल्प आना कोई दोष नहीं है, विकल्पों के साथ ज्ञान की जो एकमेकता भासित होती है, वही दोष है। रागादि से भेदविज्ञान करना है, वही महत्वपूर्ण है। अभी उसके लिये सात तत्त्व क्या हैं ? छह द्रव्य क्या हैं ? उनका स्वरूप क्या है ? परिणमन व्यवस्था क्या है ? निमित्त-उपादान क्या होते हैं ? निमित्त से कार्य होता है कि नहीं होता है ? क्रमबद्धपर्याय क्या है ? पांच समवाय क्या है ? षट्कारक क्या है ? वस्तुस्वरूप संबंधी ये सारे जो सिद्धान्त हैं, उनका परीक्षापूर्वक निर्णय होना आवश्यक है। परीक्षा क्यों कहा ? हमने परिभाषा याद कर ली, रट ली उससे काम नहीं होगा। हमें वे सिद्धान्त ऐसे ही हैं, ऐसा भासित होता है क्या ? हमने अपनी बुद्धि के द्वारा उसका निर्णय किया है कि नहीं किया है यह महत्व की बात है। द्रव्यानुयोग के सभी सिद्धान्त जो हम सीखते हैं, उनका हमें परीक्षा द्वारा निर्णय करना है। उसके बाद आगे का जो प्रोसेस है, वह यथायोग्य हो जायेगा।

प्रश्न: स्थिति के निषेक में और अनुभाग के स्पर्धक एक नियम के अंतर्गत बंधते हैं ? नहीं। ऐसा कुछ नहीं, हमने उसका विषय भी नहीं उठाया, अनुभाग की बात आयेगी तब फिर यह प्रश्न पूछना। *श्रोता: हुंडकसंस्थान मतलब अनेक अव्यक्त आकार*

हैं न ? अनेक अव्यक्त आकार यानी उसका आकार गोल, त्रिकोण, चौकोन है ऐसा हम नहीं कह सकते। उसके अलग-अलग आकार होते हैं, वह हुंडकसंस्थान है। जैसे एकेन्द्रियों के अलग-अलग आकार हैं - पूरी एक वनस्पति एक जीव नहीं है; अगर हम कहेंगे कि पेड़ का आकार वह वनस्पतिकायिक का आकार है, तो वह ठीक नहीं है क्योंकि अनेक शरीर जुड़कर वह पूरा एक स्कंध, एक वनस्पति दिखती है। एक पूरा झाड़ है उसमें असंख्यात जीव हैं, ख्याल में आया ? हम उनका ऐसा खास आकार नहीं कह सकते। एक-एक शरीर जुदा-जुदा है, उनका आकार जुदा-जुदा है।

श्रोता: सामान्य केवली के छह संहनन हैं न ? छह संहनन नहीं, छह संस्थान हो सकते हैं। श्रोता: किसी जीव के संहनन या संस्थान साथ होते हुये एक ही रहता है ? किसी जीव को उसी भव में एक ही संस्थान का उदय है। उसके आकार ऐसे कुछ बदलेंगे नहीं, ख्याल में आती है न बात ? संहनन हो या संस्थान हो - जिस भव में जो संस्थान या संहनन के साथ जन्म हुआ है, उस पूरे भव में वही रहेगा, वह बाद में बदलेगा नहीं। प्रश्न: क्या जीव को भावयोग हर समय चलता है ? अनादि से लेकर सयोगकेवली के अंतिम समय तक भावयोग चलेगा। प्रश्न: कर्म का जितना अनुभाग उदय में आता है, जीव के परिणाम उसी हिसाब से विशुद्ध होते हैं ? नहीं, जीव ऐसा पराधीन नहीं है परंतु कर्म का उदय तभी कहलायेगा, जब जीव ने वैसे परिणाम किये। अभी हमने अनुभाग की रचना नहीं देखी है, मंद से तीव्र तक सभी अनुभाग वहां उदयरूप निषेक में पड़े हैं, परंतु जीव जिस मात्रा में परिणाम करता है, उस मात्रा में वहां कर्मों का उदय कहने में आयेगा।

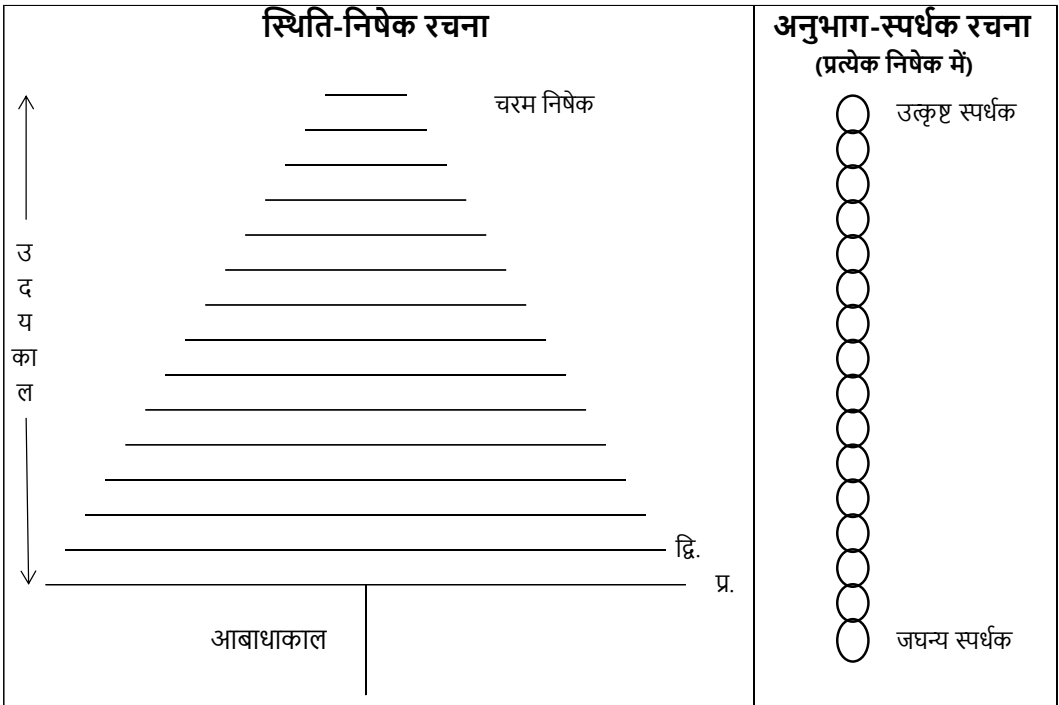
प्रश्न: नोकर्मों का प्रतिपक्षी कौनसा गुण है ? श्रोता: नोकर्मों का ? नोकर्मों का कोई प्रतिपक्षी नहीं होता है। नोकर्म तो शरीर, मन, वाणी को कहते हैं। प्रश्न: असातावेदनीय का मिनिमम स्थितिबंध कितना है ? बोलो अश्विनभाई ? असातावेदनीय कहां तक बंधती है ? श्रोता: असातावेदनीय का जघन्य स्थितिबंध अंतःकोड़ाकोड़ी सागर होगा। अंतःकोड़ाकोड़ी तो संज्ञी पंचेन्द्रिय को होगा। एकेन्द्रिय जीव को ? श्रोता: एक सागर में पल्य का असंख्यातवां भाग कम। एकेन्द्रियों में साता या असाता वेदनीय की मिनिमम स्थिति - एक सागर के तीन बटे सात में पल्य का असंख्यातवां भाग कम। परंतु वेदनीय की मिनिमम स्थिति पूछेंगे तो वेदनीय कर्म कहां तक बंध रहा है ? श्रोता: तेरहवें तक। तेरहवें गुणस्थान में सातावेदनीय का बंध है, परंतु वहां स्थिति नहीं बंध

रही है। *श्रोता: स्थिति दसवें तक।* दसवें गुणस्थान तक स्थिति बंधती है, तो वहां वेदनीय की स्थिति कितनी बंधती है ? *श्रोता: बारह मुहूर्त।* बारह मुहूर्त बंधती है। है न, वह उसकी मिनिमम स्थिति होगी। अभी यह यहां का विषय नहीं है। *प्रश्न: निधत्ति, निकाचित कर्म परमाणु सभी कर्मों में होते हैं न ?* बिलकुल होते हैं। हम आगे बढ़ेंगे-

कर्म बंधता है तो उसमें क्या-क्या होता है ? हमने देखा था उसमें स्थिति और अनुभाग पड़ते हैं। कर्मों की स्थिति बंधती है यानी क्या होता है उसकी बात हम यहां बोर्ड पर देखेंगे और पुस्तक में से भी आपको बतायेंगे। देखो पृष्ठ ४४- **एक समय में अनंत कर्म परमाणु बंधते हैं, उन्हें 'समयप्रबद्ध' अर्थात् एक समय में बंधनेवाले कहते हैं।** बंध होते समय यह निश्चित होता है कि वह कर्म अधिक से अधिक कितने काल तक जीव से निबद्ध रहेगा - बंधा हुआ रहेगा। कौनसा ? उस पर्टिक्युलर समय में बंधे हुये की बात है। नहीं तो अनादि से बंध भी चल रहा है और कर्म तो हमेशा ही जीव के साथ है। यहां किसी पर्टिक्युलर-विशिष्ट समय में बंधा हुआ कर्म कितने काल तक जीव के साथ रहेगा, उसको कहेंगे उसका इतनी स्थिति का बंध हुआ, उसको स्थितिबंध कहेंगे। **और कब वह अकर्मरूप होकर निकल जायेगा।** उसकी स्थिति पूरी होती है तो क्या होता है ? जो कार्माणवर्गणा से कर्मरूप हुआ है, वह कर्म से अकर्मरूप होता है। अकर्मरूप होगा तो उनकी कार्माणवर्गणा भी होगी, अन्य भी कुछ स्कंध होंगे, अन्य वर्गणायें भी होंगी, सिंगल परमाणु भी हो सकते हैं। उसका क्या होता है वह अभी हमारा विषय नहीं है। अकर्मरूप हो गया बस इतना ही कहेंगे। **इस कालावधि को स्थितिबंध कहते हैं।** अनुभागबंध की बात बाद में करेंगे।

आगे- बंध होने के पश्चात् कर्म जीव के प्रदेशों में पड़ा हुआ रहता है - बंधा हुआ रहता है उसे सत्त्व या कर्म की सत्ता कहते हैं। **कर्मों का बंध होने के पश्चात् विशिष्ट काल तक उदय या उदीरणा नहीं होती।** अभी उदीरणा की बात छोड़ो; वह जो निषेक रचना होती है, कब होती है ? जब कर्म बंधता है। वहां जो अनंत परमाणु कर्मरूप हुये हैं, उनमें विशिष्ट स्थिति पड़ती है, उस स्थिति को बताने के लिये अभी हम यहां बोर्ड पर ग्राफ देखेंगे; इसको कहते हैं कर्मों की निषेक रचना। निषेक का अर्थ क्या है ? जिन-जिन परमाणुओं में समान स्थिति है; दूसरी भाषा में एक साथ उदय आने योग्य परमाणुओं का जो लॉट है उसको हम निषेक कहेंगे। एक-एक समय के भेद से ऐसे निषेक सत्ता में बन जाते हैं। निषेक बन जाते हैं यानी कर्मों में ऐसी कोई लाइन-

कतार कुछ नहीं होती है, यह तो हम उसको ग्राफ में बता रहे हैं। जैसे आपके न्यूज़ पेपर में आता है न कि रुपये के भाव नीचे आ गये, ऊपर चढ़ गये या कोई शेअर्स के भाव ऊपर-नीचे हो गये। तो क्या होता है ? वे तिजोरी में ऊपर से नीचे आते हैं क्या ? वह तो हम उसका ग्राफ बनाते हैं। ऐसा ही हम यहां ग्राफ में उसको दिखा रहे हैं। कर्म अनंतानंत हैं और वे जहां-वहां पड़े हैं। जिनकी- जिनकी समान स्थिति है उनको हम एक लाइन में बतायेंगे। अभी हम बोर्ड पर देखते हैं।



सबसे नीचे वर्तमान समय है और ऊपर भविष्यकाल है। यहां वर्तमान समय में कर्म का बंध हुआ, तो कर्मों में स्थिति कितनी पड़ी ? तो कहते हैं कि वर्तमान समय से लेकर आबाधाकाल तक इतनी स्थिति में उदय आने योग्य कोई परमाणु ही नहीं थे। इसको कहेंगे आबाधाकाल - यहां कोई निषेक रचना नहीं है, निषेक रचना नहीं इसका अर्थ क्या है ? इतने काल तक उदय आने योग्य यहां किसी परमाणु में कोई स्थिति नहीं पड़ी थी। जैसे किसी पंचेन्द्रिय जीव को मिथ्यात्व कर्म की अधिक से अधिक कितनी स्थिति बंधती है ? ७० कोड़ाकोड़ी सागर, गुजरातीवाला सत्तर नहीं, हिंदीवाला, हां। तो कहते हैं बंध के बाद यहां जो पहला निषेक है; इसमें भी अनंत परमाणु हैं; यह निषेक

कब उदय में आने योग्य है ? ७००० वर्ष और एक समय में, दूसरा निषेक ७००० वर्ष और दो समय में, तीसरा निषेक ७००० वर्ष और तीन समय में उदय आने योग्य होता है, इसतरह ऊपर तक चले जाओ। लास्ट में कौनसा निषेक है ? वह ७० कोड़ाकोड़ी सागरवाला, वह कब उदय आने योग्य है ? ७० कोड़ाकोड़ी सागर काल पूर्ण होने पर उस समय वह उदय आने योग्य है।

यहां अलग-अलग परमाणुओं में अलग-अलग स्थिति पड़ी है। जीव ने परिणाम एक ही किया है और यहां स्थिति के इतने व्हेरिएशन्स ! कितने ? असंख्यात। ७००० वर्ष प्लस एक समय से लेकर ७० कोड़ाकोड़ी सागर तक प्रत्येक समय में एक-एक निषेक पड़ा है और एक-एक निषेक में अनंत परमाणु पड़े हैं, जीव एक समय में इतना ग्रहण कर रहा है। परिणाम एक होने पर भी स्थिति के इतने व्हेरिएशन्स क्यों ? बोलो ? क्योंकि निमित्त से कार्य नहीं होता। कर्म की अपनी योग्यता अनुसार उनमें अलग-अलग स्थिति पड़ती है, ख्याल में आयी बात ? परंतु कर्म की कितनी स्थिति बंधी ? इतने व्हेरिएशन्स बन गये ऐसा नहीं कहेंगे। अंतिम निषेक की जो स्थिति है, उतनी स्थिति बंधी ऐसा हम कहेंगे। उतनी स्थिति बंधी तो उस प्रपोर्शन में वहां आबाधाकाल भी होगा और आबाधाकाल के बाद हर समय का एक-एक निषेक भी होगा।

जब हम कहेंगे ७० कोड़ाकोड़ी सागर नहीं बांधा, किसी एकेन्द्रिय जीव ने मिथ्यात्व का एक सागर का कर्म बांधा। तो उसके निषेक कितने होंगे ? अंतर्मुहूर्त प्रमाण आबाधा चली जायेगी और उसके बाद हर समय में एक-एक निषेक पड़ा रहेगा। कितने निषेक होंगे ? एक सागर में जितने समय होते हैं। कितने समय होंगे ? एक सागर में दस कोड़ाकोड़ी पल्य होते हैं और पल्य के असंख्यातवें भाग में भी असंख्यात अब्ज वर्ष होते हैं। एक वर्ष में कितने सेकंड होंगे और एक-एक सेकंड में कितने समय होंगे ? आप गिनो। इतने एक-एक समय की एक-एक निषेक रचना यहां होगी। तो कहते हैं उसमें इतने सारे अलग-अलग व्हेरिएशन्स होंगे। इसको कहेंगे स्थितिबंध हुआ। कितना हुआ ? अंतिम स्थिति यानी निषेक जितने काल में उदय आने योग्य है उतना स्थितिबंध हुआ ऐसा हम कहेंगे।

जहां जीव के संक्लेश परिणाम - तीव्र कषाय होते हैं वहां स्थिति ज्यादा से ज्यादा बंधती है; भले वह पुण्य प्रकृति हो या पाप प्रकृति हो। तीन शुभ आयु बिना अन्य

प्रकृतियों में स्थितिबंध का यह नियम है। स्थिति बंधने के बाद ऐसी ही कायम रहे यह कोई जरूरी नहीं है। उसमें क्या-क्या उलट-पुलट होता है, वह हम क्रम से देखेंगे। हमने यहां निषेक रचना किसको कहेंगे उसको देखा कि बंध होने के समय में ही आबाधाकाल है, उसी समय ऊपर की निषेक रचना दिखायेंगे। हमें अनेकों के - विद्वानों के भी प्रश्न आते हैं कि बंध के बाद आबाधाकाल बीत जाने के पश्चात् निषेक रचना होती है न ? ऐसा नहीं है। निषेक रचना कब हुयी ? बंध के समय हुयी। परंतु बंध के समय में कैसी निषेक रचना हुयी ? ७० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध हुआ है, तो ७००० वर्ष जितने समय हैं न, उतने निषेक नहीं बने हैं। उसके बाद ऊपर एक-एक समय में एक-एक निषेक बना है। यह उसका अर्थ होता है। उदय की अपेक्षा यहां उदय आने योग्य कोई निषेक नहीं है, उसको आबाधाकाल कहेंगे।

प्रत्येक कर्म बंधने के बाद एक आवली के पश्चात् उस कर्म की उदीरणा शुरू होती है। बंध हुआ तो यहां जितने निषेक बंधे हैं न; यह तो बंधनेवाले एक समयप्रबद्ध की बात है। उस समय सत्ता में कर्म पड़े हैं, उनका उदय भी चल रहा है, उनका उदय तो हर समय चल रहा है। तो बंधे हुये सभी निषेकों में से कुछ-कुछ परमाणु छूटकर नीचे आते हैं और वे उदयरूप निषेकों के साथ मिलकर उनका भी उदय चालू हो जाता है इसको उदीरणा कहते हैं। जो बंधे हुये निषेक हैं; अभी मिथ्यात्व के हो, ज्ञानावरण के हो, दर्शनावरण के हो - एक आवली के बाद प्रत्येक समय में कुछ परमाणु उदीरणा होकर नियम से निकलते रहते हैं। वहां जीव का पुरुषार्थ वगैरह कुछ काम का नहीं है, उसके कारण उदीरणा नहीं होती। उदीरणा एकेन्द्रिय में भी हो रही है, नियम से सभी जीवों में होती ही है। जिसका बंध है, वह बंधने के एक आवली के बाद जिसके सत्ता के निषेकों का उदय चालू है, उसकी उदीरणा भी होती है। उदीरणा के बहुत सारे नियम हैं, उसको अभी हमें नहीं जानना है। उदीरणा क्या है, बस इसको समझना है। सभी निषेकों में से कुछ परमाणु अपनी स्थिति घटाकर उदयावली में आ मिलते हैं, उसको कहते हैं उदीरणा। अब यहां बहुत स्थूल कथन हो रहा है, किसको क्या कहना बस इसकी बात है।

हमने अभी निषेक रचना देखी। यह किसको बताती है ? स्थिति को बताती है। उसमें क्या देखा ? आबाधाकाल - इसमें कोई निषेक रचना नहीं है यानी यहां इतने काल में उदय आने योग्य कोई परमाणु नहीं हैं; यह उस पार्टिक्युलर समयप्रबद्ध की

बात है। उतने काल में सत्ता में पड़े हुये निषेकों का हर समय उदय चल रहा है। जैसे मिथ्यात्व का किसीने उत्कृष्ट स्थितिबंध किया, तो बंधनेवाले उस पर्टिक्युलर समय में - ७००० वर्ष तक उदय में आने योग्य कोई निषेक नहीं, परंतु उन ७००० वर्षों में सत्ता में पड़े हुये मिथ्यात्व का उदय चल रहा है कि नहीं चल रहा ? चल रहा है। कौनसा ? जो पूर्व में बांधा है उसका। देखो, एक समय में बंधा हुआ है, उसका उदय लगातार कितने काल तक चलेगा ? ७० कोड़ाकोड़ी सागर मायनस ७००० वर्ष। यह तो एक समय में बंधे हुये की बात है, सत्ता में जो पड़े हैं उसका कथन अलग होगा। उसका अकेले का उदय नहीं हो रहा है। हर समय कर्म बंधते हैं, तो हर समय में जिनकी स्थिति पूरी होती है, जो-जो उदयरूप निषेक हैं - सब मिलकर एक साथ उदय में आते हैं।

अभी हमें देखना है अनुभाग रचना में क्या होता है। अनुभाग यानी क्या ? *श्रोताः फलदान शक्तिः*। फलदान शक्ति। जैसे कर्मों की स्थिति कितनी है वह हमने देखा। यह जरूरी नहीं है कि जिसकी स्थिति ज्यादा है, उसमें अनुभाग भी ज्यादा है। यहां स्थिति से अनुभाग का कुछ डायरेक्ट रिलेशन नहीं है क्योंकि प्रत्येक निषेक में अनंत परमाणु हैं, प्रत्येक निषेक में जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक का अनुभाग है। जैसे हमने देखा था न, यहां मिनिमम स्थितिवाले भी अनंत परमाणु हैं और मैक्सिमम स्थितिवाले भी अनंत परमाणु हैं। अब हमें अनुभाग की रचना देखनी है। अनुभाग रचना में क्या है इसका अर्थ बाद में समझाएंगे। मिनिमम अनुभागवाले परमाणुओं से लेकर मैक्सिमम अनुभागवाले परमाणु तक सभी कहां पड़े हैं ? तो कहते हैं हर निषेक में पड़े हैं। हर निषेक में जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक उस समय में बांधे हुये सारे ही अनुभाग वहां पड़े हैं। अब उसको हम शास्त्र की भाषा में देखेंगे। जो निषेक रचना है वह स्थिति को बताती है और अनुभाग रचना किसको बताती है ? उसको स्पर्धक रचना कहेंगे उसमें वर्ग, वर्गणा होते हैं। उसके पारिभाषिक शब्दों को हम देखेंगे।

हमने यहां क्या देखा था ? समान स्थितिवाले परमाणुओं का जो लॉट है - ग्रुप है उसको निषेक कहा था। वर्तमानकालीन वह पहला निषेक, फिर ऊपर भविष्यकालीन वे भविष्यकाल के निषेक, वे बाद में उदय आने योग्य होते हैं। पृष्ठ ४५ निकालना, चार्ट के नीचे- **कर्मों की स्थिति बताने के लिये निषेक रचना होती है।** यह समझने के लिये निषेक रचना के द्वारा आचार्यों ने बताया है। **यहां तुम ऐसा मत समझना कि जीव के प्रदेशों में कर्म कतार से खड़े हैं।** जो उदयरूप हैं वे पैर की तरफ आते

होंगे, फिर नये-नये बंधे हुये सिर की तरफ रहते हैं ऐसा कुछ नहीं है। **जब-जब कर्म बंधता है, तब आत्मा के असंख्यात प्रदेशों में** यानी सभी प्रदेशों में **वे परमाणु समानरूप से फैल जाते हैं। जो जहां पर स्थित हो, परंतु जिन किन्हीं परमाणुओं की समान स्थिति होगी उनको हम एक निषेक कहेंगे।** उनको हम नीचे के निषेक में, दूसरे निषेक में, तीसरे निषेक में बतायेंगे। हो सकता है उतनी ही स्थितिवाले कोई परमाणु यहां माथे के प्रदेशों में हैं, कोई यहां उंगली के प्रदेशों में, कोई पैर के यहां हैं, कोई पेट के वहां हैं, कहीं पर भी हो - जिनकी-जिनकी समान स्थिति है उनको एक लाइन में बतायेंगे और उनको एक निषेक कहेंगे। यहां तक बात ख्याल में आती है ? निषेक किसको कहना बस इतनी बात यहां है, हमें इससे इतना ही मतलब है।

अब आगे देखते हैं- अनुभाग रचना में क्या-क्या बताना चाहते हैं ? कर्म परमाणु अनंतों में बंधते हैं। एक कर्म परमाणु को एक वर्ग कहेंगे क्योंकि हर एक में कोई न कोई फलदान शक्ति है। जैसे हम पानी का टेम्परेचर नापते हैं, कैसे ? डिग्री में नापेंगे न ? यानी वह उसका यूनिट है। हमें लेन्थ नापनी है, तो मिलिमीटर; मान लेते हैं हमने उसको स्मॉलेस्ट यूनिट बनाया, तो वह उसका नापने का यूनिट हो गया। अगर हमें कोई अन्य चीजें नापनी हैं - वजन नापना है तो उसका मिनिमम यूनिट मिलिग्राम कहेंगे। हर एक चीज़ नापने का कोई यूनिट होता है, ऐसे ही कर्म की शक्ति नापने का जो यूनिट है उसको क्या कहेंगे ? अविभागप्रतिच्छेद। शक्ति का स्मॉलेस्ट अंश यानी यूनिट कि जिसका दूसरा विभाग नहीं कर सकते, उसे अविभागप्रतिच्छेद कहते हैं। इसमें कर्मों की शक्ति नापेंगे। ज्ञान की पर्याय की शक्ति ज्ञान के अविभागप्रतिच्छेदों में नापते हैं और कर्म का आवरण करनेवाली हो, विघ्न करनेवाली हो, विपरीतता लानेवाली हो - अपनी-अपनी शक्ति को अपने अविभागप्रतिच्छेदों में नापते हैं। तो उसका नाम क्या है ? अविभागप्रतिच्छेद।

प्रत्येक परमाणु में विशिष्ट अविभागप्रतिच्छेद होते हैं। अब जिनमें-जिनमें समान अविभागप्रतिच्छेद हैं, उन परमाणुओं को एक लाइन में बतायेंगे और उसको कहेंगे वर्गणा। वर्ग किसको कहा ? एक-एक परमाणु को; कौनसे परमाणु ? कर्म परमाणु। एक-एक कर्म परमाणु को वर्ग कहा। जिनमें-जिनमें समान अविभागप्रतिच्छेद होते हैं, ऐसे वर्गों के समूह को यानी कर्म परमाणुओं के समूह को एक वर्गणा कहा। एक वर्गणा से उसके ऊपर की दूसरी वर्गणा के प्रत्येक परमाणु में एक अविभागप्रतिच्छेद

ज्यादा होता है। मिनिमम अविभागप्रतिच्छेद भी कितने हैं ? अनंत हैं। उन अनंतों में एक बढ़ा दो तो एक अधिक अविभागप्रतिच्छेदवाले जितने कर्म परमाणु हैं उनके समूह को क्या कहेंगे ? दूसरी वर्गणा। एक और अधिक है तो ? तीसरी वर्गणा। उससे एक और अधिक है तो ? चौथी वर्गणा। ऐसे अनंत वर्गणाओं तक एक-एक अविभागप्रतिच्छेद से बढ़ते हुये वर्गों के समूह यानी वर्गणा हैं। इन वर्गणाओं के समूह को प्रथम स्पर्धक कहेंगे।

एक स्पर्धक के बाद क्या होता है ? वर्गों के अविभागप्रतिच्छेद एकदम जम्प करके बहुत अधिक बढ़ जाते हैं। मिनिमम अनंत के बदले हम १०० मान लेते हैं। यानी १००, १०१, १०२, १०३, १०४ फिर जम्प करके एकदम २०० हो जायेंगे। तो २०० से शुरू होकर २००, २०१, २०२, २०३, २०४वाली वर्गणाओं का दूसरा स्पर्धक होगा। फिर जम्प करके एकदम ३०० हो जायेंगे। यह मैंने दृष्टांत दिया - वैसे एक-एक अविभागप्रतिच्छेद से बढ़ते हुये वर्गों के समूहरूप वर्गणाओं के समूह को कहेंगे स्पर्धक। जहां अविभागप्रतिच्छेद दुगुणा होकर शुरुआत होती है उसको कहेंगे दूसरे स्पर्धक की पहली वर्गणा; तीन गुणा होकर तीसरा स्पर्धक शुरू होगा। चार गुणा होता है तो चौथा स्पर्धक - ऐसे स्पर्धक भी अनंत होते हैं। एक-एक वर्गणा में परमाणु अनंत, ऐसे एक-एक स्पर्धक में वर्गणा अनंत और ऐसे स्पर्धक भी अनंत होते हैं और प्रत्येक निषेक में ऐसे अनंतानंत स्पर्धक होते हैं। आप इमोजिन कर सकते हैं एक समय में बंधे हुये कर्म परमाणु कितने अनंतानंत होंगे ! प्रत्येक निषेक में जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक सभी स्पर्धक पड़े हैं। अब हम पुस्तक के आधार से पढ़ेंगे- **कर्म परमाणुओं में स्थिति के साथ-साथ विशिष्ट अनुभाग भी होता है, उनकी अपनी फलदान शक्ति होती है। इस शक्ति को अविभागप्रतिच्छेदों में नापा जाता है। शक्ति के सबसे छोटे अंश को अविभागप्रतिच्छेद कहते हैं। कर्म परमाणुओं में उनकी शक्ति के अविभागप्रतिच्छेद होते हैं, इसलिये एक परमाणु को एक वर्ग कहते हैं।** हमने देखा न, कर्म परमाणु को वर्ग कहेंगे और जिनमें-जिनमें समान अविभागप्रतिच्छेद होते हैं, ऐसे वर्गों के समूह को वर्गणा कहेंगे।

यह विषय अभी थोड़ा क्लिष्ट लगेगा - कठिन लगेगा, परंतु हमारा पंचलब्धि का विषय सरल है। परंतु इन शब्दों से हम परिचित हो जायेंगे तो आगे कौनसी लब्धि में कर्मों में क्या-क्या परिवर्तन होते हैं, वह जानना हमारे लिये आसान हो जायेगा। **जिन**

परमाणुओं में अर्थात् वर्गों में समान अविभागप्रतिच्छेद पाये जाते हैं, उन वर्गों के समूह को वर्गणा कहते हैं। सबसे कम अविभागप्रतिच्छेदवाले वर्गों की वर्गणा को जघन्य वर्गणा या प्रथम वर्गणा कहते हैं। जैसे हमने आपको अभी १०० डिग्री बताया, १०० डिग्रीवाला है, १०१वाला, १०२वाला है तो नीचे की वर्गणा जघन्य है। द्वितीय वर्गैरह को ऊपर की कहेंगे। पृष्ठ ४६ निकालना- **अनंत वर्गणाओं के समूह को स्पर्धक कहते हैं।** वे कैसे हैं ? हमने देखे थे- एक-एक से बढ़ते हुये। **वर्गणाओं के वर्गों के अविभागप्रतिच्छेद बढ़ते-बढ़ते जिस वर्गणा में दुगुणे होते हैं,** जैसे हमने देखा था १०० से लेकर एक-एक से बढ़ते हैं- १०१, १०२, १०३, १०४; फिर एकदम दुगुणे हो गये। १०४ के बाद एकदम २०० हो गये तो **वहां से क्या कहेंगे ? दूसरा स्पर्धक।** २०१, २०२, २०३, २०४ के बाद एकदम ३०० होंगे; उसको कहेंगे तीसरा स्पर्धक। यह उसका अर्थ होता है। जब तीन गुणा होते हैं, तब तीसरा स्पर्धक।

किसी एक समय में बंधे हुये परमाणुओं की जब हम निषेक रचना देखते हैं तो उसके प्रथम निषेक में परमाणुओं की संख्या सर्वाधिक होती है, अब जिनके पास पुस्तक की नयी एडिशन है उसमें सुधारा किया हुआ है। आपके पास नयी पुस्तक है ? उसमें वह मॅटर काटा हुआ है न ? काटकर वैसा ही रखा है। हम नयी एडिशन में उसको डिलीट भी कर सकते थे, परंतु उस पर लाइन बनाकर काटकर रखा है। अभी मैं बताती हूं यहां करेक्शन करना है। फिर से पढ़ती हूं दूसरी लाइन- **उसके प्रथम निषेक में परमाणुओं की संख्या सर्वाधिक होती है,** बाद में लिखा है, 'परंतु अनुभाग सबसे हीन होता है।' तो 'अनुभाग सबसे हीन होता है' यह वाक्य निकाल दो। जब हमने सीखा था, तब हमें ऐसा ही पढ़ाया गया था इसलिये वैसे ही लिखा था। परंतु जब हमारा स्वयं का आगम ग्रंथों का अध्ययन हुआ, तब यह बात ख्याल में आयी कि हमने जो सीखा था वह गलत है। इसलिये पुस्तक में बाद में नये एडिशन में सुधारा भी है और सुधारा हुआ काटकर वैसे रखा है। कई पुस्तकों में नहीं हुआ होगा तो वह कर लेना। क्या कहा ? 'अनुभाग सबसे हीन होता है' इतना वाक्य निकाल दो। आपके उसमें निकाला हुआ है ? *श्रोता: हां निकाला हुआ है।* अब मैं सही पढ़ती हूं- **प्रथम निषेक में परमाणुओं की संख्या सर्वाधिक होती है, परंतु ऊपर-ऊपर के निषेकों में परमाणु कम होते जाते हैं।** यह बराबर है, परंतु उसके आगे और लिखा है न- 'और अनुभाग बढ़ता जाता है', वह भी निकाल दो।

निषेक रचना जुदी बात है और अनुभाग रचना जुदी बात है। ऐसा नहीं है कि नीचे के निषेकों में अनुभाग कम है और ऊपर में ज्यादा है - ऐसा नहीं है। इसके लिये लब्धिसार, जयधवला आदि ग्रंथों में से अनेक जगह मैं उसका प्रूफ निकालकर बता सकती हूँ। जहां स्पर्धक वगैरह आगे श्रेणी की बात बतायी है, वहां पर भी यह बात क्लिअरली लिखी है। इसलिये आगम के अनुसार पंचलब्धि पुस्तक में करेक्ट कर लें। यह जो अनुभाग रचना होती है, उसमें भले अनंत स्पर्धक होते हैं, परंतु आचार्यों ने हम पर करुणा करके इन अनंतों को चार नामों में विभाजित कर दिया। हमें समझ में आये कि इसमें बहुत कम अनुभाग है कि थोड़ा ज्यादा है कि बहुत ज्यादा है कि बहुत ही ज्यादा है। हम चार-चार नाम ले लेते हैं, तो उसमें हमें यह समझ में आता है कि अनुभाग कितना है। हम हर एक को शुरू से काउंट करेंगे- वन, टू, थ्री, फोर। जैसे हमने देखा, घातिकर्मों के स्पर्धकों के भी चार नाम बतायेंगे, भले वे ज्ञानावरण के हो, दर्शनावरण के हो या मोहनीय के हो, उनके नाम समान हैं परंतु सबके अपने-अपने स्पर्धक जुदे-जुदे हैं। हर एक की निषेक रचना जुदी है, हर एक का अपना अनुभाग जुदा है, अपना-अपना फल जुदा है। ज्ञानावरण का कार्य जुदा है, दर्शनावरण का कार्य जुदा है। परंतु सबके स्पर्धक के नाम सेम है, कौनसे नाम हैं वह हम देखेंगे।

हम हीन अनुभाग से अधिक अनुभाग तक बढ़ेंगे तो उनके यहां नाम क्या लिखे हैं ? देखो पृष्ठ ४६ नीचे से दूसरा पॅरेग्राफ- **प्रत्येक कर्म प्रकृति की अनंतानंत वर्गणा और स्पर्धक होते हैं। वहां मंद अनुभाग से लेकर तीव्रतम यानी मॅक्झिमम अनुभाग तक अनेक स्पर्धक बताने के लिये उपमा देकर - नाम देकर समझाया जाता है।** अब घातिकर्म के स्पर्धकों के नाम अलग हैं, अघातिकर्म के अलग हैं। अघातिकर्म में पुण्य प्रकृतियों के स्पर्धकों के नाम अलग हैं और पाप प्रकृतियों के स्पर्धकों के नाम अलग हैं। हमें तीन प्रकार के जुदे-जुदे नाम याद रखने पड़ेंगे। घातिकर्म में मंद से तीव्र अनुभागवाले स्पर्धकों के चार प्रकार इसतरह हैं; मैं एक-एक नाम लूंगी, आपको रिपीट करना है। लताभाग। *श्रोता: लताभाग।* दारुभाग। *श्रोता: दारुभाग।* अस्थिभाग। *श्रोता: अस्थिभाग।* और शैलभाग। *श्रोता: शैलभाग।* सामान्य से हम उसको लता, दारु, अस्थि और शैल कह सकते हैं। दारु कहने से वह रु ह्रस्व है, दीर्घ नहीं है। एक बात और- दारु यानी काष्ठ; सूखी लकड़ी को दारु कहते हैं।

यहां उपमा दी है, उपमा क्या है ? वह कितना नरम है या कठिन है उसकी

अपेक्षा से बताया है। जैसे लता एकदम नरम होती है, उससे सूखी लकड़ी कठिन है, उससे भी अस्थि यानी हड्डी कठिन है और शैल यानी पत्थर सबसे अधिक कठिन है। तो इसतरह से यहां मंद अनुभागवाले; कौनसे ? घातिकर्म हैं उनको हम लताभागवाले कहेंगे, फिर दारुभागवाले, फिर अस्थिभागवाले और सबसे तीव्र अनुभागवाले को शैल अनुभागवाले कहेंगे। यहां इन चार नामों को समझना है। शैलवाले हैं, तो हम नीचे से एक, दो, तीन चार गिनेंगे, तो शैलवाले स्पर्धकों को हम चतुःस्थानगत कहेंगे - चारों आ गये न उसके अंदर। कहीं कहेंगे त्रिस्थानगत, कहीं कहेंगे द्विस्थानगत। जब त्रिस्थानगत कहेंगे तो ऊपर के शैलवाले नहीं हैं, ऐसा उसका अर्थ होता है। शास्त्र में ऐसे शब्द आते हैं तो उसका अर्थ क्या है बस हमें इतना देखना है। देखो, यहां पढ़ते हैं पृष्ठ ४७- **इसतरह ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय व अंतराय कर्मों में तीव्रता की अपेक्षा अभी तीव्रता से मंद की ओर कहेंगे तो शैल, अस्थि, दारु और लता ऐसे अनुभाग के चार स्थान पाये जाते हैं।** इसको स्थान कहते हैं। **जब किसी कर्म में चारों ही प्रकार का अनुभागबंध होता है** अभी बंधने की बात कर रहे हैं; कितना बंध हुआ ? **तो उसे चतुःस्थानगत बंध कहते हैं।** किसका ? घातिकर्म का। यानी कैसे परिणाम होंगे ? मंद होंगे कि अतितीव्र होंगे ? *श्रोता : अतितीव्र होंगे।* अतितीव्र होंगे न, क्योंकि चारों स्थानों का बंध है; उसने शैल टाइप के भी बांधे इसका अर्थ होता है उसके तीव्र संक्लेश परिणाम हुये, तीव्र कषाय हुये।

जीव के विशुद्ध परिणामों के निमित्त से विशुद्ध यानी मंद कषाय को विशुद्ध कहते हैं, यहां वीतरागता से कोई लेना-देना नहीं है। संक्लेश और विशुद्धि ऐसे दो नाम आते हैं- जहां तीव्र कषाय उसको संक्लेश कहेंगे, कषायों की मंदता होती हो उसको विशुद्धि कहेंगे। हर जीव के संक्लेश और विशुद्धि के परिणाम ऑल्टरनेटली चलते रहते हैं, एकेन्द्रियों में भी चलते रहते हैं। कई जीवों का ऐसा प्रश्न है, जीव पाप करके तो निगोद में गया, अब कोई निगोद से मरकर मनुष्य होकर उसी भव में मोक्ष भी जा सकता है। मोक्ष जायेगा तो निगोद में मनुष्यायु, मनुष्यगति, वज्रवृषभनाराचसंहनन आदि सब पुण्य प्रकृति बांधकर आना पड़ेगा न उसको ? तो वहां उसने कौनसा पुण्य किया होगा ? हां, क्या होगा ? वह शिखरजी के वृक्ष का वनस्पतिकायिक होकर जन्मा होगा ? कि मंदिर में घंट बजता है उसके ऊपर रहता होगा ? क्या लगता है हमें ? हमने किसी क्रिया में परिणाम होना माने हैं। जीव के सहजरूप से संक्लेश और विशुद्धि

होती रहती है, पलटती रहती है, मंद और तीव्र कषाय सहजरूप से होते रहते हैं।

श्रोता : *सम्यग्दृष्टि को भी ?* सम्यग्दृष्टि को भी। उसके योग्य परिणाम होंगे कि नहीं होंगे ? अब मुनि को भी होंगे कि नहीं होंगे ? छठे गुणस्थानवाले को विशुद्धि होती है तो वह सातवें में पहुंचता है और सातवेंवाला कालांतर से विशुद्धि कम होती है, संक्लेश की ओर बढ़ता है तो - उसको भी संक्लेश कहेंगे क्योंकि वह अभी छठे के सन्मुख है। कहां किस अपेक्षा से बात है उसको समझना चाहिये। मिथ्यादृष्टि के संक्लेश और ऊपर के गुणस्थानों में संक्लेश ईकल नहीं होंगे, ख्याल में आया न ? श्रेणी चढ़ते समय कहेंगे उपशमश्रेणी चढ़ रहा है, तो विशुद्धि बढ़ रही है। उतरने में क्या होगा ? संक्लेश कहेंगे, चढ़ने की अपेक्षा संक्लेश कहेंगे, नीचे के गुणस्थानों की अपेक्षा उसको हम विशुद्धि में गिनेंगे, ख्याल में आयी बात ? देखो, सम्यग्दर्शन हुआ तो क्या हुआ ? अभी केवल अनंतानुबंधी गया है, तीन कषाय चौकड़ी बाकी हैं, उनमें भी मंदता तीव्रता चलेगी। चौथे गुणस्थानवाले को अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन तीन कषाय चौकड़ी का उदय है, तो उसमें मंदता तीव्रता होगी कि नहीं होगी ? क्या सम्यग्दर्शन होगा तो ऐसा मुंह लटकाकर बैठ जायेगा वह ? हां ?

आगे देखते हैं- **जीव के विशुद्ध परिणामों के निमित्त से विशुद्ध यानी मंद कषाय जब अति तीव्र अनुभागवाली घातिकर्म की प्रकृति नहीं बंधती है** यानी वह शैलभागवाले नहीं बंधेंगे; थोड़े मंद कषाय हैं तो क्या होगा ? **तब त्रिस्थानगत - यानी कौनसे बंधेंगे ? अस्थि, दारु, लता भागवाले स्पर्धक बंधते हैं, शैलभागवाले नहीं बंधते** स्पर्धक कहा, ये स्पर्धकों के नाम हैं। चार नाम बताये, एक-एक में अनंत-अनंत स्पर्धक होते हैं, फिर भी चार नामों में उनको समझाया जाता है। **और जब द्विस्थानगत बंध होता है तब दारु और लता भागरूप बंध होता है; शैल, अस्थि भागवाला बंध नहीं होता।** यह उसका अर्थ होता है। जैसे हमने घातिकर्म में चार प्रकार के स्पर्धक देखे, वैसे अघातिकर्म में भी चार प्रकार के स्पर्धक होते हैं। हमें अघातिकर्म में चार देखना है। पुस्तक में पढ़ते हैं, अघातिकर्म की प्रकृतियों में दो भेद कौनसे देखे थे ? *श्रोता: प्रशस्त और अप्रशस्त।* प्रशस्त और अप्रशस्त। अभी प्रशस्त के स्पर्धकों के नाम जुदे होंगे और अप्रशस्त के स्पर्धकों के नाम जुदे होंगे। प्रशस्त में नीचे से ऊपर मिठास बढ़ती हुयी कहेंगे और अप्रशस्त में नीचे से ऊपर तक कड़वाहट बढ़ती हुयी बतायेंगे। नीचे यानी मंद ऊपर यानी तीव्र। उनके नाम देखेंगे।

अप्रशस्त प्रकृतियों में मंद से तीव्र अनुभागवाले स्पर्धकों के चार स्थान इसप्रकार हैं - अघातिकर्म के अप्रशस्त देख रहे हैं। घातिकर्म तो सारे अप्रशस्त थे, उनके कौनसे नाम देखे थे ? लता, दारु, अस्थि और शैल। अब अघातिकर्म की अप्रशस्त यानी पाप प्रकृतियों में मंद अनुभागवाले स्पर्धकों के नाम क्या हैं ? **निंब, निंब कहो या नीम कहो एक ही बात है** - दोनों ही नाम आते हैं। **कांजीर, विष और हलाहल।** कड़वाहट की अपेक्षा अधिक-अधिक कड़वाहट है, उसकी अपेक्षा ये नाम दिये हैं। **ये पदार्थ अधिकाधिक कटु हैं - कड़वे हैं, उसी प्रकार इनमें अनुभाग तीव्र है। जब जीव के परिणामों की विशुद्धि बढ़ती जाती है, विशुद्धि बढ़ती है यानी कषायों में मंदता आती है तब अघातिया की अप्रशस्त प्रकृति का अनुभागबंध भी द्विस्थानगत रह जाता है, चतुःस्थानगत बंध नहीं होता।** देखो, तत्त्वज्ञान का अभ्यास होता है या ऊपर के गुणस्थानों में चढ़ता है या अंतरंग में स्थिरता बढ़ती है तो जीवों के परिणामों के निमित्त से क्या होता है ? सत्ता में पड़े हुये अप्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग भी घटता चला जाता है और अप्रशस्त का जो नया बंध होता है न, उसका अनुभाग भी अत्यंत मंद होता है। यह प्रक्रिया सहजरूप से होती है। जीव को इसमें कुछ करना नहीं है यानी वह कर्मों में कुछ कर ही नहीं सकता।

जीव सोच समझकर कर्मों में कुछ नहीं कर सकता है। अपने आत्मा का अनुभव करना या अपना स्वरूप पहचानना या अपने में लीन होना - यही जीव के हाथ की बात है और तब कर्मों में ये अवस्थाएँ सहजरूप से होती हैं। परंतु हमें इसका भरोसा नहीं है कि कर्मों में ये अवस्थाएँ सहजरूप से होती हैं। जितना भरोसा क्रोसिन की गोली पर है कि सिरदर्द हो रहा है, बुखार आया है, तो क्रोसिन की गोली दे दो। आप कौनसी खाते हो ? *श्रोता: क्रोसिन ही खाते हैं।* क्रोसिन ही खाते हैं ? आप डोलो की गोली खाती होगी। अरे, पंद्रह मिनट - आधे घंटे में बुखार उतर जायेगा। तो क्या इतना भरोसा है कि तत्त्वज्ञान का विचार करेंगे और अंतर्मुहूर्त के अंदर सम्यक्त्व हो जायेगा ? हमने उसको इतना डिफिकल्ट और कठिन मानकर रखा है न ! यह तो सरल बात है। वह कितना सरल है उसको हम देखने जा रहे हैं। कहते हैं-

इतना ही नहीं पूर्व में बंधे हुये चतुःस्थानगत स्पर्धकों का अनुभाग अनंतगुणा हीन, हीन होता जाता है क्या कहा ? अनंतगुणा हीन यानी अनंतवें भाग प्रमाण रह जाना। पहले बांधा हुआ सत्ता में चतुःस्थानगत पड़ा था क्योंकि पहले हमने न

जाने कैसे-कैसे परिणाम करके कर्म बांधे थे, वे सारे तीव्र अनुभागवाले बंधे हुये कर्म सत्ता में पड़े हैं। तत्त्वज्ञान का विचार करते हैं, उसमें अपना मन लगता है तो अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग भी अपने आप घट जाता है और सत्ता में पड़े हुये कर्मों में द्विस्थानगत अनुभाग शेष रहता है। इसकी चर्चा तो यथास्थान आयेगी ही। यथास्थान कब ? जब अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण तीन करण परिणामों की बात करेंगे तब ये सब नाम आनेवाले हैं। चतुःस्थानगत, द्विस्थानगत आदि नाम वहां आनेवाले हैं, इसलिये उन शब्दों से यहां परिचय करा रहे हैं। इसे अब चार्ट द्वारा समझेंगे। यहां सबके नाम एक साथ लिख दिये हैं ताकि समझने में आसानी हो जावे।

घाति और अघाति कर्मों के स्पर्धकों में अनुभाग की अपेक्षा चार-चार स्थान - उनको नीचे से ऊपर पढ़ेंगे। घातिकर्म में क्या लिखा है ? वे सभी अप्रशस्त ही हैं। पहले में पहले यह निश्चित करना है कि इनमें कोई पुण्य प्रकृति नहीं हैं और हर समय बंध रही हैं जब तक मिथ्यात्व कायम है। मिथ्यात्व से ये सब बंध ही रही हैं। नीचे से ऊपर पढ़ते हैं- मैं एक-एक नाम लूंगी, आपको रिपीट करना है। लता। श्रोता: लता। दारु। श्रोता: दारु। अस्थि। श्रोता: अस्थि। और शैल। श्रोता: शैल। ये किसके नाम हैं ? श्रोता: घातिकर्मों के। घातिकर्मों के स्पर्धकों के। अभी अघातिकर्मों में दो भेद किये- प्रशस्त और अप्रशस्त। प्रशस्त को पुण्य प्रकृति कहते हैं और अप्रशस्त को पाप प्रकृति कहते हैं। प्रशस्त के स्पर्धकों के नाम नीचे से ऊपर फिर रिपीट करना। गुड़। श्रोता: गुड़। खाण्ड। श्रोता: खाण्ड। शर्करा। श्रोता: शर्करा। और अमृत। श्रोता: अमृत। शर्करा समझते हैं ? मिश्री की डली आती है न ? मराठी में 'खड़ी साखर' कहते हैं। अब अघाति के अप्रशस्त के स्पर्धकों की बात है। निंब। श्रोता: निंब। कांजीर। श्रोता: कांजीर। विष। श्रोता: विष। और हलाहल। श्रोता: हलाहल।

अभी यहां तक तो हमने ये चार-चार नाम देखे, याद नहीं हुये तो पुस्तक में जरा देख लेना। हमने घातिकर्मों के स्पर्धकों के कौनसे चार नाम देखे ? लता, दारु, अस्थि और शैल। अघातिकर्मों में पुण्य प्रकृति के स्पर्धकों के कौनसे चार नाम देखे ? गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत। अघातिकर्मों में पाप प्रकृतियों के कौनसे चार नाम देखे ? निंब, कांजीर, विष, हलाहल, यहां तक बात समझ में आयी ? श्रोता: यह कांजीर क्या होता है ? वह कांजीर यानी कड़वा करियाता कुछ होता है न। श्रोता: करियाता। श्रोता: करियाता क्या है ? हिंदी में चिरायता कहते हैं। मराठी में काडे जिराइट कहते हैं।

समझना कोई कड़वी दवा है; उसका काढ़ा पीते हैं न कड़वा ? अब आगे बढ़ें थोड़ा ?

अभी घातिकर्मों में विशेषता है। हमने चार नाम कौनसे देखें ? लता, दारु, अस्थि और शैल। अब घातिकर्मों में दो प्रकार के स्पर्धक होते हैं। शाम को इसका और विस्तार करेंगे ही, अभी थोड़ा बराबर सुनना। घातिकर्मों में स्पर्धकों के दो टाइप होंगे; हम यहां प्रकृतियों की बात नहीं ले रहे हैं, प्रकृतियों की बात बाद में करेंगे। हम कभी स्पर्धक कहेंगे, कभी प्रकृतियां कहेंगे। जब प्रकृतियां कहेंगे तो मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण ये प्रकृतियां है और जब स्पर्धक कहेंगे तो प्रत्येक प्रकृति में, वह भले मतिज्ञानावरण हो या केवलज्ञानावरण हो - उसमें कौन-कौनसे स्पर्धक पाये जाते हैं, वे अलग-अलग जाति के होते हैं। प्रकृतियां भी सर्वघाति, देशघाति होती हैं और स्पर्धक भी सर्वघाति, देशघाति होते हैं। पहले सर्वघाति किसको कहना और देशघाति किसको कहना उसकी चर्चा करेंगे।

क्षयोपशम की परिभाषा बहुत महत्व की है और जब तक सर्वघाति, देशघाति नहीं समझते हैं, तब तक क्षयोपशम क्या है वह ख्याल में नहीं आता है। वैसे तो हम कहते हैं- हमारे ज्ञान का क्षयोपशम चल रहा है, हमें क्षयोपशम सम्यक्त्व हुआ है। यह जो हम कहते हैं क्षयोपशम है - क्षयोपशम है परंतु उसका सही अर्थ भासित नहीं होता है। इसलिये हम यहां देखेंगे सर्वघाति क्या होते हैं और देशघाति क्या होते हैं। सर्वघाति यानी पूरा ही घात करते हैं; किसका ? जीव का ? प्रतिपक्ष का। अपने प्रतिपक्ष का पूरा घात होता है तब कहेंगे सर्वघाति स्पर्धकों का उदय है। देशघाति स्पर्धक किसको कहेंगे ? देश यानी एकदेश-पार्शल; देशघाति स्पर्धक पूरा घात करने में समर्थ नहीं हैं; उनका उदय भी होता रहे और प्रतिपक्ष गुण का कार्य भी होता रहे उनको कहेंगे देशघाति स्पर्धक। यहां तक समझ में आया ? सर्वघाति का अर्थ क्या है ? पूरा ही घात और देशघाति का अर्थ क्या होता है ? पार्शल घात।

कहते हैं कि सर्वघाति स्पर्धक किसमें होते हैं और देशघाति स्पर्धक किसमें, कौनसी प्रकृति में होते हैं ? अब हम बाकी चर्चा नहीं करते हुये ज्ञानावरण की बात करेंगे। बाद में अन्य सभी प्रकृतियों को देखेंगे। ज्ञानावरण घातिकर्म है कि अघातिकर्म है पहले नक्की करो। *श्रोता: घातिकर्म है।* घातिकर्म है। उसके पांच भेद हैं न, उसमें हम केवलज्ञानावरण की बात करते हैं। केवलज्ञानावरण का उदय कहां से कहां तक

है ? १ ले गुणस्थान से १२वें तक है, तो क्या होता है ? केवलज्ञान किसीको प्रकट नहीं है। केवलज्ञानावरण के उदय में उसके प्रतिपक्षी में क्या हो रहा है ? पूरा घात हो रहा है; यानी केवलज्ञान बिलकुल प्रकट नहीं है। थोड़ासा प्रकट होगा ? *श्रोता: नहीं/ नहीं* बिलकुल नहीं है। तो वह कैसी प्रकृति है ? *श्रोता: सर्वघाति/* प्रकृति सर्वघाति है और उसमें स्पर्धक कौन-कौनसे होंगे ? लता, दारु, अस्थि वगैरह होंगे कि नहीं होंगे ? तो कहते हैं नहीं होंगे। लता और दारु का अनंतवां भाग ये देशघाति स्पर्धक हैं और दारुवाले ऊपर के अनंत स्पर्धक, अस्थिवाले और शैलवाले स्पर्धक सर्वघाति हैं।

जो सर्वघाति प्रकृतियां हैं, कौनसी हैं हम देखेंगे। पहले केवल एक प्रकृति लेकर हम बताते हैं। केवलज्ञानावरण कैसी प्रकृति है ? तो कहते हैं सर्वघाति प्रकृति है। परंतु हमने घातिकर्मों के स्पर्धक के नाम देखे थे लता, दारु, अस्थि और शैल। परंतु सर्वघाति प्रकृति के सभी स्पर्धक सर्वघाति ही होते हैं। क्या कहा ? जो-जो सर्वघाति प्रकृतियां हैं, वे कौनसी हैं हम बाद में देखेंगे, इसी पुस्तक में बतायेंगे आपको। उसके सभी स्पर्धक कैसे होते हैं ? *श्रोता: सर्वघाति/* सर्वघाति ही होते हैं। केवलज्ञानावरण कितना भी मंद क्यों न हो, उसमें कौन-कौनसे स्पर्धक होते हैं ? तो कहते हैं उसमें लतावाले तो हैं ही नहीं, दारु के अनंतवें भाग में देशघाति स्पर्धक होते हैं वे भी उसमें नहीं हैं। तो केवलज्ञानावरण के स्पर्धकों की स्टार्टिंग कहां से है ? दारु का ऊपर का अनंत बहुभाग जो है जो सर्वघाति है, वहां से लेकर उसमें अस्थि टाइप के भी और शैल टाइप के भी स्पर्धक हैं। कितनी भी विशुद्धि बढ़ जाये और शैल टाइप के नहीं भी रहे, अस्थिवाले हो जाये, दारुवाले हो जाये, तो भी वे हमेशा कैसे रहेंगे ? *श्रोता: सर्वघाति/* सर्वघाति ही रहेंगे। यानी केवलज्ञानावरण प्रकृति के स्पर्धक देशघाति होकर उदय में आवें ऐसा कभी नहीं होगा। जब तक ज्ञानावरण कर्म का पूर्ण नाश नहीं होता है, तब तक जीव को केवलज्ञान प्रकट नहीं है, यह उसका अर्थ है। फिर से देखते हैं-

प्रकृतियों में दो भेद करेंगे, सर्वघाति प्रकृति और देशघाति प्रकृति। ज्ञानावरण की पांच प्रकृतियां हैं उनमें से केवलज्ञानावरण सर्वघाति प्रकृति है। मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण कैसी प्रकृतियां हैं ? *श्रोता: देशघाति/* देशघाति प्रकृतियां हैं। सर्वघाति प्रकृति के सभी स्पर्धक सर्वघाति ही होते हैं, ही लगाना। केवलज्ञानावरण में कौनसे स्पर्धक हैं ? शैल भी हैं, अस्थि भी हैं और दारु का बहुभाग जो सर्वघाति होता है। मतिज्ञानावरण देशघाति प्रकृति है। देशघाति प्रकृति

में स्पर्धक कौनसे होंगे यह प्रश्न है। उसमें सर्वघाति स्पर्धक भी होंगे और देशघाति स्पर्धक भी होंगे। फिर से सुनना- मतिज्ञानावरण का बंध हुआ तो उसमें सर्वघाति स्पर्धक भी हैं और देशघाति स्पर्धक भी हैं। यानी कौन-कौनसे हैं ? शैलवाले भी हैं, अस्थिवाले भी हैं, दारु का बहुभाग तो सारे सर्वघाति स्पर्धक ही हैं, दारु का जो अनंतवां भाग है - जो देशघाति स्पर्धक हैं वे भी उसमें हैं और लतावाले भी हैं। तो मेरा प्रश्न है मतिज्ञानावरण के सर्वघाति का उदय हो जावे तो क्या होगा ? *श्रोता: जीव जड़ हो जायेगा।* मतिज्ञान का अंश भी नहीं रहेगा, मतिज्ञान पूरा मिट जायेगा तो जीव जड़ हो जायेगा। ऐसा कब होगा ? *श्रोता: कभी नहीं।* कभी नहीं होगा।

यानी मतिज्ञानावरण प्रकृति ऐसी है कि उसके सर्वघाति स्पर्धकों का बंध तो है, सर्वघाति स्पर्धक सत्ता में भी हैं, परंतु सर्वघाति स्पर्धकों का कभी भी अपनेरूप से उदय नहीं होगा। परंतु जो परमाणु बंधे हैं, उनका उदय तो आयेगा ही, तो उदय में आते-आते एक समय में वे देशघातिरूप टर्न होकर उदय में आते हैं। क्या कहां ? हर निषेक में देशघाति और सर्वघाति स्पर्धक पड़े हैं; हमने जो निषेक रचना देखी है उसमें प्रत्येक निषेक में दोनों प्रकार के स्पर्धक ऊपर तक पड़े हैं। वर्तमान का एक निषेक जो उदयरूप है, उस उदयरूप निषेक में क्या पोझिशन होती है ? वे सारे शैल, अस्थि वगैरह सर्वघाति स्पर्धक जो हैं वे लता, दारुरूप होकर देशघातिरूप से उदय में आते हैं। हां, उनमें क्लेरिफिकेशन होंगे; हम देखते हैं न, एकेन्द्रियों का भी मतिज्ञान है और हमारा आपका भी मतिज्ञान है। उनको ज्यादा आवरण है; देशघातिपने में भी हीनाधिकता होगी, उसकी बात अभी नहीं करनी। सामान्यरूप से हम देखते हैं कि मतिज्ञानावरण के सर्वघाति स्पर्धकों का उदय कभी नहीं होगा; सर्वघाति स्पर्धकों का बंध हुआ है, वे सत्ता में पड़े हैं, दूसरे निषेक से लेकर ऊपर सर्वत्र पड़े हैं। जो वर्तमान उदयरूप निषेक है, उसका उदय होते-होते वहां के सर्वघाति स्पर्धक देशघातिरूप टर्न होकर उदय में आते हैं। अभी इसीको हम क्षयोपशम की परिभाषा में समझेंगे।

पुस्तक के आधार से देशघाति, सर्वघाति स्पर्धक का स्वरूप पहले देखते हैं। देखो पृष्ठ ४८, तीसरा पॅरेग्राफ- **इन प्रकृति के जो स्पर्धक हैं उनमें भी दो प्रकार के स्पर्धक पाये जाते हैं - सर्वघाति स्पर्धक और देशघाति स्पर्धक।** चार्ट के नीचे का पॅरेग्राफ - **घातिकर्म में दो प्रकार की प्रकृति पायी जाती हैं - यह प्रकृतियों की बात है। घातिकर्म कौन-कौनसे हैं ?** *श्रोता: ज्ञानावरण।* ज्ञानावरण। *श्रोता: दर्शनावरण।*

दर्शनावरण। श्रोता: मोहनीय। मोहनीय। श्रोता: अंतराय। अंतराय। इनमें दो प्रकार की प्रकृतियां पायी जाती हैं। कौन-कौनसी ? **सर्वघाति प्रकृति और देशघाति प्रकृति।** अब ज्ञानावरण मूलप्रकृति है उसके भेद कितने हैं ? पांच हैं। उसमें बता रहे हैं **जैसे, केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण आदि सर्वघाति प्रकृति हैं, मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण आदि देशघाति प्रकृति हैं।** ये प्रकृतियों के भेद देखे। अब हम प्रकृतियों के नाम और उनमें से सर्वघाति कौनसी हैं, देशघाति कौनसी हैं देखते हैं। देखो, सर्वघाति, देशघाति की बातें आपको थोड़ी कठिन लगेंगी। एक बार यह समझ लो तो जीव के जो पांच भाव होते हैं न, क्षयोपशम भाव क्या होते हैं, क्षायिक भाव क्या होते हैं, उपशम भाव क्या है आदि समझना बहुत सरल हो जायेगा और विषय भी स्पष्ट हो जायेगा। हम शाम को दुबारा इसको लेनेवाले हैं।

अभी तो कौनसी प्रकृतियां देशघाति हैं, कौनसी प्रकृतियां सर्वघाति हैं, उनको देख लेते हैं पृष्ठ ५४ निकालना- घातिकर्मों की मूलप्रकृतियों के नाम लिखे हैं और उनमें सर्वघाति प्रकृतियां अलग बतायी हैं और देशघाति अलग। उसमें से हम एक-एक मूलप्रकृति देखेंगे। देखो ज्ञानावरण मूलप्रकृति है, उसकी उत्तरप्रकृतियों में से सर्वघाति प्रकृति कौनसी है ? केवलज्ञानावरण। देशघाति प्रकृति कौनसी हैं ? बाकी चार - मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण। अब दर्शनावरण पर घटित करते हैं। दर्शनावरण मूलप्रकृति है, उसमें सर्वघाति कौन-कौनसी हैं ? केवलदर्शनावरण तो है ही और जो पांच निद्रा हैं; कौनसी ? स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, निद्रा, प्रचला वे भी सर्वघाति प्रकृति हैं। किसका नाश कर रही हैं ? जाग्रत अवस्था का नाश कर रही हैं। तो कहते हैं कि ये सब कैसी हैं ? पूरा घात करती है। निद्रा का उदय है तो जाग्रत अवस्था का वहां पूरा नाश है। दर्शनावरण में देशघाति कौनसी हैं ? चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण और अवधिदर्शनावरण। इसको कुछ याद रखने की कोशिश नहीं करना, केवल समझने की बात है।

अब मोहनीय की बात देखते हैं। मोहनीय में बंधनेवाली तो एक मिथ्यात्व प्रकृति ही है और वह कैसी है ? सर्वघाति है। जब प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन होता है तब मिथ्यात्व में से सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति तैयार होती है, वह भी कैसी है ? सर्वघाति प्रकृति है। क्यों ? वह सम्यक्त्व का पूरा घात करती है। परंतु जो सम्यक् प्रकृति तैयार होती है, वह कैसी है ? देशघाति है यानी उसका उदय भी चलता रहता है और सम्यक्त्व भी

बना रहता है। फिर चारित्रमोहनीय में देखते हैं- अनंतानुबंधी चारों ही सर्वघाति हैं, सम्यक्त्व नहीं होने देते। अप्रत्याख्यानावरण चारों ही सर्वघाति हैं, थोड़ा भी त्याग नहीं होने देते। प्रत्याख्यानावरण चारों ही सर्वघाति हैं, थोड़ा भी सकलसंयम नहीं होने देते। ये बारह प्रकृतियां सर्वघाति हैं। देशघाति प्रकृतियां कौनसी हैं ? चारों संज्वलन और नौ नोकषाय देशघाति हैं। अंतराय में क्या लिखा है ? सर्वघाति नहीं हैं, सारी ही प्रकृतियां देशघाति हैं। यहां तक समझ में आया ? हमने यह प्रकृतियों की लिस्ट देखी। यह हमें कैसे समझेगा कि कौनसी प्रकृति सर्वघाति है और कौनसी देशघाति है ? यह तो सर्वज्ञ भगवान ने जो जाना है, जो बताया है वह हम आगम से जानते हैं।

अभी हमें स्पर्धकों को देखना है। हमने पृष्ठ ४९ पर एक नियम देखा है। अभी सुनते समय आपको थोड़ा कठिन लगेगा क्योंकि हम कभी प्रकृति कह रहे हैं, कभी स्पर्धक कह रहे हैं। अभी हमने वह प्रकृतियों का टेबल देखा था। घातिकर्मों के प्रकृतियों के भेद देखे थे, उनमें कौनसे दो भेद देखे ? *श्रोता: सर्वघाति और देशघाति।* सर्वघाति प्रकृति और देशघाति प्रकृति। अभी इस चार्ट में एक बाजू लिखा है सर्वघाति प्रकृति और दूसरी बाजू लिखा है देशघाति प्रकृति। सर्वघाति प्रकृति के नीचे क्या लिखा है ? सर्वघाति स्पर्धक यानी सर्वघाति प्रकृति के सभी स्पर्धक सर्वघाति ही होते हैं। कौनसे ? शैल, अस्थि और दारु का बहुभाग। जो देशघाति प्रकृति है, उसमें स्पर्धक दो प्रकार के पाये जाते हैं। कौनसे ? सर्वघाति स्पर्धक भी पाये जाते हैं और देशघाति स्पर्धक भी पाये जाते हैं। सर्वघाति स्पर्धकों में शैल, अस्थि और दारु का बहुभाग लेना और देशघाति स्पर्धकों में दारु का एक भाग और लतावाला पूरा भाग लेना।

अभी तक हमने सर्वघाति और देशघाति प्रकृतियां देखी, वे किसके भेद हैं ? *श्रोता: घातिकर्मों के।* घातिकर्मों के। फिर इन प्रकृतियों में से जो सर्वघाति प्रकृति है, उसमें स्पर्धक सर्वघाति ही होते हैं और जो देशघाति प्रकृति है उसमें स्पर्धक कैसे-कैसे होते हैं ? *श्रोता: सर्वघाति और देशघाति।* सर्वघाति भी और देशघाति भी। यह तो अभी हमने सुना है। थोड़ा इसको पचाओ भोजन के साथ, फिर शाम को हम क्षयोपशम कैसे घटित करना है, उसका अर्थ क्या होता है उसको और दुबारा देखेंगे। इस बात को भी रिपीट करके आगे बढ़ेंगे। अभी यहीं रुकते हैं हम।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

५. क्षयोपशम

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका ढूंढ़ारी भाषा में लिखी है। उस ग्रंथ के आधार से प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने के पूर्व में जो पांच लब्धि होती हैं उनका स्वरूप हम यहां विस्तार से देखने जा रहे हैं। उनका स्वरूप देखने के लिये कर्म संबंधी जो आवश्यक जानकारी होनी जरूरी है, उनके पारिभाषिक शब्दों का अर्थ क्या है उसको देखते हुये हम आगे बढ़ेंगे।

वैसे अभी जो अपना क्षयोपशम संबंधी विषय चल रहा है; सर्वघाति, देशघाति संबंधी, यह इतना जो थोड़ा पोर्शन है वह क्लिष्ट है, बहुत कठिन है; बाकी पंचलब्धि का विषय बहुत आसान है। अभी हम थोड़ी मेहनत करेंगे तो क्षयोपशम क्या है वह ख्याल में आ जायेगा और आगे की अन्य अवस्थायें समझना बहुत आसान होगा। हम दुबारा देखते हैं। हमने अनुभागबंध संबंधी चर्चा की थी। हम इसकी रिक्विजन करके आगे बढ़ेंगे। हम यहां देखते हैं - अविभागप्रतिच्छेद किसको कहा ? शक्ति का सबसे सूक्ष्म अंश है उसको अविभागप्रतिच्छेद कहा। वर्ग किसको कहते हैं ? एक-एक कर्म परमाणु को एक-एक वर्ग कहते हैं। क्यों ? क्योंकि वह अविभागप्रतिच्छेदों का समूह है। कर्म परमाणु में अपनी-अपनी फलदान शक्ति है यानी शक्ति के अंश हैं, उनको हमने अविभागप्रतिच्छेद कहा था। प्रत्येक कर्म परमाणु में अपने-अपने नंबर ऑफ अविभागप्रतिच्छेद हैं इसलिये उनका नाम क्या है ? वर्ग। जिनमें-जिनमें समान अविभागप्रतिच्छेद होंगे, ऐसे परमाणुओं के समूह को कहेंगे वर्गणा। यहां लिखा है न - वर्गणा है वह समान अविभागप्रतिच्छेदों युक्त वर्गों का समूह है।

अब स्पर्धक किसको कहना ? एक-एक अविभागप्रतिच्छेद से बढ़ते हुये वर्गों के समूहरूप अनंत वर्गणाओं के समूह को हम स्पर्धक कहेंगे। आगे के दो नाम जो हैं न - गुणहानि, नानागुणहानि वह अभी अपना विषय नहीं है; उसको छोड़ देते हैं। अभी तक हमने वर्ग, वर्गणा और स्पर्धक देखे। प्रत्येक कर्म वह घातिकर्म हो या अघातिकर्म हो, उसमें अपने-अपने स्पर्धक जुड़े हैं। प्रत्येक कर्म में अनंत स्पर्धक होते हैं। पहले हमने स्थिति की रचना देखी थी, जिसको हमने निषेक रचना कहा था और यहां हम अनुभाग की स्पर्धकों की रचना देख रहे हैं। एक-एक निषेक में अनंत स्पर्धक हैं यानी

प्रत्येक निषेक में जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक सभी टाइप के स्पर्धक पाये जाते हैं। ऐसा नहीं कि नीचे के निषेकों में अनुभाग कम है, ऊपर के निषेकों में अधिक।

घातिकर्मों के अनुभागों के हमने चार नाम देखे थे। अघातिकर्मों में भी हमने देखे थे- पुण्य प्रकृतियों के लिये चार नाम जुड़े हैं और पाप प्रकृतियों के लिये जुड़े हैं। यहां घातिकर्मों के स्पर्धकों के नाम कौन बताना चाहेगा ? श्रोता: लता, दारु, अस्थि और शैल। बराबर है। ये किसके नाम देखे ? श्रोता: घातिकर्मों के। घातिकर्मों के स्पर्धकों के। मोहनीय के स्पर्धकों के चार नाम कौनसे होंगे ? श्रोता: यही हैं। यही हैं और अंतराय के ? श्रोता: यही हैं। ज्ञानावरण के ? श्रोता: यही हैं। दर्शनावरण के ? सबके नाम सेम हैं परंतु सबके अपने-अपने स्पर्धक जुड़े-जुड़े होंगे। ज्ञानावरण के परमाणु जुड़े हैं, उसके स्पर्धक जुड़े हैं। दर्शनावरण के जुड़े हैं, मोहनीय के जुड़े हैं। सबकी उत्तरप्रकृतियों के अपने-अपने अलग-अलग स्पर्धक हैं; हर एक की निषेक रचना जुड़ी है। हर एक की यानी अकेले ज्ञानावरण की नहीं। पांच ज्ञानावरण हैं तो पांचों की निषेक रचना जुड़ी-जुड़ी है, पांचों के अपने-अपने स्पर्धक जुड़े हैं। इसतरह सबमें समझना है।

अब हम अघातिकर्म के स्पर्धकों के नाम देखते हैं। अघातिकर्म के दो भेद किये हैं- प्रशस्त प्रकृति और अप्रशस्त प्रकृति। प्रशस्त के नीचे कौनसे नाम लिखे हैं ? रत्नाकरजी, आप बतायेंगे ? श्रोता: गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत। हां, गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत। ये किसके स्पर्धक हुये ? श्रोता: प्रशस्त। प्रशस्त प्रकृतियों के। इनमें अमृतवाले कैसे होंगे ? सर्वघाति होंगे या देशघाति होंगे ? श्रोता: कोई भी। देखो, सर्वघाति और देशघाति ये घातिकर्म के भेद हैं। यह अघातिकर्म है। हम आपसे पूछते हैं सातावेदनीय और असातावेदनीय सर्वघाति है कि देशघाति है ? श्रोता: देशघाति। देशघाति है ? श्रोता: नहीं, वह अघातिकर्म है। वह अघातिकर्म है। अरे, घातिकर्म में भेद पड़ेगा - पूरा घात करता है कि थोड़ा घात करता है। जो घात ही नहीं करता है उसको हम देशघाति, सर्वघाति कोई नाम नहीं देंगे। वह अघातिकर्म है। यहां तक समझ में आयी बात ? हम आपको कोई भी ट्रिकी क्वेश्चन पूछेंगे, आपको जागरुक रहना है।

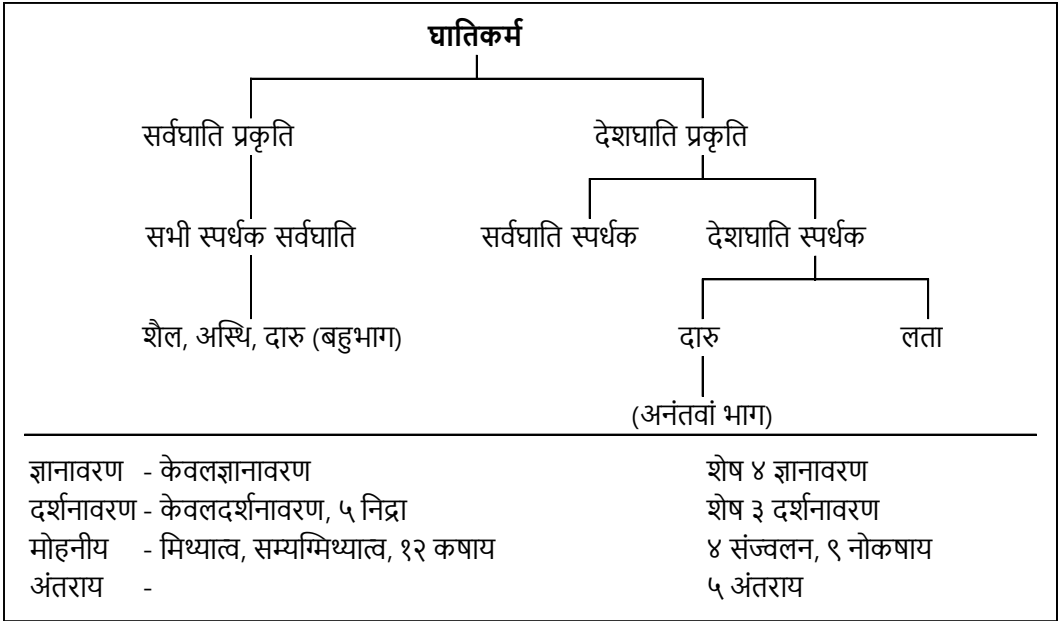
श्रोता: अघातिकर्म में अनुभाग होंगे ? हां, इसके अपने अनुभाग जुड़े हैं। श्रोता: अनुभाग है तो शास्त्र में, जिनागम में इस प्रकार के कोई पर्टिक्युलर इसमें भी तीव्रता-

मंदता के भेद हैं ? बिलकुल-बिलकुल, गुड़वाले अत्यंत मंद अनुभागवाले हैं। श्रोता: यहां जैसे हम सर्वघाति और देशघाति के भेद करते हैं तो अनुभाग की अपेक्षा से दोनों में जिस प्रकार से फर्क है इस प्रकार से अघातिकर्म में भी तीव्रता-मंदता में ऐसा कोई फर्क है ? तीव्रता-मंदता इतना ही भेद है। वे घात ही नहीं करते हैं, उनका कार्य घात करने का नहीं है। उनका फल मिलेगा तब फल में तीव्रता-मंदता इतना ही फर्क होगा। घातिकर्म में क्या है ? वह पूरा घात करता है कि थोड़ा घात करता है इसतरह से भेद था। यहां ऐसा भेद ही नहीं है। इसमें कोई बहुत तीव्र भी होंगे कुछ मंद भी होंगे। जो पुण्यकर्म हैं, पुण्यकर्म में तीव्र अनुभाग का अधिक फल मिलेगा। उच्च जाति के पुण्य का फल अलग होगा न ? साधारण भी पुण्य होगा कि नहीं ?

शुभभाव के भी अलग-अलग लेव्हल होंगे कि नहीं ? रास्ते में चलते-चलते किसीको हमने मदद की वह भी शुभभाव है। कोई स्कूल बनाता है वह भी पर्टिक्युलर शुभभाव है। मंदिर बनाता है वह भी अलग टाइप का शुभभाव है। स्वाध्याय करता है, कराता है वह अलग टाइप का शुभभाव है। सर्वोत्कृष्ट शुभभाव तो अनुभूति के पहले आत्मा संबंधी जो विचारधारा चलती है वह है। जो विकल्प है वह भी शुभभाव है। परंतु इन शुभभावों के लेव्हल में अंतर है कि नहीं ? तो उससे बंधनेवाले कर्मों के फल में - अनुभाग में भी अंतर होगा कि नहीं होगा ? ख्याल में आती है न बात ? अनुभाग हम किसमें गिनते हैं ? इसमें कोई घातिकर्म का सवाल ही नहीं है। घातिकर्म घात करनेवाले हैं वे सारे अप्रशस्त हैं। उनका अनुभाग वहां अलग से बंधता है। वे पूरा घात करने में या थोड़ा घात करने में निमित्त हैं। अघातिकर्म में वैसी बात ही नहीं है। केवल इसका फल अधिक या कम मिलता है बस इतनी बात है।

श्रोता: घातिकर्म की फल देने की शक्ति, छद्मस्थ और केवली दोनों को फलती है ? केवली के घातिकर्म सत्ता में ही नहीं है। आपको पूछना है कि अघातिकर्म के प्रशस्त में जो फलदान शक्ति है - गुड़, खाण्ड, शर्करा, अमृत और अप्रशस्त में, निंब, कांजीर, विष, हलाहल; क्या सर्वज्ञ और छद्मस्थ में कर्मों का फल वैसे ही होगा ? यही तो हम देखने जा रहे हैं। मोक्षमार्ग की शुरुआत होने के पहले-पहले ही अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग अनंतगुणा घटता चला जायेगा। जीव गुणस्थानों में ऊपर चढ़ेगा; कैसे चढ़ेगा ? आत्मा की स्थिरता के द्वारा, उतना-उतना अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग और घटता चला जायेगा। भले ही केवली के अघातिकर्म हैं और श्रेणी में प्रशस्त कर्मों का

अनुभाग अनंतगुणा बढ़ता चला जाता है। सत्ता में पड़े हुये प्रशस्त कर्मों में पहले कम अनुभाग बांधा था, उनमें भी अनुभाग की वृद्धि हो जायेगी और वहां पर यथायोग्य जो नयी प्रशस्त प्रकृतियां बंधेंगी वे भी अधिक अनुभागवाली बंधेंगी। यह सहज इसतरह से होता है कि अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग घटकर नहीं के बराबर हो जायेगा। इसलिये उसकी चिंता ही नहीं है। कर्म का फल अच्छा है कि बुरा है यह सोचना कब होता है ? मोह के उदय में। केवली के तो मोह का नाश हो चुका है। समझ में आती है न बात ? साता-असाता वेदनीय का उदय इन्द्रियजनित सुख-दुःख में निमित्त होता है। अरिहंत भगवान के मोह भी नहीं है और इन्द्रियज्ञान तथा इन्द्रिय सुख-दुःख भी नहीं है। इसलिये असाता का उदय होने पर भी उसका वैसा फल अरिहंत भगवान को नहीं है।



अभी हम आगे बढ़ेंगे। हमने प्रशस्त के क्या नाम देखे थे ? गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत; और अप्रशस्त के ? *श्रोता: निंब, कांजीर, विष और हलाहल*। यहां तक समझें ? अब जो छ नंबर का चार्ट है, जिस पर हमारी कसरत चल रही थी न। अभी हम वापस आते हैं घातिकर्मों पर। अभी हमारा अघातिकर्मों से कोई मतलब नहीं, घातिकर्मों की बात हम देखेंगे। अभी जो घातिकर्म के भेद हमने देखे थे, कौनसे ? हमने ज्ञानावरण के पांच, दर्शनावरण के नौ, मोहनीय के तीन और पच्चीस, अंतराय के

पांच इसतरह से जो भेद देखे थे यानी उत्तरप्रकृतियां देखी थी, उनमें से कुछ प्रकृतियां देशघाति हैं और कुछ प्रकृतियां सर्वघाति हैं। बोर्ड पर चार्ट देखना- घातिकर्म यानी ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय। उनकी अपनी-अपनी जो उत्तरप्रकृतियां हैं, उनमें कुछ प्रकृतियां सर्वघाति हैं, कुछ प्रकृतियां देशघाति हैं। हमने देखा था ज्ञानावरण की पांच प्रकृतियों में से केवलज्ञानावरण सर्वघाति प्रकृति है; मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण ये सारी देशघाति प्रकृतियां हैं। हम अभी प्रकृति तक ही बात करेंगे।

दर्शनावरण में हमने क्या देखा था ? केवलदर्शनावरण और पांच निद्रा सर्वघाति प्रकृतियां हैं और चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण ये कैसी हैं ? *श्रोता: देशघाति।* देशघाति प्रकृतियां हैं। मोहनीय में देखते हैं - दर्शनमोहनीय में मिथ्यात्व सर्वघाति प्रकृति है और सम्यक्त्व होने पर बाद में तैयार होनेवाली सम्यग्मिथ्यात्व भी सर्वघाति प्रकृति है और सम्यक् प्रकृति देशघाति प्रकृति है। अब हम चारित्रमोहनीय की बात करते हैं- अनंतानुबंधी चारों, अप्रत्याख्यानावरण चारों, प्रत्याख्यानावरण चारों कैसी हैं ? *श्रोता: सर्वघाति।* सर्वघाति प्रकृतियां हैं। संज्वलन और नौ नोकषाय ? देशघाति प्रकृतियां हैं। अंतराय की पांच ? *श्रोता: देशघाति।* सभी देशघाति हैं। हमने यहां देखा, कौनसी प्रकृतियां सर्वघाति और कौनसी देशघाति हैं।

अभी हर एक के अपने-अपने स्पर्धक होंगे कि नहीं होंगे ? *श्रोता: होंगे।* होंगे। तो एक नियम ख्याल में ले लो- सर्वघाति प्रकृतियों के सभी स्पर्धक सर्वघाति ही होते हैं। क्या कहा ? *श्रोता: सर्वघाति प्रकृतियों के सभी स्पर्धक सर्वघाति ही होते हैं।* चार्ट में पूरा लिखने के लिये जगह नहीं थी, सर्वघाति प्रकृतियों के नीचे हमने खाली सर्वघाति स्पर्धक ऐसा लिखा है। तो पूरा वाक्य कैसे होगा ? सर्वघाति प्रकृतियों के सभी स्पर्धक सर्वघाति ही होते हैं। हमने घातिकर्मों में स्पर्धकों के चार नाम देखे थे। कौनसे ? नीचे से ऊपर - लता, दारु, अस्थि और शैल। उनमें से लता और दारु का जो एकभाग यानी अनंतवां भाग इतने स्पर्धक कैसे हैं ? यहां देखो लिखा है- देशघाति स्पर्धक। दारु के अधिक अनुभागवाले जो अनंत बहुभागवाले स्पर्धक हैं तथा अस्थिवाले और शैलवाले वे सारे कैसे हैं ? *श्रोता: सर्वघाति।* सर्वघाति स्पर्धक हैं।

फिर से- हमने चार नाम देखे - लता, दारु, अस्थि और शैल। लतावाले सारे

देशघाति हैं। दारु में अनंत स्पर्धक हैं, उनमें से नीचेवाले लता की तरफ के अनंतवें भाग प्रमाण स्पर्धक कैसे हैं ? देशघाति हैं और ऊपर के अनंत बहुभाग स्पर्धक सर्वघाति हैं। सारे ही अस्थिवाले और शैलवाले कैसे हैं ? श्रोता: सर्वघाति। सर्वघाति। यहां तक बात समझ में आयी ? हमने क्या देखा ? केवलज्ञानावरण सर्वघाति प्रकृति है तो मेरा प्रश्न है उसमें कौन-कौनसे स्पर्धक होंगे ? श्रोता: सर्वघाति। आपको नाम लेकर बताना है। श्रोता: शैल, अस्थि और दारु का बहुभाग। हां, ऊपर से देखते हैं तो शैल, अस्थि और दारु का अनंत बहुभाग। यह तो आसान है न समझना ?

श्रोता: यह बहुभाग समझ में नहीं आया। अच्छा, यह अनंत बहुभाग समझ में नहीं आया ? हम कहेंगे किसी चीज के हमने दस भाग किये। दस भाग किये यानी दस से भाग दिया। जैसे हमारे पास सौ संख्या है और सौ को हमने दस से भाग दिया। कितना आया ? श्रोता: दस आया। दस एकभाग है कि बहुभाग है ? श्रोता: दस एकभाग है। एकभाग है तो बहुभाग कितना होगा ? श्रोता: नाइंटी। एकभाग को मायनस करो तो रिमेनिंग नाइंटी है वह बहुभाग होगा। अगर दस से हम दस हजार को भाग देते तो एकभाग का प्रमाण कितना होगा ? श्रोता: एक हजार। और बाकी ? श्रोता: नौ हजार। इसतरह से अभी हमने क्या किया ? दारुवाले कितने स्पर्धक हैं ? अनंत हैं। उसको दूसरे छोटेवाले अनंत से भाग दिया। तो यह नीचेवाला अनंतवां भाग क्या है ? देशघाति और दूसरा रिमेनिंग अनंत बहुभाग जो है वह सर्वघाति है। इसको एकभाग और बहुभाग कहते हैं।

केवलज्ञानावरण कैसा है हमने देखा। अभी मिथ्यात्व के स्पर्धक कौन-कौनसे होंगे ? चेतन आप बतायेंगे ? श्रोता: शैल, अस्थि और दारु का बहुभाग। हां, शैल, अस्थि और दारु का बहुभाग। देखो, एक प्रश्न इससे संबंधित है इसलिये इसे यहां लेती हूं। केवलज्ञानावरण प्रकृति सर्वघाति है तो वह हंड्रेड पर्सेंट आवरण डालती है यानी घात करती है। तो शैल, अस्थि स्पर्धक में क्या अंतर है ? शैल भी सर्वघाति है, अस्थि भी सर्वघाति है और दारु का बहुभाग भी सर्वघाति है तो उसमें अंतर क्या है ? उन्होंने आवरण तो हंड्रेड पर्सेंट डाला है। प्रश्न का उत्तर मैं मिथ्यात्व के उदाहरण से देती हूं। मिथ्यात्व कर्म सर्वघाति है कि देशघाति है ? श्रोता: सर्वघाति है। वह किसका घात करती है ? श्रोता: सम्यक्त्व का। सम्यक्त्व का घात यानी सम्यक्त्व होने ही नहीं देती। उसको घात कहने की पद्धति है। मिथ्यात्व के शैलवाले स्पर्धक होंगे तो सम्यक्त्व

होगा ? श्रोता: नहीं। जब शैलवाले नहीं रहे; मिथ्यात्व जरा मंद हो गया, अस्थिवाले रह गये तो ? श्रोता: नहीं होगा। दारु के बहुभागवाले उदयरूप होंगे तो सम्यक्त्व होगा ? श्रोता: नहीं होगा। उसको कहते हैं मिथ्यात्व बैरी का अंश भी बुरा है।

मिथ्यात्व का अनुभाग कितना भी मंद क्यों न हो, मिनिमम भी रह जाये; जीव पहले गुणस्थान से सातवें में जानेवाला होगा उसका मिथ्यात्व कितना मंद पड़ा है, फिर भी अनिवृत्तिकरण के अंत समय तक मिथ्यात्व का उदय है। वह कितना कम अनुभागवाला हुआ होगा। परंतु उसका अंश भी है तब तक उसको सम्यक्त्व नहीं है। यह उसका अर्थ है। केवलज्ञानावरण कितना भी मंद क्यों न हो क्योंकि ऊपर श्रेणी चढ़ते समय, सभी अप्रशस्त कर्मों के अनुभाग अत्यंत मंद हो रहे हैं। मंद होने पर भी जब तक उसका उदय है वह केवलज्ञान नहीं होने देगा यह उसका अर्थ होता है। श्रोता: अनंतानुबंधी मंद होंगे तो सम्यक्त्व ? अनंतानुबंधी भी मंद होगा तो क्या हुआ ? उसके शुक्ललेश्या तक के परिणाम होते हैं। अनंतानुबंधी मंदता और तीव्रता का नाम नहीं है, उसकी जाति ही जुदी है। ऐसी जुदी जाति है कि उसका उदय कितना भी मंद हो, दारु के बहुभाग के नीचे कभी होगा ही नहीं। अनंतानुबंधी कहो, मिथ्यात्व कहो - उसमें लता और दारु के एकभागवाले स्पर्धक कभी नहीं पाये जायेंगे। मिथ्यात्व के स्पर्धकों की बिगिनिंग कहां से होगी ? दारु के बहुभाग में सम्यग्मिथ्यात्व के ऊपर उसके स्पर्धक पाये जायेंगे।

श्रोता: किसीने एक तमाचा मारा तो दूसरा गाल आगे करेंगे तो भी वह भड़कना कहलायेगा ? लोगों को क्या लगता है ? किसीने हमें गाली दी, तमाचा मारा; फिर हमने दूसरा गाल सामने कर दिया तो हम सम्यग्दृष्टि हुये कि नहीं हुये ? मंद कषायी हुये कि नहीं हुये ? भले हमने बाहर नहीं दिखाया, है न ? परंतु वह जाति कौनसी है ? अनंतानुबंधीवाली जाति है। जब तक सम्यग्दर्शन नहीं होता, जब तक आत्मा का अनुभव नहीं होता, तब तक कितना भी मंद कषाय क्यों न हो, कितना भी सदाचारी-भला क्यों न हो उसकी अनंतानुबंधी की जाति है। उसकी जाति नहीं बदली और उसके सभी स्पर्धक सर्वघाति ही हैं।

श्रोता: उनका स्वभाव दोनों का अलग-अलग है तो मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी एक साथ बंधेंगे ? किसका स्वभाव ? श्रोता: मिथ्यात्व का और अनंतानुबंधी का ?

मिथ्यात्व किसका भेद है ? दर्शनमोहनीय का भेद है और अनंतानुबंधी क्या है ? *श्रोता: चारित्रमोहनीय।* मिथ्यात्व यानी श्रद्धा की विपरीतता होती है। अभिप्राय में मिथ्यात्व चलता है, अज्ञान है और अनंतानुबंधी ऐसे कषाय की जाति है कि जो सम्यक्त्व नहीं होने देते। ये सम्यक्त्व नहीं होने देते वह उपचार का कथन है। परंतु जहां मिथ्यात्व है वहां अनंतानुबंधी भी है ही है। *श्रोता: एक साथ है या अलग-अलग ?* प्रत्येक कर्म जुदा है। प्रत्येक कर्म के निषेक जुदे हैं। प्रत्येक निषेक के स्पर्धक बिलकुल जुदे हैं। अनंतानुबंधी में भी क्रोध के जुदे, मान के जुदे, माया के जुदे, लोभ के जुदे हैं। इन कर्मों के पर्वत के पर्वत पड़े हैं। नहीं समझे ? भेत्तारं कर्मभूताम् कहते हो न ? कहां लिखा है ? *श्रोता: मोक्षमार्ग में।* मोक्षमार्ग में नहीं, मोक्षशास्त्र में।

देखो, हम सर्वघाति, देशघाति की बात कर रहे थे। मिथ्यात्व को हमने कैसा देखा ? सर्वघाति। उसके स्पर्धक कौनसे होंगे ? शैल, अस्थि, दारु के बहुभाग। परंतु उसमें एक बात है। दारु बहुभाग में ये जो नीचे से स्टार्टिंग पॉइंट है न; जहां देशघाति के बाद सर्वघाति शुरू हुये, वहां सर्वघाति में से जो नीचे के कुछ स्पर्धक हैं वे सम्यग्मिथ्यात्व के हैं। देखो, लताभाग से लेकर दारुभाग के अनंतवें भागप्रमाण स्पर्धकों तक तो देशघाति स्पर्धक हैं और उसके ऊपर से सर्वघाति शुरू हुये। सर्वघाति स्पर्धकों का जो लोअरमोस्ट पार्ट है, जहां दर्शनमोहनीय के सर्वघाति शुरू होते हैं, वहां स्टार्टिंग के कुछ स्पर्धक हैं वे सम्यग्मिथ्यात्व के हैं और मिथ्यात्व के स्पर्धक उसके ऊपर से शुरू होंगे। *श्रोता: नहीं समझ में आया।* नहीं आया ? फिर से- सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति कब तैयार होती है ? सम्यग्दर्शन होने पर। वह कैसी है ? देशघाति है कि सर्वघाति है ? *श्रोता: सर्वघाति।* सर्वघाति। उसका उदय हो तो तीसरा गुणस्थान होगा, सम्यक्त्व नहीं होगा इसलिये वह सर्वघाति है। उसके स्पर्धक कहां से शुरू होते हैं ? *श्रोता: दारु का बहुभाग।* वह दारु का बहुभाग जहां से शुरू होगा उसका लोअरमोस्ट पार्ट, वहां के जो स्पर्धक हैं, वे सम्यग्मिथ्यात्व के हैं। जब सम्यग्दर्शन की बात आयेगी तब फिर हम इनकी विस्तार से चर्चा करेंगे।

अभी हम आगे बढ़ते हैं। संज्वलन कैसी प्रकृति देखी थी हमने ? *श्रोता: देशघाति।* तो संज्वलन में स्पर्धक कौन-कौनसे होंगे ? *श्रोता: दारु का एकभाग और लता।* दो ही होंगे ? दूसरे कोई कुछ कहना चाहते हैं ? संज्वलन में कौन-कौनसे स्पर्धक होंगे ? *श्रोता: देशघाति स्पर्धक।* बोर्ड पर देखना। देशघाति प्रकृति में दोनों ही

टाइप के स्पर्धक होते हैं- सर्वघाति भी होंगे, देशघाति भी होंगे। अब हम संज्वलन की बात पूछ रहे हैं। संज्वलन प्रकृति में सर्वघाति स्पर्धक हैं कि देशघाति हैं ? *श्रोता: दोनों हैं/ दोनों हैं।* तो उनके स्पर्धकों के नाम बताओ ? बोलो गाडेकरजी, आपको संज्वलन के स्पर्धकों के नाम बताना है। *श्रोता: शैल, अस्थि, दारु, लता।* सभी होंगे। शैल, अस्थि और दारु बहुभाग तो सर्वघाति हुये। देशघाति प्रकृति है तो उसमें देशघाति स्पर्धक भी हैं, दारु का एकभाग और लतावाले। यानी संज्वलन प्रकृति में सभी स्पर्धक पड़े हैं। ख्याल में आती है न बात ? मिथ्यादृष्टि के संज्वलन का कैसा उदय होगा ? सर्वघाति का उदय। हम क्षयोपशम देखने के बाद उसकी चर्चा करेंगे। हम एक-एक प्रकृति लेकर इसलिये पूछ रहे हैं कि यह कन्सेप्ट क्लियर हो जावे।

सर्वघाति प्रकृतियों के सभी स्पर्धक कैसे हैं ? *श्रोता: सर्वघाति।* सर्वघाति। देशघाति प्रकृतियों के स्पर्धक कैसे हैं ? *श्रोता: सर्वघाति और देशघाति।* सर्वघाति और देशघाति। यहां तक बात समझ में आयी ? हमने मोहनीय के स्पर्धक देखे, अंतराय में देख लेते हैं। पांचों अंतराय कैसी प्रकृतियां हैं ? *श्रोता: देशघाति।* देशघाति प्रकृतियां हैं। अभी उनके स्पर्धकों के नाम बताना है। हां, हंसाबेन बोलो ? *श्रोता: लता, दारु, शैल और अस्थि सभी होंगे।* सभी होंगे क्योंकि वे प्रकृतियां देशघाति हैं, परंतु उनमें स्पर्धक कैसे हैं ? *श्रोता: दोनों हैं/* दोनों हैं, सर्वघाति और देशघाति। यहां तक समझ में आयी बात ? बहुत कठिन हो रहा है ? फास्ट हो रहा है ? थोड़ा स्लोलि जायेंगे।

देखो हमने क्या देखा ? घातिकर्म चार हैं। उसके मूल चार भेद हैं, फिर उनकी उत्तरप्रकृतियां होती हैं। ज्ञानावरण की पांच हैं, दर्शनावरण की ? *श्रोता: नौ।* नौ हैं। मोहनीय में दर्शनमोहनीय की ? *श्रोता: तीन।* तीन हैं। चारित्रमोहनीय की ? *श्रोता: पच्चीस /* चारित्रमोहनीय की पच्चीस हैं और अंतराय की ? *श्रोता: पांच।* पांच हैं। अब इसमें हमें देखना है कि कुछ प्रकृतियां सर्वघाति हैं। उनकी क्या विशेषता होती है ? उनके जो स्पर्धक हैं, स्पर्धक यानी परमाणुओं के गट्टे ही हैं न वे सारे ? उनमें फलदान देने की शक्ति है। वे सारे कैसे हैं ? *श्रोता: सर्वघाति हैं/* सर्वघाति हैं। यहां तक सर्वघाति में तो कोई प्रश्न ही नहीं है। सर्वघाति का उदय होता है तो वहां उसके प्रतिपक्ष का पूरा घात ही होता है। दूसरी बात- कुछ प्रकृतियां कैसी प्रकृतियां हैं ? तो देशघाति प्रकृतियां हैं। अब देशघाति प्रकृतियों में स्पर्धक कैसे होते हैं ? *श्रोता: सर्वघाति भी होते हैं, देशघाति भी होते हैं/* सर्वघाति भी होते हैं और देशघाति भी होते हैं।

अब मतिज्ञानावरण की बात नहीं करते, हम अवधिज्ञानावरण की बात करते हैं। अवधिज्ञानावरण प्रकृति देशघाति है कि सर्वघाति है ? श्रोता: देशघाति। पक्का ? तो उसमें कौन-कौनसे स्पर्धक हैं ? श्रोता: सर्वघाति भी हैं और देशघाति भी हैं। सर्वघाति भी हैं और देशघाति भी हैं यानी शैल भी हैं, अस्थि भी हैं, दारु का बहुभाग भी हैं, दारु का एकभाग और लता भी हैं। आपको अवधिज्ञान है ? श्रोता: नहीं है। नहीं है। किसीको होगा तो भी बताना नहीं क्योंकि शास्त्र छोड़कर भविष्य जानने के लिये सब आपके पीछे लग जायेंगे। तो अवधिज्ञानावरण प्रकृति कैसी प्रकृति है ? श्रोता: देशघाति है। देशघाति है। देशघाति प्रकृति है और आपको अवधिज्ञान नहीं है उसका अर्थ क्या है ? आप बोलो, आप ही बतायेंगे। देखो, उसमें दोनों प्रकार के स्पर्धक हैं। हमें अवधिज्ञान नहीं है उसका अर्थ क्या है ? हमारे अवधिज्ञानावरण कर्म के सर्वघाति स्पर्धकों का उदय चल रहा है। सर्वघाति का उदय है न !

श्रोता: सुअवधि में भी ऐसे ही है ? सुअवधि हो या कुअवधि हो। उसमें यही नियम है। सु है इसलिये उसमें कोई डिफरन्स है ऐसा नहीं। क्योंकि ये जो चार ज्ञान हैं वे कैसे हैं ? उनको क्षयोपशम ज्ञान कहते हैं। जिसका ज्ञान का उघाड़ है; किसका है ? जिस किसीको अवधिज्ञान है - वह मुनि हो या श्रावक हो; जिसको अवधिज्ञान है उसमें क्या होगा ? उसको अवधिज्ञानावरण के सर्वघाति स्पर्धकों का उदय है कि नहीं है ? श्रोता: नहीं। उसको सर्वघाति का उदय नहीं है, देशघाति स्पर्धकों का उदय है। वह कैसे घटित होता है उसको अभी हम देखेंगे। मनःपर्ययज्ञान गृहस्थों को होता ही नहीं है, मुनियों में भी किसी-किसीको होता है। जिनको नहीं है उनकी क्या पोझिशन है ? मनःपर्ययज्ञानावरण के सर्वघाति स्पर्धकों का उदय है। वह है देशघाति प्रकृति परंतु उसके सर्वघाति स्पर्धकों का उदय चल रहा है।

देखो यहां हम कर्मों की भाषा में कहते हैं। हम इसका कारण उदय पर डालते हैं। उसके कारण हमें ज्ञान हो रहा या नहीं हो रहा है, ऐसा नहीं है। हर समय यही सोचना है कि जीव अपनी योग्यता से उस ज्ञानरूप परिणमित हो रहा है। उस समय कर्मों की क्या पोझिशन है उसको यहां बताया जाता है। निमित्त की तरफ से इस ज्ञान को नाम दिया जाता है। फिर से- प्रत्येक द्रव्य में कार्य होता है उसमें दो कारण लगते ही हैं। कौनसे दो ? एक उपादान कारण और एक निमित्त कारण। कार्य एक है और कारण दो हैं इसलिये कार्य के नाम भी दो हैं। उपादान की तरफ से कार्य को उपादेय

कहेंगे और निमित्त की तरफ से कार्य को नैमित्तिक कहेंगे। हमारी ज्ञान की अल्पज्ञान की पर्याय चल रही है वह हमारी अपनी पर्याय है, वह हमारे स्वभाव का अंश है। हमारे स्वभाव में से अल्पज्ञानरूप ज्ञानपर्याय प्रकट हो रही है। सामने कर्मों की अवस्था कौनसी देखी ? उसमें हम क्षयोपशम घटित करेंगे। तो वहां कर्मों का, कौनसे ? मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण आदि का क्षयोपशम है।

अब हमारे ज्ञान की पर्याय का नाम क्या पड़ा ? क्षायोपशमिक ज्ञान। कहां से ? निमित्त की ओर से। नैमित्तिक नाम कहां से पड़ता है ? निमित्त की ओर से कार्य को नैमित्तिक कहेंगे। इन पांच भावों की चर्चा आपके यहां हुयी न, लंदन में आपने लिये न पांच भाव। कर्मों की अवस्था की तरफ से जीव के परिणामों को ये नाम दिये गये हैं। कर्मों में जहां उपशम होता है तो जीव के परिणाम को औपशमिक सम्यक्त्व या औपशमिक चारित्र कहा। वहां कर्मों का क्षयोपशम है तो जीव के परिणाम को क्षायोपशमिक ज्ञान, क्षायोपशमिक दर्शन कहा। कर्मों में क्षयरूप अवस्था है तो जीव के ज्ञान को क्षायिकज्ञान कहा। केवलज्ञान को क्या कहते हैं ? *श्रोता: क्षायिकज्ञान।* क्षायिकज्ञान। तो कर्म का क्षय हुआ इसलिये केवलज्ञान हुआ न ? *श्रोता: नहीं।* नहीं। अपनी स्वयं की योग्यता से - सामर्थ्य से हुआ यह समझना है। कर्मों की तरफ से नाम देंगे, ये चारों भाव जो हैं वे नैमित्तिक भाव हैं, भले ही वह क्षायिकभाव भी क्यों न हो। ख्याल में आयी न बात ? नियमसार में बहुत अच्छी बात आयी है। कोई भी ग्रंथ निकालो, कोई एअर टाइट कम्पार्टमेंट नहीं कि इसमें अभी कर्म की बात ही नहीं करेंगे, खाली द्रव्यानुयोग की बात करेंगे - ऐसा कुछ नहीं है। हमें तो चारों ही अनुयोगों के समन्वयपूर्वक अपना कल्याण करना है।

देखो, अभी हम क्षयोपशम की परिभाषा घटित करने जा रहे हैं। हमने अभी आपको पूछा था कि केवलज्ञानावरण का उदय है; तो जब तक उदय है तब तक केवलज्ञान प्रकट है कि नहीं है ? *श्रोता: नहीं है।* यानी केवलज्ञान का अभाव है। वह ज्ञान का जो अभाव है, उसको क्या कहेंगे ? ज्ञान नहीं है तो उसको अज्ञान कहेंगे। उस अज्ञान का नाम क्या है ? *श्रोता: औदयिक अज्ञान।* औदयिक अज्ञान। केवलज्ञानावरण कर्म का उदय है और उस कर्म की तरफ से हम बात कर रहे हैं तो यह हमारा औदयिक अज्ञान है। मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरण कर्मों का क्षयोपशम चल रहा हो तो यहां उस ज्ञान को क्या नाम देंगे ? हमारा मतिश्रुतज्ञान कैसा ज्ञान है ?

क्षायोपशमिक ज्ञान। जितना ज्ञान का उघाड़ है उसको क्षायोपशमिक ज्ञान कहेंगे और जितना ज्ञान नहीं है उसको औदयिक अज्ञान कहेंगे।

फिर से, आपको जर्मन भाषा आती है बेटा ? *श्रोता: नहीं/* नहीं। तो जर्मन भाषा संबंधी जो ज्ञानावरण है उसके सर्वघाति स्पर्धकों का उदय चल रहा है। तो हम क्या कहेंगे ? वह हमारा औदयिक अज्ञान है। जो-जो हमें नहीं मालूम है उस संबंधी हमारा औदयिक अज्ञान है। *श्रोता: और सीखने की कोशिश की तो ?* सीखने की कोशिश होगी तो जब हमें उस संबंधी ज्ञान हो जायेगा तो क्षयोपशम घटित हो जायेगा। कर्म के कारण हमारी पराधीनता नहीं है। जीव की अपनी योग्यता से अपनी जो पर्याय प्रकट होती है वहां कर्मों की अवस्था बतायी जाती है बस इतना ही है। अभी आगे बढ़ना है।

हमें क्षयोपशम की परिभाषा देखनी है, पृष्ठ ४९ निकालना, चार्ट के नीचे - **यहां ध्यान देने की बात यह है कि प्रकृति देशघाति होने पर भी**, जब हम प्रकृति कहते हैं तो मतिज्ञानावरण वगैरह प्रकृति की बात है। जब स्पर्धक कहेंगे तो वर्ग-वर्गणा-स्पर्धक की बात चलेगी। प्रकृति देशघाति होने पर भी **उसके स्पर्धक दोनों प्रकार के हैं-** कौनसे ? **सर्वघाति स्पर्धक और देशघाति स्पर्धक। हम इसे ज्ञानावरण कर्मपर घटाते हैं।** हमने घटित किया था फिर भी दुबारा पढ़ लेते हैं यहां से। **केवलज्ञानावरण सर्वघाति प्रकृति है, उसके सभी स्पर्धक सर्वघाति हैं अर्थात् पूरा घात करते हैं।** उसका अर्थ क्या है ? पर्याय में **केवलज्ञान प्रकट नहीं होता।** कर्म के कारण अटका न अपना केवलज्ञान ? तो कहते हैं **कर्म कुछ नहीं करता परंतु जब जीव केवलज्ञानरूप परिणमन नहीं कर रहा हो तब सामने केवलज्ञानावरण तथा अन्य ज्ञानावरण कर्मों का उदय विद्यमान रहता है।** परंतु हम कर्म की अवस्था की ओर से क्या कहेंगे ? जीव को केवलज्ञान नहीं है, यह उसका औदयिक अज्ञान है।

आगे बढ़ते हैं देखो- **मतिज्ञानावरण देशघाति प्रकृति है। इनके सर्वघाति स्पर्धकों का कभी उदय नहीं होता, उदय हो जावे तो क्या होगा ?** *श्रोता: जीव जड़ हो जायेंगे/* जड़ हो जायेंगे। जैसे अवधिज्ञानावरण प्रकृति देशघाति है परंतु उसके सर्वघाति स्पर्धकों का उदय हो सकता है। ऐसा होने पर हमें अवधिज्ञान नहीं है, परंतु हमारा मति-श्रुतज्ञान तो हर समय चल रहा है। भले ही उसमें हीनाधिकता होगी। परंतु मतिज्ञान पूरा मिट जावे ऐसा कभी नहीं होगा। निगोद की पर्याय भी क्यों न हो, जो जीव

के ज्ञान की अत्यंत हीनदशा है। फिर भी वहां ज्ञान का कुछ न कुछ अंश तो प्रकट है ही। यह उसका अर्थ होता है। कहते हैं- **इनके सर्वघाति स्पर्धकों का कभी उदय नहीं होता, हमेशा देशघाति प्रकृति का ही उदय रहता है।** श्रोता: स्पर्धक आयेगा कि प्रकृति ? यहां स्पर्धक होना चाहिये क्योंकि यहां प्रकृति लिखा है वह तो सम्यक्त्व की बात बताने के लिये प्रकृति शब्द डाला था। प्रकृति के बदले यहां स्पर्धक कर लो।

फिर से- **इनके सर्वघाति स्पर्धकों का कभी उदय नहीं होता, हमेशा देशघाति स्पर्धकों का ही उदय रहता है।** मान लो, सर्वघाति स्पर्धकों का उदय हो जाये तो जीव पर्याय में सर्वथा ज्ञान रहित हो जायेगा, जड़ अचेतन हो जायेगा। ऐसा कब होगा ? श्रोता: कभी नहीं। कभी नहीं होगा, जीव जड़ नहीं होगा। उसका ज्ञान कभी नष्ट नहीं होगा। हां, पर्याय में हीनाधिकता होगी। अभी संज्ञी पंचेन्द्रिय है। उसने अपना कुछ स्वरूप नहीं सोचा है। ऐसे ही उसने दिन बिताये और पापकर्म करता रहे तो एकेन्द्रिय आदि में जाकर उसका जन्म होगा। तो ज्ञान की हीनता होगी परंतु ज्ञान सर्वथा नष्ट कभी नहीं होगा। यह कहने का अर्थ है।

श्रोता: जितनी ज्ञान की हीनता होती है वहां सर्वघाति स्पर्धकों का उतना उदय जैसे मतिज्ञानावरण ? नहीं। ज्ञान की कितनी भी हीनता हो जावे, फिर भी वहां सर्वघाति का उदय नहीं है। क्यों नहीं है ? क्योंकि देशघाति में ही कितने व्हेरिएशन्स हैं। सबसे हीन जो ज्ञान है वह है पर्यायज्ञान। उसके बाद पर्यायसमासज्ञान के असंख्यात भेद हैं, उसके बाद अक्षरज्ञान, उसके बाद अक्षरसमासज्ञान, इसतरह से ऊपर तक चले जाओ। जैसे ये श्रुतज्ञान के भेद हैं वैसे ही मतिज्ञान के भी भेद हम कह सकते हैं। वे अलग-अलग हैं। सबसे जघन्य में जघन्य ज्ञान कौनसा है ? जिसको पर्यायज्ञान कहते हैं। गुरुदेवश्री की भाषा में 'अक्षरनो अनंतमो भाग' वे हमेशा कहते थे। पश्चात् पर्यायसमासज्ञान में असंख्यात लोक बार षट्स्थानवृद्धि के स्थान होते हैं। उतनी बार अनंतगुणा वृद्धि होते-होते अक्षरज्ञान की बारी आती है। पर्यायज्ञान बहुत हीन ज्ञान है।

परंतु वहां भी पर्यायज्ञानावरण जो है उसका उदय हो जावे तो क्या होगा ? श्रोता: जड़ हो जायेगा। जीव जड़ हो जायेगा। तो पर्यायज्ञानावरण का कभी उदय नहीं होगा। तो क्या होगा ? उदय का समय आते ही वह पर्यायसमास ज्ञानावरणरूप से कन्वर्ट होकर उदय में आयेगा। श्रोता: पर्याय बदल गयी ? पर्याय नहीं बदल गयी।

पर्यायज्ञान का अर्थ क्या होता है ? सबसे मिनिमम जो ज्ञान है, जघन्य में जघन्य ज्ञान है उसका नाम ही पर्यायज्ञान है। मैं ज्ञान की पर्याय की बात नहीं कर रही हूं। इस ज्ञान का नाम पर्यायज्ञान है जिसको लब्धिअक्षरज्ञान भी कहते हैं। परंतु यह जो पर्यायज्ञान है उसका प्रतिपक्षी पर्यायज्ञानावरण कर्म बांधा था जो सत्ता में भी रहता है। जीव बांधता है उसको, परंतु उसका उदय कभी नहीं होगा। यानी उतना ज्ञान तो निरावरण रहेगा ही रहेगा, जीव कितनी भी हीन पर्याय में जाये। वह निगोद की पर्याय में गया। वहां ज्ञान इतना हीन हो गया परंतु ऐसा नहीं होगा कि पर्यायज्ञान भी मिट गया। उतना तो ज्ञान खुला रहेगा ही रहेगा। यह कहना चाहते हैं।

देखो अभी हम पढ़ते हैं। अब हम क्षयोपशम की भाषा में कहेंगे। अभी तक हमने स्पर्धकों की देशघाति-सर्वघाति की बात की न, उसीका नाम है क्षयोपशम। क्षयोपशम की परिभाषा में तीन पार्ट्स हैं। यह परिभाषा मैं बोलूंगी, आपको रिपीट करना है क्योंकि पहले हम इसको रट लेते हैं, बाद में सही भावभासन होने पर उसका अर्थ हमारे ख्याल में आ जायेगा। देखो- **इस पर से अब क्षयोपशम की परिभाषा सिखाना बिलकुल आसान हो जायेगा। वैसे भी क्षयोपशमलब्धि का ज्ञान करने से पहले** क्षयोपशम क्या है इसको जानना जरूरी है। क्योंकि जो पांच लब्धि हैं न, उनमें से क्षयोपशमलब्धि की बात आनेवाली है। क्षयोपशमलब्धि और क्षयोपशम के बारे में बहुत कन्फ्यूजन चलता है। इसलिये कहते हैं **क्षयोपशमलब्धि का ज्ञान करने से पहले क्षयोपशम का स्वरूप जानना जरूरी है।**

तुमने अनेक बार सुना है कि मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यायज्ञान ज्ञान की बात कर रहे हैं, ये सारे कैसे ज्ञान हैं ? **क्षयोपशम ज्ञान हैं।** अभी हमारा क्षयोपशम का उघाड़ अच्छा है ऐसा भी आपने सुना होगा। क्षयोपशम शब्द शास्त्रों में बहुत बार आता है। **उनमें प्रतिस्पर्धी कर्मों का** जैसे मतिज्ञान के लिये प्रतिस्पर्धी कौन हैं ? *श्रोता: मतिज्ञानावरण।* मतिज्ञानावरण। उसका **क्षयोपशम पाया जाता है।** क्षयोपशम पाया जाता है का अर्थ है क्या है वह हम अभी समझेंगे। **इसे हम मतिज्ञानावरण कर्म पर घटाते हैं। क्षयोपशम की परिभाषा इस प्रकार है -**

अभी मैं इस वाक्य का एक-एक पार्ट बोलूंगी आपको पुस्तक में देखकर रिपीट करना है। वर्तमानकालीन। *श्रोता: वर्तमानकालीन।* सर्वघाति स्पर्धकों का। *श्रोता:*

सर्वधाति स्पर्धकों का। उदयाभावी क्षय। श्रोता: उदयाभावी क्षय। हम पूरा वाक्य पढ़ते हैं- वर्तमानकालीन सर्वधाति स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय। श्रोता: वर्तमानकालीन सर्वधाति स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय। अभी दूसरा पार्ट - भविष्यकालीन उन्हीं स्पर्धकों का। श्रोता: भविष्यकालीन उन्हीं स्पर्धकों का। उन्हीं का अर्थ क्या है ? श्रोता: सर्वधाति का। सर्वधाति का। भविष्यकालीन उन्हीं स्पर्धकों का। श्रोता: भविष्यकालीन उन्हीं स्पर्धकों का। सदवस्थारूप उपशम। श्रोता: सदवस्थारूप उपशम। अब तीसरी बात- और वर्तमानकालीन देशधाति स्पर्धकों का उदय। श्रोता: और वर्तमानकालीन देशधाति स्पर्धकों का उदय। कर्म की इन तीनरूप अवस्थाओं को क्षयोपशम कहते हैं। श्रोता: कर्म की इन तीनरूप अवस्थाओं को क्षयोपशम कहते हैं।

फिर से इसको देखते हैं। यह परिभाषा कौन बताना चाहता है ? किसीको याद है क्या ? श्रोता: वर्तमानकालीन सर्वधाति स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय, भविष्यकालीन उन्हीं स्पर्धकों का सदवस्थारूप उपशम और वर्तमानकालीन देशधाति स्पर्धकों का उदय। तीनों को मिलकर उसका नाम क्या है ? श्रोता: क्षयोपशम। क्षयोपशम। यहां भाईयों में कोई कहेंगे ? श्रोता: वर्तमानकालीन सर्वधाति स्पर्धकों का क्षय। उदयाभावी। श्रोता: वर्तमानकालीन सर्वधाति स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय। श्रोता: भविष्यकालीन उन्हीं स्पर्धकों का सदवस्थारूप। सदवस्थारूप उपशम। हम उसका अर्थ समझेंगे तो और क्लेरिटी हो जायेगी। हां और अभी उदय किसका होगा ? श्रोता: देशधाति स्पर्धकों का। हां, वर्तमानकालीन देशधाति स्पर्धकों का उदय। ये तीन बातें होती हैं।

अब उसमें पहली बात क्या थी ? वर्तमानकालीन। वर्तमानकालीन का अर्थ क्या है ? हमने क्या देखा था ? कर्मों में हमने जो निषेक रचना देखी थी वह एक समय में बंधनेवाले की थी। हर समय कर्म बंधता है तो सारे निषेक सत्ता के निषेकों में मिल जाते हैं। सत्ता में उदय के समय से लेकर निषेक रचना पड़ी है। उदय में आ रहे हैं न ? दूसरे समय, तीसरे समय, चौथे समय। तो जो-जो बंधते हैं वे उनमें मिलते रहते हैं। सत्ता की जो निषेक रचना है उसमें वर्तमान समय से लेकर जो सर्वाधिक स्थिति बंधी है, वहां तक सभी निषेक पड़े हैं। वर्तमान में जो उदय में आ रहे हैं; अभी हम मतिज्ञानावरण पर घटित कर रहे हैं। मतिज्ञानावरण कर्म बंधा था तो किसरूप से बंधा था ? सर्वधाति, देशधाति दोनों स्पर्धक बंधे थे और प्रत्येक निषेक में सर्वधाति, देशधाति स्पर्धक पड़े हैं। कहां से ? वर्तमान का एक उदयरूप निषेक छोड़ दो। दूसरे, तीसरे,

चौथे, वहां जितने कोड़ाकोड़ी सागर के कर्म के निषेक पड़े हैं, उन सबमें सर्वघाति और देशघाति स्पर्धक पड़े हैं।

अब वर्तमान में एक निषेक उदययोग्य हो गया तो उस एक समय में क्या होता है ? उसमें जो सर्वघाति स्पर्धक हैं, वे देशघातिरूप से कन्वर्ट होकर उदय में आते हैं। परमाणु जब उदय के सन्मुख हुये हैं, वे परमाणु सत्ता में नहीं पड़े रह सकते। अभी उनका उदय निश्चित है। वे अपनेरूप उदय में नहीं आ रहे हैं परंतु देशघाति होकर उदय में आ रहे हैं। अपनेरूप से उदय नहीं हो रहा उसको कहा उदयाभावी, परंतु जा रहे उसको कहा क्षय। अपनेरूप से उदय में नहीं आ रहे हैं। उदय के एक ही समय में कन्वर्ट हो रहे हैं। सत्ता में दूसरा निषेक, तीसरा निषेक, चौथा निषेक, सारे कोड़ाकोड़ी के निषेक पड़े हैं। सबमें सर्वघाति, देशघाति सब स्पर्धक पड़े हैं। डिफरन्स कहां हुआ ? उदय में आते-आते किसरूप में उदय में आ रहे हैं ? तो पहला पार्ट क्या था ? वर्तमानकालीन सर्वघाति स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय - खाली क्षय नहीं। वह क्षय यानी यहां सत्ता में से क्षय की बात नहीं है; कर्मों का क्षय करते हैं उसकी बात यहां नहीं है। सर्वघाति जो हैं, जिनमें पूरा घात करने का सामर्थ्य है। परमाणु तो पड़े हैं, परमाणुओं का उदय तो चलेगा। दूसरे निषेक में से अभी वर्तमान में आ गये तो उनका उदय चलेगा। क्योंकि परमाणु को अभी कोई उदय से रोक नहीं सकता। परंतु उनमें जो सर्वघातिपना था वह मिटकर देशघातिरूप हुआ है, डायल्यूट हो गये।

श्रोता: उसको उदयाभावी कहेंगे ? उसीको उदयाभावी कहेंगे। अपनेरूप से उदय रुक गया है, सर्वघातिरूप से उदय में नहीं आ रहे हैं। उनका उदय तो होगा। कर्म तो खिर रहे हैं। अभी उनको खिरने से कोई नहीं रोक सकता परंतु किसरूप से उदय में आ रहे हैं ? देशघातिरूप कन्वर्ट होकर उदय में आ रहे हैं। उनका उदय के समय में सर्वघातिपना नहीं है। अभी हम यह मात्र मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरण में घटित कर रहे हैं। क्योंकि हर जीव का उतना ज्ञान का उछाड़ तो रहेगा ही रहेगा। फिर से पढ़ते हैं देखो- **वर्तमानकालीन** यानी वर्तमान एक निषेक की बात है, पूरी उदयावली की बात नहीं है। वर्तमान जो एक निषेक उदयरूप है - कर्मरूप है, अभी अकर्मरूप होने जा रहे हैं उन सभी परमाणुओं की बात है; वह वर्तमानकालीन निषेक है। दूसरे निषेक में जब थे तब वे सर्वघाति थे। अभी उनका खिरने का नंबर आया। तो क्या हुआ ? देशघातिरूप टर्न हुये। सर्वघातिरूप से नहीं रहे, परंतु उदय तो हो गया।

उदय हो गया यानी अभी खिर रहें हैं। उसीको कहेंगे उदयाभावी क्षय। अपनेरूप से उदय में नहीं आना, फिर भी खिर जाना। *श्रोता: क्षय किसका हो गया ?* क्षय उसीका, क्षय यानी उदयाभावी क्षय एक शब्द लेना है। उदय का अभाव वही उनका क्षय कहेंगे। उनमें सर्वघातिपना नहीं रहा, वही उसका उदय का अभाव, वही उसका क्षय।

दूसरा भाग क्या है ? **भविष्यकालीन**। भविष्यकालीन यानी दूसरा, तीसरा, अंत के निषेक तक, वहां वे सर्वघातिरूप से तो पड़े हैं। क्योंकि उनमें जो जिस मात्रा में शैलरूप हैं, अस्थिरूप हैं, जो कुछ हैं, तो वे सारे सत्ता में पड़े हैं। तो कहते हैं **भविष्यकालीन उन्हीं स्पर्धकों**। उन्हीं यानी कौनसे ? सर्वघाति। ऊपर देशघाति भी हैं, हमें उसकी चिंता नहीं है; ऊपर जो सर्वघाति हैं। देखो, ऐसा है कि जो सर्वघाति है न, उनके परमाणु की संख्या अनंतवें भाग प्रमाण होती है। परंतु उनमें शक्ति कितनी है ? पूरा घात करने की। जो भविष्यकाल में पड़े हैं, वे अपनेरूप से - सर्वघातिरूप से पड़े हैं परंतु उनकी उदीरणा होकर उदय में आ जाये ऐसा नहीं हो सकता। वे अपनी-अपनी जगह रहेंगे; वे दूसरे निषेक से नीचे नहीं आयेंगे। उदयावली के ऊपर भले ही उनका अपकर्षण होगा, जो कुछ होगा, वे सर्वघाति वहां अपनी जगह पड़े रहेंगे, उदय में नहीं आयेंगे उसको क्या कहेंगे ? सदवस्थारूप उपशम। सदवस्था यानी अपनी जगह रहना, उदय में नहीं आना उसको कहेंगे सदवस्थारूप उपशम।

दो बातें हुयी। कौनसी दो बातें हुयी ? *श्रोता: वर्तमानकालीन सर्वघाति स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय।* हां, वर्तमानकालीन सर्वघाति स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय। दूसरा भाग ? *श्रोता: भविष्यकालीन उन्हीं स्पर्धकों का सदवस्थारूप उपशम।* हां, भविष्यकालीन यानी ऊपर के सभी निषेकों में; उन्हीं स्पर्धकों का यानी उन्हीं सर्वघाति स्पर्धकों का सदवस्थारूप उपशम यानी वे सत्ता में हैं, उदय में नहीं आ रहे हैं, उसीको सदवस्थारूप उपशम कहते हैं। तीसरा भाग - उदय किसका होगा ? *श्रोता: वर्तमानकालीन।* हां, वर्तमानकालीन। *श्रोता: देशघाति स्पर्धकों का उदय।* देशघाति स्पर्धकों का उदय। इन तीनों को मिलाकर एक नाम है, क्षयोपशम। क्षय यानी यहां उदयाभावी क्षय को क्षय कहा। सदवस्थारूप उपशम को उपशम कहा। परंतु उदय तो देशघाति का चल रहा है। यह सब मिलीजुली-टुगेदर जो अवस्था है उसको यहां क्या नाम है ? *श्रोता: क्षयोपशम।* क्षयोपशम - कर्म का क्षयोपशम।

मैं पढ़ूंगी आप मेरे बाद रिपीट करना। वर्तमानकालीन। श्रोता: वर्तमानकालीन। सर्वधाति स्पर्धकों का। श्रोता: सर्वधाति स्पर्धकों का। उदयाभावी क्षय। श्रोता: उदयाभावी क्षय। भविष्यकालीन। श्रोता: भविष्यकालीन। उन्हीं स्पर्धकों का। श्रोता: उन्हीं स्पर्धकों का। सदवस्थारूप उपशम। श्रोता: सदवस्थारूप उपशम। और वर्तमानकालीन। श्रोता: वर्तमानकालीन। देशधाति स्पर्धकों का उदय। श्रोता: देशधाति स्पर्धकों का उदय। हां, कर्म की इन तीनरूप अवस्थाओं को क्षयोपशम कहते हैं। श्रोता: कर्म की इन तीनरूप अवस्थाओं को क्षयोपशम कहते हैं। देखो, हमारा क्षयोपशम बढ़ा कि नहीं बढ़ा ? क्षयोपशम के बारे में हमने कुछ जान लिया, पहले उस संबंधी अज्ञान था। किसके बारे में ? क्षयोपशम संबंधी। अभी उस संबंधी ज्ञान का उघाड़ हुआ। क्यों ? किसीने पढ़ाया इसलिये ? श्रोता: नहीं। कर्म हट गये इसलिये ? नहीं, सब कुछ अपनी ज्ञान की योग्यता से होता है। ख्याल में आयी बात ? निमित्त होते हैं। सब कुछ होते हैं। कर्मों की अवस्था भी निमित्त है। सामने कोई पुस्तक है वह भी निमित्त है। परंतु निमित्त से परद्रव्य में कुछ भी नहीं होता। श्रोता: लाइट निमित्त होता है ? हां लाइट यानी प्रकाश के निमित्त से ज्ञान हो रहा है ? निमित्त जो कुछ होना है वह निमित्त भी निश्चित है, जो यथायोग्य रहता है। हमें उसकी चिंता नहीं करनी।

अभी हम आगे बढ़ते हैं। हमने अभी मतिज्ञानावरण पर घटित किया। अभी हम अवधिज्ञानावरण पर घटित करते हैं। जिस किसीको अवधिज्ञान है उनकी बात कर रहे हैं। आप बतायेंगे सौम्य ? जिसको अवधिज्ञान है उनके अवधिज्ञानावरण पर आपको घटित करना है। श्रोता: अवधिज्ञानावरण के सर्वधाति स्पर्धकों का। कौनसे ? वर्तमानकालीन। श्रोता: वर्तमानकालीन उनका उदयाभावी क्षय। श्रोता: भविष्यकालीन उन्हीं स्पर्धकों का सदवस्थारूप उपशम। और ? श्रोता: और वर्तमानकालीन देशधाति स्पर्धकों का उदय। अभी ये देशधाति में भी बहुत सारी रेंज होगी न ? इसलिये कोई देशावधि है, कोई परमावधि है, कोई सर्वावधि है। भले ही सर्वावधि होगा तो उसका क्षयोपशम नहीं है ऐसा नहीं है। उसमें भी क्षयोपशम ही घटित होगा। जितना ज्ञान का उघाड़ है; किसका ? अल्पज्ञानी का। अल्पज्ञानी का जितना ज्ञान का उघाड़ है उसका सबका नाम क्या है ? क्षयोपशम ज्ञान। क्यों ? उनका वहां पर जो प्रतिस्पर्धी ज्ञानावरण है उसकी क्षयोपशमरूप अवस्था पायी जाती है।

जब केवलज्ञान होता है उस ज्ञान का नाम क्या है ? श्रोता: क्षायिकज्ञान।

क्षायिकज्ञान। वह कोई क्षयोपशम नहीं है। वहां कर्म की कैसी अवस्था है ? पांचों ज्ञानावरण का क्षय पाया जाता है। हमने ज्ञानावरण पर घटित किया। *श्रोता: इसमें जो देशघाति का उदय होगा वह दारु-लतारूप ही होगा या अन्य प्रकृतिरूप भी होगा ?* अन्य प्रकृति यानी ? *श्रोता: यानी उसी ज्ञानावरण कर्म की अन्य प्रकृति ?* ना-ना-ना। मतिज्ञानावरण है वह मतिज्ञानावरणरूप से ही उदय में आता है। हां सत्ता में पड़े-पड़े कुछ परमाणु संक्रमित होते हैं उसकी बात यहां नहीं कर रहे हैं। परंतु मतिज्ञानावरण के श्रुतज्ञानावरणरूप होकर उदय में आते हैं ऐसा नहीं होगा। उसका अपनेरूप से उदय चलता है। हां, सत्ता में पड़े हुये क्रोध के परमाणु मान, मान के परमाणु माया ऐसे आपस में संक्रमित होते ही रहते हैं। वैसे ही ज्ञानावरण की पांचों प्रकृतियों के परमाणु आपस में संक्रमित होते हैं। वह अभी हमारा विषय नहीं है। परंतु मतिज्ञानावरण मतिज्ञानावरणरूप से ही उदय में आ रहा है। हम यहां उसकी चर्चा कर रहे हैं।

श्रोता: भविष्यकालीन सदवस्थारूप उपशम है उसमें और सत्ता में उपशम है इसमें क्या फर्क है ? उपशम अलग चीज होती है सत्ता अलग चीज होती है ? सत्ता किसको कहेंगे ? जो-जो बंधते हैं और जब तक उदय में नहीं आते तब तक वे सब सत्ता में हैं। इनका प्रश्न है कि सदवस्थारूप में और सत्त्व में - सत्ता में क्या अंतर है ? तो सत्ता में सब कुछ गर्भित है। जिसका कुछ उदय नहीं हैं वे भी सत्ता में गर्भित हैं। जिसके कोई औपशमिक अवस्था चल रही हो वे भी सत्ता में गर्भित हैं। जैसे दर्शनमोहनीय कर्म की सत्ता औपशमिक सम्यग्दृष्टि के है कि नहीं है ? उसका उदय ही नहीं है। सर्वघाति, देशघाति की तो बात ही नहीं है। उसका उदय ही नहीं है, बस सत्ता में उपशमित पड़े हैं। तो सत्ता का अर्थ सत्ता में पड़े रहना और उसकी पर्टिक्युलर अवस्था है सदवस्थारूप उपशम। सत्ता में इसरूप पड़े हैं परंतु उदय में आते-आते वे अन्यरूप से उदय में आ रहे हैं उसको सदवस्थारूप उपशम कहते हैं।

जैसे किसीको सम्यग्दर्शन हुआ। हम आगे की बात अभी ले रहे हैं - वह क्रम से लेनेवाले हैं। तो मिथ्यात्व का जो कुछ उपशम होना है वह तो होगा। परंतु उस समय अनंतानुबंधी का क्या हो रहा है ? अनंतानुबंधी का उदय है कि नहीं है ? *श्रोता: नहीं है।* नहीं है। उदय हो जाये तो सम्यक्त्व छूट जायेगा। तो अनंतानुबंधी सत्ता में है कि नहीं है ? *श्रोता: है।* है न ? कहां पड़े हैं ? अरे दूसरे, तीसरे निषेक आदि सब निषेकों में ऊपर तक पड़े हैं, अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण निषेक पड़े हैं। उदय में आते हैं तो

क्या होगा ? अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलनरूप से होकर उदय में आ रहे हैं। उसको भी अप्रशस्त उपशम कहेंगे। यह आगे का विषय है। अभी मतिज्ञानावरण पर घटित करना आसान है इसलिये हम स्लोलि आगे जा रहे हैं। हमें तो क्षयोपशम क्या है इसको पहले समझना है। ख्याल में आयी न बात ?

श्रोता: यह जो सदवस्थारूप उपशम है उसमें उत्कर्षण, अपकर्षण, उदीरणा वगैरह होगा कि नहीं होगा ? देखो सदवस्थारूप उपशम- एक तो उदयावली में भी प्रविष्ट हो गये हैं यानी उदय के समय से आवलीप्रमाण जो निषेक होते हैं उसको कहेंगे उदयावली। उसमें ये अपकर्षण, उत्कर्षण, संक्रमण कुछ नहीं होता है। उसके ऊपर जो सत्ता में पड़े हैं, उनमें अपकर्षण आदि सब चलेगा। उदीरणा- जिसका उदय नहीं उसकी उदीरणा भी नहीं होगी। इसतरह से उसका अर्थ होता है। बात ख्याल में आयी ? अब ये जो कर्म की अन्य अवस्थाएँ हैं और कौनसे कर्म में क्या होता है वह अलग विषय है। यहां हमारा विषय क्षयोपशम की परिभाषा है, वह समझने की अभी हम कोशिश कर रहे हैं। क्षयोपशम समझने में अभी कुछ कठिनाई होती है तो प्रश्न पूछना। नहीं तो हम अन्य-अन्य कर्मों पर घटित करके देखेंगे।

अंतराय की जो पांच उत्तरप्रकृतियां हैं उनमें क्षयोपशम है कि नहीं है ? *श्रोता: है।* अनादि से एक क्षयोपशम ही तो है क्योंकि उनमें सर्वघाति प्रकृति हैं ही नहीं, सभी प्रकृतियां देशघाति हैं। उनमें दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य का कुछ न कुछ अंश प्रकट है। इसतरह से उनमें भी क्षयोपशम घटित होता है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय में क्षयोपशम लगाना आसान है, सम्यक्त्व में घटित करना थोड़ा सा अलग है। क्यों ? मिथ्यात्व प्रकृति सर्वघाति है। सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति नयी तैयार हुयी, बंधी हुयी नहीं है; वह भी सर्वघाति है - उसके भी सारे स्पर्धक सर्वघाति हैं। विशेषता किसमें है ? सम्यक् प्रकृति में है। सम्यक् प्रकृति देशघाति प्रकृति होने पर भी, उसमें एक भी सर्वघाति स्पर्धक नहीं है।

फिर से सुनो- सम्यक् प्रकृति देशघाति प्रकृति है। परंतु वह कैसे तैयार हुयी ? मिथ्यात्व के स्पर्धकों का अनुभाग अनंतगुणा घटकर बाद में तैयार हुयी प्रकृति है। यह देशघाति प्रकृति होते हुये भी उसमें सर्वघाति स्पर्धक बिलकुल नहीं हैं। क्षयोपशम सम्यक्त्व की परिभाषा घटित करनी है क्षयोपशम सम्यक्त्व जो है, जिसको वेदक

सम्यक्त्व कहेंगे वहां किसका उदय है ? सम्यक् प्रकृति जो देशघाति है। तो मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व का वहां क्या होता होगा ? वर्तमानकालीन मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व का उदयाभावी क्षय। वे भविष्यकाल में पड़े हैं - दूसरे, तीसरे आदि निषेकों में पड़े हैं। कतार में खड़े हैं, तैयार हैं - आप मिथ्यात्व परिणाम करो, तो हम उदय में आ जायेंगे इसतरह से पड़े हैं वहां पर। उनका सदवस्थारूप उपशम है, वे वर्तमान एक समय में सम्यक् प्रकृतिरूप कन्वर्ट होकर उदय में आते रहते हैं वह क्षयोपशम सम्यक्त्व है। उसकी परिभाषा हम जब औपशमिक सम्यक्त्व की चर्चा करेंगे तब देखेंगे। अभी तो सम्यक्त्व होना बाकी है न, पहले औपशमिक सम्यक्त्व करेंगे। अनादिकाल से मिथ्यात्व है, उस जीव को पहले जो सम्यक्त्व होता है वह प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है। बाद में वह अपनेआप क्षयोपशम सम्यक्त्व में कन्वर्ट हो जाता है।

श्रोता: वर्तमानकालीन सर्वघाति स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय बताया, वह निमित्त की अपेक्षा से कथन है। तो उसमें ज्ञान ने क्या किया तो उसका क्षय हो गया ? देखो, ज्ञान ने ज्ञान किया। ज्ञान पर्याय अपने स्वभाव में से उत्पन्न हुयी। कैसे हुयी ? हीन ज्ञानरूप से परिणमित होकर वहां हीन ज्ञान दशा हुयी। यह हीन ज्ञान दशा हुयी तो कर्मों में क्या अवस्था चल रही थी ? तो कर्मों में यह सर्वघाति, देशघाति का चक्कर हो रहा था। उसका उतना क्षयोपशम हो रहा है। *श्रोता: ज्ञान कैसे हुआ ?* ज्ञान स्वभाव से हुआ। वह कोई कर्माधीन थोड़े ही है ? अभी आपको ज्ञान कैसे हुआ ? क्षयोपशम की परिभाषा आपने सुनी, रटी; कुछ समझा, कैसे हुआ ? *श्रोता: उसके पहले तो नहीं था ?* पहले नहीं था, अब हुआ उसीको तो ज्ञान कहेंगे। ज्ञान की परिभाषा में वह आ जाता है। ज्ञान की परिभाषा में है- पहले नहीं था और हमने जान लिया उसके बारे में।

श्रोता: ऊपर के जो निषेक हैं, जहां अभी सर्वघाति-देशघाति दोनों पड़े हुये हैं। जब भविष्य में उदय में आयेंगे तब वे क्या उपशम होकर उदय में आयेंगे ? देशघाति होकर ही उदय आयेंगे। *श्रोता: हमेशा देशघाति होकर ही उदय आयेंगे ?* हां। किसीको अवधिज्ञान है और वह अवधिज्ञान नहीं रहा तो क्या होगा ? अवधिज्ञानावरण के सर्वघाति स्पर्धकों का उदय शुरू हो जायेगा।

अभी अपना समय हो गया है। इसकी चर्चा थोड़ी देर के बाद करेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

६. शंका-समाधान; पांच लब्धि

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने के पूर्व में जीव और कर्मों की कैसी-कैसी अवस्थायें होती हैं, वह विषय यहां हम पांच लब्धि के प्रकरण में देखने जा रहे हैं। उसके लिये आवश्यक ऐसी कर्मों की कुछ जानकारी हमने देखी है, उनको देखते हुये उसके संबंध में बहुत सारे प्रश्न और चर्चा चल रही है।

हम क्षयोपशम शब्द से तो परिचित हैं क्योंकि बार-बार आता है। इसका क्षयोपशम अच्छा है या हम तो क्षयोपशम ज्ञानी हैं आदि-आदि बातें बहुत बार आती हैं। परंतु उसका हमें सही भावभासन नहीं होता कि क्षयोपशम होता क्या है। अभी हमारे भाई ने प्रश्न पूछा क्षयोपशम में जीव ने क्या किया ? जीव ने ज्ञान किया। जीव के ज्ञान की जो कोई हीनाधिक अवस्था हो रही है, वह अपने स्वयं की योग्यता से, स्वयं में, अपने स्वसमय पर प्रकट हो रही है। हां, उसमें भले ही कर्म की अवस्था निमित्तरूप से है; परंतु कर्म का क्षयोपशम हुआ इसलिये ज्ञान हुआ ऐसा तीन काल में नहीं होता है। कर्म तो जड़ है। वहां उसकी जो अवस्था होती है, उसकी तरफ देखकर हम कार्य का अनुमान लगा सकते हैं। निमित्त कार्य में कुछ नहीं करता। ख्याल में आयी बात ?

कर्म की अवस्था, कर्म में, कर्म के कारण होती है और जीव की अवस्था, जीव में, जीव के स्वयं के कारण होती है। हां, एक ही समय में दो कार्य हो रहे हैं और इसने इसको किया ऐसा हमें लगता है। वहां नियमरूप से जीव के उस कार्य में कर्म की अवस्था वैसी ही होती है। इसलिये इसको यहां निमित्तरूप से बताया जाता है। उसकी तरफ से ज्ञान का नाम क्षयोपशम ज्ञान पड़ा है। उसमें कर्म का योगदान कितना है बोलो ? *श्रोता: कुछ नहीं।* झिरो। ख्याल में आती है न बात ? भले ही उसकी तरफ से नाम दें, फिर भी कर्म ने जीव को ज्ञान उत्पन्न नहीं कराया है। ज्ञान तो जीव की अपनी योग्यता से होता है। उसका वह स्वभाव है। वह स्वभाव का अंश है, स्वभाव में से प्रकट हुआ है। कर्म के कारण ना वह ज्ञान रुका है और ना ही वह कर्म के कारण हो रहा है। अब इस क्षयोपशम के संबंध में जो कुछ प्रश्न हैं, उनको हम देखेंगे। आगे बढ़ते हैं।

श्रोता: क्षयोपशम को उदाहरण देकर सरल भाषा से समझना है। हमें कोई भाई मिले थे। कहां ? दुबई में मिले थे। उन्होंने कहा जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आदि द्रव्य हैं;

उसमें पुद्गल नाम क्यों रखा ? कोई आसान नाम क्यों नहीं रखा ? इतने अटपटे अन्य-अन्य नाम क्यों रखें ? थोड़े सरल रखने थे। हमें याद रखने में कठिनाई होती है। मैंने उनको पूछा आपका टेलिफोन नंबर क्या है ? हम २००२ में गये थे, उस जमाने में तो उन्होंने टेन डिजिटवाला उनका टेलिफोन नंबर बताया। मैंने कहा ऐसे अटपटे नंबर क्यों ? ०, १, २, ३ ऐसे क्यों नहीं ? जो जिनके नाम होते हैं, वे वही होते हैं। अनादि से ये नाम चले आ रहे हैं, कर्मों के नाम किसीने रखे नहीं हैं या द्रव्यों के नाम किसीने रखे नहीं हैं। सहज उनका ज्ञान कराया जाता है। भगवान की दिव्यध्वनि में आया है और गणधरों ने - आचार्यों ने शास्त्रों रचना की है और आज तक हमें ये उपलब्ध हैं।

देखो आज जिनागम का बिलकुल नहीं के बराबर जितना अंश उपलब्ध है। मूल में जो द्वादशांग की रचना थी उसके आधार से अभी जितना उपलब्ध है - धवला की सोलह पुस्तकें हैं, जयधवला की सोलह पुस्तकें हैं, महाबंध की सात पुस्तकें हैं, गोम्मटसार जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार, त्रिलोकसार वगैरह करणानुयोग के ग्रंथ हैं। वे जो उपलब्ध हैं, कहते हैं नहीं के बराबर हैं और उनका भी हमारा कितना अभ्यास है ? उनका भी पूरा अभ्यास नहीं है। जितना अभ्यास करो उसमें तो बहुत सारे और सूक्ष्म पॉइंट्स निकलते हैं, है न ? क्षयोपशम को सरल भाषा में इतना ही समझना है कि क्षयोपशम शब्द कैसे तैयार हुआ ? क्षय और उपशम। क्षय का क्या अर्थ लिया हमने ? स्पर्धक क्या है ? वर्गणाओं का समूह है। वर्गणा क्या है ? कर्मों के परमाणुओं का समूह है। यानी हम कहेंगे कर्म के कुछ परमाणु पूरा घात करने में समर्थ हैं उनको सर्वघाति कहते हैं। कुछ परमाणु पूरा घात नहीं करते हैं उनको देशघाति कहते हैं।

हमारा मतिज्ञान हर समय चल रहा है। उसमें अगर मतिज्ञानावरण के सर्वघाति स्पर्धकों का उदय हो जावे तो क्या होगा ? ज्ञान का पूरा ही घात हो जायेगा, जीव जड़ हो जायेगा - अचेतन हो जायेगा। ऐसा कभी नहीं होता है। तो क्या होता है ? मतिज्ञानावरण के परमाणु सर्वघातिरूप से बंधे भी थे, सर्वघातिरूप से सत्ता में भी हैं। परंतु उदय में आते-आते क्या हो जाता है ? जो प्रदेशउदय है न, प्रदेश यानी परमाणु। जो परमाणु उदय के सन्मुख हुये हैं उनका उदय कोई रोक सकता है क्या ? *श्रोता: नहीं।* अभी वे ऊपर चढ़ जायें, उदय में नहीं आये ऐसा कभी नहीं होगा। उन परमाणुओं का उदय तो होना ही है। उन परमाणुओं में कैसी शक्ति थी ? सर्वघात करने की। वह शक्ति हीन होकर देशघातिरूप हो गई। कब ? केवल उदय के एक

समय में। अपनेरूप से - सर्वधातिरूप से पड़े हैं। उदय में आते-आते देशधातिरूप होकर, टर्न होकर उदय में आते हैं उसीको कहा उदयाभावी क्षय। उसका सर्वधाति का उदय नहीं है वही उसका उदय का अभाव है और वही उसका क्षय है।

सत्ता में तो पड़े हैं न ? दूसरे, तीसरे, चौथे सभी निषेकों में पड़े हैं - बिलकुल पड़े हैं। परंतु वे अपनी जगह में पड़े हैं। अपनी जगह छोड़कर, उदीरणा होकर उदय में आने के योग्य नहीं हैं। सत्ता में पड़े-पड़े जो कुछ हो रहा है वह हो रहा है। वे उदय आने योग्य नहीं हैं तो उनको कहेंगे सदवस्थारूप उपशम। उसका अर्थ ही यह है कि जहां है वहां बने रहना, उदय में नहीं आना। सत्ता में रहना, उदय में नहीं आना उसीका नाम क्या है ? सदवस्थारूप उपशम। अभी उदय तो चलेगा न ? वे टर्न होकर उदय में तो आ रहे हैं; किसरूप से ? देशधातिरूप से। वहां कुछ परमाणु देशधाति ही थे और ये सर्वधाति भी देशधातिरूप से हो रहे हैं। तब उनका उदय चलेगा।

देशधाति में भी बहुत सारी रेंज है। जैसे आप भाई ने प्रश्न पूछा था, जो त्रीन्द्रिय जीव है तो उसको चक्षु संबंधी ज्ञान का उघाड़ है या नहीं है ? श्रोता: नहीं है। उसको आंखें हैं क्या ? श्रोता: नहीं हैं। उसको कौनसी तीन इन्द्रियां हैं ? श्रोता: स्पर्श, रस और गंध। स्पर्श, रस और गंध तो पुद्गल के गुण हैं। हमने इन्द्रियां पूछी ? श्रोता: स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय। स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय। तो अभी उघाड़ कितने का है ? उसका तीन इन्द्रिय संबंधी ज्ञान का उघाड़ है, क्षयोपशम है यानी स्पर्शनेन्द्रियावरण का क्षयोपशम है, रसनेन्द्रियावरण का क्षयोपशम है और घ्राणेन्द्रियावरण का क्षयोपशम है। क्षयोपशम समझते हैं ? सर्वधाति का उदय नहीं है, देशधाति का उदय है। परंतु उसके चक्षुरिन्द्रियावरण के सर्वधाति का उदय चल रहा है, कर्णेन्द्रिय संबंधी सर्वधाति का उदय चल रहा है, उसके मन नहीं है तो मन संबंधी नोइन्द्रियावरण कहते हैं, उस संबंधी सर्वधाति का उदय चल रहा है। यह उसका अर्थ है। उसका भी क्षयोपशमज्ञान है। कौनसा ? त्रीन्द्रिय जीव को भी जो ज्ञान है वह क्षयोपशमज्ञान है और उसको चक्षु संबंधी, कर्ण संबंधी ज्ञान नहीं है उसको औदयिक अज्ञान कहेंगे क्योंकि सर्वधाति का उदय है। ख्याल में आती है बात ?

एकेन्द्रिय जीव को मात्र स्पर्शनइन्द्रिय संबंधी ज्ञान का उघाड़ है। उघाड़रूप ज्ञान कितना है ? स्पर्श को ही जाने, अन्य कुछ नहीं जाने। तो उसके रसनेन्द्रियावरण

का क्या हो रहा है ? श्रोता: सर्वधाति स्पर्धकों का उदय। सर्वधाति स्पर्धकों का उदय है, उस संबंधी उसका औदयिक अज्ञान है। समझ में आती है न बात ? अभी समय था ज्ञान में आने का। इसतरह से सबमें लगा लेना। इसी संबंध में एक प्रश्न है - ज्ञान गुण की एक समय में एक पर्याय होती है तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्याय एक साथ कैसे होते हैं ? किसका प्रश्न है ? अच्छा प्रश्न है। हां, कौन भोपालवाले डॉक्टर साहब ? देखो ये भोपालवाले हैं न, हमें शिबिर में बुलाते हैं। कितने शिबिर हो गये ? कहां गये भोपालवाले ? सात हो गये न ? श्रोता: सात। अजयभाई और अशोकभाई कहां हैं ? वहां पर भी हम छह-छह घंटे बोलते हैं- मैं तीन घंटे, दिनेशजी तीन घंटे और दस-दस दिन के शिबिर चलते हैं इनके यहां। श्रोता: चार सौ बीस लेक्चर हुये।

ज्ञान गुण की एक समय में एक पर्याय होती है। तो उन्होंने ज्ञान गुण की कौन-कौनसी पर्याय बतायी ? मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यायज्ञान। ये सारे कैसे ज्ञान हैं ? श्रोता: क्षयोपशम ज्ञान। क्षयोपशम ज्ञान। तत्त्वार्थसूत्र में एक सूत्र है, इसको दूसरे शब्द में बोलेंगे तो क्या कहेंगे ? भावेन्द्रिय कहेंगे। क्षयोपशम ज्ञान को भावेन्द्रिय कहते हैं। भावेन्द्रिय की परिभाषा कौन कहेंगे ? सूत्र बताना है। श्रोता: लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम्। लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम्। यानी क्षयोपशम ज्ञान की पर्याय में ज्ञान का उघाड़ जुदी बात है और ज्ञान का उपयोग जुदा है। क्षयोपशम ज्ञान की पर्याय कैसी है ? लब्धि और उपयोग मिलकर भावेन्द्रिय यानी क्षयोपशम ज्ञान होता है। लब्धि में यह क्षयोपशमरूप अवस्था जो है न, कितना क्षयोपशम है ? जैसे हमें आपको पांच इन्द्रिय और मन संबंधी ज्ञान का उघाड़ है। उघाड़ यानी हमारा उतना क्षयोपशम है। इतना क्षयोपशम हर समय चल रहा है कि नहीं ? हम अँट अ टाइम कौनसी इन्द्रियों के द्वारा जानते हैं ? पांचों इन्द्रियों के द्वारा ? श्रोता: नहीं। नहीं। हम अँट अ टाइम एक ही इन्द्रिय के द्वारा जानते हैं। परंतु हमारा उपयोग इतना फास्ट पलटता है कि हमें लगता है हम पांचों इन्द्रियों के द्वारा जान रहे हैं। हम कहेंगे हम पंचेन्द्रिय हैं और हमारा क्षयोपशम कितना है ? पांच इन्द्रिय और मन संबंधी हमारा उघाड़ हर समय की पर्याय में है।

गणधर जिन्होंने द्वादशांग की रचना की है उनके कितने ज्ञान थे ? श्रोता: चार। चार ज्ञान। यानी उनके हर समय ज्ञान की पर्याय में क्षयोपशम कितना चल रहा था ? वहां मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण अवधिज्ञानावरण और मनःपर्यायज्ञानावरण - सबका क्षयोपशम चल रहा है। फिर भी अँट अ टाइम उपयोग किसमें होगा ? श्रोता: एक में।

एक में। मतिज्ञान या श्रुतज्ञान या अवधिज्ञान या मनःपर्यायज्ञान में। मतिज्ञान में भी किसी एक इन्द्रिय के द्वारा उपयोग चलेगा। तो उपयोग बात अलग है और ज्ञान की पूरी पर्याय बात अलग है। इसलिये जीव को एक साथ अधिक से अधिक कितने ज्ञान होते हैं ? तो हम कहेंगे चार ज्ञान होते हैं। उसका अर्थ यह है कि उसके एक साथ चार ज्ञान संबंधी क्षयोपशम विद्यमान है। उसके चारों ही ज्ञान, उनकी कर्पोसिटि-उघाड़ हर पर्याय में है, उसको यहां लब्धि कहा। लब्धि में क्षयोपशम को लेना है। कितना क्षयोपशम है ? उसको लब्धि में लेना है।

श्रोता: इसमें एक प्रश्न है जैसे चार ज्ञान लब्धिरूप हैं। उपयोग किसी एक में रहेगा तो ऐसा कोई विवक्षित पदार्थ का ज्ञान अभी हमें जानने में नहीं आया है तो भी उसका क्षयोपशम हो सकता है ऐसा हम कह सकते हैं ? जैसे जर्मन भाषा अगर मैं सीखता हूं तो मुझे आ जायेगी लेकिन अभी मैं सीखा नहीं हूं तो भी वह सीखने की ताकत क्षयोपशमरूप मेरी अभी वर्तमान में है ऐसा हम कह सकते हैं ? देखो वह ताकत बात अलग है। उसमें मन संबंधी कुछ याद करने की ताकत है, इसतरह से हम ले सकते हैं। सीखने की ताकत है उतना ले सकते हैं। हम कोई विशेष नाम लेकर नहीं कहेंगे। लब्धि में क्या लेना है ? अभी कोई अवधिज्ञानी मुनिराज हैं। अवधिज्ञानावरण का क्षयोपशम चल रहा है यानी उनके अवधिज्ञान है। प्रत्येक पर्याय में विद्यमान है। परंतु उन्होंने अवधिज्ञान लगाया ही नहीं है ऐसा होगा कि नहीं होगा ? *श्रोता:* होगा। वे कितना जान गये उसको लब्धि में नहीं लेना है। लब्धि में ज्ञान का उघाड़ कितना प्रकट है, वर्तमान में उनका क्षयोपशम कितना है ? उस कर्म का क्षयोपशम कितना है ? उसको लेना है। कर्मों की भाषा में बोलेंगे क्योंकि हम कर्मों की तरफ से उसका कथन करेंगे। वह उनका प्रकट ज्ञान का उघाड़ है और उसको लब्धि कहते हैं। यह जो कहने की पद्धति है न, हमने जान लिया और हमारे लब्धिज्ञान में पड़ा है वह तो धारणा और संस्कार में चला जाता है। उसको लब्धि नहीं कहते। उसमें थोड़ा डिफरन्स है।

श्रोता: दारु का एकभाग और लता देशघाति स्पर्धक हैं; इसमें कौन-कौनसी प्रकृतियां आती है ? उदाहरण ? देशघाति स्पर्धक किसमें होंगे ? सर्वघाति प्रकृति में होंगे कि नहीं होंगे ? *श्रोता:* नहीं होंगे। देशघाति प्रकृतियों में होंगे कि नहीं होंगे ? *श्रोता:* होंगे। होंगे। अभी पृष्ठ ५४ निकालना जहां सर्वघाति और देशघाति प्रकृतियों की लिस्ट बतायी है। जो-जो देशघाति प्रकृतियां हैं उन सबमें देशघाति स्पर्धक हैं ही। उनमें

सर्वघाति स्पर्धक भी हैं। वहां पर केवल सम्यक् प्रकृति को छोड़ना है क्योंकि वह बाद में तैयार हुयी प्रकृति है। नहीं समझे ? यहां देशघाति प्रकृतियों की लिस्ट बतायी है, उसमें सम्यक् प्रकृति एक बाजू छोड़ो। बाकी सभी में कौन-कौनसे स्पर्धक है ? सर्वघाति भी हैं और देशघाति भी हैं। इन्होंने क्या प्रश्न पूछा था ? देशघाति स्पर्धक किसमें होते हैं ? यह प्रश्न था न ? कौन-कौनसी प्रकृति आती है वह पूरी लिस्ट यहां बतायी है। ये प्रकृतियां देशघाति हैं। इन सबमें देशघाति स्पर्धक हैं।

क्षयोपशम भाव कितने हैं ? चेतनाबहन बोलो ? *श्रोता: अठारह।* अठारह। याद करना है ? मैं आसान तरीका बताती हूं। सारे क्षयोपशम भाव हैं न, वे देशघाति प्रकृति पर ही घटित होंगे। केवलज्ञानावरण का क्षयोपशम होगा ? *श्रोता: नहीं होगा।* निद्रा का क्षयोपशम होगा ? *श्रोता: नहीं होगा।* नहीं होगा। मिथ्यात्व का क्षयोपशम होगा ? *श्रोता: नहीं होगा।* नहीं होगा। हमें क्षयोपशम भाव घटित करने हैं। तो कहां घटित हो रहे हैं ? *श्रोता: देशघाति प्रकृति।* देशघाति प्रकृतियों पर। अभी देशघाति में ज्ञानावरण की कितनी प्रकृतियां हैं ? *श्रोता: चार।* चार। ज्ञान में क्या विशेषता है ? ये ज्ञान जो हैं वे सम्यग्ज्ञान भी हैं और मिथ्याज्ञान भी हैं। तो क्षयोपशम ज्ञान में हम चार ज्ञान कहते हैं और तीन अज्ञान कहते हैं। क्षयोपशम के तीन अज्ञान हैं वे कुज्ञान हैं- कुमति, कुश्रुत, कुअवधि। सम्यग्ज्ञान तो मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय हो गये। ये सात भाव तो यहीं पर घटित हो गये। अब दर्शन में- वहां कितने हैं ? *श्रोता: तीन।* चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन। बराबर ? ये सात तीन दस हो गये। अंतराय के पांच हैं। कितने हुये ? *श्रोता: पंद्रह।* पंद्रह हो गये।

अब देशघाति सम्यक् प्रकृति का उदय है और बाकी दो प्रकृतियों का उदय नहीं है। तो यह क्षयोपशम सम्यक्त्व हुआ। संज्वलन संबंधी क्षयोपशम भाव है, उसको क्या कहेंगे ? *श्रोता: चारित्र।* क्षयोपशम चारित्र जो छठे-सातवें गुणस्थान में होता है। क्योंकि वहां सर्वघाति का उदय नहीं होता। हमारे आपके संज्वलन का सर्वघाति का उदय है, मुनिराजों को नहीं है। जो संयमासंयम पांचवें गुणस्थान में होता है वह भी एक क्षयोपशम भाव है। अभी उसमें कैसे घटित करना ? अप्रत्याख्यानावरण के सर्वघाति स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय, भविष्यकालीन उन्हीं स्पर्धकों का सदवस्थारूप उपशम और वर्तमानकालीन प्रत्याख्यानावरण के उदय से संयमासंयम होता है। इसतरह से ये क्षयोपशम भाव हैं, अठारह हो गये न ? चार घातिकर्मों के नाम मालूम है तो ये अठारह

भाव फटाफट कह सकते हैं। अब क्षायिक भाव घटाना है। क्षायिक भाव किस पर घटित करेंगे ? ज्ञानावरण की सभी प्रकृतियां नष्ट होगी तब ज्ञान में एक क्षायिकज्ञान है। दर्शन में ? श्रोता: क्षायिकदर्शन। यहां सभी के सभी दर्शनावरण नष्ट हो जाते हैं। अब सम्यक्त्व में ? श्रोता: क्षायिक सम्यक्त्व। क्षायिक सम्यक्त्व है और फिर ? श्रोता: क्षायिक चारित्र। क्षायिक चारित्र। पांचों अंतराय नष्ट होने पर पांच क्षायिक भाव हो गये न ? इसतरह नौ क्षायिक भाव हैं। चार घातिकर्मों के नाम याद हैं तो नौ क्षायिक भाव घटित हो गये। औपशमिक भाव घटित करने हैं तो बस मोहनीय पर घटित करो। औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र। इसतरह से ये कर्मों की अवस्था हैं, हमें तो जीव के भावों को बताना है। कर्मों की तरफ से क्षयोपशम समझने में कठिन है।

प्रश्न: केवलज्ञानावरण कर्म सर्वघाति प्रकृति है। उसमें क्या होगा ? या तो उदय होगा या क्षय होगा। उसका उदय कब तक है ? बारहवें गुणस्थान के अंतिम समय तक है। तो तेरहवें में क्या हुआ ? पांचों ज्ञानावरण रहे ही नहीं, सत्ता में से निकल गये उनका क्षय हुआ। वहां उदयाभावी क्षयवाली बात नहीं है। उदयाभावी क्षय में क्या होता है ? सत्ता में सब पड़े रहते हैं और यहां क्या हुआ है ? श्रेणी में जाकर कर्म का क्षय जब कहेंगे तब वे सत्ता में से समूल नष्ट होंगे। कौन ? पांचों ही ज्ञानावरण। अभी मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण कुछ भी नहीं रहा; सभी के सभी ज्ञानावरण नष्ट हो गये तब केवलज्ञान हो गया। इसलिये उसको क्षायिकज्ञान कहेंगे। ख्याल में आयी बात ?

श्रोता: उदयावली के सर्व स्पर्धक सर्वघाति हैं या उसके पहले देशघाति हो जाते हैं ? देखो, इनका प्रश्न है सर्वघाति स्पर्धक देशघाति कब होते हैं ? जब उदय का एक समय है तब होते हैं। उदयावली में तो आवली प्रमाण जघन्य युक्तासंख्यात निषेक पड़े हैं। उदयावली में आने पर वे देशघाति नहीं होते हैं। बस एक समय के लिये देशघाति होकर उदय में आते हैं यह उसका अर्थ होता है। श्रोता: सदवस्थारूप सर्वघाति स्पर्धकों का अर्थ क्या है ? सदवस्थारूप उपशम शब्द होना चाहिये। सर्वघाति स्पर्धकों का सदवस्थारूप उपशम होता है यानी क्या ? उदय में नहीं आ रहे हैं परंतु सत्ता में पड़े हैं, इसीको कहेंगे सदवस्थारूप उपशम। ऐसा उसका अर्थ होता है।

श्रोता: स्थिति के निषेक और अनुभाग के स्पर्धक एक नियम के अंतर्गत बनते हैं ? यह प्रशस्त और अप्रशस्त में घटित करना हो जैसे स्थिति है, स्थिति जैसे-जैसे

बढ़ती जाती है तो नियम के अनुसार पहले निषेक में अनुभाग १०१ से १९९ है दूसरे निषेक में २०० से २९९ है इसतरह से अनुभाग बढ़ रहा है ? नहीं बढ़ रहा है। प्रत्येक निषेक में जघन्य से उत्कृष्ट तक सभी अनंत स्पर्धक हैं। हमने पहले भी बताया था। जब हम केवल अनुभाग को बता रहे हैं, तो हम कहेंगे यहां नीचे जघन्य अनुभाग है, ऊपर-ऊपर अधिक अनुभाग है। नीचे की वर्गणा यानी हीन अनुभाग, दूसरी वर्गणा, तीसरी वर्गणा में एक-एक अविभागप्रतिच्छेद से बढ़ते हुये वर्ग हैं। फिर एक स्पर्धक हुआ, दूसरा स्पर्धक, तीसरा स्पर्धक, चौथा स्पर्धक, ऊपर का स्पर्धक। ये हम किसमें बता रहे हैं ? मात्र अनुभाग की रचना में। इसमें स्थिति से कोई संबंध नहीं है। इसमें हम ऐसा नीचे से ऊपर दिखा रहे हैं। अब यही अनुभाग प्रत्येक निषेक में देखना है। तो निषेक ऐसे आड़ा रखो। उसमें जघन्य से उत्कृष्ट तक सभी अनुभाग पड़े हैं - प्रत्येक निषेक में। श्रोता: परंतु दूसरे निषेक में १०० से २०० दुगुना ? ना, पहले स्पर्धक की पहली वर्गणा के वर्गों का अनुभाग हमने १०० माना था उससे दुगुणा २०० दूसरे स्पर्धक की पहली वर्गणा के वर्गों का अनुभाग होता है।

जैसे स्कूल में नंबरिंग लगाते हैं। कैसे लगाते थे ? हाइट वाइज भी लगाते थे। ए, बी, सी, डी के अनुसार भी नंबर वन, टू, थ्री फोर देते हैं और कितने मार्क्स मिले ? उसके भी नंबरिंग अलग होते हैं। तो उनकी अलग-अलग कतार होगी कि नहीं ? जब हम कहेंगे अल्फाबेटीकलि खड़े हो जाओ तो उसकी कतार अलग होगी। उसमें छोटी या बड़ी हाइटवाला कैसे भी उसकी वहां पर कतार हो जायेगी। हम कहेंगे परीक्षा में कैसे मार्क्स मिलें ? वन, टू, थ्री नंबर की अपेक्षा लाइन लगाओ तो उसकी लाइन अलग हो जायेगी। तब हाइट या नाम से कुछ लेना-देना नहीं है। यहां जब निषेक की रचना कहेंगे तो मात्र स्थिति को देख रहें हैं। जब अनुभाग की रचना देखेंगे, तो मात्र अनुभाग को देख रहें हैं। अब हम निषेक और अनुभाग को एक साथ देखना है। प्रत्येक निषेक में सभी अनुभाग हैं। देख लेना- जयधवला, लब्धिसार ग्रंथों में लिखा हुआ है कि यह जो अनुभाग की रचना है, प्रत्येक निषेक में जघन्य से उत्कृष्ट अनुभाग पड़े हैं। तो उदय किसरूप कहलायेगा ? यही प्रश्न है न ?

अभी हमने देखा था, उदयरूप निषेक में भी सभी अनुभाग पड़े हैं। उदय के ऊपर के निषेकों में सर्वघाति, देशघाति सब पड़े हैं। उदय कैसा हुआ ? देशघातिरूप से हुआ। अभी हम जघन्य से उत्कृष्ट तक देखते हैं। वहां सभी अनुभाग पड़े हैं। तो

उदय कैसा होगा ? जीव का जैसा परिणाम होगा वैसा होगा। जब हम कहेंगे कि जीव तीव्र क्रोध कर रहा है तो तीव्र अनुभाग का उदय कहलायेगा। ऐसा नहीं कि अनुभाग का तीव्र उदय हुआ है इसलिये जीव ने तीव्र क्रोध किया - ऐसा नहीं है। दोनों कार्य एक साथ हो रहे हैं। आप सुबह में जाकर सबसे पहले किसका चेहरा देखते हैं ? *श्रोता: खुद का। खुद का, दर्पण में।* तो पहले आप जाते हैं कि पहले दर्पण में प्रतिबिंब आता है ? *श्रोता: दोनों साथ में।* साथ में। तो दर्पण में जो दिख रहा है वह आपकी अवस्था है न ? *श्रोता: दर्पण की अवस्था है।* तो दर्पण को कैसे पता चला अभी ऐसी अवस्था करनी है ? वह उसकी अवस्था उसके अपने से है। समझ में आयी ? सामने जो चीज है उसकी वह प्रतिबिंबाकार अवस्था नहीं है। किसी भी द्रव्य की अवस्था परद्रव्य में नहीं होती। दर्पण के सामने कोई अग्नि रखी तो अग्नि, अग्नि में है और दर्पण में जो अग्नि दिख रही है प्रतिबिंब, वह दर्पण की अवस्था है। दर्पण की स्वच्छता है। ये दो चीजें भिन्न-भिन्न हैं।

यहां पर भी कर्म की अवस्था कर्म में हो रही है। जीव की अवस्था जीव में हो रही है। हां, वे एक दूसरे को दर्शित करेंगी परंतु किसी एक के कारण दूसरा नहीं है। हमें क्या लगता है ? कर्म का उदय ऐसा आया, आकरा-तीव्र उदय आया इसलिये हमें ऐसा करना पड़ेगा। क्यों भाई लगता है न ? हास्य का उदय आया तो हमें हंसना पड़े, शोक का उदय आया तो रोना पड़े, ऐसे हम थोड़े ही पराधीन हैं ? हम अपने को ही पराधीन मानकर बैठे हैं और अपना सारा दोष किस पर मढ़ते हैं ? कर्म पर। करते हैं हम स्वयं और कहते हैं नहीं-नहीं कर्म का उदय है, हम क्या करें ? देखो, अभी आगे बढ़ते हैं- स्थिति की रचना अलग है, अनुभाग की रचना अलग है। दोनों को एक साथ देखना है तो प्रत्येक निषेक में सभी प्रकार के अनुभाग पड़े हैं। उसका उदय किसरूप से होता है ? अभी जिसरूप से जीव के परिणाम होते हैं उस तरह से वैसा दोनों का कार्य एक साथ चलेगा।

श्रोता: जब क्रोध के काल में अन्य सोलह प्रकृतियों का बंध होता है, अन्य सोलह नहीं, अन्य पंद्रह हैं मिलकर सोलह होते हैं। अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन सभी के चार-चार मिलकर सोलह का बंध है तब हास्य, रति आदि नोकषाय का भी प्रतिसमय बंध होता है या नहीं ? देखो, हर समय नियम से बंधनेवाली प्रकृतियां जुड़ी हैं। मिथ्यादृष्टि है तो उसके ज्ञानावरण की पांच हर समय बंध रही हैं, दर्शनावरण की नौ हर समय बंध रही हैं, अंतराय की पांच हर समय बंध रही हैं।

हैं, मोहनीय में मिथ्यात्व, सोलह कषाय और भय-जुगुप्सा हर समय बंध रही हैं। डिफरन्स कहां है ? कभी हास्य-रति बंधती हैं, कभी शोक-अरति बंधती हैं; तीन वेद में से कभी कोई एक वेद बंधता है। बंधने की बात चल रही है, उदय की नहीं। उदय के नियम अलग हैं, बंध के नियम अलग हैं। मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा हर समय बांध रहा है। डिफरन्स कहां पड़ेगा ? कभी हास्य-रति का बंध होगा, कभी शोक-अरति का और तीन वेद में से किसी एक वेद का। यह अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में पलटता रहता है। मिथ्यादृष्टि है तो तीनों में से एक-एक वेद का ऑल्टरनेटली बंध करता रहेगा। नामकर्म में कुछ प्रकृतियां ध्रुवबंधी हैं तथा अन्य-अन्य गति के साथ बंधनेवाली प्रकृतियों का बंध चेंज होते रहता है। प्रतिसमय उन्हीं प्रकृतियों का बंध नहीं होगा, ऑल्टरनेटली होगा; वह एक-एक अंतर्मुहूर्त में बदलेगा।

श्रोता: सामान्य निर्जरारूप समयप्रबद्ध तथा उदय में आनेवाले निषेक के बीच क्या फर्क है ? देखो, समयप्रबद्ध का अर्थ होता है एक समय में बंधनेवाले परमाणु। परंतु उस संख्या को भी समयप्रबद्ध कहने की पद्धति है। जितने नंबर में बंधते हैं करीबन उतने ही नंबर में खिरते भी हैं। उदयरूप होकर खिर जाना उसको निर्जरा भी कह सकते हैं, उसमें और उदय में आनेवाले निषेक में क्या फर्क है ? कोई फर्क नहीं है। जो अलग-अलग समयों में बंधे हैं वे बंधने के बाद सत्ता में पड़े रहते हैं। तो जिनकी-जिनकी समान स्थिति है उनको सत्ता का एक निषेक कहेंगे। वर्तमान समय में उदय आने योग्य सत्ता में जितने-जितने परमाणु हैं, वे एक साथ उदय में आकर खिर जायेंगे। उसको हम उदयवाला निषेक कहेंगे। *श्रोता: सत्ता में रहे हुये निषेक और उदय में आनेवाला निषेक क्या ऐसे दो भेद हैं ?* बिलकुल है क्योंकि उदय में आनेवाला एक निषेक अभी खिर रहा है और सत्ता में असंख्यात निषेक पड़े हैं।

श्रोता: जो-जो परमाणु समान स्थिति के हैं उनके समूह को निषेक कहते हैं तो प्रश्न है कि अलग-अलग समय में बंधे हुये लेकिन एक ही समान स्थितिवाले उदाहरणार्थ सभी अपने-अपने बंधे हुये समय से हजार साल या फिर अलग-अलग समय में बंधे हुये लेकिन कोई एक पर्टिक्युलर समय में उदय में आनेवाले कर्मों का समूह ? जब हमने पहले यहां एक निषेक रचना बतायी थी वह एक समय में बंधनेवाले की बात थी। हर समय में बंध हो रहा है और हर समय में हीनाधिक बंध हो रहा है। तो नये बंधनेवाले निषेक सत्ता के निषेकों में जुड़ जाते हैं। उन्हें सत्ता के निषेक कहेंगे।

वर्तमान का उदयरूप एक निषेक, दूसरे समय में उदय आनेवाला वह सत्ता का दूसरा निषेक, तीसरे समय में उदय आनेवाला वह सत्ता का तीसरा निषेक। परंतु सत्ता का जो निषेक उदय में आ रहा है, वह एक समय में बंधा हुआ नहीं है। मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है कि जीव एक समय में जो कर्म परमाणु बांधता है; वे अलग-अलग असंख्यात समयों में उदय में आते हैं और अलग-अलग समयों में बंधे हुये जिनकी-जिनकी समान स्थिति है वे एक समय में उदयरूप होते हैं। मोक्षमार्गप्रकाशक में पढ़ा है न ? एक समय में बंधे हुये परमाणु - एक लॉट कभी एक समय में उदय में नहीं आते। अलग-अलग समयों में उदय में आते हैं क्योंकि उसमें इतने अनंत परमाणु बंधे हैं उनकी निषेक रचना हुयी है। हमने मिथ्यात्व की ७० कोड़ाकोड़ी सागर के स्थितिबंध की बात की थी, कोई सात हजार वर्ष और एक समय में उदय में आयेंगे; कोई दो समय, कोई तीन समय, उनके अलग-अलग भेद पड़े हैं। जो अलग-अलग समयों में बंधे थे परंतु उनकी स्थिति समान हो गयी है, वे एक साथ उदय में आयेंगे। यही कर्मों का नियम है।

श्रोता: मेरा प्रश्न ऐसा था कि समझो मैंने आज एक कर्म बांधा है जो एक हजार साल बाद उदय आनेवाला है। और मैंने दूसरा कर्म सौ साल के बाद बांधा और उसका भी उदय नौ सौ साल के बाद आयेगा। अब दोनों की स्थिति समान हुयी। उदय समान आयेगा ? तब आपने समान स्थिति समझाया, कल्पयूजन समान स्थिति संबंधी है। बिलकुल, उनकी स्थिति समान ही कहलायेगी। श्रोता: सभी समान स्थिति बोली जायेगी न आज बांधा हो या सौ साल बाद बांधा हो ? भले ही कभी भी बांधा है। ऐसा है न अभी किसीने जैसे एक घंटे पहले बांधा है क्योंकि अंतःकोड़ाकोड़ी सागर स्थिति बांधते हैं तो अंतर्मुहूर्त में उदय भी होता है। तो उसके उदयरूप निषेक हैं और कोई कब बांधा था ? श्रोता: हजार सागर पहले। कोई हजार सागर पहले बांधा था, या कोई हजार वर्ष पहले बांधा था। जो हजार वर्ष पहले बांधा था तो उसका भी कोई निषेक अभी उदयरूप है। खाली दो समय की बात नहीं है, अनेक अलग-अलग समयों में बंधे हुये, अलग-अलग असंख्यात समयों में बंधे हुये निषेकों की जो टोटल है, वह उसका वर्तमान का उदयरूप निषेक कहलायेगा। अनेक भवों के बंधे हुये एक समान स्थितिवाले परमाणु अभी उदय में आ रहे हैं।

हमारा वर्तमान जो उदयरूप निषेक है, वह किसी एक पर्टिक्युलर समय में बंधा हुआ उदय में नहीं आ रहा है। अरे, असंख्यात भवों में अलग-अलग समयों में बंधे

हुये अभी वर्तमान में इकट्ठे होकर उनका फल मिल रहा है। इसलिये जीव को पता नहीं न, कैसे कौनसे कर्मों का उदय चल रहा है ? क्या है ? जीव को लगता है हमने ऐसे कौनसे परिणाम किये ? हां, प्रथमानुयोग में कहेंगे इसने ऐसा परिणाम किया इसलिये यह फल मिला। वहां तो प्रयोजनवश कथन भी होते हैं।

श्रोता: समान स्थिति जो है उसको हम लिटरली ऐसा कहें तो उसका मतलब ये होता है कि दोनों का उदय एक समय आना है जो एक सौ साल के बाद बांधा है और एक आज बांधा है लेकिन उदय ? उदय एक साथ। श्रोता: हम स्थिति मतलब नॉर्मली कैसे बोलते हैं कि भई सौ साल के बाद आनेवाला है मतलब वह स्थिति हुयी ? नहीं-नहीं, जब स्थितिबंध कहेंगे तो उसके अंतिम निषेक की स्थिति कहलाती है। जैसे हमने बीस कोड़ाकोड़ी सागर का नामकर्म बांधा तो वह बीस कोड़ाकोड़ी सागर अंतिम निषेक की स्थिति थी। परंतु उसके प्रथम निषेक की स्थिति कितनी थी ? दो हजार वर्ष और एक समय। ख्याल में आया न ? अन्य समयों में बंधे हुये दो हजार वर्ष और एक समयवाली स्थिति के अन्य भी वहां पड़े हैं। सत्तावाले निषेक की समान स्थिति जुदी है। क्योंकि अलग-अलग समय में बंधे हैं, परंतु अभी एक साथ उदय आने योग्य परमाणु हैं। अभी हम पूरी सत्ता के निषेक कहेंगे तो उसमें भी कोई परमाणु नीचे आते हैं, ऊपर जाते हैं, संक्रमित होते हैं, उनमें कुछ न कुछ परिवर्तन चलते रहते हैं। परंतु किसी गिक्हन पॉइंट पर हम कहेंगे कि वे एक साथ उदय आने योग्य हैं। एक समय में बंधा हुआ पूरा लॉट एक समय में कभी भी उदय में नहीं आता यह उसका अर्थ होता है।

प्रश्न: सभी के सभी देशघाति प्रकृति में सर्वघाति स्पर्धक और देशघाति स्पर्धक होते ही हैं, परंतु कुछ देशघाति प्रकृति में सर्वघाति स्पर्धक उदय में आते ही नहीं, उदाहरणार्थ मतिज्ञानावरण। तथा कुछ देशघाति प्रकृति में सर्वघाति स्पर्धकों का उदय में आना है, उदाहरणार्थ अवधिज्ञानावरण। क्या यह सही है ? हम जितना ज्ञान का उधाड़ है वैसे कहेंगे। जैसे हर छद्मस्थ का मतिज्ञान, श्रुतज्ञान तो चल रहा है; जब तक सर्वज्ञता नहीं है, केवलज्ञान नहीं है तब तक सभी जीवों को मति-श्रुतज्ञान तो है ही है। तो ज्ञानावरण; मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण दोनों का क्षयोपशम चल रहा है। जिसको अवधिज्ञान है उसको अवधिज्ञानावरण का क्षयोपशम है और जिसको अवधिज्ञान नहीं है उसको अवधिज्ञानावरण के सर्वघाति स्पर्धकों का उदय है। देखो, कर्मों की अवस्था के ऊपर से हम क्षयोपशम घटित तो कर रहे हैं, परंतु जीव का जानना या नहीं जानना

हो रहा है वह उसकी अपनी स्वयं की योग्यता से हो रहा है। मूल में यह बात पकड़ना है। वहां कर्मों की कैसी अवस्था है उसे हम बतायेंगे, हम इसकी परिभाषा याद करेंगे, परिभाषा समझेंगे, समझायेंगे। परंतु मूल बात ख्याल में लेनी है। केवलज्ञान यानी क्षायिकज्ञान हो या क्षयोपशम ज्ञान हो, अल्पज्ञान हो, जो कोई ज्ञान की पर्याय है वह जीव की स्वयं की योग्यता से हो रही है।

हमारे घर में दैनिक स्वाध्याय चलता है। नये-नये लोग आते हैं। दिनेशजी हमेशा पूछते हैं मनीषाबहन कितने बज गये ? साढ़े आठ हो गये। तो घड़ी देखकर ज्ञान हुआ कि नहीं हुआ, बोलो ? श्रोता: नहीं हुआ। इसका अर्थ क्या है ? निमित्त से कार्य नहीं होता है। जो कुछ कार्य बनना है, हां, निमित्त होते हैं परंतु निमित्त से कार्य नहीं होता है यह कहना चाहते हैं। अभी गुरुदेवश्री की वाणी सुननेवालों को यह क्या समझाना ? गुरुदेवश्री तो कहते हैं दिव्यध्वनि से भी ज्ञान नहीं होता, है न !

अभी प्रथमोपशम सम्यक्त्व का विषय शुरू करने के पहले बंध के प्रकरण में नामकर्म की बात देखते हैं। हम मिथ्यादृष्टि की बात करेंगे। जैसे ज्ञानावरण की पांचों प्रकृतियां तो हर समय बंध रही हैं। स्थिति और अनुभाग हीनाधिक बंधेंगे उसकी हम चर्चा नहीं करेंगे। दर्शनावरण की नौ हर समय बंध रही हैं। मोहनीय के बारे में हमने आपको अभी बताया था- मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा हर समय बंधती हैं। चेंज कहां है ? हास्य-रति या शोक-अरति और तीन वेद में से एक वेद, इतने तो बंधते ही बंधते हैं। मोहनीय हो गया। अब उसके बाद कौनसा है ? अंतराय। तो अंतराय की पांचों बंधती हैं यह हमने देखा। इसमें से केवल मोहनीय की प्रकृति में थोड़ा भेद है बाकी तो सभी हमेशा बंधनेवाली प्रकृतियां हैं।

अब अघातिकर्म की बात करते हैं। अघातिकर्म में क्या होगा ? सातावेदनीय बंधेगी या असातावेदनीय बंधेगी। उच्चगोत्र बंधेगा या नीचगोत्र बंधेगा। आयु जब बंधनी है, तब बंधती है। कब बंधती है ? भुज्यमान आयु का टू थर्ड बीत जाये, वन थर्ड बाकी है यानी त्रिभाग-त्रिभाग में उसके अपकर्षकाल होते हैं वहां आयु अंतर्मुहूर्त तक बंधती है। चारों आयु में से, जो कुछ यथायोग्य परिणाम हैं, वैसी आयु बंधेगी। नामकर्म में क्या होता है ? हमने नामकर्म में बहुत सारी प्रकृतियां देखीं। सभी की सभी प्रकृतियां किसी एक जीव को एक साथ नहीं बंधेंगी। उसकी ध्रुवबंधी प्रकृतियां हर समय बंधेगी परंतु

कौनसी गति संबंधी बंध कर रहा है उस गति की पूरक प्रकृतियां उसके साथ बंधेंगी मेरी भाषा में उसका पॅकेज बंधेगा। जैसे देवगति के साथ बंधनेवाली नामकर्म की विशिष्ट प्रकृतियां बंधेंगी। नरकगति बांधनेवाले को उसके योग्य प्रकृतियां उसके साथ बंधेंगी। तिर्यचगति बांधनेवाले की बहुत व्हरायटी है। तिर्यचगति जब बंधती है, उसके साथ जो एकेन्द्रियजाति बांधते हैं तो उसके साथ बंधनेवाले नामकर्म अलग होंगे। स्थावर होगा, एकेन्द्रियजाति होगी, पर्याप्त-अपर्याप्त, बादर-सूक्ष्म उनमें बहुत सारी व्हरायटी होगी। वहां उसकी विशिष्ट नंबर ऑफ प्रकृतियां बंधेंगी।

तिर्यचगति के साथ द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, पंचेन्द्रियजाति आदि बहुत सारी व्हरायटी है। उनमें अलग-अलग बंध होगा। मनुष्यगति बांधनेवालों में भी होगा- कोई अपर्याप्त नामकर्म बांधता है, कोई पर्याप्त बांधता है। इसलिये अन्य कर्मों में तो बंध चलता है परंतु नामकर्म की ऐसी विशेषता है और मैंने पहले बताया है जो मिथ्यादृष्टि है वह चार गति ऑल्टरनेट बांधेगा ही बांधेगा। एक अंतर्मुहूर्त से ज़्यादा टाइम नहीं जायेगा। एक बार नरकगति बांधी तो अंतर्मुहूर्त के बाद लौटकर फिर बांधेगा। आप कहेंगे हम छह-छह घंटे प्रवचन सुन रहे हैं न ? शुभभाव लगातार अंतर्मुहूर्त तक होगा। यह हीन अनुभागवाली बांधेगा, कम स्थितिवाली बांधेगा परंतु बंधेगी तो सही। इसतरह से हमने यह नामकर्म की बातें देखी थी। अब आगे बढ़ते हैं।

अब यहां हमारा पंचलब्धि का विषय शुरू होगा। बंध की क्या पोझिशन है उसे हमने देखा। हमने उदय की तो बात नहीं की है क्योंकि वह विषय थोड़ा अटपटा है। उदयरूप प्रकृतियां कहां कौनसी उदयरूप होती हैं, कहां कौनसी बंधरूप हैं ? वह पूरा विषय अलग है। हमारा विषय क्या है ? जब प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने जा रहा है तो कर्मों में क्या-क्या अवस्था होगी ? उनमें क्या-क्या भेद होंगे ? उसको हमें देखना है। हम पृष्ठ ५६ से शुरू करते हैं, देखो- **कर्मों के नाम तथा सामान्य जानकारी और कुछ पारिभाषिक शब्दों के अर्थ देखने के पश्चात् अब हम मूल विषय की चर्चा प्रारंभ करते हैं। पूर्व पीठिका में ही लंबी चर्चा हो गयी है, परंतु वह आवश्यक ही थी। यह बात आगे चलकर तुम्हारे ख्याल में आयेगी।** क्योंकि जब हम आगे की बातें पढ़ेंगे तो वहां कर्मों में क्या-क्या चेंजेस होते हैं ? वह समझना आसान हो जायेगा। पत्रों द्वारा तो हम अत्यंत स्थूल चर्चा करेंगे। इन विषयों की सूक्ष्म चर्चा गोम्मटसार, लब्धिसार, धवला आदि ग्रन्थों में से जानना योग्य है।

लब्धि का अर्थ है प्राप्ति या लाभ - कुछ उपलब्धि। हमने देखा था; इस लब्धिसार ग्रंथ में क्या बताया है ? हमारी सचमुच लब्धि कौनसी है ? मोक्षपर्याय प्रकट हो यह हमारी लब्धि है। वह कैसे प्रकट होती है ? उसका उपाय क्या है ? संवर-निर्जरा। वह सम्यग्दर्शन और सम्यक् चारित्र से प्राप्त होती है। सम्यग्ज्ञान उसमें गर्भित है। तो यह हमारी सचमुच लब्धि है, उसकी यहां चर्चा है। **हमारा लाभ अनंतसुख की प्राप्ति में है। मोक्ष अनंतसुखरूप है** यह हमारी अवस्था है, वह कैसी है ? अनंतसुखरूप अवस्था है **और उसकी प्राप्ति का उपाय जो संवर और निर्जरा है वह भी सुखरूप ही है।** क्या कहना चाहते हैं ? मोक्षपर्याय हमारी अनंतसुखरूप अवस्था है। तो मोक्ष प्राप्ति का जो उपाय है वह भी कितना सुखरूप होना चाहिये। क्या हमने उसको सुखरूप माना ? लोग कहते हैं, अरे ! मुनि अवस्था धारण करनी है, कैसे दुःख झेलते होंगे ? अरे, दुःख नहीं झेलते हैं। वे तो प्रचुर अतीन्द्रिय सुख का अनुभव कर रहे हैं। प्रचुर अतीन्द्रिय आनंद का वेदन करते हैं।

मोक्ष इतना अनंतसुखरूप है तो मोक्षमार्ग भी सुखरूप ही है। वह सच्चे सुखवाली पर्याय है और चौथे गुणस्थान से आगे बढ़ता हुआ सुख ही सुख है। यानी सुख में रहते-रहते ही मोक्ष में पहुंच जाता है और हमने उसको कष्टदायक मान लिया। अरे, इतने उपवास करने पड़ेंगे, ऐसा करना पड़ेगा, दिगंबर अवस्था धारण करने पड़ेगी तो ठंड के मौसम में कितनी तकलीफ होगी ! वह तो बाह्य के संयोगों को देख रहा है। अपने को शरीररूप अनुभव कर रहा है तो मुनिराज को भी शरीररूप से देख रहा है। अरे, भगवान को भी नहीं छोड़ा। उनको भी शरीररूप से देखते हैं, है न। कोई वहां दर्शन करने गये थे; पूछा क्या था ? अरे, क्या पत्थर था और कैसी हसमुख मुद्रा थी यानी भगवान के अभी हास्य कषाय बाकी है ?

क्या कहते हैं ? कहते हैं कि **मोक्ष अनंतसुखरूप है** तो उसकी प्राप्ति का उपाय क्या है ? संवर और निर्जरा, वह भी सुखरूप ही है इसलिये उनकी प्राप्ति होना लब्धि है। वही हमारी लब्धि है। हम कितनी संपत्ति मिली, उसीमें लाभ मिला मानकर उसकी चर्चा करते हैं। **जितना-जितना आस्रव और बंध कम होगा;** यह आस्रव की कटौती कब शुरू होगी ? सम्यग्दर्शन होने पर। मिथ्यात्व अवस्था में कितना भी शुभराग क्यों न हो, कैसे भी शुभभाव क्यों न हो, उससे आस्रव की और बंध की कटौती नहीं होती है। संवर-निर्जरा शुरू नहीं होती। तो कहते हैं कि जितना आस्रव और बंध

कम होगा उतना-उतना दुःख कम होगा। कर्म की भाषा में कहना हो तो बंध की हानि होना अर्थात् विशिष्ट कर्म प्रकृति का बंध रुकना संवर है और पूर्वबद्ध कर्मों के सत्त्व की हानि होना क्यों ? सत्ता में पड़े हैं। बंधने के बाद वे सत्ता में पड़े रहते हैं। हमने एकेन्द्रियजाति के, निगोद संबंधी, ये साधारण नामकर्म सारा बांधा है, नरकगति बांधी है। क्या-क्या बांधा है ? वह सब सत्ता में पड़ा है। तो सत्ता में से उनकी हानि हो जाना, कर्मों का अधिक प्रमाण में खिर जाना वह निर्जरा है।

यह कार्य सम्यग्दर्शन और अधिकाधिक आत्मस्थिरता द्वारा अर्थात् चारित्र द्वारा होता है। चारित्र किसको कहना ? चारित्र यानी चरना-रमना; किसमें ? आत्मस्वरूप में। आत्मस्वरूप की प्राप्ति होती है यानी अतीन्द्रिय आनंद का वेदन होता है, सम्यग्दर्शन हो जाता है। उसके बाद बारंबार आत्मा की अनुभूति यानी आत्मा में स्थिरता बढ़ती चली जाती है उसीको चारित्र कहते हैं और उसीसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। किसी भी उच्च प्रकार के शुभभाव द्वारा संभव नहीं है। मिथ्यात्व कायम है, अभिप्राय में सब खोट चल रही है। कौनसी ? शरीर को ही मैं मान रहा है, ये व्रतों के शुभभाव हैं वह मेरा कार्य है, उससे मुझे लाभ है आदि मिथ्या मान्यता चल रही है। जीव तो ज्ञानस्वरूप है परंतु ज्ञान और राग को और ये राग है उनको एकमेक मानता है तब तक उसका मिथ्यात्व चल रहा है। कितने भी उच्च प्रकार का शुभभाव - मुनि अवस्था भी क्यों न धारण की हो, परंतु जब तक मिथ्यात्व है, तब तक मोक्षमार्ग शुरू नहीं होता है। तब तक उसको आनंद का अनुभव नहीं हुआ है, उसको सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र कुछ भी नहीं है।

इसलिये लब्धिसार ग्रंथ में कहा है कि दर्शन और चारित्र की प्राप्ति होना ही लब्धि है। इसमें से दर्शन यानी सम्यग्दर्शन है, उसको अभी तीन भेदों में बतानेवाले हैं। देखो- लब्धि शब्द अनेक भिन्न-भिन्न अर्थों में या संदर्भ में शास्त्र में आता है। क्षयोपशम ज्ञान में लब्धि और उपयोग दो भेद पाये जाते हैं। अभी हमने उसकी चर्चा की थी। क्षयोपशम ज्ञान कहने से अभी कुछ भासित होता है न। क्षयोपशम ज्ञान किसको कह रहे हैं ? जो ज्ञान का उघाड़ है, उस संबंधी ज्ञानावरण की वहां क्षयोपशमरूप अवस्था है उस ज्ञान को क्षयोपशम ज्ञान कहते हैं। वह कैसा है ? लब्धि और उपयोगरूप। लब्धि यानी ज्ञान की पर्याय की कितनी शक्ति है उसको लब्धि कहते हैं। जितना क्षयोपशम है उस क्षयोपशम को ही लब्धि कहते हैं।

श्रोता: अपन ने जो क्षयोपशम ज्ञान प्राप्त किया है तो फिर अगर समझना कि मुझे गुजराती आती है और अभी मैं गुजराती नहीं बोल रही हूं तो उसको लब्धिज्ञान कह सकते हैं ? आपका प्रश्न है जो ज्ञान हमने सीख लिया है स्कूल में, कॉलेज में जो कुछ है और हमारा अन्य कुछ जानने का उपयोग चल रहा है तो वह स्मरण में रहा है। हम कभी भी बोल सकते हैं, है न ? यही कहना है न ? उसको लब्धि कहने के प्रघात है परंतु उसको संस्कार कहते हैं। वह ज्ञान का संस्कार है। जो ज्ञान धारणा तक पहुंचा है वही संस्काररूप से ज्ञान की हर पर्याय में चलता है। ज्ञान का उघाड़रूप क्षयोपशम हर समय चल रहा है, उसको हम लब्धि में गिनेंगे और धारणा तक पहुंचा हुआ ज्ञान धारारूप से चलेगा उसको संस्कार कहते हैं और यहां जो लब्धि है वह ज्ञान का क्षयोपशम है। ज्ञान का उघाड़ है।

क्षयोपशम विशेष को लब्धि कहते हैं लिखा है न ? या उसके निमित्त से आत्मा में ज्ञान के उघाड़रूप जो शक्ति है उसे लब्धि कहते हैं। तत्त्वार्थसूत्र में सूत्र है लब्धिउपयोगौ भावेन्द्रियम्। लब्धिउपयोगौ यानी लब्धि और उपयोग दो मिलकर भावेन्द्रिय यानी क्षयोपशम ज्ञान की पर्याय होती है - यह उसका अर्थ होता है। मुनिराज को कोई ऋद्धियां प्रकट होती हैं उनको भी लब्धि कहते हैं। उसकी बात यहां नहीं है। देखो- दानांतराय आदि अंतराय कर्म की पांच प्रकृति के क्षयोपशम या क्षय से प्राप्त होनेवाले दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य को भी लब्धि कहते हैं। क्योंकि क्षयोपशमरूप लब्धि में इन पांच को भी कहते हैं परंतु इन पांच का यहां हमारे विषय में कोई प्रयोजन नहीं है। यह क्षायिक लब्धि जो हम कहते हैं न, अंतरायकर्म का क्षय हो जाता है। केवलज्ञान प्राप्त होता है न, उसमें क्या-क्या होता है ? चारों ही घातिकर्म नष्ट हो जाते हैं। मोहनीय तो पहले ही जाता है; ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय सब चले जाते हैं। तो उनके क्या प्राप्त होता है ? नौ क्षायिकभाव प्रकट हो जाते हैं। अरिहंत भगवान को नवकेवललब्धिरमाधरंत कहते हैं न। गाते तो बहुत अच्छा हैं। नौ क्षायिकभाव कौनसे हैं ? **क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र और ये पांच क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग और क्षायिक वीर्य।** यहां क्या कहना चाहते हैं ? इन सबको लब्धि कहा है।

हमारा विषय क्या है ? जरा पुस्तक का नाम देख लो। श्रोता: पंचलब्धि। पंचलब्धि। उसके ऊपर क्या लिखा है ? देखो पूरा नाम क्या है ? प्रथमोपशम सम्यक्त्व

पूर्व की पंचलब्धि। यह प्रथमोपशम क्या होता है ? पहली बार हुआ वह प्रथमोपशम, दूसरी बार हुआ वह द्वितीयोपशम ऐसा नहीं है। प्रथमोपशम का अर्थ क्या होता है ? मिथ्यादृष्टि जीव को मिथ्यात्व अवस्था में से विशिष्ट कर्मों का उपशम होकर सम्यक्त्व प्राप्त होता है उसको कहेंगे प्रथमोपशम सम्यक्त्व। उपशम क्या है, किसका होता है वह हम देखेंगे। मिथ्यात्व में से हुआ है उसको कहेंगे प्रथमोपशम सम्यक्त्व। तो क्या सम्यग्दृष्टि को भी औपशमिक सम्यक्त्व होता है ? मैंने क्या कहा ? मिथ्यादृष्टि को जो कर्मों का उपशम होकर औपशमिक सम्यक्त्व हुआ, उसको प्रथमोपशम सम्यक्त्व कहा। कोई सम्यग्दृष्टि है उसको औपशमिक सम्यक्त्व कब होता है ? *श्रोता: सम्यक्त्व से च्युत होकर पहले गुणस्थान में आता है और फिर।* नहीं-नहीं; मैंने कहा जो ऑलरेडि क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि है। *श्रोता: उसके सम्यक् प्रकृति का उदय है।* हां-हां।

देखो जो क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि है, छठे-सातवें गुणस्थानवर्ती मुनि हैं। अब वे उपशमश्रेणी चढ़ने योग्य है। उनके क्षयोपशम सम्यक्त्व है, सम्यक् प्रकृति का उदय है और वह है मिथ्यात्व से बनी हुयी प्रकृति। उसमें कुछ दोष है। वे दोषवाली प्रकृति के साथ श्रेणी नहीं चढ़ सकते। वे अभी क्या करेंगे ? उन तीनों प्रकृतियों को एक साथ में उपशमित कर देंगे। वे कौनसे सम्यग्दृष्टि हैं ? वेदक सम्यग्दृष्टि। उन्होंने दर्शनमोहनीय की तीनों प्रकृतियों का उपशम कर दिया, अभी जो उनको उपशम सम्यक्त्व हुआ उसको कहेंगे द्वितीयोपशम सम्यक्त्व। प्रथमोपशम सम्यक्त्व किसको कहा ? जो मिथ्यादृष्टि है और दर्शनमोहनीय और अनंतानुबंधी का उपशम करके जिसने सम्यक्त्व प्राप्त किया है उसको कहेंगे प्रथमोपशम सम्यक्त्व। जो मुनिराज उपशमश्रेणी चढ़ने के सन्मुख हैं वे द्वितीयोपशम करते हैं। वेदक सम्यक्त्व यानी क्षयोपशम सम्यक्त्व में से फिर दुबारा उपशम सम्यक्त्व करते हैं तो उसको कहेंगे द्वितीयोपशम सम्यक्त्व। प्रथमोपशम सम्यक्त्व एक ही बार होता है ऐसा भी नहीं है। हां, अनादि से मिथ्यादृष्टि है उसको सबसे पहली बार होगा तो उसको प्रथमोपशम सम्यक्त्व ही होता है।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व होकर कभी छूट भी सकता है। उसको आगे चलकर दूसरी बार अगर सम्यक्त्व होगा, कब होता है, कैसे होता है उसकी चर्चा बाद में करेंगे। उसको दुबारा अंतर्मुहूर्त में इमीजिएट सम्यक्त्व हो सकता है तो उसको वेदक सम्यक्त्व यानी क्षयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं। परंतु कालांतर में उसको दुबारा मिथ्यात्व में से उपशम सम्यक्त्व हो जाये तब उसका नाम क्या होगा ? *श्रोता: प्रथमोपशम*

सम्यक्त्व। प्रथमोपशम सम्यक्त्व। सम्यक्त्व छूटने पर असंख्यात वर्षों के बाद फिर उपशम सम्यक्त्व हुआ तो क्या कहेंगे ? श्रोता: प्रथमोपशम सम्यक्त्व। कितनी बार कहेंगे ? श्रोता: जितनी बार सम्यक्त्व हो। किसी जीव को असंख्यात बार भी हो सकता है। कोई भाग्यवान होगा न ऐसा ! तो प्रथमोपशम का अर्थ पहली बार हुआ ऐसा नहीं है। प्रथमोपशम का अर्थ है, जो मिथ्यादृष्टि अवस्था में से विशिष्ट कर्मों का उपशम करके सम्यक्त्व प्राप्त करता है उसका नाम है प्रथमोपशम सम्यक्त्व और जब-जब प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है तो उसके पहले वहां जीव की पर्यायों का जो क्रम होता है उसका नाम है पंचलब्धि, उसकी चर्चा उसको हम करेंगे।

ये लब्धि यानी जीव की पर्यायों का जो क्रम है, कर्मों की भी कुछ अवस्थायें हैं उनके नाम हैं ये पांच लब्धि। हमारा विषय पंचलब्धि है। है न ? प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पूर्व होनेवाली पांच लब्धि की हम चर्चा करेंगे। उनके नाम इसप्रकार हैं। मैं बोलूंगी और आपको रिपीट करना है। क्षयोपशमलब्धि। श्रोता: क्षयोपशमलब्धि। विशुद्धिलब्धि। श्रोता: विशुद्धिलब्धि। देशनालब्धि। श्रोता: देशनालब्धि। प्रायोग्यलब्धि। श्रोता: प्रायोग्यलब्धि। और करणलब्धि। श्रोता: करणलब्धि। देखो, यह लब्धिसार ग्रंथ में भी गाथा के द्वारा कहा है, यहां हम गाथा देखेंगे। अभी पहली गाथा तो हमने मंगलाचरण के रूप में देखी थी। दूसरी गाथा में सम्यक्त्व की पात्रता क्या है वह बताया है और तीसरी गाथा में पांच लब्धि के नाम बताये हैं। पं. टोडरमलजी साहब ने जो ढूंढ़ारी में लब्धिसार की भाषाटीका लिखी है उसका यह हिंदी अनुवाद आपके हाथ में है। देखो, हम गाथा पढ़ते हैं -

खयउवसमियविसोही देशणपाउग्गकरणलद्धी य।

चत्तारि वि सामण्णा करणं सम्मत्तचारित्ते।। ३।।

इसको अर्थ देखते हैं। क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्यता, करण ये पांच लब्धि हैं। हर एक के साथ लब्धि शब्द लगाना है। कौन बताना चाहते हैं पांच लब्धि के नाम ? श्रोता: क्षयोपशम। लब्धि शब्द लगाना है हर एक के साथ, आप रिपीट करना। क्षयोपशमलब्धि। श्रोता: क्षयोपशमलब्धि। विशुद्धिलब्धि। श्रोता: विशुद्धिलब्धि। देशनालब्धि। श्रोता: देशनालब्धि। प्रायोग्यलब्धि। श्रोता: प्रायोग्यलब्धि। और करणलब्धि। श्रोता: करणलब्धि। कितने हुये ? श्रोता: पांच। पांच, पांच के नाम कौन बतायेगा ? बोलो

बेटा ? श्रोता: क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि, करणलब्धि। बहुत अच्छा। इन पांच लब्धिपूर्वक प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है।

गाथा में तो बताया है कि ये जो चार लब्धि हैं, वे सामान्य हैं। किसके लिये ? अरे, अभव्यों को भी हो सकती हैं। उनमें भी ये कर्मों में जो उलट-पलट होती हैं न, तत्त्व के विचार तो करता है परंतु आत्मसन्मुख नहीं होता तो उसको करणलब्धि प्रकट नहीं होती, सम्यग्दर्शन भी नहीं होता। सम्यग्दर्शन नहीं होगा तो मोक्षमार्ग भी नहीं होगा और मोक्ष भी कभी नहीं होगा। अभी इसकी और भी चर्चा हम आगे करेंगे।

पुस्तक में देखना। ये जो अभी पांच नाम देखे न, **इसीको सागारधर्माभूत ग्रंथ में अन्य शब्दों में कहते हैं।** सागारधर्माभूत किसने लिखा है ? श्रोता: आशाधरजी। पंडित आशाधरजी हुये थे, वे पंडित नाम से प्रसिद्ध हैं। बाद में मुनि भी हुये थे। मुनियों को सिखाते थे। उनका क्षयोपशम प्रचंड था। उनके दो ग्रंथ हैं - सागारधर्माभूत और अनगारधर्माभूत। सागार यानी गृहस्थ संबंधी श्रावकाचार कहते हैं और अनगार यानी मुनियों संबंधी। देखो, उसमें उन्होंने अन्य शब्दों में कहा है - **संज्ञित्व, शुद्धि, देशना, कर्महानि और अस्तमिथ्यात्व।** अस्तमिथ्यात्व यानी मिथ्यात्व का अस्त होकर सम्यक्त्व प्राप्त होता है उसको अस्तमिथ्यात्व कह दिया है। देखो, नियमसार में भी अलग नाम आते हैं। **नियमसार ग्रंथ की तात्पर्यवृत्ति टीका में।** अभी यहां नियमसार सुन रहे हैं न ? तात्पर्यवृत्ति टीका किसने लिखी है ? बोलो ? श्रोता: पद्मप्रभमलधारी देव। पद्मप्रभमलधारी देव। वे मुनि थे, आचार्य नहीं थे। **पांच लब्धि के नाम इस प्रकार हैं - काललब्धि, करणलब्धि, उपदेशलब्धि, उपशमलब्धि और प्रायोग्यतालब्धि।**

इन पांच लब्धिपूर्वक ही सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है, कौनसे सम्यक्त्व की ? प्रथमोपशम। हम हर बार प्रथमोपशम नहीं कहेंगे क्योंकि यहां प्रथमोपशम की ही चर्चा चलेगी। वेदक सम्यक्त्व में कुछ अलग बातें होती हैं उसकी चर्चा बाद में, अगर समय मिलेगा तो करेंगे। हमारी पूर्ण चर्चा प्रथमोपशम संबंधी ही चलेगी। इन पांच लब्धिपूर्वक सम्यक्त्व होता है ऐसा हम कहेंगे। देखो क्या कहते हैं ? **पांच लब्धिपूर्वक प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। लब्धि का स्वरूप देखने के पहले प्रथमोपशम सम्यक्त्व का अर्थ समझेंगे। सम्यक्त्व शब्द से तुम भली-भांति परिचित हो। तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्।** किसमें लिखा है ? श्रोता: तत्त्वार्थसूत्र। सूत्र का अर्थ

पहले हमने विस्तार से देखा है।

अनादि मिथ्यादृष्टि जीव यह अनादि क्या होता है ? और सादि क्या होता है ?
श्रोता: जिसकी शुरुआत नहीं है। जो अनादि से चला है, जिन्हें बिगिनिंग नहीं है। तो किसीको मिथ्यात्व की शुरुआत भी हो सकती है ? *श्रोता:* नहीं/ नहीं ? आप क्या कहते हैं ? *श्रोता:* सम्यक्त्व प्राप्त किया था वह छूट गया। हां, सारे जीव अनादि से तो मिथ्यात्व अवस्था में ही पाये जाते हैं। कोई जीव सम्यक्त्व प्राप्त करेगा परंतु सम्यक्त्व छूट गया और मिथ्यात्व में आया। अब मिथ्यात्व की शुरुआत हुयी है। *श्रोता:* सादि। उसको सादि कहेंगे। स प्लस आदि = सादि। उस जीव को क्या कहेंगे ? सादि मिथ्यादृष्टि जीव। पहले अनादि से अभी तक जिसने कभी सम्यक्त्व प्राप्त नहीं किया है, उसको क्या कहेंगे? अनादि मिथ्यादृष्टि जीव। प्रथमोपशम सम्यक्त्व अनादि मिथ्यादृष्टि प्राप्त करेगा कि सादि मिथ्यादृष्टि प्राप्त करेगा ? *श्रोता:* अनादि। अनादि। और कोई ? *श्रोता:* दोनों कर सकते हैं। देखो, अनादि तो एक प्रथमोपशम ही करेगा परंतु सादिवाला भी करेगा। परंतु सादि के कुछ कंडिशनस होंगे। ये जो सादि मिथ्यादृष्टि है; क्योंकि सम्यक्त्व में से मिथ्यात्व में आया है। कर्मों में जो कुछ व्हेरिएशनस हुये थे और फिर मिथ्यात्व में आने पर जो कुछ उलट-पलट होती है तो वह उपशम के योग्य कब बनता है ? उसके कुछ नियम हैं वह हम देखेंगे। हम उनको एक-एक करके समझेंगे, क्या-क्या होता है।

तो कहते हैं सादि मिथ्यादृष्टि होने पर जो दुबारा उपशम करके सम्यक्त्व प्राप्त करेगा, उसके लिये भी कहेंगे प्रथमोपशम सम्यक्त्व। समझ में आती है न बात ? अनादि यानी अभी तक जिसने सम्यक्त्व प्राप्त नहीं किया है वह है अनादि मिथ्यादृष्टि। सादि मिथ्यादृष्टि का अर्थ क्या है ? एक बार सम्यक्त्व प्राप्त किया था; फिर मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति वे तीन भेद भी हो गये थे। फिर वह मिथ्यात्व में आ गया है। बहुत काल तक रहा है। तो वह दुबारा तीनों का एक साथ उपशम करके सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है।

उसकी और चर्चा हम कल करेंगे। अभी अपना समय हो गया है।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

७. कर्म - बंध, उदय; शंका-समाधान

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसके आधार से जो संस्कृत टिकायें हुयी हैं उनके अनुसार पं. टोडरमलजी ने इसकी ढूंढारी भाषा -उस जमाने की जो हिंदी थी उसमें सरल करके भाषाटीका लिखी है और उसके आधार से हम यहां पांच लब्धि का प्रकरण ले रहे हैं।

हमने पांच लब्धि के प्रकरण शुरू करने के पहले कर्मों की कुछ विशेष जानकारी कल छह घंटों तक ली। बहुत कसरत-मेहनत हुयी न ? नये लोगों को लगता है क्या चल रहा है ? हम कुछ नहीं समझ पा रहे हैं। ज़रूर समझ रहे हैं, हां, यह हो सकता है कि उसको आप रिपीट नहीं कर सकते या वे सभी बातें आपके ख्याल में नहीं हैं। भले ही याद नहीं है, परंतु जब आप दुबारा उसको पढ़ेंगे तो बिलकुल उसका अर्थ भासित होगा। ऐसा नहीं समझना कि आप कुछ नहीं समझ रहे हैं। आपको सबको मालूम है हमारे शिबिर का नियम ? नीरजभाई आपको मालूम है न कि शिबिर के अंत में जो कुछ नहीं समझेगा उसके लिये एक प्राइज रखा जाता है। पहले हम पांच हजार रुपये देते थे, अब हम दस हजार रुपये देंगे। अंतिम दिन बता देना जिसको कुछ भी नहीं समझा, हम आपको पैसा कमाने का मौका दे रहे हैं।

श्रोता: गये शिबिर में क्या हुआ था ? हमारे कर्मकाण्ड के शिबिर में भी हमने ऐसा अनाउन्स किया था। अंतिम दिन में एक महिला खड़ी हो गयी, बोली मुझे कुछ समझ में नहीं आया। मैंने बोला कुछ नहीं समझा इतना तो समझ में आया न ? हमें समझता है कि नहीं समझता है यह हमें दूसरे को नहीं पूछना पड़ता। ख्याल में आयी न बात ? समझना यानी ज्ञान होना, जानना तो हमारा गुण है, स्वभाव है। जो कुछ ज्ञान की अल्प या अधिक पर्याय हो रही है, वह हमारे ज़रूर ख्याल में आती है। देखो, कल हमने क्या देखा था ? कि जीव और कर्म अनादि से ही बंधी हुयी अवस्था में पाये जाते हैं। छह द्रव्यों में जीव चेतन द्रव्य है और कर्म कौनसा द्रव्य है ? *श्रोता: जड़।* पुद्गल; केवल जड़ कहने से तो सभी पांच द्रव्य खड़े हो जायेंगे। कर्म पुद्गलद्रव्य है - जड़ है, अचेतन है। तो अचेतन की पर्याय अचेतन में उसके स्वयं से होती है, अभी गुरुदेवश्री के प्रवचन में सुना न ? चेतन के गुण पर्याय जुदे हैं, अचेतन के जुदे हैं। जीव के जुदे हैं, पुद्गल के जुदे हैं। फिर भी उनमें निमित्त-नैमित्तिक संबंध बनता है।

निमित्त-नैमित्तिक संबंध होने पर भी किसी परद्रव्य की पर्याय के कारण किसी अन्य द्रव्य की पर्याय हुयी यह तीन काल में नहीं बन सकता। फिर भी ज्ञान सबको जानता है। स्व को भी जानेगा, पर को भी जानेगा, पर्याय को भी जानेगा, निमित्त को भी जानेगा। तो यहां निमित्त का ज्ञान कराया जाता है। परंतु निमित्त से कार्य होता है, यह निमित्ताधीन बुद्धि है, मान्यता है, उसको छुड़ाया जाता है। उसका ज्ञान करने से हम निमित्तवाले नहीं हो जाते। बात समझ में आयी ? निमित्त होता ही है, उसको नहीं मानेंगे तो ज्ञान झूठा हो जायेगा और निमित्त से कार्य होता है यानी परद्रव्य से कार्य होता है मानेंगे तो श्रद्धा झूठी हो जायेगी। हमें बिलकुल उसका बॅलेन्स रखना है।

हमने क्या देखा ? अनादि से जीव और कर्म बंधी हुयी अवस्था में ही पाये जाते हैं। जीव के हर समय मोह-रागद्वेष परिणाम हो रहे हैं। तो क्या हो रहा है ? हर समय नये कर्म बंधते हैं और पुराने में से कुछ परमाणु छूटकर निकल जाते हैं। जो बंध होता है वह हमने चार प्रकार से देखा था। याद है बेटा ? प्रकृतिबंध। श्रोता: प्रदेशबंध। छोटी बच्ची आयी है न स्कूल छोड़कर, बोलो, बैठकर बोलो। कौनसे होते हैं ? प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबंध और अनुभागबंध। यह आप यंग लोगों की ज़िम्मेदारी है, पढ़ना भी है और फिर यह आगे चलाना भी है। क्योंकि जितनी ग्रास्पिंग पॉवर - आकलन शक्ति आप यंगस्टर्स को है, उतनी हमारे जैसे बूढ़ों को नहीं होती है। ख्याल में आयी न बात ? यह आपको पढ़ना है और पढ़ना यानी केवल याद करने के लिये नहीं पढ़ना है। इससे मैं आत्मा जुदा कैसा हूं ? यह जानने के लिये पढ़ना है। भले आप दूसरों को पढ़ाओ, मत पढ़ाओ उससे कुछ मतलब नहीं है। हमें तो अपना कल्याण करने के लिये यह मनुष्यभव मिला है हमेशा उसकी मुख्यता रखनी है। समझ में आयी न बात ?

अभी हम देखते हैं कि कार्माणवर्गणा आठ प्रकार के कर्मरूप परिणामित होती है। वह आठ में विभाजित होती है। उसमें हमने घातिकर्म, अघातिकर्म दो भेद देखे। यह मैं फास्ट ले रही हूं, हम रिव्हिजन कर रहे हैं। हमारे घर में स्वाध्याय की यही पद्धति है, रोज सुबह डेढ़ घंटा करणानुयोग का स्वाध्याय चलता है, शाम को दो घंटे द्रव्यानुयोग चलता है। तो डेढ़ घंटे के सुबह के करणानुयोग में एक घंटा या सवा घंटा या पौन घंटा हमारी पूर्व दिन की रिव्हिजन चलती है। फिर विषय थोड़ा आगे बढ़ता है क्योंकि इतने कठिन विषय होते हैं कि थोड़ा याद करके आगे बढ़ेंगे तो आगे की बात समझने के लिये आसानी हो जाती है। हमने क्या देखा ? हमने आठ कर्म देखे, चार

घातिकर्म हैं, चार अघातिकर्म हैं। घातिकर्मों के नाम याद हैं ? *श्रोता: ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय।* ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय। और अघातिकर्म ? *श्रोता: आयु, वेदनीय, नाम और गोत्र।* वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र। इन आठ कर्मों का उदय हर समय चल रहा है। बंध सात कर्मों का निरंतर होता है, आयु कभी-कभी बंधती है। अभी हमें कर्मकाण्ड के विषय में विस्तार से नहीं जाना है।

ज्ञानावरण आदि जो आठ मूलप्रकृति हैं उनकी सबडिविजन्स होती हैं - उनके पेटाभेद- प्रभेद कहो, जिनको उत्तरप्रकृतियां कहते हैं। ज्ञानावरण की पांच प्रकृतियां, दर्शनावरण की नौ हैं, मोहनीय में मुख्य दो भेद- दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियां हैं- उनमें बंधनेवाली एक है, अन्य दो जब पहली बार प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है तब तैयार होती हैं। चारित्रमोहनीय की पच्चीस हैं; उनमें अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ, ऐसी हर एक की चार-चार। यह चार गुणा चार सोलह हो गयी और नौ नोकषाय। देखो, जीव के परिणाम को भी कषाय, नोकषाय कहेंगे और कर्मों को भी कषाय कर्म, नोकषाय कर्म कहेंगे। वह कर्म शब्द हम गायब कर देते हैं। केवल हम अनंतानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ का बंध हुआ ऐसा कहेंगे। कर्म के नाम वे ही हैं, जीव के परिणामों के नाम भी वे ही हैं। यहां जीव अनंतानुबंधी क्रोध का परिणाम करता है, उस समय वहां अनंतानुबंधी क्रोध कर्म का उदय पाया जाता है। इसतरह से उसका अर्थ समझना। अंतराय की पांच प्रकृतियां हैं। अघातिकर्म में वेदनीय की दो, आयु की चार, नामकर्म की तिरानबे और गोत्र की दो हैं। हमने हर एक का कार्य भी देखा था- क्या-क्या होता है, किसमें क्या निमित्त बनता है।

घातिकर्म में पुण्य प्रकृतियां कितनी हैं ? *श्रोता: एक भी नहीं।* एक भी नहीं, सारी पापरूप ही हैं। घातिकर्मों का संबंध या निमित्त डायरेक्ट जीव के साथ होता है। अघातिकर्म में कुछ प्रकृतियां जीवविपाकी हैं उनकी बात छोड़ो; परंतु उनमें जो मेजॉरिटी कर्म हैं - संयोगों में, शरीर में या उच्च-नीच गोत्र प्राप्त करने में उनका निमित्त बनता है। यानी जीव को उसका फल नहीं मिलता है। वह कहां चला जाता है ? *श्रोता: पड़ोसी में।* पड़ोसी में। अघातिकर्म में पुण्य-पाप का भेद है। पुण्य के लिये जो कुछ क्रियायें - धार्मिक क्रियायें चलती हैं; क्रिया से तो पुण्य या पाप बंधता ही नहीं है। क्या कहा ? क्रिया से -शरीर की क्रिया से कोई पुण्य नहीं बंधता। उपवास करने से कितना

पुण्य बंधेगा ? उसके पीछे का जो परिणाम है न उससे बंध होता है, क्योंकि शरीर की क्रिया जुदी बात है। जीव के परिणाम; कौनसे ? राग-द्वेष के वह जुदी बात है और जीव ज्ञान करता है वह और जुदी बात है। उसके लिये तीन जुदी-जुदी बातें हैं। परंतु हमने क्या किया ? शरीर की कोई क्रिया करने से हमें पुण्य होगा ऐसा माना। उससे पुण्य नहीं होता है। हां, मंद परिणाम हैं, कषाय मंद हैं तो कहते हैं शुभभाव है तो पुण्य बंधेगा। किसमें ? *श्रोता: अघातिकर्म में।* अघातिकर्म में। फल कौन भोगेगा ? पड़ोसी।

हमने सभी कर्म, उनका फल क्या होता है वे सब बातें देखी। हमें नामकर्म के बारे में बहुत सारे प्रश्न उठते हैं। यहां बच्चे भी प्रश्न पूछ रहे हैं। पृष्ठ १९ निकालना, थोड़ी बातों को देखकर हम आगे बढ़ेंगे। **शरीर भिन्न है, कर्म भिन्न है और जीव भिन्न है।** देखो, शरीर भी पुद्गल से बना है, कर्म भी पुद्गल से बना है परंतु कर्म कार्माणवर्गणा नामक स्कंध से बना है और शरीर जो है, मनुष्य, तिर्यच का औदारिकशरीर है, देव, नारकी का वैक्रियिकशरीर है वे आहारवर्गणा से बने हुये हैं। फिर भी वे भिन्न-भिन्न हैं। अरे उसमें एक-एक परमाणु जुदा-जुदा है यह कह रहे हैं। **प्रत्येक का स्वयं का परिणमन स्वयं में स्वयं के कारण से होता है।** गुरुदेवश्री के हर प्रवचन में बात आ रही है, है न ? अभी सुना न, शरीर का एक-एक परमाणु जुदा-जुदा है।

परंतु उनमें निमित्त-नैमित्तिक संबंध पाया जाता है इसलिये नामकर्म के कारण शरीर की रचना हुयी या जीव ने कर्म बांधा आदि कथन करते हैं। देखो, यह कथन जिनवाणी का है, फिर भी **इसतरह का कथन आने पर भी प्रत्येक परमाणु एवं जीव की स्वतंत्रता अपने ध्यान में रखनी चाहिये।** क्योंकि समझाने का दूसरा तरीका नहीं है। निमित्त की भाषा में समझाया जाता है कि शरीर की रचना क्यों हुयी ? मां समझती है न मेरे ही कारण मेरा यह बच्चा इतना गोरा अच्छा सुन्दर हो गया। है न ? हर मां समझती है। बच्चा पैदा होने पर सभी रिलेटिव्ह भी मिलने को आते हैं। फिर जब बच्चे को देखते हैं- यह पिताजी जैसा हुआ, यह माताजी जैसा हुआ, वह सब चलता है कौन किसके जैसा हुआ। *श्रोता: जब पिता सामने होगा तो पिताजी जैसा, माता सामने होगी तो।* अच्छा, जिसको खुश करना है उसके जैसा हो गया बच्चा !

देखो- **तुम कहोगी**, तुम कहोगी यानी हमारा आपका सबका प्रश्न है। ये प्रश्न हमारी बेटी के मुंह में डाले हैं। तुम कहोगी **नामकर्म के कारण शरीर की विशिष्ट**

रचना होती है, ऐसा आप कहती हो। यानी मानने को तैयार नहीं है। **हम तो आजकल प्रत्यक्ष देख सुन रहे हैं हमारे वैज्ञानिक,** किसमें अपनापन लगता है ? सर्वज्ञ हमारे नहीं लगते हैं, वैज्ञानिक हमारे लगते हैं - नज़दीक के लगते हैं, है न। हमारे वैज्ञानिक **उनकी प्रयोगशाला में चाहे जिस वर्णादि के शरीरवाले जीव उत्पन्न कर रहे हैं,** उस ज़माने में वह नया था २००२ के आसपास लिखा हुआ होगा यह पत्र। कबका है ? *श्रोता: २००२ का।* हां। तभी क्लोन भी बने थे। वैज्ञानिकों ने कोई हरे रंग का खरगोश भी बनाया था। इसलिये पूछ रहे हैं। **टेस्ट ट्यूब-बेबीज और क्लोन्स की निर्मिति हो रही है तो तुम्हारे कर्मों का क्या हुआ ?** तुम्हारे कर्मों का क्या हुआ ? हमें कोई साधर्मि मिलते हैं न जैनी में, जिनका तत्त्वज्ञान का अभ्यास नहीं है। कुछ घटना होती है, कोई जल्दी मर जाता है, कुछ भी होता है तो पूछते हैं तुम्हारा धर्म क्या कहता है ? आपने भी सुना है न ? ऐसा यहां क्या पूछा ? तुम्हारे कर्म का क्या हुआ ?

बेटियों, सबसे पहले यह बात नक्की करो कि कर्म संबंधी यह ज्ञान या कथन हमें सर्वज्ञ से प्राप्त हुआ है, मैं अपनी ओर से कुछ नहीं कह रही। दूसरी बात, वैज्ञानिकों ने जीव का निर्माण किया या शरीरादि पुद्गलों का ? बोलो ? हम तो कह देंगे अनादि से छह द्रव्य हैं, जीवद्रव्य भी अनादि से हैं, पुद्गलद्रव्य भी अनादि से हैं। तो संख्या में कौनसे द्रव्यों में बढ़ोतरी होती होगी और कौनसे द्रव्य थोड़े कम होते होंगे ? कोई भी नहीं; सारे ही द्रव्य अनादि से हैं। नये कोई उत्पन्न नहीं होते हैं। हां, संयोग होकर कुछ अलग-अलग स्कंध बनते होंगे। जिसको हम कहते हैं न, स्कूल में हम शोभादर्शक-कॅलिडोस्कोप बनाते थे। तो उसमें क्या होता है ? कांच की तीन पट्टी एक दूसरे को जोड़कर उसमें कांच की बंगड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े डालते थे। उसको घुमाते थे तो क्या होता था ? बंगड़ी के टुकड़े तो उतने के उतने थे परंतु उसके कुछ नये-नये आकार, प्रकार, रंग वगैरह तैयार होते थे।

ऐसे ही अनादि से जीव-पुद्गल तो वे ही के वे ही हैं। अब जीव मरकर कोई अन्य पर्याय में चला जाता है। उसने जो रागद्वेष किये, उसने जो कर्म बांधे हैं, उसके अनुसार उसके नये शरीर की रचना ऑटोमॅटिक होती है; जिसको कहेंगे न निमित्त-नैमित्तिक संबंध से जीव भी है, कर्म के परमाणु भी हैं, उनका उदय भी है। शरीर की रचना भी होती है। अलग-अलग फॉर्म तैयार होते हैं परंतु मूल बेसिक द्रव्य में कोई चेंज नहीं होता है। द्रव्य वे ही के वे ही हैं। कोई उनको उत्पन्न नहीं करा सकता है और कोई

अपनी इच्छा से उनका कॉम्बिनेशन बदल नहीं सकता है। यह मूल बात है। सायंटिस्ट तो बदलेंगे कि नहीं ? उसकी चर्चा करते हैं देखो-

अस्तित्व गुण, जो कि सामान्य गुण है, इसीलिये सभी द्रव्यों में पाया जाता है। उसके कारण द्रव्य का कभी भी नाश नहीं होता और वह किसी से उत्पन्न भी नहीं होता। यह तो सबको मालूम है। लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका तो हर एक ने सीखी है। इस विषय में हमने बहुत विस्तार से समझा भी था। इसलिये वैज्ञानिकों ने ना जीव को उत्पन्न किया और ना ही शरीर को उत्पन्न किया। वह जीव कहीं से मरकर उस जगह स्वयं की योग्यता से जन्मा है। पूरे लोकाकाश में कितने जीव हैं ? *श्रोता: अनंत* । अनंत जीव हैं। हर समय कितने मर रहे हैं मनीषाबहन ? अनंत मर रहे हैं और यहां से वहां, वहां से वहां जाना सब चल रहा है। कहीं से मरकर, दूसरे समय में नयी गति, नया शरीर सब चालू हो जाता है। बीच में कहीं भटकना नहीं पड़ता और कहीं ट्राफिक जैम भी नहीं होता है कि अभी कहां शरीर दूढ़ें ? ऐसा कुछ नहीं है। यह सारा ऑटोमैटिक प्रोसेस है। **कभी भी कोई भी जीव नया उत्पन्न ही नहीं होता।**

अब फिर प्रश्न है- **तुम कहोगी, वैज्ञानिकों ने उसके शरीर की रचना तो अपनी इच्छा अनुसार कर दिखायी न ?** हम क्या मानते हैं ? हमने अपनी इच्छा अनुसार कुछ कार्य किया तो देखो हमने अपना पुरुषार्थ दिखाया। है न ? **शरीर पुद्गल स्कंध है।** स्कंध यानी वह अनंत परमाणुओं का पिंड है। **आहारवर्गणा से उसकी रचना होती है।** आहारवर्गणा नामक जो स्कंध है, उससे शरीर बना है। **आहारवर्गणा अनंतानंत पुद्गल परमाणुओं का स्कंध है। तो अब तुम मुझे बताओ कि वैज्ञानिकों ने पुद्गल परमाणु उत्पन्न किये या उनके स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि गुण तैयार किये या उनकी पर्यायें बनायी ?** अभी हमने गुरुदेवश्री के प्रवचन में क्या सुना ? गुण पर्यायवत् द्रव्यम्। अन्वयीविशेष गुण है और व्यतिरेकीविशेष पर्याय है। वह द्रव्य का लक्षण है। वह सब हमने सुना न ? यहां क्या कहते हैं ? प्रत्येक द्रव्य के अपने-अपने गुण पर्याय सुनिश्चित हैं और कब कौनसी पर्याय होनी है वह द्रव्य में अंतर्भूत है। पर्यायगत योग्यता- द्रव्य में कौनसे समय में कौनसी पर्याय होगी, वह धर्म - वह गुण द्रव्य का है। किसी निमित्त के कारण वह योग्यता बदलती नहीं है।

तुम कहोगी द्रव्यों और गुणों को कोई बनाता नहीं है, वे तो अनादिअनंत

कायम रहते हैं। इसलिये उन्होंने उन्हें चाहिये वैसी पर्याय उत्पन्न की। बेटी अभी भी अपनी बात छोड़ने को तैयार नहीं। कहती है द्रव्य और गुण तो अनादि है, परंतु पर्याय तो उन्होंने उनके निमित्त से या उनकी इच्छा से बदली कि नहीं बदली ? उन्होंने हरे रंग का खरगोश उत्पन्न किया। बिलकुल एक सदृश मेंढे तैयार किये। जिसको क्लोन्स कहते हैं। उस ज़माने में वह बात नयी-नयी थी। अभी देखो यह सारा द्रव्यानुयोग है। बेटियों, हम पहले पढ़ चुके हैं और सिद्ध भी कर चुके हैं कि प्रत्येक द्रव्य, गुण की प्रत्येक पर्याय उनके स्वसामर्थ्य से उत्पन्न होती है। प्रत्येक द्रव्य के प्रत्येक गुण की अनादिअनंत अवस्थायें सुनिश्चित हैं। किसकी ? श्रोता: प्रत्येक द्रव्य की/ जीव की या जड़ की ? श्रोता: सबकी। अरे, परंतु जड़ को अक्ल नहीं है न !

हम समझते हैं कि हम सोच समझकर राग कर सकते हैं। आप सोच समझकर शुभभाव करके शिबिर में आये कि नहीं आये ? पहले प्लॉनिंग किया था, तब आये न ? प्लॉनिंग किया था किशनजी तो क्या हुआ ? आपके अहमदाबाद से और चार लोग आने का बिलकुल निश्चित था। था कि नहीं ? क्यों नहीं आये ? अन्य भी बहुत सारे ऐसे हैं कि जिनका आना पूरा कन्फर्म था, वे क्यों नहीं आये ? आना निश्चित किया था न ? शिबिर अटेंड करने का शुभभाव भी था। उनका आना क्यों नहीं हुआ ? जिस समय जैसा जो होना है वह सुनिश्चित है, उस द्रव्य की प्रत्येक पर्याय सुनिश्चित है। हमें क्या लगता है- हम तो पराधीन हुये ? हम कुछ नहीं कर सकते ? जो कुछ हो रहा है वह अपने ही द्रव्य से हो रहा है। इच्छा के अनुसार कुछ हुआ तो हमें लगता है कि हमने कुछ किया, तो इच्छा स्वभाव है कि विभाव है ? श्रोता: विभाव है। तो विभाव के कारण हम अपनी पर्याय पलटना चाहते हैं।

देखो क्या कहते हैं- कोई भी द्रव्य स्वयं की पर्याय को भी करे और दूसरे द्रव्य की पर्याय को भी करे यह बात तीन काल में कभी संभव नहीं है। वैज्ञानिक स्वयं का यानी आत्मा का, वह द्रव्य है कि नहीं ? वह अपना कार्य कर रहे हैं न; कौनसा ? खोजने का ? कौनसा ? श्रोता: जानने का। जानने का हां। क्योंकि वह जीव द्रव्य है तो उनका क्या कार्य हो रहा है ? जानना-जानना उसका कार्य चल रहा है। वह स्वयं का कार्य भी करे और उनके शरीर का भी कार्य करे यह बात भी असंभव है तो फिर अन्य जीवों के शरीर वह अपनी इच्छा अनुसार चाहे वैसे बना दें यह मान्यता कैसी है ? महा-मिथ्यात्व की द्योतक है। वैज्ञानिक क्या करते हैं ? खोज

करते हैं, ढूँढ़ निकालते हैं, बनाते नहीं हैं। वे तो ढूँढ़ते हैं, मालूम नहीं है उस संबंधी जानकारी हासिल करने की कोशिश करते हैं। क्या कहा ? जो उन्हें पता नहीं था उस संबंध में जानकारी हासिल करते हैं, कुछ बनाते तो है नहीं। वे ना तो नवीन द्रव्य उत्पन्न करते हैं, ना उनमें नये गुण मिलाते हैं, ना ही उनकी पर्यायें अपनी मर्जी के अनुसार बदलते हैं। वे वैसा कर ही नहीं सकते। अभी उसके आगे की बात आप पढ़ लेना क्योंकि उसमें बहुत सारी बातें हैं। अभी हम आगे बढ़ते हैं।

हमने आठ कर्मों के संबंध में कुछ पारिभाषिक शब्द भी देखे थे। जैसे कर्म का बंध होता है तो उसमें जो स्थिति पड़ती है, वह स्थिति बताने के लिये उसकी निषेक रचना बताते हैं। एक समय में अनंतानंत परमाणु बंधते हैं। आबाधाकाल उसको कहते हैं कि वहां उदययोग्य कोई निषेक - कोई परमाणु नहीं हैं। फिर उसके ऊपर एक-एक समय में एक-एक निषेक बनता है। निषेक किसको कहा था याद है ? *श्रोताः समान स्थितिवाले परमाणुओं का लॉट*। जो समान स्थितिवाले परमाणुओं का लॉट-ग्रुप है उसको निषेक कहेंगे। उसको एक आड़ी लाइन में बतायेंगे। जिसकी स्थिति एक समय अधिक है उसको दूसरा निषेक कहेंगे और उसको ऊपर भविष्य में बतायेंगे। एक समय और अधिक स्थितिवाला तीसरा निषेक। इसतरह से एक समय में इतनी स्थिति बंधी। जैसे ज्ञानावरण की उत्कृष्ट स्थिति ३० कोड़ाकोड़ी सागर है। तो ३० कोड़ाकोड़ी किसकी स्थिति है ? अंतिम निषेक की। परंतु उसका पहला निषेक जो आबाधाकाल के ऊपर है उसकी स्थिति कितनी है ? तीन हजार वर्ष और एक समय।

जुदे-जुदे परमाणुओं में जुदी-जुदी स्थिति है। परंतु अंतिम निषेक की स्थिति को हम इतनी स्थिति बंधी ऐसा कहेंगे। यानी उतने काल तक आबाधाकाल के बाद हर समय उन कर्मों का उदय होता रहेगा यह उसका अर्थ है। अकेला उसका नहीं, बंधने के बाद वे सत्ता के निषेकों में आ मिलते हैं। तो पूर्व में जो-जो कर्म बंधे थे उनमें से जिनकी-जिनकी स्थिति पूरी हुयी हैं वे एक साथ उदय में आते हैं। नहीं समझे ? जैसे हमने बैंक में कोई डिपॉजिट रखा। दस साल पहले दस साल के लिये रखा था। पांच साल पहले हमने एक एफडी रखी, वह पांच साल की थी। एक एफडी हमने दो महीने पहले रखी थी, वह दो महीने के लिये थी। आज जिसकी-जिसकी मॅच्युरिटी है उन सबकी अॅग्रीगेट रकम आज मिलेगी। ऐसे कर्म हर समय बंध रहे हैं। जब हर समय इतने निषेक बनते हैं तो जिन-जिन निषेकों की समान स्थिति है उनका मिलकर सत्ता

का निषेक कहलायेगा। वह जब उदय में आता है तब हम कहेंगे इसका अभी उदय है। एक समय में बंधे हुये सारे निषेक एक समय में कभी उदय में नहीं आते। अलग-अलग समयों में बंधे हुये जिनकी-जिनकी समान स्थिति है, वे एक साथ उदय में आते हैं। यह हुयी निषेक रचना।

अनुभाग में हमने क्या देखा था ? एक-एक परमाणु को वर्ग कहा था। वर्ग क्यों कहा ? क्योंकि उनमें अपने पर्टिक्युलर अविभागप्रतिच्छेद हैं; हीनाधिक जो जितने हैं। सबसे मिनिमम अविभागप्रतिच्छेद जिन-जिन परमाणु में हैं उन परमाणुओं को हम एक लाइन में बतायेंगे। उसको क्या कहेंगे ? वर्गणा। एक अधिक अविभागप्रतिच्छेदवाले परमाणुओं के समूह को कहेंगे दूसरी वर्गणा, फिर तीसरी वर्गणा, फिर चौथी वर्गणा। ऐसे एक-एक अविभागप्रतिच्छेद से बढ़ती हुयी अनंत वर्गणायें होती हैं। उनके समूह को स्पर्धक कहेंगे। बीच में गॅप रखकर पहले स्पर्धक की पहली वर्गणा के वर्गों के अविभागप्रतिच्छेदों से दुगुणे होकर दूसरा स्पर्धक शुरू होता है, उस वर्गणा से तीनगुणा होकर तीसरा स्पर्धक, चारगुणा होकर चौथा स्पर्धक। अनुभाग को हम स्पर्धकों में बताते हैं और स्थिति को हम निषेकों में बताते हैं। यहां तक समझ में आयी बात ?

अनंत स्पर्धक होते हैं तो उनको बताने के लिये चार नाम लेकर समझाया जाता है। घातिकर्म के स्पर्धकों के चार नाम ऊपर से यानी तीव्र से मंद तक कौन बताना चाहता है ? पीछे कोई बतायेंगे ? हां बोलो। *श्रोता: शैल, अस्थि, दारु और लता।* हां, शैल, अस्थि, दारु और लता। उसमें से सर्वघाति, देशघाति स्पर्धक कौनसे हैं ? शैलवाले, अस्थिवाले और दारु का बहुभाग – ये सब स्पर्धक कैसे हैं ? सर्वघाति हैं। देशघाति कौनसे हैं ? दारु का एकभाग और लतावाले देशघाति स्पर्धक हैं। यह सर्वघाति और देशघाति भेद मात्र घातिकर्म में हैं। अघातिकर्म में सर्वघाति, देशघाति ऐसा भेद नहीं है; उनमें मात्र तीव्र और मंद ऐसा अनुभाग होगा। क्योंकि उनमें घात करने का तो सवाल ही नहीं है। उसका फल तीव्र है या मंद है - जिसरूप में मिलना है उसरूप में मिलेगा।

अघातिकर्म में दो प्रकार हैं पुण्य प्रकृति और पाप प्रकृति। पुण्य प्रकृति के स्पर्धकों के नाम मंद से तीव्र तक क्या-क्या होंगे ? *श्रोता: गुड़, खाण्ड, शर्करा, अमृत।* हां, गुड़, खाण्ड, शर्करा, अमृत। और पाप प्रकृति के ? *श्रोता: नीम, कांजीर, विष,*

हलाहल/ हमने कल सर्वघाति-देशघाति प्रकृतियों और स्पर्धकों की बहुत चर्चा की थी। हम देखते हैं न ! मिथ्यात्व कर्म सर्वघाति है कि देशघाति है ? श्रोता: सर्वघाति है। उसके प्रतिपक्षी सम्यक्त्व का पूरा घात करता है। उसके स्पर्धक कौन-कौनसे होंगे ? श्रोता: शैल, अस्थि, दारु का बहुभाग। शैल, अस्थि, दारु का बहुभाग। उसमें लतावाले होंगे ? नहीं होंगे। तो ऐसा भी होता है न, अत्यंत तीव्र मिथ्यादृष्टि जिसको हम कहेंगे तीव्र कषायी, तीव्र मिथ्यादृष्टि, तो उसके शैलवाले का उदय चल रहा है। शास्त्र में आता है कि उपदेश भी ऐसे ही जीवों को देना जो मंदकषायी हैं। अत्यंत तीव्र मिथ्यादृष्टि, तीव्र कषायी जीवों को जिनवाणी का उपदेश भी मत देना। क्योंकि जो दान है; अभी यह कौनसा दान है ? ज्ञानदान है। दान हमेशा पात्र को देखकर दिया जाता है।

अत्यंत तीव्र मिथ्यादृष्टि, अत्यंत तीव्र कषायी क्योंकि अकेला मिथ्यात्व थोड़ी है, अनंतानुबंधी भी है - वह भी सर्वघाति है। अनंतानुबंधी कैसा है ? है चारित्रमोहनीय का, परंतु उसके साथ-साथ श्रद्धा का भी घात करता है। डबल एजेंट है न, सम्यक्त्व नहीं होने देता है। मिथ्यात्व कितना भी मंद क्यों न हो, अनंतानुबंधी कितना भी मंद क्यों न हो, जीव बाहर से तो बिलकुल भला दिख रहा है; व्रतादि कर रहा है, जिनेन्द्र भगवान के सिवा अन्य किसीको मानता भी न हो फिर भी जब तक उसका मिथ्यात्व नहीं छूटा है, आत्मा का अनुभव नहीं हुआ है तब तक उसको क्या कहेंगे ? उसका सम्यक्त्व का पूरा घात हो रहा है कि थोड़ा फायदा हुआ ? पूरा घात है। शास्त्र में कहते हैं मिथ्यात्व बैरी का अंश भी बुरा है। अंश का अर्थ यही है कि उसके शैलवाले स्पर्धक नहीं हैं, अस्थिवाले नहीं हैं, अभी दारु के बहुभागवाले हैं उसमें भी मंद-मंद उदय चल रहा है। तो अभी वह सम्यग्दृष्टि हुआ कि नहीं हुआ ? नहीं हुआ। केवल मिथ्यात्व और कषाय मंद होने से कुछ फर्क नहीं पड़ेगा। जब मिथ्यात्व निकल जायेगा, सम्यक्त्व होगा तभी उसका मोक्षमार्ग शुरू होगा।

ऐसा कोई तीव्र मिथ्यादृष्टि है का अर्थ क्या है ? जिसका अभी शैल टाइप का उदय चल रहा है और उसको आप उसके कल्याण की बातें बताओ। किसकी ? उसीके कल्याण की। तो क्या होता है ? उसको इतना गुस्सा आता है, कि वह उपदेश कर्ता को विघ्न करेगा। ऐसा होता है कि नहीं ? हम कई बार देखते हैं कि उसको उपदेश सुहाता नहीं है। नहीं समझे ? आप भजिया वगैरह तलते हैं न घर में ? क्योंकि गुजराती ज़्यादा हैं न ! वे कुछ न कुछ फेवरिट चीज़ें बनाते हैं- कभी सेव बनायेंगे। और

क्या-क्या बनाते हैं बेटा ? *श्रोता: चकली।* चकली भी बनाते हैं ? अच्छा। तो उसके लिये गॅस पर तेल गरम रखते हैं। बहुत ज्यादा गरम हुआ, थोड़ा कम चाहिये था तो मम्मी क्या करती है ? उसमें पानी डालती हैं ? नहीं। क्या होगा ? अरे, सारा तेल भड़क जायेगा, वहां आग लग जायेगी। ऐसे ही बहुत तीव्र मिथ्यादृष्टि है उसको उसके कल्याण की भी बातें बताने जाये तो ऐसा भड़क उठता है। परंतु उसी तेल में भजिया डालो तो अच्छी तरह से तलकर ऊपर आती हैं। तो ऐसे तीव्र कषायी, तीव्र मिथ्यादृष्टि जीव के साथ विषय कषायों की बातें करो - तो वह अपने पैसे से खर्चा करके आपको घूमने को ले जायेगा और क्या-क्या करेगा, है न।

हम विदेश में जाते हैं न सौमिल, अमेरिका में, वहां कोई हमारे दूर के रिश्तेदार हैं वे कहते हैं - चलो हम यह दिखाते हैं, वह दिखाते हैं, यहां चलते हैं। वॉशिंगटन में आये हो तो व्हाइट हाउस तो देखना चाहिये, यह देखो, वह देखो। यहां तो स्वर्ग है उसको देखे बिना आपकी ज़िन्दगी बेकार की है। अमेरिका में भी हमारा नियम था कि रोज छह घंटे लेक्चर देना। वॉशिंगटन से हमारी जयाबहन आयी हैं न ? हम उनके साथ हाउस में रहते थे जहां जिनमंदिर और हॉल है। वहां साढ़े आठ घंटे का प्रोग्राम था कि नहीं था ? कहां गये निरेनभाई ? हमने उस रिश्तेदार से कहा कि हम जो बताने आये हैं आप वह सुनो। आपकी बातें हमें नहीं देखनी है। हम जो दिखाने आये हैं पहले वह देखो। वे कहने लगे फिर कब देखोगे ? तो दिनेशजी ने बताया केवलज्ञान होने पर सब जान जायेंगे। हम इ.स. २००४ से इ.स. २०११ तक हर साल जाते रहे हैं। हम कहीं घूमने को गये ही नहीं। हमारा हर शहर में, हर सेंटर में तक आठ-आठ दिन रोज छह-छह घंटे स्वाध्याय होता था। कहीं दस-दस दिन का होता था। घूमने के लिये ना हमें इंटरेस्ट है, ना हमें टाइम है।

यह सौमिल है न, अमेरिका में हम जहां - जिस सेंटर में प्रवचन करते थे; प्रवचन नहीं, हमारी जो क्लास चलती थी सब जगह सौमिल भी आता था। वहां किसीके घर में या वहां के मंदिरों में या उनके हॉल वगैरह होते थे, वहां हमारा छह-छह घंटे का प्रोग्राम होता ही था। हमारी कंडिशन ही थी जो छह घंटे को सुनने को तैयार है उसी सेंटर में हम जायेंगे, अन्य सेंटर में हमें कोई इंटरेस्ट नहीं है। वहां के ऐसे कोई होंगे पागल लोग वे हमें बुलाते थे। राले जैसी सिटी में भी वहां के टॉपमोस्ट डॉक्टर जो नॉर्थ कैरोलिना युनिव्हर्सिटी में फेमस हैं। पूरे अमेरिका में उनका पांचवा नंबर लगता है।

ऐसे वे डॉक्टर वारिया भी और उनकी पत्नी वह भी सायकॉलॉजी की डॉक्टर थी, वह और वहां राले में बहुत सारे डॉक्टर्स आते थे। अपना सारा अरेंजमेंट करके सामने ऐसे नीचे बैठकर वे सारी बातें सुनते थे। वहां तो हर साल हमने दो वीकेंड और बीच के पांच दिन ऐसे शिबिर लिये हैं। *श्रोता: वे डॉक्टर लोग कुर्सी पर नहीं बैठते थे ?* कुर्सी पर नहीं बैठते थे। देखो, जिसको रुचि है न उसको मार्ग मिल भी जाता है। हम तो अमेरिका कभी जाना नहीं चाहते थे। हमने बहुत मना किया था। वहां से लोग आते थे तो एक बहन ने ई-मेल करके लिखा था कि हमारी उपादान की योग्यता होगी तो निमित्त को आना पड़ेगा। राले की ही नलिनी बहन थी। आगे बढ़ेंगे हम।

यहां तो निमित्त से कार्य नहीं होता यह नक्की करना है। प्रश्न था कि कर्म के बारे में हम कुछ नहीं जानेंगे तो क्या हमारा सम्यग्दर्शन रुका रहेगा ? तो कहते बिलकुल नहीं। पृष्ठ ४३ निकालना- **मुझे एक बात बताओ, यहां जो हम आगम कथित बातें जान रहे हैं** यानी शास्त्र में बतायी हुयी जो केवलज्ञानी ने बतायी हुयी बातें जान रहे हैं **वे सत्य हैं या असत्य ? वे तो सौ प्रतिशत सत्य हैं, हैं ना ? तो सत्य जानने में हमारे ज्ञान का विकास हो रहा है क्या हास ?** क्या कह रहे हैं ? सत्य जानने से ज्ञान में कमी होती है ? ज्ञान में तो वृद्धि हो रही है न उसके ? हम कहेंगे अपनी भाषा में उसका क्षयोपशम बढ़ रहा है कि घट रहा है ? **टीव्ही पर समाचार जानने के लिये सब लोग कितने उत्सुक रहते हैं।** सुबह जब तक न्यूजपेपर हाथ में नहीं आता तो चाय का घूंट गले के नीचे नहीं उतरता। अभी न्यूजपेपर की ज़रूरत नहीं, अपने हाथ में आ गयी न पूरी दुनिया, अपने मोबाइल में, क्यों ? **दुनियाभर की खबरें जानने के लिये जिज्ञासा होती है और यह जीव अपने में क्या हो रहा है इस बात से बेखबर रहता हुआ अन्य खबरें जानने के लिये पागल है।**

देखो- हमारे प्रतिसमय के परिणामों के निमित्त से कर्म कितने और किसतरह बंधते हैं वे कब, कितना और क्या फल देते हैं ? क्या कर्मबंध और कर्मफल से हमारा अस्तित्व भिन्न है या नहीं ? क्या इनसे छूटने का कोई उपाय हो सकता है ? पुण्य करने से मोक्षमार्ग शुरू होगा या नहीं ? क्योंकि अभी तक पुण्य की रुचि है। क्यों ? क्योंकि पुण्य से अच्छे संयोग मिलते हैं। हमें तो संयोग को पलटाने की ही बुद्धि है और संयोग में सुखबुद्धि पड़ी है। इनसे मुझे सुख होता है यह मान्यता पड़ी है। **इन बातों का इसे विचार ही नहीं और देखादेखी कुछ करके**

समाधान मानता है। कौनसी पर्याय में जीव सुखी होगा ? देवपर्याय में, देवगति में यानी स्वर्ग में कि नरक में कि तिर्यच में कि मनुष्य में ? बोलो ? जब तक वह रागी और द्वेषी है तब तक वह दुखी है। क्योंकि संयोग उसको कोई सुख-दुःख देते ही नहीं है। उसका जो दुःख है वह अपने ही मोह-रागद्वेष परिणाम के कारण है - वे दुःख स्वरूप हैं और उनके कारण वह दुखी है। परंतु कर क्या रहा है ? संयोगों को देखकर और नये रागद्वेष करता है और दुखी का दुखी रहता है।

इच्छा ही उसका दुःख है। हम क्या सोचते हैं ? मुझे जामुन बहुत अच्छा लगता है- मैं जामुन खाऊंगा तो सुखी हो जाऊंगा। जामुन खाने से सुख होगा कि नहीं होगा ? *श्रोता: नहीं।* आपको क्या खाने से सुख होता है ? जामुन नहीं, ढोकला ? *श्रोता: रसगुल्ला।* रसगुल्ला, अच्छा रसगुल्ला। तो रसगुल्ला खाने से सुख नहीं हुआ। रसगुल्ला खाने की इच्छा हुयी थी वह दुःख था। जब रसगुल्ला आया तो वह इच्छा नहीं रही। तो दुःख कम हुआ कहो या आप जिसको सुख मानते हो वह सुख किसका था ? इच्छा नहीं रहने का। अगर रसगुल्ला खाने से सुख होता तो एक के बदले दस खाओ न ! कितना सुख होता ? बढ़ना चाहिये, दस गुणा होना चाहिये। फिर पचास खायेंगे तो पचास गुणा सुख होना चाहिये। होता है कि नहीं होता ? नहीं होता है। परंतु खाते-खाते और नयी अन्य इच्छा हो रही है न, उस संबंधी आकुलता-दुःख चालू होता है। हम समझते नहीं हैं कि दुःख किसका है। आगे बढ़ते हैं।

यहां अपना विषय शुरू करना है। देखो- **बेटियों, मोक्ष का मार्ग बहुत ही सारे** स लिखे हैं देखो **सरल**, यानी कोई कठिन नहीं है। **सुलभ** ईझीली अव्हेलेबल है, है न ? **सहज** है क्योंकि वह अपना स्वभाव ही है **और सुखकर है।** हमने उसको दुःखकर मान लिया है, क्या करना पड़ेगा अभी हमें ? क्या उपवास करने पड़ेंगे ? चौवियार करना पड़ेगा ? यह नहीं खाना, वह नहीं खाना। हम क्यों जैन हुये ? बाकी हमारे फ्रेंड्स तो सब कुछ खाते हैं ऐसे हमारे बच्चों के सवाल भी आते हैं, हैं न ? अरे, तुम जैनकुल में पैदा हुये, महाभाग्यवान हो ! परंतु इसके लिये जैनकुल में पैदा होने की भी ज़रूरत नहीं है। हमें ऐसे लोग मिलते हैं। क्या करें ? हम जैन नहीं हैं। अरे तुम आत्मा हो कि नहीं हो ? लोग कहते हैं हम श्वेताम्बर हैं, हम स्थानकवासी हैं। अरे, परंतु तुम आत्मा हो कि नहीं हो ? मान्यता सही करने पर; किसी भी कुल में क्यों न उत्पन्न हुआ हो, जब उसकी मान्यता सही हो जाती है तो उसको आत्मा की अनुभूति, सम्यग्दर्शन प्राप्त

करने में कोई परेशानी नहीं है, कोई हर्जा नहीं है, कोई विघ्न नहीं आता है।

अभी हम आगे जाकर पढ़ेंगे- चारों ही गतिवाले जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकते हैं। तिर्यच भी, मनुष्य भी, नारकी भी और देव भी। तो नारकी में कौनसे होंगे ? श्वेताम्बर, दिगंबर या स्थानकवासी होंगे ? *श्रोता: सभी।* अरे, सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है उसके बाद ही उसको सच्चा जैनी कहेंगे। तब तक वह जैनी भी नहीं है। कहने के लिये हैं हम आप सब जैनी हैं। ख्याल में आती है न बात ? हम कौनसे कुल में जन्मे हैं उससे कुछ मतलब नहीं है। हमने तो अपने को मात्र उतना ही माना है। हम तो महिला हैं, अभी हमारी उम्र हो गयी कुछ नहीं याद रहता है, कोई कहता है कि हमें कुछ समझता नहीं है। यानी अपने को मनुष्य इतना ही माना है। पर्याय जितना ही माना है, अल्प बुद्धिवाला माना है। यह उसकी मान्यता ही गलत है और गलत मान्यता के साथ, गलत ज्ञान के साथ सम्यग्दर्शन, आत्मा की अनुभूति कभी नहीं होगी यह कहना चाहते हैं। *श्रोता: धर्म की शुरुआत नहीं होगी।* हां, धर्म की शुरुआत ही नहीं होगी।

अभी आगे देखते हैं कि यह मार्ग कैसा है। मोक्ष का मार्ग कहो या धर्म की शुरुआत कहो। तो क्या आज तक हमने धर्म नहीं किया ? *श्रोता: नहीं किया।* नहीं किया ? धर्म नहीं किया तो क्या किया ? *श्रोता: अधर्म।* अधर्म किया। क्योंकि जो धर्म नहीं उसको क्या कहेंगे ? अधर्म कहेंगे। धर्म के नाम पर अधर्म किया ऐसा कहेंगे। **मोक्ष का मार्ग बहुत ही सरल, सुलभ, सहज और सुखकर है, और क्या है ? सुखमय है। परंतु जीव का उस पर विश्वास ही नहीं है। यही तो रहस्य है।** क्या है ? यह धर्म हो सकता है ? इतना आसान हो सकता है ? अरे, कुछ करेंगे तो धर्म होगा न ऐसा लगता है। नहीं समझे ? मैं जब प्रॅक्टिस करती थी; मैंने ३० साल तक मेडिकल प्रॅक्टिस की है और लोग मुझे भगवान मानते थे। क्यों ? क्यों अश्विनी, होता है कि नहीं ? क्योंकि मैंने पीडियाट्रिक्स किया है यानी मैं बालरोगतज्ञ हूं, बच्चे मेरे पेशंट थे। तो भगवान समझकर महिलायें अपने बच्चे को लेकर आती थी। क्यों ? क्योंकि शरीर मैं हूं और यह शरीर का डॉक्टर है तो हमारा भगवान हो गया मानती थी। कभी किसीको साधारण सा इलाज बताकर उसकी बीमारी दूर हो जायेगी बताया, तो लोग कहते थे, 'अरे ऐसा कहीं होता है क्या ? आप थोड़ा कुछ इन्व्हेस्टीगेशन्स कराओ, यह करो, वह करो, तब तक तो अच्छा है। ऐसे खाली एक दो दिन की दवा की पुड़िया देने से रोग मिट जायेगा वह अच्छा है क्या ?' उस पर कोई विश्वास नहीं करता। नहीं समझे ?

किसीको सिर में टिंगलिंग, नंबनेस बहुत होता था। उन्होंने बहुत सारे इन्व्हेस्टीगेशन्स किये, एक्सरे निकाले, एमआरआय किया, न्युरोलॉजिस्ट को बताया। ४० साल पहले की बात होगी। हां, तो बहुत सारे इन्व्हेस्टीगेशन्स किये। उस ज़माने में कुछ पांच-दस हजार का खर्चा किया। फिर भी कोई फायदा नहीं हुआ। हम ऐसे ही गये थे उनको मिलने को, डॉक्टर को देखते हैं न, तो सबको अपनी बीमारी याद आती है। हम जयपुर में भी शिबिरो में जाते थे, वहां भी लोग मुझे कन्सल्ट करते थे। यह तकलीफ कितने साल से है ? २५ साल से। तो आजतक कोई डॉक्टर नहीं मिला ? उन्होंने हमसे भी कन्सल्ट किया, ऐसा-ऐसा हो रहा है। तो ऐसे ही उन्होंने सारे रिपोर्ट्स दिखाकर मेरी राय पूछी। मैंने उनसे पूछा कितना बड़ा तकिया लेकर सोते हो ? उन्होंने कहा मैं दो तकिये लेकर सोता हूं। मैंने कहा तकिया अभी एकदम फ्लॉट कर दो। दो दिन में फ़ोन आया- मैं अभी एकदम नॉर्मल हूं, मुझे कुछ तकलीफ नहीं है। तो ऐसा कोई आसान तरीका किसीको बतावे तो उस पर विश्वास नहीं होता। यह कह रहे हैं।

परंतु जीव का उस पर विश्वास नहीं है। यही तो रहस्य है। क्या मानता है ? मुझे कुछ क्रिया करनी चाहिये तभी मुझे मोक्षमार्ग हासिल होगा। ऐसी भ्रांति भ्रांति यानी भ्रम इस जीव की है। शुभभाव और देहादिक की क्रिया में ही इस जीव ने धर्म माना है, यह बात मुख्य है। धर्म के नाम पर कुछ देह की क्रिया की और कुछ उपवास किया, दान दिया, व्रत किया, यात्रा की तो मैंने धर्म किया ऐसा वह मानता है। परंतु धर्म किसमें है ? शुभाशुभ भावरहित कौन ? मैं स्वयं। त्रिकाली ध्रुव ज्ञानानंद स्वरूप मैं हूं, इस बात का इसे स्वीकार नहीं है। स्वीकार यानी किसीने बताया तो वह अक्सेप्ट करने को तैयार नहीं है यह कह रहे हैं। उसका स्वयं का स्वरूप ऐसा है यह मानने को तैयार नहीं है। देहादि की क्रिया तो जड़ की क्रिया है - परद्रव्य की क्रिया है। जीव उसे कर ही नहीं सकता। शुभाशुभ राग तो विभाव है, विभाव यानी विपरीत भाव है। स्वभाव नहीं है, जीव के स्वभाव से विरुद्ध भाव है। तो फिर विभाव करके इसके स्वभाव पर्याय कैसे प्रकट होगी ?

स्वभावपर्याय यानी सम्यग्दर्शन प्रकट करना है तो वह कैसे प्रकट होगा ? हमने कर्म के बारे में भी अभी बहुत सारी बातें देखी हैं । एक प्रश्न लेकर फिर आगे बढ़ेंगे। कल जो-जो विषय हुये हैं न, उसके बारे में प्रश्न है। *वर्तमानकालीन सर्वघाति स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय उदयावली में आने के एक समय पहले होता है या उदय यानी*

खिरने के एक समय पहले ? यह किसमें आया था ? श्रोता: क्षयोपशम। हां, क्षयोपशम की परिभाषा में पार्ट वन। उदयावली में प्रवेश हुआ था तो सर्वघाति ही थे, उदय के एक समय ऊपर भी सर्वघाति थे। उदय का समय और उनका देशघाति होने का समय एक ही है। उसको कहेंगे उदयाभावी क्षय। अगर आवली प्रमाण देशघाति होते तो उसको इसतरह से नहीं कहते।

प्रश्न: दर्शनावरण कर्म की सर्वघाति प्रकृति जैसे स्त्यानगृद्धि के स्पर्धक किस क्षयोपशम में देशघातिरूप उदय में आते हैं ? हमने क्या देखा था ? पांचों निद्रा देशघाति प्रकृति हैं कि सर्वघाति हैं ? श्रोता: सर्वघाति। तो वे देशघातिरूप कभी नहीं होगी। अपनेरूप से उदय में आयेगी या नहीं आयेगी। वह ध्रुवोदयवाली प्रकृति नहीं है। फिर से, केवलज्ञानावरण सर्वघाति है और उसका उदय हर समय बना रहता है। कब तक ? पहले गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान के अंतिम समय तक। ऐसे निद्रा क्या हर समय उदयरूप है ? नहीं। कभी उदयरूप है, कभी अनुदयरूप है। जब उदयरूप है तो जाग्रत अवस्था का पूरा घात करती है। जब अनुदयरूप है तो उसका कुछ कार्य ही नहीं हो रहा है। निद्रा का देशघातिरूप टर्न होकर क्षयोपशम कभी नहीं होता है। यह मैंने कल ही बताया था, उनका कभी क्षयोपशम होगा ही नहीं।

प्रश्न: औदयिक अज्ञान व्हर्सेस क्षयोपशम ज्ञान इन दोनों में क्या डिफरन्स है ? प्रश्न में क्षयोपशम ज्ञान नहीं, क्षयोपशम अज्ञान कहते तो अच्छा था। देखो, क्षयोपशम ज्ञान में क्या आता है ? सम्यक् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान - इनको क्षयोपशम ज्ञान कहेंगे। क्षयोपशम अज्ञान किसको कहेंगे ? कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और कुअवधि जिसको विभंगज्ञान कहते हैं वे क्षायोपशमिक अज्ञान हैं। मिथ्यादृष्टि को भी क्षयोपशम चल रहा है न ? मिथ्यादृष्टि का ज्ञान कुज्ञान है और उसमें भी क्षयोपशम घटित होता है। उसको क्या कहेंगे ? क्षायोपशमिक अज्ञान। दूसरा प्रश्न कौनसा पूछा ? औदयिक अज्ञान। औदयिक अज्ञान का अर्थ क्या है ? पर्टिक्युलर ज्ञानावरण का सर्वघातिरूप से उदय चल रहा है। जैसे हम कहेंगे केवलज्ञानावरण है, उसमें तो सर्वघाति ही होता है तो हम आप सबको पर्याय में केवलज्ञान है क्या ? नहीं है। तो उसका सर्वघाति का उदय बना रहेगा। कब तक ? बारहवें के अंतिम समय तक। तब तक औदयिक अज्ञान होगा। किसको होगा ? सम्यग्दृष्टि को होगा कि नहीं होगा ? सम्यग्दृष्टि को औदयिक अज्ञान है कि नहीं है ? श्रोता: है। है। कब तक ? श्रोता: बारहवें

तक है। बारहवें गुणस्थान के अंत तक है। यह औदयिक अज्ञान का अर्थ होता है।

मनःपर्ययज्ञान किसी गृहस्थ को नहीं होगा। तो जिसको मनःपर्ययज्ञान संबंधी ज्ञानावरण का सर्वघाति का उदय चल रहा है उसको क्या कहेंगे ? वह औदयिक अज्ञान है। जब तक किसीको अवधिज्ञान नहीं है तब तक क्या कहेंगे ? औदयिक अज्ञान। जिस-जिस बारे में हम नहीं जान रहे हैं, भले हमारा देशघाति का उदय चल रहा है फिर भी पूरे बारह अंग को हम नहीं जान रहे हैं। अरे, बारह अंग की क्या बात है ? एक अंग का एक छोटा पार्ट भी हम नहीं जान रहे हैं। उस संबंधी हमारा क्या है ? औदयिक अज्ञान चल रहा है यह उसका अर्थ होता है।

श्रोता: सर्वघाति स्पर्धकों का उदय चल रहा है ? केवल सर्वघाति कहो या कभी-कभी देशघाति के जो ऊपर के ज्ञान के भेद हैं उस संबंधी ज्ञानावरण का उदय चल रहा है इसतरह से समझना। *श्रोता: यहां आगे लिखा है क्षयोपशमिक ज्ञान मतलब ऐसा ज्ञान का उधाड़ कहते हैं और वह ज्ञानपर्याय कर्म के क्षयोपशम में होती है ?* नहीं, ज्ञानपर्याय अपने से होती है और वहां सामने कर्म का क्षयोपशम पाया जाता है। लेकिन जो-जो ज्ञान का उधाड़ है वह तो स्वभावगत अवस्था है। बिलकुल, ज्ञान की पर्याय अपने ज्ञानगुण में से उसकी पर्यायगत योग्यता से उस समय उतना जाननेरूप प्रकट होती है। कितना जानेगा और किसको जानेगा ? हम आपको जानेंगे या उसको जानेंगे यह कौन तय करेगा ? अभी अंधेरा है, बाद में किसीने लाइट लगायी तो हम जानने लगे इसलिये वह निश्चित हुआ न ? तो ? ज्ञान का ज्ञेय भी सुनिश्चित है। ज्ञान की पर्याय यानी ज्ञान किस ज्ञेय को जानते हुये प्रकट हुआ है वह सुनिश्चित है। वह पर्याय अपने से हुयी है, पर के कारण नहीं हुयी है, ना ही कर्मों के क्षयोपशम के कारण हुयी है।

देखो, निमित्त और उपादान का विषय सहीरूप से जानना बहुत ज़रूरी है। हमारी सारी भ्रमणा यहीं पर पड़ी हुयी है और शास्त्र में करणानुयोग के ऐसे निमित्त के कथन होते हैं तो उसमें तो यह भ्रमणा और पुष्ट हो जाती है - अगर द्रव्यानुयोग का सही अभ्यास नहीं हो तो। शास्त्र पढ़कर भी निमित्ताधीन दृष्टी बनी रहती है, है न ? *श्रोता: दोनों ? निमित्त-नैमित्तिक और यह उपादान यह दोनों जानना ज़रूरी है ?* अभी क्या सुना ? गणधर आये नहीं थे इसलिये भगवान की वाणी नहीं छूटी, बराबर है न ? तो वहां कौन निमित्त था और कौन उपादान था ? गणधर आते ही वाणी छूटी। वाणी

छूटी तो महावीर भगवान उपादान थे कि गणधर उपादान थे ? श्रोता: भाषावर्गणा। भाषावर्गणा। देखो, उपादान, निमित्त बहुत आसान है। कोई भी पर्याय होती है न तो यह विचार करना, इसरूप कौन परिणमित हुआ है ? कुम्हार ने घड़ा बनाया। हम स्कूल में भी सीखे थे। हम पूछेंगे घड़ेरूप कौन परिणमित हुआ है ? श्रोता: मिट्टी। मिट्टी उसका उपादान कारण है। हम कुम्हार ने घड़ा बनाया कहेंगे न ? बिलकुल, वह निमित्त को कहने की पद्धति है। कथन करने में कोई बात नहीं, मानेंगे तो हम धोखे में हैं।

हमने रोटी बनायी। सुबह से इतनी सारी रोटी बनायी। हमने बनायी कि नहीं बनायी ? उसरूप कौन परिणमित हुआ ? श्रोता: आटा। आटा। आप बनाती तो रोटी क्रोधी होनी चाहिये थी। वह तो हुयी नहीं, है न ? हमारे नेमाकाका हमें ऐसा सिखाते थे। उन्होंने पूरा ऐसे ठोक बजाकर सिखाया हमें। श्रोता: नेमाकाका कौन ? रखियालवाले, नेमचंदजी रखियालवाले। सिद्धान्त प्रवेशिका के मास्टर। एक बुलंदशहरवाले कैलाशचंदजी और एक चिमनभाई कामदार, हमने इन तीनों विद्वानों से लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका आद्योपांत तीन-तीन, चार-चार बार सीखी है। जब तक उसका अभ्यास सही नहीं होता, आगे के सिद्धान्त कुछ गले नहीं उतरते, हां।

देखो प्रश्न है- जितना ज्ञान अपनी-अपनी योग्यता से नहीं हो रहा वहां निमित्त से ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम ऐसा कहना चाहिये था परंतु आपने कल उसको औदयिक अज्ञान ऐसा कहा था। बिलकुल, क्योंकि वह जीव अपनी योग्यता से नहीं जाननेरूप परिणमित हो रहा है। वहां कर्म में कौनसी अवस्था उदयरूप पायी जाती है ? जैसे केवलज्ञानावरण का उदय चल रहा है और अन्य भी जो अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण का उदय चल रहा है। किसरूप उदय चल रहा है ? सर्वधातिरूप से। उसको औदयिक अज्ञान कहेंगे।

प्रश्न: देव और नारकियों में छह-छह महीने साता-असाता का उदय रहता है क्या ? श्रोता: अंतर्मुहूर्त। अंतर्मुहूर्त नियम है, परंतु शास्त्र में ऐसा कहीं आता है। किसी जीव को साता का लगातार उदय हो सकता है ? तो कहते हैं हां होता है। कहां ? शतार-सहस्रार के जो देव हैं उनको छह महीने तक लगातार साता का उदय हो सकता है। तो क्या कभी भी बीच में छह महीने ? नहीं, वहां जन्म से लेकर छह महीने तक लगातार साता का उदय हो सकता है। वहां उसके साठ अलग-अलग कारण

बताये हैं। वहां आता है तो स्वागत करते हैं। फिर उनको ले जाते हैं जिनेन्द्र भगवान की वंदना वगैरह कराते हैं। फिर एक-एक आकर उनके खम्मा-खम्मा करते हैं, कौन ? वे इंद्र हैं, वहां तो प्रतीन्द्र आयेंगे, फिर उनके सब लोकपाल आयेंगे। चार लोकपाल होते हैं, त्रायस्त्रिंशत्- ३३ वे आते हैं और फिर अनेक आते हैं। सब जाति के देव आते हैं।

उनके साता के कारणभूत सभी लिस्ट बतायी है बहुत सारी। तो छह महीने तक उनका साता का उदय हो सकता है। परंतु ऐसा नहीं है किसी भी छह महीने हो जावे। बाद में अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त का ही नियम है। नारकी को असाता का लगातार उदय किसी जीव को ३३ सागर तक हो सकता है, सातवें नरक में। सातवें नरक के किसी जीव को, हर एक जीव की बात नहीं। सभी नारकियों में क्या होता है ? अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में उसका उदय भी और बंध भी पलटता है।

हमने पंचलब्धि के नाम देखे थे। कौन बताना चाहते हैं ? *श्रोता: क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि।* ये पांच लब्धिपूर्वक, पूर्वक यानी ये पांच लब्धि पहले होंगी उसके पश्चात् सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। कौनसे सम्यक्त्व की बात कर रही हूं ? प्रथमोपशम सम्यक्त्व। प्रथमोपशम सम्यक्त्व किसको कहेंगे ? जो जीव मिथ्यात्व गुणस्थान से दर्शनमोहनीय और अनंतानुबंधी का उपशम करके सम्यग्दृष्टि होता है; उसे प्रथमोपशम सम्यक्त्व कहते हैं। उपशम क्या होता है ? वह हम देखेंगे। सम्यग्दर्शन होता है यानी कौनसे गुणस्थान में जा सकता है ? *श्रोता: चौथे।* कोई चौथे में जायेगा, कोई पहले से पांचवें में जायेगा, कोई पहले से सातवें में जायेगा। इन सबका नाम क्या है ? प्रथमोपशम सम्यक्त्व। प्रथमोपशम सम्यक्त्व के साथ पहले गुणस्थान से कोई चौथे में गया। कोई पहले से डायरेक्ट पांचवें में गया, चौथे में से होकर पांचवें में कोई नहीं जाता है। औपशमिक के काल में पहले चौथा हुआ, फिर पांचवां हुआ, फिर सातवां हुआ, ऐसा बिलकुल नहीं होता है। कहीं-कहीं ऐसी मान्यता चल रही है। जो पहले से डायरेक्ट पांचवें या सातवें में जाता है उसके शुरू से ही सारे प्रोसेस जुड़े होते हैं। तो पहले से कोई चौथे में जायेगा। कोई पहले से डायरेक्ट पांचवें में जायेगा। उसके क्या कंडिशनस होती हैं ? उसको हम बाद में निमित्तरूप से देखेंगे। कोई पहले से सातवें गुणस्थान में चला जायेगा। फिर सातवें से छठा-सातवां चलता रहेगा। इसको कहेंगे प्रथमोपशम सम्यक्त्व।

एक नाम आता है द्वितीयोपशम सम्यक्त्व। द्वितीयोपशम का अर्थ क्या देखा था ? सबसे पहली बार तो प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है, उसके बाद उसको क्षयोपशम सम्यक्त्व होता है यानी सम्यक् प्रकृति का उदय चलता है। मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व सदवस्थारूप उपशम में दबे रहते हैं। ऐसे जो क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि मुनिराज हैं वे जब अंतरंग पुरुषार्थ करके उपशमश्रेणी चढ़ने के सन्मुख होते हैं तब वे मुनिराज तीनों ही कर्मों को उपशमाते हैं; कौनसे तीन ? मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति, वे सत्ता में तो हैं न ? तीनों हैं। सम्यक् प्रकृति का उदय था। उन तीनों को उपशमाते हैं। उसको क्या कहेंगे ? द्वितीयोपशम सम्यक्त्व। वह कब होता है ? सातवें में। फिर श्रेणी चढ़कर उतरते हैं और फिर वह चौथे तक बना रह सकता है। उस पर अभी अपनी चर्चा नहीं होगी। क्योंकि हमने सम्यग्दर्शन विषय पर एक शिबिर लिया था। उसमें केवल तीन प्रकार के सम्यग्दर्शन की बहुत विस्तार से चर्चा हुयी थी। उनमें क्या डिफरन्स है ? क्या स्वरूप है ? अभी तो अपने को प्रथमोपशम होता है उसके पहले क्या होता है उसका अपना विषय है, है न।

हमने ये पांच लब्धि देखी और इन पांच लब्धिपूर्वक प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। उनमें से एक-एक लब्धि की क्या परिभाषा है ? परिभाषायें जो हैं न; करणानुयोग की जो कोई परिभाषा हैं, वे मूलग्रंथ की परिभाषायें हैं। हमें उसीको याद रखना है, उसीको लिखना है, उसीको बताना है। परिभाषा में कोई हेरा-फेरी नहीं करनी। क्योंकि हमारी बुद्धि के अनुसार हम उसको कहते हैं; देखो, उसको एक्स्प्लेन करने में आपके शब्द भले आ जावें, परंतु परिभाषा थोड़ी इधर की उधर हो जाती है तो अर्थ का अनर्थ हो जाता है। क्योंकि हमारा उसके बारे में अभ्यास नहीं है और हम उसमें कुछ बताने जाते हैं - कहीं ही लगाते, कहीं भी लगाते उतना करेंगे तो भी उसका अनर्थ हो जाता है। इसलिये करणानुयोग सिखानेवालों की बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है कि वहां मूल परिभाषा में कहीं कोई फेरफार नहीं करें।

बाकी चर्चा हम थोड़ी देर के बाद करते हैं। अभी हमारा समय हो गया है।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

८. प्रथमोपशम सम्यक्त्व की पात्रता

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है और उसीके आधार से हम प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने के पूर्व जो पांच लब्धि होती हैं उनका स्वरूप देखने जा रहे हैं। हम यहां प्रथमोपशम सम्यक्त्व की पात्रता की बात देखेंगे।

प्रश्न: कोई जीव रात्रीभोजन करता हो तो क्या वह प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन का पात्र है ? प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन की पात्रता क्या है वह अभी पढ़ने जा रहे हैं। उसके लिये हम लब्धिसार ग्रंथ का आधार लेंगे। **प्रश्न:** प्रत्येक परमाणु की स्वभावार्थपर्याय होती है ? देखो, परमाणु में क्या योग्यता है ? वह परमाणुरूप रहे या स्कन्धरूप हो जाये। एक-एक परमाणु द्रव्य है। यहां स्निग्धत्व-रुक्षत्व गुण के कारण अनेक परमाणु आपस में जुड़ जाते हैं उनका स्कंध बनता है। समझ में आयी बात ? परमाणु की जो कोई अवस्था है उसको कहेंगे स्वभावार्थपर्याय और स्कंध में ही उन सभी परमाणुओं की मिलकर नहीं कहेंगे; प्रत्येक परमाणु की अवस्था स्कंध में रहते हुये भी जुदी-जुदी है। तब जो उसकी अवस्था होती है उसको हम कहेंगे उसका विभाव है। अर्थपर्याय का अर्थ है- प्रदेशत्व गुण छोड़कर अन्य सभी शेष अनंत गुणों की जो अवस्था होगी उसको कहेंगे अर्थपर्याय। परमाणु की अर्थपर्याय को कहेंगे स्वभावार्थपर्याय। वे ही परमाणु स्कंध में जुड़ जायेंगे तो उनकी जो अवस्थाएं होंगी उसको कहेंगे विभावार्थपर्याय।

प्रश्न: तो सब परमाणुओं के अविभागप्रतिच्छेद समान है क्या ? नहीं। जैसे स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि अनंत गुण हैं। प्रत्येक गुण के अविभागप्रतिच्छेद - मिनिमम हैं वे भी अनंत होते हैं; उसको एक गुण भी कहेंगे। वहां से लेकर उसमें अनंत तक कुछ भी व्हेरिएशन्स हो सकते हैं। यानी स्वभावार्थपर्याय परमाणु की इटसेल्फ; उसमें अलग-अलग उसके अंश होंगे, अविभागप्रतिच्छेद होंगे। मिनिमम है इसलिये स्वभाव ऐसा उसका अर्थ नहीं होता। वह कोई भी हो सकती है। **प्रश्न:** क्षयोपशम ज्ञान जब बढ़ता है तो अविभागप्रतिच्छेद बढ़ते हैं। क्या अविभागप्रतिच्छेद पर कर्म का आवरण हटता है ? कर्म कोई अविभागप्रतिच्छेद पर आवरण नहीं डाल रहा। ज्ञानगुण में जितने अविभागप्रतिच्छेद हैं; कितने हैं ? हर समय केवलज्ञान प्रकट करे ऐसी उसकी योग्यता है। अपने स्वयं की योग्यता से जो पर्याय प्रकट होती है, वह कितने अंश लेकर प्रकट हुयी है उसको कहेंगे ज्ञान के उतने अविभागप्रतिच्छेद हैं। उस समय कर्म के अपने

अविभागप्रतिच्छेद जुदे हैं। कर्म आवरण डालता है यह तो कथनपद्धति है। ऐसा नहीं है कि अंदर ज्ञान है और उसके ऊपर आवरण आया है - ऐसा नहीं है। पर्याय ही उतनी हीनरूप परिणमित होकर प्रकट हुयी है और वहां कर्मों की अवस्था देखी तो क्या था ? उसका उतना विशिष्ट क्षयोपशम चल रहा था। यानी कर्म के अपने अविभागप्रतिच्छेद जुदे हैं और यहां जीव के ज्ञान के जुदे हैं। हां, ऐसा कहेंगे, जब जीव का ज्ञान बढ़ गया कहेंगे तब कर्मों में क्या होगा ? ज्ञानावरण का अनुभाग घट गया ऐसा हम कहेंगे।

प्रश्न: हम जो क्रिया करते हैं, सुबह का नवकार से या पूरा दिन की शुभ क्रिया वह पुण्य होता है या नहीं ? पहले हम किसको क्रिया कह रहे हैं ? क्योंकि प्रश्न है क्रिया जो हम कर रहे हैं। हम कर रहे हैं तो शरीर की क्रिया हम कर रहे हैं या नहीं ? तो पहले में पहले मैं कौन हूं इसका निर्णय करके फिर हम हमारी क्रिया को गिनेंगे। मैं कौन हूं यह पहले सुनिश्चित करना है। क्या सुनिश्चित करना है ? मनुष्य हूं कि स्त्री हूं ? मां हूं ? कौन हूं ? किसका प्रश्न है ? आपका, व्हेरी गुड। हमें यंगस्टर्स के प्रश्न चाहिये। देखो, प्रत्येक द्रव्य की अपनी क्रिया क्या है ? यहां क्या-क्या हो रहा है ? जब हम मनुष्य तरीके से बात करते हैं तो बात अलग होती है और हम यहां किस लेव्हल पर सोच रहे हैं ? मैं जीवद्रव्य हूं इस तरीके से बात है, मैं आत्मा हूं। भगवान ने आत्मा किसको कहा है ? आत्मा-आत्मा तो सब कहते हैं परंतु यहां आत्मा; जिसको स्व कहकर जिसका अनुभव करना है वह आत्मा कैसा है ? जैसे जिनेन्द्र भगवान ने बताया तू परमात्मा है ऐसा जब कहते हैं तो राग रहितवाले स्वभाव की बात है। हम कहेंगे हम तो पर्याय में इतने रागीद्वेषी हो रहे हैं। होने दो, पर्याय में है परंतु पर्याय में रागद्वेष होते हुये स्वभाव मिट गया कि नहीं मिट गया ? यह सुनिश्चित करना है। क्या स्वभाव कभी मिटता है ? नहीं। वह अनादि से जैसा है वैसा ही है। स्वभाव आपको ऐसे नहीं दिखेगा, पर्याय दिखेगी। पर्याय के रहते हुये हमें स्वभाव को ज्ञान में लेना है, प्रतीति में लेना है।

जैसे आपके पास आम की गुठली है तो आपको मालूम है कि यह गुठली बो देने से आम का वृक्ष बनेगा। उसमें कितनी सामर्थ्य है ? आम का वृक्ष बनने की सामर्थ्य है। किसमें ? श्रोता: गुठली में/ गुठली में। दिख क्या रहा है ? गुठली। हम सायन्सवाले हैं न, तो हमने गुठली का डिसेक्शन किया। उसको काटकर मायक्रोस्कोप के नीचे देखा। सामर्थ्य दिखेगा कि नहीं दिखेगा ? श्रोता: नहीं/ नहीं दिखेगा। अब कट की हुयी गुठली बो दो, वह वृक्ष बनेगा कि नहीं बनेगा ? नहीं बनेगा। हमने वह पहले जैसी

गुठली बो दी। अब उसकी पर्याय कौनसी हुयी है ? एक छोटासा पौधा हुआ है। उसके दो-चार पत्रे आ गये। उसमें सामर्थ्य कितनी है ? पूरा वृक्ष होने की। सामर्थ्य दिख रही है ? *श्रोता: नहीं।* आपको उसकी प्रतीत करनी पड़ेगी। आपके ज्ञान में आपको भासित हो जायेगा। दिखेगी तो पर्याय; पर्याय व्यक्त होती है और द्रव्य स्वभाव अव्यक्त है। परंतु द्रव्य स्वभाव कभी मिटता नहीं है। हमें द्रव्य स्वभाव में मैपना स्थापित करना है।

मैं कौन हूं ? मैं आत्मा जब कहते हैं वह स्वभाव की बात है। मैं कब से हूं ? तो अनादि से हूं। पर्याय तो चेंज होती रहती है न ? पर्याय जुदी-जुदी होती रहती है परंतु स्वभाव अनादिअनंत कायम वही का वही रहता है। स्वभाव को जब मैं माना; तो मैं जीव हूं और मैं जानने का कार्य करता हूं इस बात का अनुभव होगा तो यह शरीर की क्रिया अपनी भासित नहीं होगी। क्रियायें चलेगी क्योंकि मनुष्य तरीके से जो हमारे सोच-विचार चल रहे हैं, हमारी क्रियायें चल रही हैं। हम सुबह उठते हैं, नाश्ता-पानी करते हैं, तैयार होते हैं, जॉब को जाते हैं और जो कुछ कर रहे हैं या भगवान का नामस्मरण करेंगे, नवकारसी करेंगे - जो कुछ होगा। परंतु उनके होते हुये हमें नक्की करना है कि इसमें से मैं कौन हूं और मेरा कार्य क्या चल रहा है ? उस समय भी हमारा जानने का कार्य चल रहा है कि रुक गया है ? *श्रोता: चल रहा है।* तो हमें कौनसा कार्य मेरा भासित हो रहा है ? वह जाननेरूप कार्य मेरा भासित हो रहा है कि नवकार मंत्र बोलने का कार्य मेरा भासित हो रहा है कि बाकी शरीर की क्रिया करनेरूप कार्य मेरा भासित हो रहा है ? जब तक शरीर की क्रिया में और शुभराग में मेरापन, यह मेरी क्रिया है ऐसा भासित होता है तब तक अनुभव होना दूर है।

हमें सुनिश्चित करना है। इसी प्रोसेस से आगे बढ़ेंगे क्योंकि यह उत्सुकता-जिज्ञासा ही हमें आगे लेकर जानेवाली है। जो-जो जीव सम्यग्दृष्टि हैं, सम्यग्दृष्टि की बात छोड़ो, जो-जो जीव सिद्ध हुये हैं वे पहले मिथ्यात्व अवस्था में थे कि नहीं थे ? हां, जब सहीरूप से - आगम के अभ्यास से, ज्ञानियों के उपदेश से, उस पर विचार करके आगे बढ़े तो उन्होंने भी सम्यग्दर्शन प्राप्त किया। आत्मा में स्थिरता करते-करते वे मोक्ष चले गये। जो उन्होंने किया वह हम आप सब कर सकते हैं क्योंकि हमें सच्चा उपदेश तो मिल रहा है। हमें उस पर विचार करना है और यह सही है कि नहीं उसका निर्णय अपनी बुद्धि से करना है। यहां किसी दूसरे की बुद्धि से काम नहीं चलता है। द्रव्यानुयोग के सारे ही सिद्धान्त सीखकर, उनका रहस्य समझकर हमें कायम ख्याल

में रखने चाहिये। करणानुयोग के माध्यम से उनमें और दृढ़ता आती है और भेदज्ञान के लिये बल मिलता है, पुष्टि होती है। कोई भी अनुयोग बेकार का है ही नहीं।

प्रश्न क्या था ? हम जो क्रिया करते हैं- सुबह का नवकारसी या पूरा दिन की शुभक्रिया वह पुण्य है कि नहीं है ? देखो, क्रिया से पुण्य नहीं होता है। नवकारसी यानी क्या ? नवकारसी का अर्थ क्या है ? नवकार। कौनसा ? हम अरिहंत-सिद्ध का नाम ले रहे हैं। जब अरिहंत की बात कर रहे हैं तो अरिहंत भगवान का स्वरूप हमारे ख्याल में आता है क्या ? ज्ञान में आता है कि नहीं ? सिद्धों का स्वरूप हमें भासित होता है कि नहीं होता ? यह हमें तय करना है। उनके प्रति, उनके गुणों संबंधी, गुण यानी पर्याय; तो उनकी जो केवलज्ञान पर्याय प्रकट हुयी है, उनकी जो अवस्था है उनके प्रति हमें अहोभाव आता है कि नहीं आता है ? यानी जो वीतरागता की बात है, उस वीतरागता के प्रति हमें बहुमान आता है तो शुभभाव होगा। हमने केवल अरिहंत-सिद्ध, अरिहंत-सिद्ध, अरिहंत-सिद्ध कितनी ? लाख बार किया तो हमने वह मुंह से बोला और यहां हम टेप लगाकर रखा तो टेप में तो दिनभर नवकारसी चल रही है। तो टेप को कितना पुण्य लगेगा ? उसको पुण्य नहीं लगता है न ?

यहां भले ही हम वाणी से जोर से बोल रहे हैं या मन ही मन में जिसको अंतर्जल्प कहते हैं; वह बोल रहे हैं उससे कोई पुण्य नहीं लगनेवाला। उस समय हमारे परिणाम कैसे हैं ? क्या हमारे शांत परिणाम चल रहे हैं ? भगवान के गुणों का स्मरण कर रहे हैं ? उससे हमें पुण्य लगता है। परंतु पुण्य कहां चला जायेगा ? *श्रोता: पर में/ पड़ोसी में।* भले ही उसका फल मिलेगा, परंतु शास्त्र में बारंबार आता है, अभी हमारा दैनिक सामूहिक स्वाध्याय में नियमसार चल रहा है, उसमें कहते हैं पुण्य घोर संसार का कारण है। किसको कहा ? पुण्य को कहा है। क्योंकि सब लोग पुण्य को अच्छा मानकर, धर्म मानकर कर रहे हैं। धर्म मानकर कर रहे हैं तो मिथ्यात्व का पोषण हो रहा है। पुण्य का निषेध नहीं है। जिस भूमिका में हैं वहां पुण्य के परिणाम होंगे। सामान्य जीवों को, एक दूसरे को उपदेश की भाषा में कहेंगे- यह मत कर, यह कर। अभी वह बाकी बात छोड़ दो। जरा शिबिर में आ, ऐसा हम उपदेश देंगे कि नहीं देंगे ? आप भी आ गये, भले ही दो-तीन दिन जितना हो सके। कुछ लोग जॉब छोड़कर भी आ गये हैं। तो यह क्या है ? ये जो परिणाम हैं वे पुण्य परिणाम हैं। क्योंकि हम हमारा स्वरूप जानना चाहते हैं, यह हमारी जिज्ञासा है और उसके साथ हमारे शुभ परिणाम

भी हो रहे हैं। वह इटसेल्फ पुण्य का कारण है।

नवाणु बार यात्रा की हो वह पुण्य है या नहीं है ? वह तो कुछ गिनने में ही नहीं आता। अच्छा देखो-देखो, क्या कहना चाहते हैं ? एक बार यात्रा की या नवाणु बार की इससे कुछ मतलब नहीं है। हमने यात्रा की; यात्रा की यानी क्या किया ? नवीनभाई आप यात्रा के लिये क्या करते हैं ? शिखरजी का पहाड़ चलकर चढ़ गये और उतरे। जब हम यंग थे न तो सब रिश्तेदारों के साथ हमारी पूरी फॅमिली यात्रा में जाती थी। मेरे मामा दौड़कर निकलते थे और पूरी यात्रा करके कितने ? छह-आठ घंटे में तो वापस आते थे। तो कितनी जोर से दौड़ लगायी होगी ? तो ज्यादा पुण्य हुआ होगा कि नहीं होगा ? और जो डोली में बैठकर गये उनको कम पुण्य लगा होगा ? जो दूसरों को डोली में उठाकर लेकर जाते हैं उनको पुण्य हुआ होगा कि नहीं होगा ? जो डोलीवाले होते हैं उनकी तो कितनी बार यात्रा हुयी होगी ? अरे, खुद भी जाते हैं और दूसरों को भी उठाकर ले जाते हैं तो उनको डबल पुण्य होना चाहिये था न !

यह पुण्य या पाप क्रिया से नहीं होता है, उस समय हमारे जो भाव हैं उसके अनुसार होता है। अरे, यहां से इतने जीव मोक्ष चले गये हैं। किस विधि से गये हैं ? कौनसे मार्ग से गये हैं ? उन्होंने कैसे आत्मा का अनुभव किया ? उसके बारे में हम सोचेंगे, विचार करेंगे और उन परिणामों के साथ हम यात्रा करेंगे तो पुण्य होगा। देखो, यात्रा वगैरह का उपदेश होता भी है क्योंकि जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने के लिये हम जगह-जगह मंदिरों की यात्रा करते हैं उसका निषेध नहीं है। निषेध किस बात का है ? गलत मान्यता का। यह करने से मुझे धर्म होगा इस मान्यता का निषेध है। तो पुण्य तो होगा कि नहीं ? पुण्य होगा। परंतु पुण्य से हमारा कितना फायदा होगा ? *श्रोता: संसार बढ़ेगा।* संसार बढ़ेगा। क्योंकि हमने आज तक पुण्य या पाप के अलावा दूसरा कुछ किया ही नहीं। पुण्य-पाप को छोड़कर दूसरा कुछ पर्याय में हो सकता है जिसको हम शुद्धभाव कहते हैं, शुद्धभाव हो सकता है इसके बारे में कभी सुना ही नहीं है। सुना ही नहीं तो हमने उसके बारे में कभी सोचा नहीं यानी कोशिश नहीं की। अभी हमारे सोचने का वक्त आ गया है। यह अवसर दुबारा प्राप्त होना बहुत कठिन है।

एक बार मनुष्यपर्याय चली गयी तो ? दुबारा मनुष्य कितनी बार हो सकता है, बोलो ? दो हजार सागर में कितनी बार मनुष्य हो सकता है ? *श्रोता: ट्वेंटी फोर। ट्वेंटी*

फोर और क्या ? श्रोता: अड़तालीस बार। फॉर्टी एट। कहां लिखा है ? कौनसे आगम में लिखा है ? फॉर्टी एट की बात कहां लिखी है ? सबने सुनी है किसीने पढ़ी नहीं है। यह लगातार की बात है। मनुष्य से मनुष्य, मनुष्य से मनुष्य वह मिथ्यादृष्टि की बात है। मनुष्य से मनुष्य, मनुष्य से मनुष्य, मनुष्य से मनुष्य अगर पर्याप्त है तो स्त्री के आठ भव, पुरुष के आठ भव, नपुंसक के आठ भव हो सकते हैं। यह मॅक्झिमम पॉसिबिलिटी है। फिर बीच में एक अपर्याप्त मनुष्य का भव करेगा और फिर आठ-आठ-आठ भव हो सकते हैं। पहले चौबीस पर्याप्तों के और बीच में अपर्याप्तों के एक से लेकर आठ भी हो सकते हैं यह लगातार की बात है। परंतु जो त्रस की स्थिति है साधिक दो हजार सागर उसमें अधिक भी हो सकते हैं।

देखो, उसके लिये बहुत सारे अलग-अलग प्रूफ हैं। धवला की पन्द्रहवीं पुस्तक का अभी हमारा स्वाध्याय चल रहा है, उसमें ऐसा आता है कि उच्चगोत्र का उदय लगातार कितने काल तक हो सकता है ? तिर्यच कौनसे गोत्रवाले हैं ? नीचगोत्रवाले और नारकी ? श्रोता: नीचगोत्र। नीचगोत्रवाले। लगातार उच्चगोत्र का उदय होता है उसका अर्थ क्या है ? जीव कौनसी पर्याय में घूमेगा ? श्रोता: देव और मनुष्य। देव और मनुष्य और उसका लगातार घूमने का काल बताया ९०० सागर। उसको १०० सागर पृथक्त्व कहते हैं। यानी ९०० सागर में केवल मनुष्य और देव के भव करेगा। तो मनुष्य कितनी बार होगा ? आप सोचो। आप कहेंगे ऊपर-ऊपर के देव में जन्म लेगा। अभी ऊपर-ऊपर के देव होने के लिये ३१ सागर के ऊपर तो जा नहीं सकता। मिथ्यादृष्टि रखना है तो कितनी बार करेगा सोचो ? क्योंकि ऊपर के अधिक आयुवाले देव में बारंबार नहीं जा सकता। हां, नीचे के कम आयुवाले देव में ही बारंबार जायेगा। जो दस हजार वर्ष वगैरह की आयुवाले हैं न - व्यंतर हैं, भवनवासी उनमें अधिक बार जन्मेगा। तो मनुष्यों के कितने भव होंगे ? क्योंकि यह पॉसिबिलिटी है। कहते हैं उच्चगोत्र में लगातार रहने का काल अधिक से अधिक ९०० सागर करीबन है। इतने भव तो केवल देव और मनुष्य के ही करेगा। मनुष्य भव अधिक बार हो सकते हैं।

यह भी हो सकता है कि वह त्रस में आया और उसको मनुष्य का एक भी भव ना मिले। तिर्यचभव के बिना नहीं चलेगा, तिर्यच तो बारंबार होता रहेगा। ९०० सागर तक देव नहीं हो ऐसा हो सकता है। उसने मनुष्य, तिर्यच और नारकी के ही भव किये यह हो सकता है। ऐसा भी हो सकता है कि ९०० सागर तक मनुष्य, देव के भव किये

या देव, मनुष्य और तिर्यच के भव किये और नारकी के किये ही नहीं यह हो सकता है। ऐसा भी हो सकता है तिर्यच, देव और नारकी इन तीन पर्यायों में ही घूमा; यानी हर बार तिर्यच होते-होते कभी नारकी में गया कभी देव में गया, यह हो सकता है। इतने काल तक मनुष्य ना हो यह पॉसिबल है। *श्रोता: एक बार भी नहीं ?* एक बार भी नहीं होगा। दो हजार सागर त्रस में जन्म मरण करके फिर एकेन्द्रिय में चला जायेगा। इतने लंबे काल तक जो त्रस में है वह एकेन्द्रिय में से एक-दो भव करके नहीं निकलेगा, कम से कम असंख्यात वर्ष और अधिक से अधिक असंख्यात पुद्गलपरावर्तन काल बिताना पड़ेगा। हमें मालूम ही नहीं कि हम क्या कर रहे हैं। केवलज्ञानी ने क्या-क्या जाना है !

इस मनुष्यभव की दुर्लभता जब तक ख्याल में नहीं आती, लोगों को डर नहीं लगता। हमने एक रूटीन बना लिया क्योंकि हमारी लाइफ सेटल हो गयी न। हमारी आमदनी-इन्कम अच्छी है। खानापीना बराबर ठीकठाक चल रहा है। है न ? फिर हम देवदर्शन, स्वाध्याय भी करते हैं, वह रूटीन में है। हमने स्वाध्याय का भी रूटीन बना लिया और इसमें संतुष्ट होकर बैठे हैं। मनुष्यभव तो इसीमें चला जायेगा। स्वाध्याय का जो मर्म है वह समझकर आत्मा की अनुभूति जब तक नहीं होती है तब तक इस पुण्य से कुछ फल मिलनेवाला नहीं है। वह रखड़पट्टी चलेगी - स्वर्ग का एकाध भव मिल जायेगा और क्या होगा ? तो क्या मात्र सभी जैनी ही स्वर्ग में जायेंगे? अरे, स्वर्ग में जानेवाले मेजॉरिटी तो तिर्यच ही हैं। नहीं समझे ? असंख्यात तिर्यच देव में जाते हैं। पर्याप्त मनुष्य तो संख्यात हैं उनमें से बहुत थोड़े मनुष्य देव में जायेंगे।

हमें क्या देखना है ? किसी क्रिया के पीछे नहीं जाकर पहले हमें मैं आत्मा हूं इस बात पर सोचना है। यह सोचने के लिये मनुष्यपर्यायरूप से जो रूटीन चल रहा है उसमें कोई फर्क नहीं आनेवाला है क्योंकि वह बात अलग है। हम उस लेव्हल पर तो दिन-रात सोच ही रहें हैं। हमें अपने लिये यानी मैं जीव हूं इसके लिये कुछ समय निकालकर उस बारे में सोचना है। वह सोचने के लिये कोने में जाकर बैठकर आंखे बंद करके बैठना नहीं पड़ेगा। हमारी जो दिनचर्या चल रही है न, उन होते हुये कार्यों में मेरा कौनसा कार्य है ? यह किसका कार्य चल रहा है है ? इस बारे में विचार तो आ सकते हैं। हमने एक घंटा यहां गुरुदेवश्री की वाणी सुनी या हमने स्वयं पुस्तक पढ़ी या सीडी सुनी - जो कुछ किया। उसके बाद उसके विचार चलते रहते हैं न ? जिसकी रुचि होगी उसके विचार चलेंगे। हमारी रुचि अन्यत्र है तो उसके - घर के विचार यहां

बैठे भी चलेंगे। क्या हुआ ? वह ऐसा हुआ था, वह वैसा हुआ था, है न ?

यहां निवृत्ति लेने का अर्थ क्या है ? उसके बारे में हमें सोचना है। हम जो सिद्धान्त यहां बारंबार सीख रहे हैं - निमित्त से कार्य नहीं होता यह बात हो रही है। उसकी बात हमें दिमाग में लेकर हर कार्य में वह घटित करना है। निमित्त होते ही हैं परंतु निमित्त से कार्य नहीं होता है। अब यह क्षयोपशम की बात है। उसमें लोगों को यही प्रश्न उठ रहे हैं। क्षयोपशम होता है तो निमित्त है कि नहीं है ? है। क्या निमित्त है ? कर्म की क्षयोपशमरूप अवस्था चल रही है। परंतु जानने का कार्य यहां जीव में; जीव के अपने कारण से हो रहा है और जीव नहीं जान रहा है तो ? उस चीज को नहीं जान रहा है। अपने से ही वह नहीं जाननेरूप परिणामित हो रहा है। तब वहां क्या हो रहा है ? उस ज्ञान संबंधी ज्ञानावरण की उदयरूप अवस्था है। ये निमित्त होते हैं।

अभी हमारा विषय क्या है ? प्रथमोपशम सम्यक्त्व। यानी जीव को अभी विचार है, जिज्ञासा है, मुझे जानना है कि मैं कौन हूं ? तो कौनसा जीव सम्यक्त्व प्राप्त करता है ? इसको पात्रता कहेंगे। हां, बोलो ? *श्रोता: मिथ्यादृष्टि।* मिथ्यादृष्टि। आपने कहा मिथ्यादृष्टि यह पात्रता है ? बिलकुल। क्योंकि प्रथमोपशम सम्यक्त्व की बात हो रही है। हम लब्धिसार ग्रंथ से ही पढ़ेंगे, देखो, पृष्ठ ६८, दूसरे नंबर की गाथा मैं पढ़ रही हूं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करने का कौन अधिकारी है ? किसमें यह योग्यता है ? उसकी पात्रता क्या है कहते हैं। दूसरे नंबर की गाथा है-

चदुगदिमिच्छो सण्णी पुण्णो गब्भज विसुद्ध सागारो ।

पढमुवसमं स गिण्हदि पंचमवरलद्धिचरिमहि ।।

अब पंचलब्धि पृष्ठ ६०- **चारों गतिवाला**, चारों गति यानी कौनसी ? देव, नारकी, मनुष्य और तिर्यच में संज्ञी पंचेन्द्रिय को सम्यग्दर्शन होगा, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय को नहीं होगा। तो **चारों गतिवाला**, दूसरी बात है **भव्य**, पहले पूरा पढ़ लेते हैं। फिर एक-एक शब्द लेकर हम विस्तार से उसके बारे में विचार करेंगे। **चारों गतिवाला, भव्य, मिथ्यादृष्टि**, प्रथमोपशम के लिये कंडिशन डाली। मिथ्यात्व में से वह सम्यक्त्व प्राप्त करेगा। **संज्ञी पंचेन्द्रिय**, फिर क्या लिखा है ? **पर्याप्त, गर्भज**, गर्भज का अर्थ क्या है ? गर्भ से उत्पन्न, **मनुष्य और तिर्यचों में** गर्भज होते हैं। तिर्यचों में सम्मूर्च्छन पर्याप्त पंचेन्द्रिय भी होते हैं तो सम्मूर्च्छन को यहां छोड़

दिया है। हम आगे चलकर उसकी भी बात पढ़ेंगे।

मंदकषायरूप विशुद्धता का धारी यानी कैसा है ? तीव्रकषाय के काल में उसको सम्यक्त्व नहीं होगा। प्रथमोपशम सम्यक्त्व तो होने जा रहा है उसके पहले वह मंदकषायी होगा। मंदकषायी होगा तभी तो तत्त्व सुनने को आयेगा या तत्त्व पर विचार करेगा। तीव्रकषाय में तो अन्य बातें सोचेगा। **जाग्रत**, हमें कभी-कभी फोन पर कोई प्रश्न पूछता है कि मुझे ऐसा लगता है कि कल नींद में मुझे सम्यग्दर्शन हो गया, तो आपका क्या कहना है ? उसको निःशंकित अंग है कि नहीं है ? उसको लगता है और दूसरे से सर्टिफाय कराना चाहता है। **साकार ज्ञानोपयोगी जीव**, इनका अर्थ देखेंगे हम। **पांच लब्धिपूर्वक** यानी पहले पांच लब्धि हुयी उसके पश्चात् **पांचवीं करणलब्धि के अनिवृत्तिकरण के अनंतर समय** अनंतर का अर्थ है इमीजिएट नेक्स्ट समय में **प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है**। अभी हम इसकी चर्चा करेंगे।

पहले में पहले यह प्रथमोपशम शब्द आया है न, तो कर्मों का उपशम होता है। सामने कर्मों की कौनसी अवस्था है ? उपशमरूप अवस्था है और यहां जीव में क्या हुआ है ? सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ है। तो क्या सम्यग्दर्शन भी अनेक प्रकार के होते हैं ? कौनसे होते हैं ? *श्रोता: औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक*। हां, सम्यक्त्व के भी तीन नाम हैं। कौनसे ? औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक। ये नाम कैसे पड़े ? निमित्त की ओर से। सम्यक्त्व तो सम्यक्त्व है परंतु उसमें कर्मों की कौनसी अवस्था चल रही है ? तो कहेंगे कि वहां कर्मों का उपशम चल रहा है। तीनों में मिथ्यात्व का तो अनुदय है। डिटेल बाद में देखेंगे कौनसे सम्यक्त्व में क्या-क्या बातें घटित होती है।

वहां कर्मों का उपशम चल रहा है तो यहां जीव के इस भाव को क्या कहेंगे ? औपशमिक। वहां कर्मों में क्षयोपशम चल रहा है तो जीव के यहां जो सम्यक्त्व है उसको क्या कहेंगे ? क्षायोपशमिक सम्यक्त्व। वहां उन कर्मों का क्षय हो चुका है, सत्ता में से नष्ट हो गये, उदयाभावी क्षयवाली बात नहीं है, सत्ता में से पूरे नष्ट हो गये तो यहां जो सम्यक्त्व होगा उसको क्या कहेंगे ? क्षायिक सम्यक्त्व। हमने देखा था मिथ्यादृष्टि, जो अनादि का मिथ्यादृष्टि है, वह सबसे पहले जब सम्यक्त्व प्राप्त करेगा तो कौनसा होगा ? *श्रोता: औपशमिक*। औपशमिक। उसका नाम है प्रथमोपशम सम्यक्त्व। यहां यही बात है देखो पृष्ठ ५८- **अब कौनसे कर्मों का उपशम करके जीव सम्यक्त्व**

प्राप्त करता है उसे देखते हैं। अनादि मिथ्यादृष्टि के पास दर्शनमोहनीय कर्म की एक मिथ्यात्व प्रकृति सत्ता में है, क्योंकि मिथ्यादृष्टि है तो हर समय वह मिथ्यात्व कर्म बांध रहा है। सत्ता में भी है, उदयरूप भी है। क्योंकि बंध एक मिथ्यात्व प्रकृति का ही होता है। एक का यानी दर्शनमोहनीय में से एक मिथ्यात्व का बंध हो रहा है। अन्य ज्ञानावरणादि, चारित्रमोहनीय सब बंध रहे हैं, उसकी बात यहां नहीं हो रही है।

दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियां देखी थी मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति। जो अनादि का मिथ्यादृष्टि है, उसके सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति है ही नहीं। उसके एक मात्र मिथ्यात्व प्रकृति है। इसका अर्थ समझ में आया ? **जब सादि मिथ्यादृष्टि के पास** सादि यानी जिसने एक बार सम्यक्त्व प्राप्त किया है और वह गिरकर फिर मिथ्यात्व में आया है। देखो, कोई सम्यग्दृष्टि मिथ्यात्व में चला गया, अब वहां चला गया तो उसके तीन प्रकृतियां तैयार हुयी थी। वे कैसे हुयी थी बाद में देखेंगे। अभी उसके सत्ता में तीन प्रकृतियां हैं। अब यहां मिथ्यात्व में आने पर मिथ्यात्व का उदय भी है और मिथ्यात्व का नया बंध भी होगा कि नहीं होगा ? *श्रोता: होगा।* होगा। पहले सम्यग्दृष्टि था तब तक नहीं हो रहा था। जब मिथ्यात्व में आया तो मिथ्यात्व कर्म हर समय बंध रहा है। अब वहां सम्यक् प्रकृति भी है और सम्यग्मिथ्यात्व भी। उनका क्या होता है ? तो उनका मिथ्यात्व प्रकृति में उलटा संक्रमण चालू हो जाता है उसको उद्वेलना कहते हैं। मिथ्यात्व में आने पर उन दोनों की स्थिति घटती चली जाती है। स्थिति घटती चली जाती है फिर भी इतनी जल्दी उनका उपशम नहीं कर सकता।

हां, उसको वेदक सम्यक्त्व प्राप्त हो सकता है, क्षयोपशम कर सकता है। मिथ्यात्व में आने पर एक छोटे अंतर्मुहूर्त में दुबारा सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है परंतु वह औपशमिक सम्यक्त्व नहीं होगा। उसको जो सम्यक्त्व होगा उसको वेदक या क्षयोपशम सम्यक्त्व कहेंगे। ये तीन प्रकृतियां हैं, उनमें से सम्यक्त्व प्रकृति का उदय चालू हो जायेगा और अन्य दो सत्ता में पड़े रहेंगी तो क्षयोपशम सम्यक्त्व बना रहेगा। परंतु मिथ्यात्व गुणस्थान में लंबे काल तक रहने पर क्या होता है ? सम्यक्त्व प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व की उद्वेलना होने से उनकी स्थिति घटती चली जाती है और इन दो प्रकृतियों की स्थिति सागर के करीबन शेष रहती है। मिथ्यात्व की कितनी होगी ? संज्ञी पंचेन्द्रिय में ? *श्रोता: ७० कोड़ाकोड़ी।* कुछ भी हो सकती है, ७० कोड़ाकोड़ी सागर तो हम मैक्झिमम कहते हैं। जरूरी नहीं है इतनी हर समय बंधेगी। वह जीव इन तीनों को

एक साथ उपशमा सकता है। इसलिये सादि मिथ्यादृष्टि भी प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है। परंतु एक बार प्रथमोपशम होकर दूसरी बार प्रथमोपशम होने के बीच में असंख्यात वर्षों का काल चला जाता है। जिसको पत्य का असंख्यातवां भाग कहते हैं। वह उसकी बात अभी हम पढ़ेंगे। देखो-

जबकि सादि मिथ्यादृष्टि के पास दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृति अर्थात् मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति कुछ काल तक सत्ता में रहती हैं। क्योंकि पहली बार प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने पर मिथ्यात्व के तीन टुकड़े होते हैं। वे कैसे होते हैं वह प्रोसेस तो बाद में देखनेवाले हैं। कौनसा जीव प्रथमोपशम करता है ? कोई अनादि मिथ्यादृष्टि है और कोई सादि है। सादि मिथ्यादृष्टि के लिये कुछ कंडिशनस हैं वे बाद में दुबारा देखेंगे जब हम इन प्रकृतियों की स्थिति का प्रमाण देखेंगे। जो जीव पहले गुणस्थान से चौथे गुणस्थान में जाता है वह दर्शनमोहनीय, कौनसी दर्शनमोहनीय ? अनादिवाले की एक मिथ्यात्व प्रकृति और सादिवाले की तीन हो सकती हैं। अनंतानुबंधी, क्रोध, मान, माया और लोभ का उपशम करते हैं। अभी अनंतानुबंधी का उपशम करते हैं और दर्शनमोहनीय का भी उपशम करते हैं। इन दोनों उपशम में क्या फर्क है ? जब हम उसका प्रोसेस देखेंगे तब उसकी बात करेंगे। परंतु अभी दोनों ही उदय में नहीं आ रहे हैं यह उसका अर्थ है।

उपशम किया का क्या अर्थ है ? कुछ काल के लिये सत्ता में बने रहे, उसका उदय नहीं हुआ। उदय नहीं हुआ क्या बताता है ? कि जीव ने भी मिथ्यात्व नहीं किया। क्योंकि जीव मिथ्यात्वरूप परिणमता है तो सामने उदय हाजिर ही है। ऐसा नहीं कि उदय आया इसलिये जीव को मिथ्यात्व करना पड़ा - ऐसा नहीं है। दोनों अट अ टाइम होते हैं। जीव स्वयं मिथ्यात्वरूप नहीं परिणम रहा है और वहां मिथ्यात्व कर्म का अनुदय है। अनुदय यानी उदय नहीं है। उपशम चल रहा है। **वहां अनादि मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी चार इसप्रकार पांच प्रकृति का उपशम करके प्रथमोपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करता है। और सादि मिथ्यादृष्टि क्या करेगा ? उसके दर्शनमोहनीय की तीन हैं और अनंतानुबंधी की चार हैं वह सात का उपशम करेगा। सादि मिथ्यादृष्टि जीव दर्शनमोहनीय की तीन और अनंतानुबंधी की चार इसप्रकार सात प्रकृति का उपशम करके प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है।** कोई अभ्यासी जीव है, वे पूछेंगे कि उद्वेलना होती है न, तो पहले सम्यक् प्रकृति नष्ट हो

जाती है। कुछ काल तक मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व दो रहती हैं तो उसको भी औपशमिक सम्यक्त्व हो सकता है। तो छह का उपशम करेगा। यह सूक्ष्म पॉइंट है।

इसका तात्पर्य कि यह जब-जब जीव ऊपर बताये हुये कर्मों का उपशम करके मिथ्यात्व में से सम्यक्त्व प्राप्त करेगा तब-तब उसे प्रथमोपशम सम्यक्त्व कहेंगे। पहली बार सम्यक्त्व हुआ इसलिये उसको प्रथमोपशम सम्यक्त्व नहीं कहते परंतु जब-जब कोई मिथ्यादृष्टि जीव औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त करेगा तब-तब उसको प्रथमोपशम सम्यक्त्व कहते हैं - भले ही वह पहली बार हो, दूसरी बार हो या असंख्यातवें बार हो। क्या कहा ? क्या असंख्यात बार सम्यक्त्व होकर छूट सकता है ? तो डर लगने लगा, है न ! यहां क्या कह रहे हैं ? **क्यों ? अचरज में क्यों पड़ गयी ?** तुम इस भ्रम में मत रहना कि एक बार सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया तो हमारा काम हो गया। अरे ! उसको तो अभी और सावधानी बरतनी पड़ेगी। पहले तो कोई गिरने का डर नहीं था। *श्रोता: गिरा हुआ ही था।* गिरा हुआ ही था।

किसी जीव को सम्यक्त्व होकर छूट गया तो अधिक से अधिक अर्धपुद्गलपरावर्तन काल तक वह मिथ्यात्व में भटक सकता है। यह अर्धपुद्गलपरावर्तन काल अनंतकाल है। उसकी चर्चा हमने 'पंच परावर्तन' में देखी थी। यहां अपना शिबिर हुआ था न। यह अनंतकाल है। तत्त्वश्रद्धानी हुआ, आत्मा का अनुभव किया तो वह छूटकर जीव दुबारा मिथ्यात्व में जा सकता है। हां, द्रव्यानुरयोग में और उपदेश की मुख्यता में जहां पुरुषार्थ की प्रेरणा दी जाती है वहां गिरने की बात नहीं करते। गुरुदेवश्री के प्रवचन में बहुत बार आपने सुना- 'पडवानी बात नहीं करवानी।' अंदर से जोर है न अपने स्वभाव का तो वहां गिरने-विरने की बात नहीं करते। कोई शादी करने जा रहा है तो क्या वह सोचता है कि मेरा डायव्होर्स होगा तो ? हम विदेश में जाते थे वहां ऐसे बहुत सारे हमें मिले। वहां यंगस्टर्स जल्दी शादी करने को तैयार नहीं होते हैं। क्या सोचते हैं ? अरे, मेरा डायव्होर्स होगा तो क्या होगा ? यह छोड़कर जायेगी तो क्या होगा ? यह नहीं मानेगी तो क्या ? इसतरह वे इतने कन्फ्युज्ड हैं कि जल्दी शादी की सोचते ही नहीं है। वहां के पेरेंट्स परेशान हैं।

यहां कहते हैं कि जब स्वभाव सन्मुखता के पुरुषार्थ की बात होती है वहां गिरने-विरने की बात नहीं करना। तो आप क्यों कर रहे हैं ? यह ज्ञान का विषय है।

ऐसे जीव पाये जाते हैं कि जिन्होंने इतनी बार सम्यक्त्व प्राप्त करके भी अभी मिथ्यात्व में जाकर चौदह जीवसमासों में जन्म मरण करते हुये घूम रहे हैं। देखो, शास्त्र में तो ऐसा आता है कि एक बार सम्यक्त्व प्राप्त करके छूट जायेगा तो अर्धपुद्गलपरावर्तन काल तक मिथ्यात्व में रह सकता है। बाद में मोक्ष होगा ही। यह अर्धपुद्गलपरावर्तन अनंतकाल है। जीव अनंतकाल में कौन-कौनसी पर्यायों में घूमेगा ? *श्रोता: निगोद आदि अनेक पर्यायों।* अनेक बार त्रस भी होगा, अनेक बार एकेन्द्रिय में जायेगा, निगोद भी होगा। तो जिन्होंने असंख्यात बार सम्यक्त्व प्राप्त किया था; किसी जीव ने असंख्यात बार पांचवां गुणस्थान प्राप्त किया था; कितनी बार मुनि भी हुये थे; बत्तीस बार नहीं, थोड़े कम बार और चार-चार बार उपशमश्रेणी चढ़कर आये थे, क्योंकि एक भव में दो बार उपशमश्रेणी चढ़ सकता है। ऐसे जीव भी चौदह जीवसमास में पड़े हैं। सूक्ष्म और बादर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय के पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे चौदह जीवसमास मालूम है न ? कीड़े-मकोड़े देख रहे हैं न ? कॉक्रोच देखकर भागते हो न ? हो सकता है कि इतना सारा करके जीव अभी वहां पड़े हैं। क्यों ? परिणाम ऐसे हो सकते हैं। डराने की बात नहीं है परंतु यह फॅक्ट है। क्योंकि केवलज्ञानी के ज्ञान में क्या नहीं आया ? प्रत्येक जीव की सभी पर्यायें उन्होंने एक समय में जान ली न।

यह विषय हमें इतना विस्तार से क्यों बता रहे हैं ? ऐसे हो सकता है। इसलिये परिणाम के भरोसे मत रहो यह बता रहे हैं। **यहां तो करणानुयोग में वस्तुस्थिति बतायी जाती है। ये बातें केवलीगम्य हैं।** केवली के ज्ञान में आयी हुयी हैं। **एक भी जीव में यदि इतनी बार सम्यक्त्व से गिरना होता है तो वह बात करणानुयोग जरूर बतायेगा।** नहीं समझे ? मैं मेडिकल में पढ़ती थी न, तो उसमें ऐसे बहुत रेअर केसेस भी बताते हैं। दस लाख में एक को भी कोई बीमारी होगी तो वहां लिखा हुआ होता है। आजकल ये जो एड्स वगैरह होते हैं, जब हम सीखते थे तब पूरी दुनिया में ऐसे एक-दो केसेस ही थे और अब बढ़ते-बढ़ते कितने हो गये न। तो कोई रेअर बातें भी होंगी तो करणानुयोग में बतायी जाती हैं। ऐसा कोई एकाध जीव क्या दो-चार-पांच-दस जीवों को होगा। कोई जीव सम्यक्त्व से गिरकर मिथ्यात्व में मैक्झिमम कितना घूम सकता है उसका वर्णन यहां आता है।

यह पढ़कर डरने की आवश्यकता नहीं है, उसी प्रकार सम्यक्त्व होने पर

फूल जाने की भी जरूरत नहीं है। मुझे सम्यग्दर्शन ! अरे, वह तो मान कषाय है। सम्यग्दृष्टि को ऐसा मद नहीं होगा और कोई ऐसा मद करेगा तो गिर जायेगा। **कोई** कहेगा, ऐसी गिरने की संभावना है, तो हम सम्यक्त्व का पुरुषार्थ ही नहीं करेंगे; उसे समझाते हैं कि एक बार सम्यक्त्व हुआ तो अल्पकाल में तू मुक्त होगा ही। किसको अल्पकाल कहा ? *श्रोता: अर्धपुद्गलपरावर्तन को।* अर्धपुद्गलपरावर्तन काल को। सबको इतना काल लगता है ऐसा जरूरी नहीं है। परंतु हमने अनादि से अनंतानंत पुद्गलपरावर्तन काल बिताया है, उसके सामने यह काल कुछ नहीं है। **अब तू चाहेगा तो भी अधिक काल संसार में भटक नहीं सकता।** हमें वॉर्निंग दे रहे कि सम्यक्त्व का पुरुषार्थ तभी करें, फिर संसार का मजा नहीं चखने को मिलेगा। तैयारी है ? **यदि** सम्यक्त्व प्राप्त होने पर किसीके मद हो जाये, अभिमान करने लगे तो पर्याय में अहंबुद्धि के कारण भ्रष्ट होकर वह मिथ्यात्व में आ जायेगा। उससे कहते हैं, पल्य के असंख्यातवें भाग बार जीव मिथ्यात्व से सम्यक्त्व में और सम्यक्त्व से मिथ्यात्व में जा सकता है, इसलिये अपने परिणामों की सम्हाल रखना, दृढ़ श्रद्धानी होना। उपदेश की भाषा में तो ऐसा ही कहेंगे।

हमने सम्यक्त्व के तीन प्रकार देखे थे। **सम्यक्त्व के तीन प्रकार हैं-** कौनसे ? **औपशमिक या उपशम सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक या क्षयोपशम या** उसीका दूसरा नाम क्या है ? **वेदक सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्व।** क्षयोपशम सम्यक्त्व को वेदक सम्यक्त्व क्यों कहते हैं ? निलेशभाई, क्यों कहते हैं ? *श्रोता: अंत समय में जब उसका क्षय की ओर जानेवाला होता है...* उसको कृतकृत्य वेदक कहते हैं। हमारा प्रश्न क्या है ? क्षयोपशम सम्यक्त्व को ही वेदक सम्यक्त्व क्यों कहते हैं ? *श्रोता: सम्यक् प्रकृति का उदय है उसका वेदक।* हां, देखो, जिस प्रकृति का उदय है उसका वेदक कहने की पद्धति है। जैसे क्रोध कर रहा है तो हम क्या कहेंगे ? यह क्रोध का वेदक है। ऐसे यहां क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि है, उसके दर्शनमोहनीय की कौनसी प्रकृति का उदय है ? *श्रोता: सम्यक् प्रकृति।* सम्यक् प्रकृति का।

सत्ता में मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व पड़े हैं। सम्यक् प्रकृति का उदय है तो उसका वेदक है कहेंगे। इसलिये उसीको वेदक सम्यग्दृष्टि कहेंगे। वहां हमने क्षयोपशम घटित करके देखा था। मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व जो सर्वघाति प्रकृतियां हैं उनका उदयाभावी क्षय है और सत्ता में वे पड़ी हैं उनका सदवस्थारूप उपशम है

और सम्यक् प्रकृति जो देशघाति है उसका उदय चल रहा है। तो वहां हमने क्षयोपशम सम्यक्त्व घटित करके देखा था। *श्रोता: एक सराग सम्यक्त्व भी बोलने की पद्धति है ?* वह अलग बात है। सराग सम्यक्त्व अलग है। अभी हम थोड़ा आगे बढ़ेंगे। इस प्रश्न की अधिक चर्चा चाहते हो तो लिखितरूप से देना।

देखो- दर्शनमोहनीय और अनंतानुबंधी कर्म के उपशम, क्षयोपशम और क्षय होने पर जीव में जो अवस्था पायी जाती है, उसे औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं। देखो, अवस्था जीव की है - जीव के कारण है, सामने कर्मों की अवस्था बतायी है। कर्म की अवस्था के कारण सम्यक्त्व के ये नाम दिये हुये हैं। कर्म के कारण सम्यक्त्व नहीं हुआ है। निमित्त की तरफ से कार्य को नाम देते हैं परंतु वह निमित्त का कार्य नहीं है। यह कार्य तो जीव का है। सम्यक्त्व जीव का परिणाम है। परंतु कर्मों की अवस्था देखकर उस सम्यक्त्व को अलग-अलग नाम देते हैं, यह कहना चाहते हैं। **उपशम के समय इन कर्मों के उदय का अभाव पाया जाता है।** उदय नहीं हो रहा है उसको यहां उपशम कहेंगे। **कर्म सत्ता में तो पड़े रहते हैं परंतु अंतर्मुहूर्त काल तक दबे रहते हैं, उदय में नहीं आते।** उनकी लिमिट कितनी है ? अंतर्मुहूर्त है। एक भव के लिये उपशमित हो जावें ऐसा नहीं होता है। औपशमिक सम्यक्त्व अंतर्मुहूर्त काल तक बना रहता है।

क्षयोपशम सम्यक्त्व में मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी चार इन छहों का उपशम रहता है यानी वे उदय में नहीं आ रहे। और सम्यक् प्रकृति का उदय रहता है जो देशघाति प्रकृति होने के कारण सम्यक्त्व का घात नहीं करती। हां, क्षयोपशम सम्यक्त्व अनेक भवों तक भी बना रह सकता है। **कोई सादि मिथ्यादृष्टि जीव पहले गुणस्थान में से यानी पहले से क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करके चौथे में जा सकता है।** कौन जा सकता है कहा ? *श्रोता: मिथ्यादृष्टि जीव।* खाली मिथ्यादृष्टि नहीं, सादि मिथ्यादृष्टि क्योंकि उसकी सत्ता में सम्यक् प्रकृति भी है, सम्यग्मिथ्यात्व भी है और मिथ्यात्व प्रकृति भी है। पहले गुणस्थान में मिथ्यात्व का उदय चल रहा था। अब अंतर्मुख परिणाम के द्वारा क्या हुआ ? *श्रोता: सम्यक् प्रकृति का उदय।* सम्यक् प्रकृति का उदय चालू हुआ। उसने सम्यक्त्व प्राप्त किया तो हम कर्मों की भाषा में बोलेंगे सम्यक् प्रकृति का उदय शुरू हुआ, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व सत्ता में दबे रहे तो वह चौथे में जा सकता है **या कोई उपशम सम्यक्त्वपूर्वक देखो**

क्या कहते हैं ? कोई मिथ्यादृष्टि था, उसने औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त किया। उपशम का काल कितना है ? अंतर्मुहूर्त का है। उसके बाद क्या हुआ ? वह गिरा नहीं, चौथे गुणस्थानवाला चौथे गुणस्थान में ही रहा। प्रथमोपशम में पहले तीनों में से किसीका उदय नहीं था। बाद में सम्यक् प्रकृति का उदय चालू हो गया तो औपशमिक में से क्षयोपशम सम्यक्त्व हो गया। यह उसका अर्थ होता है।

प्रथमोपशम और द्वितीयोपशम की चर्चा हमने बहुत बार की थी। अपना विषय प्रथमोपशम सम्यक्त्व का है। उसके लिये पात्रता क्या होती है ? हमने गाथा पढ़ी थी, इसमें जो बातें पात्रता के रूप में बतायी हैं उस पर चर्चा करते हैं। उसमें से उन्होंने जो एक-एक कंडिशन बतायी है उस पर हमें चर्चा करनी है। **मनुष्य, तिर्यच, देव और नारकी** - यहां देव कहते हैं वह स्वर्ग के देवों की बात है, क्योंकि अरिहंत-सिद्ध को भी हम देव कहते हैं वह बात अलग है। वे पूर्ण वीतरागी सर्वज्ञ भगवान हैं। यहां जब देव कहते हैं तो वे देवगति के जीव हैं - भवनवासी हो, व्यन्तर हो, ज्योतिषी हो, वैमानिक हो। तो कहते हैं कि मनुष्य, तिर्यच, देव और नारकी **इन चारों ही गतिवाले मिथ्यादृष्टि जीवों को**; क्योंकि हमने कंडिशन डाली थी, मिथ्यात्व में से जो उपशम करके सम्यक्त्व को प्राप्त करनेवाले हैं उन्हीं की बात है। इसलिये मिथ्यादृष्टि यह पात्रता है।

चारों ही गतिवाले मिथ्यादृष्टि जीवों को **प्रथमोपशम सम्यक्त्व हो सकता है परंतु** कंडिशन क्या है ? **भव्य जीवों को ही होगा, अभव्य जीवों को नहीं होगा।** यह भव्य और अभव्य कौनसे कर्मों के उदय में होगा ? यह हमारा प्रश्न है। *श्रोता: किसी कर्म के उदय में नहीं हैं, पारिणामिक भाव।* पारिणामिक भाव है। कर्म के उपशम में होनेवाले भाव को औपशमिक भाव कहते हैं। कर्म के क्षयोपशम के निमित्त जीव का जो भाव होता है उसको क्षायोपशमिक भाव कहते हैं। कर्म की क्षयरूप अवस्था है वहां जो भाव है उसको क्षायिकभाव कहते हैं। जहां कर्म की उदयरूप अवस्था है, जैसे मिथ्यात्व का वहां उदय है और यहां जीव मिथ्यात्व कर रहा है तो उसको औदयिक भाव में गिनेंगे। भव्य और अभव्य किस कर्म की कौनसी अवस्था से होता है ? उसको कहते हैं पारिणामिक भाव है। यानी कर्म की किसी भी अवस्था से उसका संबंध नहीं है। जीव की ऐसी ही पर्यायगत योग्यता है कि वह कभी भी सम्यक्त्व प्राप्त नहीं करेगा, कभी भी मोक्ष नहीं जायेगा। उसको अभव्यसिद्धिक कहते हैं। अभव्य यानी भव्य नहीं। भव्य का अर्थ क्या है ? होने योग्य। क्या होने योग्य ? सिद्ध होने योग्य; जो सिद्ध होने

योग्य नहीं है उसको अभव्य कहेंगे और जो होने योग्य है उसको भव्य कहेंगे। कोई भव्य ऐसे भी हैं- योग्यता है, पुरुषार्थ नहीं करेंगे तो नहीं पायेंगे। परंतु भव्य और अभव्य ये किसी कर्म के कारण नहीं होते। यह मुख्य बात ख्याल में लेना।

देखो, अभव्यों को सम्यक्त्व नहीं होता, भव्यों को ही होता है। **तुम कहोगी ऐसा अन्याय क्यों ? उनके कौनसे कर्म के कारण वे अभव्य हैं ?** तो कहते हैं इसका समाधान इसप्रकार है कि भव्यत्व और अभव्यत्व यानी भव्यपना और अभव्यपना किसी कर्म के कारण नहीं होता। उसे जीव का पारिणामिक भाव कहा है अर्थात् इसमें किसी कर्म की अपेक्षा नहीं होती। वैसी ही सहज योग्यता उन जीवों में अनादि की पायी जाती है। अभव्य जीव तीन काल में कभी सम्यक्त्व प्राप्त नहीं कर सकते हैं। उनके प्रायोग्यलब्धि तक चार लब्धि तो हो सकती हैं। देखो, चार लब्धि तक का पुरुषार्थ उनको भी हो सकता है परंतु **करणलब्धि नहीं होगी और सम्यक्त्व भी कभी नहीं होगा।** ऐसा सुनकर लोग घबरा जाते हैं। हमें प्रश्न भी पूछते हैं कि मैं भव्य हूं कि अभव्य हूं ? **भव्य जीवों में पात्रता तो होती है। श्रोता: तो उत्तर क्या देते हैं आप ?** उत्तर यहां लिखा है। देखो, पद्मनंदी आचार्य ने पंचनंदी पंचविंशतिका में लिखा है; क्या लिखा है ?

तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्ताऽपि हि श्रुता।

निश्चितं स भवेत् भव्य भावि निर्वाणभाजनम् ।।

आत्मा की बात भी जो जिज्ञासापूर्वक सुनता है वह तो भव्य है। मैं अभव्य हूं कि नहीं ऐसे डरने की कोई बात नहीं है। लोगों का पहला प्रश्न यह है कि मैं अभव्य हूं तो मैं यह सब क्यों करूं ? उससे पहले मैं संसार का सुख बराबर भोग लूं न ऐसा लगता है। **भव्य जीवों में पात्रता तो होती है।** पात्रता है इसलिये सम्यग्दृष्टि हो जायेगा ? तो **उनमें भी काललब्धि आने पर** देखो जो पांच समवाय हैं न, प्रत्येक कार्य में पांच समवाय होते ही हैं। कौनसे ? स्वभाव को हम त्रिकाली उपादान में लेंगे; पुरुषार्थ, काललब्धि, होनहार, निमित्त भी होगा। **उनमें भी काललब्धि आने पर भवितव्यतानुसार पुरुषार्थ से** बिना पुरुषार्थ से सम्यक्त्व नहीं होगा। हमारी काललब्धि आयी है तो चलो अभी आठ बजे सम्यक्त्व होना है न ? तो पहले टीव्ही सीरियल देख लेते हैं, फिर हमें आठ बजे सम्यग्दर्शन होना है - ऐसा नहीं होगा। तो कहते हैं भवितव्यतानुसार

पुरुषार्थपूर्वक, पुरुषार्थ से सम्यक्त्व प्राप्त होगा, उसमें देशनारूप निमित्त भी होगा। वह हम देशनालब्धि में देखने जा रहे हैं। जो अर्धपुद्गलपरावर्तन काल में मोक्ष जायेंगे उनके सर्वप्रथम सम्यक्त्व प्राप्ति की योग्यता होती है।

क्या कहना चाहते हैं ? एक नियम है जिस समय सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुयी उस समय से गिनना चालू करो। एक्झैक्ट अर्धपुद्गलपरावर्तन काल में वह जीव नियम से मोक्ष अवस्था प्राप्त करेगा। मोक्ष के पहले वह अरिहंत अवस्था प्राप्त करेगा, उसके पहले श्रेणी चढ़ेगा, उसके पहले मुनि होगा, उसके पहले सम्यग्दर्शन - यह सब कुछ होगा। कोई ऐसा भी जीव होगा न ? किसीने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया था, मुनि भी हुआ था, श्रेणी भी चढ़ी थी, परंतु अभी उसका मिथ्यात्व चल रहा है और अर्धपुद्गलपरावर्तन काल पूर्ण होने में अभी दस साल बाकी हैं। कहां पड़ा है ? निगोद में पड़ा है। अब उसका क्या होगा ? बादर निगोद में से निकलकर मनुष्य होकर केवलज्ञान होकर मोक्ष जा सकता है। श्रोता: सूक्ष्म में से ? सूक्ष्म में से निकलकर नहीं होता है। अभी वह बादर निगोद में पड़ा है ऐसा हम इमंजिन करते हैं; अभी कितना काल बाकी है ? श्रोता: दस साल। दस साल। अब निगोद में से उसको मनुष्यगति बांधनी है, मनुष्यायु बांधनी है। वज्रवृषभनाराचसंहनन बांधकर आयेगा, औदारिकशरीर, औदारिकअंगोपांग, पंचेन्द्रियजाति, सब शुभ प्रकृति बांधनी हैं। उसको क्या करना चाहिये बोलो ? श्रोता: कुछ नहीं करना चाहिये। अरे, कुछ नहीं करना।

भवितव्यतानुसार उसकी वैसी पर्याय होगी। उसके वैसे परिणाम भी होते हैं। उसमें भी मंद कषायरूप विशुद्धि होगी। वह मनुष्यायु बांधकर मनुष्य में उत्पन्न होगा। दस साल बाकी हैं न ? तो दस साल की आयु बांधकर उत्पन्न होगा। आठवें साल के बाद तो मुनि हो सकता है। यथायोग्य काल में श्रेणी भी चढ़ेगा, अरिहंत अवस्था भी पायेगा, मोक्ष चला जायेगा। तो उसको कितनी चिंता करनी पड़ेगी ? अभी मेरा क्या होगा ? दस साल में मोक्ष कैसा होगा ? यहां तो हम चिंता से ही व्यग्र रहते हैं- अभी मेरा क्या होगा ? हमें तो बिलकुल - पर्यायों की जो स्वतंत्रता है, जो सुनिश्चितता है जिसको हम क्रमबद्धपर्याय का सिद्धान्त कहते हैं - इन सारे सिद्धान्तों का हमें निर्णयपूर्वक स्वीकार करना है, यही पुरुषार्थ है। जो निमित्त-उपादान, पांच समवाय, क्रमबद्धपर्याय, निश्चय-व्यवहार आदि के सिद्धान्त हैं, गुरुदेवश्री के हर प्रवचन में इन सबकी चर्चा होती है, इन सिद्धान्तों को स्वीकार करके, उन पर विचार करके परीक्षा से अपनी बुद्धि से

निर्णय होना चाहिये। हमने सारे सिद्धान्त याद कर लिये, रट लिये, हमने फटाफट सुना भी दिये, उससे कुछ काम नहीं होनेवाला। यह हम देशनालब्धि के प्रकरण में क्रम से देखेंगे कि देशना क्या होती है और कौन-कौनसे विषय पर उसको गौर करना होगा।

जो पर्याय का सुनिश्चित क्रम है, उसको कोई बदल नहीं सकता। जिसका इतना काल बाकी है और वह कहे नहीं-नहीं मैं पहले करके दिखाऊंगा, मोक्ष प्राप्त करूंगा। आपको कोई मालूम है जिसने ऐसा करना ठान लिया था ? *श्रोता: मारीचि।* मारीचि। आदिनाथ भगवान के समवसरण में, अरे ! मुनि अवस्था धारण करके बैठे थे। कौन मारीचि ? *श्रोता: महावीर भगवान का जीव।* हां, महावीर भगवान का जीव जिसके पिता भरत चक्रवर्ती और दादा ? *श्रोता: आदिनाथ।* ऋषभदेव दादा थे और वहां बैठे थे समवसरण में। वहां निमित्त था कि नहीं था ? *श्रोता: था।* था ? निमित्त कब कहते हैं ? *श्रोता: जब कार्य हो।* कार्य हो। तो उनके लिये वह निमित्त था कि नहीं था ? *श्रोता: नहीं।* अरे, जिनके कार्य हो उनके निमित्त कहेंगे। कोई व्यक्ति निमित्त नहीं होता है। हमने सीमंधर भगवान को निमित्त बना दिया न ? सब वहां जाना चाहते हैं। निमित्त तब कहेंगे जब कार्य होता है, कार्य उपादान से होता है। उस समय जो कोई वहां अनुकूल लगता है उसको निमित्त कह देते हैं। पहले से निमित्त नक्की किया हो और फिर हमारा कार्य हो ऐसा कभी नहीं होगा। ना ही हमें निमित्त को ढूंढ़ने कहीं जाना है, ना किसीको बाहर निकाल देना है। हमें तो निर्णय तक पहुंचना है कि निमित्त भी सहज होते हैं।

यहां क्या कहते हैं ? **जिन्हें अधिक काल बाद मोक्ष जाना होगा या जिन्हें अनंतानंत काल पश्चात् भी मोक्ष नहीं होनेवाला ऐसे द्वरानुद्वर भव्यों को सम्यक्त्व नहीं होता।** अपना प्रश्न क्या था ? भगवान आदिनाथ की वाणी में क्या आया था ? कि यह मारीचि अंतिम तीर्थकर होनेवाला है। कितना काल बाकी था ? करीबन एक कोड़ाकोड़ी सागर; करीबन कहते हैं - थोड़ा कम होगा। तो इतना लंबा काल उन्होंने कहां-कहां बिताया होगा ? देखो, कितना काल कहा मैंने ? एक कोड़ाकोड़ी सागर यानी करोड़ गुणा करोड़। *श्रोता: सागर।* सागर और त्रस की स्थिति दो हजार सागर होती है। तो कितनी बार निगोदादि पर्यायों में, एकेन्द्रियों में घूमे होंगे। ख्याल में आती है न बात ? उन्होंने क्या सोचा ? अरे, मैं ऐसा हूं, मुनि अवस्था धारण कर बैठा हूं, मेरे दादा ऐसे हैं, मेरे पिताजी ऐसे हैं ! मैं दूसरा तीर्थकर होकर दिखाऊंगा। पहले दो तीर्थकरों में अंतर कितना था ? *श्रोता: पचास लाख करोड़ सागर।* एक कोड़ाकोड़ी सागर का आधा

- पचास लाख करोड़ सागर। दूसरा भी होते न तो भी उनको घूमना पड़ता। निगोदादि में तो जाना ही है न, इतना काल कहां बितायेंगे ? तो कोई - मैं करके दिखाऊंगा - कहने से नहीं होता है, यह कहना चाहते हैं।

जो कार्य जब होना है उसके पांचों ही समवाय सहजरूप से आ मिलते हैं। वहां कोई टेंशन ही नहीं है न। हमें तो टेंशन लेने की आदत है न ! हर एक जो स्वाध्यायी है टेंशन लेकर बैठा है - मुझे सम्यग्दर्शन कब होगा ? जब होना है तब होगा या चिंता करने से जल्दी होगा ? तो महात्म्य किसका आता है ? सम्यग्दर्शन का। स्वभाव की कभी महिमा नहीं आती। अरे, स्वभाव की महिमा आ जाये तो सम्यग्दर्शन हाथ जोड़कर सामने खड़ा हो जायेगा। परंतु हमें स्वभाव की महिमा तो आती नहीं है यानी मैं कौन हूं उसकी महिमा ही नहीं की है और हमें सम्यग्दर्शन तो चाहिये। है न ? आगे देखते हैं देखो- **हमने 'कारण कार्य रहस्य' पुस्तक में पांच समवायों की चर्चा की थी। सम्यक्त्व प्राप्ति में कोई भी कार्य हो तो यहां हमारे कौनसे कार्य की बात हो रही है ? सम्यक्त्व की। उसमें भी पांचों समवाय होंगे ही, मात्र काललब्धि आयी है इसलिये पुरुषार्थ बिना ही सम्यक्त्व प्रकट होगा यह बात संभव नहीं है।** निगोद में से दस वर्ष की आयु बांधकर आया है उसका मोक्ष बिना पुरुषार्थ के दस साल में होगा कि नहीं ? इतने लंबे काल से आया है तो उसको प्रथमोपशम सम्यक्त्व भी होगा। उसको देशना नहीं मिलती तो क्या होता ? अरे मिलेगी, क्यों नहीं मिलेगी ? अभी उसका मोक्ष सुनिश्चित है तो निमित्त कहां ढूंढ़ने जाना है उसको ? क्योंकि दस साल में मोक्ष होना है तो इतना छोटा बच्चा है तो उसको निमित्त मिलेगा कि नहीं मिलेगा ? उसने कहां से ढूंढा होगा ? यह चिंता छोड़ दो। यह कह रहे हैं।

तुम कहोगी कर्म को उपशमाने का पुरुषार्थ करके तो सम्यक्त्व तो होगा ना ? प्रश्न क्या है ? उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करना है तो कर्म को उपशमाने का पुरुषार्थ करेंगे कि नहीं करेंगे ? आप क्या कहते हैं ? *श्रोता: नहीं कर सकते हैं। देखो बेटी, जीव का पुरुषार्थ जीव में अपने स्वयं में होता है।* पुरुषार्थ पर्याय है कि द्रव्य है कि गुण है ? *श्रोता: पर्याय है।* पर्याय है। तो पर्याय कहां होती है ? *श्रोता: द्रव्य में।* द्रव्य में होती है कि द्रव्य के बाहर होती है ? *श्रोता: अपने द्रव्य।* अपने द्रव्य के संपूर्ण भागों में होगी, द्रव्य के बाहर नहीं होगी। तो जीव का पुरुषार्थ किसमें चलेगा ? *श्रोता: जीव में।* और कर्म का पुरुषार्थ ? *श्रोता: कर्म में।* तो कर्म में पुरुषार्थ होता होगा ? *श्रोता: नहीं..*

पता नहीं। कर्म में हमारा पुरुषार्थ नहीं होगा, उसका अपना होगा कि नहीं होगा ? क्योंकि कर्म की अवस्था में उसके पांच समवाय होंगे कि नहीं होंगे ? श्रोता: सभी द्रव्य में। सभी द्रव्य में होते हैं। कर्म की अवस्था उसके अपने से है और हमारी अवस्था हमारे अपने से होती है। कहते हैं कि जीव का पुरुषार्थ जीव में अपने स्वयं में होता है।

किसी भी द्रव्य की कोई भी पर्याय अन्य द्रव्य ला नहीं सकता, पलटा नहीं सकता, नष्ट भी नहीं कर सकता है। इस मूल सिद्धान्त को सही दृढ़ता से धारण किये बिना आगे सम्यक्त्व का कोई चान्स ही नहीं है। हमने ऐसा-ऐसा किया, हमने उपयोग को इधर से इधर लगाया, अरे, लग ही नहीं सकता है। ये सारी भ्रमणायें कायम रखकर सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं हो सकती है। **प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने के पहले तथा पश्चात् कर्मों में तथा नवीन होनेवाले कर्मबंध में अनेक स्थित्यंतर - अवस्थांतर होते हैं।** वे कर्म में उनके कारण होते हैं परंतु हम निमित्तरूप से कहेंगे कि जीव के यहां क्या परिणाम हो रहे हैं और वहां कर्मों में क्या बातें हो रही हैं। मिथ्यात्व अवस्था में क्या हो रहा था ? अब वह तत्त्वविचार के सन्मुख हुआ है और आगे बढ़ रहा है तो वहां कर्मों में क्या होता है ? वह सब बतायेंगे अभी।

कर्म की ये सब अवस्थायें कर्म में उनकी स्वयं की योग्यता से होती हैं। जीव केवल तत्त्वविचार और तत्त्वनिर्णय करता है यही पुरुषार्थ है। जीव को क्या करना है ? तत्त्वविचार पूर्वक तत्त्वनिर्णय। तत्त्वनिर्णय होते ही उसको सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। सबका काल एक ही है- आत्मानुभूति का काल है, उसी समय निर्णय हुआ कहेंगे, उसी समय उसने अरिहंत भगवान को सहीरूप से जाना है कहेंगे। उसी समय क्रमबद्धपर्याय का निर्णय हुआ कहेंगे, उसी समय उसने स्वभाव का अवलंबन लिया - सब कथन जुदा-जुदा होगा, बात एक ही होगी। उसको उस समय आत्मा का अनुभव हुआ। अनुभव हुआ वही सम्यग्दर्शन का समय है। अनुभव कौनसे गुण की पर्याय है ? श्रोता: ज्ञानगुण की पर्याय। अनुभव किसका हुआ ? अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव हुआ। किसने जाना ? ज्ञानगुण की पर्याय ने। अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव हुआ। ज्ञान ने यह सब जान लिया तो सम्यग्दर्शन हुआ।

सम्यग्दर्शन की पर्याय कैसे ख्याल में आयी ? श्रोता: ज्ञान ने जाना। ज्ञान ने जाना सम्यग्दर्शन हुआ; कैसे जाना ? ज्ञान ने अनुभव किया; किसका ? अतीन्द्रिय आनंद का।

तो सम्यग्दर्शन हुआ ये कैसे पता चला ? श्रोता: अतीन्द्रिय आनंद हुआ न। आनंद हुआ। कौनसी पर्याय में आया ? ज्ञान की पर्याय में और सम्यग्दर्शन उसी समय में हुआ। तो हमने निश्चित कैसे किया ? ज्ञान की पर्याय के द्वारा सम्यग्दर्शन की पर्याय का निर्णय हुआ। उसको क्या कहते हैं अश्विनभाई, याद है ? श्रोता: अनात्मभूत लक्षण। अनात्मभूत लक्षण। यह कौनसा भूत है नहीं समझें ? सम्यग्दर्शन की पर्याय इटसेल्फ ख्याल में नहीं आयेगी क्योंकि छद्मस्थ है। यह वीर्य की पर्याय है या अमुक गुण की पर्याय है, वह हम आगम से जान सकते हैं। परंतु सम्यग्दर्शन हुआ है वह कैसे पता चला ? अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव हुआ यह ज्ञान की पर्याय है। उसी समय सम्यग्दर्शन होता है। इसलिये ज्ञान की पर्याय द्वारा हमने सम्यग्दर्शन का निर्णय किया। इसको क्या कहेंगे ? वह सम्यग्दर्शन का कैसा लक्षण है ? श्रोता: अनात्मभूत। अनात्मभूत। अन्य गुण की पर्याय से हमने अन्य गुण की पर्याय का निर्णय कर दिया।

अनात्मभूत लक्षण की बात पंचाध्यायी में आती है। अष्टपाहुड़ में भी ऐसा आया है। हम इ. स. २०१६ में दसलक्षण पर्व में पूना में गये थे तो वहां सभा में किसीने ऐसा पूछा। वहां लिखा था- सम्यग्दर्शन की पर्याय छद्मस्थ के ज्ञान में नहीं आती। वह केवलज्ञान का विषय है। इसलिये लोग क्या मानते हैं ? अपने को सम्यग्दर्शन हुआ वह केवली को समझ में आता है अपने को नहीं - परंतु ऐसा नहीं है। अपने को पता चलता है। परंतु कैसे पता चलेगा ? हमें ज्ञानगुण की पर्याय के द्वारा सम्यग्दर्शन का पता चलता है और वह हमारे ज्ञान में आता है। हमें सम्यग्दर्शन हो जाये और केवली जाने, हम कुछ नहीं जाने, ऐसा नहीं होगा। हमें बिलकुल आगम के आधार से चलना है।

तत्त्वविचार करते हुये, कर्म के उपशमादि स्वयं हो जाते हैं, क्या कहा ? जीव ने क्या किया ? तत्त्वविचार। कर्म में अवस्थाएँ अपने आप पलटी। **जीव को कर्म में कुछ करना नहीं पड़ता, वह कुछ कर ही नहीं सकता।** पहले में पहले यह नक्की करना है। कर्मों में क्या-क्या बातें होती है वे सब हम विस्तार से देखनेवाले हैं। उसके पहले पात्रता का एक-एक शब्द लेकर हम विचार करेंगे। अभी यहीं रुकते हैं।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

९. प्रथमोपशम सम्यक्त्व की पात्रता - विशेष चर्चा

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है और उसीके आधार से प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन होने से पूर्व पांच लब्धि होती हैं उनकी हम चर्चा करने जा रहे हैं। हमने इसके लिये कार्यकारी है ऐसे कर्मों के नाम और उनकी कुछ अवस्थाओं की चर्चा की है। उनकी विशेष अवस्था का जहां-जहां वर्णन आयेगा तब-तब फिर उसकी हम चर्चा करेंगे।

अभी हमारा पंचलब्धि संबंधी विषय शुरू हुआ है। पहले में पहले प्रश्न था कि प्रथमोपशम सम्यक्त्व किसको हो सकता है यानी उस जीव की पात्रता क्या है ? उसके पहले हम प्रश्न लेकर आगे बढ़ते हैं। *प्रश्न: उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक इन तीन सम्यग्दृष्टियों को आत्मानुभूति एक जैसी होती है अथवा कौलिटि में अंतर पड़ता है ?* क्या अंतर पड़ता है ? अरे, मैं आत्मा हूं उसमें तो मैंपना आ गया - चौथे गुणस्थानवाला हो, मुनि हो या सिद्ध हो। हां, अंतर कहां पड़ेगा ? गुणस्थानों में अंतर कहां पड़ेगा ? आनंद में। आनंद की कौलिटि में, कौलिटि में नहीं। आत्मानुभूति तो हो गयी है। अब वहां कर्मों की अलग-अलग अवस्थायें हैं। औपशमिक और क्षायिक को निर्मल कहा है, क्षायोपशमिक में सम्यक् प्रकृति का उदय है तो वहां केवलीगम्य कुछ सूक्ष्म दोष लगते हैं। ऐसे हम नहीं कह सकते कि यह दोष है। आत्मानुभूति में कोई अंतर नहीं है।

प्रश्न: क्षयोपशम ज्ञान में लब्धि और उपयोग दो भेद पाये जाते हैं तो कृपया उपयोग के संदर्भ में दुबारा समझाइये। देखो, क्षयोपशम ज्ञान की पर्याय है वह लब्धि और उपयोग मिलकर पूरी पर्याय होती है और केवलज्ञान में क्या होता है ? *श्रोता: उपयोग और लब्धि।* वह उपयोग स्वरूप है। उसमें लब्धि, उपयोग ऐसे दो भेद नहीं हैं। उसका अर्थ क्या होता है ? उपयोग यानी हमारा अभी ज्ञान का व्यापार कुछ जानने में चल रहा है उसको उपयोग कहते हैं और लब्धि यानी कितना क्षयोपशम चल रहा है ? ज्ञान का उछाड़ कितना है ? उसको कहेंगे लब्धि। हम आप संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव हैं। संज्ञी यानी मनवाले हैं और पांचों इन्द्रियों के द्वारा जानने संबंधी हमारा ज्ञान का उछाड़ है। परंतु अभी हम क्या कर रहे हैं ? हमारा उपयोग सुनने में है। शास्त्र सुनने के प्रति हमारा उपयोग चल रहा है। इसको ज्ञान का व्यापार कहते हैं। उपयोग यानी व्यापार। उपयोग यानी क्या यूँज हो रहा है उसको उपयोग नहीं कहते हैं। ज्ञान का उपयोग का

अर्थ है ज्ञान का व्यापार। किसमें चल रहा है ? अभी सुनने में उपयोग लगा है, देखने में लगा है। इसतरह से एक-एक इन्द्रिय के प्रति अलग-अलग लगता है उसको उपयोग कहते हैं। तो उपयोग और लब्धि दोनों मिलकर ज्ञान की पूरी पर्याय कहलाती है।

प्रश्न: भरत चक्रवर्ती के निन्यानवें पुत्रों को एक साथ मोक्ष मिला। क्या यह बराबर है ? श्रोता: क्या लिखा है ? भरत चक्रवर्ती के निन्यानवें पुत्रों को एक साथ मोक्ष मिला। *श्रोता: नौ सौ तेईस।* नौ सौ तेईस की बात आती है जो निगोद से निकले थे। उसके बाद उन्होंने इंद्रगोप की एक द्वीन्द्रिय पर्याय प्राप्त की थी और बाद में भरत चक्रवर्ती के पुत्र होकर जन्मे। एक साथ मोक्ष गये तो नहीं कह सकते, छह महीने आठ समय में छह सौ आठ ही जीव मोक्ष जाते हैं। एक साथ यानी उस भव में उनको मोक्ष मिला। आगे प्रश्न: *तो उन्होंने निगोद में कौनसे कर्म बांधे होंगे ? श्रोता: यथायोग्य।* निगोद में यथायोग्य क्योंकि हर अंतर्मुहूर्त में तिर्य्यगति, मनुष्यगति, एकेन्द्रियजाति आदि सभी प्रकृतियां बंधती हैं। केवल नरकगति और देवगति संबंधी प्रकृतियां नहीं बंधती हैं। नरकगति, देवगति, नरकगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी, नरकायु, देवायु, वैक्रियिकशरीर वैक्रियिकअंगोपांग का बंध नहीं होगा, बाकी यथायोग्य प्रकृतियां बांध सकते हैं। जब आयु बांधी थी, पहले तो तिर्य्यचायु के साथ द्वीन्द्रियजाति बांधकर द्वीन्द्रिय में उत्पन्न हुये। फिर द्वीन्द्रिय की पर्याय में मनुष्यायु, मनुष्यगति वगैरह बांधकर मनुष्य में उत्पन्न हुये।

प्रश्न क्या है ? वे कर्म क्या एक साथ बांधे थे ? कोई भी दो जीव मिलकर एक साथ कर्म नहीं बांधते हैं। वैसे कहेंगे तो सारे अनंत जीव एक साथ बांध ही रहे हैं। हम आप सब एक साथ अपने-अपने कर्म बांध रहे हैं क्योंकि प्रत्येक समय में बांध रहे हैं। प्रत्येक समय में बांध रहे हैं तो हम कहेंगे एक साथ बांध रहे हैं। परंतु एक साथ यानी मिलकर कर्म बांध रहे हैं ऐसा उसका अर्थ नहीं होता है। जैसे निगोद पर्याय के अनंत जीव एक शरीर में एक साथ रहते हैं वैसे सब मिलकर कर्म बांधते होंगे ऐसा नहीं है। हर एक का अपना-अपना परिणाम जुदा-जुदा है। लोगों का क्या प्रश्न है कि वहां शुभभाव कैसे करते होंगे ? किसीको ऐसा प्रश्न नहीं वहां अशुभभाव कैसे करते होंगे क्योंकि हम शुभभाव किसी क्रिया में मानते हैं; सोच समझकर, पुरुषार्थ करके शुभभाव करते हैं ऐसी हमारी मान्यता है। इसलिये ऐसे प्रश्न उठते हैं और भले ही प्रश्न उठे कोई बात नहीं है। पूछो, कोई बात नहीं है। परंतु यह सुनिश्चित करना है कि प्रत्येक द्रव्य का कार्य अपने में अपने से हो रहा है। ख्याल में आयी बात ?

प्रश्न: मनुष्य में गर्भ सहित आठ वर्ष पूर्ण होने पर सम्यक्त्व प्राप्ति की पात्रता होती है, उसके पहले नहीं। जबकि सिद्धान्त है कि संज्ञी पंचेन्द्रिय को सम्यक्त्व की पात्रता होती है। इसका क्या कारण है ? अरे, मनुष्य में आठ वर्ष की बात है। संज्ञी पंचेन्द्रिय कहने से संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच हैं, देव और नारकी तो संज्ञी पंचेन्द्रिय ही हैं, मनुष्य भी संज्ञी पंचेन्द्रिय ही हैं। तो इसमें डिफरन्स तो कुछ है ही नहीं। अभी प्रश्न बाकी है, जबकि गर्भज तिर्यचों में संज्ञी में जन्म के पश्चात् तत्काल सम्यक्त्व की पात्रता होती है ? नहीं, उनके भी जन्म के बाद यथायोग्य पृथक्त्वमास के बाद सम्यक्त्व हो सकता है। कोई जन्मते ही सम्यक्त्व प्राप्त नहीं कर सकता। हां, जो सम्मूर्च्छन संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच हैं वे अंतर्मुहूर्त में सम्यक्त्व प्राप्त कर सकते हैं परंतु वे प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त नहीं कर सकते। परंतु उनके क्षयोपशम सम्यक्त्व हो सकता है। अब ये सम्मूर्च्छन क्या है उसकी बात आयेगी जब अपना विषय चलेगा तब देखेंगे।

प्रश्न: इस पंचमकाल में किसी जीव को अवधिज्ञान हो सकता है ? बिलकुल हो सकता है। अवधिज्ञान तो सुअवधि को कहते हैं। सम्यग्दृष्टि को जो अवधिज्ञान होगा उसको अवधिज्ञान कहेंगे। मिथ्यादृष्टि को कुअवधि होता है उसको विभंगज्ञान कहते हैं, वह भी हो सकता है। मनुष्य की क्या बात है ? असंख्यात तिर्यचों को भी पाया जाता है। **श्रोता:** नारकी, देव को होता ही है। नारकी, देव के उस भव में नियम से होता है - सम्यग्दृष्टि हो या मिथ्यादृष्टि हो। **प्रश्न:** सराग सम्यक्त्व किसे कहते हैं ? सम्यक्त्व सराग नहीं होता परंतु जिस सम्यक्त्व के साथ रागधारा भी चल रही है न, उसको सराग कहेंगे। परंतु सम्यक्त्व में कोई राग की बात नहीं है। सम्यक्त्व तो श्रद्धागुण की पर्याय है और राग कौनसे गुण की पर्याय है ? **श्रोता:** चारित्रगुण की। चारित्रगुण की। जहां उसके साथ रागभाव भी विद्यमान है उसको सराग सम्यक्त्व कह देंगे।

प्रश्न: नरकगति, तिर्यचगति दोनों अप्रशस्त प्रकृति हैं लेकिन आयु में एक नरकायु ही अप्रशस्त है और तीन प्रशस्त हैं यानी तिर्यचगति अप्रशस्त है परंतु तिर्यचायु प्रशस्त है। मतलब एक गति अप्रशस्त है लेकिन उसकी आयु प्रशस्त है, समझाये ? यही समझना है और कुछ नहीं समझना है ? ये जो तीन आयु हैं न, वे तो मंद परिणाम में लंबी बंधती हैं और तीव्र परिणाम में कम बंधती हैं। जैसे तीव्र कषाय में मनुष्यायु बांधी तो छोटी आयु बांधेगे और मंद कषाय में लंबी। हम देखते हैं न यहां कोई सौ, एक सौ पांच साल की आयुवाले होते हैं तो उन्होंने वह आयु बांधी थी तब मंद कषाय में

बांधी थी। कोई अंतर्मुहूर्त की मनुष्यायु बांधकर भी आ सकता है; गर्भ धारण हो गया और बस अंतर्मुहूर्त के अंदर, दो-पांच मिनट में मर गया ऐसा भी हो सकता है। आयु कौनसे परिणाम में बंधती है उसके ऊपर है। तिर्यचायु और देवायु के बारे में भी यही है। ये तीन शुभ प्रकृतियां हैं। मंद कषाय में इनकी स्थिति अधिक बंधती है।

तिर्यचगति के बारे में क्या होगा ? तिर्यचगति की उत्कृष्ट स्थिति कितनी हो सकती है, अश्विनभाई ? श्रोता: *तीन पल्य*। तिर्यचगति की मैंने पूछा, तिर्यचायु की नहीं। गति नामकर्म उत्कृष्ट... श्रोता: *बीस कोड़ाकोड़ी सागर*। बीस कोड़ाकोड़ी सागर। वह संक्लेश से बंधेगी कि विशुद्धि से ? तीव्र कषाय से बंधेगी कि मंद कषाय से बंधेगी ? श्रोता: *मंद कषाय*। तिर्यचगति की ? श्रोता: *तीव्र कषाय*। तीव्र कषाय। समझ में आयी न बात ? यानी यह गति नामकर्म जुदी बात है, आयु कर्म जुदी बात है। तिर्यच, मनुष्य और देवपर्याय में ऐसा होता है कि जीव आयु चाहता है, वहां से छूटना नहीं चाहता। जबकि नरक से निकलना चाहता है। अपनी चाह के अनुसार कोई जन्म-मरण नहीं होते हैं। श्रोता: *तिर्यच में पंचम गुणस्थान प्राप्त कर सकता है*। हां, तिर्यच तो उस आयु में पंचम गुणस्थान भी प्राप्त कर सकते हैं। अभी हम आगे बढ़ेंगे।

हम पात्रता की बात आगे बढ़ाते हैं। एक-एक पॉइंट पर हम गौर से विचार करेंगे। पहला पॉइंट कौनसा देखा था ? चारों ही गति में सम्यग्दर्शन की पात्रता है। देव हो, नारकी हो, देखो नारकी तीव्र पाप करके नरक में गये हैं और नरक में जन्म लिया तो मिथ्यात्व के साथ ही जन्म लिया है। हां, कोई ऐसे हो सकते हैं कि जिन्होंने पहले नरकायु बांधी, बाद में परिणाम पलट गये, बाद में सम्यग्दर्शन हुआ। ऐसा कोई मालूम है आपको ? श्रोता: *श्रेणिक राजा*। श्रेणिक राजा और उन्होंने क्षायिक किया तो वे सम्यक्त्व लेकर पहले नरक में गये। अगर कोई जीव क्षायिक नहीं करते, कोई ऐसे भी हैं न कि जिन्होंने पहले नरकायु बांधी है बाद में सम्यग्दर्शन प्राप्त किया है परंतु उनके क्षायिक नहीं हुआ। श्रोता: *श्री कृष्ण*। क्षायिक नहीं हुआ तो क्या होगा ? श्रोता: *छूट जायेगा*। सम्यक्त्व छूट जायेगा तो मिथ्यात्व अवस्था में नरक में चले जायेंगे। हम केवल सम्यक्त्व की बात कर रहे हैं, तीर्थंकर प्रकृति बांधनेवाले की बात नहीं कर रहे हैं।

फिर से सुनना- किसी मनुष्य ने जो कोई मनुष्यायु, तिर्यचायु और नरकायु बांधी है, वह उसने मिथ्यात्व में बांधी। किसी मनुष्य ने मनुष्यायु बांधी, मनुष्य सम्यग्दृष्टि हो तो

देवायु ही बांधेगा। मिथ्यादृष्टि मनुष्य चारों ही आयु बांध सकता है। देवायु की बात हम छोड़ देते हैं। किसी मिथ्यादृष्टि ने मनुष्यायु बांधी या तिर्यचायु बांधी या नरकायु बांधी। जिसको हम कहेंगे बद्धायु है, वह सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है कि नहीं ? कर सकता है। वह सम्यक्त्व के साथ परभव में जायेगा कि नहीं जायेगा ? किसी मनुष्य ने मिथ्यात्व में मनुष्यायु बांधी, अब उसने सम्यक्त्व प्राप्त किया, अब वह सम्यक्त्व के साथ मनुष्य में उत्पन्न होगा कि नहीं होगा ? *श्रोता: होगा।* होगा परंतु उसके लिये कंडिशन क्या है ? *श्रोता: क्षायिक करेगा तो।* क्षायिक करेगा तो ही। क्षायिक करके वह भोगभूमि में उत्पन्न होगा। अगर क्षायिक नहीं करेगा तो ? *श्रोता: मिथ्यात्व में चला जायेगा।* मिथ्यात्व में चला जायेगा। मिथ्यात्व सहित वह जितनी आयु जहां की बांधी वहां चला जायेगा। ऐसे ही तिर्यचायु और नरकायु के बारे में है। तो आयु अलग बात है और गति अलग बात है।

मिथ्यादृष्टि जीव हर अंतर्मुहूर्त में पलट-पलटकर चारों ही गति का बंध नियम से करता है। गति तो बंधी पड़ी है उससे कोई मतलब नहीं है। सम्यक्त्व होने पर मनुष्य, तिर्यच देवगति ही बांधेंगे। गति हर समय बंधती है। परंतु मिथ्यादृष्टि के किसी एक गति संबंधी का बंध अंतर्मुहूर्त तक चलेगा। फिर अन्य गति बांधेगा, फिर अन्य गति बांधेगा, लौटकर फिर दुबारा नरकगति भी बांधेगा। इसतरह उसकी बात चलती है। *श्रोता: ये गति में भाव से कोई संबंध नहीं है क्या ? भाव कोई भी हो तो भी क्रम से गति बांधेगा ?* किसी भी भाव के साथ किसी भी गति का बंध नहीं होता। भाव पलटेंगे तभी अलग गति का बंध भी पलटेगा। एक ही भाव से अन्य-अन्य गतियां कैसे बंधेंगी ? यह तो साधारण बात है न ? भावों में पलटना होता है तो गति भी अलग-अलग बंधती रहती है। परंतु यह नियम से, हम बंध की अपेक्षा बात करेंगे तो वे भावों को ही तो बता रहे हैं। नरकगति बांधने के योग्य परिणाम हो रहे हैं तभी तो नरकगति बंध रही है। तिर्यचगति बांधने योग्य परिणाम हो रहे हैं तो तिर्यचगति बंध रही है। अलग-अलग गति बंध रही है, यह क्या सूचित कर रही है ? जीव के परिणामों को सूचित कर रही है।

हम क्या देख रहे थे ? गति हर समय बंधती है। किसी विशिष्ट गति का बंध हो रहा है। गति नामकर्म का भेद है, वह अंतर्मुहूर्त तक बंधती रहेगी। भाव तो पलटते ही रहते हैं और अन्य-अन्य गति बंधती रहती है। यहां कौनसे गतिवाला जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है उसकी चर्चा चल रही है। चारों ही गति के मिथ्यादृष्टि जीवों की बात चल रही है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करना है तो नारकी भी जन्म से

मिथ्यात्व अवस्था में जन्मे हैं। हां, नारकियों में कोई सादि मिथ्यादृष्टि और कोई अनादि मिथ्यादृष्टि होंगे कि नहीं होंगे ? *श्रोता: होंगे।* होंगे न, कोई जीव यहां सम्यक्त्व तो प्राप्त करता है, फिर गिर जाता है और मिथ्यात्व में नरकायु बांधकर नरक में चला जाता है। हो सकता है वहां कोई सादि मिथ्यादृष्टि भी है, कोई अनादि है परंतु हम उनको मिथ्यादृष्टि ही कहेंगे। वह मिथ्यादृष्टि जीव ही प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर सकते हैं।

प्रत्येक नरक में एक समय में प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करनेवाले भी असंख्यात जीव हो सकते हैं। कितने असंख्यात होते हैं अश्विनभाई ? *श्रोता: आवली के असंख्यातवें भाग।* आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण। देखो सातवें नरक में इतनी प्रतिकूलता है, फिर भी वहां इतने जीव एक समय में सम्यक्त्व प्राप्त कर सकते हैं। यह मैक्सिमम पॉसिबिलिटी की बात चल रही है। उसके सम्यक्त्व प्राप्ति में कोई संयोग बाधक नहीं है यह कहना चाहते हैं। देवों में इतनी अनुकूलता है तो वह बाधक है कि साधक है ? *श्रोता: बाधक है।* नहीं, संयोग कोई बाधक या साधक नहीं होते हैं। संयोग अच्छे हैं तो जल्दी सम्यक्त्व प्राप्त कर सकेंगे, प्रतिकूल हैं तो बाधा है ऐसा बिलकुल नहीं है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व की बात है न, उसकी कंडिशनस हम देखेंगे।

अभी आगे देखते हैं। हमने चारों गतिवाला देख लिया। दूसरी बात क्या होनी चाहिये ? भव्य। उसकी हमने चर्चा की थी कि भव्यत्व या अभव्यत्व है वह पारिणामिक भाव है। यह पारिणामिक भाव यानी जीव की सहज वैसी ही पर्यायगत योग्यता है। जिसमें योग्यता तो है परंतु उस जीव ने कभी पुरुषार्थ नहीं किया, उसकी काललब्धि नहीं आयी, इसतरह हम पांचों समवाय उसमें जोड़ सकते हैं, तो उस जीव को सम्यक्त्व नहीं होगा क्योंकि अगर भव्य को नियम से सम्यक्त्व होगा ऐसा मानेंगे तो सारे भव्य एक दिन मोक्ष चले जायेंगे, अकेले अभव्य रहेंगे न ? ऐसा नहीं होता है। तो भव्य होना चाहिये। भव्य को ही सम्यक्त्व होगा, अभव्य को बिलकुल नहीं होगा।

देखो आगे पृष्ठ ६१ निकालना- हमने पढ़ा भी था कि कर्म को उपशमाने का पुरुषार्थ करेंगे कि नहीं करेंगे हम ? *श्रोता: हम कर ही नहीं सकते।* जीव का पुरुषार्थ जीव में चलता है, कर्म में उसका कोई पुरुषार्थ चलता नहीं है। कर्म की अवस्थाओं का वह ज्ञान कर सकता है और कर्म की थिअरी पढ़ने का पुरुषार्थ से कोई संबंध नहीं है। यह कर्म का ज्ञान है और उससे निश्चित हो जाता है कि तत्त्वविचार के काल में ये बातें

सहजरूप से होती ही हैं। कर्म की अवस्थाएँ और जीव के परिणाम इनकी बात हम जब विस्तार से जानते हैं तो यह क्लोरिटी बिलकुल बढ़ती है, हमें स्पष्टता हो जाती है, उस संबंध में हमारे कोई कन्फ्यूजन नहीं रहता है। हम बिलकुल निःशंकित हो जाते हैं।

अब नीचे का पैराग्राफ- **इसतरह हमने देखा कि चारों गतिवाले भव्य, आगे कौनसी कंडिशन थी ? मिथ्यादृष्टि क्योंकि मिथ्यात्व में से कर्मों का उपशम करके उसने सम्यक्त्व प्राप्त किया इसलिये उसको प्रथमोपशम सम्यक्त्व कहते हैं। इसलिये मिथ्यादृष्टि होना चाहिये यह कंडिशन डाली। मिथ्यादृष्टि को प्रथमोपशम सम्यक्त्व होगा। जरा गौर करना, हमने मिथ्यादृष्टि को कहा सम्यग्दृष्टि को नहीं। क्योंकि क्षयोपशम सम्यक्त्व उपशम सम्यग्दृष्टि को होता है अर्थात् प्रथमोपशम सम्यक्त्वपूर्वक क्षयोपशम सम्यक्त्व होता है और क्षयोपशम सम्यक्त्वपूर्वक क्षायिक सम्यक्त्व होता है।** किसीको औपशमिक सम्यक्त्व हुआ। उसका अंतर्मुहूर्त काल पूरा हुआ तो जरूरी नहीं कि वह नीचे के गुणस्थान में आये। उसका सम्यक्त्व बना रहे तो उसका कौनसा सम्यक्त्व होगा ? क्षयोपशम सम्यक्त्व होगा। जो क्षायिक करता है - जो अनंतानुबंधी और दर्शनमोहनीय कर्मों की क्षपणा कर देता है, सत्ता में से नष्ट करता है वह पहले कौनसा सम्यग्दृष्टि होना चाहिये ? क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि। क्षयोपशम में से क्षायिक का प्रोसेस होगा। **द्वितीयोपशम सम्यक्त्व भी क्षयोपशम सम्यक्त्वपूर्वक होता है।** छठे-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले मुनिराज के जब पुरुषार्थ बढ़ता है, अंतरंग में स्थिरता बढ़कर उपशमश्रेणी के सन्मुख होते हैं और वे क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि हैं तो सबसे पहले क्या होता है ? क्षयोपशम सम्यक्त्व में से द्वितीयोपशम सम्यक्त्व हो जाता है, फिर उपशमश्रेणी के लिये तीन करण परिणाम होते हैं।

इसलिये प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्रकट करने का कार्य मिथ्यादृष्टि जीव ही करेगा। उन्होंने जो एक-एक शब्द डाला है उसका कारण क्या है वह हमें देखना है। क्योंकि मिथ्यादृष्टि को होता है कहने से हमें हंसी आती है, है न ? **चारों गतिवाले जीवों में संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों को ही प्रथमोपशम सम्यक्त्व होगा, असंज्ञी जीवों को नहीं और अपर्याप्तों को भी नहीं।** असंज्ञी जीव कौनसी गति में होते हैं ? *श्रोताः तिर्यचगति में।* तिर्यचगति में। असंज्ञी यानी मन रहित। आप क्या कहते हैं ? देव में होते हैं ? *श्रोताः नहीं, तिर्यच में ही।* तिर्यच में ही इतनी व्हरायटी है। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय इन सभी पर्यायों को मिलकर असंज्ञी जीव कहेंगे।

अकेले असंज्ञी पंचेन्द्रिय कहेंगे तो पंचेन्द्रिय का असंज्ञीवाला भेद हो जाता है। असंज्ञी को नहीं होता है ऐसा कहेंगे, ये सारे ही मन रहित जीव असंज्ञी में आ गये।

देखो मन रहित जीवों की उस पर्याय में सम्यक्त्व की पात्रता नहीं है। वे जीव मरकर संज्ञी पंचेन्द्रिय हो जावे तो उस पर्याय में उनको सम्यग्दर्शन हो सकता है। ख्याल में आयी बात ? जो सम्यक्त्व सहित जीव हैं वे मरकर इन पर्यायों में कभी उत्पन्न नहीं होंगे। वे नियम से पंचेन्द्रिय में ही उत्पन्न होंगे। कौनसी पर्यायवाले जीव कौनसे कर्म बांधते हैं, कहां उत्पन्न होते हैं उसके सारे नियम हैं। देखो, संज्ञी पंचेन्द्रिय जैसे नारकी, देव और मनुष्य तो नियम से संज्ञी पंचेन्द्रिय ही होते हैं। तिर्यचों में इतनी व्हरायटी है। उनमें से सम्यक्त्व की पात्रता किसकी है ? संज्ञी पंचेन्द्रिय की। संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच जो पर्याप्त हैं, वे गर्भज भी हो सकते हैं और सम्मूर्च्छन भी हो सकते हैं। उसकी चर्चा अभी आयेगी। देखो, **पर्याप्त और अपर्याप्त की चर्चा हमने 'करणानुयोग परिचय' में, यह पुस्तक का नाम है, विस्तार से की थी।**

हमने देखा है कोई भी जीव मरकर अन्य पर्याय में चला जाता है तो सबसे पहले उसकी पर्याप्ति की शुरुआत होती है। पर्याप्त नामकर्मवाला जीव है या अपर्याप्त नामकर्मवाला जीव है, शरीर धारण करने के पहले समय से उसकी पर्याप्ति की शुरुआत हो जाती है और क्रम से एक-एक पर्याप्ति को पूर्ण करता है। पर्याप्त जीव है वह पूर्ण करेगा। अपर्याप्त नामकर्मवाला जीव सभी पर्याप्ति की शुरुआत तो करेगा परंतु एक भी पर्याप्ति पूरी होने से पहले ही वह मर जायेगा। उसकी आयु छोटी होती है उनको लब्धिअपर्याप्त जीव कहेंगे। पर्याप्त नामकर्मवाला अपनी-अपनी जितनी पर्याप्ति हैं उन्हें पूर्ण करता है। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के कितनी पर्याप्ति होती हैं ? *श्रोता: छह।* हां, छह पर्याप्ति। नाम याद है ? *श्रोता: आहारपर्याप्ति।* आहारपर्याप्ति। *श्रोता: शरीरपर्याप्ति।* शरीरपर्याप्ति। *श्रोता: इन्द्रियपर्याप्ति।* इन्द्रियपर्याप्ति। *श्रोता: श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति।* श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति। *श्रोता: भाषापर्याप्ति।* भाषापर्याप्ति। *श्रोता: मन:पर्याप्ति।* मन:पर्याप्ति। ये छह पर्याप्ति पूरी होती हैं। ये पूरी होने पर और एक अंतर्मुहूर्त चला जायेगा क्योंकि विशुद्धि बढ़ने के बाद में उसको सम्यक्त्व हो सकता है। यथायोग्य अंतर्मुहूर्त में होता है। सम्मूर्च्छन में अंतर्मुहूर्त में या देव, नारकी में भी अंतर्मुहूर्त में सम्यक्त्व प्राप्त हो सकता है।

मनुष्य और तिर्यच में कंडिशन क्या है ? गर्भज होना चाहिये। उनको अंतर्मुहूर्त में सम्यक्त्व की योग्यता-पात्रता नहीं है यह बात बता रहे हैं। फिर से- जिसकी पर्याप्ति पूर्ण होती है उसे पर्याप्त जीव कहते हैं। उसके पर्याप्त नामकर्म का उदय पाया जाता है। जिसकी एक भी पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती उसके पूर्व ही श्वास के अठारहवें भाग में जीव मरण को प्राप्त होता है उसकी आयु कितनी है ? श्वास के अठारहवें भाग प्रमाण। उसे अपर्याप्त कहते हैं। उसको लब्धिअपर्याप्त कहते हैं। उसके अपर्याप्त नामकर्म का उदय पाया जाता है। उसको लब्धिअपर्याप्त और उसका जोड़ाक्षर बनायेंगे तो लब्ध्यपर्याप्त कहते हैं अथवा क्षुद्रभववाले जीव कहते हैं। पर्याप्त जीवों में भी जब तक दूसरी शरीरपर्याप्ति पूरी नहीं होती तब तक उन्हें निर्वृत्ति अपर्याप्त कहते हैं। जो पर्याप्त नामकर्मवाले हैं और जिनकी पर्याप्ति पूर्णता की ओर चल रही हैं। पहली पर्याप्ति पूर्ण हुयी, दूसरी पूर्ण हुयी, बाद में उसको पर्याप्त कह देंगे; उसके पहले-पहले निर्वृत्ति अपर्याप्त कहेंगे।

चारों ही गतिवाले पर्याप्त जीव प्रारंभ में निर्वृत्ति अपर्याप्त होते हैं और शरीरपर्याप्ति पूर्ण होने पर पर्याप्त कहलाते हैं। उनको पर्याप्त कह देते हैं। सभी पर्याप्ति पूर्ण होने तक उनका मरण नहीं होता। पर्याप्त नामकर्मवाले जीव पर्याप्ति पूर्ण करते-करते मर जाये ऐसा कभी नहीं होगा, सभी पर्याप्ति पूरी होगी। उनके यथासमय जो आयु का बंध जैसे होना है होगा और बाद में उनका मरण होगा। मनुष्यों में सभी गर्भज मनुष्य पर्याप्त ही होते हैं। क्या कहा ? गर्भ में आनेवाला जो जीव है वह तो पर्याप्त नामकर्मवाला ही है। तो मनुष्यों में अपर्याप्त नामकर्मवाले भी होते हैं क्या ? श्रोता: होते हैं, सम्मूर्च्छन मनुष्य। गर्भ में मरनेवाले अपर्याप्त जीव नहीं होते हैं, हां, सम्मूर्च्छन मनुष्य। सब लब्धिअपर्याप्त होते हैं। सम्मूर्च्छन मनुष्य यानी विशिष्ट वातावरण में उत्पन्न होते हैं, वे कितनी आयु होगी ? श्वास के अठारहवें भाग प्रमाण। उनका कोई हाथ, पैर, नाक नक्श ऐसा कुछ नहीं होगा; कुछ परमाणुओं का ढेर जैसा होगा। इतनी छोटी आयु होगी तो मर जाते हैं।

देव, नारकी और मनुष्य तो नियम से संज्ञी पंचेन्द्रिय ही होते हैं, तिर्यचों में एकेन्द्रिय से संज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीव पाये जाते हैं। एकेन्द्रिय से असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीवों को सम्यक्त्व प्राप्ति की पात्रता ही नहीं होती। क्यों नहीं होती ? क्योंकि उपदेश सुनना, समझना, उस पर विचार करना आदि ये कोई कार्य

वहां नहीं हो सकते। उस पर्याय में उन्हें सम्यक्त्व प्राप्त नहीं होता और सम्यग्दृष्टि जीव मरकर इन पर्यायों में जन्म भी नहीं लेता। सुबह हमने बात की थी असंख्यात बार सम्यग्दर्शन प्राप्त किया है और चार बार उपशमश्रेणी चढ़कर उतरा है और फिर मरकर वह एकेन्द्रिय में भी जन्म लेता है। परंतु हमने सम्यक्त्व के साथ जन्म लेता है ऐसा नहीं कहा था। मिथ्यात्व में जाने पर चारों गति के रास्ते अभी खुले हैं। कहीं भी जा सकता है। एकेन्द्रिय में भी जा सकता है। मिथ्यात्व में जाने के बाद आयुबंध करके वहां जा सकता है। सम्यक्त्व के साथ ऐसे अति अप्रशस्त कर्मों का बंध कभी नहीं होगा।

संज्ञी जीवों में ही इसकी पात्रता होती है इसका कारण यह है कि मन सहित जीवों के ज्ञान का इतना उधाड़ पाया जाता है कि उन्हीं में उपदेश सुनना, धारणा में लेना, धारणा में लेना यानी स्मरण में रखना। उस पर विचार करना, तत्त्वनिर्णय करना आदि बातें संभव हैं। यानी इसके बिना बाय चान्स अपने आप सम्यग्दर्शन हो जावे ऐसा कभी नहीं होगा। मन रहित- असंज्ञी जीवों में यह पात्रता नहीं है। इसलिये कंडिशन क्या डाली थी ? संज्ञी, पंचेन्द्रिय और पर्याप्त - तीनों बातें बतायीं। देव और नारकी जीव पर्याप्ति पूर्ण होने के पश्चात् प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्रकट कर सकते हैं। एक अंतर्मुहूर्त में उनको हो सकता है। मिथ्यात्व में देव में या नारकी में जन्म लिया और अंतर्मुहूर्त में सम्यग्दर्शन प्राप्त किया यह हो सकता है। मनुष्य और तिर्यचों में पर्याप्त गर्भज होना आवश्यक है। गर्भजवाली कंडिशन डाली। अपर्याप्त जीवों को सम्यक्त्व ही नहीं होता और सम्मूर्च्छन जीवों को प्रथमोपशम सम्यक्त्व नहीं होता।

अपर्याप्त कहने से लब्धिअपर्याप्त भी लेना और निर्वृत्ति अपर्याप्त अवस्था में भी सम्यक्त्व नहीं होता है और सम्मूर्च्छन जीव ? हमने मनुष्य सम्मूर्च्छन तो लब्धिअपर्याप्त देखे थे, परंतु तिर्यचों में जो सम्मूर्च्छन होते हैं वे पर्याप्त भी हो सकते हैं और करोड़ पूर्व की आयुवाले भी हो सकते हैं। आपने सुना है न, स्वयंभूरमण समुद्र में असंख्यात पंचम गुणस्थानवर्ती सम्मूर्च्छन जीव हैं। वहां जन्म लेने के अंतर्मुहूर्त के बाद उनको सम्यक्त्व हो सकता है। कौनसा सम्यक्त्व ? क्षयोपशम सम्यक्त्व। उसके लिये कंडिशन क्या है ? सादि मिथ्यादृष्टि होना चाहिये यानी जिन्होंने कभी सम्यक्त्व प्राप्त किया है और मिथ्यात्व में गये हैं, फिर तिर्यचगति, तिर्यचायु बांधकर सम्मूर्च्छन तिर्यच में उत्पन्न हुये हैं। वे जीव एक अंतर्मुहूर्त में सम्यक्त्व क्या पांचवा गुणस्थान भी प्रकट कर सकते हैं। स्वयंभूरमण

समुद्र में ऐसे असंख्यात जीव हैं। श्रोता: पूर्व क्या होता है ? करोड़ पूर्व की बात आती है तो पूर्व यानी कितने वर्ष ? श्रोता: सत्तर लाख छप्पन हजार करोड़ वर्ष। सत्तर लाख छप्पन हजार करोड़ वर्षों का एक पूर्व। एक पूर्व, दो पूर्व, तीन पूर्व, ऐसे कितने पूर्व ? श्रोता: एक करोड़। करोड़ पूर्व। यानी हमने जो संख्या बतायी उसको मल्टिप्लाईड बाय एक करोड़। कर्मभूमि के मनुष्यों, तिर्यचों में इतने वर्ष की आयु हो सकती है।

हम भोगभूमि की बात यहां नहीं कह रहे हैं। भोगभूमि में कोई सम्मूर्च्छन तिर्यच नहीं होते हैं, वहां सारे गर्भज ही होते हैं। श्रोता: वहां उसके सम्यग्दर्शन में निमित्त क्या कह सकते हैं ? सिर्फ कर्म का ही निमित्त बताया है। देखो, निमित्त अनेक होते हैं। एक होता है नियमरूप निमित्त, उसको क्या कहेंगे ? अंतरंग निमित्त। प्रथमोपशम सम्यक्त्व में निमित्तरूप से कर्मों की अवस्था होती ही है। अब बाह्य निमित्त में; हम निमित्त की बात करते हैं परंतु उस जीव ने वहां भी राग से अपनी भिन्नता का विचार किया है और उसको सम्यक्त्व हुआ है। ऐसे ही सम्यग्दर्शन हुआ ऐसा नहीं कहेंगे। केवल निमित्त की ओर देखते-देखते सम्यग्दर्शन नहीं होता। शास्त्र में प्रथमानुयोग में कितनी बार आपने सुना है, कि अरे, एक सफेद बाल देखा, उनको वैराग्य की उत्पत्ति हुयी और उन्होंने दीक्षा ले ली। हम रोज आईने में इतने सफेद बाल देखते हैं, तो हमें क्या होता है ? किसीके वैराग्य होता है क्योंकि उनकी वैसी पर्यायगत योग्यता है, निमित्त के कारण नहीं। कोई चीज देखकर ऐसे विचारों में चले जाते हैं। ऐसे वहां पर भी होता है।

श्रोता: उस सम्मूर्च्छन संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच की पूर्व पर्याय में भी वह संज्ञी पंचेन्द्रिय ही होगा ऐसा हम घटित कर सकते हैं ? नहीं घटित कर सकते हैं। देखो क्या है, मान लेते हैं किसी संज्ञी पंचेन्द्रिय ने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया। सम्यग्दर्शन से वह मिथ्यात्व में गया, बाद में द्वीन्द्रिय, एकेन्द्रिय कहीं पर चला गया परंतु उसकी सत्ता में तीन प्रकृतियां बनी रहती हैं। कब तक ? श्रोता: पल्य के असंख्यातवें भाग काल तक। पल्य के असंख्यातवें भाग काल तक। उसके पहले-पहले यानी जब उनके अन्य दो प्रकृतियां सागर से भी ज्यादा हैं और वह सम्मूर्च्छन तिर्यच में आ गया है। सादि मिथ्यादृष्टि है, दर्शनमोहनीय की तीन की सत्ता है तो उसको क्षयोपशम सम्यक्त्व हो सकता है। अभी हम प्रथमोपशम सम्यक्त्व की कंडिशन की ज्यादा चर्चा करेंगे। है न ?

आगे देखते हैं, सम्मूर्च्छन जीवों को प्रथमोपशम सम्यक्त्व नहीं होता है। उनकी

पात्रता नहीं है कि वे प्रथमोपशम प्राप्त करे। मनुष्य में गर्भ सहित आठ वर्ष पूर्ण होने पर प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति की पात्रता होती है उसके पहले नहीं। आपने बहुत बार स्वामीजी के प्रवचन में सुना होगा आठ वर्ष की बालिका भी सम्यक्त्व प्राप्त करती है। उसका अर्थ क्या है ? अर्लिंएस्ट पात्रता तब आ जाती है। गर्भज तिर्यचों में जन्म के पश्चात् यथायोग्य काल में यह पात्रता होती है। उस काल को मास पृथक्त्व कहा है। तुम पूछोगी हमने तो पूज्य कानजी स्वामीजी के प्रवचन में अनेक बार पढ़ा है कि स्वयंभूरमण समुद्र में असंख्यात सम्मूर्च्छन महामत्स्य सम्यग्दृष्टि हैं, पांचवें गुणस्थानवर्ती हैं और तुम तो गर्भज तिर्यचों की बात कर रही हो। गर्भज और सम्मूर्च्छन क्या होते हैं ? हमारा प्रश्न यही है न ? गर्भज क्या है ? गर्भ में जिनका जन्म यानी उत्पत्ति होती हो वह गर्भज। माता-पिता के निमित्त बिना, विशिष्ट पुद्गल स्कंधों में जिनकी उत्पत्ति होती है; वातावरण में से पुद्गल स्कंधों को ग्रहण करके वहां शरीर की रचना होती है उसको क्या कहेंगे ? सम्मूर्च्छन जीव। जीव वहां उत्पन्न होता है और वातावरण में से पुद्गल स्कंधों को ग्रहण करके शरीर बनता है।

हम बात तो प्रथमोपशम सम्यक्त्व की कर रहे हैं। सम्मूर्च्छन संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच जो सादि मिथ्यादृष्टि हैं उसका अर्थ क्या है ? पूर्वभव में कभी उन्होंने सम्यक्त्व प्राप्त किया था। वे क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर सकते हैं परंतु प्रथमोपशम सम्यक्त्व नहीं। यहां प्रथमोपशम सम्यक्त्व की पात्रता चल रही है इसलिये गर्भज की कंडिशन है। यह गर्भजवाली कंडिशन किनके लिये है ? मनुष्य और तिर्यच के लिये है। देव और नारकी तो गर्भज नहीं होते हैं। वे तो उपपाद जन्मवाले होते हैं। है न ? गर्भज का अर्थ माता के गर्भ में उत्पन्न होनेवाले। माता के स्त्रीबीज और पिता के वीर्य के निमित्त से उनके शरीर की उत्पत्ति होती है। सम्मूर्च्छन जीव आसमंतात् यानी वातावरण में से पुद्गलों का अर्थात् आहारवर्गणा का ग्रहण कर उन्हें शरीररूप से परिणमाते हैं।

संज्ञी पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छन तिर्यच पर्याप्त भी हो सकते हैं, अपर्याप्त भी। हमने सारे ही जो लब्धिअपर्याप्त जीव देखे न, एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय, वे सारे कैसे हैं ? सम्मूर्च्छन ही हैं। परंतु तिर्यचों में सम्मूर्च्छन जीव पर्याप्त भी हो सकते हैं; एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जो पर्याप्त हैं वे नियम से सम्मूर्च्छन ही हैं। असंज्ञी पंचेन्द्रिय में गर्भज भी होंगे, सम्मूर्च्छन भी होंगे। एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक

के सारे तिर्यच, सारे ही तिर्यच नियम से सम्मूर्च्छन तिर्यच होते हैं। उनमें भी पर्याप्त और अपर्याप्त जीव होते हैं। मनुष्य में भी सम्मूर्च्छन जीव पाये जाते हैं जो लब्धिअपर्याप्त होते हैं। मनुष्य सम्मूर्च्छन कभी पर्याप्त नहीं होंगे। जैसे हमने सम्मूर्च्छन महामत्स्य देखे ऐसे कोई सम्मूर्च्छन मनुष्य लंबी आयुवाले पर्याप्त होते होंगे - ऐसा नहीं होता है। आर्य खंड की महिलाओं की काख आदि विशिष्ट अंगों में इनकी उत्पत्ति पायी जाती है।

अब बात निकली ही है तो देव और नारकी के जन्मसंबंधी बात भी करेंगे। उनमें उपपाद जन्म होता है। देवों की उपपाद शैय्या होती है। कोई जीव मरकर देव में उत्पन्न हो यानी स्वर्ग में गया तो वहां क्या होता है ? एक अंतर्मुहूर्त में उनकी पर्याप्ति पूर्ण होती है और युवा देव उत्पन्न होते हैं। यहां माता के गर्भ में नौ महीने बिताया, वहां ऐसा नहीं है। स्वर्गों और नरकों में माता पिता द्वारा पुत्रों की उत्पत्ति नहीं होती। उनके उपपाद के जन्मस्थान हैं। वहां एक अंतर्मुहूर्त में जीव पूर्ण वृद्धिसहित युवा ही जन्मता है। नरक में भी और स्वर्ग में भी। स्वर्गों में बाल बच्चे नहीं होते। वहां के जीवों के बाल भी नहीं है और बच्चे भी नहीं है। तुम कहोगी, हाश कितना अच्छा, हम तो दिनभर बच्चों की देखभाल करने में, उन्हें खिलाने-पिलाने में, उनका अभ्यास-होमवर्क लेने में पागल की भांति दौड़-धूप करते रहते हैं।

हाथ में निवाला लेकर बच्चे के पीछे-पीछे मातायें भागती हैं। एक्झरसाइझ चलता है न ? नहीं समझे ? तो कौन किसको संभालता है ? हम कहते हैं हमने बाल बच्चों को संभाला। वे आपकी संभाल कर रहे हैं कि आप उनकी संभाल कर रहे हैं ? कि वे आपको दौड़धूप करा रहे हैं ? इसलिये वहां स्वर्गसुख कहते होंगे। क्या कहा ? वहां की माताओं को कोई बच्चों के पीछे दौड़धूप करने की आवश्यकता नहीं है, इसलिये स्वर्गसुख होता होगा। हमारा पूरा दिन, किसमें जाता है ? बच्चों को संभालने में और बालों को संवारने में ही चला जाता है। चलो, इतना तो एहसास हो रहा है, यह भी कुछ कम नहीं। परंतु कहीं ऐसा ना हो इसीमें जिंदगी चली जाये। किसमें ? बच्चों के पीछे और बाल संवारने में। और हमारी उम्र में जब बच्चे और बाल दोनों ही छोड़कर चले जाते हैं तब उनकी याद में पूरा दिन बिताना पड़े। जिन बच्चों के लिये इतना किया, वे शादी करके हमें छोड़कर चले जाते हैं। इसलिये उन्हीं की यादों में और विकल्प कर-करके हम दुखी होते हैं। देखो ये क्या

कहना चाहते हैं ? वहां कोई गर्भज नहीं होते हैं - ना देव में ना नरक में।

आगे बढ़ते हैं- **किसी भी संज्ञी पंचेन्द्रिय को सम्यक्त्व हो जायेगा ऐसी बात नहीं है।** आगे की कंडिशन क्या है ? **चारों गतिवाला, भव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्त, गर्भजवाली कंडिशन मनुष्य और तिर्यचों में लागू होती है। मंद कषायरूप विशुद्धता का धारी।** पृष्ठ ६४ तीसरा पॅरेग्राफ- **मंद कषायरूप विशुद्ध परिणामवाला जीव ही पात्र होता है।** अभी यह पात्रता की बात चल रही। **क्योंकि कषाय मंद हुये बिना और धर्मानुरागरूप धर्मानुराग यानी धर्म के प्रति अनुराग, बुद्धि हुये बिना जीव शास्त्रश्रवण करने के लिये तैयार नहीं होगा।** क्या कहना चाहते हैं ? स्वाध्याय में कौन जायेंगे ? तीव्र कषायवाले ? मंद कषायवाले सुनने के लिये तैयार होंगे। वे सोचते हैं स्वाध्याय में क्या कहते हैं देखें तो सही। है न ? **तीव्र कषायी जीवों को धर्मानुरागरूप परिणाम नहीं होते, उन्हें देवादिकों की श्रद्धा नहीं होती, आचार्यों का उपदेश सुनने की वृत्ति उनमें नहीं पायी जाती।**

जीव अपने स्वयं के कल्याण की बातें सुनने को तैयार नहीं है तो हम क्या कहेंगे ? उसको मिथ्यात्व के कौनसे अनुभाग का उदय चल रहा है ? वह शैल, अस्थि वगैरहवाला, है न ? क्योंकि सुनने के लिये भी राजी नहीं है। इतनी भी मंदता नहीं है। ना ही दर्शनमोहनीय में, ना चारित्रमोहनीय में। **जो जीव अपना स्वयं का अर्थात् आत्मा का स्वरूप सुनने के लिये भी तैयार नहीं है,** अभी वह सुनने के लिये राजी नहीं है तो विचार कब करेगा और कब सम्यक्त्व पायेगा ? **उसे सम्यक्त्व कैसे हो सकता है ? इस कारण संक्लेश परिणामवाले तीव्र कषायी जीवों को सम्यक्त्व प्राप्ति की योग्यता नहीं होती।** हमें किसीको तीव्र कषाय का लेबल नहीं लगाना है। हो सकता है तीव्र कषायी जीव अंतर्मुहूर्त में पलटकर मंद कषायी हो जावे और मंद कषायपूर्वक तत्त्वों का विचार करके उसको सम्यक्त्व भी हो सकता है। तीव्र कषायी कहने से वह जिंदगी भर तीव्र कषायी नहीं रहता है, परंतु तीव्र कषाय के काल में तत्त्वविचार नहीं करेगा, उस काल में उसको सम्यक्त्व नहीं होगा बस ऐसा समझना।

तुम पूछोगी नारकी जीवों में तो अशुभ लेश्या होती है। क्या कहा ? नारकियों के कौनसी लेश्या होती हैं ? *श्रोता: अशुभ लेश्या, कृष्णलेश्या।* कृष्णलेश्या तो पांचवें-छठे-सातवें नरकवाले के होती है। ऊपर के तीन नरकों में तो कापोतलेश्या

होती है, फिर बीचवालों में नीललेश्या होती है और नीचे के नरकों में कृष्णलेश्या होती है। तीनों ही अशुभ लेश्यायें हैं। लेश्या समझते हैं ? कषायों से अनुरंजित योग की प्रवृत्ति। तो कहते हैं उन्हें तीन अशुभ लेश्या होती हैं। **उनमें तीव्र क्रोधादि परिणाम पाये जाते हैं**, क्योंकि हमें मालूम है, एक दूसरे से झगड़ा करते रहते हैं, नफरत करते रहते हैं वे तो तीव्र कषायी हैं, **तो उन्हें मंद कषायी कैसे कह सकते हैं ?** क्यों ? क्योंकि हमने पहले देखा था चारों गतिवालों को सम्यक्त्व होता है और यहां कहते हैं कि मंद कषायवाले होना चाहिये, तीव्र कषायवालों को नहीं होगा और नारकी तो वहां झगड़ा करते रहते हैं। तो वहां कैसे पॉसिबल है ?

हां, स्वर्गों के देवों में तीन शुभ लेश्या होती हैं। कौनसी ? पीतलेश्या, ऊपर पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या हैं। तो उनमें तो सम्यक्त्व होने को नो ऑब्जेक्शन कहते हैं। नारकी में कैसे हो सकता है ? यह प्रश्न है। देवों को **उन्हें तो हम मंद कषायी कह सकते हैं।** परंतु नारकी तो तीव्र कषायी हैं, उन्हें सम्यक्त्व कैसे होगा ? क्योंकि उनमें कंडिशन फुलफिल नहीं हो रही है। **नरकों में और स्वर्गों में अपने-अपने नरक या स्वर्ग की लेश्या पायी जाती है।** क्या कहना चाहते हैं ? कि यहां कर्मभूमि के चौथे गुणस्थान तक जो मनुष्य और तिर्यच हैं; उनके नियम से छहों लेश्या अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में पलटती हैं। अभी यहां मिथ्यादृष्टि की बात चल रही है। नरकों में क्या है ? जिस नरक की जो लेश्या है पूरी जिंदगी वही लेश्या रहती है- कापोतलेश्यावालों की कापोतलेश्या ही रहेगी, नीललेश्यावालों की नीललेश्या ही रहेगी, नीचे के नरकों में पूरी जिंदगी कृष्णलेश्या ही रहेगी। हां, परंतु उस लेश्या के जो अविभागप्रतिच्छेद हैं, उनके जो अंश हैं वे मंदता और तीव्रता में पलटते रहते हैं। कृष्णलेश्या में भी संक्लेश विशुद्धि के परिणाम होंगे, उनके योग्य संक्लेश विशुद्धि के परिणाम वहां भी चलेंगे।

हम पढ़ेंगे- **नरकों में और स्वर्गों में अपने-अपने नरक या स्वर्ग की लेश्या पायी जाती है।** स्वर्गों में भी ऐसा ही है। जहां स्वर्गों में पीतलेश्या है- भवनवासियों में, सौधर्म-ईशान में पूरी जिंदगी उनकी पीतलेश्या ही चलती है। सनत्कुमार से सहस्रार तक पद्मलेश्यावाले हैं तो पूरी जिंदगी पद्मलेश्या चलेगी। ऊपर आनत, प्राणत और ऊपर तक सारे शुक्ललेश्यावाले हैं उनकी शुक्ललेश्या ही चलेगी। उनकी एक ही लेश्या है उनके अंश हीनाधिक होंगे। जघन्य से उत्कृष्ट तक वहां परिणाम चलेंगे। **एक-एक लेश्या में तो असंख्यात लोक प्रमाण इतने स्थान होते हैं।** स्थान यानी

व्हेरिएशन्स। लेश्या में उसके जो स्थान हैं, *श्रोताः भेदः* भेद हैं, इतने टाइप के पाये जाते हैं। जब मंद कषायी कहते हैं, तब उस जीव के पूर्व परिणामों की अपेक्षा से उसके कषाय मंद हो जाते हैं ऐसा समझना। नरकों में कृष्णलेश्यावाला जीव शुक्ललेश्यावाला या पीतलेश्यावाला हो जाये, ऐसा कभी नहीं होगा।

परंतु मनुष्य, तिर्यचों में बात करनी है तो भले ही मिथ्यादृष्टि को छह लेश्या होती हैं, परंतु मनुष्य और तिर्यच जब सम्यक्त्व प्राप्त करेंगे तो तीन शुभ लेश्या में से किसी लेश्या में कर सकते हैं यह उसका अर्थ होता है। **मनुष्य और तिर्यचों में चौथे गुणस्थान तक छहों लेश्या पायी जाती हैं। परंतु प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने से पहले उन्हें नियम से पीत, पद्म या शुक्ल लेश्यारूप मंद कषाय में ही सम्यक्त्व प्राप्त होता है, अशुभ लेश्या में नहीं।** यानी जो तत्त्वविचार में जुड़ जायेगा उस समय नँचरली उसकी शुभ लेश्या हो जायेगी। दूसरी कंडिशन क्या थी ?

मंद कषायी, विशुद्ध परिणामवाला, फिर जाग्रत। **सम्यक्त्व की प्राप्ति जाग्रत अवस्था में होती है नींद में नहीं।** सम्यक्त्व प्राप्ति का कार्य विशुद्धि में होता है कि संक्लेश में होता है ? *श्रोताः विशुद्धि में।* यानी उसकी विशुद्धि बढ़ती जाती है। देखो, नींद की बात है। नींद की अवस्था में ना अति संक्लेश होता है, ना अति विशुद्धि होती है। जब किसी भी निद्रा का उदय है - निद्रा है, प्रचला है। जब पाँचों निद्रा में से किसीका उदय शुरू होता है न, तो उस जीव के है; ना अति विशुद्धि होती है ना अति संक्लेश होते हैं। अत्यंत तीव्र ७० कोड़ाकोड़ीवाला बंध भी निद्रा में नहीं करेगा और सम्यक्त्व संबंधी विशुद्धि का कार्य या तत्त्वविचार भी उसमें नहीं होगा। *श्रोताः आयुबंध भी नींद में ही होता होगा ?* यह जरूरी नहीं है। **सम्यक्त्व की प्राप्ति जाग्रत अवस्था में होती है, नींद में नहीं। जाग्रत अवस्था में भी** उसमें भी और एक कंडिशन डाली है। साकार ज्ञानोपयोग - साकार नहीं, साकार कहा। **साकार ज्ञानोपयोगवाले को होगी।** ज्ञानोपयोग को साकार कहते हैं और जो दर्शनोपयोग है उसे निराकार कहते हैं। **निराकार दर्शनोपयोगवाले को सम्यक्त्व का प्रारंभ नहीं होगा।**

जैसे ज्ञानोपयोग में ही विशुद्धि विशिष्ट रहती है। ज्ञानोपयोग से दर्शनोपयोग में चला जायेगा तो उसको कहेंगे प्रतिभग्न हुआ। प्रतिभग्न हुआ यानी उसकी विशुद्धि कम हुयी। ऐसे कम विशुद्धि के साथ यानी अगर विशुद्धि घटती है तो उसका सम्यक्त्व का

कार्य नहीं होगा। हां, वह ज्ञानोपयोग शुरू होने के पहले उसको दर्शनोपयोग हुआ और वह दर्शनोपयोगपूर्वक ज्ञानोपयोग में चला गया है, कोई श्रुतज्ञान में चला गया है। बाद में सम्यक्त्व की प्राप्ति होगी। परंतु पूर्व में दर्शनोपयोग हुआ था वह दर्शनोपयोग वहां कोई-कोई कहते हैं। परंतु उस समय दर्शनोपयोग का काल नहीं है। सम्यक्त्व प्राप्ति का काल है वह ज्ञानोपयोग का काल है। वहां दर्शनोपयोग अवस्था में उपयोग की बात है न। देखो, पर्याय जुदी है। पर्याय तो लब्धि उपयोग दोनों मिलकर है। वहां ज्ञान की भी पर्याय चल रही है, दर्शन की पर्याय चल रही है परंतु उपयोग एक समय में एक में होता है। केवली को ही ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग एक समय में युगपत् होता है - केवलदर्शन और केवलज्ञान। बाकी छद्मस्थों को दर्शनोपयोगपूर्वक ज्ञानोपयोग होता है।

श्रोता: दर्शनोपयोग के अंदर सम्यक्त्व की शुरुआत हो सकती है ? दर्शनोपयोग में सम्यक्त्व की शुरुआत नहीं होती। जहां कहीं कथन है न शास्त्र में, वह पूर्व अवस्था में दर्शनोपयोगपूर्वक ज्ञानोपयोग हुआ था इसलिये वहां उपचार से कहने में आता है। उसके बारे में जयध्वला वगैरह में बातें आती हैं, हां। **निराकार दर्शनोपयोगवाले को सम्यक्त्व का प्रारंभ नहीं होगा।** एक बार औपशमिक सम्यक्त्व शुरू हुआ, बाद में ज्ञानोपयोग, दर्शनोपयोग पलटता रहता है। **किसीको उपशम सम्यक्त्व के काल में बाद में दर्शनोपयोग हो सकता है।** शुरुआत हुयी वह ज्ञानोपयोग में हुयी है। क्योंकि तीन करण परिणाम हैं वहां उसका ज्ञानोपयोग चल रहा है। **ज्ञानोपयोग को साकार कहते हैं क्योंकि वह ज्ञेयों के विशेषों को जानता है।** ज्ञान और दर्शन में क्या भेद है ? ज्ञान को साकार कहेंगे, सविकल्प कहेंगे और दर्शन को ? निराकार कहेंगे, निर्विकल्प भी कहेंगे क्योंकि वह भेद करके ग्रहण नहीं करता। ग्रहण करना शब्द ज्ञान के लिये यूज करते हैं परंतु दोनों के लिये कॉमनलि कहना है। उपयोग के लिये, दोनों के लिये शब्द वापरना है तो हम क्या कहेंगे ? ग्रहण करता है, अवलोकन करता है, प्रतिभास होता है ये शब्द हैं, वे ज्ञान और दर्शन के लिये भी आते हैं।

सामान्य अवलोकन को हम दर्शन कहेंगे। विशेष जो होता है, विशेष यानी हम पदार्थों को पहचान लेते हैं। सबसे पहले में पहले क्या है ? है इतना ग्रहण होता है। यहां दस वस्तु हैं ऐसा भी नहीं है। यह जड़ है और यह चेतन है ऐसा भी नहीं है। स्व और पर है ऐसा कोई भी भेद किये बिना बस सत्ता मात्र का अवलोकन होना उसको कहेंगे दर्शनोपयोग। ज्ञानोपयोग में क्या होता है ? ज्ञान यानी इसको जाना इसका अर्थ क्या है,

इसका रंगरूप वह सब हमने निश्चित कर दिया। यह सब ज्ञान में निश्चित हुआ। उसके विशेषों को पहचान लिया, जान लिया, उसीको कहते हैं ज्ञान। उसके आकार हो गया। ज्ञान को साकार क्यों कहते हैं ? ज्ञान ने इस वस्तु को जाना तो ज्ञान इस आकार-ज्ञेयाकार हुआ। आकार यानी शेष नहीं लेना। ज्ञान ने सुगंध को जाना। हमने आंखें बंद की और किसीने गुलाब का फूल रखा तो हमने उसकी सुगंध पहचान ली- यह गुलाब का फूल है। हम क्या कहेंगे ? ज्ञान कैसे हुआ ? सुगंधाकार हुआ। तो सुगंध का कोई आकार होता है ? सुगंध की विशेषता, डिफरन्स हमने पहचान ली उसको आकार कहते हैं। जिसको ज्ञानाकार-ज्ञेयाकार नाम देते हैं। यहां शेष के अर्थ में आकार को नहीं लेना। ज्ञान ने जान लिया, उसको पहचान लिया यही उसका ज्ञान साकार है।

फिर से देखो, **ज्ञानोपयोग को साकार कहते हैं क्योंकि वह ज्ञेयों के विशेषों को जानता है और दर्शनोपयोग को निराकार कहते हैं क्योंकि उसमें मात्र सामान्य अवलोकन अर्थात् प्रतिभास होता है।** यह प्रतिभास शब्द ज्ञान के लिये भी आयेगा, दर्शन के लिये भी आयेगा। प्रतिभास यानी कोई आभास होता है ऐसा उसका अर्थ नहीं है। **पदार्थों के विशेषों को जानना ही ज्ञान का आकार कहलाता है। जैसे सुगंध को जाना इस बात को कहना हो तो हम कहेंगे ज्ञान सुगंधाकार हुआ।** ज्ञान ने सुगंध को अपने में ज्ञानमय रहते हुये जान लिया। ज्ञान ज्ञेयाकार हुआ यह कहने के लिये कहेंगे तो उस समय ज्ञान ज्ञानाकाररूप से है कि ज्ञेयाकाररूप से है ? ज्ञान तो ज्ञानमय है। परंतु उसने क्या जाना यह बताने के लिये हम सुगंध का नाम लेकर बताते हैं कि ज्ञान सुगंधाकार हुआ। ज्ञान ने अपना ज्ञानस्वरूप नहीं छोड़ा है। **इसमें आकार का अर्थ आकृति या शेष नहीं है। ज्ञानाकार और ज्ञेयाकार की चर्चा हमने 'कारण कार्य रहस्य' पुस्तक में विस्तार से की ही थी।** उसके विशेष विस्तार में नहीं जायेंगे।

श्रोता: उपशम सम्यक्त्व के काल में पीछे से दर्शनोपयोग हो सकता है तो उसका काल तो उपशम सम्यक्त्व का ही चल रहा है। यह सम्यक्त्व के पूर्व की बात हुयी थी। जब सम्यग्दर्शन हो रहा है, करण परिणाम में है तब जीव की विशुद्धि बढ़ रही है - तत्त्वविचार में लीन है वहां उसका ज्ञानोपयोग चल रहा है। ज्ञानोपयोग में ही तीन करण परिणाम होकर उसको सम्यक्त्व की प्राप्ति हुयी। अभी औपशमिक सम्यग्दृष्टि हो गया। अब अंतर्मुहूर्त काल में उसके ज्ञानोपयोग, दर्शनोपयोग चलेंगे। *श्रोता: इसका अर्थ यह भी हम समझ सकते हैं कि फिर वहां विषय भी तो बदला ?* अरे, बिलकुल।

उसमें शुभ उपयोग भी हो जायेगा। उपशम सम्यक्त्व का पूरा काल शुद्धोपयोग का काल नहीं है, बिलकुल नहीं है। अनेक बातों से उसको हम प्रूह कर सकते हैं परंतु उसके लिये आप लोगों को थोड़ा समय चाहिये। हमारे पास तो समय ही समय है।

श्रोता: साक्षीभाव होता है उसमें दर्शनोपयोग रहेगा कि ज्ञानोपयोग ही रहेगा ? किसमें ? *श्रोता: साक्षीभाव जब होता है ? श्रोता: निर्विकल्प होते हैं, बिलकुल कोई भी विकल्प नहीं होते हैं।* विकल्प नहीं होते, जब निर्विकल्प कहेंगे वह रागरहित है उसको भी निर्विकल्प कहेंगे। उस समय में भी जो ज्ञान होता है उसको साकार और सविकल्प कहेंगे। केवलज्ञान सविकल्प है कि निर्विकल्प है ? *श्रोता: निर्विकल्प है।* निर्विकल्प है ? *श्रोता: सविकल्प है।* ज्ञान जैसे साकार कहलाता है वैसे ज्ञान को सविकल्प भी कहेंगे। विकल्प यानी भेद करके जानना उसका स्वभाव है। इसलिये ज्ञान का स्वभाव ही सविकल्प है। परंतु रागरहित है इस अपेक्षा से उसीको निर्विकल्प कहा है। हम किस अपेक्षा से बात कर रहे हैं वह ख्याल में लेना है। कोई कहेंगे ज्ञान सविकल्प, केवलज्ञान सविकल्प है। विकल्प के अनेक अर्थ होते हैं। चार-चार अर्थ बतायेंगे आपको।

नेक्स्ट कंडिशन क्या है ? जाग्रत, साकार ज्ञानोपयोगी जीव। अभी और भी बताया है। कौनसे योग में सम्यक्त्व होगा ? **मनोयोग, वचनयोग या काययोग में से किसी भी योगवाले जीव को प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होगी।** क्योंकि यह योग जो है इतना फास्ट बदलता है। उसका मनोयोग में, वचनयोग में, काययोग में रहने का काल बहुत छोटा अंतर्मुहूर्त है और वह बहुत फास्ट-फास्ट बदलता रहता है। यानी करण परिणाम में भी एक योग से दूसरे योग में पलटना होता है। श्रेणी में भी योगों का पलटना होता है, यहां की बात क्या है ? ऐसा नहीं कि मनोयोग में ही होगा, वचनयोग में ही होगा - ऐसा कोई नियम नहीं है। तीन योग में से किसी भी योग में सम्यक्त्व की प्राप्ति होगी। **उपरोक्त पांच लब्धिपूर्वक ही प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त होगा।**

ये पांच लब्धि के नाम हमने देखे थे, तीसरी गाथा में पढ़े थे। कौन बताना चाहते हैं पांच लब्धि के नाम ? *श्रोता: क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि।* पांचवीं कौनसी ? *श्रोता: करणलब्धि।* करणलब्धि, हां। ये पांच लब्धि कौनसी देखी हमने ? क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि। उसके पश्चात्, करणलब्धि के नेक्स्ट समय में औपशमिक सम्यक्त्व की प्राप्ति होगी। **कोई पूछते है हमें कितनी लब्धि प्राप्त हैं ? श्रोता: चार।** चार। भाई ने बता दिया हमें चार लब्धि प्राप्त हैं। क्यों ? क्योंकि हम अनेक सालों से शास्त्र-स्वाध्याय करते आये हैं, हमें चार लब्धि तो हैं न ? यह प्रश्न है। जीव चार लब्धि में ही

क्यों संतुष्ट हो रहा है ? क्योंकि चार लब्धि तो अभव्यों के भी अनंतों बार हो चुकी हैं। सभी लब्धि का काल मिलकर भी अंतर्मुहूर्त से ज्यादा नहीं है। हम क्या सोचते हैं ? अरे, हम तो चार लब्धि में अभी सतत वर्त रहे हैं - ऐसा नहीं होता। हम उसकी चर्चा करेंगे।

यह पुस्तक लिखने के बाद अनेक विद्वानों के साथ बहुत चर्चा हुयी थी, इतने प्रश्न आये थे। कैसे समझकर बैठे थे न हम ! अरे, हमें तो देशनालब्धि है। हम तो संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं। हमें क्षयोपशमलब्धि है। यह है, वह है, चार लब्धि हैं बस अभी करणलब्धि बाकी है। **जीव चार लब्धि में ही क्यों संतुष्ट हो रहा है ? अभव्य जीव को भी अनंत बार, कितनी बार ? श्रोता: अनंत बार। प्रायोग्यलब्धि तक चार लब्धि प्राप्त हो सकती हैं। यदि भव्य जीव भी प्रायोग्यलब्धि तक आकर करणलब्धि में नहीं जायेंगे उसका अर्थ क्या है ? आत्मसन्मुख पुरुषार्थ नहीं होगा तो उन्हें भी सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होगी।** हमने रोज स्वाध्याय कर लिया, गुरुदेवश्री की टेप सुन ली, उसमें संतुष्ट कृतकृत्य हो जायेंगे। जो उपदेश प्राप्त हुआ है उसके अनुसार आगे आत्मसन्मुखता का पुरुषार्थ नहीं होगा, करणलब्धि नहीं होगी तो ये नहीं के बराबर है।

हां, कर्मों के बंध में अंतर्मुहूर्त तक कुछ परिवर्तन हुआ था फिर वह जो पहले से गाड़ा चल रहा है वैसे चलता रहेगा। उतने काल तक कुछ शुभ प्रकृतियां बंधेगी। फिर दिन भर क्या होता है सबको मालूम है। हमने एक घंटे स्वाध्याय तक हमारे सारे काम कैसे उपशमित कर दिये होते हैं और बाद में सबकी उदीरणा चालू हो जाती है। होता है कि नहीं होता है ? कैसे-वैसे करके हम पांच दिन का समय निकालकर आये हैं और सारे काम हमने अभी ऐसे, *श्रोता: पेंडिंग।* पेंडिंग, पेंडिंग यानी उपशमित कर दिये हैं। तो यहां से जाने पर क्या होता है ? उनकी फास्ट-फास्ट उदीरणा चालू होती है - यह करना है, वह करना है, यहां की जो विशुद्धि है सब पूरी चोपट हो जाती है। स्वाध्याय के काल में हम गुरुदेवश्री को सुन रहे हैं, तब अंतरंग से कैसे परिणाम होते हैं ? कहते हैं हमें यहां तो अच्छा लगता है बाद में सब भूल जाते हैं। कहते हैं कि नहीं ? सब लोग कहते हैं कि नहीं ? कि घर जाते हैं तो हम उसीके विचारों में उलझ जाते हैं।

अपने त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा की महिमा और महानता जब तक भासित नहीं होगी तब तक इन तत्त्वों को सुनकर, यादकर और धारणा में रखकर भी कोई फायदा नहीं है। उसरूप परिणमन होगा तो ही कार्य होगा। इसकी और चर्चा करेंगे हम। १५ मिनट में मिलेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

१०. क्षयोपशमलब्धि

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है और उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका द्वंद्वारी भाषा में लिखी हुयी है। उसीकी आधार से हम यहां प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने के पूर्व में जो पांच लब्धि होती हैं इन पंचलब्धि का प्रकरण ले रहे हैं। इन ग्रंथों का तो आधार है ही है, परंतु अनेक आगम ग्रंथ तथा अध्यात्म ग्रंथ जिनको हम परमागम कहते हैं, उनके भी आधार से इसकी चर्चा चल रही है।

ऐसा कोई कम्पार्टमेंट नहीं है कि बस करणानुयोग की बातें करनी, अन्य अनुयोग की नहीं करनी ऐसी बात नहीं होती है। करणानुयोग के आधार से भी हम द्रव्यानुयोग के सिद्धान्तों को पुष्ट करेंगे। भेदविज्ञान को यहां अधिक बल मिलता है। जीव का और कर्म का, जीव का और शरीर का भेद अत्यंत स्पष्ट हो जाता है और भेदविज्ञान करना जिसको कहेंगे उसकी बातें आगे आयेंगी, वे और स्पष्ट हो जाती हैं।

प्रश्न: क्या सम्मूर्च्छन मनुष्य पूरे मनुष्य के आकार के भी होते हैं ? श्रोता: नहीं। क्योंकि लोग समझते हैं कि स्त्री के शरीर के आधार से स्त्री के आकार के सम्मूर्च्छन मनुष्य होते हैं; नहीं, वे सारे नपुंसकवेदी ही होते हैं, एक बात और उनके कोई आंख, कान, नाक, हाथ, पैर ऐसा कुछ नहीं होता है क्योंकि उनकी एक भी पर्याप्ति पूरी नहीं होती है। एक भी पर्याप्ति पूर्ण होने के पूर्व में श्वास के अठारहवें भाग प्रमाण आयु में मर जाते हैं। उनकी उतनी ही आयु है। उनकी मॅक्झिमम आयु कितनी हो सकती है ? वही बतायी अभी। उसको अंतर्मुहूर्त कह सकते हैं परंतु वह बहुत छोटा अंतर्मुहूर्त है। *प्रश्न: वे कर्मभूमि में होते हैं या भोगभूमि में होते हैं ?* अभी हमने क्या देखा था ? पूरे कर्मभूमि में भी नहीं, आर्यखण्ड की स्त्री के कांख आदि अंगों में और सब स्त्रियों के शरीर में होंगे ऐसा भी नहीं है क्योंकि यह सांतर मार्गणा है। असंख्यात वर्षों तक सम्मूर्च्छन मनुष्यपर्याय में एक भी जीव ना हो यह हो सकता है। इसलिये सबमें होता है ऐसा भी नहीं लेना है। कहां होते हैं उसकी चर्चा पायी जाती है।

प्रश्न: वचनयोग में सम्यक्त्व होता है मतलब जीव उस समय बोल रहा है ? बोलना यह प्रवृत्ति है। जब तक बहिर्जल्प और अन्तर्जल्प चल रहा है तब तक सम्यक्त्व नहीं होगा, तब तक उसके आत्मानुभूति नहीं है। *श्रोता: बहिर्जल्प क्या होता है ?*

बहिर्जल्प होता है जो हम जोर से णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं या जो कोई तत्त्व के बारे में मैं शुद्ध हूं, मैं बुद्ध हूं - ऐसा हम बोलकर जो सुनते-सुनाते हैं वह सविकल्प अवस्था है। उसको जल्प कहेंगे। हम बोल तो नहीं रहे, मन ही मन में हम क्या कह रहे हैं ? ध्यान में क्या करते हैं ? *श्रोता: विकल्प चलते हैं।* बोलते हैं न, मन ही मन में बोलते हैं; मैं शुद्ध हूं, जोर से नहीं बोलना, मन ही मन में विचार अक्षरात्माक-भाषात्मक चलता है। जो मैंने पढ़ा है, वही लाइन हम मन ही मन में दोहराते हैं - मैं शुद्ध हूं, मैं निर्विकल्प हूं। जब तक ऐसा दोहरा रहे हैं तब आत्मानुभूति चल रही कि नहीं चल रही है ? *श्रोता: विकल्पात्मक भूमिका।* यह विकल्पात्मक भूमिका है और विकल्पों से भी भेदज्ञान करना है। उस समय में भी ज्ञान का कार्य तो चल रहा है कि नहीं चल रहा है ? परंतु हमारी विकल्प के साथ इतनी एकत्वबुद्धि हो गयी है कि उससे मैं जुदा हूं यह बात ख्याल में नहीं आती। अरे, विकल्पों को जाननेवाला उस काल में भी मैं जुदा हूं। परंतु सविकल्प अवस्था को ही हम ध्यान मान लेते हैं और उसीको आत्मानुभूति मान लेते हैं।

जब तक विकल्प अवस्था है तब तक आत्मा की अनुभूति नहीं, वह एक शुभभाव है। वह करने, नहीं करने की बात नहीं हो रही है। परंतु जब तक वह है तब तक अनुभूति नहीं है। आत्मा की अनुभूति नहीं है, सम्यग्दर्शन नहीं है यह निश्चित करना है। बस हमने वह विकल्पात्मक ध्यान कर लिया, हमें बहुत शांति मिली। क्यों ? क्योंकि हमने निश्चित किया था कि हम चार दिन, आठ दिन सविकल्प ध्यान में बैठेंगे। किसीका फोन नहीं लेना है, कोई दुनियादारी झमेला नहीं करना है तो शांति होगी कि नहीं होगी ? सब महिलाओं को अभी यहां देवलाली में शांति है न ? क्यों ? घर की रसोई नहीं करनी है, ना कोई काम इसलिये महिलाओं की संख्या ज्यादा होती है। देखो, यह बोलना बात अलग है और वचनयोग बात अलग है। योग है वह आत्मप्रदेशों का कंपन है। जो योग हमने देखा न ? वह मनोयोग, वचनयोग, काययोग पलटता रहता है। हमें कौनसा योग चल रहा है वह देखकर समझ में नहीं आता। जो मौनव्रती मुनिराज हैं उनके वचनयोग चलेगा कि नहीं चलेगा ? *श्रोता: चलेगा।* वे तो बोल नहीं रहे हैं, मौन धारण किये हैं। प्रवृत्ति अलग बात है और योग अलग बात होती है। हमने योगमार्गणा में उसकी बहुत चर्चा की थी। अभी अपना यह विषय नहीं है।

प्रश्न: हम सम्यग्दर्शन करने के लिये कोशिश करते हैं स्वाध्याय, पूजा, दर्शन वगैरह; ऐसा ही बच्चों को भी सिखाते हैं। आठ साल की आयु होने के बाद सम्यग्दर्शन

प्राप्त हो सकता है तो फोकस कहां करना ? बच्चे लोगों को कहां फोकस करायें ? बहुत अच्छी बात है। देखो, हम बच्चों को बालपोथी से सिखाते हैं, पहली लाइन क्या सिखायी थी ? मैं जीव हूं, मुझमें ज्ञान है, मैं ज्ञान से जानता हूं। भेदविज्ञान तो वहां से सिखाते हैं। भेदविज्ञान की ही मुख्यता रखनी है। भले ही अभी हम कर्म की पूरी थिअरी पढ़ रहे हैं यहां, उसके द्वारा भी हमें भेदविज्ञान की ही पुष्टि करनी है। कर्म के नाम रटना-रटाना हमारा प्रयोजन नहीं है। यहां तो कर्म के जो कार्य हो रहे हैं उनसे भी मैं कैसे जुदा हूं, इसी बात की मुख्यता रखनी है।

हमेशा स्वसन्मुखता की मुख्यतापूर्वक ही स्वाध्याय होना चाहिये। हमने इतना स्वाध्याय सुना, हमने औरों को भी सुनाया, ऐसा होता है न कि अभी हमें कुछ आने लगा तो हम दूसरों को भी सुनाने लगते हैं। परंतु हमारा मूल प्रयोजन क्या है ? अपना कल्याण। अगर उसके साथ-साथ सीखना-सिखाना होता है तो अच्छी बात है। देखो, यहां क्रियाओं का निषेध नहीं है। जब क्रिया से धर्म नहीं होता ऐसा कहेंगे, तो क्रिया का निषेध नहीं कर रहे हैं। क्रिया के पीछे शुभभाव है। पं. टोडरमलजी ने भी मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है- जब तक वीतराग दशा ना हो तब तक प्रशस्त रागरूप प्रवर्तन करो। उपदेश करेंगे कि ऐसा करो। परंतु श्रद्धान कैसा रखना है ? कि इससे बंध होगा यानी इससे धर्म नहीं होगा। परंतु अगर शुभ राग नहीं करेंगे तो कहां चले जायेंगे ? श्रोता: अप्रशस्त राग में। अप्रशस्त राग में। टीव्ही के सामने जाकर बैठ जायेंगे। हम यहां पांच दिन नहीं आते तो दिनभर हमारी क्या चर्या रहती ? कितना टाइम हम स्वाध्याय में बिताते और कितना टाइम अन्य क्या-क्या चलता ?

प्रश्न: पूर्व में अगर तिर्यचायु बांधी हो और बाद में क्षायिक सम्यक्त्व हुआ तो क्या क्षायिक सम्यक्त्व लेकर तिर्यच में जायेगा ? हमने यह बात देखी थी। किसी मनुष्य ने पहले तिर्यचायु बांधी, मनुष्य की कंडिशन क्यों ? क्योंकि क्षायिक करने की कंडिशन है। क्षायिक सम्यग्दर्शन अन्य भवों में प्राप्त नहीं होता है। क्षायिक सम्यक्त्व की शुरुआत कहां होती है ? कर्मभूमि का मनुष्य करता है। किसीने पहले तिर्यचायु बांधी, बाद में उसने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया। परंतु अगर उसने क्षायिक नहीं किया तो तिर्यच में तो जायेगा परंतु मिथ्यात्व में जाकर जायेगा। यह भी हो सकता है कि उसने क्षायिक सम्यक्त्व कर लिया। अब क्या होगा ? वह क्षायिक सम्यक्त्व के साथ भोगभूमि का तिर्यच होगा। वहां गुणस्थान चौथा ही है। कोई भी तिर्यच पांचवें गुणस्थान का क्षायिक

सम्यग्दृष्टि नहीं हो सकता। चौथे गुणस्थान में रहेगा और वहां से देव में जायेगा और क्षायिक सम्यग्दृष्टि देव मनुष्य में आयेगा और उसका नियम से मोक्ष होगा।

श्रोता: *अनी एक्झाम्पल ?* अभी एक्झाम्पल क्या ? ऐसी बातें होती हैं। ऐसे असंख्यात क्षायिक सम्यग्दृष्टि तिर्यच भोगभूमि में पड़े हैं। वहां तीन पल्प की उत्कृष्ट आयु है। हर छह महीने आठ समय में छह सौ आठ जीव दर्शनमोह की क्षपणा करके क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करते ही करते हैं। । उसमें क्षायिक सम्यक्त्व लेकर दो-चार जाते रहेंगे तिर्यच में, जैसे नरक में जाते हैं। पहले नरक में भी क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंख्यात हैं। उसमें तीर्थकर प्रकृति बांधनेवाले भी असंख्यात हैं। अब आगे देखते हैं।

प्रश्न: *मिथ्यादृष्टि को ही प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है सम्यग्दृष्टि को नहीं, कृपया समझाइये ?* हमने क्या देखा था ? प्रथमोपशम कहते किसको है ? जो मिथ्यात्व गुणस्थान में से अनंतानुबंधी और दर्शनमोहनीय का उपशम करके सम्यग्दृष्टि होता है। कोई चौथे में जायेगा, कोई पांचवें में, कोई सातवें में - उसीको प्रथमोपशम कहेंगे। कोई मिथ्यात्व गुणस्थान में से क्षयोपशम सम्यक्त्व के साथ पहले से चौथे में, पांचवें में, सातवें में जा सकता है परंतु वह सादि मिथ्यादृष्टि होना चाहिये। या औपशमिक सम्यग्दृष्टि उसके अंतर्मुहूर्त काल बाद सम्यक् प्रकृति के उदय से क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि हो जाता है। जो ऑलरेडि क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि हैं, वे मुनिराज द्वितीयोपशम करके श्रेणी चढ़ते हैं तो सम्यक्त्व में से ही सम्यक्त्व होता है; कौनसे ? क्षयोपशम में से द्वितीयोपशम होगा या दूसरी पॉसिबिलिटी ? क्षयोपशम में से क्षायिक होगा। तो ऑलरेडि क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि है वह क्षायिक हुआ। तो प्रथमोपशम के लिये क्या कंडिशन रही ? मिथ्यात्व में से सम्यक्त्व प्राप्त किया, कैसे ? विशिष्ट कर्मों का उपशम करके। उसको प्रथमोपशम कहते हैं। इसलिये वह मिथ्यादृष्टि की कंडिशन रखी है।

श्रोता: *सम्यक्त्व की प्राप्ति जाग्रत अवस्था में होती है, नींद में नहीं। कृपया समझाइये।* यह उसकी कंडिशन है क्योंकि यह जो विशुद्धि का कार्य हो रहा है, तत्त्वविचार का कार्य हो रहा है, ऐसी विशुद्धि जाग्रत अवस्था में ही हो सकती है। अभी हम आगे प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि में क्या-क्या होता है देखेंगे, तो विशुद्धि कितनी बढ़ती है वह देखेंगे। वह सब जाग्रत अवस्था में साकार ज्ञानोपयोग के काल में होता है। क्योंकि दर्शनोपयोग में उसकी विशुद्धि कम हो जाती है। नींद में तो और कम होती है।

नींद में ना अति तीव्र संक्लेश होते हैं, ना अति विशुद्धि होती है। *श्रोता: आपने बताया था हम कर्म के कर्ता नहीं तो फिर पुरुषार्थ किसका करना चाहिये ?* ठीक है इस प्रश्न का उत्तर हम अभी थोड़ी देर में देखेंगे क्योंकि हमारे बच्चे भी वही प्रश्न पूछ रहे हैं।

हां, एक ने तो पूछा था कि चार लब्धि हमारे तो हैं न ? तो जीव तो उसीमें संतुष्ट है। हमें इतना तो है न ? हम यहां तक तो आये न ? हम रोज देवदर्शन तो करते हैं न ? हम रोज स्वाध्याय तो करते हैं न ? परंतु जीवों को जहां हैं वहां से ऊपर उठाया जाता है। जो स्वाध्याय नहीं करते हैं उनको कहेंगे कि प्रतिदिन स्वाध्याय जरूरी है। जो एक घंटा स्वाध्याय करते हैं, उनको कहेंगे कि चार-पांच घंटा स्वाध्याय जरूरी है - स्वामीजी कहते हैं। जो चार-पांच घंटे स्वाध्याय कर रहा है उसको कहते हैं सिर्फ स्वाध्याय करने से कुछ नहीं होगा। स्वाध्याय में जो सुना वह केवल धारणा में यानी याद में रखने के लिये नहीं है, उसरूप परिणमन करना है। इसलिये जो जीव जहां है वहां से उसको ऊपर उठाने की कोशिश करते हैं, उसको उपदेश उस भाषा में दिया जाता है।

देखो पृष्ठ ६६ - **तत्त्वजिज्ञासा**, तत्त्वजिज्ञासा यानी हमारी उत्सुकता कि तत्त्व को जाने। सर्वोत्कृष्ट तत्त्व तो मैं स्वयं हूं, जीवतत्त्व। **तत्त्वजिज्ञासा, आत्मा को जानने की तीव्र रुचि उत्पन्न होती है तब विशुद्धि भी वृद्धिगत होती जाती है, उस समय देशना सुनकर**, यह देशना क्या है ? उसकी बात आयेगी आगे देशनालब्धि के प्रकरण में **या पूर्व में सुनी हुयी देशना को यानी जिनेन्द्र कथित तत्त्वों को विचार में लेता है। तत्त्वविचार और तत्त्वनिर्णय करने लगता है** अभी तत्त्वनिर्णय हुआ नहीं है, चल रहा है। **तब ये चारों ही लब्धि एक साथ होती हैं।** हमें उनका अर्थ समझना है तो एक-एक को हम समझेंगे। परंतु तत्त्वविचार के काल में जिसने पूर्व में देशना सुनी हुयी है वह उस पर जब विचार करता है तो तत्त्वविचार के काल में उसको चारों ही लब्धि एक साथ होती हैं। **इसीलिये देशना तो पूर्वभव की भी हो सकती है। इसकी अधिक चर्चा देशनालब्धि के प्रकरण में भविष्य में करेंगे।** क्योंकि उसमें बहुत सारी विशेषतायें हैं उनकी बात हम तब करेंगे।

तुम कहोगी, 'बस तत्त्वजिज्ञासा हुयी, तत्त्व सुने, याद किये और हो गयी आत्मानुभूती ? कुछ करना-धरना नहीं रहा ? क्या करना चाहते हैं ? क्योंकि आज तक कुछ करने-धरने में, कुछ क्रियायें करने में धर्म माना था। क्या किया ? नामस्मरण

किया, दान दिया, ये विकल्प किये। तो द्रव्यानुयोग जानकर ही काम हो जायेगा। शॉर्टकट चाहते हैं न ? **करणानुयोग नहीं जाने तो भी हो जायेगा न ? चरणानुयोग की अभी जरूरत ही नहीं है।** वह क्या समझता है ? अरे, मुनि हो जायेंगे तब चरणानुयोग देखा जायेगा। ऐसी मान्यता चल रही है। **देखो, जीव ने आज तक कुछ क्रिया करके ही धर्म होगा माना था।** अब क्या सुना ? यह जड़ की क्रिया तो कर नहीं सकता और क्रिया से तुझे ना धर्म होता है, ना अधर्म होता है। यह सुनकर क्या करता है ? **अब क्रिया से कुछ नहीं होगा सुनकर क्रिया छोड़ना चाहता है।** तो मान्यता बदली कि नहीं बदली ? **उसमें भी इसके पर की कर्तृत्वबुद्धि तो कायम ही रही क्योंकि मैं कर सकता हूं परंतु अब नहीं करूंगा ऐसा मानता है।** क्या माना ? अभी हम नहीं करेंगे यानी कर सकता हूं, परंतु अभी नहीं करेंगे।

सिद्धान्त प्रवेशिका सीखते हैं तो हमने सुना 'बाई रोटि बना नहीं सकती।' सुनकर बहुत गुस्सा आया। हमने कहा कल से हम नहीं बनायेंगे। तो बाई रोटि बना नहीं सकती यह मान्यता बदली कि नहीं बदली ? *श्रोता: नहीं बदली।* मान्यता कायम रही। तुम नहीं बनाती कहते हो न ? जाओ, अब हम नहीं बनायेंगे। यानी अभी क्रिया से धर्म नहीं हो रहा है तो हम कल से देवदर्शन, यात्रा, दान, ये सब छोड़ देंगे क्योंकि इनसे तो धर्म होता नहीं है। शुभभाव होता है, इससे बंध होता है। अब हम नहीं करेंगे। तो मान्यता वही रखकर पहले क्रिया करता था, अब सुना तो क्रिया ही छोड़ दी। तो उसके पर की कर्तृत्वबुद्धि कायम रही। **सम्यग्दर्शनरूपी कार्य का कारण बाह्य में, देव, गुरु, शास्त्र, विशिष्ट आचरण, शारीरिक क्रिया मानकर** यानी इनके कारण मुझे सम्यग्दर्शन होता है ऐसा मानकर **इसने अपनी कारणविपरीतता कायम रखी है।**

और कोई विपरीतता मालूम है ? *श्रोता: भेदाभेद।* भेदाभेदविपरीतता। *श्रोता: स्वरूप।* स्वरूपविपरीतता। यानी ज्ञान में विपरीतता चल रही है और हमें सम्यग्दर्शन चाहिये। हमें कैसा सम्यग्दर्शन चाहिये ? *श्रोता: कुज्ञानवाला।* मिथ्याज्ञानवाला। हो सकता है न ? अरे ज्ञान में तो कन्फ्यूजन, संशय और विपरीतता चल रही है और यहां सम्यग्दर्शन हो जावे ऐसी बात नहीं हो सकती है। **यहां हमारा विषय करणानुयोग द्वारा पांच लब्धि समझने का है, तथापि जो जीव सम्यक्त्व प्राप्त करता है उसके आचरण में चरणानुयोग के कथन अनुसार सहज ही परिणामों की विशुद्धि होती है।** यानी मंद कषाय चलते हैं। **उसका लौकिक जीवन भी सदाचार और नैतिकता**

से युक्त होता है। कहते हैं कि उसका नैतिक जीवन भी सदाचारी होता है। कोई बाहर पाप ज्यादा करता हो और किसीके ऊपर अनीति, अन्याय करता हो और ऐसे परिणामों के साथ शास्त्र का अभ्यास करके सम्यग्दर्शन हो जावे ऐसा नहीं हो सकता।

वह अष्ट मूलगुण का धारक होता है। अष्ट मूलगुण समझते हो ? *श्रोता: पांच उदुम्बर फल।* हां, लिखा है देखो, अर्थात् पांच उदुम्बर फल और मांस, मद्य, मधु का त्यागी होता है। उसके सप्त व्यसनादिक नहीं होते हैं। स्वच्छंदी जीवन तथा हिंसादिक क्रूर परिणाम उसके नहीं रहते। क्योंकि इतने क्रूर परिणाम के रहते हुये उसको सम्यग्दर्शनरूपी कार्य नहीं हो सकता है। वह अभक्ष्य भक्षण का त्यागी, अन्याय, अनीति का त्यागी होता है। यह तो उसकी साधारण पात्रता बतायी। द्रव्यानुयोग के अनुसार वह तत्त्वविचार करता है। प्रथमानुयोग पढ़कर वह संसार से भयभीत होता है, क्यों ? क्योंकि प्रथमानुयोग पढ़ते हैं तो उसमें किसी जीव की अनेक भवों की कहानी आती है। तो उसमें क्या आता है ? किसी जीव को पुण्य और पाप का कैसा-कैसा फल मिलता है और कैसी-कैसी पर्याय में घूम-घूमकर फिर वह मनुष्य होता है, फिर मुनि बनकर मोक्ष चला जाता है। हम ऐसी बातें पढ़ते हैं तो हमें भी यह भय लगता है कि अरे, कैसे-कैसे परिणाम होते हैं ! इनका फल तो मिलेगा, तो हमें शीघ्र ही अपना कार्य करना है। इसलिये कहते हैं कि संसार से भयभीत होता है। तीर्थकरादि पुरुषों के चरित्र पढ़कर अपना पुरुषार्थ बढ़ाता है।

करणानुयोग के कथन अनुसार, कर्मों की अवस्थायें सहज स्वयमेव होती है। जीव तो तत्त्वविचार में इतना लीन हो जाता है कि अंतर्मुहूर्त में सहज सम्यक्त्व प्राप्त होता है। तत्त्वविचार में लीन अवस्था में कर्मों की उपशमादि जो अवस्थायें होनी हैं वे सहजरूप से होती हैं। जीव का उसमें कुछ चलता ही नहीं है न। तो क्यों बता रहे हैं ? यह सहज होता है यह नक्की करने के लिये बता रहे हैं। क्योंकि हमारा विश्वास ही नहीं है न, कि केवल तत्त्वविचार करने से सम्यक्त्व होगा, कुछ और करना-धरना नहीं है। हम यह ज्ञान कर रहे हैं वह कुछ करना लगता ही नहीं है। बाकी बाहर में हमने राग किया, शुभभाव किया, अशुभभाव किया, कुछ क्रिया की तो हमने कुछ किया ऐसा लगता है। यानी वह क्रिया अपनी लगती है और ज्ञान की क्रिया कभी अपनी लगती ही नहीं है। तो उसके अभी भेदज्ञान हुआ नहीं है यह उसका अर्थ है।

सम्यक्त्व की प्राप्ति के लिये पात्रता कैसी होती है इसकी चर्चा हमने 'करणानुयोग परिचय' के पुस्तक में विस्तार से देखी ही थी। अब यहां हमारा विषय है प्रथमोपशम सम्यक्त्व के प्राप्ति की प्रक्रिया। यानी इन पांच लब्धि की प्रक्रिया कैसे होती है ? इसमें जीव के परिणाम तथा कर्मों की अवस्था के वर्णन द्वारा हम सम्यक्त्व होने के पूर्व होनेवाली पांच लब्धि का स्वरूप देखने जा रहे हैं। अब हम क्रमशः एक-एक लब्धि का स्वरूप विस्तार से देखेंगे।

आगे देखते हैं पृष्ठ ६८- अभी हम क्षयोपशमलब्धि संबंधी चर्चा करते हैं। हमने क्षयोपशम की परिभाषा देखी थी। कौन बताना चाहता है ? श्रोता: वर्तमानकालीन सर्वघाति स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय। फिर ? श्रोता: भविष्यकालीन उन्हीं स्पर्धकों का सदवस्थारूप उपशम। हां, तीसरी बात ? श्रोता: और वर्तमानकालीन देशघाति स्पर्धकों का उदय। बहुत अच्छा। कर्मों की इन तीन अवस्थाओं को क्षयोपशम कहेंगे। क्षयोपशम शब्द से तो हम आप सब परिचित हैं क्योंकि उसके लिये हमने बहुत मेहनत भी की है, है न। देशघाति, सर्वघाति प्रकृतियां भी देखी और स्पर्धक भी देखे।

प्रकृति सर्वघाति है तो उसमें स्पर्धक कौनसे-कौनसे होंगे ? श्रोता: सर्वघाति। सर्वघाति ही होंगे, उनमें देशघाति कभी नहीं होंगे। कितने भी मंद क्यों न हो, वे सर्वघाति से देशघाति तो नहीं होंगे। दूसरी बात, कोई प्रकृतियां देशघाति हैं तो उनमें कौनसे स्पर्धक होते हैं ? श्रोता: सर्वघाति और देशघाति। सर्वघाति भी हैं और देशघाति भी हैं। क्योंकि जिन प्रकृति के स्पर्धकों में सर्वघाति, देशघाति भेद होता है उन्हीं में क्षयोपशम घटित होता है। हमने हर एक प्रकृति पर घटित करके देखा भी था।

अब यहां क्षयोपशमलब्धि की चर्चा चलेगी। क्षयोपशम बात अलग है, क्षयोपशमलब्धि अलग है; कौनसी क्षयोपशमलब्धि ? प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पूर्व में होनेवाली क्षयोपशमलब्धि। क्षयोपशमलब्धि शब्द भी अनेक अर्थों में आता है। जिसका जितना ज्ञान का उघाड़ है, जैसे एकेन्द्रिय को स्पर्शनइन्द्रिय संबंधी ज्ञान का उघाड़ है तो वहां कहेंगे कि उसकी स्पर्शनइन्द्रिय संबंधी क्षयोपशमलब्धि है। एकेन्द्रियादि जीवों के जानने की शक्ति को भी क्षयोपशमलब्धि कहेंगे। वहां क्षयोपशमलब्धि का अर्थ क्या है ? जीव का क्षयोपशम कितना है उसको लब्धि कहते हैं; क्योंकि लब्धि और उपयोग मिलकर क्षयोपशम ज्ञान की पर्याय होती है। वह लब्धि और यह पंचलब्धिवाली लब्धि

अलग-अलग हैं। एक ही नाम अलग-अलग जगह अलग-अलग अर्थों में आता है।

देखो- क्षयोपशम शब्द से अब तुम परिचित हो। ज्ञान के उघाड़ को क्षयोपशम या क्षयोपशम ज्ञान कहते हैं। क्षयोपशम कर्म की अवस्था का भी नाम है जिसकी चर्चा हमने विस्तार से की थी। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय कर्मों का क्षयोपशम अनादिकाल से सभी जीवों में पाया जाता है। उसका अर्थ क्या है ? सारे जो छद्मस्थ हैं न, उनके इनका क्षयोपशम तो चल ही रहा है। जब केवलज्ञान हो जायेगा तब क्षयोपशमज्ञान मिटकर क्षायिकज्ञान हो जायेगा। तो अनादि से ही ज्ञान का क्षयोपशम चल रहा है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय सबका क्षयोपशम चल रहा है। मिथ्यात्व नामक पहले गुणस्थान से क्षीणकषाय नामक बारहवें गुणस्थान तक और एकेन्द्रिय से संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों तक सब में इन कर्मों का क्षयोपशम पाया जाता है। क्या कहा ? हमने देखा था जो कुमतिज्ञानवाला मिथ्यादृष्टि होगा तो उसका मतिज्ञानावरण का क्षयोपशम चलता है, उसको क्षयोपशम अज्ञान कहेंगे। सम्यग्दृष्टि को जो मति-श्रुतज्ञान है उसको क्या कहेंगे ? श्रोताः सुमतिज्ञान। उसको भी क्षयोपशम ही कहेंगे। क्षयोपशम उसका भी है न ? उसका भी ज्ञान का उघाड़ है उसको क्षयोपशम ज्ञान कहेंगे।

श्रोताः ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय का क्षयोपशम हुआ वह स्वभाव का अंश है न ? हां, क्षयोपशम हुआ यानी ज्ञान का उघाड़, वीर्य का उघाड़, वह है तो स्वभाव का अंश परंतु अपनी स्वयं की योग्यता से हीन पर्यायरूप, अधूरी पर्यायरूप, परिणमित हुआ है। उस समय सामने कर्मों का क्षयोपशम पाया जाता है तो जीव के उस भाव का नाम क्षयोपशम भाव है। भाव तो जीव का अपना है। उसका नाम कर्मों की क्षयोपशम अवस्था की ओर से रखा है, कर्मों ने उसे उत्पन्न नहीं किया है। जीव का कोई भी भाव कर्मों ने उत्पन्न नहीं कराया है। एकेन्द्रिय से संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों तक सबमें इन कर्मों का क्षयोपशम पाया जाता है। क्षयोपशम नामक सम्यक्त्व भी है जो चौथे गुणस्थान से सातवें गुणस्थान तक पाया जाता है। क्षयोपशम चारित्र भी होता है। छठे सातवें गुणस्थानवाले को क्षयोपशम चारित्र भी कहेंगे।

हमारी बात क्षयोपशम की नहीं है। हमने अठारह क्षयोपशम भाव चार घातिकर्म के देशघाति प्रकृतियों पर घटित करके देखा। उसकी बात हमें नहीं करनी है

परंतु क्षयोपशमलब्धि की करनी है। **क्षयोपशमलब्धि मात्र संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में ही पायी जाती है परंतु संज्ञी पंचेन्द्रिय होना अर्थात् ज्ञान का इतना उघाड़ होना क्षयोपशमलब्धि नहीं कहलाती।** सामान्य से संज्ञी पंचेन्द्रिय होना क्षयोपशमलब्धि है ऐसा मोक्षमार्गप्रकाशक में भी कहा है। कहीं सामान्य कथन होता है और कहीं उसका विशेष कथन होता है। सामान्य कथन में क्या है ? संज्ञी पंचेन्द्रिय हुआ उसको क्षयोपशमलब्धि है ऐसा कहेंगे। उसकी पात्रता बतायी जाती है। परंतु उसको सम्यक्त्व से पूर्व अंतर्मुहूर्त काल पहले क्षयोपशमलब्धि है और वह अंतर्मुहूर्त से अधिक काल तक नहीं रहती। उसका संज्ञी पंचेन्द्रियपना कब से था ? जन्म से था और लगातार संज्ञी पंचेन्द्रिय - संज्ञी पंचेन्द्रिय रहेगा तो कितने काल तक रहेगा अश्विनभाई ? *श्रोता: हजार सागर तक।* हजार सागर तक संज्ञी पंचेन्द्रिय बना रहेगा। कभी देव होगा, कभी मनुष्य होगा, तिर्यच होगा, नारकी होगा - संज्ञी पंचेन्द्रिय में घूमेगा। उसको क्षयोपशमलब्धि नहीं कहेंगे।

संज्ञी पंचेन्द्रिय होना और ज्ञान का इतना उघाड़ होना उसको क्षयोपशमलब्धि नहीं कहेंगे। **उसकी परिभाषा इस प्रकार है।** परिभाषा यानी डेफिनिशन जो लब्धिसारादि ग्रंथों में लिखी हुयी है। वही इस पुस्तक में लिखी है। हम पढ़ते हैं। आपको मेरे बाद रिपीट करना है। **ज्ञानावरणादि समस्त।** *श्रोता: ज्ञानावरणादि समस्त।* **अप्रशस्त कर्म प्रकृतियों की शक्ति।** *श्रोता: अप्रशस्त कर्म प्रकृतियों की शक्ति।* **अर्थात् अनुभाग।** *श्रोता: अर्थात् अनुभाग।* **जिस काल में।** *श्रोता: जिस काल में।* **समय-समय प्रति अनंतगुणा घटता अनुक्रमरूप।** *श्रोता: समय-समय प्रति अनंतगुणा घटता अनुक्रमरूप।* **होकर उदय में आने लगे।** *श्रोता: होकर उदय में आने लगे।* **उस काल में क्षयोपशमलब्धि होती है।** *श्रोता: उस काल में क्षयोपशमलब्धि होती है।* यानी क्या होता है ? **अप्रशस्त कर्मों की शक्ति हीन-हीन होकर उदय में आती रहती है।**

अभी इसका अर्थ देखते हैं। अकेले ज्ञानावरण का क्षयोपशम होता है ऐसा लिखा है ? *श्रोता: नहीं, सभी कर्मों का।* ज्ञानावरणादि समस्त अप्रशस्त कर्म लिये हैं। इन कर्मों की शक्ति यानी अनुभाग अविभागप्रतिच्छेदों में नापते हैं। उसका क्या होता है ? जिस काल में यानी जिस अंतर्मुहूर्त काल में, सम्यक्त्व होने के पहले अंतर्मुहूर्त काल में क्षयोपशमलब्धि होती है ऐसा जब कहते हैं तो उस काल में क्या हो रहा है ?

कर्मों का उदय तो पहले से चल ही रहा था। उस काल में क्या हो रहा है ? समस्त अप्रशस्त कर्मों का कैसा अनुभाग उदय में है ? पहले समय में जितना अनुभाग था, अनंतगुणा घटना का अर्थ होता है अनंतवें भाग प्रमाण होना। जैसे हम कहेंगे कि चारगुणा घटा, चारगुणा घटा यानी चौथे भाग प्रमाण रह गया। जैसे सौ है उसके चारगुणा घटा, यानी अभी कितना रह गया ? *श्रोता: पच्चीस।* पच्चीस रह गया यह उसका अर्थ होता है। तो अनंतगुणा घटा का अर्थ क्या है ? पहले समय में जितना अनुभाग था, दूसरे समय उसका अनंतवां भाग, तीसरे समय में उसका अनंतवां भाग - है उसका अनंतवां, फिर उसके नेक्स्ट समय में जो है उसका अनंतवां भाग। प्रतिसमय अनंतगुणा घटता-घटता-घटता-घटता होकर उदय में आने लगे। जीव के कुछ करने-धरने से यह नहीं हो रहा है।

कहते हैं कि **ज्ञानावरणादि समस्त अप्रशस्त प्रकृतियों की शक्ति अर्थात् अनुभाग जिस काल में समय-समय प्रति** यानी प्रतिसमय, एक्हरी समय **अनंतगुणा घटता अनुक्रमरूप होकर उदय में आने लगे।** उदय होते-होते अत्यंत हीन-हीन होकर उदय में आने लगता है। अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग घटता है। तो अप्रशस्त कर्मों का फल ज्यादा होगा कि कम होगा ? *श्रोता: कम होगा।* ज्ञानावरण का अनुभाग कम हुआ तो ज्ञान का विकास होगा कि नहीं होगा ? तो **उस काल में क्षयोपशमलब्धि होती है।** अब अकेला ज्ञानावरण नहीं; ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय को भी ले लेना है। मिथ्यात्व का क्षयोपशम होता है, ऐसा नहीं कहेंगे। परंतु मिथ्यात्व अप्रशस्त कर्म है, उसका अनुभाग भी अनंतगुणा घटता-घटता उदय में आयेगा। अभी तत्त्वविचार में लग जायेगा तो शैल नहीं रहेंगे परंतु अस्थि क्या, दारु क्या, उसका भी अनंतवां भाग होकर उदय में आने लगेगा। अत्यंत मंद होगा। वहां सभी अप्रशस्त लेना है। सारे ही अप्रशस्त यानी घाति तो अप्रशस्त हैं ही हैं। अघाति में भी अप्रशस्त लेना है।

हम तो क्या कहते हैं ? हमें स्वाध्याय करना है, तो पहले जरा संयोग ठीकठाक करेंगे। अभी क्या है ? बच्चों की परीक्षा होनी है, अभी तो घर में बहू लानी है, फिर हम निवृत्त ही निवृत्त हैं। सारे लोग जानते हैं कि कितने निवृत्त होते हैं। क्यों ? हमें पता नहीं है क्योंकि हमें लड़का ही नहीं है। लोग और क्या सोचते हैं ? नहीं-नहीं हम इतना काम करेंगे तो हम निवृत्त ही हैं। फिर कहते हैं अभी जरा बच्चों को ठीकठाक लाइन में लगा लेंगे, आप जैसे बूढ़े हो जायेंगे तो हम स्वाध्याय करेंगे। एक तो बुढ़ापे तक जिंदगी चालू

रहेगी इसकी गॅरंटी नहीं है। कोई हमें ऐसा युवा नहीं मिला, क्यों बेटा ? कि हम आप जैसे बूढ़े हो जायेंगे तो शादी करेंगे। उसके लिये तो कोई काम आड़ा नहीं आता है। धंधा भी करता है, पढ़ाई भी करता है जो कुछ चलता है, शादी भी करता है, बच्चे भी होते हैं। बाकी सब चलता है परंतु स्वाध्याय करना है तो कहता है आप जैसे बूढ़े हो जायेंगे तब करेंगे। हम भी हमारे बुजुर्गों को कहते थे आप स्वाध्याय करो। सब बच्चे अपने मां-बाप को ऐसा ही कहते हैं। हम आपकी सभी सुविधा कर देते हैं। आपको मंदिर जाने के लिये कार देते हैं, सब सुविधा उपलब्ध करते हैं। हमारे पीछे मत लगे।

उनको फिर काललब्धि याद आती है- जब हमारा काल पकेगा न, हां, तो हम भी पढ़ेंगे। यह बहानेबाजी चलती रहती है। काललब्धि जैसे कुछ शब्द उसने सुन रखे हैं तो मां बाप को भी वह सुनाता है। आप अभी स्वाध्याय करो और हम आप जैसे बूढ़े हो जायेंगे तब हम भी करेंगे। *श्रोता: ऐसा कोई उदाहरण मालूम है ?* बिलकुल उदाहरण तो हमारे आजू-बाजू में घटित होते ही हैं। क्या हुआ था ? एक डॉक्टर १५ सितम्बर को हमारे घर में आये थे। सण्डे का दिन था और मेरे ससुरजी को आदत थी जो आये उसको स्वाध्याय की प्रेरणा देते रहते थे। वे ही हमारे घर में पहले थे जो गुरुदेवश्री के पास जाकर सोनगढ़ में रहकर सीखते थे। हमारा कुंभोज बाहुबली में जाना होता था और वहां के आचार्य समंतभद्र महाराज थे। हमारे पिताजी यानी मेरे ससुरजी को स्वाध्याय की बहुत रुचि थी, घर से निवृत्ति लेकर वहां जाकर वे चार-चार महीने, छह-छह महीने रहते थे। बहुत जिज्ञासा थी न ? तो समंतभद्र महाराज ने बोला आपको सच्चा धर्म सीखना है तो सोनगढ़ जाओ, कानजी स्वामी के पास सीखो।

महाराजजी ने बहुत सारे स्कॉलर्स तैयार किये थे। उनकी स्वाध्याय की बहुत अच्छी रुचि भी थी, उनका अपना अभ्यास भी था। उनके समय में उन्होंने बहुत सारे गुरुकुल वगैरह चलाये थे। वे स्वयं कहते थे यह गुरुकुल वगैरह हमारा परिग्रह है, हम तो परिग्रह के धारी हैं, हम मुनि नहीं हैं। आपको सच्चा धर्म सीखना है कानजी स्वामी के पास जाओ। ये उनके शब्द हैं और उन्हीं की प्रेरणा से पिताजी सोनगढ़ गये। वहां हमेशा ही जाते थे, स्वाध्याय भी करते थे, दूसरों को करवाते थे। जो कोई घर में आता था तो उनको स्वाध्याय की प्रेरणा देते थे। तब मेरी जेठानी का भाई यानी उनके बहू का भाई अपने काम के लिये घर आया था। तो उसको भी बताने लगे अरे, जरा स्वाध्याय कर, तू इतना सयाना है, डॉक्टर है, अभी यह भी कर। तो उसने कहा दादाजी हम

आप जैसे उम्रवाले हो जायेंगे तो जरूर करेंगे। *श्रोता: आप जैसे बूढ़े।* हां, बूढ़े हो जायेंगे। तो वह अपने गांव गया। सण्डे के दिन हमारे घर में था।

फिर गुरुवार के दिन १९ तारीख को क्या हुआ ? वह महाराष्ट्र के मालेगांव में रहता था। वहां बहुत बरसात हुयी थी। खाना खाने बैठा था तो नौकर आया दौड़ते-दौड़ते, बोला अपने पंप में कोई खराबी हो गयी है। मशीन नहीं चल रहा है, उसने कहा इलेक्ट्रिशियन को बुला लो, नौकर बोला कोई बारिश में आने को तैयार नहीं है। तो वह खाना अधूरा छोड़कर देखने के लिये चला गया कि क्या हुआ है। वह पंप हाउस में गया और उसने फ्यूज निकालना चाहा। ऐसे निकालने गया तो ऑन द स्पाट वह इलेक्ट्रिक करंट से जलकर वहीं मर गया। जो कहता था हम आप जैसे बूढ़े होकर स्वाध्याय करेंगे उसको कितना मौका मिला ? उसकी धन-संपत्ति क्या काम आयी ? ऐसी घटनायें हमारे आजूबाजू में घटती रहती हैं। दूसरे के प्रति देखकर अरे बिचारा ! लगता है और हम इतनी आयुवाले होकर क्या कर रहे हैं ? उसकी बात कोई नहीं सोचता है। *श्रोता: उनको आयु का भरोसा है।* हां।

हम क्षयोपशमलब्धि की परिभाषा देख रहे थे। पृष्ठ ६९ निकालना- **अनंतगुणा घटता का अर्थ समझ लो। जब किसी संख्या का अनंतगुणा कहेंगे**, केवल अनंतगुणा कहेंगे तो अनंत से गुणा करना, जैसे सोलह को चारगुणा कहेंगे तो सोलह गुणा चार, चौंसठ हो जायेगा और सोलह को चारगुणा घटता कहेंगे तो सोलह का चौथा भाग हो जायेगा। यहां यही लिखा है, देखो- **जब किसी संख्या का अनंतगुणा कहेंगे तो उसे अनंत से गुणा करना और जब उसका अनंतगुणा घटता या अनंतगुणा घाटि कहेंगे तो अनंतवां भाग समझना। मान लो, १६ संख्या का चारगुणा कहेंगे तो $16 \times 4 = 64$ संख्या होगी और १६ संख्या को चारगुणा घटता कहेंगे तो $16 \div 4 = 4$ संख्या आयेगी।** समझ में आयी न बात ? अनंतगुणा घटता का अर्थ है जितने अनंत अविभागप्रतिच्छेद थे उनके अनंतवें भाग प्रमाण होकर उदय में आते हैं। उदय में आते-आते ही अनुभाग घटकर उदय में आ रहे हैं यह कहना है।

जीव ने पूर्व में बांधे हुये और सत्ता में पड़े हुये जो अप्रशस्त कर्म यहां प्रशस्त कर्मों में क्या होता है उसकी बात बाद में बतायेंगे । ज्ञानावरणादि अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग अनंतवें भाग प्रमाण होकर उदय में आता है। अभी उनका अनुभाग

घटता है यानी अपनी भाषा में डायल्यूट होकर उदय में आ रहे हैं। जो अप्रशस्त कर्म हैं उनका अनुभाग घटता जाता है क्योंकि सत्ता में पड़े हुये की कोई प्रॉब्लेम ही नहीं है, जो उदयरूप होते हैं उनका फल मिलता है। किसरूप से उदय में आ रहे हैं ? अनंतगुणा हीन-हीन-हीन-हीन होकर उदय में आ रहे हैं। और प्रति समय पूर्व अनुभाग से अनंतवां भागरूप रह जाता है। उदय में आते समय भी अनंतवां भाग होकर उदय में आता रहता है। यहां केवल अप्रशस्त कर्मों की ही बात की है, प्रशस्त कर्मों की नहीं। यानी जो कोई पुण्य बांधा था उसकी बात नहीं है। जो पाप कर्म हैं, वे डायल्यूट होकर उदय में आ रहे हैं।

पहले हमने अप्रशस्त कर्मों की विस्तार से चर्चा की थी। हमने अप्रशस्त और प्रशस्त प्रकृतियों की लिस्ट बनायी थी। सारे घातिकर्म श्रोता: अप्रशस्त ही हैं/ अप्रशस्त ही हैं और हमने अघातिकर्म में प्रशस्त और अप्रशस्त के भेद देख लिये थे। सर्व घातिकर्म अप्रशस्त ही हैं। सभी घातिकर्मों का अनुभाग हीन-हीन होकर उदय में आने लगता है। मिथ्यात्व भी हीन हो रहा है, मंद हो रहा है। अघातिकर्मों में प्रशस्त और अप्रशस्त दो भेद हैं। घातिकर्मों में ज्ञानावरणादि प्रकृतियों के अपने-अपने अनंत स्पर्धक हैं। प्रत्येक कर्मप्रकृति के अपने निषेक, अपने स्पर्धक सब जुड़े-जुड़े हैं। उनमें मंद अनुभाग से तीव्र अनुभाग तक के स्पर्धकों के ४-४ भेद या स्थान हमने देखे थे याद है ? श्रोता: लता, दारु, अस्थि और शैल। हां, लता, दारु, अस्थि और शैल।

अघातिकर्मों की जो अप्रशस्त प्रकृति हैं उनके स्पर्धकों के भी ४-४ स्थान देखे थे - नीम, कांजीर, विष और हलाहल। अभी हमने पुण्य प्रकृति की बात नहीं उठायी क्योंकि हमें केवल अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग हीन होकर उदय में आता है यह देखना है। इन ४-४ स्थानों में अनंत-अनंत स्पर्धक और एक-एक स्पर्धक में अनंत-अनंत वर्गणा होती हैं और एक-एक वर्गणा में अनंत-अनंत वर्ग यानी कर्म परमाणु होते हैं। अभव्य राशि से अनंतगुणा और सिद्धराशि का अनंतवां भागवाला जो अनंत है उतने वर्ग यानी कर्म परमाणु एक वर्गणा में होते हैं और उतनी ही वर्गणा एक स्पर्धक में होती है। इन सभी अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग यानी फल देने की शक्ति प्रति समय अनंतवें भागप्रमाण हीन होती जाती है और उदय में आती है।

अब क्षयोपशम और क्षयोपशमलब्धि इन दोनों में जो अंतर है वह तुम्हारे ख्याल में आयेगा। हमने क्षयोपशम की परिभाषा देखी थी, तो क्षयोपशम हीनाधिक होता है कि नहीं होता है ? श्रोता: होता है। ज्ञान का उघाड़ हीनाधिक होता है कि नहीं होता है ? श्रोता: होता है। होता है न ? अभी कोई बुद्धिमान है और फिर उसको स्मृतिभ्रंश होता है कि नहीं ? अभी स्मृतिभ्रंश की बात छोड़ो। कल रात को हमने बहुत सारा रट लिया था, याद किया था। हम आप सब परीक्षा में जाते समय क्या करते थे ? कोशिश करके रट्टा मारकर चले जाते थे और लिखने बैठते तो कुछ याद नहीं आता था। तो वहां क्षयोपशम का क्या हुआ ? यानी वह पर्याय हीनरूप से परिणामित हुयी यानी हमारा क्षयोपशम हीनाधिक होता है। नहीं जाननेवाले भी अभ्यास से ज्यादा जानने लगते हैं, क्षयोपशम ज्ञान का उघाड़ बढ़ता है। कोई बहुत बड़े विद्वान है और कभी ऐसा भी होता है न कि उन्हें अल्झायमर हो गया, स्मृतिभ्रंश हो गया, कुछ याद नहीं है। इतना सब अभ्यास तो था। क्षयोपशम तो हीनाधिक होता है। तो क्षयोपशम नींद में चालू है कि नहीं है ? श्रोता: चालू है। और कोमा में ? श्रोता: चालू है। जिसका जितना क्षयोपशम है तो वह सर्वत्र चलेगा परंतु उस समय क्षयोपशमलब्धि नहीं कहलायेगी। क्षयोपशमलब्धि में क्या है ? देखो, अनुभाग अनंतगुणा हीन-हीन-हीन, प्रतिसमय अनंतगुणा हीन हो रहा है उसको क्षयोपशमलब्धि कहेंगे।

अब क्षयोपशम और क्षयोपशमलब्धि इन दोनों में जो अंतर है वह तुम्हारे ख्याल में आ जायेगा। क्षयोपशम तो केवल देशघाति प्रकृतियों में ही पाया जाता है। हमने देखा था घातिकर्म की जो देशघाति प्रकृतियां हैं उन्हीं में क्षयोपशम है और क्षयोपशमलब्धि में अनुभाग प्रतिसमय अनंतगुणा घटता है। वह कार्य सभी घातिकर्मों में और अघातिकर्मों की अप्रशस्त प्रकृतियों में होता रहता है। ज्ञानावरणादि समस्त अप्रशस्त प्रकृतियां हैं ऐसे शास्त्र का वचन है। क्षयोपशम में तो देशघाति कर्मों का जितना अनुभाग है उतना ही उदय में आता है फिर से- जब ज्ञान का क्षयोपशम कहते हैं तो जिसका जितना ज्ञान का उघाड़ है तो उतना ज्ञानावरण उदय में आ रहा है, भले ही देशघातिरूप से है। और क्षयोपशमलब्धि में अनुभाग जो है; देखो, आवरण का अनुभाग घटा यानी आवरण कम हुआ यानी ज्ञान का उघाड़ बढ़ गया। है न ? ज्ञान का सहजरूप से विकास होता है। क्षयोपशमलब्धि में अनुभाग प्रति समय अनंतवां भाग होकर उदय में आता रहता है।

देखो, एक अंतर्मुहूर्त में प्रतिसमय यानी असंख्यात समय यानी असंख्यात बार अनुभाग अनंतगुणा घटा-अनंतगुणा घटा। **क्षयोपशम तो निरंतर वर्तता है - नींद में, बेहोशी में भी कायम रहता है परंतु क्षयोपशमलब्धि तो अंतर्मुहूर्त मात्र होती है।** चारों लब्धि मिलकर भी, करणलब्धि के साथ मिलकर भी अंतर्मुहूर्त काल ही होता है। यानी क्षयोपशमलब्धि भी अंतर्मुहूर्त से ज्यादा नहीं रहेगी। प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है उसके पूर्व एक अंतर्मुहूर्त की यहां बात हो रही है **और जाग्रत अवस्था में होती है।** सम्यक्त्व होने के पूर्व पांच लब्धि जाग्रत अवस्था में होगी। हम क्षयोपशमलब्धि उसको कहेंगे जिस समय अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग हर समय में अनंतगुणा घटकर, अनंतवां भाग होकर उदय में आ रहा है।

श्रोता: जब अनंतगुणा घटता है तब हर एक जीव का अनुभाग अलग-अलग होता है या सेम ? उनमें अनुभाग हीनाधिक होगा। अभी देखो न, कोई जीव पहले गुणस्थान से चौथे में जाता है, कोई पहले से पांचवें में जाता है, कोई पहले से सातवें में जाता है। जिसकी जैसी विशुद्धि हो, उसके असंख्यात प्रकार बताये गये हैं; चौथा गुणस्थान प्राप्त करनेवाले के भी असंख्यात प्रकार बताये गये हैं तो उनमें विशुद्धि हीनाधिक होती है। उस हिसाब से उनमें भी डिफरन्स होगा।

क्षयोपशम तो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय की देशघाति प्रकृति में पाया जाता है। परंतु क्षयोपशमलब्धि में इन प्रकृतियों के अलावा मिथ्यात्व और चारित्रमोहनीय कर्मों का अनुभाग भी अनंतगुणा घटता हुआ उदय में आता है। क्या कहते हैं ? मिथ्यात्व सर्वघाति है कि देशघाति है ? *श्रोता: सर्वघाति है।* तो उसमें कौनसे-कौनसे स्पर्धक होते हैं ? शैल, अस्थि और दारु का बहुभाग। तो उसका अनुभाग भी अनंतगुणा घटता हुआ उदय में आयेगा कि नहीं आयेगा ? *श्रोता: आयेगा।* हां, यानी अभी मिथ्यात्व है यानी सम्यक्त्व नहीं हुआ है तो करणलब्धि के अंतिम समय तक मिथ्यात्व का उदय चलेगा। परंतु अभी उसका उदय कैसा चलेगा ? अनंतगुणा घटता-घटता-घटता। यानी मिथ्यात्व मंद-मंद-मंद, अत्यंत मंद हो रहा है।

सम्यक्त्व नहीं हुआ है, मिथ्यात्व मंद भी हुआ है फिर भी मिथ्यात्व ही है। उसको क्षयोपशम नहीं कहेंगे परंतु क्षयोपशमलब्धि के काल में इन सर्वघाति का भी - अनंतानुबंधी हो, मिथ्यात्व हो, अन्य भी जो हैं - जो कोई वहां पड़े हैं उन सभी अप्रशस्त

कर्मी का अनुभाग घटता हुआ उदय में आ रहा है। अनुभाग घटने से उसको देशघाति नहीं कहेंगे परंतु उसका जो फल है; अति तीव्र मिथ्यात्व से भी मंद-मंद-मंद हो रहा है; अभी सम्यक्त्व होने योग्य है तो उसका मिथ्यात्व नहीं के बराबर है। कितना मंद होगा ? ऐसे मंद होकर उदय में आ रहा है। केवल संज्ञी पंचेन्द्रिय है, कोई बहुत इंटेलिजेंट है तो उसको क्षयोपशमलब्धि है ऐसा नहीं है।

क्षयोपशम हम आप सबको है। तो उसको अत्यंत तीव्र राग हो सकता है कि नहीं हो सकता है ? *श्रोता: होगा।* हो सकता है। उसमें राग की कैसी भी हीनाधिकता हो सकती है। यहां क्षयोपशमलब्धि में क्या देखा ? चारित्रमोहनीय का अनुभाग भी अत्यंत मंद होकर उदय में आयेगा। तो जीव के शुभरागरूप प्रवृत्ति होगी न ? उस समय उसके परिणाम भी प्रशस्तरागरूप हो जायेंगे, सहजरूप से होंगे। हम तो अभी उसको क्षयोपशमलब्धि के रूप में वर्णन कर रहे हैं। उसीकी बात विशुद्धिलब्धि में भी ले लेंगे। क्षयोपशम तो केवल देशघाति प्रकृतियों में पाया जाता है, क्षयोपशमलब्धि जो सम्यक्त्व होने के पहले एक अंतर्मुहूर्त तक होती है उस समय ज्ञानावरणादि समस्त अप्रशस्त प्रकृतियां हैं, वहां देशघाति-सर्वघाति सबका अनुभाग हीन होकर उदय में आ रहा है। सर्वघाति हैं वे अनंतगुणा घटने से देशघाति नहीं होगी। फिर भी उनका अनुभाग मंद हो रहा है। क्षयोपशम और क्षयोपशमलब्धि में अंतर है उसको हमें स्पष्ट करना है।

श्रोता: यह क्षयोपशमलब्धि शुरू हुयी है इसमें जीव बाहर में क्या कर रहा है ? जीव के कुछ करने से क्षयोपशमलब्धि नहीं होती। तत्त्वविचार के काल में ये सब लब्धि सहजरूप से पायी जाती हैं। समझाने के लिये हम एक-एक को एक-एक के बाद बतायेंगे। पहले क्षयोपशमलब्धि कहेंगे, फिर विशुद्धिलब्धि; कहने के लिये उनमें अंतर पड़ेगा। परंतु जिसको देशना प्राप्त है वह तत्त्वविचार में जुड़ जाता है तो वहां उसके सभी चारों ही लब्धि एक साथ पायी जाती हैं। उनका स्वरूप देखने के लिये हम एक-एक का अलग-अलग विचार करेंगे। ख्याल में आती है न बात ?

ज्ञान का क्षयोपशम तो हम आप सबको है। सभी संज्ञी पंचेन्द्रिय को है। चारों गति के संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव हैं तो सबकी क्षयोपशमलब्धि चल रही है क्या ? *श्रोता: नहीं।* नहीं। प्रथमोपशम होने के पहले का अंतर्मुहूर्त काल है तब उनकी क्षयोपशमलब्धि कहलायेगी। *श्रोता: लब्धि नाम ही वही टाइप आयेगा ?* हां, ये पांच

लब्धि; कौनसी पांच लब्धि ? यह सम्यक्त्व के पहलेवाली क्योंकि लब्धि शब्द अनेक जगह अलग-अलग अर्थ में आता है।

श्रोता: मिथ्यात्व में जो स्पर्धक हैं वे सर्वघाति हैं ? हां। *श्रोता: तो उसके स्पर्धक शैल, अस्थि और दारु के बहुभागवाले हैं, जब अनंतगुणा घटता उदय में आता है तो शैल का ही अनंतगुणा घटते उदय में आता है या शैल का वह अनंतवां भाग है वह दारु का अनंतवां भाग होकर उदय में आयेगा ?* नहीं-नहीं, यह जरूरी नहीं है। देखो, जिसे शैलवाले स्पर्धकों का उदय है तो इतना तीव्र मिथ्यादृष्टि तत्त्व की बात सुनने को भी तैयार नहीं होगा। उस काल में वह करणलब्धि में नहीं आया अभी। अभी यह शैलवाला जीव हो गया। हम ऐसा जीव लेंगे कि जिसने देशना भी सुनी है, तत्त्वविचार में लगा है। तो भले वहां कोई अस्थिवाले या दारुवाले हैं परंतु प्रतिसमय अनंतगुणा घटने पर भी वह अस्थि से डायरेक्ट दारुवाला नहीं हो सकता है क्योंकि अनंत-अनंत-अनंत स्पर्धक हैं। उनकी अनंतता ख्याल में नहीं आती। अनंतगुणा घटता है, हां, कहेंगे उसका अनुभाग कम हुआ। यानी उसको तीव्र मिथ्यादृष्टि नहीं कहेंगे। अभी अनुभाग मंद-मंद-मंद है, प्रतिसमय मंद की ओर बढ़ रहा है यह उसका अर्थ है।

कोई शुभभाव करने से, पूजा करने से, दान करने से मंद है ऐसा उसका अर्थ मत लेना। क्योंकि हम सभी को क्रियाओं में जोड़ देते हैं। जीव ने क्या किया था ? सवाल तो यही है न ? जीव ने क्या किया था ? जीव तो ज्ञान ही कर रहा है। उसके ज्ञान में तत्त्वविचार आदि कुछ विशेष बातें हो रही हैं और कर्मों की अवस्थाओं को देखकर हम जीव के परिणामों का अनुमान लगाते हैं, क्योंकि जीव के परिणामों में जो कुछ हीनाधिकता हो रही है वह तो हम एक्स्प्लेन नहीं कर सकते। तो हम कर्मों की अवस्थाओं के द्वारा जीव के परिणामों को जानने की कोशिश कर रहे हैं। यहां कुछ करने धरने यानी बाह्य क्रिया की बात ही नहीं है। उसकी तत्त्वजिज्ञासा है, उसका भेदज्ञान का प्रयत्न है, वह सब उसके अंदर हम ले सकते हैं। *श्रोता: शैल सत्ता में पड़े होते तो वे भी सत्ता में पड़े-पड़े मंद हो सकते हैं, ऐसा हो सकता है ?* सत्ता में पड़े हुये भी मंद होते हैं, परंतु यहां उदय में आने की मुख्यता है; क्योंकि अभी तो क्षयोपशमलब्धि का प्रकरण चल रहा है। सत्ता में क्या होता है ? वह बाद में हम देखेंगे।

हमने क्या देखा था ? हमने क्षयोपशम देशघाति प्रकृतियों में घटित किया था।

सर्वघाति स्पर्धक सत्ता में रहते हैं, देशघातिरूप से उदय में आते हैं वगैरह-वगैरह। अब यहां क्षयोपशमलब्धि के काल में क्या होता है ? सर्वघाति प्रकृतियों का भी अनुभाग घटेगा। अनुभाग घटकर देशघाति नहीं होनेवाला है, फिर भी मंद होकर उदय में आता है। अब अघातिकर्मों में भी अप्रशस्त हैं कि नहीं ? *श्रोता: हैं।* हां, उनका भी उदय चलता रहता है। तो उनमें भी जिसका जो उदय होगा वह भी मंद होकर उदय में आयेगा और प्रतिसमय मंदतर होता जाता है। अभी आगे- जिसे शैलभागरूप या अस्थिभागरूप तीव्र अनुभागवाले मिथ्यात्व का उदय है, जिसे ७० कोड़ाकोड़ी सागर या तत्सम उत्कृष्ट स्थितिवाला मिथ्यात्व का बंध होता है ऐसे जीव को क्षयोपशमलब्धि नहीं कहलाती। क्योंकि अति तीव्र संक्लेश में ही उसका बंध हो रहा है और हमने देखा था कि मंद कषायरूप धर्मानुरागरूप बुद्धिवाला पात्र है। यानी सम्यक्त्व होने के पहले उसके इतने तीव्र परिणाम नहीं पाये जायेंगे।

ऐसा जो ७० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध कर रहा है उसके ज्ञानावरण का क्षयोपशम चल रहा है कि नहीं चल रहा है ? *श्रोता: चल रहा है।* चल रहा है। परंतु उसको क्षयोपशमलब्धि है ऐसा कहेंगे क्या ? नहीं कहेंगे - यह उसका अर्थ है। **उन्हें विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि की पात्रता नहीं होती है।** कौनसे ? शैल और अस्थिवाले जो तीव्र मिथ्यादृष्टि जीव हैं क्योंकि वे उपदेश सुनने को भी तैयार नहीं होंगे। 'भावदीपिका' ग्रंथ में दीपचंदजी कासलीवाल कहते हैं कि ऊपर के, ऊपर के यानी शैल, अस्थिवाले ऊपर के तीव्र अनुभागवाले स्पर्धकों का जिन्हें उदय है ऐसे तीव्र मिथ्यादृष्टि जीवों को मोक्षमार्ग का उपदेश देना भी योग्य नहीं है। यानी उपदेश सुनने की भी पात्रता नहीं है। **उपदेश देते समय भी पात्रता, अपात्रता का विवेक रखना चाहिये।** जैसे हम दान देते हैं तो उसमें कितनी बातों का विचार करना है ? किस पात्र को देना है ? क्या दान देना है यानी दान का द्रव्य क्या होना चाहिये ? दातार यानी देनेवाले के कौनसे-कौनसे गुण होने चाहिये ? इन सबका विचार होकर दान की प्रक्रिया होती है। ऐसे यहां पर भी समझना है।

जो तीव्र मिथ्यात्वी और तीव्र कषायी जीव है उसे धर्मोपदेश सुनने की बुद्धि नहीं होती, यानी उसको स्वयं ऐसे नहीं लगता कि मैं सुनूं। कोई सुनाने लगे तो उसके कषायों की वृद्धि होती है। वह उपदेशदाता का तथा जिनमें सत्य उपदेश है ऐसे सत्शास्त्रों का ही द्वेष करने लगता है, ऐसा होता है कि नहीं होता है ? विघ्न

भी डालता है परंतु आगे की बात हमारे लिये है, क्या ? **ऐसे जीवों को देखकर हमें उनका द्वेष करना योग्य नहीं है।** श्रोता: क्रोध आता है न ? वह आता है क्योंकि 'णाणा जीवा णाणा कम्मा' सभी जीवों के भाव अलग-अलग हैं, उनके कर्मों के उदय जुदे-जुदे हैं, उनके परिणाम जुदे-जुदे हैं और हमारे कहने से सब तीव्र मिथ्यादृष्टि मंद हो जावें और मोक्ष चले जायें ऐसा तो बननेवाला नहीं है। **उनकी सम्यक्त्व की काललब्धि अभी दूर है और होनहार कुछ और ही है समझना चाहिये।** उनके अभी के परिणाम देखकर हम अंदाज़ा लगा सकते हैं कि अभी तो ये सम्यक्त्व के पात्र नहीं हैं। हां, भविष्य में होंगे उसकी ना नहीं कह सकते। **जिस वक्त उनकी सम्यक्त्व की काललब्धि आयेगी तब इन पांच लब्धिपूर्वक ही उन्हें सम्यक्त्व होगा।** उनको कभी नहीं होगा ऐसा हम आशीर्वाद नहीं दे रहे हैं। क्योंकि परिणाम जुदे-जुदे पाये जाते हैं। कौनसा जीव कभी पलटेगा ? किसीको इसकी बिलकुल रुचि नहीं है, इसका द्वेष है और कोई घटना या ऐसा कोई प्रसंग बन जाता है कि उसकी पूरी लाइफ़स्टाइल चेंज होकर वह इस मार्ग में पूरा लग जाता है। हम देखते भी हैं ऐसे बहुत सारे लोग।

देखो- **उस समय उनके मिथ्यात्व, कषाय आदि मंद होंगे, जिनेन्द्रकथित सत्शास्त्रों की महिमा उन्हें भासित होगी, उपदेशदाता भी मिलेंगे, क्या कहा ? उस समय निमित्त कैसा मिलेगा ? अभी तो कोई सामने समझाने आ रहे हैं। उस समय कौन आयेगा ? चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। उसकी काललब्धि आयी हो, तो पांचों ही समवाय स्वयमेव मिल जाते हैं। जीव को कोई चिंता करने की बात नहीं है। उपदेश ग्रहण भी होगा। वे आज माने या कुछ काल पश्चात् माने परंतु सच्चे मोक्षमार्ग का स्वरूप समझे बिना, आत्मा का स्वरूप समझे बिना, सच्चे देव, गुरु, शास्त्र सच्चे देव यानी अरिहंत, सिद्धों का। सच्चे देव का, सच्चे गुरु का, सच्चे शास्त्र का स्वरूप समझे बिना। समझना भी है, निर्णय भी करना है, उसरूप परिणामन भी करना है। किसीने सच्चे देव को तो अच्छी तरह से जान लिया, फिर भी कुदेव आदि की श्रद्धा चल रही है। किसीने सच्चे गुरु का तो निर्णय कर लिया, फिर भी अभी जिस-किसीके पीछे चल रहे हैं। उसका अर्थ क्या है ? श्रद्धा बिलकुल विपरीत चल रही है। तो कहते हैं कि **उसके सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होगी।****

यह सबसे पहली कंडिशन है। सच्चे देव, सच्चे गुरु और सच्चे शास्त्र का निर्णय अपनी बुद्धि से परीक्षा के द्वारा होना ही चाहिये। इसलिये उसके लक्षण भी समझना

आवश्यक है। हम परीक्षा करने में बहुत सयाने हैं। कुछ लोग कहते हैं 'हम आप कौन परीक्षा करनेवाले हैं ? तुम तो श्रावक हो और उनकी परीक्षा करते हो ? ऐसा साहस करते हो ?' तो कहते हैं कि श्रावक का कर्तव्य है, प्रथम कर्तव्य- सच्चे देव, सच्चे गुरु, सच्चे शास्त्र को निर्णयपूर्वक, परिक्षापूर्वक ग्रहण करके फिर उनकी पूजन, उनका विनय आदर करें। जिनके द्वारा यह अमूल्य सही उपदेश प्राप्त होना है उनके स्वरूप के बारे में किसीके उलटी-पुलटी मान्यता चल रही है तो उसे आगे बढ़ने का कोई चान्स नहीं है। उसे सत्य उपदेश मिलने का भी अवसर नहीं है।

क्या कहते हैं ? कि **सच्चे देव, गुरु, शास्त्र का स्वरूप समझे बिना उन्हें सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होगी। सम्यक्त्व की प्राप्ति हुये बिना मोक्षमार्ग का प्रारंभ नहीं होगा।** अभी धर्म की शुरुआत ही नहीं होगी और धर्म के नाम पर अभी तक जो क्रिया कर रहा है, उससे कोई शुभभाव होंगे उसमें कुछ पुण्य बंधेगा। परंतु उस पुण्य का क्या फायदा ? एकाध भव स्वर्ग के देव का भी मिले तो भी क्या फायदा है ? वहां से, देव में से तो एकेन्द्रिय में जानेवाले बहुत सारे जीव होते हैं। डायरेक्ट एकेन्द्रिय में पहुंच जाते हैं। तो कहते हैं कि **मोक्षमार्ग के बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं होगी, सुख की प्राप्ति नहीं होगी, जन्म-मरण के फेरों में से छुटकारा नहीं होगा।**

मिथ्यात्व सर्वघाति प्रकृति है। हमने देखे थे, उसमें कौनसे स्पर्धक होते हैं ? *श्रोता: शैल, अस्थि और दारु बहुभाग।* हां देखो, उसमें **शैल, अस्थि और दारु बहुभाग तीन प्रकार के स्पर्धक पाये जाते हैं। क्षयोपशमलब्धि में उनका अनुभाग अनंतगुणा घटता जाता है फिर भी उसे मिथ्यात्व प्रकृति का क्षयोपशम नहीं कहते।** क्योंकि वह तो औदयिक भाव है न ? मिथ्यात्व का उदय है और मिथ्यात्व परिणाम चल रहा है। हां, वह मिथ्यात्व कैसा कहलायेगा ? मंद। मंद हुआ इसलिये उसको सम्यग्दृष्टि नहीं कह सकते हैं। परंतु सम्यक्त्व होने के पूर्व अवस्था में वह मंद-मंद-मंद होते-होते फिर उसका उपशम हो जायेगा।

अब यहीं रुकते हैं हम बाकी चर्चा शाम को करेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

११. शंका-समाधान, विशुद्धिलब्धि

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसी के आधार से पं. टोडरमलजी ने द्वंद्वारी भाषा में सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार नामक भाषाटीका लिखी हुयी है। उसके आधार से अभी हम यहां प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने के पूर्व में जो पर्यायों का क्रम है जिसको पांच लब्धि के नाम से जाना जाता है, उसकी चर्चा कर रहे हैं। पहले हमने पात्रता की बात देखी थी। अपना विषय शुरू करने के पहले हम प्रश्नों की चर्चा करेंगे। प्रश्न उठते हैं, अच्छा है कि हम उस पर विचार कर रहे हैं, है न।

श्रोता: अनेक भवों की अपेक्षा जीव कितनी बार उपशमश्रेणी चढ़ता है ? एक भव में अधिक से अधिक दो बार चढ़ सकता है। परंतु हमने देखा न, उसका अर्द्धपुद्गलपरावर्तन काल है उसमें अधिक से अधिक चार बार उपशमश्रेणी चढ़ सकता है, उससे ज्यादा नहीं। एक भव में अधिक से अधिक दो बार। कोई एक बार भी चढ़ेगा और चढ़ना ही चाहिये यह जरूरी नहीं है। चढ़कर उतरना चाहिये यह भी जरूरी नहीं है परंतु कितनी बार कर सकता है उसका शास्त्र में कथन आता है। कोई डायरेक्ट क्षपकश्रेणी आरोहण करेगा। ये सब केवलीगम्य बातें हैं।

श्रोता: निसर्गरुचि, सूत्ररुचि, बीजरुचि इत्यादि जो दस प्रकार का सम्यक्त्व है, जिसको आज्ञा सम्यक्त्व, मार्ग सम्यक्त्व, बीज सम्यक्त्व आदि नाम हैं उसकी बात है, वह प्रथमोपशम सम्यक्त्व से किस प्रकार भिन्न है या समान है ? कृपया समझाइयें। आज्ञा सम्यक्त्व हो या बीज सम्यक्त्व हो - बाह्य कारणों की अपेक्षा उनका वर्णन है। उनमें निमित्त की अपेक्षा भी बात की जाती है। परंतु सम्यक्त्व तो सम्यक्त्व है। जो आज्ञा सम्यक्त्व है यानी उपदेश ग्रहण किया, उसको सरलता से स्वीकार किया और तत्त्वनिर्णय, आत्मसन्मुखता की और उस जीव को सम्यक्त्व हुआ। करणानुयोग के कठिन विषय हैं उसमें उपयोग सूक्ष्म होता है, उस काल में सम्यक्त्व हो उसे बीजसम्यक्त्व कहते हैं। हो सकता है कोई करणानुयोग के विषय से तत्त्वज्ञान में प्रवेश करता है। क्यों अश्विनभाई ? आपने किया न ? प्रेरणाबेन कहां हैं ? हां, आपकी आज्ञा से आपकी स्टोरी बताती हूं। प्रेरणाबेन बहुत सालों से अच्छी स्वाध्यायी हैं। वह सब जगह प्रवचन सुनने जाती थी परंतु अश्विनभाई कहीं जाने के लिये तैयार नहीं होते थे।

एक बार माटुंगा में कोई व्याख्यान सिरीज थी तो मैंने करणानुयोग परिचय पुस्तक के आधार से वहां छह व्याख्यान किये थे। वहां अश्विनभाई आये थे। सुनकर उन्हें बहुत अच्छा लगा। उन्होंने बोला इनके घर मैं रोज सुनने के लिये आऊंगा। वे अन्यत्र कहीं जाने के लिये तैयार नहीं थे। हमारा रोज सुबह डेढ़ घंटा करणानुयोग चलता है। उस समय हमारा ज्ञानमार्गणा का विषय चल रहा था वह भी ढूंढ़ारी भाषा में - जो उस जमाने की हिन्दी भाषा थी। पहले हमने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका के सभी ग्रंथों का ढूंढ़ारी भाषा में अध्ययन किया था। आधुनिक हिंदी में तो मैंने बाद में ट्रांस्लेट किया। ढूंढ़ारी भाषा में से जीवकाण्ड के ज्ञानमार्गणा का सबसे कठिन विषय तब चल रहा था। *श्रोता: सब मार्गणाओं में कठिन मार्गणा।* हां, प्रेरणाबेन ने उन्हें मना कर दिया कि आप कुछ नहीं समझोगे, मत आना। अश्विनभाई का कहना था मुझे अन्य किसीको सुनना नहीं, मैं आऊंगा तो इसमें आऊंगा, फिर वे आने लगे। हमने बोला किसीको रोकना मत, जो आना चाहते हैं उन्हें ऐसा नहीं कहना कि हम नहीं समझते तो आप क्या समझोगे ? बहुत से ऐसे होते हैं, बच्चों को सुनने की इच्छा होती है और मां-बाप कह देते हैं अरे, हम ही नहीं समझते आप क्या समझोगे ? उनको यह नहीं मालूम कि उनसे बच्चे ज्यादा समझेंगे। *श्रोता: इसलिये वे आने लगे।*

हां, वे आने लगे। उन्होंने इतना जल्दी सीख लिया। प्रतिदिन करणानुयोग के स्वाध्याय में जुड़े। जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार, उन सबकी अर्थसंदष्टि - पहले ढूंढ़ारी में, फिर हिंदी में, फिर धवला की सोलह पुस्तकें, जयधवला की सोलह पुस्तकें, महाबंध की सात पुस्तकें, जिसमें हमारे चौदह-चौदह सौ लेक्चर्स हैं। उसके बाद अभी धवला दूसरी बार, वह भी अभी पंद्रहवीं पुस्तक चल रही है, करीबन चौदह सौ लेक्चर्स अभी-अभी हुये हैं। इसतरह उन्होंने करणानुयोग से शुरुआत की थी। जब करणानुयोग में उनकी अच्छी प्रगति हो गयी, तो डरते-डरते घर में फोर्स किया कहो या कैसे भी; शाम को द्रव्यानुयोग चलता है तो द्रव्यानुयोग में आने की उन्होंने इच्छा व्यक्त की। *श्रोता: कंडिशनल।* कंडिशन क्या थी ? दिनेशजी को कंडिशन डाली कि आप मुझे कुछ प्रश्न नहीं पूछेंगे। क्योंकि द्रव्य, गुण, पर्याय का कोई अभ्यास नहीं था, मगर करणानुयोग के मास्टर हो गये थे। बाद में द्रव्यानुयोग में प्रवेश किया और फिर वहां से द्रव्यानुयोग में भी बराबर गाड़ी चलती रही। यह तो कितने साल हुये ? बहुत सालों से, *श्रोता: पन्द्रह साल से भी ज्यादा।* पन्द्रह साल से भी ज्यादा हो गये।

हमारे यहां जो आनेवाले हैं, कितने ही लोग तो पच्चीस-पच्चीस साल से रोज स्वाध्याय में आनेवाले हैं। श्रोता: रोज ? रोज, डेली। एक दिन कुछ कारणवश नहीं आयेंगे तो पहले फोन से बता देंगे आज हम इस कारण से नहीं आ सकते। किसको कौनसे विषय की कब रुचि हो जावे यह कह नहीं सकते। श्रोता: करणानुयोग जैसे कठिन विषय में ? उसमें कुछ कठिन नहीं है, हर एक के रुचि का भाग है। किसीको किसीमें रुचि होती है परंतु इन विषयों का भी अभ्यास करके हमें अपना भेदज्ञान करना है। भेदज्ञान से ही सम्यक्त्व होगा। बाह्य निमित्त कौनसा था उससे कुछ लेना देना नहीं है। सम्यक्त्व तो सम्यक्त्व है। वह आज्ञा सम्यक्त्व हो या मार्ग सम्यक्त्व या बीज सम्यक्त्व हो - सम्यक्त्व में तो कोई डिफरन्स नहीं है। अभी हम आगे बढ़ते हैं।

श्रोता: क्षयोपशमलब्धि में अनंतगुणा हीन होकर जो प्रकृति का उदय आता है उसे जीव उस समय कैसे अनुभवन करता है ? वेदता है ? क्या तब वह उदय उसे विचलित करता है ? देखो, कर्मों में जो कुछ उदय वगैरह हो रहा है; अभी आपका जो क्षयोपशम चल रहा है, मतिज्ञानावरण का क्षयोपशम चल रहा है यानी क्या हो रहा है ? सर्वधाति स्पर्धक देशघातिरूप से उदय में आ रहे हैं और हमारा ज्ञान चल रहा है। तो आप कितना विचलित हो रहे हैं ? अरे, हम तो जान रहे हैं। क्रोध का भी उदय चलता है, हम क्रोध भी करते हैं। लोभ का उदय है, लोभ भी करते हैं। क्या हो रहा है ? कुछ नहीं हो रहा है। उसके कर्म का उदय ऐसा कुछ दिखेगा नहीं। जीव के परिणामों को बतानेवाली कर्म की वहां क्या पोझिशन है उसकी बात है। जीव के जो कुछ चल रहा है, ज्ञान का विकास हो रहा है क्योंकि अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग घट रहा है। ज्ञानावरण का अनुभाग मंद है। आवरण कम हुआ तो क्या होगा ? श्रोता: ज्ञान का उघाड़। ज्ञान का उघाड़ हो गया। जो चीजें पहले नहीं समझती थी वे समझ में आने लगेगी। उसमें विचलित होने का तो कोई सवाल ही नहीं है।

श्रोता: अभी अगर मिथ्यात्व मंद करता है यानी प्रथम चार लब्धि प्राप्त करता है, पर शैल, अस्थिवाला जीव तो क्षयोपशमलब्धि प्राप्त करता ही नहीं है, यह विरोधाभास प्लीज समझाइये ? देखो, मंद करता है वह कहने की बात है। करता है यानी वह सहज होता है और क्षयोपशमलब्धि कुछ सोच-समझकर करने की बात नहीं है। हां, अभी जिस काल में जिसको सम्यग्दर्शन होनेवाला है उसके पूर्व में नँचरली उस जीव के तत्त्वविचार चलेंगे। उस अंतर्मुहूर्त में क्या-क्या होता है उसकी यह चर्चा है। अभी भले

ही उसको देशना मिली है और विचार कर रहा है परंतु यदि स्व सन्मुखता का पुरुषार्थ नहीं करेगा, करणलब्धि तक नहीं पहुंचेगा उसको सम्यक्त्व नहीं होगा। उसमें इतनी सी बात है। इसमें बताते हैं कि शैल, अस्थिवाला जीव क्षयोपशमलब्धि प्राप्त करता ही नहीं - उस काल में नहीं कर रहा है। हमेशा शैल, अस्थिवाला उदय थोड़े ही रहेगा ? कर्मों का जो अनुभाग उदय में आ रहा है वह हीनाधिक होता रहता है क्योंकि वह अलग-अलग समयों में बांधा है और अलग-अलग समय में जीव के परिणाम भी जुड़े-जुड़े हो रहे हैं। कोई जो पहले तीव्र मिथ्यादृष्टि था, बहुत विरोध करता था, कालांतर में वही किसी निमित्त से स्वाध्याय में जुड़ जाता है। हम इसके निमित्त से हुआ ऐसा कहेंगे। परंतु निमित्त से कुछ कार्य नहीं होता। उस जीव की ऐसी योग्यता हो जाती है कि उसमें रुचि पैदा होती है। हम उसको निमित्त के साथ जोड़ देते हैं। किसीके साथ कुछ हादसा हुआ या घर में किसीकी मृत्यु हो गयी, वह विचार करने लगा। फिर स्वाध्याय में आ गया। निमित्त कुछ भी हो, उससे कुछ डिफरन्स नहीं पड़ता है। हां, उस जीव की ऐसी योग्यता थी कि विशिष्ट समय में वह टर्न हो गया। हमने ऐसे भी बहुत लोग देखे हैं - जिनका बहुत विरोध था, बहुत अरुचि थी, वे भी इसमें जुड़ गये हैं और बहुत फास्ट आगे बढ़े हैं, ऐसा भी हो सकता है। यानी कुछ विरोधाभास नहीं है।

श्रोता: तीन प्रकार की विपरीतता क्या होती है ? कारणविपरीतता, स्वरूप विपरीतता आदि, थोड़ासा बता दीजिये ? अपना विषय ही जुदा चल रहा है न ? फिर भी देखो, मिथ्याज्ञान में कारण के बाबत में विपरीतता है; विपरीतता यानी क्या ? *श्रोता: उलटी मान्यता।* उलटी मान्यता तो है, विपरीतता यहां ज्ञान में लगाना है। उसे कारण के बारे में अज्ञान है या मिथ्याज्ञान है, वह कारणविपरीतता है। कारण के बिना कार्य नहीं होता है। जहां कार्य हो रहा है वहां कारण तो होता ही होता है। कार्य यानी पर्याय, जहां पर्याय हो रही है वहां कारण विद्यमान हैं। कौनसे कारण विद्यमान हैं ? उपादान कारण द्रव्य की निजशक्ति है। वह तो त्रिकाल विद्यमान है ही, परंतु विशिष्ट समय में विशिष्ट पर्यायरूप होने की क्षणवर्ती योग्यता भी द्रव्य में विद्यमान है जिसको हम क्षणिक उपादान कहेंगे और उसी समय कोई निमित्त यानी अन्य द्रव्य जो अपना स्वयं का कार्य कर रहा है; हमें ऐसा लगता है कि निमित्त आया न, इसलिये यहां कार्य हुआ। क्योंकि द्रव्य की अंतरंग की जो शक्ति है वह दिखायी नहीं देती।

जैसे हमने आपको बोला था कि बीज में वृक्ष होने की शक्ति है। वह शक्ति

दिखती नहीं है। हमें क्या दिखता है ? हां, किसीने उसको मिट्टी के अंदर डालकर बराबर अच्छा ठीक तरह से बोया। फिर रोज उसको पानी डालता रहा। देखो, इसने मेहनत की और इतना बड़ा वृक्ष हुआ। परंतु बीज में वृक्ष होने की निजशक्ति है। अगर किसान ने वृक्ष बड़ा किया है तो एक पत्थर को बोना था न ? उसमें हमें आम का वृक्ष मिलना चाहिये था - ऐसा तो नहीं होता है। जो निजशक्ति है उसको उपादान कारण कहते हैं। उपादान कारण से ही कार्य होता है। निमित्त होता जरूर है परंतु निमित्त से उपादान के कार्य में कुछ हेराफेरी हुयी, ज्यादा प्रभाव डाला, उसने मदद की, उसके लिये अनुकूलता बनायी, ऐसा कुछ भी उसमें नहीं होता।

अपने ज्ञान में कारण संबंधी निर्णय करना, अपनी बुद्धि से उसका निर्णय करना बहुत आवश्यक है। निमित्ताधीन दृष्टि पड़ी है कि निमित्त के बिना कार्य होता ही नहीं। हां, निमित्त होता जरूर है। निमित्त की उपस्थिति में भी निमित्त से कार्य नहीं होता। नहीं समझे ? हम बीमार हो गये। डॉक्टर के पास गये। उन्होंने हमें दवा दी। वह दवा हमने खायी। दवा खायी तो रोग ठीक हुआ। तो दवा से रोग ठीक हुआ कि नहीं हुआ ? शरीर की अवस्था शरीर के कारण होती है, रोगीरूप अवस्था मिटकर निरोगी अवस्था हुयी, वह कार्य शरीर में हुआ है। उसकी अपनी उपादान की योग्यता से ऐसा उसका परिणामन हुआ, उस समय निमित्तरूप से दवा थी। निमित्त होने पर भी, निमित्त ने उस शरीर में कुछ हेराफेरी नहीं की इसका हमें बराबर निर्णय करना है। कोई लोग तो निमित्त को ही उड़ा देते हैं। आज से हम दवा खायेंगे ही नहीं, क्यों ? निमित्त से कार्य नहीं होता है। तो उन्होंने सही माना कि नहीं माना ? *श्रोता: नहीं माना।*

निमित्त होता है परंतु जो कार्य हो रहा है, वह निमित्त से नहीं हो रहा इसका हमें निर्णय करना है। ना उसको हटाना है, ना उसको जुटाने की कोशिश में लगना है। हमें अपनी बुद्धि में निर्णय करना है। यह सारे निर्णय करना ही पुरुषार्थ है और हम तो कुछ करने-धरने में, कुछ क्रिया करने में पुरुषार्थ मानते हैं। स्वरूपविपरीतता ? प्रत्येक द्रव्य का स्वरूप क्या है ? सारे सिद्धान्त क्या हैं ? उनके बारे में विपरीतता चलती है। भेदाभेदविपरीतता यानी द्रव्य का स्वरूप कैसा है ? भेदरूप है कि अभेदरूप है ? उस संबंधी जो विपरीतता चलती है; जब तक वे सारी विपरीतता हैं तब तक उसको निर्णय भी नहीं है। जब तक ज्ञान में विपरीतता चल रही है तब तक सम्यग्दर्शन भी नहीं होगा।

श्रोता: क्या सम्मूर्च्छन मनुष्य की उत्पत्ति मात्र आर्यखंड की महिलाओं की कांख आदि में पायी जाती है ? क्या म्लेच्छखण्ड व अन्य क्षेत्रों में उनकी उत्पत्ति नहीं होती ? अन्य क्षेत्र में बिलकुल नहीं होती। श्रोता: यदि कारण हो तो बतलाइये ? अब यह तो सर्वज्ञ ने जानी हुयी बात है जो आगम में लिखी हुयी है; आगम हमारे लिये प्रमाण हैं। आगम किससे बने हैं ? सर्वज्ञ भगवान के द्वारा जो बात दिव्यध्वनि में आयी है और गणधरों ने सूत्ररूप रचना की है और परंपरा से आचार्यों ने उसीकी लिखितरूप से रचना की है जो अभी हमारे पास आगम उपलब्ध हैं। कहते हैं सर्वज्ञ की वाणी इटसेल्फ प्रमाण है। प्रमाण है यानी वही प्रूफ है। उसको सिद्ध करने के लिये अन्य किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती। आगम खुद प्रमाण है।

जैसे आपके गांव में सूर्य उगता है क्या ? कहां पर ? अहमदाबाद में। कौनसी टॉर्च लेकर देखते हो, बोलो ? वह अपने आप में इतना प्रकाशमान है तो उस प्रकाश को देखने के लिये अन्य प्रकाश की जरूरत नहीं है। वह तो बहुत ऑर्डिनरि दृष्टान्त है परंतु यहां तो कहते हैं कि केवलज्ञान के द्वारा भगवान ने जो जाना है और बताया है, उसकी सूत्ररूप रचना जिसको हम आगम कहते हैं, उस आगम को सिद्ध करने के लिये, प्रूव करने के लिये, किसी सायंटिस्ट की या अन्य किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। सूत्र में जो लिखा है वह अपने आप में प्रमाण है। आप कहेंगे हम नहीं मानेंगे। यह आपकी मर्जी है। जबरदस्ती से कोई किसीको मानने के लिये नहीं कह रहा है। जिसने सर्वज्ञ का निर्णय किया है उसको सर्वज्ञ की बात मानने में कोई परेशानी नहीं होती है। किसीको यह बात नहीं रुचती है, नहीं पचती है क्योंकि अभी उसने सर्वज्ञ का निर्णय नहीं किया है। उसके केवलज्ञान का निर्णय नहीं हुआ है। जिस समय निर्णय होगा उस समय सम्यग्दर्शन हो जायेगा, कोई डाउट वगैरह कुछ नहीं रहेगा।

श्रोता: अभव्य जीव फिर कभी भव्य बन सकता है क्या ? बिलकुल नहीं बनता। क्योंकि उसकी ऐसी पर्यायगत योग्यता अनादिअनंत पड़ी रहती है। श्रोता: उसे कैसे पहचाना जाये ? उसको पहचानने की कोई जरूरत नहीं है। ऐसे कोई बाह्य चिन्ह से उसकी पहचान नहीं होती। श्रोता: क्या वह अभव्य जीव, द्रव्यलिंग धारण करके ग्रैवेयक तक पहुंच सकता है ? पहुंच सकता है, क्यों नहीं पहुंच सकता ? मिथ्यात्व अवस्था में जितना शुभभाव हो सकता है वह उसे भी हो सकता है। उसे भी प्रायोग्यलब्धि तक सब परिणाम हो सकते हैं। ख्याल में आयी बात ? उसे किसी बाह्य

आचरण से - उसकी कोई बाह्य बिहेविअर से हम उसका अंदाज़ा नहीं लगा सकते। मैं खुद भव्य हूं कि अभव्य हूं, यह प्रश्न भी लोगों को उठता है। तो कहते हैं आप उसकी चिंता छोड़ दो और तत्त्व का निर्णय करने लग जाओ। सम्यक्त्व प्रकट करो, स्वयं सिद्ध हो जायेगा कि आप भव्य हो। दूसरों को पूछने की क्या आवश्यकता है ? है न। एक महिला बहुत बार फोन करती है कि मैं भव्य हूं कि अभव्य हूं ? भव्य हूं कि अभव्य हूं ? अभी टेलिफोन पर उसको क्या बताये कि तू भव्य है कि अभव्य है ? तो कहती है मेरी दादी मुझे कहती है तू अभव्य है क्योंकि उसको भी बार-बार पूछती होगी न।

प्रश्न: पृष्ठ ६९ नीचे से तीसरा पैरेग्राफ- इन ४-४ स्थानों में अनंत-अनंत स्पर्धक... यह पैरेग्राफ थोड़ा अधिक स्पष्ट करने का कष्ट करें। हमने सभी स्पर्धकों को चार-चार नाम देकर बताया था। उनको स्थान कहते हैं। घातिकर्मों के स्पर्धकों के चार नाम कौनसे हैं ? नीचे से ऊपर अगर कहना है तो लता, दारु, अस्थि और शैल। अघातिकर्मों में अप्रशस्त के स्पर्धक हैं- नीम, कांजीर, विष और हलाहल। तथा प्रशस्त के स्पर्धकों के नाम हैं- गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत। इन ४-४ स्थानों में से प्रत्येक स्थान में अनंत स्पर्धक होते हैं। हमने केवल उसको नीमवाला कह दिया या दारुवाला कह दिया। जो कुछ कहा तो उनमें अनंत-अनंत स्पर्धक पड़े हैं और एक-एक स्पर्धक में अनंत-अनंत वर्गणा होती हैं।

स्पर्धक किसको कहते हैं ? वर्गणाओं के समूह को स्पर्धक कहते हैं। वर्गणा किसको कहते हैं ? वर्गों के समूह को। परंतु उसमें कंडिशन है- समान अनुभागवाले वर्ग होने चाहिये, वर्ग यानी कर्मपरमाणु जिनमें समान अनुभाग है। हम मान लेते हैं न, अनंत के बदले १०० मान लो। जिनमें १००-१०० डिग्री अनुभाग है उन सबको हम एक लाइन में लिखेंगे। लिखेंगे, वहां वे एक लाइन में नहीं पड़े हैं। उसको क्या कहेंगे ? समान अनुभागवाले हैं न, उनकी एक वर्गणा हुयी। जिनमें १०१वाला अनुभाग है वे ? हम उन सभी की दूसरी लाइन बना देंगे। उसको हम कहेंगे यह दूसरी वर्गणा है। तो १००वाली एक है, १०१वाली है, १०२वाली, १०३वाली इसतरह से एक-एक से बढ़ती हुयी वर्गणा हैं। फिर ऊपर गॅप होती है। बाद में क्या है ? १०० से दोगुणा डायरेक्ट २००वाली वर्गणा हो जायेगी। यानी १००, १०१, १०२, १०३ हमने गिनने के लिये १०४ तक गिने हैं। फिर बीच में गॅप हुयी, बीच में कोई वर्गणा ही नहीं है। डायरेक्ट कौनसी वर्गणा होगी ? डबलवाली, २००वाली। वहां से दूसरा स्पर्धक शुरू हुआ। उसमें भी एक-एक से बढ़ती

हुयी वर्गणा हैं - २०१, २०२, २०३, २०४।

यह तो समझाने के लिये मैंने बहुत छोटी संख्या लेकर बताया है। ऐसा कोई उदाहरण शास्त्र में नहीं है, हम समझ पाये इसलिये बताया है। जहां ३०० से शुरुआत हुयी, वहां क्या कहेंगे ? तीसरा स्पर्धक। ४०० से शुरुआत - चौथा स्पर्धक। ऐसे स्पर्धक भी कितने होते हैं ? अनंत होते हैं। ऊपर सब बढ़ते हुये अनुभाग हैं न ? दोगुणा हुआ, तीनगुणा हुआ, चारगुणा हुआ, पांचगुणा, अनंतगुणा हो गया। तो कहते हैं ऐसे हीन अनुभागवाले नीचे के अनंत स्पर्धकों को हम नाम देंगे। जैसे घातिकर्मों में कहेंगे ये लतावाले हैं। उसके ऊपर के अनंत हैं उनको कहेंगे ये दारुभागवाले हैं। उसके ऊपर के जो अनंत हैं उनको कहेंगे अस्थिभागवाले हैं और ऊपर के शैलवाले। शास्त्र में ये नाम बताये हैं। एक-एक स्पर्धक में अनंत वर्गणा होती हैं। एक-एक वर्गणा में अनंत वर्ग यानी कर्मपरमाणु होते हैं और हर एक में अपने-अपने अविभागप्रतिच्छेद होते हैं।

देखो, अनंत-अनंत कहते हैं, उस अनंत का प्रमाण कितना है ? क्योंकि अनंत के भी अनंत व्हेरिएशन्स होते हैं। तो कौनसा पर्टिक्युलर अनंत है ? जो अभव्यों से अनंतगुणा है। अभव्य कितने होते हैं ? *श्रोता: जघन्य युक्तानंत।* जघन्य युक्तानंत। हमने आवली के समय देखे थे जघन्य युक्तासंख्यात और अभव्य जीव जघन्य युक्तानंत हैं। उसमें से कितने तो नित्यनिगोद में भी होंगे, कितने और कहां-कहां पड़े हैं - सभी पर्यायों में पड़े हैं। कितने कहां हैं उससे मतलब नहीं हैं। उससे भी अनंतगुणे परंतु सिद्धराशिवाला अनंत है उससे अनंतवां भाग। इन बिट्टीन जो कोई हैं इतने अनंत परमाणुओं की एक वर्गणा है और इतनी अनंत कार्माणवर्गणा का एक समयप्रबद्ध होता है। मैं समयप्रबद्ध की बात कर रही हूं और यहां कर्म की बात है, कर्म परमाणु वर्ग है। एक-एक वर्गणा में अनंत वर्ग हैं। एक-एक स्पर्धक में अनंत वर्गणायेँ होती हैं और ऐसे स्पर्धक भी कितने होते हैं ? अनंत होते हैं। यहां हम अनंतों में ही डील करते हैं। निलेशभाई, आपका क्या लाखों का, नहीं, करोड़ों का कारोबार होगा, है न ? हम तो असंख्यात और अनंतों में ही बात करते हैं। हमें करोड़ बहुत छोटी संख्या लगती है !

अब इन सभी अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग- सत्ता में तो सारे पड़े हैं न, उदय में भी आ रहे हैं परंतु प्रति समय समान उदय नहीं होता। कभी तीव्र उदय, कभी मंद उदय यथायोग्य होता है। उसके नियमों में नहीं जायेंगे हम, वहां जो कुछ तीव्र या मंद

उदय हो रहा था। अभी क्या हो रहा है ? जितना है उससे भी और घटते हुये उदय में आयेगा। अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग हीन-हीन-हीन हो रहा है। तो उस काल में क्या होगा ? उसके उदयरूप जो फल होता है, वह भी डायल्यूट होता चला जायेगा न ? स्वाभाविक ही है। देखो, अभी हम ऐसा देखते हैं कि जैसे हमने ज्ञानावरण की बात की। ज्ञानावरण है, दर्शनावरण है, अंतराय है; अंतराय कौनसा ? वह विघ्नवाला है। पुरुषार्थ कम चल रहा है। अभी यहां क्या हो रहा है ? अनुभाग घटता चला जाये तो पुरुषार्थ बढ़ेगा कि नहीं बढ़ेगा ? *श्रोता: बढ़ेगा*। ज्ञान बढ़ेगा, दर्शन बढ़ेगा, पुरुषार्थ बढ़ेगा। मोहनीय में क्या हो रहा है ? मोह भी मंद हो रहा है। चारित्रमोहनीय भी मंद हो रहा है। तो क्या होगा ? कषाय की मंदता यानी वह शुभरागरूप सहज प्रवृत्ति होगी न वहां ? अभी उसको सम्यक्त्व हुआ नहीं है। अभी शुद्धभाव तो हुआ नहीं है और कषाय मंद हो रहे हैं यानी वहां धर्मानुरागरूप वृत्ति भी बढ़ेगी। हम यह सब कर्मों की भाषा में समझाने की कोशिश कर रहे हैं।

अब हम पात्रता को याद करके आगे बढ़ेंगे। प्रथमोपशम सम्यक्त्व की पात्रता में किसको लेना ? कौनसे गतिवाले जीव को सम्यक्त्व होता है ? *श्रोता: चारों गतिवाले*। हां, चारों गतिवाले परंतु एक कंडिशन बतायी थी ? *श्रोता: भव्य*। भव्य, और क्या होना चाहिये ? मिथ्यादृष्टि होना चाहिये क्योंकि प्रथमोपशम की बात है वहां मिथ्यादृष्टि की कंडिशन है। क्षयोपशम सम्यक्त्व औपशमिक में से भी हो सकता है। क्षायिक सम्यक्त्व क्षयोपशम सम्यक्त्व में से होता है। द्वितीयोपशम सम्यक्त्व भी क्षयोपशम सम्यक्त्व में से होता है। परंतु प्रथमोपशम सम्यक्त्व मिथ्यादृष्टि के होता है यानी मिथ्यात्व से वह सम्यग्दृष्टि हो जाता है। कैसे होता है ? वहां कर्मों का उपशम करके होता है। उसको प्रथमोपशम सम्यक्त्व कहेंगे। हमने क्या देखा ? चारों गतिवाला, भव्य, मिथ्यादृष्टि, संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव होना चाहिये, असंज्ञी को सम्यक्त्व नहीं होगा। पर्याप्त होना चाहिये, पर्याप्त के बाद ? *श्रोता: गर्भज*। अगर मनुष्यों और तिर्यचों की अपेक्षा बात करते हैं तो गर्भज होना चाहिये। देव और नारकी तो पर्याप्त होने पर अंतर्मुहूर्त में सम्यक्त्व प्राप्त कर सकते हैं। वे उपपाद जन्मवाले हैं, परंतु तिर्यचों में सम्मूर्च्छनवाले भी पर्याप्त जीव हो सकते हैं। उनका निषेध करने के लिये गर्भजवाली कंडिशन डाली।

सम्मूर्च्छन संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यच को सम्यक्त्व हो सकता है परंतु वह क्षयोपशम सम्यक्त्व होगा। किसको ? *श्रोता: सादि मिथ्यादृष्टि*। सादि मिथ्यादृष्टि को। यहां हमारी

किसकी बात चल रही है ? प्रथमोपशम सम्यक्त्व की बात चल रही है। इसलिये गर्भज तिर्यच कहा, मनुष्य तो गर्भज ही होंगे क्योंकि हमें पर्याप्त मनुष्य ही चाहिये। लब्धिअपर्याप्त की सम्यक्त्व की योग्यता ही नहीं है। फिर आगे ? श्रोता: मंदकषाय। हां, मंदकषायरूप, विशुद्धि; विशुद्धि का अर्थ क्या है ? मंदकषाय, शुभभावरूप। शुभभाव यानी उसको किसी क्रिया से मत जोड़ना। जीवों के सहज संक्लेश-विशुद्ध परिणाम होते हैं, मंदकषाय होते हैं तो उसके साथ उसको जोड़ना। क्योंकि विशुद्धि के अनेक अर्थ होते हैं। पूर्ण विशुद्धि यानी कभी वीतरागता को भी कहते हैं। परंतु यहां विशुद्धि यानी कषायों का मंदता की ओर बढ़ना उसको विशुद्धि कहते हैं। वह आता है न, अमृतचंद्र आचार्य ने कहा है 'मम परमविशुद्धिर्भवतु' यानी कषाय और मंदता की ओर चले जाते हैं। वह शुभभावरूप है परंतु शुभभाव कहने से हम कुछ पूजा, स्वाध्याय, वगैरह क्रिया के साथ जोड़ते हैं उसकी बात यहां नहीं है।

उसके बाद हमने क्या देखा था ? शुभ लेश्या। मंदकषायरूप विशुद्धता में ही लेश्या की बात आयेगी कि मनुष्य और तिर्यचों में शुभ लेश्या में होगा। शुभ यानी ? देखो, परिणाम को हम संक्लेश विशुद्धि के रूप में दो भागों में बताते हैं और लेश्या की बात करनी है तो छह लेश्या बतायी हैं। उनमें जो संक्लेश की ओर है उसे कहेंगे कृष्णलेश्या -अतितीव्र संक्लेशवाले। फिर उससे थोड़ा मंद है, है तो अशुभ लेश्या उसको कहेंगे नीललेश्या। उससे थोड़ा मंद कापोतलेश्या। अब विशुद्धि की ओर कहेंगे तो पीतलेश्या। उससे अधिक विशुद्धि ? श्रोता: पद्मलेश्या। पद्मलेश्या। उससे ज्यादा विशुद्धि ? श्रोता: शुक्ललेश्या। शुक्ललेश्या। उनमें भी हर एक में तीव्र-मंद के असंख्यात भेद होते हैं। मनुष्य और तिर्यचों में शुभ लेश्या में ही सम्यक्त्व होगा क्योंकि उनके तत्त्वविचार के काल में शुभ लेश्या होगी और उसके काल में ही सम्यक्त्व होगा।

नारकियों में अपनी-अपनी अशुभ लेश्या ही होती है। जैसे कृष्णलेश्यावाला नारकी कभी नीलवाला नहीं होगा। उसके कृष्णलेश्या के जो असंख्यात लोकप्रमाण क्लेरिफिकेन्स हैं, उनमें तीव्रता से बिलकुल मंदता की ओर आयेगा। उसके परिणाम सहजरूप से ऐसे होंगे तो उस काल में उसको विशुद्धिलब्धि कहलायेगी क्योंकि उसके योग्य जो परिणाम हैं उसमें से वह मंदता की ओर आया है। उस समय उसके तत्त्वविचार, भेदज्ञान - जो कुछ विचार चलते हैं उस काल में सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होगी यह उसका अर्थ होता है। मंद कषायरूप विशुद्धता के धारी में इतना समझना।

अब जाग्रत होना आवश्यक है। क्योंकि संक्लेश हो या विशुद्धि हो, अधिक संक्लेश और अधिक विशुद्धि जाग्रत अवस्था में ही होगी। नींद में वह विशुद्धि कम होती है। उसको कहते हैं प्रतिभग्न हुआ। निद्रा के उदय में जीवों के संक्लेश भी कम होते हैं। इतनी विशुद्धि भी नहीं हो सकती कि उस काल में वह तत्त्व का विचार करके सम्यग्दर्शन प्राप्त करे। इसलिये जाग्रतवाली कंडिशन डाली। साकार ज्ञानोपयोग-ज्ञानोपयोग के काल में सम्यक्त्व की प्राप्ति होगी क्योंकि अभी श्रुतसंबंधी तत्त्वविचार चल रहे हैं तो ज्ञानोपयोग चल रहा है और ज्ञानोपयोग को ही साकार कहते हैं। इसलिये साकार ज्ञानोपयोग में सम्यक्त्व की प्राप्ति होगी।

अब ऐसे जीव को चार लब्धिपूर्वक करणलब्धि होती है और करणलब्धि के पश्चात् इमीजिएट नेक्स्ट समय में सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। औपशमिक सम्यक्त्व होता है तो कर्मों में क्या-क्या बातें होती हैं, जीव में क्या बातें होती हैं, उसके पहले इन पांच लब्धि में क्या-क्या होता है उन सभी की हम यहां चर्चा करेंगे। हमने पात्रता देखी और उसके बाद पांच लब्धि के नाम भी हमने देखे। कौनसी पांच लब्धि होती है ? श्रोता: क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि। हमने क्षयोपशमलब्धि की विशेषता देखी। क्षयोपशम और क्षयोपशमलब्धि दोनों परिभाषाओं को हमें देखना है। क्षयोपशम की परिभाषा किसे याद है ? श्रोता: वर्तमानकालीन सर्वघाति स्पर्धकों का उदयाभावी क्षय। बहुत अच्छा। श्रोता: भविष्यकालीन सर्वघाति स्पर्धकों का सदवस्थारूप उपशम। बहुत अच्छा और ? श्रोता: वर्तमानकालीन देशघाति स्पर्धकों का उदय। इन तीन अवस्थाओं को क्षयोपशम कहते हैं।

अब क्षयोपशमलब्धि की परिभाषा देखनी है। कौन बताना चाहता है ? श्रोता: ज्ञानावरणादि समस्त अप्रशस्तकर्म प्रकृतियों का अनुभाग। देखो, ज्ञानावरणादि समस्त अप्रशस्त कर्म प्रकृतियों का अनुभाग, प्रतिसमय कैसे उदय में आता है ? अनंतगुणा हीन होते हुये उदय में आता है। एक समय में जितना है उससे दूसरे समय में अनंतवां भाग, उसका अनंतवां भाग, उसका अनंतवां भाग। जिस काल में उदय में आने लगे उस काल में क्या कहेंगे ? क्षयोपशमलब्धि। यह अंतर्मुहूर्त की बात है। संज्ञी पंचेन्द्रिय संबंधी हमारा पांच इन्द्रियां, मन को जानने संबंधी क्षयोपशम यानी ज्ञान का इतना उछाड़; कब से चल रहा है ? हम इस मनुष्यपर्याय में हैं तब से हमारा क्षयोपशम चल रहा है। अरे, हर एक का अपना-अपना क्षयोपशम है। एकेन्द्रियों को उनके योग्य

क्षयोपशम है कि नहीं है ? श्रोता: है/ संज्ञी पंचेन्द्रियों को उनके योग्य है कि नहीं है ? तो केवल संज्ञी पंचेन्द्रिय हुआ यह क्षयोपशमलब्धि नहीं कहलायेगी। नहीं समझे ?

तीव्र मिथ्यादृष्टि है उसको क्षयोपशम है कि नहीं है ? श्रोता: है/ तो उसको उस काल में क्षयोपशमलब्धि चल रही है क्या ? श्रोता: नहीं/ नहीं, क्षयोपशम जुदा है और क्षयोपशमलब्धि जुदी है। यह बात ख्याल में आयी ? क्षयोपशम और क्षयोपशमलब्धि में जो डिफरन्स है, अंतर है उसको अगर हम निश्चित नहीं करेंगे तो संज्ञी पंचेन्द्रिय हुआ तो सबको क्षयोपशमलब्धि है ही ऐसा मानकर बैठते हैं और ऐसी मान्यता चल रही थी। उसकी परिभाषा को हम थोड़े विस्तार से देखने की कोशिश करेंगे तो ही यह बात क्लिअर होती है। क्योंकि संज्ञी पंचेन्द्रिय संबंधी क्षयोपशम तो अति तीव्र रागद्वेष के काल में भी है कि नहीं है ? श्रोता: है/ हां, नींद में ? श्रोता: है/ नींद में भी है। बेहोश हो गया, अभी कोमा में गया तो संज्ञी पंचेन्द्रियपना नष्ट होगा ? श्रोता: नहीं/

अरे, हमें कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि बेहोश जीव क्या समझ रहा है ? नहीं समझे ? वहां उसका क्या जानना चल रहा है ? हमें क्या पता है ? वहां भी जानना रुक गया क्या ? श्रोता: नहीं/ परंतु हम कोशिश करते हैं, उसको चुभाते हैं और क्या-क्या करते हैं ? डॉक्टर हँसर मारकर देखते हैं, है न ? डॉक्टर को मालूम नहीं कि वह क्या-क्या जानता है। परंतु वहां जानने का कार्य चलेगा कि नहीं चलेगा ? श्रोता: चलेगा/ क्योंकि ज्ञानावरण वगैरह का क्षयोपशम वहां भी चलेगा। तो वहां कर्मबंध होता होगा कि रुक गया है ? श्रोता: होता है/ होता है। नहीं तो सब कोमा में चले जायेंगे। क्षयोपशम बात अलग है और सम्यग्दर्शन के पूर्व में होनेवाली क्षयोपशमलब्धि अलग बात है। यहां तक बात समझ में आयी न ? श्रोता: आज ही समझ में आयी। चलो, क्षयोपशम बढ़ गया ? तो लब्धि शुरू हो गयी ? इसके साथ हमने यह भी देखा था-समस्त अप्रशस्त कर्मप्रकृतियां लेनी हैं। यहां अकेले ज्ञानावरण की बात नहीं लेनी है। उसके साथ अन्य भी अप्रशस्त प्रकृतियां हैं।

यहां मोहनीय को भी ले लेना है, मिथ्यात्व का भी उदय है, उसका भी अनुभाग घटकर उदय में आयेगा। चारित्रमोहनीय भी चल रहा है। अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन सभी कषाय चल रही हैं। कोई क्रोध में होगा, कोई मान में, कोई माया में, कोई लोभ में। तो मेरा प्रश्न है, कौनसे उदय सहित

जीव को सम्यक्त्व होगा ? किसीको क्रोध हो रहा है, किसी कषाय का तो उदय चलेगा कि नहीं चलेगा ? *श्रोता: अप्रत्याख्यानावरण।* ना-ना-ना-ना, अभी यह मिथ्यादृष्टि है। पांच लब्धि मिथ्यादृष्टि को होती हैं कि सम्यग्दृष्टि को ? *श्रोता: मिथ्यादृष्टि को।* क्योंकि सम्यग्दर्शन के पूर्व की बात है। मिथ्यात्व में से सम्यग्दृष्टि होनेवाला है। यानी ये पांचों लब्धि मिथ्यादृष्टि के हैं। इस समय मिथ्यात्व अवस्था चल रही है न ? हां, तो उसको क्रोधादि किसी न किसी कषाय का उदय चलेगा कि नहीं ? अनंतानुबंधी भले ही मंद हुआ है परंतु चारों क्रोध का उदय होगा या चार मान का या चार माया का या चार लोभ का। तो कौनसे उदय में सम्यक्त्व होगा ? *श्रोता: अनंतानुबंधी के उदय में।* अकेले अनंतानुबंधी का उदय किसीके भी नहीं पाया जाता।

जहां अनंतानुबंधी होता है न, वहां अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन सभी होते हैं। तो मेरा यह प्रश्न है क्रोध के उदय सहितवाले को सम्यक्त्व होगा कि मान के उदय सहितवाले को होगा ? *श्रोता: किसीको भी नहीं।* किसीको भी नहीं तो सम्यक्त्व ही नहीं होगा ? *श्रोता: होगा।* अरे, परंतु इसके उदय बिना जीव होगा ही नहीं। अरे, उदय तो दसवें तक है। दसवें में लोभ का उदय है। श्रेणी में भी उदय है तो इसकी क्या बात है ? *श्रोता: कोई भी चलेगा।* कोई भी चलेगा बात सही है। जैसे हमने देखा न कोई योग होगा; मनोयोग, वचनयोग, काययोग कोई भी हो सकता है। ऐसा कोई बाहर किसीसे गुस्सा कर रहा है ऐसा हमने कहां पूछा आपको ? परंतु उस समय उसके क्रोध-मान-माया-लोभ रुक गये हैं कि चल रहे हैं ? *श्रोता: चल रहे हैं।* चल रहे हैं यानी वह क्रोध के उदय सहित होगा या लोभ के उदय सहित उससे कोई मायना नहीं है।

अनंतानुबंधी का उदय कब तक है ? वह करणलब्धि के अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय तक है। तब तक उसके वे सभी सोलह कषाय कर्म बंधेंगे - वह क्रोध करे, मान करे, माया करे, लोभ करे - कुछ भी करे, करे यानी हम उसकी वह क्रिया को देखते हैं। देखो, हमेशा परिणामों को देखना है और हम क्रिया में घुसते हैं। बाहर किसीके साथ गुस्सा करते-करते, लड़ाई करते-करते सम्यग्दर्शन हुआ ऐसी बात नहीं कर रहे हैं हम। उसको तत्त्वनिर्णय है, - आत्मसन्मुख परिणामों में ही सम्यग्दर्शन होगा और उस काल में उसको कोई उदय तो चल रहा है। हां, यह बात है कि उसने रागादि से भेदज्ञान करके राग से भिन्न अपने ज्ञायक को पहचाना है। वह तो सम्यक्त्व की बात है। अभी तो हम क्षयोपशमलब्धि की बात कर रहे हैं। परंतु उसके वहां रागादि

विद्यमान है न ? इसकी बात चल रही है। जैसे हमने कहा कि कोई भी योग हो सकता है। क्रोधादि में से किसीका भी उदय हो सकता है और उसके शरीर आदि की रचना अन्य-अन्य हो सकती है - वहां संहनन, संस्थान का कोई नियम नहीं है। किसीको भी सम्यक्त्व की प्राप्ति तो हो ही सकती है। यहां तक समझ में आयी बात ?

आगे बढ़ते हैं देखो, पृष्ठ ७१। हमने क्या देखा था कि मोहनीय का भी अनुभाग घटकर उदय में आ रहा है। मोहनीय में दर्शनमोहनीय में मिथ्यात्व को लेना है और चारित्रमोहनीय में ? सारे अनंतानुबंधी आदि सब ले लेना। वहां पच्चीस हैं उन में से जिसका जो उदय होगा उसकी बात करेंगे। तो इनका अनुभाग घटकर उदय में आ रहा है उसका अर्थ क्या हो रहा है ? जीव के परिणाम भी कैसे हैं ? मंद कषायरूप हो रहे हैं। नीचे से तीसरा पॅरेग्राफ फिर दुबारा पढ़ते हैं- **देखो, कैसा सहज सुन्दर नियम है। किसी जीव ने पूर्व में बहुत पाप किये हो, तीव्र मिथ्यात्व का सेवन करके तीव्र अनुभागवाले कर्मों का बंध किया हो तो भी जिस समय उसे अपने आत्मा का स्वरूप तथा तत्त्वज्ञान जानने संबंधी जिज्ञासा और तीव्र रुचि उत्पन्न होती है। अभी वह देशनालब्धि तक नहीं पहुंचा है। हम एक-एक लब्धि को लेकर बात कर रहे हैं। तो उसके पूर्वबद्ध कर्मों का अनुभाग मंद होने लगता है।**

जब मिथ्यात्व और चारित्रमोहनीय कर्म मंद होकर उदय में आने लगेगा तो जाहिर है कि जीव के भी मंद कषायरूप परिणाम होंगे, धर्मानुरागरूप परिणाम होंगे। कर्म से पराधीन होकर वे होते हैं, ऐसा नहीं है। दोनों बातें एक साथ होती हैं। इसी बात को विशुद्धिलब्धि के रूप में बताते हैं। पहली लब्धि कौनसी देखी ? क्षयोपशमलब्धि। उसमें क्या होता है ? सभी अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग प्रतिसमय अनंतगुणा हीन होकर उदय में आने लगता है। प्रति समय यानी यह कंटिन्युअस प्रोसेस बताया है इसलिये आने लगता है कहा। मोहनीय का भी अनुभाग घटकर उदय में आ रहा है तो उस काल में क्या होगा ? जीव के मोह-रागद्वेष के साथ जो निमित्तपना बनता है वे भी मंद होने लगेंगे। **पुराने कर्मों के अनुभाग का उदय मंद होना कारण है- निमित्त है और मिथ्यात्व रागादिकों का मंद होना- शुभपरिणाम होना, उसका नैमित्तिक कार्य है। कार्य को नैमित्तिक कहा है। निमित्त की तरफ से कार्य को नैमित्तिक कहते हैं।**

जैसे शास्त्र में हमेशा कुम्हार और घड़े का उदाहरण देते हैं। घड़ा बना यह एक कार्य हुआ, उसके दो कारण हैं- उपादान कारण मिट्टी है जो स्वयं घड़ेरूप परिणमित हुयी और कुम्हार ? निमित्त है। कुम्हार को निमित्त कहते हैं तो घड़े को उसकी तरफ से क्या कहेंगे ? वह कुम्हार का नैमित्तिक है। मिट्टी उपादान है तो घड़े को उसका उपादेय कहेंगे। मिट्टी और घड़े में उपादान-उपादेय या कर्ता-कर्म संबंध कहेंगे। कुम्हार और घड़े में क्या कहेंगे ? निमित्त-नैमित्तिक संबंध कहेंगे। ऐसे ही जीव और कर्म में जो कुछ बातें चल रही हैं; कर्म को निमित्त कहेंगे तो जीव के उसके समान वहां होनेवाले भाव को नैमित्तिक भाव कहेंगे। चार भाव होते हैं न, कौनसे ? जीव के असाधारण पांच भाव बताये हैं, उनमें से पारिणामिक को छोड़कर औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक, औदयिक, इन चार भावों को नैमित्तिक भाव कहते हैं।

ये सारे नाम कैसे पड़े हैं ? कर्मों की अवस्था की तरफ से उनके नाम दिये हैं। हैं तो जीव के अपने भाव, कर्म से कुछ लेना-देना नहीं है। निमित्त की तरफ से मात्र उनके नाम पड़े हैं। परंतु ये नाम सुनकर हमें क्या लगता है ? देखो कर्म का उपशम हुआ न इसलिये यहां औपशमिक सम्यक्त्व हुआ। कर्म में क्षयोपशम हुआ न इसलिये जीव को ज्ञान हुआ। ऐसा नहीं है। दो स्वतंत्र द्रव्यों में अपना-अपना कार्य अपने से हो रहा है। यह अगर हम भूल जायेंगे तो इतना सारा पढ़कर भी झिरो हो जायेगा। यहां क्या कहते हैं ? **मिथ्यात्व रागादिकों का मंद होना - शुभ परिणाम होना उसका नैमित्तिक कार्य है। इसलिये क्षयोपशमलब्धि को कारण जानकर पहले कहा और विशुद्धिलब्धि को कार्य जानकर पश्चात् कहा।** क्या कहना चाहते हैं ?

एक ही समय में दो चीजें हो रही हैं। कौनसी ? अनुभाग घटकर उदय में आ रहा है उसको क्षयोपशमलब्धि कह रहे हैं। मोहनीय का अनुभाग भी घटकर उदय में आ रहा है तो वहां जीव के परिणाम धर्मानुरागरूप, शुभ परिणाम हो रहे हैं। अनुभाग का घटना उसको कारण कहा, समय वही है और जीव के परिणाम मंद कषायरूप हो रहे हैं, शुभरागरूप परिणाम हो रहे हैं उसको कार्य कहा। एक ही समय में दोनों होते हुये भी एक को कारण कहा, एक को कार्य कहा। इसलिये कारण यानी क्षयोपशमलब्धि को पहला नंबर दिया और विशुद्धिलब्धि को दूसरा नंबर दिया परंतु दोनों ही एक ही समय में होनेवाली बातें हैं। फिर से- विशुद्धि यानी जीव के मंद कषायरूप परिणाम की बात है, ज्ञानावरणादि की बात नहीं है। यहां सभी अप्रशस्त

कर्मों का अनुभाग घट रहा है और यहां हम मिथ्यात्व और चारित्रमोहनीय की चर्चा कर रहे हैं। उसका भी अनुभाग घटकर उदय में आ रहा है। तो जीव में क्या हो रहा है ? *श्रोता: विशुद्धि बढ़ रही है।* विशुद्धि बढ़ रही है यानी उसके कषाय मंदता की ओर चल रहे हैं। मंद-मंद-मंद हो रहे हैं। उसीको क्या कहा ? विशुद्धिलब्धि।

मोहनीय के अनुभाग का मंद उदय यह कारण और यहां जीव के परिणाम मंदता की ओर बढ़ना यह कार्य। हैं तो दोनों एक समय में - जिस समय क्षयोपशमलब्धि है उसी समय विशुद्धिलब्धि है। परंतु कारण को पहला नाम दिया और कार्य को दूसरा नाम दिया। हैं दोनों एक समय में होनेवाली बातें। परंतु पहले कारण को कहने की पद्धति है इसलिये उसको पहले बता दिया। पहले सम्यग्दर्शन होता है कि सम्यग्ज्ञान ? पहले ज्ञान होता है कि पहले दर्शन होता है ? क्या होता है ? *श्रोता: दोनों साथ-साथ।* दोनों साथ में होते हैं। परंतु पहले ज्ञान तो था न ? अभी उसको सम्यक् क्यों कहा ? शास्त्र में ऐसा भी आता है- जानेंगे नहीं तो श्रद्धान कैसा ? यहां कहते हैं श्रद्धान सही हुये बिना ज्ञान को सम्यक् नाम नहीं पाया जाता। तो पहले ज्ञान होता है कि पहले श्रद्धान होता है ? *श्रोता: श्रद्धापूर्वक ज्ञान।* अरे, दोनों बातें चल रही हैं। समझ में आयी बात ? प्रयोजनवश कहीं किसीको मुख्य-गौण करते हैं या किसीको पहले और किसीको बाद में बताते हैं।

फिर से पढ़ते हैं देखो- **पुराने कर्मों के अनुभाग के उदय का मंद होना।** उदय संबंधी अनुभाग की चर्चा है। किस रूप से उदय हो रहा है ? मंद होकर उदय में आ रहा है। यह निमित्त है। कर्मों के उदय को निमित्त कहा। आगे यहां और भी चर्चा करेंगे। तीन बातें एक समय में होती हैं। हमने पहले देखा था, पुराने कर्मों का उदय, जीव के मोह-रागद्वेष परिणाम और नये कर्मों का बंधना, ये तीन बातें जानना। नये कर्मों की बात अभी हमने उठायी नहीं है। पुराने कर्मों के उदय में क्या लिया है ? मोहनीय कर्म का अनुभाग अत्यंत हीन होकर उदय में आ रहा है। यहां जीव के मोह-रागद्वेष के परिणाम भी मंद-मंद हो रहे हैं। ये दोनों एक समय में होनेवाली बातें हैं। यह कर्म में हो रहा है - पुराने सत्ता में पड़े हैं, उदय में आ रहे हैं उनमें हो रहा है और जीव के परिणाम जीव में हो रहे हैं।

परंतु इसको निमित्त कहा, इसलिये इसका नाम पहले लिया और उसका कार्य

जो है उसको दूसरा नाम दिया। अभी इसके कारण जो सातावेदनीय आदि बंधेंगे उसकी बात बाद में करेंगे। उसकी बात अभी होनी है। यहां तक बात समझ में आयी न ? कारण जानकर उसको पहले कह दिया। इसलिये क्षयोपशमलब्धि का नाम पहले लिया। यह बात ख्याल में आती है ? फिर से पढ़ते हैं- **पुराने कर्मों के अनुभाग उदय** यानी उसके उदय किसरूप से हो रहा है ? तो मंद-मंद होकर। उनका **मंद होना कारण है** - कारण यानी **निमित्त है और मिथ्यात्व रागादिकों का** ये जीव में हो रहे हैं, कषाय का **मंद होना** - उसीका दूसरा नाम क्या है ? **शुभ परिणाम होना उसका नैमित्तिक कार्य है।** निमित्त की ओर से कार्य जीव का है। उसी जीव के कार्य को नैमित्तिक कहा है, है न।

इसलिये क्षयोपशमलब्धि को कारण जानकर पहले कहा है। निमित्त कारण को पहले कहा। **और विशुद्धिलब्धि को कार्य जानकर पश्चात् कहते हैं।** कारण और कार्य एक समय में होते हैं। आगे-पीछे नहीं होते हैं। पहले कारण आ गया इसलिये बाद में कार्य होगा ऐसी बातें नहीं हैं। एक समय में दोनों हैं। निमित्त-नैमित्तिक संबंध एक समय में होता है। पहले निमित्त आया इसलिये बाद में जीव ने परिणाम किया ऐसा कभी नहीं होता। फिर भी उसको कारण कह देते हैं और इसको कार्य कह देते हैं।

श्रोता: क्षयोपशमलब्धि जो है उसकी डेफिनिशन ज्ञानावरणादि समस्त अप्रशस्त कर्म प्रकृतियों आदि जो है तो क्या क्षयोपशमलब्धि के प्रथम काल से ही विशुद्धिलब्धि भी चालू हो जायेगी ? बिलकुल होगी। श्रोता: प्रथम काल से ही शुरू होगी ? देखो, अंतर्मुहूर्त तक यह चलेगा; अंतर्मुहूर्त में असंख्यात समय होते हैं। असंख्यातबार अनंतगुणा घटता-घटता-घटता-घटता अनुभाग उदय में आ रहा है। इतनी बार अनुभाग और हीन-हीन-हीन हो रहा है और उतने ही काल में कषाय मंद-मंद-मंद से और मंद-मंद-मंद हो रहे हैं। दोनों ही बातें एक साथ चल रही हैं। निमित्त और नैमित्तिक दोनों ही एक समय में होते हैं। आगे-पीछे नहीं होते। निमित्त आया, इसतरह से कर्म का उदय हुआ इसलिये जीव में कार्य हुआ ऐसा बिलकुल नहीं है। बात समझ में आयी न ? यह जानना बहुत आवश्यक है कि निमित्त-नैमित्तिक संबंध एक समय में है। वह पर्याय में है। निमित्त नाम का कोई द्रव्य नहीं होता है। निमित्त भी किसी द्रव्य की पर्याय है। यहां कौनसी पर्याय है ? कर्मों के अनुभाग का उदय। किसरूप से उदय

हो रहा है ? मंद-मंद-मंद-मंद होकर उदय में आ रहा है। अनंतगुणा हीन होकर उदय में आ रहा है। इसको हमने निमित्त कहा।

अभी अन्य कर्मों की बात छोड़ो। अभी यहां मोहनीयकर्म की बात उठाते हैं। नहीं समझे ? फिर से- आठों कर्मों का कार्य चल रहा है। अभी क्षयोपशमलब्धि को भूल जाओ। हम जनरल बात कर रहे हैं। तो आठों कर्मों का उदय चल रहा है कि नहीं चल रहा है ? श्रोता: चल रहा है। चल रहा है। ज्ञानावरण के उदय में क्या हो रहा है ? ज्ञान की हीनता हो रही है। दर्शनावरण में ? दर्शन की हीनता हो रही है। मोहनीय में ? श्रद्धा की विपरीतता हुयी, रागद्वेष हो रहे हैं। अंतराय में ? विघ्न है न उसके उदय में ? दान, लाभ वगैरह में हीनता हो रही है। बाकी अघाति में देखते हैं हम। संयोगों में साता-असाता का उदय और आयु में कितनी लंबी आयु है, छोटी आयु है उसकी बात होती है। नामकर्म के उदय में शरीर की रचना होती है और गोत्रकर्म के उदय में उच्चगोत्र या नीचगोत्र प्राप्त होता है।

अभी हमें विचार करना है। हर समय नया कर्मबंध भी हो रहा है कि नहीं? श्रोता: हो रहा है। यहां आठ कर्मों के उदय में नये कर्म भी बंध रहे हैं - सात या आठ कर्म बंध रहे। हमें उससे कुछ मतलब नहीं है। यहां ज्ञानावरण के उदय में नया कर्म बंध रहा है कि नहीं बंध रहा है ? श्रोता: बंध रहा है। ज्ञानावरण के उदय से बंध रहा है कि नहीं बंध रहा है ? श्रोता: नहीं। यानी ज्ञान की हीनता हो रही है। मान लेते हैं हमारा पूरा सामर्थ्य है और इतना थोड़ा ही प्रकट है, और बाकी बहुत सारा प्रकट नहीं है। क्योंकि हम अल्पज्ञानी हैं न, केवलज्ञानी तो नहीं हैं। तो मेरा यह प्रश्न है कि हमारा जो इतनासा अल्पज्ञान प्रकट है - जो क्षयोपशम ज्ञान प्रकट है न, इससे बंध होता है कि जो प्रकट नहीं है - ढका है उससे बंध होता है ? बोलो बेन ? श्रोता: दोनों से नहीं होगा। दोनों से नहीं होगा। क्यों ? क्योंकि जो खुला है वह ? स्वभाव का अंश है। स्वभाव से बंध होने लगेगा तो तीन काल में बंध मिटेगा नहीं और जो है ही नहीं वह क्या बंध करेगा ? वह तो विद्यमान ही नहीं है।

ज्ञान का जितना क्षयोपशम प्रकट है उससे बंध नहीं होगा। भले ही वह मिथ्याज्ञान है परंतु उससे बंध नहीं हो रहा है। दर्शन से बंध नहीं हो रहा। अंतराय का जो कुछ हीनाधिक चल रहा है उससे बंध नहीं होगा और संयोगों से ? अनुकूल संयोगों

से बंध ज्यादा होता है कि प्रतिकूल से ? श्रोता: नहीं होता। नहीं होता ? अच्छा। फिर आयु लंबी होगी तो बंध ज्यादा होगा ? देवायुवालों को बंध ज्यादा होगा कि नरकायुवालों को ज्यादा बंध होगा ? बोलो, सूर्याबिन ? श्रोता: नहीं होगा। नहीं होगा। अच्छा और शरीर गोरा होगा, अच्छा, लंबा, चौड़ा तो बंध कम होगा ? और ठिगना, काला ऐसा होगा तो ज्यादा होगा ? श्रोता: नहीं। नहीं होता। शरीर कैसा होता है उससे बंध नहीं होता है। उच्चगोत्र या नीचगोत्र का उदय हो रहा है उससे बंध नहीं होता है। तो बंध होता क्यों है ? श्रोता: मोहनीयकर्म के उदय में। हां, मोहनीयकर्म के उदय में आठों कर्मों का बंध होता है।

देखो, उदय आठों कर्मों का चल रहा है परंतु पुराने मोहनीय के उदय में नया आठों कर्म का बंध हो रहा है। इसलिये ज्ञानावरण का क्षयोपशम कम है, ज्यादा है उससे कुछ मतलब नहीं है। अल्पज्ञानी होगा तो बंध ज्यादा होगा ऐसा कुछ नहीं है। उसके जितने रागद्वेष हैं उतना बंध होगा। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में तीन गाथा आती हैं न, 'जितने अंश में ज्ञान है उतने अंश में बंध नहीं है। जितने अंश में राग है उतने अंश में बंध है। जितने अंश में सम्यक्त्व है उतने अंश में बंध नहीं। जितने अंश में राग है उतने अंश में बंध है। जितने अंश में वीतरागता है उतने अंश में बंध नहीं है, जितने अंश में राग है उतने अंश में बंध है।' तीनों जगह राग को ही बंध का कारण कहा है। मिथ्यात्व और राग का उदय है वही नये आठों कर्मों के बंध का कारण है। इसलिये मिथ्यात्व और चारित्रमोहनीय मंद-मंद-मंद होकर उदय में आ रहा है तो क्या होगा ? जीव के मोह-रागद्वेष के परिणाम भी मंद हो रहे हैं।

अभी आगे तक नहीं पहुंचे हैं, आगे हम और बात करनेवाले हैं। साता आदि शुभ प्रकृतियों का बंध होने लगेगा। उन परिणामों को हम बंध की तरफ से फिर जोड़ेंगे। उन परिणामों को हम विशुद्ध कहेंगे कि जिनके द्वारा साता आदि शुभ प्रकृतियों का बंध होता है। अभी देखो मंद परिणाम है न ? तो साता-असाता और अन्य जो शुभ-अशुभ प्रकृतियां होती हैं न, ऑल्टरनेटली बंधनेवाली; यहां राग यानी कषाय मंद हुये, पुण्य परिणाम होने लगे तो साता आदि शुभ प्रकृतियां बंधेगी - जिनमें जो व्हेरिएशन्स होते हैं। ऐसा होने से कुछ लाभ नहीं है। ऐसा तो बारंबार ऑल्टरनेटली पुण्य-पाप का गाड़ा चलता ही है। पुण्य बंधा तो कुछ उसकी विशेषता नहीं है। हम उन परिणामों को पहचानना चाहते हैं कि कितने मंद हुये। साता आदि का बंध हो रहा है

और तीव्र कषाय के काल में क्या होगा ? असाता आदि का बंध होगा। साता-असाता दोनों का बंध तो छठे गुणस्थान तक चलेगा। उसकी चर्चा हमें नहीं करनी है। परिणाम कैसे मंद-मंद हो रहे हैं उसको बता रहे हैं।

अभी तो हमने दो ही बातें उठायी, कौनसी ? पुराने कर्मों का उदय और यहां जीव के घटते हुये कषाय। समझ में आयी बात ? इसको विशुद्धिलब्धि कहेंगे। पुराने कर्मों के उदय को कारण कहा। वह उदय कैसा है ? अप्रशस्त में अनुभाग का घटता हुआ। अप्रशस्त को ही लेना है, घातिकर्म को लेना है और स्पेशली मोहनीय को लेना है। उसका घटता हुआ अनुभाग है वह कारण है और यहां जीव के मोह-रागद्वेष के परिणाम भी कैसे हैं ? वे भी घटते हुये हैं वह कार्य है। इसलिये क्षयोपशमलब्धि को पहले कहा, विशुद्धिलब्धि को बाद में कहा। पहले और पश्चात् कहने का प्रयोजन क्या है वह बात बता रहे हैं। हैं तो दोनों एक साथ जिस समय अप्रशस्त कर्मों के अनुभाग का घटता हुआ उदय चल रहा है उसी समय राग मंद-मंद हो रहे हैं। दोनों अट अ टाइम चल रहे हैं क्योंकि वे आगे-पीछे होते तो वह पहले हुआ इसलिये जीव को मंद राग हुआ, ऐसा कहना पड़ेगा। ऐसा तो होता नहीं है। एक ही समय में जो कार्य होते हैं उसमें निमित्त-नैमित्तिक संबंध लगता है। आगे-पीछे नहीं होता है।

देखो, नीचे से दूसरा पॅरेग्राफ- **पुराने कर्मों के अनुभाग उदय का मंद होना** यानी जो उदय है वह हीन होकर उदय में आना निमित्त है। **कारण है** यानी **निमित्त है और मिथ्यात्व और रागादिकों का मंद होना यानी शुभ परिणाम होना** दूसरी भाषा में कषाय मंद होना **उसका नैमित्तिक कार्य है। इसलिये क्षयोपशमलब्धि को कारण जानकर पहले कहा।** इसका अर्थ समझ में आया ? वह उदय है उसको पहले कह दिया। अट अ टाइम हो रहा है फिर भी निमित्त कारण को पहले कह दिया **और विशुद्धिलब्धि को कार्य जानकर पश्चात् कहा।** वे लब्धि होती कब हैं ? आगे-पीछे होती हैं कि एक समय में ? एक समय में। **वैसे तो ये दोनों एक साथ विद्यमान रहती हैं - वे एक ही सिक्के के दो पहलुओं की भांति हैं।**

अभी और चर्चा हम थोड़ी देर के बाद करेंगे। फिर मिलते हैं।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

१२. शंका-समाधान, विशुद्धिलब्धि

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है और उसीके आधार से प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पूर्व होनेवाली पांच लब्धि संबंधी अपनी चर्चा यहां चल रही है। आगे बढ़ने से पहले कुछ प्रश्नों को लेकर आगे बढ़ेंगे।

प्रश्न: उपशम सम्यक्त्व के काल में कौनसा योग होता है ? यह योग कैसे संभव होता है ? क्योंकि योग तो चंचलता का नाम है। योग का अर्थ क्या समझा ? हाथ-पैर की कसरत करना वह योग नहीं है। बात समझ में आयी न ? अरिहंत भगवान दो प्रकार के हैं, सुने हैं ? *श्रोता: सयोगकेवली और अयोगकेवली।* हां, सयोगकेवली और अयोगकेवली। तो सयोगकेवली को योग है कि नहीं है ? *श्रोता: है।* उपशम सम्यक्त्व में निषेध कर रहे हैं और सयोगकेवली में है कह रहे हैं - हाउ इज इट पॉसिबल ? योग का अर्थ शरीर की कुछ उठक-बैठक हो रही है उसको यहां योग नहीं कहते हैं। आत्मप्रदेशों की चंचलता होती है, उसमें जो कर्माकर्षण शक्ति होती है उसको योग कहते हैं। ऐसे स्थिर बैठे हुये जीव का कौनसा योग चल रहा है ? मनोयोग, वचनयोग और काययोग सब बार-बार पलटते रहते हैं। बाहर की किसी क्रिया से उसका कोई लेना-देना नहीं है। योग आत्मप्रदेशों की चंचलता का नाम है, प्रदेशों की चंचलता को योग कहेंगे और परिणामों की चंचलता को कषाय कहेंगे। ख्याल में आया ?

यहां कषाय भी रहेंगे। अनंतानुबंधी मिट गया है, उदय नहीं हो रहा है। परंतु अन्य कषाय है कि नहीं ? शुद्धोपयोग में भी कषाय हैं। हां, वे अबुद्धिपूर्वक में जायेंगे। उसकी बात यहां नहीं हो रही है। परंतु वहां उतना बंध है कि नहीं है ? उदय में एक कषाय चौकड़ी नहीं है, तीन कषाय चौकड़ी है। कषाय चौकड़ी समझते हैं न ? क्रोध, मान, माया, लोभ। कौनसी तीन चौकड़ी ? अनंतानुबंधी को छोड़कर अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन। चौथे गुणस्थान में उन संबंधी बंध है कि नहीं ? *श्रोता: है।* तो उसका अर्थ क्या है ? उस संबंधी वहां रागद्वेष के परिणाम हो रहे हैं। वे मंद हो या तीव्र हो कोई बात नहीं है, परंतु अप्रत्याख्यानावरण आदि कषाय जाति हैं न वहां ? तो उससे यथायोग्य बंध भी चल रहा है।

प्रश्न: विशुद्धिलब्धि को कार्य कहा, क्षयोपशमलब्धि को कारण कहा। यहां तक समझ में आ गया। अच्छी बात है। लेकिन क्षयोपशमलब्धि को कार्य माने तो इसका

कारण किसको ठहरायेंगे ? हमने घड़े को कार्य कहा, कुम्हार को निमित्त कारण कहा, है न ? तो बोलो उसका कारण कौन है ? उसका कारण, वह उसका कारण, वह उसका कारण ऐसा देखते चले जायेंगे तो अनंत कारण होंगे। हमें कर्मों का उदय है, वे अलग-अलग समयों में बंधे हैं, उनका अनुभाग अलग-अलग पड़ा है। भले प्रत्येक निषेक में सभी प्रकार का अनुभाग पड़ा है, परंतु उस समय जिसरूप से उदय में आना है उसरूप से उदय में आते हैं। हां, यह हो सकता है कि उसके परिणामों के साथ भी उसका निमित्त बनता है कि जीव तत्त्वविचार में जुड़ता है तब मोहनीय का अनुभाग मंद होकर उदय में आता है – ये सब आपस में होते हैं। परंतु फिर भी हम पुराने कर्मों का उदय है इतना ही लेंगे। उसको यहां निमित्तरूप से कारण कहा है।

प्रश्न: साध्य-साधनभाव, उपाय-उपेयभाव कहां घटता है ? अभी मिथ्यात्व में तो यहां कुछ नहीं घट रहा है। अभी मिथ्यादृष्टि है। वह तो समयसार के परिशिष्ट में आता है न ? उपाय-उपेय सब मोक्षमार्ग की बात आती है। उसकी चर्चा अभी यहां नहीं है। श्रोता: वह कर्मों में नहीं घटता है ? कर्मों में कैसे घटायेंगे ? उसमें निमित्त-नैमित्तिक संबंध है, उसमें साध्य-साधक नहीं होता है।

प्रश्न: अंतर्मुहूर्त के कितने प्रकार होते हैं ? देखो, अंतर्मुहूर्त किसको कहना ? अंतर् मुहूर्त - अंतः मुहूर्त। मुहूर्त से कम। मुहूर्त किसको कहेंगे पहले यह समझो। दो घड़ी को मुहूर्त कहते हैं। एक घड़ी २४ मिनट की होती है। दो घड़ी होती हैं ४८ मिनट की। तो लेस दें मुहूर्त को कहेंगे अंतर्मुहूर्त। नहीं समझे ? हम अंतःकोड़ाकोड़ी कहते हैं उसका अर्थ क्या है ? कोड़ाकोड़ी सागर से नीचे, उसको अंतःकोड़ाकोड़ी सागर कहते हैं। अंतःमुहूर्त यानी अंतर्मुहूर्त किसको कहेंगे ? मुहूर्त से कम। एक समय कम, दो समय कम कुछ भी हो सकता है। तो ४८ मिनट में कम करते हुये नीचे चले आओ। एक मिनट होगा, वह भी अंतर्मुहूर्त, एक सेकंड है वह भी अंतर्मुहूर्त। अब सेकंड में हजारों कोड़ाकोड़ी आवली हैं वह भी अंतर्मुहूर्त। अभी सेकंड का हिस्सा करते चले जाओ तो वे भी सारे एक-एक समय के डिफरन्स से अंतर्मुहूर्त के अलग-अलग भेद होंगे। मिनिमम कौनसा होगा ? आवली तक पहुंच जाओ। आवली प्लस एक समय से लेकर अंतर्मुहूर्त के सारे भेद शुरू हो जायेंगे। कहां तक ? ४८ मिनट में एक समय कम, वहां तक। जहां जो यथायोग्य अंतर्मुहूर्त होता है उसको समझना।

हमने ऐसा ही सुनकर रखा है न, ४८ मिनट तक जीव अपने आत्मा में स्थिर हो जाये तो क्या हो जायेगा ? *श्रोता: केवलज्ञान हो जायेगा।* अरे, इतना समय नहीं लगता है। जितने ऊपर के गुणस्थान में जाओ, उतना उसका काल और छोटा-छोटा होता है। यह प्रॅक्शन ऑफ़ अ सेकंड में है। छठे गुणस्थान का जितना काल है उससे सातवें का काल आधा है। उसके संख्यातवें भाग प्रमाण आठवें का, उससे संख्यातवें भाग प्रमाण नौवें का, उससे संख्यातवें भाग प्रमाण दसवें का काल है। छठे गुणस्थान का जो काल है उससे भी कम काल में जीव पूरी उपशमश्रेणी चढ़कर उतरता है। इतने छोटे काल में जीव क्षपकश्रेणी चढ़कर अरिहंत अवस्था प्राप्त करता है। यह ४८ मिनट की बात किसी भी आगम में नहीं है, बस अंतर्मुहूर्त की बात आती है। वहां अंतर्मुहूर्त का ही कथन होता है। उसको हम सेकंड और मिनटों में जानना चाहते हैं। उसकी कोई कोशिश मत करो।

कौनसा अंतर्मुहूर्त कितना बड़ा है उसके सारे अल्पबहुत्व के कथन शास्त्र में लिखे हैं। अंतर्मुहूर्त में श्रेणी चढ़कर केवलज्ञान होता है, यथायोग्य अंतर्मुहूर्त में इतना रखो बस। अपनी भाषा में कन्वर्ट करने की अपनी ओर से कोशिश मत करो। जितना आगम में लिखा है बस उसीको मानो। *श्रोता: उसके लिये आगम पढ़ना पड़ेगा।* आगम पढ़े बिना क्या होगा ? लोग पूछते हैं कहां क्या लिखा है ? परंतु कहां क्या लिखा है उसका अर्थ आपको मिलेगा कैसे ? वह तो अनेक अपेक्षाओं से होता है न ? आगम पढ़ने का भी तरीका होता है। उसको समझना पड़ेगा।

प्रश्न: क्षयोपशमलब्धि में कर्मों का अनुभाग घटता है, खाली अप्रशस्तों का हो, तब जीव में क्या हो रहा है ? मंद परिणाम तो विशुद्धिलब्धि में लिया है। एक ही समय है न ? वह तो निमित्त में बताया है कि कर्मों का अनुभाग घट रहा है। जीव में क्या हो रहा है ? कषाय मंदता की ओर चल रहे हैं, मिथ्यात्व मंदता की ओर चल रहा है। हमने देखा था क्षयोपशमलब्धि और विशुद्धिलब्धि एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक ही के दो हिस्से हैं बताया था। क्षयोपशमलब्धि में जीव की अपेक्षा क्या हो रहा है ? उसके मिथ्यात्व और कषाय मंदता की ओर जा रहे हैं। ज्ञान का विकास हो रहा है। आप सभी अप्रशस्त कर्मों में घटा लो, उनका अनुभाग प्रति समय अनंतगुणा घटकर उदय में आता है।

प्रश्न: तत्त्वचर्चा के काल में या तत्त्वनिर्णय के काल में क्षयोपशमलब्धि शुरू हो भी सकती है या नहीं भी हो सकती ? देखो, जब जीव देशना सहित है तो तत्त्वचर्चा या तत्त्वविचार के काल में उसके चारों लब्धियां पायी जाती हैं। यहां हम एक-एक लब्धि का स्वरूप अलग-अलग देख रहे हैं। पहले कहेंगे क्षयोपशमलब्धि जो अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग घटना। अभी सम्यक्त्व नहीं होगा। हम साधारण बात करेंगे। किसीका कर्मों का मंद उदय चल रहा है और उसके कषाय भी मंद हैं। जरूरी नहीं कि वह जैन हो या कोई विशिष्ट जाति का हो। कोई तिर्यच भी हो सकता है। उसके मंद परिणाम, शांत परिणाम चल रहे हैं। तब हम कहेंगे न, यह भला जीव है। उसके भी उस समय साता वगैरह पुण्य प्रकृतियां बंध रही हैं कि नहीं ? उसके भी विशुद्धि और संक्लेश चलते हैं न ? उसकी भी विशुद्धि हो रही है न उस काल में ? विशुद्धिलब्धि की परिभाषा नहीं पढ़ी है; आगे हम पढ़ेंगे।

केवल विशुद्धि का होना, केवल मंद कषाय का होना उसको यहां सम्यक्त्व के पूर्व की लब्धि नहीं कहेंगे। कषायों का अनुभाग मंद है और कषाय बहुत मंद है वह जीव भला है, पुण्य प्रकृतियां बांध रहा है इसलिये उसको सम्यक्त्व होगा ऐसी बात नहीं है। अभी तो हम स्टेप बाय स्टेप एक-एक लब्धि को देख रहे हैं। जब चारों लब्धि एक साथ होती हैं तब उसकी चर्चा फिर से करेंगे। उसको देशना मिलने की भी संभावना नहीं है। उसके देशनालब्धि हो भी सकती है, नहीं भी हो सकती। क्योंकि कोई जीव केवल मंद कषायरूप है और उसीमें संतुष्ट होकर रहता है। मैंने ऐसे भी लोग देखे हैं- जो कहते हैं कि आप तो स्वाध्याय करते हैं, आपसे हम भले हैं। क्यों ? आप स्वाध्याय में जाते हैं फिर भी गुस्सा करते हैं और आपसे हम भले हैं। हम गुस्सा नहीं करते, हम शांति से रहते हैं यानी वह जीव उसीमें संतुष्ट होकर रहता है। जो कोई मंद राग है उसके साथ एकत्वबुद्धि चल रही है और इसमें अपने को भला भी मानता है। मिथ्यात्व तो चल रहा है। केवल मंद कषायरूप हो गया है उससे जीव को कोई लाभ नहीं है।

प्रश्न: जीव सम्यक्त्व पाने के समय कौनसे तत्त्वविचार करते होंगे ? क्या शब्द है ? **श्रोता:** अन्य लिंगी यानी अन्यमति, हां, देखो, सिद्ध कैसे होते हैं ? उसके लिये सम्यक्त्व के बिना कोई अंतरंग स्थिरता, चारित्र, मुनिपना, अरिहंत दशा नहीं होगी। यह तो निश्चित है ? अरिहंत होकर ही सिद्ध होंगे, यह बात निश्चित है न, क्योंकि पूरे ही मोक्षमार्ग का - चौथे गुणस्थान से लेकर अरिहंत, सिद्धदशा तक का पूरा निर्णय हमें

होना चाहिये। अन्य लिंग से का अर्थ होता है मुनिव्रत - जिनलिंग धारे बिना कोई सिद्ध होगा ? *श्रोता: नहीं होगा।* नहीं होगा। तो क्या जैनियों को ही वह पासपोर्ट मिलता है ? सही मान्यतावालों को मिलता है। जैनी उनको कहते हैं जो आत्मानुभवी हैं। जिन्होंने अन्य सभी मान्यतायें छोड़कर सही मान्यता अंगीकार की है और तत्त्वविचार, तत्त्वनिर्णयपूर्वक आत्मा की अनुभूति की है वे ही जीव आगे बढ़कर मुनिदशा प्राप्त करते हैं, उन्हींके अरिहंत अवस्था प्राप्त होती है और वे ही सिद्ध बन सकते हैं। अन्य कोई भी सिद्ध क्या, उनको सम्यक्त्व भी नहीं हो सकता। सवाल ही नहीं उसके बारे में।

श्रोता: क्यों नहीं, अन्यमति क्यों नहीं ? अन्यमति यानी मिथ्या मान्यता के साथ नहीं होगा। कौन कहां जन्म ले उसकी कोई बात नहीं है। *श्रोता: किसके बारे में मिथ्या मान्यता ?* देव के बारे में मिथ्या मान्यता, गुरु यानी मुनि के बारे में मिथ्या मान्यता, शास्त्र के बारे में मिथ्या मान्यता, सात तत्त्व संबंधी मिथ्या मान्यता। भले जैनी हैं फिर भी उनके देव-गुरु और शास्त्र के संबंध में मिथ्या मान्यता है यानी निर्णय नहीं है। मिथ्या मान्यता कोई बाहर ढूंढ़ने जाने की जरूरत नहीं है। दूसरे लोग सही हैं कि नहीं हैं उसकी बात नहीं है। उसके संबंध में हमारी बुद्धि में सही गलत का फैसला है कि नहीं यह बात महत्व की है। *श्रोता: उपादान का क्या महत्व है ?* उपादान की ही चर्चा चल रही है। हमारी बुद्धि में, हमारे ज्ञान में, हमारे श्रद्धान में सही निर्णय, सही मान्यता हुयी कि नहीं है ? यह उपादान की बात हो रही है।

हमें किसी अन्य जीवों को नहीं पहचानना है। परंतु हम जिनको देव कहते हैं, देव यानी स्वर्गवाले देवों की बात नहीं है, अरिहंत-सिद्ध जो सर्वज्ञ और वीतरागी हैं उनकी चर्चा चल रही है। उनके बारे में, उनके अंतर्बाह्य स्वरूप संबंधी निर्णय है कि नहीं है ? अंतर्बाह्य क्यों कहा ? बाह्य से अभी गृहस्थ दशा हो और गृहस्थ दशा में रहते-रहते अरिहंत बन गये ऐसा होगा कि नहीं होगा ? कपड़े के साथ मुनि अवस्था होगी कि नहीं होगी ? यह सारा निर्णय हमें अंतरंग में करना चाहिये। किसी भी मिथ्या मान्यता के साथ सम्यक्त्व नहीं हो सकता। मिथ्या मान्यता के साथ मुनिपना होगा कि नहीं होगा ? यह निर्णय कौन करेगा ? यह निर्णय खुद को करना है क्योंकि हमारे पास आगम हैं उनमें सारी बातें लिखी हुयी हैं। ज्ञानियों के द्वारा सरल करके अनेक बार उसको समझाया गया है। हमें अपना कल्याण करना है तो हमें निर्णय खुद करना पड़ेगा। हम जन्म से कौन हैं उससे कोई लेना-देना नहीं है। चारों गति के जीव सम्यक्त्व प्राप्त कर

सकते हैं। सही मान्यतावालों को ही सम्यक्त्व होगा और वे ही जीव आगे चलकर सिद्ध होंगे। कोई अन्य लिंगी के सम्यक्त्व भी नहीं होता, सिद्ध होने का तो सवाल ही नहीं है।

श्रोता: द्रव्यानुयोग की अपेक्षा क्या कारण प्रथम और कार्य बाद में कहा जाता होगा ? बिलकुल नहीं। निमित्त-नैमित्तिक संबंध तो द्रव्यानुयोग का विषय है। एक ही समय में कारण है और उसी समय में कार्य होता है। जहां कारण है वहीं कार्य है। अभी निमित्त कारण को छोड़ो, परंतु उपादान कारण की बात है। अभी इसके लिये तो 'कारण कार्य रहस्य' नाम का पुस्तक है, वह पढ़ना। उसमें हमने इसके बारे में बहुत चर्चा की है। जब तक निर्णय नहीं होता है तो हम कितना भी पढ़ें, कितना भी याद करें, कितना भी रटें उससे निर्णय तक नहीं पहुंच सकते।

ये सारे ही सिद्धान्त जानना इम्पोर्टेंट है; पहले में पहले द्रव्य क्या है, गुण क्या है, पर्याय क्या है, परिणमन की व्यवस्था क्या है, सात तत्त्व क्या हैं यह जानना जरूरी है। फिर निमित्त-उपादान क्या होता है ? सर्वज्ञ के बारे में कुछ भ्रांतियां चल रही है, इसलिये सर्वज्ञ के स्वरूप के बारे में निर्णय करना आवश्यक है। पांच समवाय क्या होते हैं ? क्रमबद्धपर्याय क्या होता है ? वह सिद्ध कैसे हो सकता है ? इन सब बातों का जब तक अपनी बुद्धि से - वह बिलकुल ऐसा ही है अन्यथा नहीं है - ऐसा निर्णय नहीं होता तब तक कितना भी शास्त्र पढ़ो, कितने भी प्रवचन सुनो, कुछ नहीं होनेवाला है। क्योंकि हम जो प्रवचन सुनते हैं न, गुरुदेवश्री की वाणी सुन रहे हैं तो ये सिद्धान्त उसकी नींव है। इसके बिना वे क्या कह रहे हैं यह बात अंतरंग तक, गहराई तक नहीं पहुंचनेवाली है। निर्णय तो अपने से करना है।

कोई किसीको सम्यग्दर्शन देगा कि नहीं देगा ? क्योंकि वह स्वयं के ज्ञान में जब निर्मलता होगी - निर्मलता यानी स्पष्टता होगी, कहीं कोई कम्प्यूजन नहीं रहेगा, सभी बेसिक फंडामेंटल्स क्लियर होंगे तभी सम्यग्दर्शन होने की शक्यता है; जब तक पूरे मोक्षमार्ग की, तत्त्वों की हमें जो क्लैरिटी होनी चाहिये, नहीं होती तब तक सम्यग्दर्शन नहीं होगा। हम कोई कार्य क्यों करते हैं ? समाज में एक दूसरे को दिखाने के लिये। हम यह करेंगे, यह नहीं करेंगे तो समाज क्या कहेगी ? समाज के डर से या कोई कार्य पहले से करते आये हैं तो अब कैसे छोड़ेंगे ? तो वही बातें करते रहते हैं। मालूम है कि यहां सब झूठ-मूठ चल रहा है, फिर भी उसीकी अनुमोदना और उसीके

पीछे चलते रहते हैं। कभी सोचते नहीं कि अपना उसमें क्या कल्याण होनेवाला है ?

श्रोता: नाम तो होगा न ? नाम तो होगा न ? कौनसा नाम हो रहा है और वह नाम कितने लोग जान रहे हैं ? गिने-चुने अज्ञानी। मिथ्यात्व हो रहा है वह अनंत जीव जान रहे हैं। कौन ? अरिहंत, सिद्ध। कोई जाने, नहीं जाने इससे आपको क्या लाभ है ? समझ में आयी बात ? कोई हमें अच्छा कहे, बुरा कहे तो उससे हमारा क्या लाभ है ? हमारी अपनी प्रसिद्धि अपने को नहीं है तो बाहर की प्रसिद्धि से हमें क्या ? दूसरे को नहीं करनी है प्रसिद्धि, अपनी प्रसिद्धि स्वयं को हो जाये वही कार्यकारी है। यानी क्या ? अपने आपको अपना अनुभव हो जाये, उससे सारा मतलब है। बाहर की प्रसिद्धि से हमारा कोई कल्याण नहीं है। अरे, यशस्कीर्ति का उदय तो एकेन्द्रिय के भी होता है। उसमें हमने क्या बड़ा काम किया है ? कर्म कभी बांधा होगा तो उसका उदय होगा। उसमें क्या भलाई है ? कर्म के उदय में हमारी कोई भलाई नहीं है। हमें तो उससे भिन्नता पहचाननी है। हमें कर्म के उदय में जो कोई बाहर यश मिलता है या संयोग मिलता है या हमारी प्रसिद्धि होती है, उससे हमें कुछ लेना-देना नहीं है। हमें यानी किसी जीव को कुछ लेना-देना नहीं है। इससे अपनी भिन्नता पहचानकर भेदज्ञान करना ही पड़ेगा। इसके बिना धर्म की शुरुआत भी नहीं होगी।

इसलिये सबसे पहली सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के निर्णय की आवश्यकता है। यह सारा उपदेश किसने दिया है ? सर्वज्ञ वीतराग भगवान ने दिया है। जब तक हमें सर्वज्ञता क्या होती है इसका निर्णय नहीं है तब तक वे बातें आगे ऐसी ही देखादेखी चलती रहेगी। हमने यह किया, वह किया, वह किया। उपदेश भी क्या मिलता है ? गुरुदेवश्री कहते हैं आ करो, आ करो, आ करो, इतना सब करो, करो, करो यानी मरो, मरो। आप उनका कोई एक प्रवचन भी अच्छी तरह से सुनो। उनके एक-एक वाक्य में इतनी गहराई है। जब फंडामेंटल्स क्लियर होंगे तब वह गहराई समझ में आयेगी। प्रवचन सुनने को अच्छा लगता है उससे कुछ कल्याण नहीं होनेवाला। हां, हां, हां कर दिया और चले गये। हां, अभ्यास से ही होगा और वह बात कठिन नहीं है। अपनी बात है, वह किसी दूसरे को दिखाने के लिये नहीं है। मैं क्या कह रही थी ?

श्रोता: एक प्रश्न है, अगर आपको गुस्सा नहीं आता है तो पूछ सकता हूं ? बोलो ? *श्रोता:* जैसे आपने अभी बताया कि जो वस्त्र सहित है वह मुनि हो सकता है

क्या ? तो सभी ने बोला नहीं, नहीं, नहीं। तो जो वस्त्र रहित हैं, वे भी मुनि हो सकते हैं कि नहीं ? देखो, इनका यह प्रश्न है कि वस्त्र सहित अवस्था में कोई मुनि नहीं है। क्योंकि मुनि कैसे हैं ? निष्परिग्रही होते हैं, उन्होंने वस्त्र तो छोड़ दिये। तो वस्त्र के त्याग मात्र से कोई मुनि होते हैं क्या ? ऐसा प्रश्न है। नहीं, उनके पूरे के पूरे २८ मूलगुण पलते हैं या नहीं देखना है - उनका बाह्य आचार देखना है। देखो, मुनि कौनसे गुणस्थान में हैं यह उनको देखकर नहीं पता चलेगा। परंतु उनके उपदेश से, उनके आचार से, उनके बाह्य आचरण से उनको देखकर और उनकी कैसी प्ररूपणा चल रही है। वह सही है कि नहीं है ? इसका तो हम निर्णय कर सकते हैं कि नहीं सकते ?

शुभभाव करो आपका कल्याण होगा - ऐसा कोई सम्यग्दृष्टि कहेगा ? हां, शुभभाव का उपदेश दे सकता है क्योंकि सामनेवाला जीव अभी पाप में पड़ा है। रोज देवदर्शन करो, स्वाध्याय करो यह कहना अलग है। परंतु यह करने से सम्यग्दर्शन होगा ऐसा कोई कहता है तो, वह योग्य नहीं। शुभभाव से कल्याण होगा, राग करते-करते मोक्षमार्ग प्रकट होगा ऐसा अगर कथन है तो वह झूठ है। अब उनके २८ मूलगुण क्या हैं वह मालूम होना चाहिये। वे कैसे होते हैं ? उनका विहार कैसे होता है ? आचरण कैसा होता है ? उनकी वाणी कैसी होती है ? उपदेश कैसा होता है ? इसके बारे में हमें निर्णय करना चाहिये। हमें थरमॉमीटर लेकर किसी व्यक्ति को जांचना नहीं है। अपनी मान्यता उस पद के बारे में क्या है यह निर्णय करना है और कहीं ऐसी खोट दिखायी देती है तो उससे दूर हो जाओ न, आपको वहां जाने के लिये किसीने बुलाया है ? आपको वहां नहीं जाने का पाप नहीं लगता है।

शास्त्र में उसके बारे में कथन आता है न, अभी हमारे घर दैनिक स्वाध्याय में 'अध्यात्मयोगी राम' चल रहा है। उसमें आता है कि वहां गांव में कोई चारणऋद्धि मुनिराज आये, उनको किसी व्यक्ति ने आहार नहीं दिया। उसको लगा कि इस वर्षाकाल में मुनि कैसे आ सकते हैं ? यह कोई बराबर नहीं है। इसलिये आहार नहीं दिया। तो उसे कोई पाप नहीं लगा। समझ में आती है न बात ? हां, परंतु मालूम है यहां जो कुछ हो रहा है वह बराबर नहीं है और फिर भी उनके पीछे लगाना महान मिथ्यात्व है। हम किसीका निषेध नहीं करते हैं, किसी व्यक्ति का भी निषेध नहीं करते हैं। हमें तो आगम के अनुसार चलना है। हमें निर्णय तक पहुंचना है। अपनी श्रद्धा में क्या है उसको देखना है।

देखो, दुनिया के लिये, कुटुंब के लिये या समाज के लिये करना है; तो क्या वह सारा समाज परभव में साथ में आनेवाला है ? और जहां जाना है - कोई तिर्यच में जायेगा, कोई नरक में जायेगा, कोई निगोद में। हां निगोद में जायेगा तो सबको साथ में लेकर जायेंगे। हमें यह देखना है कि हमारा मनुष्यभव इतना दुर्लभ है और उसमें हम क्या कर रहे हैं। हमारी फोरमोस्ट प्रायोरिटी किसको होनी चाहिये हमें डिसाइड करना है। अब क्या जो ज्ञानी गुरुदेवश्री वगैरह हो गये हैं, उनके पूर्व में भी अनेक ज्ञानी हो गये, आचार्य हो गये। उन्होंने तो यहां बहुत सारे आगम की रचना की है। परंतु हमें फुरसत कहां है ? यह जरूरी नहीं कि इतना सारा आगम पढ़ें, इतना सारा करणानुयोग पढ़ें तो सम्यग्दर्शन होगा। कोई जरूरत नहीं है। मूल बात जो भेदविज्ञान की है, सात तत्त्वों की है, द्रव्य-गुण-पर्याय की है वह सही समझ में आनी चाहिये क्योंकि आठ वर्ष का बालक भी सम्यग्दर्शन प्रकट कर सकता है। कोई कठिन बात नहीं है न ! निर्णय की बात है।

अभी आज दोपहर में किसीने पूछा- तिर्यचों को सम्यग्दर्शन होता है तो उनको देव, शास्त्र और गुरु की बात कहां मालूम है ? अरे, तुम देव-शास्त्र-गुरु का श्रद्धान कहो या सात तत्त्वों का श्रद्धान कहो, उसमें उनका श्रद्धान गर्भित है। उसके लिये थोड़ा अभ्यास जरूरी है। अभी तिर्यचों को अपने बच्चों के प्रति प्रेम है कि नहीं ? तो वे प्रेम ऐसा शब्द जानते हैं ? तो कैसे होता होगा ? वह फीलिंग जो है उनको उस फीलिंग का अनुभव है कि नहीं है ? बच्चे के प्रति जो वात्सल्यभाव है; वात्सल्य ऐसा शब्द वे जानते नहीं - उनके कोई डिक्शनरी है नहीं। परंतु उनके उस भाव का अनुभव हो रहा है न ? अपने बच्चे के प्रति जो प्रेम है वह भावना उनको ख्याल में आ रही है कि नहीं आ रही है ? तिर्यचों में सम्यग्दर्शन होता है तो उनमें भी क्रोध-मान-माया-लोभ जो कुछ हो रहे हैं, उनसे मैं जाननेवाला जुदा हूं ऐसा भेदज्ञान वहां भी होगा। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव है इतना विचार उनमें भी है और वे भी पांचवें गुणस्थान तक का पुरुषार्थ कर सकते हैं। हमें लगता है सारा जो स्यानपना - अक्ल है न, सिर्फ मनुष्यों के ही है और हमें ऐसा लगता है कि हम ही सबसे बुद्धिमान हैं।

ऐसी बातें होती हैं। तिर्यच भी जानते हैं। हमने तो कितने ही तिर्यचों संबंधी बातें सुनी हैं। वे पूजा के समय सामने आकर बैठते भी हैं। हमने कितने ही क्षेत्रों में भी देखा है। तिर्यच आकर वहां नमस्कार भी करते हैं। वे भी संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं। मैंने खुद देखा था श्रवणबेलगोला में महामस्तकाभिषेक हुआ था हम २४ साल पहले वहां गये थे। एक

बहुत बड़ा बंदर एकदम एकटक - एक नजर से भगवान की मूर्ति की तरफ देख रहा था। उनके भी अपने कुछ विचार होंगे कि नहीं ? जिनबिंब दर्शन उनके लिये भी निमित्त तो होता ही होगा, क्यों नहीं होगा ? ख्याल में आयी न बात ? अभी बंदर है तो उनके भी पूर्वभव के कुछ संस्कार तो होंगे, उसमें हो सकता है कोई सादि मिथ्यादृष्टि हो। समझ में आती है न बात ? जिनबिंब देखकर कोई विचार तो आता है कि नहीं ?

हमारे घर में एक लड़की काम करती थी। साउथ इंडियन थी। हमारे महाराष्ट्र में पद्धति है; हम मूल गुजरात के हैं, मायग्रेटेड हैं; तो वहां पद्धति ऐसी है कि घर-घर में जिनबिंब यानी जिसको चैत्य कहेंगे - प्रतिष्ठित मूर्ति विराजमान रहती है। उनका प्रक्षाल, पूजन सब नियमित चलता है। वह लड़की रोज झाड़ू-पोछा वगैरह करती थी और वहां जाकर ऐसे ही मूर्ति की तरफ देखती रहती थी। तो दिनेशजी के मन में आया कि वह क्या देख रही है ? ऊपर का छत्र देख रही है क्या ? वह पीली मूर्ति देखकर मन में क्या भाव चल रहे हैं ? ऊपर छत्र है चांदी का तो क्या बात क्या है ? चोरी-वोरी का विचार है क्या ? वह लड़की आकर मुझे पूछती है- यह आपके भगवान कितने शांत हैं। अरे, वस्त्र और गहने तो नहीं, इनके माथे पर टीका भी नहीं है। देखो, उसने इतना नोट किया कि अरे, उनके टीका तक नहीं लगाया हुआ है और वे कितने शांत हैं।

जीव विचार करता है न कि इतनी शांत मुद्रा है। कुछ परिग्रह नहीं है फिर भी शांत है। भगवान की प्रतिमा देखकर कुछ विचार चलता है। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव है, उसके इतनी तो फीलिंग है न ? जब हम भगवान की शांत मुद्रा देखते हैं- ये वीतरागी हैं, कुछ परिग्रह नहीं है और फिर भी अनंतसुखी हैं ! तो जिनमुद्रा देखकर भी जो विचार चलते हैं उसको भी कहीं-कहीं निमित्त में लिया है। जिनबिंब दर्शन को भी बाह्य निमित्तों में गिनाया है। परंतु इसके लिये हमें जिनेन्द्र भगवान क्या हैं ? सर्वज्ञता क्या है ? वीतरागता क्या है ? पूरा मोक्षमार्ग क्या है ? इस संबंधी आगमोचित - जो आगम में बताया है, ज्ञानी जीवों, आचार्यों ने बताया है - उसका अभ्यास स्वयं करना चाहिये। उनकी अभ्यासपूर्वक परीक्षा भी करनी चाहिये। अपनी बुद्धि के द्वारा की परीक्षा करनी है। श्रोता: किसके लिये ? 'जो चाहो अपनों कल्याण !'

दूसरे के लिये कोई दूसरा कुछ कर ही नहीं सकता है। हमें किसीको, समाज को इधर से उधर परिवर्तन कुछ नहीं करना है। कोई कर ही नहीं सकता। यहां ऐसा

नहीं कि उपदेश देकर सबको सुधार ले। अरे, हम अनादि से कितनी बार तीर्थकरों के समवसरण में जा चुके हैं ? अनंतों बार। फिर भी कोरे के कोरे रह गये। जिसका जब पलटना है, जिसका जब काल आता है, निमित्त भी स्वयमेव मिलते हैं। आत्मा की योग्यता ही उसका सर्वोत्कृष्ट कारण है। उस समय सहजरूप से सब कुछ होता है। हां, उपदेश की भाषा में कहेंगे ऐसा करो, वैसा करो, निर्णय करो। यह उपदेश की भाषा है। ऐसा सुनकर भी वे रूटीन चलनेवाली बातें भी होंगी। वह होती रहेगी। सभी मोक्ष चले जायेंगे तो यहां कौन रहेगा - ऐसा लोग पूछते हैं हमें। ऐसा भी पूछते हैं कि इतनी सारी सम्पत्ति है और इतना सारा वैभव है, सबको मोक्ष भेजेंगे तो इसको कौन भोगेगा ?

श्रोता: उन्हें बस एक वही चिंता है। दूसरी चिंता नहीं है।

श्रोता: पहली दो लब्धि हुयी हैं न ? हां, उसने आत्मा संबंधी कोई विचार नहीं किया, उसकी जिज्ञासा हुयी है बस ! अभी उसको देशना भी नहीं मिली है। उसको आत्मा क्या है मालूम ही नहीं है। हम अभी क्रम से जा रहे हैं। हम ऐसा जीव ले रहे हैं जिसको अभी देशना भी नहीं मिली है। उसे आत्मा संबंधी अव्यक्त जिज्ञासा है। ऐसा भी होता है न, कोई अपरिचित आदमी मिलता है जिससे हम पहली बार मिल रहे हैं और उसके साथ बातें करते-करते तत्त्व की ऐसी गहरी बात निकलती है; हम ट्रेन में कितनी बार कहां-कहां जाते रहते हैं। ऐसे कोई बाजूवाले बैठे हैं। उनकी ऐसी कोई सहज रुचि होती है, आपस में बातें करते हैं तो यहां तक होता है कि वे जैनिझ्म का अभ्यास शुरू कर देते हैं। हमें ऐसे भी लोग मिले हैं। उसको कैसे उपदेश प्राप्त हुआ ? अंदर से अव्यक्त ऐसी कोई जिज्ञासा है न ! जिज्ञासा है तो उसके वैसे निमित्त भी सहज मिल जाते हैं। हमने उसमें कुछ किया ऐसा भी नहीं लगता है।

वहां कोई ऐसी अव्यक्त सहजरूप से रुचि-जिज्ञासा है कि जानू तो सही कि मैं कौन हूं ! अब उसके लिये जैन होना आवश्यक नहीं है। जैन तो एक कम्युनिटी है, वहां जन्मे हुये जीव हैं। परंतु जो तत्त्वज्ञानपूर्वक आगे बढ़ेंगे उनको सम्यग्दर्शन होगा। *श्रोता: संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव होना जरूरी है।* अभी यहां सम्यग्दर्शन के लिये बात हो रही है। उसकी रुचि कहो या जिज्ञासा है न अंदर से, ऐसी कोई अव्यक्तरूप होगी। आपने अभी पूछा था कि उसका कारण क्या है। अभी हम निमित्तों के पीछे नहीं जायेंगे। बस इतना है कि मोहनीय कर्म के अनुभाग का मंद उदय हो रहा है और यहां जीव के जो कषाय होंगे वे मंदता की ओर बढ़ेंगे इतना ले रहे हैं। अभी हमने विशुद्धिलब्धि की

परिभाषा नहीं पढ़ी है। क्षयोपशमलब्धि के काल में ही क्या हो रहा है उसकी चर्चा चल रही है, है न।

पृष्ठ ७१, लास्ट पैरेग्राफ- **अब नये परिणाम शुभरागरूप होते हैं** अप्रशस्त कर्मों के अनुभाग का मंद उदय होना उसको हमने कारण कहा और नये परिणाम शुभरागरूप होते हैं उसको हमने कार्य कहा। अब आगे की बात कर रहे हैं। उसके निमित्त से ये शुभरागरूप मंद परिणाम हो रहे हैं। अब इसको कारण कहा जा रहा है। एक समय में तीन कार्य हो रहे हैं- पूर्वबद्ध मोहनीय के अनुभाग का मंद होकर उदय में आना, कषायों का मंद होना यानी शुभरागरूप होना और नये सातों कर्मों का बंध होना। पुराने कर्म के उदय को निमित्त कहा, कारण कहा, तो जीव के भावों को कार्य कहा। अब जीव के परिणाम को कारण कहा, उदय का कारण नहीं, नये आनेवाले का। इनके आपस में उलटा- पुलटा निमित्त-नैमित्तिक नहीं लगाना। उदय निमित्त है तो परिणाम उसका कार्य है। अब परिणाम को निमित्त कहेंगे तो आनेवाले कर्मों को कार्य कहेंगे। वहां कौनसे कर्म बंध रहे हैं ? यहां शुभरागरूप यानी मंद कषायरूप परिणाम हो रहे हैं उसके निमित्त से नये कौनसे कर्म बंधेंगे ? तीनों ही बातें एक समय में हो रही हैं। पुराने अप्रशस्त कर्मों का उदय मंद अनुभागरूप हो रहा है उसको हमने कारण कहा, निमित्त कहा। शुभरागरूप मंद कषाय हो रहे हैं उनको कार्य कहा। यहां तक बात समझ में आयी ? अब मंद कषाय को निमित्त यानी कारण कहा और नये कर्म बंधेंगे उसको कार्य कहेंगे। तीनों ही बातें एक समय में हो रही हैं।

देखो, नये परिणाम शुभरागरूप होते हैं। **उनके निमित्त से सातावेदनीय, शुभआयु, शुभनाम, उच्चगोत्र आदि प्रशस्त प्रकृतियों का बंध होता है।** ये कौनसे हैं ? घातिकर्म हैं या अघातिकर्म हैं ? अघातिकर्म हैं। **क्योंकि आठों ही कर्मों का उदय रहने पर भी।** उदय हमेशा आठों ही कर्मों का हो रहा है। **नया बंध मिथ्यात्व और कषाय के निमित्त से होता है।** वह अभी-अभी हमने देखा था। आठों कर्मों का उदय है तो ज्ञानावरण के उदय में वहां ज्ञान की हीनता चल रही है, उससे नया बंध नहीं हो रहा है। दर्शन की जो अभी हीन, अल्पदर्शन की अवस्था है उससे बंध नहीं हो रहा है। अंतराय के उदय के कारण नया बंध नहीं हो रहा है। साता या असातावेदनीय का उदय है इसलिये नया बंध नहीं हो रहा है। तो बंध किससे हो रहा है ? मोहनीय के उदय में। यही कह रहे हैं कि **आठों ही कर्मों का उदय रहने पर भी नया बंध**

मिथ्यात्व और कषाय के निमित्त से होता है। मिथ्यात्व यानी दर्शनमोहनीय और कषाय यानी चारित्रमोहनीय। उनके उदय में नया बंध हो रहा है।

अब **शुभ परिणामों से** ये शुभ परिणाम हो रहे हैं न ? अनुभाग मंद है, यहां जीव के शुभराग है और यहां नये कर्म बंधेंगे वे अघातिकर्म में शुभप्रकृतियां बंधेंगी। तो **शुभ परिणामों से अघातिकर्म की प्रशस्त प्रकृति बंधती हैं।** हमने उनकी लिस्ट देखी थी- सातावेदनीय, आयु अगर बंधेगी तो शुभआयु और फिर शुभनाम, उच्चगोत्र आदि बंधेंगे वहां। हमने क्या देखा ? यह अंतर्मुहूर्त तक ही होता है। क्योंकि यह साता हो या असाता हो, अंतर्मुहूर्त से अधिक काल तक नहीं बंधेगी। हमें क्षयोपशमलब्धि और विशुद्धिलब्धि है और हमने देशना सुनी है तो हमारी ये चारों लब्धि चालीस-पचास साल से चल रही हैं ऐसा हम मानेंगे तो हमने चालीस-पचास साल से सातावेदनीय बांधा ऐसा मानना पड़ेगा। यह पॉसिबल है क्या ? नहीं है। यह अंतर्मुहूर्त तक ही बंधती है। क्षयोपशमलब्धि कहो, विशुद्धिलब्धि कहो, देशनालब्धि कहो सब मिलकर भी अंतर्मुहूर्त की बात होगी। **शुभ परिणामों से अघातिकर्म की प्रशस्त प्रकृति बंधती हैं और अशुभ परिणामों से अघातिकर्म की अप्रशस्त प्रकृति बंधती हैं। दोनों ही परिणामों से, दोनों ही यानी शुभ और अशुभ परिणामों से ज्ञानावरणादि घातिकर्मों का बंध तो होगा तो क्या फायदा ? तो फायदा ऐसा होगा, जहां शुभ परिणाम हैं - मंद कषाय है वहां उनकी स्थिति और अनुभाग कम बंधेंगे। परंतु नया स्थितिबंध और अनुभागबंध शुभ परिणामों से कम बंधेगा क्योंकि वे अप्रशस्त प्रकृतियां हैं। स्थितिबंध तो सबका कम बंधता है परंतु अनुभागबंध अप्रशस्त में कम बंधेगा। और अशुभ परिणामों से अधिक बंधेगा।**

इसी बात को विशुद्धिलब्धि द्वारा बताया जाता है। अभी हमने विशुद्धिलब्धि की परिभाषा नहीं देखी है। वह क्यों होती है उसकी कारण मीमांसा बतायी है। **उसकी परिभाषा देखते हैं।** परिभाषा यानी उसकी डेफिनिशन क्या है ? वह देखेंगे। **क्षयोपशमलब्धि जिसे प्राप्त हो गयी है, उसका अर्थ क्या है ?** जिस काल में ज्ञानावरणादि समस्त अप्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग प्रतिसमय अनंतगुणा हीन होते-होते उदय में आ रहा है, उस काल में। उसीको यहां क्या कहा है ? जिसको क्षयोपशमलब्धि की प्राप्ति हुयी है **उसके कारण जीव को सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियों के बंध के कारणभूत धर्मानुरागरूप शुभ परिणाम होते हैं।** कैसे

बताया ? वहां कैसा बंध होता है उसकी अपेक्षा इन शुभ परिणामों को बताया।

हमने बातें देखी थी न कि अनुभाग घटकर उदय में आता है वह क्षयोपशमलब्धि में गया और उसके कारण यहां जीव के विशुद्ध परिणाम यानी धर्मानुरागरूप परिणाम हो रहे हैं। कैसे परिणाम ? किसी ने कहा वहां स्वाध्याय चल रहा है। चलो, देखो तो सही क्या हो रहा है। इतना तो हो सकता है न। कोई ऐसे भी होते हैं कि उनको जबरदस्ती करेंगे तो भी उनको चिढ़ आती है। अभी तीन दिन छुट्टी है, अच्छा है न ! उतना तो निमित्त मिला। तीन दिन तो सही, शिबिर में आये न कोई लोग ? है न। कोई बात नहीं। क्या कहते हैं ? क्षयोपशमलब्धि जिसे प्राप्त हो गयी उसके कारण। अभी जीव के कैसे परिणाम हो रहे हैं ? धर्मानुरागरूप शुभ परिणाम। परंतु उनको क्या कहा ? वे कैसे हैं ? कारणभूत। किसके लिये कारणभूत हैं ? सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियों के बंध के कारणभूत। ऐसे उलटी-पुलटी परिभाषा लगती है।

जिसको क्षयोपशमलब्धि प्राप्त हुयी है उसके धर्मानुरागरूप मंद कषाय होंगे और उसके कारण नया बंध कैसे हो रहा है ? सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियों का। क्योंकि प्रशस्त प्रकृतियां अघातिकर्म में ही होती हैं। उनका बंध हो रहा है यानी उनके बंध के कारणभूत परिणामों को यहां विशुद्धि कहा। नरकों में भी विशुद्धि होती है, हमने यह कहा था तो कृष्णलेश्यावालों को सातावेदनीय का बंध होता होगा कि नहीं होता होगा ? नहीं होता ? तो क्या असाता का बंध कर रहे हैं पूरे लाइफ टाइम तक ? अरे, उसका बंध तो हर अंतर्मुहूर्त में पलट रहा है - वह नारकी हो या देव हो। शुक्ललेश्यावाला असाता का बंध करेगा कि नहीं करेगा ? करेगा, क्यों नहीं करेगा ? देखो, परिणामों में संक्लेश-विशुद्धि तो होती ही रहती है।

जिस काल में क्षयोपशमलब्धि हुयी है उस काल में उसके विशुद्ध परिणाम चल रहे हैं, विशुद्ध यानी धर्मानुरागरूप परिणाम और उसी काल में नया बंध हो रहा है वह सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियों का हो रहा है। तो प्रशस्त प्रकृतियों के बंध के कारणभूत परिणाम यहां हो रहे हैं उसीको विशुद्धिलब्धि कहेंगे। फिर से यह परिभाषा पढ़ते हैं- **क्षयोपशमलब्धि जिसे प्राप्त हो गयी है, उसके कारण** यह निमित्त बताया। हमने देखा न, एक समय में तीन कार्य हो रहे हैं - तीन बातें हो रही हैं। **जीव को**

सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियों के बंध के कारणभूत धर्मानुरागरूप शुभ परिणाम होते हैं उनकी प्राप्ति वह विशुद्धिलब्धि है। लब्धि यानी जीव को प्राप्ति हुयी। किसकी ? विशुद्धि की प्राप्ति हुयी। विशुद्धि यानी क्या ? जिसके कारण शुभ प्रकृतियां बंधती हैं ऐसे परिणाम हो रहे हैं, धर्मानुरागरूप शुभभाव हो रहे हैं।

हमने तीन बातें देखी। पुराने कर्मों का उदय कैसे चल रहा है ? अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग प्रति समय अनंतगुणा घटकर उदय में आ रहा है। अभी विशुद्धिलब्धि को कैसे बताया ? यहां उसके धर्मानुरागरूप परिणाम की प्राप्ति हुयी। उन्हीं परिणामों को कहां से बताया ? कि उसके कारण कार्य क्या हो रहा है वहां से बताया। सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियों के बंध के कारणभूत ऐसे परिणाम उसके हो रहे हैं। अपनी भाषा में उसके कषाय मंद-मंद चल रहे हैं। क्षयोपशमलब्धि को निमित्त कारण कहा और विशुद्धिलब्धि को उसका कार्य कहा। परंतु विशुद्धिलब्धि के कारण नया कार्य क्या हो रहा है ? प्रशस्त प्रकृतियां; कौनसी ? सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियां बंध रही हैं। यहां तक बात ख्याल में आयी ?

फिर से पढ़ती हूं इसको देखो- क्षयोपशमलब्धि जिसको प्राप्त हो गयी है उसके कारण, उसके निमित्त से जीव को सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियों के बंध के कारणभूत धर्मानुरागरूप शुभ परिणाम होते हैं। यानी क्षयोपशमलब्धि के निमित्त से शुभ परिणाम होते हैं और शुभ परिणामों के निमित्त से सातावेदनीय आदि शुभ प्रकृतियों का बंध होता है। ये तीनों ही बातें एक साथ हो रही हैं। उनकी प्राप्ति यानी उसके कषायों की मंदता - शुभरागरूप धर्मानुरागरूप परिणाम हुये तो ऐसे परिणाम का होना उसको कहेंगे विशुद्धिलब्धि। यहां तक समझ में आयी बात ? आगे बढ़ते हैं।

क्षयोपशमलब्धि के फलस्वरूप जीव के मिथ्यात्व और कषाय प्रतिसमय मंद होते जाते हैं, इसलिये सहज ही उसकी धर्मानुरागरूप वृत्ति होती है। देवदर्शन, पूजा, स्वाध्याय करना, सदाचारयुक्त नैतिक जीवन का होना, यह तो हम कार्यो की अपेक्षा बता रहे हैं। परंतु उसके पीछे उनके शुभराग लेना। अभक्ष्यभक्षण का त्याग, व्यसनाधीन न होना, अन्याय-अनीति न करना आदि भाव उसके सहज उत्पन्न होते हैं। इन शुभ परिणामों के निमित्त से उसे सातावेदनीय आदि प्रशस्त कर्मों का बंध होने लगता है। प्रशस्त कर्मों का बंध

नारकी को होगा कि नहीं होगा ? तिर्यच को होगा कि नहीं होगा ? अरे, हर पर्यायवाले जीवों को हो सकता है क्योंकि ये सब प्रकृतियां कैसी हैं ? परावर्तमान प्रकृतियां हैं। इन प्रतिपक्षी प्रशस्त और अप्रशस्त प्रकृतियों का बंध अंतर्मुहूर्त से ज्यादा किसीको नहीं है। लौटकर फिर नियम से वह प्रशस्त से अप्रशस्त बांधेगा ही बांधेगा। बंध के और उदय के भी कुछ नियम होते हैं। तो ये सारी प्रकृतियां कैसी हैं ? पलट-पलटकर प्रतिपक्षी प्रकृतियों का बंध होनेवाली प्रकृतियां हैं।

विशुद्धि शब्द शास्त्र में अलग-अलग जगह अलग-अलग अर्थ में आता है। विशुद्धिलब्धि के प्रकरण में तथा अन्य सामान्य कथन में विशुद्धि का अर्थ शुभ परिणाम ही लेना। शुभ परिणामवाली विशुद्धि यानी पूजा कर रहे हैं तो विशुद्धि ऐसा उसका अर्थ नहीं लेना है। भले उसको मंद कषायरूप विशुद्धि कहेंगे परंतु किसी क्रिया के साथ उसको मत जोड़ना, हां। **करणलब्धि के समय जब कहेंगे कि विशुद्धि अनंतगुणा बढ़ती है** वहां तो और भी विशुद्धि की बात करेंगे। **वहां तत्त्वज्ञान की निर्मलता और श्रद्धा या चारित्रसंबंधी निर्मलता के साथ हानि को प्राप्त होनेवाले कषायों के उदयस्थानों को विशुद्धि कहते हैं।** अभी इसके डिटेल में जाने की जरूरत नहीं है। जो क्रोध-मान-माया-लोभ कषाय हो रहे हैं उनमें भी अलग-अलग डिग्रीवाले कषाय होते हैं। वहां उनकी डिग्री यानी स्थान कहेंगे, अलग-अलग भेद कहेंगे। वे मंदता की ओर बढ़ते चले जाते हैं उसीको वहां विशुद्धि कहने में आता है। कभी-कभी पूर्ण वीतरागता को भी विशुद्धि कहेंगे।

देखो, जीव के जो परिणाम हैं न, जिनको हम कषाय कहेंगे। कषाय यह सामान्य कथन है। कषाय में कोई संक्लेश के परिणाम होते हैं और कोई विशुद्धि के होते हैं। ऐसा सहज होता है। इन सभी परिणामों को अगर हम एक लाइन में लिखेंगे तो उसका बहुत बड़ा भाग यानी असंख्यात बहुभाग तो संक्लेशवाले परिणाम हैं और असंख्यातवें भाग प्रमाण विशुद्धि के परिणाम हैं। पहले हमने अनंत बहुभाग और अनंतवां भाग देखा था; इसमें कहेंगे असंख्यात बहुभाग और असंख्यातवां भाग। संक्लेशवाले में भी कृष्णलेश्यावाले बहुत ज्यादा हैं, नीललेश्यावाले उनसे कम और कापोतलेश्यावाले उनसे कम। उसतरह से संक्लेशवालों में विभाजित करते हैं। वह हो गया सामान्य कथन। यहां विशुद्धिलब्धि के प्रकरण में जब कहेंगे कि कृष्णलेश्यावाले हैं, तो कृष्णलेश्यावालों के अपने स्थान हैं यानी उनमें भी जो अलग-अलग भेद हैं उनमें

अधिक संक्लेश से मंदता की ओर आयेगा तो उसको भी हम विशुद्धि कहेंगे।

भले वह सातवें नरक का कृष्णलेश्यावाला जीव भी क्यों न हो, अंतर्मुहूर्त में पलट-पलटकर उसको भी शुभ-अशुभभाव होते रहते हैं। वह भी अंतर्मुहूर्त सातावेदनीय को बांधेगा, अंतर्मुहूर्त असाता को बांधेगा। उसको भी वहां सम्यक्त्व होने जा रहा है तो उसके भी जो मंद कषाय होंगे तो वहां पर भी उसको विशुद्धिलब्धि कहेंगे। ख्याल में आयी बात ? सामान्य कथन करना है तो कहेंगे नारकियों को तो संक्लेश हो रहा है और देव थोड़ी शांति सहित मंद कषायी हैं ऐसा कह सकते हैं। परंतु अगर हमें विशुद्धिलब्धि कहना है तो उनके अपने पूर्व कषायों की अपेक्षा उनके कषाय मंदता की ओर जा रहे हैं वही उनके लिये विशुद्धिलब्धि कहेंगे। *श्रोता: कषाय के उदयस्थान का मतलब है कषाय की ढ़रायटी ?* उदयरूप कषायों की डिग्री। कितनी मात्रा में उनका उदय हो रहा है। उस विषय को हम थोड़ा गौण करते हैं क्योंकि कषायों के उदयस्थान क्या हैं उसकी चर्चा अभी नहीं करेंगे हम।

अभी हम आते हैं पृष्ठ ७४ पर। यहां बीच में संक्लेशस्थान और विशुद्धिस्थानों को बताया है। कभी-कभी घटते हुये कषायों को विशुद्धि कहने की पद्धति है और बढ़ते हुये कषायों को संक्लेश परंतु वह सही नहीं है। नहीं तो दोनों के स्थान समान हो जायेंगे। शास्त्रों में कभी-कभी ऐसा भी कथन आता है, छठे गुणस्थानवाला सातवें में जावे तो हम क्या कहेंगे ? विशुद्धि बढ़ी और सातवें में गया। सातवें में है जिसको हम विशुद्धि कह रहे हैं वह सातवें से छठे के सन्मुख है। है तो सातवें में, शुद्धोपयोग में फिर भी हम क्या कहेंगे ? संक्लेश हुआ है। यह तुलनात्मक, रिलेटिव्ह टर्मिनॉलॉजि है इसलिये कहीं-कहीं संक्लेश और विशुद्धि उस अर्थ में आता है। परंतु हमारा विषय कौनसा है ? सम्यक्त्व से पूर्व होनेवाली विशुद्धिलब्धि। यहां उसके पूर्व अवस्था में जैसे परिणाम थे उससे वे मंद की ओर बढ़ने लगे हैं तो उसको कहेंगे विशुद्धिलब्धि। यहां तक समझ में आयी बात ?

तो कहते हैं देखो, यहां पृष्ठ ७४ पेज, पहली लाइन- **इस चर्चा से स्पष्ट होता है** हमने चर्चा को विस्तार से नहीं पढ़ा है परंतु मैंने जो आपको बताया उसीमें से तात्पर्य निकलता है। **इस चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि नरकगति में कृष्णादि तीन अशुभ लेश्या।** हमने देखा था नीचे सातवें नरक में, छठे नरक में और पांचवें नरक के नीचे के

कुछ बिलों में वहां के जीवों को कृष्णलेश्या पायी जाती है। बीचवाले नरकों में नीललेश्या और ऊपर के नरकों में कापोतलेश्या। तो कृष्णादि तीन अशुभ लेश्या **होने पर भी वहां विशुद्धिलब्धि कही है।** अगर हम कषाय के पूरे स्थान देखेंगे तो असंख्यात बहुभाग जो संक्लेश के स्थान हैं उनमें कृष्ण, नील और कापोत के भेद करते हैं। उन सबको संक्लेश में डालते हैं। पीत, पद्म और शुक्ल को विशुद्धि के स्थानों में डालते हैं। परंतु हमारा यहां विषय जुदा है। कौनसा ? विशुद्धिलब्धि का। तो कृष्णलेश्यावाले स्थानों में ही तीव्र से मंद की ओर अनुभाग चलता है तो उसको विशुद्धि कहेंगे। यह इसका अर्थ है।

देखो तो, अभी तो इस विशुद्धिलब्धिवाले जीव को देशना अर्थात् मोक्षमार्ग के स्वरूप संबंधी उपदेश सुनने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ है। बाद में हम देखेंगे चार लब्धि एक साथ कैसे होती हैं। अभी हम क्रम से जा रहे हैं। क्या हो रहा है ? अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग मंद होकर उदय में आ रहा है। जीव के धर्मानुरागरूप शुभभाव चल रहे हैं। सातावेदनीय आदि के बंधयोग्य उसके परिणाम चल रहे हैं। भले अंतर्मुहूर्त तक चले, परंतु ऐसे चल रहे हैं। अभी ऐसा कौनसा जीव लिया ? अभी उसको देशना का अवसर नहीं मिला है, सही उपदेश की प्राप्ति नहीं हुयी है। **उसकी प्राप्ति तो देशनालब्धि के प्रकरण में कहेंगे।** तब उसकी चर्चा करेंगे। **अभी तो केवल पुण्यबंध के कारणभूत धर्मानुरागरूप शुभ परिणाम हो रहे हैं।** यहां तक वह आया है।

कितने ही जीव इतने मात्र से संतुष्ट होकर जीवन व्यतीत करते हैं। और वे समझते भी हैं यह जीवन भला है। दूसरों का भला करते हैं, परोपकार करते हैं और सदाचार युक्त नैतिक जीवन बिताते हैं तो दुनिया में उनको अच्छा भी कहेंगे, उनको भला कहेंगे। **मानवता की भावना से दूसरों की मदद करना, सदाचार से रहना, देवदर्शन, पूजन, यात्रा, दया, दानादि करना इसीमें वे जीवन की सफलता मानते हैं।** यानी उन्हें शुभभावों की अधिकता है और बार-बार वे उसमें लगे रहते हैं। उनको असाता वगैरह नहीं बंधती वह बात नहीं है परंतु मुख्यता से सदाचारी जीवन है बस इतने में ही वे अपने को ठीकठाक, खुश-खुश मानते हैं, संतुष्ट होकर रहते हैं। **अभी इन जीवों को तत्त्वज्ञान का पता नहीं है, यहां ऐसा जीव लिया है। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की पहचान नहीं है। कोई जीव धर्मानुरागवश कहीं प्रवचन-शास्त्र सुनने**

जाता भी है। अब इसको कहीं जाने की जरूरत नहीं है, सारे प्रवचनकार आकर इसके हाथ में - मोबाइल में, इसके सामने टीव्ही में बैठे हैं और इसको सही-गलत की पहचान नहीं है। जो अच्छा लगता है वह सच्चा हो यह जरूरी नहीं है। बात ख्याल में आयी न ?

क्या कहते हैं ? शास्त्र सुनने जाता भी है। **मगर सच्चा उपदेश इसे प्राप्त नहीं हुआ।** यानी अभी जिसको देशना नहीं मिली ऐसा जीव लिया है। **पूज्य कानजीस्वामी कहा करते थे कि यह जीव बीबी, बाल-बच्चे, व्यापार, धंधा आदि से बड़ी मुश्किल से एकाध घंटा निकालकर शास्त्र सुनने जाता है।** तो क्या होता है ? **कुगुरु उसे लूट लेता है।** यानी उसको सही उपदेश नहीं मिलता है। क्या उपदेश मिलता है ? व्रत करो, उपवास करो, यह ऐसा करो, मंदिर बनवाओ, यात्रा निकालो, संघ निकालो - ऐसा कुछ उपदेश मिल जाता है और वह भी उसको ही सही मानकर चलता है। उसको मालूम ही नहीं है। उसे लगता है ऐसे कोई बड़े महात्मा कहते होंगे तो सच ही होगा, उसमें अपना कल्याण ही होगा। उसको कोई भी निर्णय नहीं है, गलत-सही की भी पहचान नहीं है ऐसा जीव लिया है यहां। *श्रोता: अभी इससे भी डाउन जा रहे हैं लोग।* अभी बाहर क्या हो रहा है इससे हमें कोई मतलब नहीं है। कहां ज्यादा डाउन है ? इस काल में भी इतना उत्कृष्ट उपदेश हमें प्राप्त हुआ है उसकी बात हम सोचेंगे। अभी इतना सुनकर भी डाउन हो रहा है तो उनका ऐसा डाउनफॉल अभी निश्चित है ऐसा समझना और क्या है ? ख्याल में आया न ?

तुम विचार करो, अनादिकाल से हम जन्म-मरण करते आये हैं। यह तो निश्चित है न ? क्योंकि हम हैं। हैं यानी हमारी अस्ति है, हमारा अस्तित्व है। तो जिसका अस्तित्व है यानी सत् है वह द्रव्य है। वह कब से होता है ? तो कहते हैं अनादि से। तो हम आप अनादि से हैं। हम अनादि से मनुष्य हैं ऐसा नहीं कह रहे हैं। हम अनादि से हैं। मनुष्यपर्याय तो अभी मिली है परंतु हमारी सत्ता अनादि से है। हम अनादि से हैं तो क्या करते हैं ? जन्म और मरण करते आये हैं। हर भव में जहां-जहां जन्म धारण किया वहां की जितनी आयु बांधकर गये थे उतनी आयु भोगी और चले आगे के भव में। जन्म-मरण करते आये हैं और **उसमें अनंत बार एक दो बार नहीं कभी विशुद्ध परिणामों से पुण्य प्रकृति बांधी तो कभी संक्लेश परिणामों से पाप प्रकृति बांधी थी, परंतु बंधन में से छूटने का मार्ग प्राप्त नहीं हुआ था।**

एकेन्द्रिय जीव के भी उनके योग्य संक्लेश-विशुद्धि के परिणाम होते रहते हैं और उनके बंधनेयोग्य शुभ-अशुभ प्रकृतियां भी बंधती रहती हैं। वे भी कभी एकेन्द्रियजाति बांधेंगे, कभी पंचेन्द्रियजाति बांधेंगे, कभी अशुभ परिणाम में तिर्यग्गति बांधेंगे, कभी शुभ परिणाम में मनुष्यगति बांधेंगे। परंतु आयु बांधते समय हमेशा तिर्यचायु, एकेन्द्रियजाति बांधते हैं तो वे अनंतकाल तक एकेन्द्रिय में घूमते रहेंगे। उनके योग्य शुभ-अशुभ परिणाम वहां भी होते हैं और हम सारे शुभ और अशुभ परिणाम क्रियाओं में ढूंढ़ते हैं। क्रिया जुदी बात है और परिणाम जुदी बात है। ख्याल में आया ? यहां क्रिया का निषेध नहीं हो रहा है। उसके पीछे के परिणामों का फल है बस इतनी बात हो रही है। क्रिया से कुछ नहीं होता सुनकर जो क्रिया हो रही हैं न, वह भी छोड़ना चाहता है।

क्या कहते हैं ? देखो- **परंतु बंधन में से छूटने का मार्ग प्राप्त नहीं हुआ था। इसमें से छूटने का मार्ग।** किसमें से ? जन्म-मरण, जन्म-मरण, जन्म-मरण। क्योंकि बंध ही करते रहे न ? तो कभी पुण्य बांधा, कभी पाप बांधा तो उसके फल भी मिलते रहे। पुण्य-पाप का फल ही तो भोगते रहे और फिर नया-नया पुण्य-पाप परिणाम करते रहे। बंधन तो होता रहा, इसमें से कभी छूटा नहीं। छूटने के नाम पर, मोक्ष के नाम पर या मोक्षमार्ग के नाम पर भी कोई क्रिया करनी चाही - व्रतादि अंगीकार किये, यह किया, वह किया मगर सच्चा उपदेश नहीं मिला; हम निमित्त की तरफ से कहेंगे। उसकी पात्रता ही नहीं थी तो वह बाह्य क्रिया में ही रचा-पचा रहा।

मोक्ष का मार्ग और उसका उपदेश जिनेन्द्र भगवान ने बताया है, वही यथार्थ है, सत्य है। बंधन में से छूटने का मार्ग आज हमें उपलब्ध है, उसके मूलकर्ता मूलकर्ता यानी ? मूल उपदेश किसका है ? सर्वज्ञ भगवान का। मूल उपदेशक तीर्थंकर भगवान हैं। उनकी दिव्यध्वनि में देखो, उनकी दिव्यध्वनि है यानी उनकी अभी कोई इच्छा नहीं है कि सबका कल्याण कर दें। वे पूर्व में जब चौथे, पांचवें, छठे, सातवें वगैरह गुणस्थान में थे, तो वहां उनके ऐसे शुभभाव हुये थे कि यह मार्ग सब जाने, तब तीर्थंकर प्रकृति बांधी थी। तीर्थंकर प्रकृति का उदय कब होता है ? तेरहवें गुणस्थान में जब केवलज्ञान होता है। उनकी वाणी बिना इच्छा के सहजरूप से छूटती है, खिरती है। आप और हम इच्छा के साथ बोलते हैं न, क्यों ? लगता है, परंतु वैसा है नहीं। हम तो इच्छा से बोलते हैं कि नहीं ? अरे, वाणी के कर्ता हम नहीं हैं।

तो कहते हैं **मूल उपदेशक तीर्थकर भगवान हैं। उनकी दिव्यध्वनि में यह उपदेश सहज रीति से बताया जाता है।** यह सहज निमित्त-नैमित्तिक संबंध है। अभी तो उनके कोई इच्छा नहीं है। किसको बोलूं ? अभी इतने लोग जमा हो गये, चलो अभी चालू करें ॐ ध्वनि - ऐसा तो वहां कुछ है नहीं। **उसके अनुसार गणधर आचार्य बारह अंगों की रचना करते हैं जिसे हम द्वादशांग कहते हैं।** द्वादशांग यानी बारह अंग जिसे हम द्वादशांग द्रव्यश्रुत कहते हैं। **आचार्यों की परंपरा से।** परंपरा यानी पहले तो ज्ञान का इतना उघाड़ होता था कि यह सारा मुखोद्गत होता था, बाय हार्ट होता था और आचार्य शिष्यों को पढ़ाते थे और वे अपने शिष्यों को। इसतरह से वह उपदेश चलता रहा। **आचार्यों की परंपरा से** आज हमें यह मार्ग उपलब्ध है, **यह मार्ग आज तक चलते आया है।** अभी बहुत सारा नष्ट हुआ है परंतु हम अपने आत्मा का अनुभव कर सकें, उसका मार्ग तो बिलकुल उपलब्ध है। और उसको सरल करके समझानेवाले ज्ञानी भी हमें मिले।

इस मार्ग का उपदेश सुनने की जिज्ञासा और बुद्धि होना बुद्धि यानी चलो सुनो तो सही ऐसा विचार आना। **और यह सत्य उपदेश सुनने का अवसर प्राप्त होनेरूप महाभाग्य- महान पुण्य उसीको होगा** इसको पुण्य कहा। पुण्य का फल क्या है ? ऐसा उपदेश सुनने को मिलना यह महान पुण्य का उदय का फल बताया जा रहा है। तो कहते हैं **जिसके क्षयोपशमलब्धि और विशुद्धिलब्धिपूर्वक देशनालब्धि प्राप्त होती है।** यह सुनने को अवसर मिलना इसको हम देशनालब्धि में देखेंगे। उसकी और चर्चा कल करेंगे। यह वाक्य हम पूरा करते हैं। **विशुद्धिलब्धि बिना जीव जिनेन्द्रकथित उपदेश सुनने के लिये तैयार नहीं होगा।** तैयार ही नहीं होगा फिर आगे समझना, सुनना, फिर उस पर विचार करना वह बात तो दूर है।

कल विशुद्धिलब्धि संबंधी कुछ चर्चा करके फिर आगे बढ़ेंगे। अभी रुकते हैं।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

१३. कषायस्थान, देशनालब्धि

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने इस लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार नाम से भाषाटीका लिखी है। हम यहां पांच लब्धि का प्रकरण उसीके आधार से देख रहे हैं।

हमने शुरुआत में कर्मों की विशेष जानकारी ली थी कि कर्म दो प्रकार के हैं - घातिकर्म, अघातिकर्म। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय घातिकर्म हैं। वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र अघातिकर्म हैं। उनकी अपनी-अपनी उत्तरप्रकृतियां होती हैं; उनके भेदों को उत्तरप्रकृतियां कहते हैं। उनकी संख्या, उनके नाम, उनका कार्य आदि की हमने चर्चा की। हमने स्थिति की अपेक्षा निषेक रचना और अनुभाग की अपेक्षा स्पर्धक रचना भी देखी थी। हमने क्षयोपशम संबंधी विशेष चर्चा भी की थी।

स्पर्धकों में हमने देखा था कि प्रत्येक प्रकृति के अनंत स्पर्धक होते हैं। आचार्यों ने उनको चार-चार नामों से समझाया है। जैसे घातिकर्म सभी अप्रशस्त ही होते हैं; उनमें नीचे से यानी जघन्य से ऊपर यानी उत्कृष्ट तक बताना है तो उनके नाम हैं लता, दारु, अस्थि और शैल और ऊपर से नीचे तक बताना है तो शैल, अस्थि, दारु और लता। घातिकर्मों की विशेषता है - उनमें कुछ प्रकृतियां सर्वघाति होती हैं; अपने प्रतिपक्ष का पूरा घात होने में निमित्त बनती हैं, और कुछ होती हैं देशघाति प्रकृतियां। विशेषता यह होती है कि सर्वघाति प्रकृतियों के सभी स्पर्धक सर्वघाति ही होते हैं। क्या कहा ? सर्वघाति प्रकृति के सभी स्पर्धक सर्वघाति होते हैं। उनका अनुभाग कितना भी मंद हो जायें तो भी वे देशघाति स्पर्धक कभी नहीं बनेंगे।

अब दूसरी ओर जो देशघाति प्रकृतियां हैं उनमें दोनों ही प्रकार के स्पर्धक पाये जाते हैं - सर्वघाति भी और देशघाति भी। उनमें क्या विशेषता होती है ? जब क्षयोपशम घटित करते हैं तब सर्वघाति स्पर्धकों का कभी उदय नहीं होगा। बंधा था, सत्ता में भी पड़ा था परंतु जब उदय का समय आया तो उस एक समय में सर्वघाति स्पर्धकों का अनुभाग अत्यंत हीन - अनंतगुणा हीन होकर देशघातिरूप से उदय में आता है। उसको कहेंगे सर्वघाति स्पर्धकों का उदयभावी क्षय। क्षयोपशम मात्र देशघाति प्रकृतियों पर ही घटित होगा। फिर से- चार घातिकर्म हैं, उनमें सर्वघाति और देशघाति प्रकृतियां ऐसी डिब्बिजन की थी। उनमें से क्षयोपशम कौनसी प्रकृतियों पर घटित होता

है ? श्रोता: देशघाति प्रकृतियों पर। देशघाति पर ही होता है। अब यह सम्यक् प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व को जरा एक बाजू रखो क्योंकि वे प्रकृतियां नयी तैयार हुयी हैं।

सम्यक् प्रकृति देशघाति होने पर भी उसमें मात्र देशघाति स्पर्धक हैं। मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व तो सर्वघाति ही रहेंगे। वहां स्पर्धक नहीं कहते, पूरी प्रकृति कहेंगे कि मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति का वर्तमानकाल में उदयाभावी क्षय है। भविष्यकाल में वे पड़ी हैं और वर्तमानकाल में एक समय में सम्यक् प्रकृतिरूप होकर उदय में आ रही हैं। बाकी जो सारे क्षयोपशम भाव हैं वे मात्र देशघाति प्रकृतियों पर ही घटित होंगे। सर्वघाति प्रकृतियों का कोई क्षयोपशम नहीं होता - ना निद्रा का क्षयोपशम होता है, ना केवलज्ञानावरण का क्षयोपशम होता है, ना अन्य सर्वघाति प्रकृतियों का होता है। मिथ्यात्व का भी क्षयोपशम कभी नहीं होगा। मिथ्यात्व का उदय होगा या उसके अनुदय में सम्यक्त्व होगा। यहां तक बात ख्याल में आयी ? यही प्रश्न था- चारित्रमोहनीय की सर्वघाति प्रकृतियां अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरणीय आदि में भी क्षयोपशम नहीं होता क्या ? बिलकुल नहीं होता क्योंकि वे सर्वघाति हैं। जहां सर्वघाति और देशघाति दोनों प्रकार के स्पर्धक होते हैं वहीं क्षयोपशम घटित होता है, अन्यथा नहीं। श्रोता: यदि होता है तो कैसे ? उनमें होता ही नहीं। आपका और क्या प्रश्न है ?

कृपया पृष्ठ ७३ पैरेग्राफ ५ को समझाइये। पृष्ठ ७३ निकालना। हमने कल छोड़ दिया था परंतु लोग इसको छोड़ना नहीं चाहते हैं, अच्छी बात है। हमने कल पांच लब्धि के नाम देखे थे, कौन बताना चाहते हैं ? श्रोता: क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि। क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि। श्रोता: देशनालब्धि। देशनालब्धि। श्रोता: प्रायोग्यलब्धि। प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि। इन पांच लब्धिपूर्वक, पूर्वक यानी उसके पश्चात् सम्यग्दर्शन होगा। उस सम्यग्दर्शन का नाम क्या है ? श्रोता: प्रथमोपशम सम्यक्त्व। प्रथमोपशम सम्यक्त्व। अन्य सम्यक्त्व कैसे होता है, कितने करण होते हैं, उसकी चर्चा अभी नहीं। जो विषय चल रहा है उसीकी चर्चा को हम आगे बढ़ाते हैं।

क्षयोपशमलब्धि में हमने विशेषता देखी। उसकी परिभाषा कौन बताना चाहते हैं ? श्रोता: ज्ञानावरणादि समस्त अप्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग जिस काल में समय-समय अनंतगुणा घटता हुआ उदय में आयेगा। बहुत अच्छा, हां। देखो, उदय होता है न ? तो वहां कौनसी प्रकृति का उदय हो रहा है ? कितने प्रदेशों का उदय हो रहा है ?

कौनसी स्थिति का उदय हो रहा है ? मात्र वर्तमान की एक स्थिति - एक निषेक का उदय हो रहा है और किस अनुभागरूप से उदय आयेगा ? ये चार बातें हो रही हैं। अभी क्षयोपशम की परिभाषा हम देख रहे हैं कि क्षयोपशम में क्या होता है ? सर्वघाति स्पर्धक दूसरे निषेक से ऊपर पड़े हैं। उस समय वर्तमान में देशघाति स्पर्धकों का उदय चल रहा है, वर्तमान में सर्वघाति का उदय है ही नहीं। अब वर्तमान का निषेक चला गया। तो अब किसका नंबर आयेगा ? वह दूसरा निषेक है वह पहले नंबर पर आया है। तो पहले नंबर पर आते ही उसमें जो परमाणु हैं वे उदय में आयेंगे ही। वहां उसको कोई रोक नहीं सकता। उनका उदय नहीं होते हुये वे ऊपर ही रह जाये और बाकी रिमेनिंग परमाणु नीचे आ जाये ऐसा कभी नहीं होगा। यानी उन परमाणुओं का उदय होगा ही होगा जिसको प्रदेशउदय कहेंगे।

उदयावली में प्रवेश किया है उन निषेकों का क्रम से उदय जरूर होगा। यानी प्रकृति का भी उदय होगा, प्रदेश का भी उदय जरूर होगा। जो वर्तमान एक समय का निषेक है उसका उदय होगा ही होगा यानी स्थिति का उदय होगा और अनुभाग का भी उदय होता है। परंतु अनुभाग किसरूप से उदय में आ रहा है ? तो कहते हैं सर्वघातिरूप से अनुभाग था वह एक ही समय में देशघाति होकर उदय में आ रहा है। इसलिये उसको उदयाभावी क्षय कहा। किसकी अपेक्षा उदय का अभाव कहा ? सर्वघाति अनुभाग के उदय का अभाव है। देशघातिरूप से उदय है। परंतु प्रदेशों के उदय का अभाव नहीं हुआ है। वे तो खिरनेवाले ही हैं। अभी परमाणु तो निकल जायेंगे। निकल जायेंगे यानी क्या ? वे कर्म से अकर्मरूप होनेवाले हैं।

हमने पहले क्षयोपशम की परिभाषा घटित की थी। उसके बाद क्षयोपशमलब्धि में हमने क्या देखा ? ज्ञानावरणादि समस्त अप्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग प्रतिसमय अनंतगुणा हीन होकर उदय में आता है। घातिकर्म की तो सारी प्रकृतियां अप्रशस्त हैं ही और अघातिकर्म में भी अप्रशस्त हैं। अघातिकर्म की अप्रशस्त प्रकृतियों का भी अनुभाग घटेगा परंतु उसको क्षयोपशम नहीं कहेंगे। सभी अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग घट रहा है। मुख्यतः हमें घातिकर्म पर ही घटाना है। क्षयोपशम तो हीनाधिक होता रहता है। ज्ञान का उघाड़ भी हीनाधिक होता रहता है। क्षयोपशमलब्धि में क्या विशेषता है ? अनुभाग घटेगा, प्रतिसमय अनंतगुणा घटेगा यानी ज्ञान का विकास होगा न प्रतिसमय ? ज्ञान कहो या पुरुषार्थ कहो क्योंकि वहां अंतराय वगैरह सभी कर्मों का

अनुभाग घटेगा। मिथ्यात्व का भी अनुभाग घटेगा परंतु मिथ्यात्व का अनुभाग घटकर वह देशघाति नहीं होगा। मिथ्यात्व मंद-मंद-मंद-मंद पड़ेगा। अकेला मिथ्यात्व ही नहीं चारित्रमोहनीय भी मंद होगा क्योंकि अभी मिथ्यात्व गुणस्थान है। उसके अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन चारों ही के क्रोध या मान या माया या लोभ का उदय चल रहा है। परंतु वह अभी कैसा हो रहा है ? प्रतिसमय अनंतगुणा घटता-घटता-घटता यानी वहां कर्मों की भाषा में उनका अनुभाग घट रहा है और जीव की ओर से कहेंगे तो उसके परिणाम कैसे हो रहे हैं ? मंदता की ओर बढ़ रहे हैं। यहां तक तो हमने समझ लिया था।

क्षयोपशमलब्धि यानी पूर्व कर्मों का अनुभाग किसरूप से उदय में आ रहा है उसकी बात की, उसको कारण कहा, निमित्त कहा। अब कार्य क्या होता है ? जीव के परिणाम। जीव के परिणामों में; अन्य परिणाम नहीं लेते हुये मोह, राग, द्वेष के परिणाम को ही लिया। क्यों ? आगामी बंध के वे ही कारण हैं। यानी ज्ञान का भले ही विकास हो रहा है, अभी पुरुषार्थ बढ़ेगा जो कुछ होगा परंतु नया कर्म का बंध मोहनीय के उदय में होता है। इसलिये जीव के मोह परिणाम में क्या परिवर्तन हुआ ? तो मिथ्यात्व भी मंद होकर उदय में आ रहा है और चारित्रमोह यानी कषाय भी मंद-मंद-मंद-मंद होते-होते उदय में आ रहे हैं। नंचरली अभी जो नया बंध होगा वह साता, स्थिर, शुभ, सुभग आदि पुण्य प्रकृतियों का होगा। तीन बातें एक साथ होती हैं। *श्रोता: प्रशस्त का ज्यादा होगा ?* प्रशस्त का बंध होगा। परावर्तमान प्रकृतियां होती हैं न ? देखो, प्रशस्त प्रकृतियों का बंध होता है, इतना ही नहीं कहा। परंतु उसमें कौनसी प्रकृतियां ली हैं ? साता या असाता बंधती रहती हैं। वे हर अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में पलटती रहती हैं। साता-असाता, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग-दुर्भग, सुस्वर-दुस्वर वगैरह में से प्रशस्त प्रकृतियां बंधेगी। बाकी पंचेन्द्रियजाति आदि प्रकृतियां बंधती हैं उनकी ज्यादा चर्चा नहीं है। साता आदि प्रशस्त को ज्यादा महत्व देकर उनको ले लिया है।

इसीको विशुद्धिलब्धि के रूप में समझना है। क्षयोपशमलब्धि में क्या लिया ? अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग अत्यंत हीन-हीन अनंतगुणा हीन होकर उदय में आ रहा है। यह क्षयोपशमलब्धि में कहा। विशुद्धिलब्धि में कहा कि जीव के ऐसे परिणाम हो रहे हैं कि अभी यहां जो नया बंध हो रहा है वह सातावेदनीय आदि शुभप्रकृतियों का हो रहा है। इसीको विशुद्धिलब्धि कहा। एक ही काल में यह सब हो रहा है।

क्षयोपशमलब्धि है उसी समय विशुद्धिलब्धि है। फिर भी कारण जानकर क्षयोपशमलब्धि को नंबर एक पर कह दिया और कार्य जानकर विशुद्धिलब्धि को दो नंबर पर कह दिया। क्या कार्य हुआ ? जीव के परिणाम। परंतु उसको निमित्त कहेंगे तो और नया क्या हो रहा है ? वे ऐसे परिणाम हैं कि जिनके कारण साता आदि शुभप्रकृतियां बंध रही हैं ? यानी अघातिकर्म के शुभप्रकृतियों के बंध के कारणभूत ऐसे मंद कषाय यहां हो रहे हैं। यहां तक हमने बात देखी।

अब हमने कल जो बात छोड़ी थी उसकी बात हम पढ़ते हैं। देखो, पृष्ठ ७२ लास्ट पैरेग्राफ- **कहीं-कहीं विशुद्धि यानी विशेष शुद्धि- पूर्ण वीतरागता के अर्थ में भी यह शब्द आता है।** एक ही शब्द के अनेक अर्थ हो सकते हैं और अलग-अलग जगह अलग-अलग अर्थ में उसका उपयोग भी होता है। **जहां जो योग्य अर्थ है उसे ठीक तरह से ग्रहण करना।** श्रीमद्जी ने कहा है 'ज्या-ज्या जे-जे योग्य छे तहां समजवुं तेह।' अन्य-अन्य अपेक्षा से वही शब्द अलग-अलग जगह अलग-अलग अर्थ में आता है। **कषायों का उदय पूर्णतः मिटने पर** कषाय का उदय पूर्णतः कब मिटेगा ? *श्रोता: दसवें गुणस्थान के लास्ट समय में।* दसवें में सूक्ष्मलोभ है। यानी कषाय का उदय ग्यारहवें में नहीं है, बारहवें में नहीं है, तेरहवें, चौदहवें में नहीं है। वहां पूर्ण वीतराग अवस्था है। **पूर्ण विशुद्ध कहलाता है।** वहां वीतरागता को विशुद्धि कहा है परंतु अभी विशुद्धि बढ़ती है ऐसा कहेंगे, यहां कषाय के मंद होने को विशुद्धि कहेंगे।

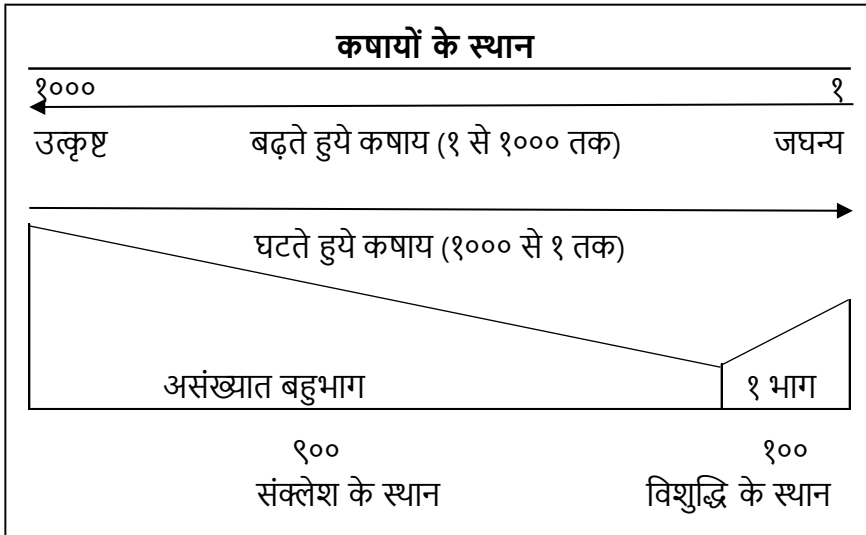
जीवों के कषायों को दो भेदों में विभाजित करते हैं। कषाय के जो परिणाम हैं उनके कितने भेद हैं ? असंख्यात लोकप्रमाण भेद हैं। उनको दो में विभाजित किया तो कौनसे दो हैं ? *श्रोता: संक्लेश परिणाम और विशुद्ध परिणाम।* देखो- **संक्लेश परिणाम और विशुद्ध परिणाम** ये उनके नाम हैं। **कषायों के कुल स्थान** स्थान यानी व्हेरिएण्ड्स-भेद **असंख्यात लोकप्रमाण हैं।** एक लोक में असंख्यात प्रदेश होते हैं। यह संख्या गिनने का नाप है। हमें बताना है संख्या को परंतु वहां प्रदेशों की संख्या को देखकर हम उसको नाम देंगे एक लोक। एक लोक यह संख्या बतानेवाला यूनिट है यानी लोकाकाश में प्रदेशों की जितनी संख्या है उतने प्रमाण को हम एक लोक कहेंगे। तो लोक में प्रदेश कितने हैं ? असंख्यात हैं। तर्जनी की चौड़ाई को अंगुल कहते हैं, इतनासा अंगुल है और अगर उसका असंख्यातवां भाग करने जाये तो हमारी आंखों से भी नहीं दिखेगा। मायक्रोस्कोप से भी नहीं दिखेगा। तो कहते हैं उसमें इतने प्रदेश हैं

कि अगर उनको समयों में कन्वर्ट करो यानी उतने प्रदेशों के बदले अगर हम उतने समय गिनेंगे तो काल का नाप कितना होगा ? तो कहते हैं उसमें असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी चली जायेंगी।

फिर से- प्रदेशों की सूक्ष्मता इतनी है कि अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण सिंगल लाइन में; लीनियर है न क्योंकि प्रदेश वन, टू, थ्री ऐसे हमने एक के बाद एक लिखे और उसका जो यूनिट बनाया वह कितना है ? अंगुल यानी तर्जनी की चौड़ाई, उसका असंख्यातवां भाग। हम उसकी लेंथ भी नहीं गिन सकेंगे उसमें इतने प्रदेश हैं। वन, टू, थ्री, फोर ऐसे एक के बाद एक - अगर उसके बदले हम समय गिनेंगे तो कितना बड़ा काल होगा ? *श्रोता: एक प्रदेश इज ईक्वल टू एक समय ?* एक प्रदेश इज ईक्वल टू एक समय गिनो। अंगुल के असंख्यातवें भाग में कितने प्रदेश हैं ? तो उसके बदले अगर उतने समय हम गिनेंगे तो उन समयों का माप कितना होगा ? जैसे हम कहेंगे न एक घंटे में कितने सेकंड होते हैं ? ६० तो मिनट होते हैं और एक-एक मिनट में ६० सेकंड होते हैं। *श्रोता: ३६००/३६०० सेकंड होते हैं न, अच्छा।* एक जो सेकंड है उसमें तो हजारों कोड़ाकोड़ी आवली और एक-एक आवली में जघन्य युक्तासंख्यात समय। ऐसे सेकंड, ऐसे सेकंडो से आप मिनट बनाओ, उससे घंटे बनाओ और उससे भी डायरेक्ट वर्ष बनाओ।

एक सागर में कितने वर्ष होते हैं ? दस कोड़ाकोड़ी पल्य होते हैं और एक-एक पल्य इतना बड़ा है कि उसमें असंख्यात-असंख्यात करोड़ वर्ष चले जाते हैं। ऐसे एक सागर, दो सागर, तीन सागर ऐसे कितने सागर हैं ? दस कोड़ाकोड़ी और दस कोड़ाकोड़ी मिलकर बीस कोड़ाकोड़ी सागर का एक कल्पकाल होता है। ऐसे एक कल्पकाल, दो कल्पकाल कितने ? कहते हैं असंख्यात; केवल असंख्यात नहीं क्योंकि असंख्यात के भी तीन भेद होते हैं - एक है परीतासंख्यात, एक है युक्तासंख्यात, एक है असंख्यातासंख्यात। कहते हैं असंख्यातासंख्यात कल्पकाल बीत जाये इतने समयों की संख्या अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण जो प्रदेशों की संख्या है उसके बराबर है। तो प्रदेशों की सूक्ष्मता ख्याल में आती है ? इतनी सी लंबाई में इतने प्रदेश, तो पूरे लोक में प्रदेश कितने होंगे ? लोक एक संख्या का नाम - यूनिट है। ऐसा एक लोक, दो लोक, तीन लोक नहीं; ऐसे असंख्यात लोक प्रमाण कषाय हैं।

जैसे हम कहेंगे एक कटोरी में हजार चावल हैं तो दस कटोरी में कितने हो जायेंगे ? दस हजार। ऐसे एक लोक में इतने असंख्यात प्रदेश हैं तो असंख्यात लोक में कितने हो गये ? *श्रोता: असंख्यातगुणा।* उससे असंख्यातगुणा। लोकप्रमाण असंख्यात बात अलग है और असंख्यात लोक अलग बात है, है न ? तो असंख्यात लोकप्रमाण कषायों के व्हेरिएशन्स हैं। हम किसीको क्रोधी कहते हैं तो क्रोध के भी इतने व्हेरिएशन्स होंगे। क्या कहते हैं ? तो कषायों के कुल स्थान असंख्यात लोकप्रमाण हैं। **उनमें बहुभाग संक्लेश के स्थान हैं।** कल हमने वह अनंतवां भाग और अनंत बहुभाग देखा था। अब कषायों के जितने स्थान हैं न, उसको असंख्यात से भाग दो। असंख्यात लोक को छोटे असंख्यात लोक से भाग दो तो जो संख्या आयेगी एकभाग और बाकी सारा बहुभाग। तो बहुभाग प्रमाण संक्लेशस्थान हैं **और एकभाग प्रमाण विशुद्धि के स्थान हैं।** जो संक्लेश के स्थान हैं उनमें कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या के परिणाम हैं और जो विशुद्धि के स्थान हैं उनमें पीतलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या के परिणाम हैं। यहां समझाने के लिये बोर्ड पर लिखा है। कषायों के टोटल स्थान यहां काल्पनिक संख्या द्वारा बताये हैं।



यहां जघन्य कषाय से लेकर उत्कृष्ट कषाय तक यानी मंद कषाय से तीव्र कषाय तक सारे बढ़ते हुये कषाय हैं। हमने समझाने के लिये मान लिये वे १००० हैं। अगर हम सबसे तीव्र कषाय से मंद कषाय तक बतायेंगे तो वे घटते हुये कषाय हैं। हम

मानेंगे कुल १००० कषाय हैं, उनको हमने जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक बढ़ते हुये कहा और उन्हीं को उत्कृष्ट से जघन्य तक घटते हुये कहा। यहां तक बात ख्याल में आयी ? अगर उनको बढ़ते हुये कहो या घटते हुये कहो तो संख्या १००० की १००० ही रह जायेगी। अब इसमें हमें संक्लेश और विशुद्धि की अपेक्षा बतानी है। १००० को १० से भाग देकर एकभाग १०० है और बहुभाग ९०० है। १००० में से ९०० संक्लेश के स्थान हैं और १०० विशुद्धि के स्थान हैं। विशुद्धि के स्थानों से संक्लेश के स्थान असंख्यातगुणे हैं। यहां उदाहरण में नौगुणा हैं परंतु वहां असंख्यातगुणा समझना।

अब आगे का पॅरेग्राफ पढ़ेंगे तो ख्याल में आयेगा कि क्या कहना चाहते हैं। कर्मकाण्ड में से ये सारी बातें यहां लिखी हैं, मेरे घर की एक भी बात नहीं है हां। क्या कहते हैं ? देखो- कषायों के कुल स्थान हैं न, उनमें बहुभाग संक्लेश के स्थान हैं और एकभाग विशुद्धि के स्थान हैं। उनमें क्या भेद है देखते हैं। साता, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय आदि शुभ प्रकृतियों के बंध के कारणभूत कषायस्थानों को विशुद्धिस्थान कहते हैं अभी हमारा विशुद्धिलब्धि का प्रकरण चल रहा है न, वहां इनको विशुद्धि कहेंगे। विशुद्धि कहने के प्रयोजन अलग-अलग हैं। दोनों ही पद्धति से उसका कथन आ रहा है। उसमें क्या डिफरन्स है उसको हम देख रहे हैं। और असाता, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय आदि अशुभ प्रकृतियों के बंध के कारणभूत कषायों के उदयस्थानों को यानी कषायों को संक्लेशस्थान कहते हैं। ऐसा भी कहते हैं कि अत्यंत तीव्र संक्लेश थे, अत्यंत तीव्र कषाय के अभाव में जो मंद कषाय होती है यानी कम्पॅरेटिव्हली मंद होती है उसे विशुद्धि कहते हैं। यह भी पद्धति है। बहुत कषाय थे, थोड़े मंद हुये तो कहेंगे विशुद्धि की ओर आ गये।

साता वेदनीय के चतुःस्थानगतबंध की अपेक्षा अभी उलटी ओर से देख रहे हैं। जब अधिक विशुद्ध परिणाम हैं तो सातावेदनीय के चतुःस्थानबंध हो रहा है। आपको याद है ? गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृतवाला बंध हो रहा है। अब उसकी अपेक्षा विशुद्धि कम हुयी यानी कम्पॅरेटिव्हली संक्लेश हुये कहेंगे। **सातावेदनीय के त्रिस्थानगत अनुभागबंध करनेवाले** सातावेदनीय का ही बंध हो रहा है परंतु तीन स्थानवाला होगा - अमृतवाला नहीं होगा, शर्करा तक होगा। उस **जीव के परिणाम संक्लिष्टतर** कहेंगे परंतु हैं तो विशुद्धि की ओर के परिणाम। परंतु कम्पॅरेटिव्हली उनको संक्लेश कह सकते हैं। अर्थात् तीव्र कषाय की अपेक्षावश बात अलग है और

सर्वथा विशुद्धिस्थान, सर्वथा संक्लेशस्थान बात अलग है।

अब कहते हैं- वर्धमान यानी बढ़ते हुये कषाय को संक्लेश और हीयमान यानी घटते हुये कषाय को विशुद्धि कहना भी ठीक नहीं है। क्यों ? कषायों की वृद्धि केवल असाता के बंध का कारण नहीं है, क्योंकि कषायों की वृद्धि के काल में साता का भी बंध पाया जाता है और कषायों की हानि के काल में भी असाता का बंध पाया जाता है इसका अर्थ हम देखते हैं। यहां क्या कहा ? केवल बढ़ते हुये कषाय को संक्लेश नहीं कहते, नहीं तो १ से १००० तक सबको संक्लेश कहना पड़ता। अकेले घटते हुये कषाय को विशुद्धि नहीं कहते क्योंकि १००० से लेकर १ तक सारे ही विशुद्ध हो जाते। यानी दोनों की संख्या समान होती - संक्लेश भी १००० और विशुद्धि भी १०००। यथार्थ में क्या है ? संक्लेश के स्थान कितने हैं ? ९०० और विशुद्धि के १००। अगर हम घटते हुये कषाय को विशुद्धि कहेंगे और बढ़ते हुये कषाय को संक्लेश कहेंगे तो दोनों स्थान समान होंगे, यह उसका अर्थ है।

यहां विशुद्धिलब्धि के प्रकरण में घटते हुये कषाय को विशुद्धि कहेंगे क्योंकि कृष्णलेश्या के जो परिणाम हैं वे सारे संक्लेशवाले परिणाम हैं और एकदम टॉप मोस्ट संक्लेश की ओर के हैं। परंतु उनको भी विशुद्धिलब्धि होगी कि नहीं होगी ? *श्रोता: होगी।* अब सातवें नरक में कृष्णलेश्या ही है परंतु उनको भी हर अंतर्मुहूर्त में साता और असाता बंधेगा कि नहीं बंधेगा ? *श्रोता: बंधेगा।* उनके ऐसा ही नहीं कि घटते हुये में बंधेगा, बढ़ते हुये ऐसा कुछ नहीं है। क्योंकि हर अंतर्मुहूर्त में नियम से साता-असाता का बंध होगा। हां, वह चतुःस्थान होता है कि त्रिस्थान होता है कि इसतरह से उसमें फर्क होगा। *श्रोता: मतलब साता का भी बंध होगा उस समय भी संक्लेशता की हानि होगी ऐसा नहीं कह सकते ?* यह जरूरी नहीं है। कषाय के बढ़ते हुये स्थान में भी सातावेदनीय बंध सकता है यह कह रहे हैं।

देखो- **वहां प्रश्न पूछते हैं** यह पं. टोडरमलजी की स्टाइल है वहां प्रश्न पूछते हैं। उन्हीं के ग्रंथों के आधार से लिया हुआ है **कि बढ़ती हुयी कषाय को संक्लेश और हीन होती हुयी कषाय को विशुद्ध क्यों नहीं स्वीकार करते हैं ?** क्योंकि ऐसा कहने की पद्धति है भी, परंतु वहां अपेक्षावश कहना अलग बात है और सर्वथा संक्लेशस्थान, विशुद्धिस्थान यह बात जुदी है। ख्याल में आती है बात ? जैसे हमने कल बताया था

छठे से सातवें में जानेवाले जीव को क्या कहा ? विशुद्धि बढ़ी। सातवें में से छठे में आये तो क्या कहेंगे ? संक्लेश में आ गये। अभी मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा छठे को संक्लेश कहेंगे ? *श्रोता: नहीं।* वहां तीनों शुभ लेश्या ही होंगी क्योंकि पांचवें गुणस्थान से लेकर ऊपर शुभ लेश्या ही होती है, वहां कोई अशुभ लेश्या होती ही नहीं है। फिर भी कम्पॅरेटिव्हली श्रेणी चढ़नेवालों को कहेंगे विशुद्धि बढ़ रही है और श्रेणी उतरते समय कहेंगे कि नीचे संक्लेश की ओर जा रहे हैं। वहां तुलनात्मक रिलेटिव्ह टर्मिनॉलॉजि है।

यह जो बता रहे हैं, असंख्यात लोकप्रमाण स्थान संक्लेश और विशुद्धि के स्थान हैं। इसलिये जहां जिस अपेक्षा से बात है उसको स्वीकार करना चाहिये। इसलिये नीचे से दूसरे पॅरेग्राफ में बताया है कि ऐसा क्यों नहीं स्वीकार करते ? तो कहते हैं, ऐसा इसलिये नहीं स्वीकार करते **क्योंकि वैसा स्वीकार करने पर संक्लेशस्थानों और विशुद्धिस्थानों की संख्या में समान होने का प्रसंग आयेगा।** कल यह बात हमने इसीलिये नहीं उठायी थी, क्योंकि केवल पढ़ने से उसका अर्थ भासित नहीं होता। हमने संक्लेशस्थान ९०० बताये हैं और विशुद्धि के १०० बताये। अगर बढ़ते हुये कषाय को संक्लेश कहेंगे तो १००० के १००० सारे स्थान संक्लेश होंगे और घटते हुये कषाय तो विशुद्धि कहेंगे तो १००० के १००० स्थान विशुद्धि के होंगे - परंतु ऐसा है नहीं।

श्रोता: जैसे सब १००० स्थान हैं तो जब नीचे भी जाते हैं तभी तो परिणाम संक्लेश रहेंगे न ? वैसे पहले १०० परिणाम तो विशुद्धिवाले हैं परंतु विशुद्धि घट रही है तो उसको संक्लेश हो रहा है ऐसा कह सकते हैं। परंतु वह सर्वथा संक्लेश के स्थान नहीं हैं यह कहना चाहते हैं। *श्रोता: दोनों १००० एक जैसे हैं यह बात नहीं समझ में आ रही है।* केवल बढ़ रहे हैं इसलिये संक्लेश कहना, केवल घट रहे इसको विशुद्धि कहना यह बात ठीक नहीं है। विशुद्धि के स्थान १ से १०० सब शुभ लेश्यावाले हैं और संक्लेशस्थान कहते हैं तो १०१ से १००० तक अशुभ लेश्यावाले स्थान हैं। परंतु विशुद्धिलब्धि के प्रकरण में भले कृष्णलेश्या के वे ही स्थान हैं जिनको हम संक्लेश के स्थान कहते हैं, उसमें भी अगर कषाय घट रहे हैं तो उसको यहां विशुद्धि कहने की प्रथा है। उसको हम विशुद्धिलब्धि कह रहे हैं। यानी यहां विशुद्धि या संक्लेश रिलेटिव्ह टर्मिनॉलॉजि है। यदि हम कषायों के बढ़ते हुये स्थानों को संक्लेश और घटते हुये स्थानों को विशुद्धि कहेंगे तो कहते हैं कि दोनों की संख्या समान हो जायेगी। परंतु हमने देखा कि संक्लेशस्थान असंख्यात बहुभाग हैं, जिसको हमने ९०० कहा है और

विशुद्धिस्थान एकभाग प्रमाण हैं जिसको हमने १०० कहा है।

यह तो सामान्य संसारावस्था की बात हुयी। हमारा विषय कौनसा चल रहा है ? सम्यक्त्व होने के पूर्व की बात है। **परंतु सम्यक्त्वोत्पत्ति के काल में हानि को प्राप्त होनेवाले कषायस्थानों को ही विशुद्धि कहते हैं।** कषाय हानि को प्राप्त होना यानी कषाय मंद-मंद हो रहे हैं यानी हानि को प्राप्त हो रहे हैं। हमारे इस प्रसंग में, कौनसे ? विशुद्धिलब्धि के प्रकरण में कषाय घट रहे हैं उसीको विशुद्धि कहेंगे। **वहां वैसा कहना ठीक है।** ठीक क्यों ? क्योंकि तुलनात्मक बोल रहे हैं कि पूर्व कषायस्थानों से ये कषायस्थान घटते हुये हैं। **क्योंकि दर्शन और चारित्र मोह की क्षपणा और उपशमना में पूर्व समय में उदय को प्राप्त हुये अनुभाग स्पर्धकों की अपेक्षा अनंतगुणे हीन अनुभाग स्पर्धकों के उदय से उत्पन्न कषायोदय स्थान के विशुद्धपना स्वीकार किया गया है।** भले कृष्णलेश्या भी क्यों न हो, वह अनंतगुणा घटता-घटता-घटता; अभी अनुभाग भी घटता उदय में आ रहा है और जीव के कषाय के स्थान भी अनंतगुणे घटते हुये हो रहे हैं। इसलिये हमने कल देखा था न, **इस चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि नरकगति में कृष्णादि तीन अशुभ लेश्या होने पर भी वहां विशुद्धिलब्धि कही है।** हमने कल यह पेज नहीं लिया था। अभी आगे बढ़ेंगे।

हमने विशुद्धिलब्धि की परिभाषा देखी थी कि क्षयोपशमलब्धि कारण है न ? जिसको क्षयोपशमलब्धि प्राप्त हुयी है उसका अर्थ क्या है ? जिस काल में अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग अनंतगुणा हीन-हीन-हीन होकर उदय में आ रहा है उसके कारण क्या हो रहा है ? धर्मानुरागरूप शुभ परिणाम। वे कैसे हैं ? सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियों के बंध के कारणभूत परिणाम हैं। विशुद्धिलब्धि की परिभाषा हम फिर पढ़ते हैं- **क्षयोपशमलब्धि जिसे प्राप्त हो गयी है, उसके कारण जीव को सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियों के बंध के कारणभूत धर्मानुरागरूप शुभ परिणाम होते हैं, उनकी प्राप्ति वह विशुद्धिलब्धि है।** क्षयोपशमलब्धि और विशुद्धिलब्धि एक ही काल में एक साथ होनेवाली दो बातें हैं। फिर भी कार्य के निमित्त को प्रथम कहा और कार्य को बाद में कहा। दोनों लब्धि तो एक ही काल में एक साथ होती हैं।

हमने देखा था कि कोई जीव इतने मात्र से ही संतुष्ट होकर बैठ जाते हैं, वे भले हैं, भला आचरण करते हैं - उनका नैतिक जीवन चल रहा है, वे सदाचारी हैं, शांत

परिणामी हैं। धर्म के नाम पर भी रोज देवदर्शन, पूजा, स्वाध्याय, नवकार मंत्र के जाप आदि सब चलता है परंतु इतने मात्र से वे समाधानी हैं। क्या कहा ? परंतु अनादिकाल से जन्म-मरण चला आ रहा है वह इससे नहीं छूटेगा क्योंकि कोई भी - पुण्य प्रकृति भी क्यों न हो, अंतर्मुहूर्त से अधिक काल तक नहीं बंधती है। परिणाम ही ऐसे पलटते रहते हैं कि अंतर्मुहूर्त तक साता वगैरह शुभप्रकृति बांधी, फिर असाता वगैरह बांधने लगेगा और घातिकर्म तो बांध ही रहा है। हां, जिस समय पुण्य कर रहा है या शुभ परिणाम हो रहे हैं उतने काल तक घातिकर्मों का अनुभाग थोड़ा कम बंधेगा। बंधेगा तो जरूर और उसकी स्थिति भी थोड़ी कम बंधेगी परंतु पंचेन्द्रिय जीव है तो पंचेन्द्रिय योग्य तो बंधेगी ही बंधेगी। परंतु मोक्षमार्ग की प्राप्ति में उसका कोई योगदान नहीं है।

लोग कहते हैं कि पुण्य से ही तो अभी हमें मनुष्यभव मिला है न ? मनुष्यभव एक बार थोड़े ही मिला है ! अभी तक तो अनंतों बार मिला है। मिला है, परंतु उसके आगे क्या ? मिला है उसका अभी सही उपयोग हो तो वह कार्यकारी है, नहीं तो मिला - नहीं मिला बराबर है। ख्याल में आती है यह बात ? जन्म-मरण से छूटने का मार्ग यह नहीं है कि कुछ शुभभाव करे और उसके कारण कुछ शुभ प्रकृतियां बंधे। नीचे से दूसरा पैरेग्राफ- **इसमें से छूटने का मार्ग - मोक्ष का मार्ग और उसका उपदेश जिनेन्द्र भगवान ने बताया वही यथार्थ है और सत्य है।** क्यों ? ये किसके वचन हैं ? *श्रोता: सर्वज्ञ और वीतरागी।* सर्वज्ञ और वीतरागी भगवान के।

सर्वज्ञ सब कुछ जानते हैं, जानने से कुछ बाकी नहीं है। अनादि अनंत सब कुछ जानते हैं। उनके अज्ञान होता तो झूठ बोलने का चान्स था, वे और कैसे हैं ? पूर्ण वीतरागी हैं, वीतरागी यानी ना राग है, ना द्वेष है। ऐसी अकषाय पूर्ण अवस्था है तो किसीको फेवर करूं, थोड़ा कुछ छुपाकर कहूं नहीं तो सब लोग केवलज्ञानी हो जायेंगे तो मुझे कौन नमस्कार करेगा ? उनके ऐसी बातें कैसे होगी ? नहीं होगी। उन्होंने पूरा मार्ग खुलकर बताया, सत्य बता दिया इसलिये उन्हीं का उपदेश हमें ग्रहण करना है। **बंधन में से छूटने का मार्ग आज हमें उपलब्ध है।** देखो, अंतिम तीर्थकर महावीर भगवान हुये, उनके गणधरों ने द्वादशांग की रचना की और आचार्यों की परंपरा से वह मार्ग आज तक उपलब्ध है। पूरा का पूरा नहीं रहा है परंतु सम्यग्दर्शन प्राप्ति के लिये आवश्यक है उतना प्रयोजनभूत उपदेश आज भी उपलब्ध है यह कहना है।

उसके मूलकर्ता - मूल उपदेशक कौन हैं ? तीर्थकर भगवान, सर्वज्ञ भगवान हैं। उनकी दिव्यध्वनि में यह उपदेश सहज रीति से बताया जाता है। उसके अनुसार गणधर आचार्य बारह अंगों की रचना करते हैं जिसे हम द्वादशांग द्रव्यश्रुत कहते हैं। द्रव्यश्रुत क्यों ? वह तो ग्रंथ है न, आगम है और उसको जाननेवाली पर्याय को हम भावश्रुत कहेंगे। **आचार्यों की परंपरा से यह मार्ग आज तक चलते आया है।** यानी आचार्यों ने उपदेश दिया शिष्यों को, उन्होंने उनके शिष्यों को इसतरह से वह परंपरा से आज तक उपलब्ध है - आज तक चलते आया है। हमने कल यह बात देखी थी कि यह मार्ग सुनने का चान्स मिलना, अवसर मिलना और वह सत्य लगना, उसका ग्रहण होना यानी समझ में आना - कहते हैं महान पुण्य के उदय में यह बात होती है। पहले हम भी सुनते थे जब गुरुदेवश्री कानजीस्वामी थे तो उनकी वाणी में आता था 'आ तो भाग्यवंतना काने पड़े अेवी वात छे।'

दिनेशजी हमेशा उनकी बात बताते हैं कि 'तब मुझे ऐसा लगता था यह सुननेवालों को मस्का लगाते हैं। मेरा अभ्यास नहीं था और बाकी तत्त्व की बातें मैं समझता नहीं था।' इतनी बातें समझ में आती थी कि यह बात भाग्यवंत के ही कान में पड़ती है। परंतु आज वह सत्य बात ख्याल में आ रही है कि यह अभूतपूर्व वाणी सुनने का अवसर मिलना और उसको समझने जैसी बुद्धि का होना बहुत दुर्लभ है; क्योंकि बुद्धि तो बहुत है परंतु उस पर्टिक्युलर विषय में नहीं चल रही है। नहीं समझे ? हमने भले लौकिक में बहुत एज्युकेशन लिया। हमारे फील्ड में हम बहुत होशियार हैं, परंतु इस अध्यात्म के विषय में जब तक वह क्या सुन रहे हैं, उसमें सूझ-बूझ नहीं पड़ती है तो सुना नहीं सुना वह एक जैसा हो जाता है।

देखो- **इस मार्ग का उपदेश सुनने की जिज्ञासा और बुद्धि होना** पहले में पहले जिज्ञासा हो तो जीव सुनने जायेगा, रुचिपूर्वक सुनेगा। **और यह सत्य उपदेश सुनने का अवसर प्राप्त होना**, क्योंकि कुछ चाह है, जिज्ञासा है, कहीं कोई सुनने जाता भी है परंतु सत्य सुनने मिलेगा ऐसी बात नहीं। समाज को अच्छा लगे ऐसे उपदेश बहुत जगह मिल जाते हैं। **ऐसा महान पुण्य उसीको होगा जिसके क्षयोपशमलब्धि और विशुद्धिलब्धिपूर्वक देशनालब्धि प्राप्त होगी।** देशनालब्धि क्या है ? *श्रोताः पर्यायः*। कौनसे गुण की पर्याय है ? *श्रोताः ज्ञान की*। किसके ज्ञान की पर्याय है ? भगवान के ? आचार्यों के या पंचमगुणस्थानवर्ती के ? *श्रोताः भाषावर्गणा*। भाषावर्गणा की ? मैंने

देशना नहीं पूछी, देशनालब्धि पूछी है। *श्रोता: जीव की पर्याय है।* अरे, सुननेवाले की है न ? लब्धि यानी प्राप्ति। देशना की लब्धि किसको हुयी ? सुननेवाले को।

केवल सुननेवाले को नहीं, हमने कन्नड में प्रवचन सुना, हमें देशनालब्धि हुयी कि नहीं हुयी ? *श्रोता: नहीं।* समझना भी आवश्यक है। अभी हम उसके कौन-कौनसे अंग होते हैं वह देखेंगे। कहते हैं कि जिसके क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि है यानी उसके मंदकषाय हैं। मंदकषाय हैं और ज्ञानावरणादि का अनुभाग भी घट रहा है यानी ज्ञान की उतनी विकसित अवस्था हो रही है। तत्त्व को धारण करे, अच्छी तरह से समझे तो उसको देशना प्राप्त हुयी कहेंगे। उसको यह अवसर मिला; कौनसा ? मोक्षमार्ग सुनने का अवसर मिलेगा। तो कहते हैं **विशुद्धिलब्धि बिना जीव जिनेन्द्रकथित उपदेश सुनने के लिये तैयार नहीं होगा।** उसको ऐसी बुद्धि ही नहीं होगी कि चलो जाकर सुने। जिस प्रकार पत्थर पर बोया हुआ बीज व्यर्थ जाता है, ऊगता नहीं है उसके लिये मृदु मिट्टी में बोना आवश्यक है, उसीप्रकार जिनवाणी श्रवण का सौभाग्य और सुनकर समझने का सौभाग्य उसीके होगा जिसके परिणाम मृदु होंगे-विशुद्ध होंगे। यानी इसको मंद कषायरूप विशुद्धि कहते हैं।

दूसरी एक बात है। जिसके महान पुण्य का उदय होगा उसे ही महान दुर्लभ ऐसे जिनवाणी श्रवण का सौभाग्य प्राप्त होगा। यह सुनने का सौभाग्य, अवसर मिलना भी महान दुर्लभ है। बाकी लौकिक में पैसा तो सब कमाते हैं। वहां तो पुण्य का उदय हम किसमें गिनते हैं ? *श्रोता: पैसों में।* पैसों में ? अच्छा। **अन्यथा यह बात कानों में पड़ना भी महान दुर्लभ है।** लोग तो पुण्य का फल सम्पत्ति और घरबार प्राप्त होने मात्र को कहते हैं। उसे तो हर जीव ने अनंत बार पाया और छोड़ा। क्यों छोड़ा ? पाया था तो छोड़ा क्यों ? *श्रोता: मर गये।* मरकर चले गये। वह तो छोड़ना नहीं चाहता था। *श्रोता: छूट गया।* हां, छूट गया। जबरदस्ती से छोड़ना पड़ा, परभव में साथ में ले नहीं जा सकता था। **परंतु उस पुण्य को हम भला कैसे कह सकते हैं, जो संसार में भटकाता रहे ? जीव को अपने आत्मा का स्वरूप जानने की तीव्र जिज्ञासा होती है, देखो, भले ही व्यक्त या अव्यक्त तीव्र जिज्ञासा अंदर हो गयी है, उसके धर्मानुरागरूप मंद कषाय होते हैं।** क्योंकि तीव्र जिज्ञासा के फल में अनुभाग भी मंद होकर उदय में आ रहा है और कषाय भी मंद हो रहे हैं। **उसकी इसी पात्रता से उसे देशनारूप निमित्त की सहज उपलब्धि हो जाती है।**

यहां देशनालब्धि की पर्याय की योग्यता अभी है तो सामने देशना जरूर मिलेगी ही मिलेगी। क्योंकि जो-जो कार्य होता है वह अपने समय पर सुनिश्चित होता ही है तो वहां पांच समवाय स्वयमेव आ मिलते हैं। उसमें निमित्त नाम का भी समवाय है कि नहीं है ? *श्रोता: है।* उसके लिये किसकी राह देखनी पड़ेगी ? कहां ढूंढ़ना पड़ेगा ? महावीर का जीव जो दस भव पूर्व सिंह की अवस्था में था तो जंगल में उनको उपदेश देने के लिये कौन गये ? चारण ऋद्धिधारी मुनि जो आकाश से गमन कर रहे थे उन्होंने उस जीव को देखा और जिस किसी हावभाव से या शब्दों में जो कुछ कहा होगा। तो सिंह को ढूंढ़ना पड़ा कि अभी मेरी काललब्धि आयी है ? उनको समझ में आया था क्या ? यह सहज होता है। निमित्ताधीन दृष्टीवाले कहते हैं हम निमित्त को कहां ढूंढ़ें ? कहां ढूंढ़ें ? अरे, ज्ञानी कहां हैं ? स्वामीजी तो चले गये, अभी कौन हमें देशना देगा ? उसको यहां ऐसी आकुलता हो रही है। जिसको ऐसी पात्रता है उसे देशनारूप निमित्त की सहज उपलब्धि होती है। निमित्त-नैमित्तिक संबंध हो या जो कोई पर्यायों का क्रम है उसमें सहजता होती है। कोई खींचातानी, आकुलता की बात ही नहीं होती है वहां।

अब देशनालब्धि का स्वरूप समझते हैं। सर्व प्रथम उसकी परिभाषा देखते हैं। देशनालब्धि- छह द्रव्य, सात तत्त्व अर्थात् नौ पदार्थ, उसको नौ पदार्थ कहो, कहीं-कहीं नौ तत्त्व भी कहा है; पंचास्तिकाय में नौ तत्त्व कहा है, अभी हमारे यहां स्वाध्याय में वह ग्रंथ चल रहा है न, उसमें पूरा सारा बेस है जिसके ऊपर से सिद्धान्त प्रवेशिका वगैरह लेते हैं। ये आगम के ही मूल सिद्धान्त हैं। अगर उन सिद्धान्तों को जानने में कहीं चूक होती है, उसके बारे में कन्फ्यूजन है तो उसके ऊपर आगे के सिद्धान्तों की इमारत खड़ी नहीं हो सकती। **छह द्रव्य, सात तत्त्व अर्थात् नौ पदार्थ, मोक्षमार्ग,** मोक्षमार्ग किसको कहते हैं ? *श्रोता: सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र।* सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र और गुणस्थानों में बतायेंगे तो ? *श्रोता: चौथे से चौदहवें गुणस्थान तक।* जब तक मोक्ष नहीं तब तक मार्ग है - चौथे से लेकर चौदहवें तक। जिस मार्ग पर चलकर मोक्ष जाना है न, वह पूरा मार्ग जब तक ज्ञान में क्लिअर नहीं होता है तब तक वह मार्ग प्रकट नहीं होगा। यह क्लिअर होना चाहिये। मिथ्यात्व अवस्था में क्लिअर हो जावे तब जाकर वह मार्ग प्रकट होगा।

अभी मुनिधर्म को क्यों जानना ? जब हम श्रावक हो जायेंगे, मुनि होने की नौबत आयेगी तब हम मुनिधर्म को समझेंगे ऐसा नहीं होगा। चौथे, पांचवें गुणस्थान का

क्या स्वरूप है ? मुनि का क्या स्वरूप है ? उनका आगे चलकर श्रेणी में क्या होता है ? अरिहंत अवस्था का क्या स्वरूप है ? फिर सिद्ध अवस्था में जाने पर वहां क्या स्वरूप है ? उस संबंधी पूरा ही उपदेश आगम के द्वारा मिलता है। तो कहते हैं छह द्रव्य, सात तत्त्व अर्थात् नौ पदार्थ, मोक्षमार्ग, **सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का स्वरूप** यानी सच्चे देव कहने से अरिहंत और सिद्ध भगवान, उनका अंतर्बाह्य स्वरूप कैसा है ? सच्चे गुरु का स्वरूप कैसे होता है ? सत् शास्त्र किसको कहना वह कैसे पहचाने ? क्योंकि जिनेन्द्र भगवान के नाम से ही अनेक शास्त्र उपलब्ध हैं। जैनी के नाम से ही सब कुछ चल रहा है तो हम कैसे उनको ठीक से पहचाने ? ये सारी बातें जानना जरूरी है।

स्व और पर का ज्ञान, स्व किसको कहना और पर किसको कहना ? हमने तो इस शरीर को स्व में रखकर बाकी सबको पर कहने लगे। तो सही स्व क्या है और पर क्या है उसका ज्ञान। **हेय-ज्ञेय-उपादेय भाव**, हेय का अर्थ समझते हो ? *श्रोता: छोड़ने योग्य*। छोड़ने योग्य भाव कौनसे हैं ? ज्ञेय यानी केवल जाननेलायक भाव कौनसे हैं और उपादेय यानी ग्रहण करने या आश्रय करने योग्य भाव कौनसे हैं ? **इत्यादि संबंधी** यानी यह सारे विषय बताये, इत्यादि में बहुत सारे विषय आ जायेंगे। उसमें नयों की भी चर्चा होगी, निमित्त-उपादान भी होगा और फिर निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, पांच समवाय, षट्कारक, चार अभाव, तथा हम सिद्धान्त प्रवेशिका में जो-जो सीखे हैं न - छह द्रव्य, सात तत्त्व, द्रव्य-गुण-पर्याय, चार अभाव वगैरह सभी बातें आती हैं। अभी जो बात चली न घंटेभर गुरुदेवश्री के प्रवचन में। पर्याय किसके आश्रय से उत्पन्न होती है और उनमें कौनसा संबंध है ? अनित्यतादात्म्य, नित्यतादात्म्य संबंध यह सब समझना आवश्यक है। इसमें कोई कन्फ्यूजन है तो हमें सम्यग्दर्शन की उपलब्धि नहीं होगी।

कहते हैं **इन संबंधी सच्चा उपदेश**। यह कैसे कैसे कमाना और आपस में कैसे रहना ? सास-बहू को कैसे बिहेविअर करना ? उसको उपदेश नहीं कहते। यहां मोक्षमार्ग संबंधी उपदेश की बात चल रही है। इन विषयों संबंधी सच्चा उपदेश - यह विषय बताया है। कौनसी चीज का उपदेश है वह पहले बताया, अब उपदेश देनेवाले कौन हैं उसकी बात कर रहे हैं। **आचार्यादिकों का**, आचार्यादिक में किसको लिया ? **अर्थात् तीर्थकर**, फिर **आचार्य, उपाध्याय, साधु, पंचम या चतुर्थ गुणस्थानवर्ती ज्ञानी** यह कंडिशन है। देशना ज्ञानी की ही होती है यह कंडिशन बतायी। इन **जीवों का समागम मिलना**, बस उनके कॉन्टैक्ट में आ गये, हो गया सम्यग्दर्शन ? तो कहते

हैं नहीं, उनका उपदेश ग्रहण करना है। फिर हम उपदेश को सोचेंगे, परीक्षा करेंगे, निर्णय करेंगे, वे सारी बातें देशनालब्धि में आनेवाली हैं।

देशना किसको कहेंगे ? इस उपदेश को देशना कहेंगे। परंतु केवल उपदेश देशना नहीं है। वह किसके द्वारा प्राप्त होना है ? ज्ञानी के द्वारा, दूसरी कंडिशन। उनका **समागम मिलना, उनके द्वारा दिये गये उपदेश का अर्थात् देशना का मिलना** एक बात और उपदेशित पदार्थों का ज्ञान में धारण होना देशनालब्धि है। इतनी सब कंडिशनस पूर्ण हो तो उसको देशनालब्धि कहेंगे। पहले में पहले उपदेश किस बारे में है ? छह द्रव्य हैं, सात तत्त्व हैं, नौ पदार्थ कहो सात तत्त्व कहो एक ही बात है, मोक्षमार्ग, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का स्वरूप, स्व-पर का ज्ञान, हेय-ज्ञेय-उपादेय तत्त्वसंबंधी सही श्रद्धान आदि संबंधी उपदेश यानी जिनागम के सारे जो सिद्धान्त हैं। यहां मुख्यतः द्रव्यानुयोग की बात लेनी है। हमें परीक्षा करके उसका निर्णय आवश्यक है। इनका उपदेश हमें मिलना चाहिये; किनके द्वारा ? दूसरी कंडिशन ज्ञानी के द्वारा।

ज्ञानी में साक्षात् तीर्थकर हो या उनके द्वारा दिया हुआ उपदेश ज्ञानियों के द्वारा हमें मिले - आचार्यों के द्वारा, उपाध्याय के द्वारा, साधु के द्वारा, पंचम गुणस्थानवर्ती या चतुर्थ गुणस्थानवर्ती गृहस्थ के द्वारा हो। परंतु गृहस्थ अपने बच्चों को कैसे रहना चाहिये, आपस में मिल-जुलकर और क्या धंधा करना है आदि संबंधी उपदेश देगा। उस उपदेश को देशना नहीं कहेंगे। वह लौकिक उपदेश की बात कहेगा कि नहीं कहेगा ? *श्रोता: नहीं।* नहीं कहेगा ? कहेगा परंतु उसको देशना नहीं कहेंगे। कोई चौथे गुणस्थानवर्ती स्कूल टीचर है तो बच्चों को इतिहास-भूगोल नहीं सिखायेंगे ? *श्रोता: सिखायेंगे।* तो उसको देशना कहेंगे ? नहीं कहेंगे। अपने बच्चों को व्यापार-धंधे की ट्रिक्स नहीं बतायेंगे ? *श्रोता: बतायेंगे।* बिलकुल बतायेंगे, उसको देशना नहीं कहेंगे। ख्याल में आती है न बात ? यह देशना भी किस संबंधी है ? मोक्षमार्ग में जो निमित्त बने वह देशना का विषय कहा, उसका उपदेश और वह भी ज्ञानी के द्वारा होना चाहिये।

श्रोता: तीर्थकरों को लिखा है, सामान्य अरिहंतों को नहीं लिखा है ? मुख्यता से उपदेश तीर्थकर से मिलता है। कोई-कोई सामान्य केवली भी उपदेश देते हैं परंतु अन्य मूककेवली भी होते हैं। आदि में सबको ले लेना जिनका उपदेश प्राप्त हो सकता है, क्योंकि एक-एक को अलग-अलग नहीं गिनेंगे। आचार्यों में यहां कुंदकुंद का नाम

क्यों लिया ? क्यों नहीं लिया ? फिर अमृतचंद्र का लेना कि नहीं लेना ? जयसेन आचार्य का लेना कि नहीं लेना ? पद्मप्रभमलधारी को लेना कि नहीं लेना ? आदि में सब आ गये। जो-जो ज्ञानी हैं यानी जो भावलिंगी संत हैं वे सब उनमें आ गये। वे केवल आचार्य, साधु अवस्था में होने चाहिये यह भी जरूरत नहीं है। जिन्होंने आत्मा का अनुभव किया है वे सारे ज्ञानी हैं। **पंचम या चतुर्थ गुणस्थानवर्ती ज्ञानी जीवों का समागम।** एक-एक शब्द चुन-चुनकर डाला है। यह आगम की बात है। उनके द्वारा दिये गये उपदेश का यानी देशना का मिलना आवश्यक है।

देशना किसको कहेंगे कि इन ज्ञानी जीवों ने मोक्षमार्ग संबंधी जो उपदेश दिया है उसको देशना कहेंगे। परंतु वह मिलना यानी हमने समझा तो हम उसको कहेंगे हमें देशना मिली। देशना मिली कब कहेंगे ? जब हमने सुनी और समझी तब। तो कहते हैं **देशना का मिलना और उपदेशित पदार्थों का ज्ञान में धारण होना।** धारण होना का अर्थ क्या है ? *श्रोताः ग्रहण होना।* देखो, मतिज्ञान के भेद मालूम है न ? अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। धारणा किसको कहते हैं ? धारणा उसको कहते हैं कि जो पश्चात् - कुछ काल के बाद संस्काररूप चलता है न, ज्ञान की हर पर्याय में संस्कार की धारा चलती है, कालांतर में उसको स्मृति में भी ला सकते हैं। जो ज्ञान धारणा तक पहुंचा वह संस्काररूप से चलता है, उसको संस्कार कहते हैं। धारणा यानी कोई चीज हम याद रखते हैं या रटते हैं, कोई-कोई बिना रटे ही याद रहती है। है न ? बचपन की कोई-कोई चीजें, कोई घटनायें बहुत इम्प्रेस करती हैं कि कालांतर से भी वे स्मृति में हमेशा रहती है। तो उसको क्या कहेंगे ? वह बात धारणा तक पहुंची है।

तत्त्व का जो श्रवण-ग्रहण करते हैं, सुनते हैं, समझते हैं; अब वह याद में रह जावे तो ही उस पर हमारे विचार चलेंगे। क्योंकि हम तत्त्वों का विचार कर रहे अपने में, अपने से। अभी पढ़ना- पढ़ना तो हो गया, सुनना हो गया, अभी जब हम उसका विचार कर रहे हैं तो हमें कुछ याद होगा तो विचार चलेगा। अरे, प्रवचन में कुछ तो कहा था वह बहुत अच्छा था, मुझे याद नहीं आ रहा है। हमारा निमित्त-नैमित्तिक संबंध है या अगर उपादान की बात है तो उस पर विचार चलेगा। तो क्या कहा ? अगर हम वह भूल गये तो सही या गलत का निर्णय कैसे कर सकते हैं ? यह हो सकता है पढ़ते-पढ़ते रुक जाओ और फिर उसके ऊपर विचार करें। यह हो सकता है, परंतु सबसे पहले सुनने की कंडिशन है वह तो है ही है।

दौलतरामजी भी कहते हैं न, 'सुन, समझ और चेत सयाने काल वृथा मत खोवे' क्यों ? 'यह नरभव फिर मिलन कठिन है जो सम्यक् नहीं होवे।' वहां पर भी सुनने की कंडिशन डाली, क्यों ? देखो, अभी यह अज्ञानी जीव है। स्वयं पढ़ने को बैठता है। अब तत्त्व का निर्णय तो है ही नहीं और एक ही शब्द के अनेक अर्थ निकलते हैं। तो जैसी अपनी कल्पना है वैसा उसका अर्थ निकालता है। शब्द तो वे ही होंगे, लौकिक में भी वे ही शब्द आते हैं कि द्रव्यदृष्टि करनी चाहिये। रातदिन तो हम द्रव्य की दृष्टि करके बैठे हैं न ? यह द्रव्य-गुण-पर्याय किसको कहना मालूम ही नहीं है। शब्द तो वे ही हैं। यह जो टर्मिनॉलॉजी होती है; देखो, वे ही शब्द हम लौकिक में यूज़ करते हैं कि नहीं ?

जब हमारे यहां कॉम्प्यूटर वगैरह कुछ नहीं था हम कुछ नहीं जानते थे। २००३ की बात है निलेशभाई, नवम्बर २००३ में हमने धवला का सामूहिक स्वाध्याय शुरू किया। हफ्ते भर पहले हमारे यहां सबको पता चला कि यहां धवला ग्रंथ पर स्वाध्याय की शुरुआत होनेवाली है। तो हमारे यहां स्वाध्याय में आनेवाले; डॉ लक्ष्मीचंद विसारिया और डॉ. सरलाबेन विसारिया ने कहा यह इतना अभूतपूर्व ग्रंथ है, आप यहां स्वाध्याय करने जा रहे हैं उसकी रेकॉर्डिंग होनी चाहिये। आपके घर की इतनीसी जगह हमें चाहिये। हमें एक पाटले जितनी जगह चाहिये। हमने कहा क्यों ? नहीं-नहीं, आपकी इतनी जगह हमें चाहिये। तो वे सारा कॉम्प्यूटर खरीदकर, सेटअप करके लाये और वहां रख दिया। हमने बोला हमें कुछ नहीं मालूम, इसमें क्या होता है। नहीं-नहीं, मेरा बच्चा आयेगा वह आपको सब सिखायेगा। तो उनका बच्चा आया तो उसने कहा यह विंडो है तो हम खिडकी की तरफ देखने लगे। यह माऊस को ऐसे पकड़ना। हमने कहा चूहे नहीं चाहिये, हमारे घर में इतने ग्रंथ हैं। हमारे इतने सारे पब्लिकेशन्स और चूहे घर में आये तो क्या होगा हमारा ? उसने कहा आपको सीडी कैसे बर्न करना बताता हूं; हमने कहा जलाना है तो घर के बाहर करो यहां कुछ नहीं करना।

शब्द तो वे ही होते हैं। अलग-अलग फील्ड में उनका अलग-अलग अर्थ होता है। हम स्वयं पढ़ने बैठ जाते हैं तो शास्त्र का कुछ अर्थ भासित नहीं होता है। जैसे लौकिक में भी होता है कि नहीं होता ? जब मैं प्रॅक्टिस करती थी न तो आपकी उम्र की कॉलेज की तीन लड़कियां मेरे क्लिनिक में आ गयीं। अंदर आयी मुझे पूछा- आप हेअर स्पेशलिस्ट हो न ? मैंने कहा आपको ऐसा क्यों लगा कि मैं हेअर स्पेशलिस्ट हूं ? मैं हेअर स्पेशलिस्ट नहीं हूं। तो बाहर आपने बोर्ड क्यों लिखा है ? मैंने कहा चलो

हम भी देखेंगे आप के साथ। तो बाहर क्या लिखा था ? बालरोगतज्ञ और नीचे अंग्रेजी में भी लिखा था चिल्ड्रन स्पेशलिस्ट। उनको उसकी जरूरत थी, इसलिये उनको लगा कि बाल का अर्थ है हेअर। शास्त्र पढ़ते समय भी ऐसा ही होता है। हमारे मन में कल्पना में जो अर्थ भासित होता है, सामने जो पढ़ते हैं उसका वैसा ही अर्थ लगाते हैं।

निमित्त से कार्य नहीं होता है यह सिद्धान्त है। निमित्त होते हैं और निमित्त का कथन भी आता है। तो शास्त्र में निमित्तों के कथन आते हैं तो उस पर उंगली दिखा-दिखाकर बताते हैं देखो, यहां लिखा है न ? निमित्त आये बिना कार्य नहीं हुआ। जब तक गणधर बनने लायक कोई जीव नहीं था तो वाणी नहीं छूटी, है न ऐसा ? उसको सही अर्थ भासित नहीं होता। जब सुनता है तो वह सुनानेवाला साक्षात् समझता है कि इसने कितना ग्रहण किया, कितना नहीं। वक्ता सोच समझकर, याद करके, रटकर नहीं आता है क्या बोलना, क्या नहीं बोलना। समझ में आती है बात ? इसलिये यहां सुनने की कंडिशन डाली है। देशना में सुनने की कंडिशन होती है।

देखो, यहां पढ़ लेते हैं- **उपदेश को देशना कहते हैं। उस उपदेश को सुनकर समझना** क्योंकि अपनी भाषा में उपदेश होगा तो समझेगा। **याद रखना, उसे पुनः पुनः विचारों में लेना देशनालब्धि है।** उसके कौन-कौनसे अंग हैं ? **श्रवण, ग्रहण, धारण आदि उसके अंग हैं।** आदि में और भी बतानेवाले हैं। श्रवण यानी सुनना, ग्रहण करना यानी जानना, धारण करना यानी याद में रहना। जैसे आप कोई मोबाइल में या कॉम्प्यूटर में जो सेव्ह करते हैं तो उसको फिर हम बाद में ढूंढ सकते हैं। अभी यह सेव्ह नहीं हुआ, जो सुना है वह सेव्ह नहीं हुआ तो फिर विचार किस पर करेंगे ? ये सब देशनालब्धि में आता है। देशनालब्धि में ये सारी बातें आती हैं।

उसकी चर्चा हम थोड़ी देर के बाद करेंगे। तब तक यह धारणा में रखना।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

१४. देशना, देशनालब्धि

सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र ने लब्धिसार ग्रंथ की रचना की हुयी है। उसीके आधार से हम यहां पांच लब्धि का स्वरूप देखने जा रहे हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पूर्व में ये पांच लब्धि नियमपूर्वक होंगी और इसके अनंतर प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होगी। हमने देखा था कि क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि होती हैं। कुछ प्रश्नों को लेकर हम आगे बढ़ते हैं क्योंकि अभी भी कुछ कन्फ्यूजन है, कुछ प्रश्न उठ रहे हैं, है न !

प्रश्न: जीव केवल जानता है, देखता है। तो पुरुषार्थ या तत्त्वनिर्णय करना यह कार्य जीव का कैसे हो सकता है ? जीव में सिर्फ ज्ञान और दर्शन दो ही गुण हैं न ? श्रोता: नहीं, अनंत हैं। अनंत हैं ? हां, तो उनमें से वीर्य गुण का कार्य पुरुषार्थ भी चलेगा, पुरुषार्थ करना यानी क्या करना ? उठक-बैठक करना ? नहीं। समाज का भला करना ? नहीं, तो ? अपनी इच्छा अनुसार कुछ करना ? वह भी नहीं ? तो पुरुषार्थ करना का अर्थ क्या होता है ? जैसे वस्तु का स्वरूप है वैसा निर्णय करना यही पुरुषार्थ है और ज्ञान में यह निर्णय चलेगा। जानना देखना यानी इसको जानू, उसको जानू, उसको जानू उसको जानना देखना नहीं कहते। जिसका ज्ञान है - जो जाननेवाला है उसको तो जाना ही नहीं और हमने कहा, हम तो जान रहे हैं, देख रहे हैं। तो अकेला जानने का कार्य चल रहा है कि चारित्र गुण का भी कार्य चल रहा है ? मिथ्यात्व अवस्था में चारित्र गुण की कौनसी पर्याय हो रही है ? श्रोता: रागद्वेष की। रागद्वेष की। तो सिर्फ जानना या देखना नहीं हो रहा है, वह रागद्वेष सहित हो रहा है। इतना ही नहीं, रागद्वेष को ज्ञान के साथ मिलाकर जान रहा है। उसको उसका भेद ख्याल में नहीं आ रहा है। इसलिये मैं ही रागी हुआ, मैं ही द्वेषी हुआ यह मान्यता भी चल रही है। राग और अपनी भिन्नता को निश्चित करना है, जानना है, अलग-अलग अनुभव करना है, यही तो पुरुषार्थ है और वह किये बिना उसको तो आत्मा का अनुभव होगा नहीं।

प्रश्न: एक समय में एक ही योग होता है कृपया अर्थ बताइये। देखो, संज्ञी पंचेन्द्रिय को कौनसे योग होते हैं ? श्रोता: मनोयोग, वचनयोग, काययोग। मनोयोग, वचनयोग, काययोग। हम कहेंगे हमारी पांच इन्द्रियां हैं, परंतु हम अँट अ टाइम एक इन्द्रिय के द्वारा जानते हैं। वैसे योग में भी अँट अ टाइम एक योग होगा और वे तीनों

योग बहुत छोटे अंतर्मुहूर्त में नियम से पलटते रहेंगे। द्वीन्द्रियादि असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक के जीवों को वचनयोग और काययोग दो ही योग होते हैं, वे पलटते रहेंगे और एकेन्द्रियों में एक काययोग ही है, वे पूरी जिंदगी तक एक काययोग में ही रहेंगे। योग का पलटना का अर्थ होता है एक योग में रहने का अंतर्मुहूर्त बहुत छोटा है। श्रेणी चढ़ते समय भी आठवां-नौवां ये बहुत छोटे-छोटे अंतर्मुहूर्तवाले गुणस्थान हैं, उनमें भी बहुत बार योगों का पलटना होता है। शरीर की प्रवृत्ति, बोलने की प्रवृत्ति बात अलग है और योग यानी आत्मप्रदेशों का जो कंपन होता है वह बात अलग होती है।

प्रश्न: प्रतिस्पर्धिक कर्म यानी क्या ? प्रतिस्पर्धिक का अर्थ होता है प्रतिपक्षी; जैसे मतिज्ञान में कौनसे कर्म का निमित्त बनता है ? मतिज्ञानावरण का। मतिज्ञानावरण का प्रतिस्पर्धिक गुण कौन है ? मतिज्ञान। मतिज्ञान का प्रतिस्पर्धिक कर्म कौन है ? मतिज्ञानावरण। दर्शनावरण कर्म मतिज्ञान में निमित्त नहीं है, मोहनीय कर्म मतिज्ञान में निमित्त नहीं है। ज्ञान का प्रतिस्पर्धिक कौन है ? ज्ञान के आवरणवाला कर्म।

प्रश्न: प्रवृत्ति और योग अलग-अलग है। बोलना यह प्रवृत्ति है तो वचनयोग क्या है ? यह बात योगमार्गणा हमने बहुत विस्तार से ली थी। यहां करणानुयोग परिचय पुस्तक में उनकी साधारण परिभाषायें बतायी हैं। उसकी योगपूर्वक प्रवृत्ति होगी परंतु प्रवृत्ति नहीं भी होती है फिर भी योग चल रहा है। जैसे हम पूजायें बोलते हैं, बहुत सारी पूजायें हमें याद हो जाती हैं। हम पूजा तो बहुत भक्तिभाव से गाते हैं। आवाज अच्छी है तो सुननेवालों को बहुत अच्छा भाव आता है। वह जो पढ़ रहा है उस समय उसके मन में दूसरे विचार आते हैं कि नहीं ? उसका मन कहां-कहां भटककर नहीं आता है ? यहां वचन की प्रवृत्ति चल रही है। वचन की प्रवृत्ति में वचनयोग निमित्त हुआ। परंतु योग पलट गया। वचनयोग से मनोयोग, काययोग बहुत सारे पलटते रहते हैं और पहले प्रवृत्ति शुरू हुयी वह चलती रहती है। जैसे आपने देखा न वह जम्बूलर क्या कहते हैं उसको ? छह-छह गेंदें उछालता है। एक गेंद को उछाला, वह गेंद ऊपर जाकर फिर नीचे आती है। बाय देंट टाइम दूसरी, तीसरी, चौथी इसतरह से हाथ से अन्य-अन्य गेंदें ऊपर उछालता है। योग है वह आत्मप्रदेशों की चंचलता है और जो प्रवृत्ति हमें बाहर दिख रही है वह बात अलग है। कोई मौन से भी बैठा है फिर भी उसके वचनयोग, मनोयोग, काययोग पलटते रहते हैं।

प्रश्न: ६० सेकंड इज ईक्वल टू एक मिनट। ६० मिनट इज ईक्वल टू एक घंटा। २४ घंटे इज ईक्वल टू तो एक दिन। ३६५ दिन इज ईक्वल टू एक वर्ष। समय नापने का यह तरीका कितना पुराना है ? यह समयवाला समय है न, जब से वह काल है न, तब से उसकी कुछ न कुछ यूनिट भी है।

प्रश्न: क्षयोपशम तो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय के देशघाति प्रकृतियों में पाया जाता है। परंतु क्षयोपशमलब्धि में लिखा है न - क्षयोपशमलब्धि में इन प्रकृतियों के अलावा मिथ्यात्व और चारित्रमोहनीय का अनुभाग भी अनंतगुणा घटता है। तो क्या हुआ ? मोहनीय कर्म की देशघाति प्रकृतियों में नहीं पाया जाता ? संज्वलन नोकषाय में नहीं पाया जाता ? पृष्ठ ७० निकालना- अब यह कौनसा जीव है ? जिसको अभी सम्यक्त्व नहीं हुआ है। तो क्या वहां संज्वलन का क्षयोपशम चल रहा है ? संज्वलन का क्षयोपशम कब चलेगा ? छठे-सातवें गुणस्थान में चलेगा। अभी उसकी क्या अवस्था है ? संज्वलन के सर्वघाति स्पर्धकों का उदय चल रहा है। देखो, मिथ्यात्व गुणस्थान में जो अनंतानुबंधी का कार्य है, मिथ्यादृष्टि के प्रत्याख्यानवरण, अप्रत्याख्यानवरण, संज्वलन का वही कार्य होता है। सभी के इतने तीव्र अनुभाग का उदय चल रहा है। मिथ्यादृष्टि के लिये सारे ही कषाय सम्यक्त्व को रोक देते हैं। यह कर्मकाण्ड का वाक्य है, मेरा अपना नहीं है। अनंतानुबंधी सहित सब हैं वे अनंतानुबंधी जैसा कार्य कर रहे हैं। जब चौथे गुणस्थानवाला है वहां अप्रत्याख्यानवरण का कार्य क्या है ? अणुव्रत भी नहीं होने देते। चौथे गुणस्थान में संज्वलन और प्रत्याख्यानवरण भी वैसा ही कार्य कर रहे हैं। क्योंकि जहां उनके सर्वघाति स्पर्धकों का उदय है, वहां उनके देशघाति स्पर्धकों का कुछ फल नहीं मिलेगा। जहां सर्वघाति स्पर्धक मौजूद हैं, वहां सर्वघातिपने से उनका कार्य होगा। यहां हम किसकी बात कर रहे थे ? मिथ्यादृष्टि की। मिथ्यादृष्टि को अनादि से ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय का तो क्षयोपशम चल रहा है उसकी बात यहां उठायी है। इसलिये वहां संज्वलन की बात नहीं उठायी है।

प्रश्न: विशुद्धिलब्धि की व्याख्या में सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियों के बंध को विशुद्धिलब्धि में लिया है। उसी समय चार घातिकर्मों का बंध भी हो रहा होगा। तो विशुद्धिलब्धि की परिभाषा में उसका रेफरन्स क्यों नहीं ? ये प्रश्नकर्ता कल नहीं थे ? हमने क्या देखा था ? आठों कर्मों का उदय चल रहा है और नया बंध किसके निमित्त से हो रहा है ? श्रोता: मोहनीय कर्म। उसको समझाया भी था कि आठों कर्मों के उदय

में क्या-क्या हो रहा है। जैसे ज्ञान की हीनता हो रही है तो ज्ञान की हीनाधिकता के कारण नया बंध डिसाइड होता है क्या ? श्रोता: नहीं होता। ख्याल में आयी न बात ? जो नया बंध है उसमें एक मात्र निमित्त मोहनीय का उदय है। मोहनीय के उदय में आठों ही कर्मों का नया बंध हो रहा है। इसलिये विशुद्धिलब्धि के प्रकरण में; विशुद्धि यानी जीव के मंदकषाय को ही लेना है। इसलिये वहां केवल मोहनीय की बात उठायी है। मोहनीय का जो मंद अनुभाग हो रहा है वह मोहनीय के मंद उदय में हो रहा है।

श्रोता: बंध की बात है, अघातिकर्म जो अप्रशस्त कर्म हैं वे नहीं बंधते तो बाकी के चार घातिकर्म बंधते हैं न ? घातिकर्म तो सभी पापरूप हैं और हर समय सात कर्म तो बंधते ही हैं। चार घातिकर्म तो शुभ परिणाम, अशुभ परिणाम दोनों से बंधते हैं। घातिकर्म तो हर समय बंध रहे हैं। डिफरन्स कहां पड़ा ? हां, विशुद्धिलब्धि में पाप प्रकृतियों में क्या होगा ? थोड़ा मंद अनुभाग बंधेगा। हम उसको विशुद्धिलब्धि क्यों कहेंगे ? क्योंकि इस काल में सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियों का बंध हो रहा है। बस उसका इतना अर्थ लेना है।

प्रश्न: सातवें नरक में कृष्णलेश्या होने पर भी विशुद्धिलब्धि के काल में सातावेदनीय का बंध कैसे होता है ? समझाइये। हमने यह बात देखी थी कि सातवें नरक का नारकी भी क्यों न हो, उसके अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में साता-असाता का तथा अन्य भी जो परावर्तमान प्रकृतियां हैं स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ आदि सबका नियम से पलट-पलटकर बंध होता है। नारकी की बात छोड़ो, सर्वार्थसिद्धि के शुक्ललेश्यावाले देव हैं, वे असाता का बंध करेंगे कि नहीं करेंगे ? श्रोता: नहीं करेंगे। हर अंतर्मुहूर्त में करेंगे। यह नियम है कि हर अंतर्मुहूर्त में जीव के परिणाम इतने उलट-पुलट होते रहते हैं तो नियमरूप से वहां वैसी प्रकृति बंधेगी। हां, अभी कौनसे गुणस्थानवाले के कौनसी प्रकृतियां बंधती हैं, कहां तक बंधती हैं उसके सारे नियम हैं। वह तो हम क्रम से देखेंगे, अगर मौका मिले तो। इसके लिये बंध संबंधी थोड़ी जानकारी आवश्यक है।

तीनों प्रश्न पहले पढ़ती हूं फिर सबका उत्तर एक साथ देती हूं। प्रश्न: देशनालब्धि में जो आचार्यादिक ज्ञानी की बात की है उसमें आज उनका प्रत्यक्ष समागम मुश्किल है। तो उनका परोक्ष समागम जैसे कि एमपी३ ऑडिओ प्रवचन देशनालब्धि में निमित्त हो सकते हैं क्या ? कृपया समझाइये। अन्य प्रश्न: और क्या प्रत्यक्ष समागम ही चाहिये ?

अन्य प्रश्न: देशनालब्धि के लिये ज्ञानी की प्रत्यक्ष देशना आवश्यक है अथवा व्हिडिओ-ऑडिओ में उपलब्ध देशना वैसी ही कार्य कर रही है ? अन्य प्रश्न: देशनालब्धि के लिये देशना की अवधि कितनी होनी चाहिये ? जिनसे उपदेश सुने वे चौथे गुणस्थानवर्ती न हो या हमें मालूम नहीं हो लेकिन आगम की ही बात सुनायें तो देशनालब्धि है या नहीं है ? पहले में पहले यह ठीक तरह से समझ लो कि उपदेश सुनने की मनायी नहीं है, सुनना ही चाहिये। उसको देशना बिलकुल नहीं कहेंगे और उससे देशनालब्धि नहीं होगी। अभी मैंने नियमसार ग्रंथ मंगवाया है। शुद्धभाव अधिकार है, गाथा ५१, ५२, ५३ मैं पढ़ूंगी। प्राकृत सुनना चाहते हैं कि गुजराती सुनना चाहते हैं ? प्राकृत ? अच्छा।

विवरीयाभिणिवेसविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं।

संसयविमोहविभ्रमविवज्जियं होदि सण्णाणं ॥ ५१ ॥

इसका अर्थ देखते हैं। विपरीत अभिनिवेश-अभिनिवेश यानी अभिप्राय, मान्यता। विपरीत अभिनिवेश रहित श्रद्धान ही सम्यक्त्व है। संशय, विमोह और विभ्रम रहित ज्ञान वह सम्यग्ज्ञान है। गाथा ५२-

चलमलिणमगाढत्तविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं।

अधिगमभावो णाणं हेयोवादेयतच्चाणं ॥ ५२ ॥

चलता, मलिनता अने अगाढ़ता रहित श्रद्धान ही सम्यक्त्व है। हेय और उपादेय तत्त्वों को जाननेरूप भाव वह सम्यग्ज्ञान है। अब गाथा ५३-

सम्मत्तस्स निमित्तं जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा।

अंतरहेऊ भणिदा दंसणमोहस्स खयपहुदी ॥ ५३ ॥

इसका अर्थ - सम्यक्त्व का निमित्त जिनसूत्र है, जिनसूत्र यानी आगम। जिनसूत्र के जाननेवाले पुरुषों को सम्यक्त्व के अंतरंग हेतु कहे हैं। अंतरंग हेतु यानी अंतरंग निमित्त। तो मेरा प्रश्न है, अंतरंग निमित्त किसको कहना और बहिरंग निमित्त किसको कहना ? श्रोता: जो नियमरूप कारण है वह है अंतरंग निमित्त। हां, नियमरूप निमित्त है उसको अंतरंग निमित्त कहते हैं और मेरी भाषा में जो व्हेरिबल निमित्त हैं, अलग-अलग जीवों में अलग-अलग निमित्त हो सकते हैं उसको बहिरंग निमित्त कहते हैं। जैसे सम्यग्दर्शन के बहिरंग निमित्तों में किसीको जिनबिंब दर्शन भी कहा है, किसीको

उपदेश भी कहा है और नरकों में तो वेदना के काल में वेदना को भी निमित्त कहा है। देवों में ऋद्धियों का दर्शन भी निमित्तों में गिना है। बहिरंग निमित्त अलग-अलग हो सकते हैं। परंतु अंतरंग निमित्त यानी नियमरूप निमित्त सबके लिये वही होगा।

यहां क्या कहते हैं ? जिनसूत्र के जाननेवाले पुरुषों को सम्यक्त्व के अंतरंग हेतु कहे हैं। किसने ? भगवान ने बताया है, अन्य किसीने नहीं। क्योंकि उनको दर्शनमोह के क्षयादिक हैं। तो सीडी को दर्शनमोह का क्षय है कि उपशम है कि क्षयोपशम है ? बहनश्री चंपाबहन को भी यह प्रश्न पूछा गया था। उनके सामने वहां तो ऑडिओ सीडी चलती थी। क्या यह निमित्त है ? इसको देशना कह सकते हैं क्या ? उन्होंने मना कर दी थी - आपको याद होगा तो उनकी तत्त्वचर्चा में यह आता है। हां बहनश्री चंपाबहन ने स्वयं कहा था। गुरुदेव के सामने भी; तब तो गुरुदेव सामने थे। तब तक तो किसीको कोई सवाल नहीं था। देखो, इसमें व्यग्रता की कोई बात नहीं है। इसीकी चर्चा अभी देशनालब्धि के प्रकरण में आनेवाली है। परंतु यह किसीका अपनी ओर से कथन नहीं हो रहा है। इसके लिये कुंदकुंद आचार्य के मूलसूत्र में हमने आपको बताया है कि क्या है। सम्यक्त्व का निमित्त जिनसूत्र और जिनसूत्र के जाननेवाले पुरुष हैं उनको अंतरंग हेतु कहा है यानी नियमरूप निमित्त कहा है। क्यों ? क्योंकि उनको दर्शनमोहनीय के क्षयादिक हैं। उनको दर्शनमोहनीय के क्षय यानी कोई क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो सकते हैं। अभी औपशमिक सम्यक्त्व को छोड़ दो क्योंकि उसका अंतर्मुहूर्त काल बहुत छोटा है। परंतु क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि होंगे कि नहीं होंगे ? उन्हीं को निमित्त कहा है। ऐसा लगता है कि उनको दर्शनमोहनीय का क्षय या उपशम या क्षयोपशम हुआ तो हमें उससे क्या लेना-देना है ? परंतु नियमरूप से ज्ञानी की ही देशना होती है बताने के लिये उन्होंने कह दिया है। अब इसीके बारे में आगे पंचलब्धि पुस्तक में हम चर्चा करेंगे।

श्रोता: एक प्रश्न है- सीडी को तो नहीं कहते लेकिन व्हिडिओ में प्रत्यक्ष दिखायी देते हैं ? दिखायी देते हैं फिर उनका व्हिडिओ का दर्शनमोहनीय का क्षयोपशम भी होगा कि नहीं ? देखो-देखो, देखने सुनने की बात नहीं है। हम उसका निषेध नहीं कर रहे हैं। उसको बहिरंग निमित्त कह सकते हैं क्योंकि उस निमित्त से हो सकता है उस जीव को पूर्व में देशना मिली भी होगी उसको क्या पता ? कभी ज्ञानी उसको मिला कि नहीं मिला उसको क्या पता है ? एक स्टोरी बताती हूं। एक ने सोचा कि मुझे पारसमणी चाहिये - पारस पत्थर आता है न ? उसकी क्या विशेषता है ? वह लोहे को स्पर्श करता

है तो लोहे का सोना हो जाता है। उसने क्या किया ? वह पारसमणी ढूंढ़ने निकला। उसने एक हाथ में ऐसे लोहे का कड़ा बनाया और वह क्या करता था ? एक-एक पत्थर ऐसे उसको चिपकाता था और फेंक देता था, चिपकाता था, फेंक देता था। ऐसे ही चलता रहा। सालों तक उसकी यही गतिविधियां चल रही थी। यह तो लोहा तो लोहे का ही रहा। करते-करते-करते एक दिन अचानक उसके ख्याल में आया। अरे, यह तो सोना है। यह क्या हुआ ? यानी उसको पारसमणी का लाभ हुआ था, लोहे को सोना करके उसको फेंक भी दिया था।

तो ऐसा ही इसको ज्ञानी का समागम हो भी जायेगा। उसकी क्या चिंता है ? हमें जो उपदेश मिल रहा है, उपदेश की सत्यता को पहचानना है और उपदेश को ग्रहण करके निर्णय के प्रति चलो न। हो सकता है आपको कोई ज्ञानी मिल गया हो, पूर्वभव में भी मिल गया हो। हो सकता है न ? अभी गुरुदेव को तो ग्रंथ मिले। समयसार मिला, मोक्षमार्ग प्रकाशक मिला। देशना तो पूर्व की थी ही। वह अभी इस भव में काम कर गयी। वह कितने भव तक चलती है, क्या होता है उसकी चर्चा हम अभी करेंगे। यह ज्ञानी की देशना नहीं कहकर उपदेश छोड़ नहीं देना है। देशनालब्धि तो यहां अपने में होगी। हां, और अभी जो उपदेश मिल रहा है वही हमें कार्यकारी है। अभी उसमें से आपको कोई ज्ञानी मिल जायेगा। परंतु उसके कारण हमारा कार्य रुका है ऐसा भी मत सोचना। क्योंकि निमित्त होते हैं। जिसकी पात्रता होगी उसको निमित्त भी सहज मिल जायेंगे। उसकी चिंता, उसकी व्यग्रता, कोई आकुलता करने की जरूरत नहीं है। कोई हाय-हाय यह पंचमकाल है, हाय-हाय अभी ज्ञानी कहां ढूंढ़ें ? कुछ ढूंढ़ने की जरूरत नहीं है। ज्ञानी आपको ढूंढ़ते हुये आपके पास पहुंच जायेंगे, डोंट वरी।

देखो, मात्र उपदेश सुनने की क्रिया देशनालब्धि नहीं है। देशनालब्धि यानी जिसको देशना मिली उसकी यहां बात है। देशनालब्धिवाला जीव तो अपने स्वरूपसंबंधी उपदेश अत्यंत रुचिपूर्वक सुनता है। पद्मनंदी पंचविंशतिका में आचार्य पद्मनंदी कहते हैं- परसों हमने आपको यह बताया था। यहां दीवार पर भी लिखा है ऊपर, है न ?

तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्ताऽपि हि श्रुता।

निश्चितं स भवेत् भव्य भावि निर्वाणभाजनम्॥

यानी अपने स्वरूप संबंधी कथन सुनकर जीव आनंदित होता है, उसके संबंध में अधिक जानने की उसे तीव्र जिज्ञासा और उल्लास उत्पन्न होता है। गृहस्थी संबंधी कार्यों में से किसी भी प्रकार वक्त निकालकर वह बड़े उत्साह के साथ उपदेश सुनने आता है। एक बार उपदेश सुना तो उसको ऐसी लगन लगती है कि अरे, यहां तो मेरी बात हो रही है - अपनी आत्मा की बात सुनने के लिये तो वह दौड़-दौड़कर वहां चला जाता है। यह हमारे अनुभव की बात है कि टीव्ही की अपनी पसंद की सीरियल देखने के लिये लोग बाकी सब काम शीघ्रता से निपटाकर सीरियल के वक्त; प्रवचन के वक्त नहीं कहा - सीरियल के वक्त बराबर टीव्ही के सामने आकर बैठ जाते हैं। अपना कुछ कहीं छूट न जाये ऐसा लगता है न उनको ? जिसको जिसमें रुचि है उसके लिये यह प्रयत्नशील रहता है। आपको याद होगा जब वह रामायण सीरियल चलती थी न ? अरे, मुस्लिम लोग भी अपनी शादी रुकवाकर पहले रामायण देखते थे। उस ज़माने में दिनेशजी फोटोग्राफी करने जाते थे। तो एक मुस्लिम दूल्हा अड़कर बैठा। नहीं, अभी रुको, क्यों ? वह रामायण चल रही है, अभी पूरी होने दो फिर हम शादी करेंगे। ऐसे चलता था। हां, फिर लड़कीवालों ने टीव्ही लाकर सामने रख दिया। चलो देखो और फिर हमारी लड़की से शादी करो।

उसीप्रकार जिसे तीव्र जिज्ञासा जाग्रत हुयी है उसकी रुचि ही उसे मार्ग बना देती है। उसमें कोई रुकावट नहीं आती। हम लौकिक में देखते हैं न ? जो कोई आज किसी फील्ड में टॉप तक पहुंच गये हैं; कोई क्रिकेट में हो, कोई गायक हो या अन्य कोई हो, बचपन से वे कैसी-कैसी प्रतिकूलता में भी अपने मार्ग पर डटे रहे। भले कोई घर से भागकर गये थे या अन्य कुछ भी किया था। तीव्र रुचि ही उसको मार्ग बना देती है। **विषयकषाय की बातों से** यानी जो कोई उनकी लौकिक बातें चलती हैं। **उसे तत्त्वश्रवण में अधिक रस लगने लगता है। व्यवसाय में होनेवाला आर्थिक नुकसान भी उसे देशना सुनने में बाधा नहीं डालता - उसे विचलित नहीं कर सकता।** जहां तत्त्व की बात सुनने को मिल रही है उस मौके को वह नहीं छोड़ता।

देखो, मैंने बताया था कि हम इ. स. १९७५ में यात्रा में गये थे। हमें वहां तत्त्वज्ञान की रुचि लग गयी। फिर इ. स. १९७६ में बुलंदशहरवाले पं. कैलाशचंदजी दसलक्षण पर्व में मुंबई आये थे। कैलाशचंदजी को उन्हीं के नाम से मैं बताती हूं, पवनजी के नाम से नहीं - पवनजी उनके पुत्र हैं। हां, हम उनकी ओर से कैलाशचंदजी की याद नहीं

दिलायेंगे। हां, डंडा पंडित। तो दसलक्षण के दस दिन से लेकर दिवाली के बाद होनेवाले अष्टान्हिका तक - ढाई महीने वे मुंबई में रहे। वे रोज के तीन घंटे सिखाते थे- सुबह, दोपहर और शाम को। दुकान में ताला, मेरी डिस्पेंसरी में ताला लगातार हमारे घर के सबके सब यानी सास-ससुर, उनके बेटे, बेटियां, बहुयें तीनों टाइम प्रवचन में जाते थे। घर में ग्यारह, बारह बच्चे - उनका सब करना, रसोई बनाकर तैयार रखना वगैरह काम निपटाकर बच्चों को लॉक करके हम चले जाते थे। अब इसमें बहुत कुछ अँडजेस्टमेंट करनी पड़ती थी। पंडितजी हमें रोज लिखने के लिये होमवर्क देते थे। १६-१६ प्रश्न और उनके उत्तर लिखकर लाओ। रात को दो बजते थे क्योंकि हमारे घर में २५ लोगों की रसोई चलती थी। फिर डिस्पेंसरी है, रसोई है, बच्चों का सब निपटाना है और रात को होमवर्क करना है। दिन में तीन घंटे उनको सुनना ही सुनना है। परंतु धंधे का - व्यवसाय का क्या होगा - वह सब चिंता छोड़कर जाते थे; क्योंकि अंदर से ऐसी तीव्र लगन लगी कि वहां पहुंचना है। समय पर पहुंचना है। जिसको जिसकी तीव्र रुचि लगती है वह किसी भी हालत में उसको पाकर रहता है।

पहले शिबिरों में तो कितनी अड़चनें भी होती थी। अरे, जयपुर में शिबिर होता था तो एक रूम में हम आठ-आठ, नौ-नौ जन रहते थे। कोई पलंग के नीचे भी सोते थे और एक कॉमन बाथरूम में सौ-सौ लोग लाइन लगाते थे। सुबह डेढ़ बजे से लेकर हम बाथरूम में नंबर लगाते थे। आजकल तो सभी सुविधायें हैं। ये देवलालीवालों ने तो सब शिबिरवालों को बहुत लाड़-प्यार करके रखा है कि आओ, हम इतनी सुविधा देते हैं, आप सुनो। तो जिसको तीव्र लगन लगती है न, उसको कोई बाधा नहीं आती। पहले तो शिबिरों में बहुत मुश्किलें होती थी। ये जयपुरवालों के भी प्रशिक्षण शिबिर लगते थे न १८ दिन के। मुझे याद है इ.स. १९७९ में वाशिम में शिबिर लगा था। वहां सब कॉमन होता था। कुछ सुविधायें नहीं होती थी, ना लेडीज को ना किसीको। तो सुबह तीन बजे जब कोई नहीं होता था तब जाकर बेटियों को नहाने के लिये ठंडा पानी लाती थी। हमें बच्चों के स्कूल के बरामदे में जगह दी थी। वहां उनको नहलाती थी, फिर सुलाती थी और फिर जाकर स्नान करके आती थी। यानी जिसको जहां रुचि है उसको कोई प्रतिकूलता रोक नहीं सकती यह कहना चाहते हैं, है न।

जिसकी जैसी भवितव्यता है। **जिसकी देशनालब्धि की योग्यता होती है,** आगे का वाक्य देखो- **भवितव्य होता है,** यानी उसकी ज्ञान की ऐसी योग्यता अभी

पकी है। **उसे ज्ञानी का सत्समागम और उपदेश की प्राप्ति भी क्या लिखा है ?**
श्रोता: सहज होती है। सहज होती है। उसके कोई चिंता का विषय ही नहीं है। **उस जीव की तीव्र रुचि ही उसमें कारणभूत होती है। तुम्हें याद है ? सन १९७५ में** अभी मैंने यात्रा की बात लिखी है। मेरी भाषा में बोलती हूँ- मैंने बताया था सन १९७५ में हम तीर्थयात्रा में गये थे, धर्मचक्र यात्रा निकली थी। मेरी छोटी बच्ची तीन साल की थी और बड़ी थी पांच साल की। इनको मेरी जेठानी के पास छोड़कर गये थे। हमारी जॉइंट फॅमिली थी न, तो इतने छोटे बच्चों को छोड़कर क्यों गये ? अंदर इतनी तीव्र रुचि थी कि, नहीं मुझे जाना ही है, वहां तो यात्रा की धुन थी। कोई तत्त्वज्ञान मालूम नहीं था। तत्त्वज्ञान तो यात्रा के दरमियान सुना। वहां तो बस केवल मुझे यात्रा में जाना है ऐसी एक तीव्र रुचि थी और मेरे सास-ससुर को यात्रा करवानी थी, उनकी सेवा करनी थी उनके लिये हम निकले। परंतु उसमें हमें यह लाभ हो गया। तब पहली बार सही तत्त्वज्ञान सुना। तो उसके बाद फिर हमारी तत्त्वज्ञान की गाड़ी तेजी से दौड़ते गयी।

तब तो मेरी बच्ची की स्कूल में केजी क्लास में अॅडमिशन होनी थी। सब पेरेंट्स को मालूम है कि बच्चों के अॅडमिशन के लिये क्या-क्या होता है। मैंने स्कूलवालों से बोल दिया था कि मेरी एक लड़की रीना यहां पढ़ रही है, दूसरी लड़की मोना यहां आयेगी और मेरी जेठानी उसको लेकर आयेगी, मोना इंटरव्यू देगी। तो आप देख लेना उसका क्या होता है। हम तो चले गये। अॅडमिशन के लिये वे स्कूल में गयीं। मेरी बेटी मोना ने उनके सामने एक शब्द भी नहीं बोला तो मेरी जेठानी रोने लगी। स्कूल प्रिंसिपल उसको समझाने लगी- नहीं, तुम बिलकुल चिंता मत करो। मुझे डॉ. शहा कहते हैं न, तो डॉ. बहन ने तो स्कूल के लिये बहुत किया है। वे हर साल फ्री चेकअप वगैरह करती हैं और वे मुझे बताकर गयी हैं। आप चिंता मत करो, उसकी अॅडमिशन हो जायेगी। नहीं तो अॅडमिशन के लिये कितने पापड़ बेलने पड़ते हैं ! क्या करें ?

देखो, नीचे की दो लाइन- **यात्रा में जाने की मुझे तीव्र रुचि थी**, वहां तो यात्रा की धुन थी। तब कोई तत्त्वज्ञान तो मालूम नहीं था। बचपन से धार्मिकवृत्ति जिसको कहेंगे - पूजा करना, मुनियों को आहारदान देना, जुलूस में शामिल होना, यात्रा में जाना या जो गतिविधियां चलती हैं उनमें पार्ट लेना बस इतना था। **यात्रा तो सफल हो ही गयी, परंतु उसीके साथ भवों-भवों में अत्यंत दुर्लभ तत्त्वज्ञान सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। उस समय ख्याल आया कि अरे ! मेरा ऐसा विलक्षण स्वरूप ! स्वयं**

की - आत्मा की बात है न ? तो अपना ऐसा विलक्षण स्वरूप तब ख्याल में आया। **मुझे तो इन बातों की - इस तत्त्वज्ञान के अभ्यास की खबर ही नहीं थी।** बचपन से प्रवचन नहीं सुने थे ऐसी बात नहीं थी, अनेक मुनियों का समागम हुआ था। चेतनभाई, सबमें श्रेष्ठ शांतिसागर महाराज थे। उनका समागम, उनका प्रवचन वह सब सुना, वे सब बातें हुयी थी, बचपन से थी।

बचपन से धार्मिक रुचि और संस्कार तो थे परंतु तत्त्वज्ञान का शास्त्रीय दृष्टिकोण से अभ्यास नहीं था, उसका माहात्म्य भी कभी भासित नहीं हुआ था। जो रिचुअल्स होते हैं, जो क्रियायें होती हैं वे करते थे परंतु इसके पीछे का तत्त्वज्ञान का बेस नहीं था। **उसके पश्चात् भी अनेक बार तुम्हें लेकर या छोड़कर हम शिबिरों और प्रवचनों में जाते रहे थे।** छोटे बच्चों को लेकर हम जाते थे। वह प्रांतिज की शिबिर मुझे याद है, सन १९७६ या सन १९७७ में गुजरात में प्रांतिज गांव में प्रशिक्षण शिबिर हुआ था। हमारे घर के सारे २९-३० लोग गये थे। सास-ससुर, दिनेशजी के सब भाई, बहन, मेरी दो जेठानी वगैरह सब। वहां एक हॉल में सब २९-३० लोग रहे थे। हमारे और भी कोई रिलेटिव्ह आये थे। वहां की सारी परीक्षाओं के फर्स्ट नंबर, सेकंड नंबर, थर्ड नंबर सारे हमारे घर के लोगों ने प्राप्त किये थे। प्रशिक्षण शिबिर में हम दोनों ने टॉप किया था- बच्चों ने किसीने तत्त्वज्ञान पाठमाला में टॉप किया, किसीने वीतराग विज्ञान पाठमाला में और किसीने बालपोथी में किया। हम सब प्राइजेस लेकर आये मुंबईवाले। यही कह रहे थे देखो, एक पॅरेग्राफ छोड़कर आगे पढ़ते हैं।

जिसे तीव्र रुचि होती है उसे ज्ञानी का समागम, देशना का मिलना और वैसे संयोग सहज मिल जाते हैं। वास्तविकता तो यह है कि संयोग कभी बाधक नहीं होते, हमारी संयोगों में जो रुचि और गृद्धता होती है वही बाधक होती है। हम संयोगों को छोड़कर नहीं जाना चाहते हैं। संयोग हमें नहीं कहते तुम मत जाओ, है न। **जिसे तत्त्वज्ञान की रुचि नहीं है वह प्रतिकूल संयोगों की आड़ लेकर बहाना बनाता है।** हम शिबिर में आयेंगे तो वहां रहने की और खाने की व्यवस्था बराबर होगी कि नहीं होगी ? क्यों बेलोकरजी कहां गये ? आप व्यवस्था करेंगे तो हम आयेंगे यह पहली कंडिशन होती है। वहां क्या व्यवस्था होगी पूछते हैं। अरे, वहां मुझे क्या सुनने को, समझने को मिलेगा यह प्रश्न कोई पहले नहीं पूछता। आगे देखते हैं-

जिस तरह हमने देखा कि मिथ्यात्व और कषायों के अनुभाग का मंद, मंदतर यानी अधिक मंद, उदय होता जाता है, होता जाता है क्यों कहा ? प्रतिसमय मंद-मंद होता है इसलिये होता जाता है, प्रोसेस कंटिन्युएशन में चल रहा है। **उसीतरह ज्ञानावरणादि कर्मों का अनुभाग उदय** उदय की बात है, जो अनुभाग उदयरूप हो रहा है वह **भी मंद होता जाता है।** पहले बताया था न, पहले मोहनीय को इसलिये लिया क्योंकि उसका उदय मोह-रागद्वेष में निमित्त है। परंतु ज्ञानावरणादि सभी अप्रशस्त कर्मों का भी अनुभाग अनंतगुणा घटता हुआ उदय में आता है जिसे हमने क्षयोपशमलब्धि में देखा। **इसलिये जीव जो उपदेश श्रवण करता है,** यानी सुनता है **ग्रहण करता है** यानी समझता है **उससंबंधी योग्यता-अयोग्यता का निर्णय करने की बुद्धि - इतना विवेक भी उसके होता है।** किसकी बात है ? जिसको क्षयोपशमलब्धि है, विशुद्धिलब्धि है और जो अभी देशना सुनता है तो यह उपदेश योग्य है कि अयोग्य है उसका निर्णय करने का भी उसमें उतना विवेक है। लड़का-लड़की एक दूसरे को दो-चार बार देखते हैं, मिलते हैं तो यही मेरा जीवनसाथी है कैसे नक्की करते होंगे ? उनको लगता है। वहां तो कैसा फटाफट निर्णय हो जाता है।

सामनेवाला व्यक्ति ज्ञानी है अथवा शास्त्र का यह उपदेश सत्य ही है इसकी उसे अपनी स्वयं की बुद्धि से पहचान होती है। क्या कहा ? किसीने कहा यह सम्यग्दृष्टि है। अरे ! दौड़कर चले जाते हैं। क्यों मनीषाबहन ? इधर दौड़ो, उधर दौड़ो, उधर दौड़ो। यह मनीषाबहन बहुत सरल है। हमारे यहां दैनिक स्वाध्याय में आ रही है। कितने साल से ? तीन साल से। पहले कहीं और जगह जाती थी, हम नाम नहीं लेंगे। सबने बताया यह सम्यग्दृष्टि है। वहां तो ऐसी मान्यता थी कि सब महिलायें उनको देखती थी और रोती थी। क्यों ? तो कहती थी जितने आंसू बह जायेंगे उतनी निर्जरा होगी। ऐसा पागलपन था सबका। अभी वह सब पागलपन छूट गया है। जब यहां तत्त्व सुनती हैं तो अभी उसकी आंखों में आंसू आते हैं कि यह सही तत्त्वज्ञान ऐसा है और मैं कहां भटकी थी इतने दिन। यह सहज होता है। ख्याल में आयी न बात ? देखो- यह योग्य-अयोग्य का निर्णय अंदर से होने लगता है जब उसकी पात्रता है तब।

इसलिये क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि को लेते हुये देशनालब्धि की चर्चा कर रहे हैं; केवल उनका उपदेश सुना ऐसा नहीं। किसीने बताया वह सम्यग्दृष्टि है, हां, यह ज्ञानी, हां चलो अभी - यह बात नहीं चलेगी। अपनी बुद्धि से उसका निर्णय स्वयमेव हो

जाता है। लौकिक में हम देखते हैं कि दूसरों की बुद्धि के अनुसार काम करनेवाले लोग स्वयं योग्य निर्णय नहीं ले सकते हैं। यह हमारा अपना निर्णय होना चाहिये। धर्म का स्वरूप या आत्मा का स्वरूप बतानेवाले वक्ता भी कोई तो सच्चा उपदेश देते हैं और कोई धर्म और आत्मा के नामपर गलत उपदेश देकर मिथ्या मान्यताओं का प्रचार करते हैं। ऐसी हालत में उपदेश की सत्यता-असत्यता का निर्णय करने और उसकी परीक्षा करने योग्य विवेक हमारे पास होना चाहिये। आप कहेंगे हमारे पास इतना विवेक नहीं है। अगर नहीं है तो कुछ सीखना चाहिये। लौकिक में तो कितने चतुर हैं। जाली नोट और सही नोट को पहचानने के तरीके तो टीव्ही पर दिखाते हैं और हम भी नोट हाथ में लेते हैं तो बराबर जांच कर लेते हैं। वहां ऐसा नहीं कहते कि हमें कुछ समझता नहीं है, हम कैसे पहचाने ? तो पहचानने को सीखना चाहिये। समझ में आयी बात ? यहां पर भी ऐसा है। क्योंकि यह उपदेश कैसा है ? अरे ! हमारे अनंत भवों में जो नहीं किया है वह कार्य होने जा रहा है तो उसके लिये बिलकुल चौकन्ना होना चाहिये। उपदेश सुनने जाते हैं उसमें अपने कल्याण की बात है कि नहीं है ? वह उपदेश सही है कि नहीं ? इतना विवेक जरूर होना चाहिये।

देखो- हम अच्छे संयोगों और धनसंपत्ति की ओर देखकर कहते हैं कि यह सारा पुण्य का उदय है। परंतु देशना देनेवाले, सच्चा उपदेश देनेवाले ज्ञानी जीवों का समागम होना, सहवास प्राप्त होना और उनके द्वारा दिये गये उपदेश का श्रवण, ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त होना तो उच्च जाति के पुण्य का फल है। देखो जो पूछते हैं न सीडी देशना है कि नहीं है ? जो पूछते हैं उनके लिये सीडी सुनने का निषेध नहीं हो रहा है। क्योंकि हमें गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के द्वारा आज की तारीख में सर्वोत्कृष्ट उपदेश मिला है। हमारे अपने कल्याण की बात है वह उन्होंने सरल करके समझाया है और आगम ग्रंथों को ही उन्होंने सरल करके बताया है। तो उसको सुनना ही चाहिये। उसी में तत्त्वनिर्णय तक पहुंचना चाहिये। हो सकता है आप पूर्वभव की देशना लेकर भी आये होंगे कि नहीं होंगे ? उस समय यह निमित्त हो जायेगा। किसी उपदेश का निषेध नहीं है। उस उपदेश की सत्यता को हमें पहचानना है। यह उपदेश भी उन्होंने कुंदकुंद आदि आचार्यों के ग्रंथों में से ही दिया है।

अभी तो ऐसा है इसको उसरूप से ग्रहण करें कि यह आचार्यों का उपदेश उन्होंने सरल करके हमें बताया है। वे स्वयं तो ज्ञानी थे ही। उन्होंने यह उपदेश हमें

दिया है इसतरह से उसको ग्रहण करना है। यानी यहां किसीको, किसीसे सुनने का, पढ़ने का निषेध नहीं है। देशना और देशनालब्धि किसे कहते हैं उस प्रकरण में यह बात जहां ग्रंथों में आयी है उसके आधार से बताया है। **शास्त्र के कथनों का गलत अर्थ बतानेवाले और अपनी मति कल्पना से चाहे जैसा उपदेश देनेवालों व्यक्तियों की भी कमी नहीं है। वे तो स्वयं को देशना देनेवाले समझते हैं।** हमने ऐसे भी सुने हैं- चलो यहां आओ, यहां देशना मिलेगी या सम्यग्दर्शन भी दिला देंगे। हां, दे देते हैं - चौथा गुणस्थान लेकर जाओ। आपने इतना अटेंड किया तो आप सम्यग्ज्ञान लेकर जाओ। ऐसा होता है ? कोई किसीको देता है ? दे ही नहीं सकता। परंतु क्या है ? जो भोले हैं, कुछ मालूम नहीं है तो ऐसे चले जाते हैं, फंसते रहते हैं। यह विवेक हमें होना चाहिये। कोई स्वयं को देशना देनेवाले समझते हैं **और दिखावा तो ऐसा करते हैं कि मानो दुनिया के कल्याण के लिये उनका अवतार हुआ है। अचरज की बात तो यह है कि उन्हें भक्तों की कभी कमी महसूस नहीं होती।** उनके भक्तों की ऐसी भीड़ लगी रहती है और भीड़ को देखकर ही वहां लोग दौड़ते-दौड़ते चले जाते हैं।

अरे, इतनी भीड़ है देखें तो सही, देखने में क्या जाता है ? क्यों ? **उनके पीछे लगकर अविवेक से प्रवृत्ति करनेवाले लोगों को देखकर ख्याल आता है कि इनकी होनहार कुछ ठीक नहीं है।** उनको मत जाओ-मत जाओ कहने से कोई फायदा नहीं। उनकी होनहार जैसी होगी वैसी उनकी बुद्धि भी स्वयमेव होगी, उनको निमित्त भी मिल जायेंगे। **किसीको पूछेंगे- 'क्यों भाईसाहब ? क्या आपने भोजन कर लिया ?' तो वह कहता है, 'अहो, हम तो सबके भोजन की व्यवस्था करते हैं। देखो मैंने १००० लोगों के भोजन के पास बनाकर दिये हैं।' उसे पूछते हैं, 'तो आपका पेट भर गया होगा ?' तो कहता है कि हमें फुरसत ही नहीं मिली, सबको पास ही देते रहे। यह तो उदाहरण हुआ, हम बाद में सिद्धान्त घटित करेंगे।**

दूसरा उदाहरण देखते हैं। दूसरे किसी महोदय से पूछा 'आपको धन की कोई कमी तो नहीं है न ?' उसने कहा, 'मुझे पूछ रही हो ? अहो, रोज मेरे सामने करोड़पति लोग कतार में खड़े रहते हैं - मेरे से पैसे लेने के लिये और मुझे पैसे देने के लिये।' फिर प्रश्न, 'तो फिर आपको तो पैसे की कोई चिंता नहीं होगी ?' वह कहता है 'आपको मैं क्या बताऊं ? मुझे घर खरीदना है, लड़की की शादी करनी है, लड़के को उच्च शिक्षण देना है। इन सब बातों के लिये पैसों की बहुत

कमी है।' अभी तक तो करोड़पति की बात कर रहे थे आप। वह कहता है, 'हां, मैं बैंक में काम करता हूं। इतने सारे लाखों रुपये के लेने, देने, गिनने का काम करने के लिये मुझे कुछ हजार रुपये तनखा मिलती है।' इसीतरह किसीसे पूछा, 'अहो ! आपको देशना तो मिली ही होगी न ?' वह कहता है, 'क्या बात कर रही हो ? हम तो देशना देनेवाले हैं। हमने तो इन सारे ग्रंथों की टाइप सेटिंग की है, प्रूफरीडिंग की है, व्याख्यान सुनाये हैं।' यानी हम तो व्याख्यान देनेवाले हैं। हम तो प्रवचनकार हैं, हमारे जैसे प्रवचन कोई नहीं करता है। हमने कहा 'बहुत अच्छी बात है। तो फिर आप देशना देनेवाले ज्ञानी धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि हो ?' वह कहता है 'नहीं, हमारा इतना सौभाग्य कहां ?' यानी उसने अपने को देशना देनेवाला समझा। समझ में आयी न बात ?

निषेध किसका होगा ? देशना तो ज्ञानी जीवों के उपदेश को ही कहते हैं। अभी मैंने यह बात आपको नियमसार ग्रंथ में से पढ़कर सुनायी। वह उपदेश भी मोक्षमार्ग संबंधी होना आवश्यक है, द्रव्यानुयोग संबंधी होना चाहिये। क्यों ? क्योंकि उसमें एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ कर नहीं सकता है वगैरह बातें आती हैं। पंचास्तिकाय में छह द्रव्यों का पूरा जो बेस है, उनका स्वरूप कैसा होता है, उनकी परिणमन व्यवस्था क्या है, सात तत्त्व क्या हैं ? उसीका उपदेश है। अभी गुरुदेवश्री के प्रवचन में जो पर्याय की बात आयी थी वह कितनी मार्मिक थी। कहते हैं कि **तथा स्व पर भेदविज्ञान करने में कार्यकारी होना चाहिये। अन्य अनुयोगसंबंधी कथन हो तो वह भी वीतरागता की पुष्टि करनेवाला** पंचास्तिकाय में लास्ट में कह दिया है कि चारों ही अनुयोगों का सार वीतरागता है। किसी अनुयोग के उपदेश का निषेध भी नहीं है। परंतु उस अनुयोग के द्वारा, उस ज्ञान के द्वारा हम भेदविज्ञान कैसे करें, यह हमें मालूम होना चाहिये। उसका उपदेश होना चाहिये। वीतरागता की पुष्टि करनेवाला और द्रव्यानुयोग के सिद्धांतों को सिद्ध करनेवाला होना चाहिये।

कोई ज्ञानी गृहस्थ जीव अपने बाल बच्चों को व्यापार धंधा, घर गृहस्थी संबंधी कुछ सलाह, उपदेशादि देता हो, समाज में किसतरह रहना चाहिये उसके बारे में सिखाता हो तो वह देशना नहीं कहलाती। देशना तो उसीको कहते हैं जो मोक्षमार्ग के लिये, आत्मकल्याण यानी आत्मा का अनुभव करने के लिये कार्यकारी हो। देशना के मूल स्रोत यानी मूल उसका ओरिजिन अरहंत भगवान हैं, उनके

उपदेशानुसार रचित शास्त्र और उनका उपदेश बतानेवाले गुरु भी देशना के स्रोत हैं - देशना देनेवाले हैं। वे तो मात्र मोक्षमार्ग का ही उपदेश देते हैं। कौन ? मुनिराज। घर में कैसे रहना, सास-बहू को कैसे रहना आदि बातें वे नहीं कहेंगे। मुनि का वह काम नहीं है। परंतु चौथे, पांचवें गुणस्थानवाले जीव अभी गृहस्थावस्था में हैं। शास्त्रस्वाध्याय करते समय वे भी मात्र मोक्षमार्ग का ही उपदेश देंगे।

शास्त्रस्वाध्याय में वे घर गृहस्थी की बात नहीं करेंगे। अन्य समय में कर सकते हैं, आपको सलाह दे सकते हैं। आप उनसे कन्सल्ट कर सकते हैं। परंतु शास्त्र का उपदेश देते समय मोक्षमार्ग का ही उपदेश देंगे। वहां दुनियादारी नहीं बतायेंगे। आत्मस्वरूप का कथन करेंगे, द्रव्यानुयोग के अनेक सिद्धान्त समझायेंगे। जैसे निमित्त-उपादान, निश्चय-व्यवहार, पांच समवाय, क्रमबद्धपर्याय, देव गुरु शास्त्र का स्वरूप, हेय ज्ञेय उपादेय तत्त्वों का स्वरूप आदि का विस्तार से वर्णन करेंगे, समझायेंगे। परंतु गृहस्थोचित यानी गृहस्थ के योग्य अन्य कार्यों में अपने कुटुंबीजनों, साधर्मियों तथा समाज के अन्य लोगों को जरूरत पड़नेपर लौकिक उपदेश भी देंगे। ऐसा ही नहीं कि केवल जैनियों को कुछ उपदेश देंगे। उनके कोई मित्र परिवार अन्य कोई हैं तो क्या उनको कोई सलाह नहीं देंगे ? बिलकुल देंगे। परंतु उसको हम देशना नहीं कहेंगे यह कह रहे हैं। उनके शास्त्रविषयक उपदेश को तो देशना कहेंगे परंतु लौकिक उपदेश को देशना कहना योग्य नहीं है। देशना किसे कहना और देशनालब्धि किसे कहना इस संबंधी और भी बातें आयेंगी।

यहां तो हम देशना संबंधी चर्चा कर रहे हैं। हमारा विषय तो देशनालब्धि है। इसलिये अभी हम नेक्स्ट पृष्ठ पर चलते हैं, पृष्ठ ८० देखो- गत पत्र में हमने देशनालब्धि संबंधी चर्चा प्रारंभ की थी। प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने से पहले देशनालब्धि होती ही है। क्या कहा ? होती ही है, बिना देशना के किसीको सम्यग्दर्शन नहीं होगा। वह आवश्यक है। दूसरा नियम यह है कि देशना ज्ञानी जीवों से ही प्राप्त होनी चाहिये या इसतरह कहो कि ज्ञानी के उपदेश को ही देशना कहते हैं। तुमने पूछा है कि अभी इस पर प्रश्न चर्चा शुरू हो जायेगी। 'तत्त्वार्थसूत्र में सम्यग्दर्शन के दो भेद बताये हैं-' अभी थोड़ा शास्त्र का स्वाध्याय करनेवाले हैं न, तो ऐसा पूछेंगे। 'निसर्गज और अधिगमज सम्यग्दर्शन। दूसरे के उपदेश से जो प्राप्त होता है उसे अधिगमज कहा है यानी उसको किसी ज्ञानी का

उपदेश मिला है। बाद में तत्त्वनिर्णय किया तो उसको कहेंगे अधिगमज सम्यग्दर्शन। और किसीके उपदेश बिना ही जो प्राप्त हो वह निसर्गज कहलाता है। यह बेटी पूछ रही है। इसलिये देशनालब्धि की आवश्यकता सबको नहीं होती होगी ?

प्रश्न क्या है ? शास्त्रों में सम्यग्दर्शन के दो टाइप बताये हैं- अधिगमज और निसर्गज। निसर्गज सम्यग्दर्शन की बात शास्त्र में बताते हैं इसलिये सबको देशना की आवश्यकता नहीं होती होगी ? तो कहते हैं सुनो, इस भव में किसीको ज्ञानी जीव द्वारा उपदेश यानी देशना की प्राप्ति नहीं हुयी हो और उसे सम्यग्दर्शन हो जाये, तो समझना कि उसे पूर्वभव में नियम से देशना मिली है। क्या कहा ? इस भव में कोई ज्ञानी नहीं मिला इसलिये उसको निसर्गज कहेंगे। परंतु पूर्वभव में अवश्य मिली होगी। इस भव में देशना नहीं मिली है इसलिये उसे निसर्गज कहते हैं और जिसको इसीभव में देशना मिली हो तो उसके पश्चात् होनेवाले सम्यग्दर्शन को अधिगमज सम्यग्दर्शन कहते हैं। अधिगमज यानी ज्ञान होना। किसीके द्वारा उसको ज्ञान हुआ और बाद में उसने सम्यक्त्व प्राप्त किया। परंतु देशना बिना ही सम्यग्दर्शन हो जाये ऐसा सर्वथा निसर्गज सम्यग्दर्शन होता ही नहीं। बिलकुल यह डंके की चोट - आगम का वाक्य है। ख्याल में आयी बात ? बिना देशना के सम्यग्दर्शन होता ही नहीं- प्रथमोपशम सम्यक्त्व की बात चल रही है। सादि मिथ्यादृष्टि को वेदक सम्यक्त्व इमीजिएट हो जावे उसकी बात नहीं हो रही।

नारकी और देवों में अवधिज्ञान पाया जाता है। अभी जो मिथ्यादृष्टि नारकी और देव हैं उनके अवधिज्ञान को क्या कहेंगे ? विभंगज्ञान-कुअवधिज्ञान। अवधिज्ञान द्वारा वे पूर्व की देशना को जानते हैं। मनुष्य और तिर्यचों में जातिस्मरण ज्ञान से भी जातिस्मरण यानी पूर्वभव की कुछ याद आना उसको जातिस्मरण कहते हैं। पूर्वभव की देशना याद आती है अथवा पूर्वभव में सुना हुआ, अभ्यास किया हुआ उपदेश धारणा ज्ञान में होगा जिसको संस्कार कहते हैं। लोग कहते हैं कि अभी संस्कार तो डालो, आगे काम आयेगा। परंतु संस्कार में संतुष्ट होने की बात ठीक नहीं है। तो उसके कारण अगले भव में भी सम्यक्त्व हो सकता है। अगले भव में यानी वह हिंदीवाला अगला। नहीं समझे ? गुजराती में 'अगले' पूर्व को कहते हैं। उनका अगला यानी प्रीहियस। हिंदीवाला अगला यानी नेक्स्ट। यहां नेक्स्टवाली बात है। नेक्स्ट भव में यानी जिस भव में देशना मिली है उसके अगले भव में, नेक्स्ट भव में। देशना

तीन भव तक चलती है, अगर संज्ञी पंचेन्द्रियपना बना रहेगा तो। **उसके शब्द याद न भी हो तो भी तत्त्वों का भाव ख्याल में आता है।** देखो, कोई तिर्यच है। उसके कोई शब्दों में, कोई भाषा में तो याद नहीं है। परंतु उनको कौनसा भाव ख्याल में आया है ? राग जुदा है और जाननेरूप कार्य जुदा है ऐसा भावभासन उनको वहां भी हो सकता है। वहां शब्दों की तो कोई बात नहीं, उनका कोई शाब्दिक ज्ञान भी नहीं है। वहां तो भाव उनके ख्याल में आते हैं यह कहना है।

उनके तत्त्वों का भाव ख्याल में आता है। **और अंतर्मुख विचारों में तत्त्वों का भावभासन होने लगता है।** शास्त्र पढ़ते-पढ़ते किसीको सम्यग्दर्शन नहीं होगा। हां, पढ़ते हुये, पढ़ना छोड़कर स्वरूप में गुप्त हो जावे, विचार करने लग जाये तब हो सकता है। **उसमें बाह्य निमित्त** पहले अंतरंग हेतु, अंतरंग निमित्त कहा था। किसको ? ज्ञानी को। अब यह बाह्य निमित्त की बात है। बाह्य निमित्त **जिनबिंबदर्शन, स्वर्गों में ऋद्धि, वैभव आदि देखना** ऐसा विचार करता है अरे, इतनी रिद्धि किसका फल है ? उसके बारे में सोचता है। अभी मिथ्यादृष्टि है, फिर भी उसने तत्त्वों का श्रवण, ग्रहण वगैरह किया होगा। कोई उपदेश पाया होगा। कुछ शुभभाव भी किये होंगे। इसको वह याद आता है कि इसका ऐसा स्वरूप है। **नरकों में तीव्र वेदना का होना** हमें भगवान की याद कब आती है ? संकट में, हां, तो वहां तीव्र वेदना के काल में उनको वह उपदेश याद आता है। **मनुष्यों में धर्मश्रवण, धर्मस्मरण, ग्रंथों का पढ़ना या उपदेश सुनना** हो सकता है। ये किसमें लिये ? बाह्य निमित्तों में।

अभी ये सब ऑडिओ-व्हिडिओ सीडी हैं, सबको बाह्य निमित्त में डालो। अंतरंग निमित्त मिला होगा, कार्य हो जायेगा। डोंट वरी यह कहते हैं, है न। ये सब बाह्य में चले जायेंगे। **इसको बाह्य देशना कहा या देशना कहा और देशनालब्धि में जीव उसका श्रवण, श्रवण यानी सुनना ग्रहण यानी समझना, धारण करता है** यानी उसको वह याद रहता है। **उस पर विचार करता है, निर्धारण करता है।** धारण यानी केवल याद रहे। निर्धारण का अर्थ क्या है ? उसने अपनी बुद्धि के द्वारा वह निर्णय किया कि पहले मैंने ऐसा समझा था और अभी यह तो ऐसा कह रहे हैं। इसमें से सही क्या हो सकता है ? बारंबार उसका विचार करके निर्धारण यानी वह सही क्या है उस निर्णय पर पहुंचा उसको कहेंगे निर्धारण। यह ऐसे ही है उसको कहेंगे निर्धारण। **केवल सुनना देशनालब्धि नहीं कहलाती।** मात्र सुन लिया तो देशना मिली कि नहीं मिली ?

तो कहते हैं मात्र सुन लिया, समझा नहीं है, उसरूप होकर उसका आचरण नहीं हुआ, परिणमन नहीं हुआ तो उसको सुनना नहीं कहेंगे।

यदि तुम रोहित से कहोगी कि जा बेटा पानी लेकर आ। वह खड़े-खड़े तुम्हारी ओर देखता ही रहेगा तो तुम उसको दुबारा कहोगी। फिर भी नहीं सुना तो डांटोगी और पूछोगी, क्या तुमने नहीं सुना ? बच्चों को कहते हैं न, अरे ! हमने बताया आपने नहीं सुना ? सुनकर यदि वह पानी लेकर आता है तो ही हम कहेंगे कि उसने सुना। तुम्हारे कहे अनुसार बच्चे आचरण करेंगे तो तुम कहती हो कि मेरा राजा बेटा कितना अच्छा है, मेरी सब सुनता है। तो हम भगवान को ऐसा कहने का मौका देते हैं क्या, कि ये हमारे श्रावक कितने अच्छे हैं, हमारी सब सुनते हैं। क्या हमने कभी सोचा है कि हम भगवान की या आचार्यों की कितनी भी बातें सुनते हैं ? देखो, आचार्यों की बात छोड़ो। गुरुदेव हर प्रवचन में 'हे भगवान आत्मा' करके हमें पुकार रहे हैं। तो वह भगवान कितनी बार याद आता है और दस, पंद्रह, बीस साल पहले किसीने कोई गाली दी थी, हमारा इंसल्ट किया था वह अंदर कितना चुभता है ? अंदर अपने को क्या लगता है। अपने को भगवान कहकर बुलाये वह ज्यादा याद आता है कि किसीने इन्सल्ट किया था वह याद आता है ? हां, वह ज्यादा चुभता है न ? अंदर तक गया है, घुस गया है। इसने मेरा इन्सल्ट किया।

क्या कहा ? क्या हमने कभी सोचा कि हम भगवान की या आचार्यों की कितनी बातें सुनते हैं ? तुम्हारे बच्चों के दृष्टान्त से तुम समझ गयी होंगी कि केवल कानों से सुनायी देने को सुनना नहीं कहते। उसे समझना भी आवश्यक है, याद रखना भी आवश्यक है, उस पर विचार करना-उसका निर्णय करना और उसरूप परिणमन करना आदि सारे अंग आवश्यक हैं। जैसे किसीने देव गुरु शास्त्र का स्वरूप समझा, शास्त्र में से सुना। सुना तो उसने सोचना चालू किया। वह क्या समझता था ? वह भगवान के पैर छूता था। फिर उनको नमस्कार करता था। वे क्या किसीका कुछ भला-बुरा कर सकते हैं कि नहीं कर सकते ? तो जब उसे सही समझ में आया; पहले देव-कुदेव जो-जो दिखे उनको नमस्कार करता था ऐसा चलता था। पहले करता था, अभी सही समझ में आया तो कुछ चेंज हुआ कि नहीं हुआ ? अगर नहीं हुआ तो क्या कहेंगे ? परिणमन नहीं हुआ। कहते हैं कि परिणमन करना आदि सारे अंग आवश्यक हैं। उसके बिना हम कैसे कह सकते हैं कि इसने

भगवान का उपदेश सुना ?

यह द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय की बात हमने बोल दी थी कि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीव के भाषा और वचनयोग तो है। उनके वचन है परंतु उनके कर्णेन्द्रिय नहीं है। वे सुन नहीं सकते यानी बोलते हैं सुनते नहीं हैं। हम भी भगवान के सामने क्या करते हैं ? बोलते हैं, उनकी पूजा गाकर सुनाते हैं, उनकी जय-जयकार बोलते हैं परंतु उनका उपदेश कभी नहीं सुनते। तो हमारी भी परिस्थिति कैसी हो गयी ? कर्णेन्द्रिय होकर भी नहीं सुनने के बराबर हो गयी। आगे पृष्ठ ८२- **देशना में तो निमित्तरूप से सच्चे देव, गुरु, शास्त्र आदि होते हैं यह नियम है। सच्चे की कंडिशन डाली है यहां। परंतु देशना तभी कहलायेगी जब कोई जीव देशना का श्रवण करेगा यानी सुनेगा, उसका ग्रहण करेगा अर्थात् समझेगा, उसे याद रखेगा अर्थात् धारणा में लेगा।**

यदि जो सुना वह समझ में ही नहीं आया तो कुछ कार्यकारी नहीं है। उसीप्रकार समझ में तो आया परंतु तत्काल विस्मरण भी हुआ तो क्या काम का ? जो सुना, समझा उसे स्मरण में रखकर उस पर विचार करना। आप कहेंगे घंटे भर सुना, उनको कुछ स्मरण में नहीं आया। हां, परंतु पुस्तक लेकर बैठो न ? दो लाइन पढ़ो, उसमें तत्त्व की जो बात है उस पर गहराई से विचार करो। तत्काल पढ़ा तो तत्काल स्मरण में रह सकता है न ? उस पर भी विचार करो। तो कहते हैं कि जो सुना, समझा उसे स्मरण में रखकर उस पर विचार करना, **चिंतन मनन करना और स्वयं युक्ति और न्याय से।** युक्ति क्या होती है ? नय, निक्षेप, प्रमाण से निश्चित करना यानी लॉजिकली हमें उस पर विचार करना है। युक्ति यानी कोई ट्रिक-त्रिक की बात नहीं है। लॉजिक, न्याय से, **तर्क की कसौटी पर कसकर उन तत्त्वों की सच्चाई का निर्णय करना यही तो महत्व की बात है।** केवल सुनने को देशना नहीं कहा। हमें ज्ञानी मिल गये, हमने ज्ञानी के दर्शन किये। अरे, परंतु उनको देखने से कुछ नहीं होगा। उनको सुना। तो सुनने से क्या होगा ? समझना भी आवश्यक है। समझकर बारंबार स्वयं विचार करना भी आवश्यक है। तभी वह देशनालब्धि होगी, तब तक नहीं।

जैसे सबने कहा ये ज्ञानी हैं। हम सब चले गये और ज्ञानी को देख लिया। मिल गया न हमें ज्ञानी का समागम ? कहते हैं नहीं। **निर्णय होने पर उसरूप परिणमन भी होता है।** निर्णय तभी कहेंगे जब परिणमन हो रहा है। यदि सच्चे देवादि का,

स्वरूप तो जाना कि यही उनका स्वरूप होना चाहिये और फिर भी कुदेवादि के पीछे दौड़ते चले जाते हैं या उनके बारे में अभी भी पहले जैसी क्रिया चल रही है तो समझना अभी निर्णय हुआ ही नहीं है। जैसे सच्चे देव, गुरु, शास्त्र का स्वरूप सुनता है, सर्वज्ञता का स्वरूप सुनता है तो विचार करता है और अपनी पूर्व मान्यताओं के साथ मिलान करके देखता है कि मैं तो आज तक ऐसा मानता आया था। अब मुझे सच्चे स्वरूप का पता चल गया है। यदि निर्णय हो गया हो तब वह कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को छोड़ देगा, उनकी आदर, भक्ति, विनय छूट जायेगी।

यहां यह नहीं कह रहे हैं कि बाहर जो कुछ हो रहा है उसको देख-देखकर द्वेष करते जाओ, उनकी निंदा करो। यह बात नहीं हो रही है। यहां अपने कल्याण की बात है। हमें किससे हमारा कल्याण होगा उसका निर्णय करना है। यहां द्वेष करने की बात हो ही नहीं रही है। अगर धर्म के नाम पर भी द्वेष बुद्धि बढ़ जाती है तो हमारा क्या कल्याण हुआ ? पहले उनके पीछे राग करते थे, अभी द्वेष करने लगे हैं। यहां तो हमें उससे हटना है, हमें जहां से सही उपदेश मिलता है उसको हमें अंगीकार करना है।

सच देखा जाये तो देशना तो देशनालब्धि में निमित्त है। निमित्त-नैमित्तिक संबंध एक ही समय में होता है। देशना किसके लिये निमित्त है ? देशनालब्धि के लिये। फिर भी देशना को सम्यग्दर्शन का निमित्त कहते हैं यह उपचार है क्योंकि सम्यग्दर्शन बाद में होनेवाली प्रक्रिया है। अभी तो देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि, करणलब्धि वह सब होकर सम्यग्दर्शन होनेवाला है। परंतु यह नियम है कि बिना देशना के किसीके सम्यग्दर्शन नहीं होनेवाला है। इसलिये देशना को सम्यक्त्व का नियमरूप निमित्त कह देते हैं। फिर से- देशना तो देशनालब्धि में निमित्त है। **परंतु उसके बिना प्रथमोपशम सम्यक्त्व हो ही नहीं सकता इसलिये स्थूलरूप से-उपचार से देशना को या देशना जिनके द्वारा प्राप्त होती है उन सच्चे देव, गुरु, शास्त्र को सम्यग्दर्शन का निमित्त कह दिया जाता है।** कह देना उसको उपचार कहते हैं। परंतु एक समय में होनेवाले कार्य में निमित्त-नैमित्तिक संबंध लगता है। उसकी चर्चा हम करेंगे।

अभी तो अपना समय होने को आया है। देशनालब्धि और उस संबंधी प्रश्नों को लेकर उसकी यहां पुस्तक में चर्चा की हुयी है, जो हम दोपहर में आगे बढ़ायेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

१५. देशनालब्धि - विशेष चर्चा - १

सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र ने लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पूर्व में जीव और कर्मों की पर्यायों का जो विशिष्ट क्रम है, जो कुछ विशेषतायें हैं, उनकी पांच लब्धि के स्वरूप में हम यहां चर्चा कर रहे हैं। क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि ये पांच लब्धि के नाम हैं। करणलब्धि के अनंतर यानी उसके इमीजिएट नेक्स्ट समय में औपशमिक सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

अपना देशनालब्धि का प्रकरण चल रहा है। क्षयोपशमलब्धि में हमने देखा था ज्ञानावरणादि समस्त अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग प्रतिसमय अनंतगुणा हीन होते-होते उदय में आता है - यह हुयी क्षयोपशमलब्धि। सभी अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग घटता है, परंतु रागद्वेष में कौनसा कर्म निमित्त है? मोह-रागद्वेष में दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय; उनके अनुभाग का उदय भी घटता चला जाता है। जीव के कषाय भी घटते हैं और उसके फलस्वरूप साता आदि शुभ प्रकृतियों का बंध होता है। क्षयोपशमलब्धि और विशुद्धिलब्धि का स्वरूप हमने देखा था। ऐसे जीव को, जिसको अभी देशना नहीं मिली है और केवल ऐसा होता रहता है तो उसको हम कोई लब्धि भी नहीं कहेंगे। सहजरूप से कर्मों का अनुभाग मंद होना और जीव के शुभभावरूप ऐसी प्रवृत्ति होना तो होता रहता है।

शुभ परिणाम होते हैं तो उसके पुण्य प्रकृतियां बंधती रहती हैं। परंतु अभी हम ऐसा जीव लेते हैं कि जिसको आगे चलकर देशना की प्राप्त होती है। देशना में हमने क्या देखा था ? उपदेश को देशना कहते हैं। कौनसा उपदेश ? *श्रोता: मोक्षमार्ग संबंधी।* मोक्षमार्ग संबंधी और कंडिशन थी ज्ञानी के द्वारा वह उपदेश होना चाहिये। जिन्होंने स्वयं आत्मानुभूति की है, ऐसे ज्ञानी के उपदेश की कंडिशन अनेक ग्रंथों में बतायी है। उस पर बहुत सारे प्रश्न खड़े होते हैं, उसीकी हम यहां चर्चा कर रहे हैं। यहां देशना और देशनालब्धि में क्या अंतर है ? ज्ञानी के उपदेश को देशना कहेंगे और देशनालब्धि देशना सुननेवाले जीव के ज्ञान गुण की पर्याय है। लब्धि हुयी यानी उसको प्राप्ति हुयी। प्राप्ति हुयी यानी क्या ? जो उपदेश था उसको देशना कहा। जीव ने उपदेश सुना, समझा, फिर याद रखा, उस पर बारंबार विचार किया, उसमें तत्त्वविचार चलेगा, यह

सब देशनालब्धि के अंतर्गत आता है। जीव के ज्ञान में तत्त्वों को जाननेरूप कार्य हो रहा है, तब उसको देशना की प्राप्ति, उसकी लब्धि हुयी कहलायेगी। इसी बात को देखते हुये हम आगे बढ़ेंगे।

हमने यह भी देखा था कि देशना तो देशनालब्धि में निमित्त है। फिर भी सम्यग्दर्शन होने के लिये वह आवश्यक पूर्व अवस्था है, इसलिये उसको सम्यग्दर्शन का निमित्त कह देते हैं। वैसे अगर देखें तो किसी भी कार्य का निमित्त उसी समय में वहां उपस्थित रहता है। निमित्त-नैमित्तिक संबंध एक समय का है, ऐसा कभी नहीं होता है कि पूर्व में निमित्त वहां आकर बैठा है और बाद में कार्य हुआ हो। कार्य हुआ उसी समय किसी अन्य द्रव्य की पर्याय वहां हो रही है जिस पर अनुकूल होने का आरोप आता है। यहां जिस समय कार्य हुआ, कौनसा कार्य हुआ ? देशनालब्धि। उस समय उसका निमित्त कौन था ? देशना उसका निमित्त था। यह निमित्त-नैमित्तिक संबंध एक ही समय में होता है। यह बात हम अभी यहां पढ़ेंगे।

पृष्ठ ८२, नीचे से दूसरा पॅरेग्राफ- **निमित्त-नैमित्तिक संबंध एक समय में होनेवाले दो कार्यों में पाया जाता है।** दो कार्यों का अर्थ क्या है ? दो पर्यायों में। मान लेते हैं ए और बी दो द्रव्य हैं। ए द्रव्य अपना परिणमन कर रहा है, वह ए द्रव्य का कार्य हुआ; बी द्रव्य अपना परिणमन कर रहा है, वह बी द्रव्य का कार्य हुआ। हम नैमित्तिक किसको कहेंगे ? कार्य को कहेंगे कि द्रव्य को कहेंगे ? *श्रोता: कार्य को।* कार्य को। निमित्त किसको कह रहे हैं ? द्रव्य को कह रहे हैं कि कार्य को ? *श्रोता: वह भी कार्य ही है।* द्रव्य को उपचार से कहते हैं, पर उसका कार्य है। जैसे हमारा हमेशा का उदाहरण कौनसा ? *श्रोता: घड़े का।* घड़ेवाला। घड़ा यह कार्य हुआ, उसका उपादान तो मिट्टी है, हमें निमित्त की ओर से बात करनी है। उसका निमित्त कौन है ? कुम्हार। कौनसा कुम्हार ? जो भोजन कर रहा है कि जो सो रहा है ? जिस समय वह घड़ा बना रहा है, घड़ा बनाने में प्रवृत्त ऐसा जो कुम्हार है, उसको हम निमित्त कहते हैं। किसी द्रव्य को निमित्त कहना अलग बात है, परंतु यथार्थ में उस द्रव्य की वह पर्याय निमित्त है। जो निमित्त को ढूंढने की कोशिश करते हैं, वे द्रव्य को तो ढूंढ लेते हैं, पर उसकी विशिष्ट पर्याय क्या परिणमाकर ला सकते हैं वहां ? ख्याल में आती है न बात ? निमित्त-नैमित्तिक संबंध सहज होता है एक बात और परद्रव्य की पर्याय है जो निमित्तरूप होनेवाली है वह कोई अन्य द्रव्य कैसे ला सकता है ? अब हम पढ़ते हैं -

निमित्त-नैमित्तिक संबंध एक समय में होनेवाले दो कार्यों में पाया जाता है। दो भिन्न-भिन्न द्रव्यों के कार्य अपने-अपने में हो रहे हैं, अपनी निज शक्ति से यानी उपादान से होते हैं। एक द्रव्य के कार्य में वहां दूसरे द्रव्य की उपस्थिति तो है, उसका अपना परिणामन अपने में चल रहा है परंतु हमें लगता है कि उसके आने से इस द्रव्य का कार्य हुआ। **एक तो अनुकूल भासित होनेवाले अनुकूल भी नहीं कहा, अनुकूल भासित होते हैं। निमित्तरूप परद्रव्य का कार्य** कौनसे दो कार्यों में निमित्त-नैमित्तिक संबंध है ? अनुकूल भासित होनेवाले निमित्तरूप परद्रव्य का कार्य **और नैमित्तिक कार्य। इन दोनों का काल एक ही होता है।** एक ही समय में दोनों वहां है। **इसे शास्त्र में कालप्रत्यासत्ति कहा जाता है।** प्रत्यासत्ति यानी नज़दीकता, एक ही समय में ये दोनों हैं। इसीको शास्त्र की भाषा में कालप्रत्यासत्ति कहते हैं। **दो भिन्न कार्यों का काल एक ही होना और उनमें निमित्त-नैमित्तिक संबंध पाया जाना इसे कालप्रत्यासत्ति कहते हैं।** वैसे हर समय में अनंत द्रव्य अपना-अपना कार्य कर रहे हैं। हम एक कार्य के लिये अनंतों को निमित्त नहीं गिनेंगे। उसमें जो अनुकूल भासित होता है, उसको निमित्त कहेंगे। वहां निमित्त नाम का कोई कायमी पदार्थ तो नहीं है।

जैसे हमने पूछा था सम्यग्दर्शन प्राप्त करने में आदिनाथ भगवान् उत्कृष्ट निमित्त थे कि नहीं थे ? सम्यग्दर्शन प्राप्त करने में तीर्थंकर उत्कृष्ट निमित्त होंगे कि नहीं होंगे ? नहीं होंगे ? *श्रोता: जिसने प्राप्त किया है, उसके लिये कहेंगे।* हां ! जिसने प्राप्त किया है उसके लिये कहेंगे, जिसने प्राप्त नहीं किया उसके लिये नहीं कहेंगे। जो समवसरण में दिव्यध्वनि सुनकर भी मिथ्यात्वी ही रहता है या गुस्से से निकल जाता है; मारीचि की कथा सबको मालूम है, उसके लिये दिव्यध्वनि को निमित्त भी नहीं कहेंगे क्योंकि वहां उसका कार्य नहीं हुआ। **देशनालब्धिरूप कार्य में देशना निमित्तरूप होती है।** हमें मालूम है निमित्त से कार्य नहीं होता। फिर भी जहां कार्य होता है, वहां निमित्त की उपस्थिति जरूर होती है यानी उचित निमित्त की उपस्थिति में कार्य होता है, उचित शब्द लगाया। परंतु हम चाहे वह निमित्त लाना है, हटाना है ऐसी कोई बात वहां नहीं हो सकती। **सम्यग्दर्शनरूपी कार्य तो उसके पश्चात् होता है।** पश्चात् यानी प्रायोग्यलब्धि के बाद करणलब्धि और उसके बाद में सम्यक्त्व होता है।

हम बार-बार देशना को देशनालब्धि का निमित्त कह रहे हैं। देशनालब्धि तो ज्ञान की पर्याय है। अपनी तीव्र रुचि तथा अपना स्वरूप जानने की तीव्र

जिज्ञासा हो और देशनालब्धि की पर्याय अपनी योग्यता से प्रकट होने का समय आये तो ज्ञानी की देशना भी सहजरूप से निमित्त के रूप में मिल जाती है। हमें ऐसा निमित्त नहीं मिला है तो क्या समझना ? लोग ऐसा पूछते हैं- 'हमें यह बात आज तक किसीने क्यों नहीं बतायी ?' हां, जब तत्त्वज्ञान की बात आती है तब लोगों को लगता है कि हम कितने दिन से कोशिश कर रहे हैं, अरे ! अभी तक हमें किसीने यह क्यों नहीं समझाया ? उसका अर्थ क्या है ? आज तक समझने की योग्यता यहां नहीं थी तो कोई समझानेवाला भी नहीं मिला। क्या दुनिया में कोई समझाता नहीं था ? क्या कोई ज्ञानी नहीं थे ? समझ में आया ? हमारी ज्ञान की पर्याय हर समय अपनी स्वयं की योग्यता से अपने में होती है। यहां समझने का काल आयेगा तो सामने समझानेवाला या पुस्तक या अन्य जो कुछ है वह स्वयमेव निमित्तरूप से वहां मिल जायेगा।

परंतु निमित्त के कारण ज्ञान नहीं होता। निमित्त अवश्य होता ही है, परंतु निमित्त से परद्रव्य में कुछ हेरा-फेरी, कुछ कार्य, कुछ असर, कोई प्रभाव - कुछ भी नहीं होता। साक्षात् तीर्थकर भगवान की वाणी सुन रहे हैं, वह निमित्त है; तो उसके निमित्त से किसीको सम्यग्दर्शन हुआ। तो वाणी से सम्यग्दर्शन हुआ कि नहीं हुआ ? नहीं, वाणी से नहीं हुआ। वाणी निमित्त थी कि नहीं थी ? बिलकुल थी। पर वाणी के कारण नहीं हुआ। ज्ञान की पर्याय में उसे जाननरूप कार्य हुआ - जो देशनालब्धि हुयी, वह ज्ञान की पर्याय अपने से हुयी, अपने में हुयी है और सामने वाणी की निमित्तरूप से उपस्थिति है। परंतु निमित्त ने उस जीव के ज्ञान में कुछ हेरा-फेरी नहीं की। दूसरी बात- **इतना ही नहीं, देव-शास्त्र-गुरु की ओर आदर और राग होता है** तीर्थकर भगवान को देखकर उनके प्रति आदर, अहोभाव, शुभराग होगा कि नहीं होगा ? बिलकुल होगा। वह राग हुआ, उनके प्रति भक्ति के भाव हुये तो भक्ति के भाव के कारण यहां सम्यग्दर्शनरूपी या देशनालब्धिरूपी कार्य होगा कि नहीं होगा यह सोच-समझकर निश्चित करना है। *श्रोता: नहीं होगा।* ख्याल में आती है बात ? यहां यही कह रहे हैं कि निमित्त के कारण तो ज्ञान नहीं है, परंतु देव-शास्त्र-गुरु की ओर आदर और राग होता है **परंतु उस राग के कारण भी ज्ञान नहीं होता।**

प्रवचनसार गाथा ३५ की टीका के ऊपर पूज्य श्री कानजीस्वामी ने प्रवचन में कहा है- 'सामने तीर्थकर आचार्यादि हैं इसलिये ज्ञान हुआ, उपदेश सुना - दिव्यध्वनि सुनी इसलिये ज्ञान हुआ ऐसा नहीं है। गुरुदेवश्री की विशेषता थी

- पहले ऐसा बताते थे और बाद में उसका निषेध करते थे - ऐसा है नहीं। **वाणी के कारण मुझे ज्ञान हुआ**, वाणी तो भाषावर्गणा है, जड़ है। **जड़ के कारण ज्ञान हुआ माननेवाला अपने चैतन्य स्वभाव का इनकार करता है, घात करता है।** यानी ज्ञान को इतना पराधीन माना कि वाणी जो जड़ है, पुद्गल है उसके कारण ज्ञान हुआ माना, परंतु ऐसा नहीं है। वहां वाणी का निमित्त होगा, फिर भी उसके कारण ज्ञान हुआ ऐसा नहीं है। जहां निमित्त-नैमित्तिक का बिलकुल सही निर्णय हो जावे न, तो अपनी बहुत सारी गुत्थियां सुलझ जाती हैं। निमित्त, निमित्त-नैमित्तिक संबंध, उपादान के भेद-प्रभेद आदि बहुत बड़ा और महत्व का विषय है, बहुत महत्व का सिद्धान्त है।

क्या कहते हैं ? **निमित्त से कार्य नहीं होता, फिर भी विवक्षित कार्य में उचित निमित्त ही होगा, चाहे जैसे निमित्त की उपस्थिति में कार्य नहीं होगा।** निमित्त की ओर देखकर हम कार्य का अंदाजा लगा सकते हैं कि हां, यहां यह कार्य हो सकता है या नहीं हो सकता। जैसे कोई कुदेवादि की श्रद्धा चल रही है, मान्यता में कोई भ्रमणा चल रही है, अभी ज्ञान में कुछ कन्फ्यूजन चल रहा है और ऐसे में वहां सम्यग्दर्शनरूपी कार्य है ऐसा हम कहेंगे ? नहीं कहेंगे। किसीके सम्यग्दर्शन की पर्याय के बारे में हमें मालूम नहीं है, परंतु उसका जो उपदेश है, उसकी जो कोई मान्यतायें हैं अगर हम उनकी ओर देखते हैं तो हमें पता चलता है कि ऐसी अवस्था में वहां सम्यग्दर्शन हो सकता है या नहीं। **देशनालब्धि में सर्वज्ञ भगवान की - जिनेन्द्र भगवान की वाणी ही निमित्त होगी। वह वाणी** यानी मूल में उसके कर्ता कौन है ? *श्रोता: सर्वज्ञ भगवान।* सर्वज्ञ भगवान। वह वाणी तीर्थकर या अन्य केवली की हो सुबह किसीने प्रश्न पूछा था न, अकेले तीर्थकर को क्यों लिया ? अन्य केवली भी हो सकते हैं **या उनकी दिव्यध्वनी के अनुसार अन्य आचार्यों ने या अन्य सम्यग्ज्ञानी जीवों ने बतायी हो, वही देशना कहलायेगी। अन्यमति की कल्पनायें और उपदेश तो मोक्षमार्ग में तीन काल में काम आनेवाला नहीं है।** क्योंकि वह तो भ्रमणा है न।

देखो, जिन्होंने यह बात अपनायी है, आत्मानुभूति की है और स्थिरता द्वारा अरिहंत दशा प्राप्त की है, उनके द्वारा ही हमें मूल उपदेश मिला है। उनके द्वारा जो बात दिव्यध्वनि में आयी है, वही परंपरा से आचार्यों के द्वारा आज हम तक पहुंची है, उसीको हम निमित्तरूप से कह सकते हैं। **यहां निमित्त का ज्ञान कराते हैं** यानी निमित्त होता है। जिनवाणी में जो निमित्त की चर्चा आती है, वहां निमित्त का ज्ञान

कराया जाता है। **परंतु उनका आदर छुड़ाते हैं**, आदर छुड़ाते हैं यानी निमित्त से कार्य होता है यह मान्यता छुड़ाते हैं, **निमित्ताधीन दृष्टि छुड़ाते हैं**। दृष्टि यानी मान्यता; हमारा कार्य अभी तक क्यों रुका है ? अरे हमें निमित्त नहीं मिला, क्या करें, हम कहां खोजें ? यह सब क्या है ? निमित्ताधीन दृष्टि। जिसकी तैयारी होती है - जिज्ञासा है, तीव्र रुचि है और उसको यह मार्ग ना मिले यह बात नहीं हो सकती।

जिन्हें निमित्त-नैमित्तिक संबंध की सहजता का पता नहीं है, यह सहज होते हैं, हमारे लाने से कोई निमित्त नहीं बनते और टालने से टलते भी नहीं है। अब इसके लिये जिनागम में कितनी सारी बातें प्रसिद्ध हैं। द्वारका कब जलेगी ऐसा प्रश्न आया था, किसको ? नेमिनाथ भगवान के समवसरण में किसीके मन में प्रश्न आया - यह सोने की द्वारका है, कब तक रहेगी ? क्या होगा ? तो दिव्यध्वनि में क्या आया ? पूरे निमित्त सहित सब कथन आ गया कि बारह साल बाद यादव राजकुमार मद्य प्राशन करके द्वीपायन मुनि पर उपसर्ग करेंगे और उनके निमित्त से द्वारका जल जायेगी। सबने उन निमित्तों को हटाने की कितनी कोशिश की। यादव राजाओं का राज्य था तो उन्होंने पूरे राज्य में से सारी सामग्री जिससे मद्य बनता था, उसको खाइयों में फिकवा दी, मद्यबंदी की। द्वीपायन मुनि भी चले गये वहां से। उन्होंने सोचा हम द्वारका छोड़कर चले जायेंगे, हम यहां रहेंगे ही नहीं तो कौन जलायेगा ? तो बारह साल के बाद क्या हुआ ? *श्रोता: अधिक मास*। हां, अधिक मास आया द्वीपायन मुनि उसको गिनना भूल गये। बारह साल हो चुके, अभी द्वारका कैसी है जाकर देखें ऐसा उनको सहजरूप से विकल्प आया, तो उन्होंने द्वारका की ओर विहार किया।

यहां क्या हुआ ? यादवों के सारे राजकुमार पिकनिक मनाने गये थे, रास्ता भूल गये और जंगल में भटकते-भटकते प्यास लगी तो पानी की तलाश करते हुये वहां पहुंचे जहां खाइयों में मद्य की सामग्री डाली गयी थी, वहां के पानी में वह सड़ गल गयी थी और उसकी मदिरा बन गयी थी। पानी समझकर उन्होंने पी लिया तो नशा चढ़ गयी। आते-आते उन्हें द्वीपायन मुनि दिख गये। दिख गये तो क्या किया ? अरे ! इसके कारण द्वारका जलेगी तो पत्थर उठा-उठाकर मारना चालू कर दिया। वे भी भावलिंगी संत थे, क्योंकि इसके बिना तेजस समुद्घात नहीं होता। वह छठें गुणस्थानवर्ती को ही हो सकता है। ऐसा नहीं कि वे केवल बाह्य में नग्न दशा लेकर बैठे थे। कोई भी मुनिराज थोड़े ही गुस्सा करना चाहेंगे ? परिणाम ऐसे हुये कि उनको इसतरह से क्रोध आ गया

कि बायें बाहु में से तेजसशरीर निकला और फैलकर पूरी द्वारका आदि सबको जलाकर वापस मूल शरीर में आया और उस शरीर को भी भस्मसात किया और वे मुनि मिथ्यादृष्टि होकर भवनवासी में अग्रिकुमार में जाकर उत्पन्न हो गये।

इसतरह से यह होनेवाला था, सर्वज्ञ की वाणी में इसकी आगाही हो गयी थी, इसको टालने के लिये सभी उपाय किये गये थे, परंतु यह वैसा ही और उसी निमित्त के द्वारा हुआ। इसे निमित्त से हुआ ऐसा भी नहीं कहेंगे। वहां द्वारका नगरी की जलने की उस प्रकार की योग्यता थी तो अपने समय पर वह जली और निमित्त भी वही हुआ। ज्ञान में तो जानने की सामर्थ्य है, केवलज्ञानी ने पहले जाना और उनकी वाणी में आया। यादव राजाओं को अभिमान हुआ कि नहीं-नहीं हम उसको टाल कर दिखायेंगे। यह निमित्त-नैमित्तिक संबंध सहज होता है। देखो- **जिन्हें निमित्त-नैमित्तिक संबंध की सहजता का पता नहीं है ऐसे कितने ही जीवों को प्रश्न उठता है कि 'हमें ज्ञानी की देशना प्राप्त करनी है यही प्रश्न है न सबका ? तो सामनेवाला व्यक्ति ज्ञानी - सम्यग्दृष्टि है यह हम कैसे पहचानेंगे ?'** सबका प्रश्न है कैसे पहचानना ? उनके कोई सींग आते होंगे ? कुछ तो चिन्ह होते होंगे कि जिनके द्वारा सम्यग्दृष्टि को पहचाना जाये। **मिथ्यात्वी जीव को ज्ञानी की सच्ची पहचान हो नहीं सकती।** क्योंकि वह तो कषाय से परिचित है, वीतरागता की उसे कोई मालूमात नहीं है और उसे अभी आत्मा की अनुभूति नहीं हुयी है। तो किसीको देखकर वह ज्ञानी है या नहीं उसे पता नहीं चलता, उसे ज्ञानी की पहचान होती नहीं। उनको ढूंढ़ने की आकुलता करने की कोई आवश्यकता नहीं है - यह पहले सुनिश्चित करो।

मिथ्यादृष्टि जीव तो अन्य जीवों की बाह्य प्रवृत्ति और क्रियायें देखकर उनके द्वारा उनकी पहचान करना चाहता है। जो चौथे गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि है, उसकी बाहर से कौनसी क्रियायें होंगी ? अभी कोई देव, देवी सम्यग्दृष्टि हैं तो सफेद वस्त्र पहनकर ऐसे मुंह लटकाकर आयेंगे कि नहीं ? वे तो अपनी पूरी शान से अलंकार पहनकर, सारे वैभव के साथ आयेंगे कि नहीं ? तो वे सम्यग्दृष्टि हैं कि नहीं ? *श्रोता: हैं/* हां, यानी किसी बाह्य वेश से सम्यग्दर्शन का कोई संबंध नहीं है। अभी चौथे गुणस्थान का नाम ही अविरत सम्यग्दृष्टि है तो उसके बाहर में व्रतादि होंगे कि नहीं ? उनके बाहर में कुछ नहीं दिखेंगे; जैसे हमारे रोज़ के कार्य चल रहे हैं - व्यवसाय है या कोई घर गृहस्थी है वैसे ही चलेगी। बच्चों को डांटेंगे कि नहीं डांटेंगे ? *श्रोता: डांटेंगे/* अरे,

तमाचा भी मारेंगे, कोई उसका सम्यक्त्व नहीं चला जायेगा। समझ में आती है बात ?

चौथे गुणस्थान के योग्य और जिस भूमिका में जहां जो है, वैसे उसके विकल्प और कार्य भी चलेंगे; क्योंकि अनंतानुबंधी चला गया है, फिर भी अभी वहां तीन कषाय चौकड़ी बाकी हैं तो उसकी बाह्य प्रवृत्ति में कोई अंतर नहीं दिखेगा। हां, उसके अन्याय, अनीति तो पहले से नहीं थी और सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का अवलंबन है। परंतु मिथ्यादृष्टि भी सच्चे देव-गुरु-शास्त्र का अवलंबन ले रहे हैं। मिथ्यादृष्टि भी बाह्य सदाचार अच्छे पाल रहे हैं तो सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि में हम अंतर जान नहीं सकते, यह कहना चाहते हैं। **अन्य जीवों की बाह्य प्रवृत्ति और क्रियायें देखकर उनके द्वारा उनकी पहचान करना चाहता है। सामनेवाले जीवों के अभिप्राय का-** मान्यता तो बाहर दिखेगी नहीं, **सम्यग्दर्शन का इसे पता नहीं चलता।** तो क्या करना ? कहते हैं- **हमें तो उपदेश की सत्यता को पहचानना है।** उसकी बाह्य क्रिया को देखकर कोई पता चलनेवाला नहीं **क्योंकि ज्ञानी जीव भी जो उपदेश देते हैं, वे कहां अपने स्वयं से कोई नियम या सिद्धान्त तैयार करते हैं ?** आगम में जो है उसीका वे उपदेश देंगे। **ज्ञानी जीव भी जो उपदेश देते हैं वह सर्वज्ञ के वचन अनुसार देते हैं, अपने घर की - अपनी कल्पना की बातें नहीं करते।**

शास्त्र पढ़नेवाला भी प्रारंभ में कहता है कि 'अस्य मूलग्रंथकर्तारः श्री सर्वज्ञदेवः, यानी इस ग्रंथ के मूलकर्ता कौन है -सर्वज्ञ भगवान। **तदुत्तर ग्रंथकर्तारः श्री गणधरदेवाः** उसके उत्तर यानी उसके पश्चात् इसकी किसने रचना की है ? गणधर भगवान ने। **अर्थात् इस ग्रंथ के मूलकर्ता श्री सर्वज्ञ भगवान हैं, उनकी दिव्यध्वनि सुनकर पश्चात् ग्रंथों की रचना करनेवाले श्री गणधर आचार्य हैं। उनके उपदेश के अनुसार आचार्यों की परंपरा से जो ग्रंथ रचे गये, उनमें से इस विशिष्ट ग्रंथ का हम स्वाध्याय कर रहे हैं। श्रोताओं, सावधान होकर सुनना।'** ऐसा पूरा वाक्य बताया जाता है, इसलिये सारा इन्वर्टेड कॉमा में डाला है। **आगम का वचन सर्वज्ञ भगवान का होता है, किसी वक्ता का नहीं होता।** आगम में जो बात हम पढ़ रहे हैं, जो बात मूल धारा से चली आयी है, बीच में किसीने फेरफार किया उसकी बात नहीं हो रही है। मूल ग्रंथों में भी बहुत सारे फेरफार कहीं-कहीं हो गये हैं और ज्ञानी बराबर उसका निषेध भी करते हैं। जो मूल बातें चली आ रही हैं, वे सर्वज्ञ भगवान के द्वारा बतायी गयी हैं वे चली आ रही हैं। **वह तो वस्तुस्वरूप संबंधी सच्ची जानकारी है।**

इसके लिये एक उदाहरण दिया है कि हमारे घर में कोई कुरिअरवाला आया, उसने हमें एक लाख रुपये का ड्राफ्ट दे दिया। हमने देनेवाले की ओर देखा तो वह कैसा था ? अरे, कपड़े फटे पुराने थे और बॅग भी फटी थी और क्या-क्या था ? हमने सोचा कि यह व्यक्ति हमें एक लाख रुपये नहीं दे सकता। तो ड्राफ्ट लेना कि नहीं लेना ? अरे वह उसने नहीं दिया है, भेजनेवाले ने भेजा है। यह तो उसका कुरिअर है। है न ? यही है। देखो यहां लिखा है- **मान लो, तुम्हें किसीने एक लाख रुपये का डिमांड ड्राफ्ट डाक से भेजा।** पोस्टमन ने तुम्हें दे दिया। **तुमने पोस्टमन को देखा तो उसने पुराने कपड़े और जूते पहने थे, उसकी बॅग भी फटी थी।** उसको देखकर तुम ऐसा तो नहीं कहती कि यह आदमी गरीब दिखता है तो यह एक लाख रुपये का डिमांड ड्राफ्ट कैसे दे सकता है ? क्योंकि तुम्हें मालूम है कि यह तो डाक पहुंचानेवाला है, लाख रुपये तो उसके नहीं हैं। लाख रुपये भेजनेवाला कोई और ही है। इसतरह से हमें अन्य किसी ज्ञानी के द्वारा आगम का जो उपदेश मिल रहा है, तो वह सर्वज्ञ भगवान का उपदेश है; उस व्यक्ति का नहीं है। जिस व्यक्ति के उपदेश का मूल धारा से कोई कनेक्शन नहीं है उसको तो हम सही नहीं कह सकते।

तुम कहोगी, ‘हम ज्ञानी को नहीं पहचान सकेंगे, परंतु अभी-अभी आपने कहा था हमें तो उसके उपदेश की सत्यता को पहचानना है। किसीका उपदेश सच्चा है या झूठा उसको हम कैसे पहचानेंगे ?’ प्रश्न तो सही है। पहले प्रश्न था ज्ञानी को कैसे पहचानना ? वहां कहते हैं कि उपदेश की सत्यता को पहचानो, बाकी सब बातें छोड़ दो। यहां कहते हैं उपदेश सही है कि नहीं है वह कैसे पहचानेंगे ? प्रश्न तो है न ? हर एक का प्रश्न यही है। उसके उत्तर में कहते हैं देखो- **जिसके उपदेश में राग का पोषण होगा,** राग यानी शुभाशुभ राग यानी कषाय। राग यानी वह मराठीवाला राग नहीं है, क्रोध की बात नहीं है; राग यानी प्रेम, द्वेष यानी द्वेष। जिसमें भक्ति करो या सिर्फ भगवान की पूजा ही करो, दान करो, यात्रा करो, शुभभाव करो, दूसरे को मदद करो तुम्हारा कल्याण हो जायेगा, पंचमकाल में आत्मा का तुम कुछ नहीं कर सकते ऐसे कहनेवाले भी हैं, तो यह कथन सही है कि नहीं है ? *श्रोता: नहीं है।*

जिसके उपदेश में राग का पोषण होगा, ‘निमित्त से कार्य होता है इसलिये निमित्तों को पहले ढूंढो।’ ऐसा जो कहते होंगे या ‘शुभभाव करने से तुम्हारा कल्याण होगा, पुण्य करते-करते तुम्हें मोक्ष प्राप्त होगा।’ तुम व्रत करो, अभी जो व्रत कर रहे हो

उसके ऊपर के और व्रत अंगीकार करो, फिर और ऊपर के व्रत करो, फिर तुम्हारा मोक्ष हो जायेगा। यानी बाह्य व्रतादि करते-करते-करते ही अरिहंत अवस्था प्राप्त होगी ऐसी जिनकी मान्यता है और ऐसा जो उपदेश देते हैं वे मिथ्यादृष्टि हैं। धर्म के नाम पर वे मात्र व्रतादि का उपदेश देते हैं, मैंने मात्र शब्द डाला, व्रतादि का निषेध नहीं है। व्रतादि का भी उपदेश दिया जायेगा, परंतु व्रत करते-करते मोक्षमार्ग उत्पन्न होगा या धर्म होगा, यह सही उपदेश नहीं है। लोग क्या कहते हैं ? हमारे लेक्चल की बातें करो। लोअर मोस्ट लेक्चल की बात है कि सम्यग्दर्शन प्राप्त करें। वे कहते हैं, यह सम्यग्दर्शन हाय लेक्चल की बात है, वह हमसे नहीं होती। हमारे अपने लेक्चल की बात है कि एक दूसरे को मदद करो, सदाचार से रहो। अरे, यह बात तो घर में मां बाप भी कहते हैं और स्कूल में टीचर भी सीखाते हैं। यहां मोक्षमार्ग शुरू करना है, धर्म करना है तो हर एक की पहली लेक्चल क्या है ? *श्रोता : सम्यग्दर्शन।* अरे, अपनी पहचान करना यानी सम्यग्दर्शन प्राप्त करना, वहीं से धर्म की शुरुआत होगी।

शुभभाव तो ऐसे हर एक जीव कर रहा है, एकेन्द्रिय निगोद जीव भी शुभ और अशुभभाव कर रहे हैं। उनके हर अंतर्मुहूर्त में संक्लेश-विशुद्धि, संक्लेश-विशुद्धि ऐसे परिणाम चेंज हो रहे हैं। कोई उपदेश नहीं देगा तो भी आप के भी नियम से होंगे क्योंकि हर जीव हर अंतर्मुहूर्त में प्रशस्त-अप्रशस्त प्रकृतियों का पलट-पलटकर बंध कर रहा है। उसके लिये किसीके उपदेश की जरूरत नहीं है। यहां तो उपदेश कौनसा यथार्थ है ? जो कार्य आज तक नहीं हुआ है, ऐसे स्वयं को पहचानने का जो कार्य होना चाहिये, सबसे पहले में पहले उसका उपदेश होना चाहिये। वह तो भूल जाते हैं और फिर ऊपर-ऊपर ही मरहमपट्टी होती रहती है। है न ? क्या कहा देखो- **या** कोई ऐसा भी कहता है **‘बड़े ग्रंथों का शास्त्र स्वाध्याय मत करना वह तुम्हारा काम नहीं है।’** किसीको सम्यक्त्व का उपाय पूछा तो कहते हैं - नहीं, पहले तुम हमारे संघ में शामिल हो जाओ, घर-गृहस्थी का त्याग करो, मुनि हो जाओ फिर तुम्हें उपदेश मिलेगा, फिर सम्यग्दर्शन होगा - ऐसी-ऐसी बातें भी सुनने को मिलती हैं।

आदि बातें जिसके कथन में आती हो, या जो सही स्वाध्याय है उसका भी निषेध करते हैं - कहीं-कहीं मंदिरों पर ऐसे बोर्ड लगाते हैं कि फलां-फलां जगह से छपा हुआ साहित्य पढ़ना मना है। आपने कहीं ऐसा देखा या सुना है कि अश्लील साहित्य नहीं पढ़ना चाहिये ऐसा किसी मंदिर में लिखा है ? ऐसा कहीं नहीं लिखा है।

श्रोता : सोनगढ़ का। सोनगढ़ का ? अच्छा। जो स्वयं उच्च पदवी धारण करके यानी कोई व्रतादि धारण करके, स्वच्छंद आचरण करता हो यानी उस पद के योग्य आचरण नहीं है, शिथिलाचारी है। कुदेवादिकों की पूजा सत्कार का उपदेश देता हो, स्वयं शास्त्रविरुद्ध आचरण करता हो, लोगों को उकसाकर द्वेष बुद्धि निर्माण करके समाज में कलह पैदा करता हो उसका सभी उपदेश झूठा है। जब मैं यह पुस्तक लिख रही थी, मुझे ठीक से याद नहीं कौनसे गांव में हम गये थे ? छोटा गांव था, वहां ऐसी ही बातें चल रही थी। वहां कोई पदवी धारक आये थे और उन्होंने कहा था, यहां मैं हर एक घर में कलह पैदा करूंगा। **श्रोता:** देऊलगांवराजा। हां, देऊलगांवराजा। नँचरली जब लिखना चलता है, अनेक महीनों तक चलता है न, उस समय जो शास्त्र पढ़ने में आते हैं, जो कुछ समाज में बात चल रही होती है, वह बात लिखी जाती है। उन्होंने उस गांव में धर्म के नाम पर प्रत्येक कुटुंब में कलह पैदा किया था। अरे, मां की मृत्यु हुयी तो बाजु के घर में रहनेवाली बेटी उसका शव देखने के लिये भी नहीं गयी। पति-पत्नी में, भाई-भाइयों में सब जगह कलह खड़ा कर दिया था धर्म के नाम पर, लोगों को उकसाकर द्वेष बुद्धि उपजायी थी। अरे, धर्म तो रागद्वेष दोनों को मिटाने का नाम है और यहां धर्म के नाम पर ऐसी बातें करते हैं। लौकिक में भी देखो, जितनी हिंसा चल रही है, जितने झगड़े चल रहे हैं धर्म के नाम पर चल रहे हैं। जो समाज में कलह पैदा करता हो उसका सभी उपदेश झूठा है।

झूठा उपदेश देनेवाले भी शास्त्र में से कुछ शब्द कहकर भी मिथ्या मान्यताओं का ही प्रचार करते हैं। वे शास्त्र दिखाते हैं, देखो यहां ऐसा लिखा है, जो लिखा है उसका विपरीत अर्थ करके उनको प्रस्तुत किया जाता है। भोले लोग हैं, वे स्वयं तो शास्त्र का अध्ययन करते नहीं हैं। उन्हें सही क्या, गलत क्या उसकी पहचान नहीं है। कहां देखते हैं ? हां, हमारे बापदादा भी ऐसा ही करते थे, इनको मानते थे, अब हम मानेंगे तो क्या गलत है ? आप तो गृहस्थ हैं, ये तो त्यागी हैं; इनके इतना आचरण है, आप तो दो-चार टाइम खाते हैं, कपड़े पहनकर घर में रहते हैं। तो इनका उपदेश सही क्यों नहीं है ? लोगों को उस बाह्य त्याग की ही महिमा आती है, उनका उपदेश ही सच्चा भासित होता है। परंतु उपदेश सच्चा है कि नहीं यह निर्णय करना हमारा कर्तव्य है। बाहर लौकिक में तो बहुत सयाने हैं। तुम्हें कोई सोना खरीदना है, हीरा हो या अन्य भी कोई चीज़ खरीदनी है तो मुंहमांगा पैसा देकर कुछ भी लाते हो क्या घर में ? उसमें

सावधानी बराबर चलती है कि नहीं ? और यहां ? जो कहे जय नारायण, चलो, जो उपदेश सुना वह सही है। पूरे समाज में ९९% यही चल रहा है। ख्याल में आयी बात ?

यह बहुत महत्व की बात है, देखो- वह उपदेश तो दे रहा है, उसमें भी सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, रत्नत्रय ऐसे-ऐसे नाम चलते रहते हैं। परंतु किसीको उसका कुछ भावभासन हो जाये ऐसी कुछ बात नहीं होती, सब गोलमाल बातें चलती रहती हैं। **कुछ लोग कहते हैं- 'हमें क्या लेना देना ? उनके उपदेश में से हम केवल अच्छी बातें ग्रहण करेंगे।'** समाज में ऐसी बातें कहनेवाले लोग हमें बहुत मिलते हैं। **परंतु यह बात सर्वथा अयोग्य है।** कोई बड़े पतीले में दूध रखा है, मम्मी ने बासुंदी बनायी और उसमें हलाहल विष, कौनसा ? सायनाइड एक ड्रॉप गिर गया। हमने क्या किया एक चम्मच ? चम्मच नहीं, कटोरी से निकाला और फेंक दिया। बाकी दूध तुम लोगे कि नहीं ? *श्रोता: नहीं।* क्यों नहीं ? अरे, जहर है, भव का अंत होगा। कितने भवों का ? *श्रोता: एक भव का।* एक भव का अंत होगा और खोटे उपदेश से ? *श्रोता: अनंत भवों का।* अनंत भवों का नुकसान हो जायेगा। परंतु उसकी हमें परवाह ही नहीं है। क्योंकि पता ही नहीं है न कि कितनी मुश्किल से अनंत भवों के बाद यह मनुष्यभव मिला है। यह भव ऐसा ही खोटे उपदेश में चला जा रहा है। समाज को दिखाने के लिये ऐसे ही भोले लोग उनके अनुयायी होंगे, उनके उपदेश चलते हैं, लोगों को कहां उपदेश सुनना है ? उनको तो बस दिखाना है कि हम जैनी हैं, हम इस गुरु को मानते हैं।

क्या कहा ? देखो, यही लिखा है पहले पॅरेग्राफ में, वही उदाहरण दिया है। हम दूसरा पॅरेग्राफ देखते हैं- **जिस उपदेश से अनेक भवों का नुकसान होता है और जीव जन्म-मरण के फेरों में अटककर अनंतकाल तक निगोद में जाता है एकाध भव पुण्य करके देव में भी गया तो क्या हुआ ?** वहां से बादर एकेन्द्रिय में जन्मेगा और बाद में बादर एकेन्द्रिय से सूक्ष्म एकेन्द्रिय में या निगोद में चला जायेगा। एक बार एकेन्द्रिय में चला जायेगा तो असंख्यात पुद्गलपरावर्तन तक वहां भटक सकता है। **उस उपदेश को वह भला जानकर सुनता है, उसको भला मान रहा है, उसके अनुसार गलत मार्ग पर चलता है। उसकी ऐसी ही होनहार होगी कि उसकी ऐसी विपरीत बुद्धि हो रही है।** क्योंकि वह किसीके कहने से सुधरनेवाला नहीं है। हमें ऐसा लगता है ये इतने पढ़े-लिखे हैं, कोई डॉक्टर हैं, कोई इंजिनिअर हैं, वे क्यों ऐसी भूल कर रहे हैं ? उनको इतनी बातें समझ में नहीं आती ? नहीं समझ में आती। कितने ही

शास्त्रस्वाध्याय करनेवालों को भी निर्णय नहीं होता है कि यह उपदेश कुछ गलत हो रहा है। हमारे ऐसे-ऐसे अपने रिश्तेदार होते हैं तो क्या करना ? यहां क्या लिखा है ? उनकी ऐसी ही होनहार होगी कि ऐसी विपरीत बुद्धि हो रही है। 'तादृशी जायते बुद्धि, यादृशी भवितव्यता।' किसीके कहने से कोई नहीं सुधरता; कोई सुधरता भी नहीं और कोई बिगड़ता भी नहीं। किसीके छोटे उपदेश से बिगड़ा ऐसा भी नहीं है, उसकी ऐसी ही होनहार है कि इसकी ऐसी बुद्धि हो रही है। जो सुधरता है वह किसीने उपदेश दिया है इसलिये उसने माना ? नहीं। उसकी ऐसी ही भवितव्यता है कि उसको सही उपदेश पर भरोसा हो गया। परंतु उपदेश सुना इसलिये कुछ नहीं होता, अंतर से उसको ऐसा भासित हुआ या उसका ऐसा ही पर्याय क्रम है तो उसने वह उपदेश सुना, वैसा पुरुषार्थ किया वह सब अपने से होगा।

अविरत सम्यग्दृष्टि जीव की पहचान उसके बाह्य आचरण से नहीं हो सकती, अणुव्रत और महाव्रत के धारी ज्ञानी जीवों के व्रत तो हम जान सकते हैं उनके व्रतों को जानेंगे परंतु उनको अनुभव कैसे हो रहा है ? क्या हो रहा है ? उसको तो नहीं जानेंगे। **परंतु इन सबकी वाणी मुझे स्वयं को कल्याणकारी है या नहीं इस बात का विश्वास देशनालब्धि प्राप्त करनेवाले जीव को अवश्य होता है।** किसको होता है ? देशनालब्धि प्राप्त करनेवाले जीव को। नहीं तो ज्ञानी को भी विरोध करनेवाले हैं कि नहीं हैं ? कानजीस्वामी पहले स्थानकवासी संप्रदाय में मुनि अवस्था में थे। बाद में समयसार, मोक्षमार्गप्रकाशक हाथ में आया और वह पढ़कर सही निर्णय हो गया तो वे संप्रदाय छोड़कर दिगंबर संप्रदाय में आ गये। वहां के मुनि अवस्थारूप उनका आचरण चल रहा था, उसको छोड़कर यहां चौथे गुणस्थान योग्य श्रावक यानी यहां के गृहस्थ हो गये। बराबर है न ? तो वे जो उपदेश देते थे वह सही था या गलत था ? *श्रोता: सही था।* सही था न ? क्योंकि कुंदकुंद आचार्य के कथन अनुसार सारा उपदेश था, आत्मानुभव करके सब उपदेश दे रहे थे। तो उनको विरोध हुआ कि नहीं हुआ ? *श्रोता: हुआ।* किसने किया ? जिनकी होनहार वैसी थी। तो कानजीस्वामी के अनुयायी भी हो गये कि नहीं हुये ? *श्रोता: लाखों की संख्या में हुये।*

कितने ही मूल दिगंबर थे, उनको ऐसा लगा कि बाहर से यह कौन आया और हमें सुना रहा है ? चलो जाकर देखते हैं, विरोध करते हैं। बाबूभाई मेहता, नेमचंदजी रखियालवाले, पं. कैलाशचंदजी बुलंदशहरवाले, पं. देवकीनंदनजी और कितने ही

विद्वान् विरोध करने सोनगढ़ पहुंचे थे। सुना, अरे ! यह तो अपनी बात अपने ग्रंथों में से अपने को सुनायी, पहले यह बात हमारी समझ में नहीं आयी थी। उन्होंने निमित्त वगैरह की बात इतने डंके की चोट पर बतायी है। उस जमाने में बड़े-बड़े विद्वान्, पंडितों ने वहां जाकर कबूल किया कि उनकी बात सही है और वे सब उनके अनुयायी हो गये। जिनकी होनहार भली थी, उन्हें सही बात पहचानने में आयी और जिनकी होनहार बुरी थी, उन्होंने उनका विरोध किया। यह तो हमारे परिचय की बात है न ? कौन कहां जन्मा और कहां कौनसे संप्रदाय में आया उससे क्या मतलब ?

पंचमकालवालों का ऐसा ही नसीब है। महावीर भगवान की वाणी छूटी तो उनके गणधर कौन हुये ? *श्रोता: गौतम गणधर*। जैनियों में कोई नहीं था ? ख्याल में आया ? वे भी वैदिक ब्राह्मण विद्वान् थे, उनकी कथा सबको मालूम है। छियासठ दिन तक भगवान महावीर की दिव्यध्वनि नहीं खिरी; क्यों ? उसे झेलनेवाला कोई पात्र नहीं था। फिर इन्द्र ने अवधिज्ञान लगाया; पहले क्यों नहीं लगाया ? जिस समय जो होना है, वैसा ही होता है। इन्द्रभूति समवसरण में आये और उन्होंने पहले ही मानस्तंभ देखा, देखते ही जिनबिंब दर्शन हुआ, मान गल गया यानी सम्यक्त्व हुआ। मेरा यह प्रश्न है, अग्निभूति, वायुभूति, इंद्रभूति जो गणधर हुये उनको सम्यग्दर्शन हुआ तो महावीर भगवान की वाणी से हुआ कि नहीं हुआ ? *श्रोता: नहीं हुआ*। नहीं हुआ क्योंकि आये थे तब तो वे गृहीत मिथ्यादृष्टि थे तो ऐसे निमित्त से वाणी नहीं छूटती। उनको सम्यग्दर्शन तो हुआ न ? क्योंकि सम्यग्दर्शन हुये बिना तो वे मुनि नहीं होंगे। उनको कैसे सम्यग्दर्शन हुआ ? *श्रोता: जिनबिंब दर्शन*। जिनबिंब दर्शन। देशना कहां मिली ? *श्रोता: पूर्वभव की देशना*। पूर्वभव की देशना वहां काम आ गयी। पूर्वभव की देशना थी, जिनबिंब को देखा तो उनको आत्मसन्मुख पुरुषार्थ में सम्यग्दर्शन हुआ। फिर समवसरण में अंदर गये, भगवान के सामने स्वयं दीक्षित हो गये, उसके बाद चार ज्ञान के धारी हुये, तब जाकर दिव्यध्वनि छूटी। ख्याल में आयी न बात ?

तब से हमारी परंपरा चली है, कौनसी ? अन्यमति में जन्में हुये... अरे, जिसकी जो पात्रता है, कहीं पर भी जन्म हुआ उससे क्या लेना-देना है ? ऐसे कितने ही जीव हैं। दक्षिण भारत में कितने ही मुनिराज हुये हैं, उनमें कितने ही अन्यमति से आये थे। उन्होंने दिगंबर जैन धर्म अपनाया, मुनि अवस्था धारण की और कितने ही शास्त्रों की रचना की। ऐसे कितने सारे नाम हैं। पं. बनारसीदासजी, श्रीमद्जी, कानजी स्वामी और

अन्य भी, यह सब लिस्ट ऐसी चल रही है। ये ज्ञानी हुये तो सच्चे जैनी हुये। हम केवल जन्मे हैं इसलिये हम जैनी हैं ऐसा हम कहते हैं। नाम के लिये जैन सरनेम लगा लेते हैं।

आगे बढ़ते हैं देखो- **अविरत सम्यग्दृष्टि जीव की पहचान उसके बाह्य आचरण से नहीं हो सकती, अणुव्रत और महाव्रत के धारी ज्ञानी जीवों के व्रत तो हम जान सकते हैं परंतु इन सबकी वाणी मुझे कल्याणकारी है या नहीं इस बात का विश्वास किसको होगा ? देशनालब्धि प्राप्त करनेवाले जीव को अवश्य होगा। यह वाणी, यह उपदेश यदि जिनेन्द्रकथित वस्तुव्यवस्था के अनुसार होगा, देखो, वस्तुव्यवस्था जिनेन्द्र भगवान नहीं बनाते, उन्होंने जाना है और उसका उपदेश दिया है। वस्तुव्यवस्था क्या है ? द्रव्य क्या है ? उसका स्वरूप कैसा है ? वह अनंत गुणों के समूहरूप है। उसकी पर्याय कैसे होती है ? कौन कराता है ? कैसे क्रमबद्धरूप से होती है यह सब जानकर कहनेवाले जिनेन्द्र भगवान हैं। जिनेन्द्र भगवान ने बताये हुये उपदेश के अनुसार ज्ञानी का कथन होता है। **भावलिङ्गी संतों के शास्त्रानुसार कथन किया होगा तो वह निश्चित ही जीव को हितकारी होता है।****

परंतु कोई वक्ता जिनागम के विरुद्ध उपदेश देता हो तो वह स्वयं का तथा उसके अनुयायियों का अकल्याण ही करता है। वह स्वयं भवसागर में डूब ही रहा है और साथ-साथ उसके अनुयायी भी चले जायेंगे उसके साथ। **शास्त्र में उसे उपलनाव कहा है।** उपल समझते हैं ? *श्रोता: पत्थर* / हां, खाली पत्थर नहीं प्रेशस स्टोन यानी हीरा, माणिक, जवाहरात होते हैं न ? वैसे ही एक प्रेशस स्टोन। स्टोन कहने से वाह ! कितना कीमती और पत्थर कहने से वह रास्ते का पत्थर लगता है। मान लेते हैं उपल यानी कोई डायमंड की, कोई हीरे-माणिकों की एक नाव बनायी और उस नाव को जहाज में से समुद्र में दूर तक ले गये, वहां नाव को नीचे छोड़ा। अब किसकी-किसकी तैयारी है उस नाव में बैठने की ? बोलो ? बहुत कीमती पत्थर लगे हुये हैं उसके अंदर। अरे, पत्थरों की बनी है उसको शास्त्र में उपलनाव कहा है। किसने कहा है, पता है ? *श्रोता: छहढ़ाला में* / हां, छहढ़ाला में। **शास्त्र में उसे उपलनाव कहा है।** उपल अर्थात् पत्थर। पत्थर की नाव पानी में स्वयं तो डूबती ही है, उसमें बैठनेवाले जीवों को भी लेकर डूबती है। उसी प्रकार खोटा उपदेश देनेवाले और उस उपदेश को योग्य समझकर ग्रहण करनेवाले सभी जीव, भवसागर में डूबकर कालांतर में निगोद अवस्था प्राप्त करते हैं। क्योंकि वह हेड क्वार्टर है न ?

जीव घूम-घूमकर फिर वहां चला जाता है। अन्य पर्यायों में कितना भी घूमें, निगोद में जाकर अनंतकाल तक पड़ा रहता है।

कुछ कषायी जीवों ने मूल शास्त्र में फेरफार करके रागादि का पोषण करनेवाले, मिथ्या मान्यताओं का पोषण करनेवाले कितने ही वचन शास्त्र में घुसेड़ दिये हैं, परंतु ज्ञानी जीव इन वचनों का निषेध करते हैं, विवेकी बुद्धिमान जीवों के वह ख्याल में आता है। हमारी भी कोई दिशाभूल न करें इसकी जिम्मेदारी किसकी है ? हमारी है, हमें उस संबंध में दक्षता रखनी है। आजकल लौकिक दैनंदिन व्यवहार में छल-कपट करनेवाले, ठगानेवाले बहुत लोग हैं। सोने-हीरे के गहने, कपड़े, खाद्य पदार्थ आदि में कुछ मिलावट तो नहीं है न, इसके बारे में हम कितना जागरूक रहते हैं। उसी प्रकार की जागरूकता देशना के बारे में रखनी होगी। क्योंकि यहां तो हमारे अपने कल्याण की बात है, भवों का अभाव करके मोक्षप्राप्ति करने जैसी महान बात है। अब फिर प्रश्न है क्योंकि अनेक प्रश्न उद्भवते हैं और उठनेवाले सारे प्रश्न जो हैं न, वे सब डाले हैं पुस्तक में।

तुम कहोगी, 'सच्चे वक्ता और सच्चे उपदेश का स्वरूप तो ख्याल में आ गया। परंतु गुरु को सर्वस्व समर्पण करना होगा न ? क्योंकि हमने तो कहीं ऐसा सुना है।' हमने गुरु कर लिया ऐसा कहते हैं - हमारे अन्यमति मित्र वगैरह होते हैं वे कहते हैं हमने गुरु कर लिया, अभी हमारी सारी जिम्मेदारी हमने उस पर डाल दी। यह गुरु करना यह बात मैं कभी समझी नहीं। स्टेशन पर जाते हैं, बहुत बोझ है तो हम क्या करते हैं ? कुली करते हैं। हमारा सारा बोझ उन पर डाल देते हैं। गुरु के बारे में भी ऐसा होता है क्या ? वह गुरु हमें तार देगा ? कोई कहते हैं गुरु की आज्ञा में रहना चाहिये। शास्त्र में आता है न ? गुरुसेवा या गुरु की उपासना करना या गुरु की आज्ञा में रहना। आज्ञा उपदेश को कहते हैं। गुरु का उपदेश क्या होता है ? कि तू स्वयं भगवान् आत्मा है तो तू अपने को समझ, अपना अनुभव कर। यह होती है गुरु की आज्ञा। हम गुरु की आज्ञा कहां लेना चाहते हैं ? यह करूं कि नहीं करूं ? हमारी लड़की की शादी करनी है, इसके साथ करूं कि नहीं करूं ? हमें यात्रा करनी है, हमें व्यापार करना है, हमें यह धंधा करना है - करूं कि नहीं करूं ? अरे, गुरु का ऐसा माथा थोड़े ही खाते हैं ! गुरु की आज्ञा यह नहीं होती, समझ में आती है न बात ?

क्या पूछा था ? गुरु को सर्वस्व समर्पण करना होगा न ? क्योंकि हमने तो कहीं ऐसा सुना है और सुनी-सुनायी बातों पर ही विश्वास चलता है। सर्वस्व समर्पण किसका मानते हैं ? तन, मन, धन सर्वस्व समर्पण कर दो। **समर्पण किसका करोगी ? तन,** यानी शरीर, **मन,** वह भी पुद्गल है, **धन। श्रोता: वह भी पुद्गल है। जो परपदार्थ हैं उनका समर्पण करना तो सर्व परसमर्पण है, सर्व स्वसमर्पण कहाँ रहा ? और परपदार्थों में किसीका कुछ चलता नहीं। इसलिये उनका समर्पण अपने आधीन नहीं है। हे जीव, तुम तो चेतन हो, ज्ञानस्वरूप हो, ज्ञानोपयोग पूरी तरह शास्त्राभ्यास में लगाना, तत्त्वनिर्णय में सारी बुद्धि लगाना ही सर्वस्व समर्पण है।** हमारी बुद्धि तत्त्वनिर्णय में लगाना ही हमारा सर्वस्व समर्पण है, वही गुरु की उपासना है, उनके उपदेश में जो बातें आयी हैं, हमें पूरी तरह से उनका निर्णय करना है, उनका परीक्षापूर्वक स्वीकार करना है।

सम्यक्त्वसन्मुख मिथ्यादृष्टि यह क्या होता है ? जो अभी चार लब्धिपूर्वक करणलब्धि में प्रवेश करनेवाला है। ऐसा कौनसा जीव है ? उसे सही उपदेश मिला है, तत्त्व का विचार भी कर रहा है उसको यहां सम्यक्त्वसन्मुख मिथ्यादृष्टि कह दिया है। सम्यक्त्वसन्मुख मिथ्यादृष्टि का वर्णन करते हुये पं. टोडरमलजी कहते हैं- पं. टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक लिखा है और यह सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार किसने लिखा ? *श्रोता: पं. टोडरमलजी ने।* और जीवकाण्ड की टीका ? उन्हीं ने। कर्मकाण्ड की ? त्रिलोकसार की ? पं. टोडरमलजी ने ये सारे ग्रंथ पहले लिखे या मोक्षमार्गप्रकाशक पहले लिखा ? *श्रोता: पहले वे लिखे, मोक्षमार्गप्रकाशक बाद में लिखा।* उन्होंने करणानुयोग के सारे ग्रंथ पहले लिखे हैं, बाद में मोक्षमार्गप्रकाशक लिखा। क्यों ? *श्रोता: अधूरा रह गया।* उनकी मृत्यु के कारण वह अधूरा रह गया, ख्याल में आयी बात ? वे करणानुयोग के अच्छे ज्ञाता थे, उनका बहुत अधिक अभ्यास था। उन्होंने मोक्षमार्गप्रकाशक में बहुत सरल भाषा में बहुत संक्षेप में लिखा है। उन्होंने मोक्षमार्गप्रकाशक में मिथ्यादृष्टियों का वर्णन किया है; कौनसे मिथ्यादृष्टि ? जैन मिथ्यादृष्टि। अरे, वहां निश्चयाभासी, व्यवहाराभासी, उभयाभासी, फिर सम्यक्त्वसन्मुख मिथ्यादृष्टि की बात करते हैं। वहां क्या लिखते हैं ? सच्चा उपदेश सुनकर, जिसको देशना मिली है ऐसा जीव यहां लिया है।

‘सच्चा उपदेश सुनकर यह जीव सावधान होकर विचार करने लगता है

कि अहो, मुझे तो इन बातों की खबर ही नहीं, मैं भ्रम से भूलकर प्राप्त पर्याय ही में - यह पर्याय यानी एक समय की पर्याय नहीं, वहां मनुष्यपर्याय को पर्याय कहा है, देवपर्याय, तिर्यचपर्याय, नारकीपर्याय को कहेंगे पर्याय यानी **मनुष्यादि पर्यायों को यहां पर्याय कहा है - तन्मय हुआ।** तन्मय यानी ? मैंने अपने को मनुष्य ही मान रखा है। मनुष्यपर्याय से जुदा मेरा कोई अस्तित्व है इसका उसने कभी विचार ही नहीं किया। उसको कहते हैं, प्राप्त पर्याय में ही तन्मय होकर रहा। मैं मनुष्य हूं, यह मेरी उम्र है, जन्म से मेरे अभी कितने बीस, पच्चीस, तीस साल हो गये, हम कहेंगे हम बूढ़े हो गये। उसीमें तन्मय होना; मैं मां हूं, ये मेरे कर्तव्य हैं - यह क्या है ? मनुष्यपर्याय में ही तन्मय होकर रहा। **परंतु इस पर्याय की थोड़े ही काल की स्थिति है।** यहां कोई अमर होकर नहीं बैठा है, भले ही कोई सौ साल तक जियेगा, कोई अस्सी साल तक जियेगा, कोई युवावस्था में ही चला जायेगा। जन्म से इतने साल बीत गये अभी कुछ ही शेष हैं; क्योंकि जो जन्मा है वह प्रतिदिन प्रति समय मरण के सन्मुख जा रहा है।

इस पर्याय की अभी थोड़ी ही स्थिति है। **तथा यहां मुझे सर्व निमित्त मिले हैं,** सर्व निमित्त किस लिये ? मेरा अपना स्वरूप समझने के लिये। **इसलिये मुझे** यह कौनसा जीव लिया ? सम्यक्त्वसन्मुख जीव लिया; कोई गृहीत मिथ्यादृष्टि या कोई अन्य उपदेश सुननेवाला नहीं है। उसे सही उपदेश मिला है, उस पर उसका विचार भी चलता है। वह क्या विचार करता है ? अभी मनुष्यपर्याय कितने काल तक रहेगी ? अभी बहुत कम समय रह गया है। **इसलिये मुझे इन बातों को बराबर समझना चाहिये।** अभी मेरी सुपरमोस्ट प्रायोरिटी क्या होनी चाहिये ? ख्याल में आया न ? अभी तक बहुत कुछ कर दिया - पढ़ाई भी की, फिर कमाई भी की और क्या-क्या किया... अब मुझे यही करने योग्य है यह कहते हैं। **क्योंकि इनमें तो मेरा ही प्रयोजन भासित होता है।** जिनागम की पढ़ाई करके दूसरे किसीका कल्याण नहीं करना है। मुझे यह पढ़कर औरों को सुनाना नहीं है। वह अपना कर्तव्य नहीं है। क्या कहा ? प्रचार और प्रसार करना किसीका कर्तव्य नहीं हो सकता। इसको तो अपने में ही करना है, बाकी प्रचारादि बातें सहज होती हैं, वह तो उसके ज्ञान का ज्ञेय हो जाता है।

मूल कर्तव्य क्या है यह समझकर अपना अनुभव करना - **ऐसा विचार कर जो उपदेश सुना उसके निर्धार करने का उद्यम किया।** क्या कहा ? निर्धार करने का अर्थ क्या है वह पं. टोडरमलजी ने ही बताया। निर्धार करना यानी क्या करना ?

निर्णय करना। उसके तीन अंग बताये- **निर्धारण करने के तीन अंग हैं-** यह आपको मोक्षमार्गप्रकाशक में मिलेगा। **(१) उद्देश अर्थात् उनके नाम सीखना। (२) लक्षणनिर्देश अर्थात् उनके लक्षणों को जानना।** जैसे हमने छह द्रव्यों के नाम पढ़े, सात तत्त्वों के नाम पढ़े - उसको कहेंगे उद्देश। फिर उनके लक्षणों को बराबर पढ़ लिया, याद किया। **पश्चात् (३) विचार सहित परीक्षा करना।**

विचार सहित परीक्षा क्या होती है ? हमने सात तत्त्वों में पढ़ा कि आस्रव तत्त्व क्या है ? मोह-रागद्वेष के परिणाम। वे कैसे हैं ? दुःखरूप हैं कि सुखरूप हैं ? दुःखरूप हैं। हमें अभी कैसे भासित हो रहे हैं ? सुखरूप। तो सही में क्या है ? ये कैसे हैं ? अपने को भासित तो सुखरूप हो रहे हैं। नहीं समझे ? यह पैसा मिल रहा है न ? तो शुभभाव से मिल रहा है कि अशुभभाव से मिल रहा है ? शुभभाव से मिलता है। पैसा कमाने के लिये दुकान पर जाकर बैठते हैं। वहां चाह क्या है ? चाह है न ? मुझे पैसा मिले। यह शुभभाव है कि अशुभभाव है ? *श्रोता: अशुभभाव।* तो अशुभभाव करने से पैसा मिलता है कि नहीं ?

देखो, पुराने जो कोई शुभभाव हुये थे, बंध हुआ था उसका अभी पुण्य का उदय हो रहा है, परंतु वर्तमान में कर रहा है पाप। गुरुदेवश्री की भाषा सुननी है ? सुना है आप सबने ? कि पूर्व पुण्य के उदय में संपत्ति मिलती है और संपत्ति इटसेल्फ परिग्रह है यानी आपके हिस्से में तो पाप आता है। यानी पूर्व पुण्य के उदय में आपने क्या कमाया ? *श्रोता: पाप कमाया।* फिर से- यह संपत्ति, संयोग मिले हैं, वे पूर्व पुण्य के उदय में मिले हैं। परंतु यह जो संपत्ति है, ये सब दस प्रकार के परिग्रहों को याद करो - धन, धान्य, दास, दासी, नौकर हमारे पास भरपूर हैं। क्यों ? हमने पूर्व में पुण्य किया था, परंतु अभी तो परिग्रह जोड़ा न ? परिग्रह यानी कितना इकट्ठा किया केवल वह नहीं; उसके प्रति ममत्व भाव - यह मेरा है, उसको ठीकठाक रखने का, बचाने का, बढ़ाने का भाव है कि नहीं ? यह सारा पाप ही पाप कर रहे हैं और यह सोचकर खुश हो रहे हैं कि यह हमारे पुण्य का उदय चल रहा है। अरे ! पुण्य आपने खर्चा किया तभी तो यह पाप मोल लिया। नहीं समझे ?

आप कोई चीज खरीदने जाते हैं, वह पैसे से मिलती है कि नहीं ? पैसे से मिलती है कि पैसा देने से मिलती है ? *श्रोता: पैसे देने से।* आपका पैसा खलास हुआ

तभी तो चीज आयी। ऐसे पुण्य खलास किया तभी तो ये चीजें आयी। क्या चीजें आयी ? *श्रोता: पाप।* यानी पुण्य देकर पाप कमाया कि नहीं कमाया ? फिर धन कमाया तो उससे मद बढ़ता है। और क्या-क्या होता है ? वह तो सब बातें चलती हैं और स्वाध्याय करने को फुरसत नहीं मिलती है। हमने रूटीन बनाया न ? धंधा-पानी है जो कुछ है, उसका रूटीन बना लिया है और फिर कहते हैं कि मुझे मरने को फुरसत नहीं है, यहां आप तो... क्योंकि मरण तो फुरसतवालों को ही आता है न ! हमें पता ही नहीं है कि अभी हमारी लिमिटेड लाइफ है, जितना बांधकर आये हैं। अभी वर्तमान में हम उसको बढ़ा नहीं सकते, बढ़ाने की भले बहुत कोशिश करते हैं। परंतु इस आयु का बंध पूर्वभव में हुआ था, उसमें एक समय की भी वृद्धि नहीं होनेवाली है। जितनी बीत गयी तो बीत जाने दो, परंतु जो रिमेनिंग आयु तो फिक्स है, उसे कोई बढ़ा नहीं सकता।

आपको इसतरह से नियोजन करना है, आपका टाइमटेबल कहो या योजना बनानी है कि अधिकतर समय आप अपनी प्राथमिकता में बिता सके। हमारा अधिकतर समय किसमें चला जाता है ? हां, पैसा कमाओ, रोटी बनाओ और खाओ उसीमें पूरा दिन चला जाता है। अभी इसीमें से नियोजन करके आपको समय निकालना पड़ेगा। एक्स्ट्रा समय तो कहीं से आनेवाला है नहीं। हमारी रुचि की जो बातें हैं उसके लिये हम समय निकालते हैं, जरूर निकालते हैं। उसके लिये कुछ नौकरी, धंधा, व्यापार, व्यवसाय बंद करने की जरूरत नहीं पड़ती। परंतु हमें जिसकी मुख्यता लगती है, उसके लिये हमें जरूर समय निकालकर आगे बढ़ना चाहिये। अभी इसमें जितना बोलें उतना कम है।

हमने निर्धारण के ये तीन अंग देखे- उद्देश, लक्षणनिर्देश और परीक्षा ये तीन अंग हैं। निर्देश यानी उसका नाम सीखना; लक्षणनिर्देश यानी उसकी व्याख्या, उसके लक्षण समझना और विचार सहित उसकी परीक्षा करना, अपनी बुद्धि से उसकी परीक्षा करना। **जब तक जिनेन्द्र देव ने जैसे तत्त्व कहे हैं उसी प्रकार अपना निर्णय नहीं हो जाता** क्या कहा ? हम शास्त्र की कोई बात सुनते हैं तो पहले अपना तर्क लगाते हैं - हाउ इज इट पॉसिबल ? हमारा सारा तर्क उलटा चलता है। हमें तर्क कैसा करना है ? जैसा कहा है, वैसा हम कैसे निर्णय करें ऐसा तर्क होना चाहिये। हम तर्क कैसा लगाते हैं ? क्योंकि हम अपने को सर्वज्ञ से भी बढ़कर मान बैठे हैं। हम तर्क उलटा लगाते हैं कि ऐसा क्यों नहीं हो सकता ? हाउ इज इट पॉसिबल ? यह झूठ

लगता है क्योंकि हमें अन्य सच लगता है। इसलिये हम ऐसा सोचते हैं, उलटा ही सोचने का प्रयास करते हैं। ख्याल में आयी बात ?

कहते हैं, जैसा उन्होंने बताया वैसा हमारा निर्णय नहीं होता, **तब तक अपने विवेक से विचार करे।** बारंबार स्वयं विचार करे, आगम का अभ्यास करे, कोई अन्य साधर्म्य से चर्चा करे, विद्वानों के साथ उसकी चर्चा करे - जब तक वह बात अपनी समझ में सही नहीं आती तब तक। **यदि संदेह हो तो अपने गुरु से या अन्य विद्वानों से पूछे या अन्य साधर्मियों से पूछे। विवेकपूर्वक एकांत में अपने उपयोग में विचार करे कि जैसा उपदेश दिया है, वैसे ही है या अन्यथा है।** क्या कहते हैं ? **यहां अपनी मान्यताओं का पोषण नहीं करना है।** जैसे स्कूल में हमें गणित सिखाते थे, फिर होमवर्क दिया जाता था कि घर में ये सारे गणित सॉल्व करके लाओ। कोई ऐसा गणित होता है कि हमसे सॉल्व नहीं हो रहा है। पुस्तक में पीछे सारे उत्तर दिये हैं, हमारा उत्तर उससे नहीं मिलता है तो क्या करते हैं ? दुबारा करते हैं। फिर भी नहीं आता तो हमारे कोई दूसरे सहाध्यायी हैं उनको पूछते हैं। हम तो उनसे भी सयाने हैं, हम क्या करते हैं ? पुस्तक में उत्तर ही बदल देते हैं, अपना उत्तर वहां लिख देते हैं। तो हमने सही किया कि नहीं किया ?

जब तक हमारा उत्तर पुस्तक के उत्तर से नहीं मिलता तब तक हमें कोशिश करनी है - टीचर से पूछना है, जिस किसी विधि से, है न ? यहां यही लिखा है- अपनी कल्पना के आधार से हम पुस्तक में सुधार नहीं करते। ऐसे ही अपनी कल्पना के अनुसार जिनेन्द्र भगवान की वाणी में फेरफार नहीं करना। उस वाणी के अनुसार जब तक अपनी मान्यता नहीं होती; तब तक हमारी कहां क्या गलती हो रही है, हमारी कहां चूक हो रही है, अपने अभिप्राय में कहां क्या पड़ा है - उसको ढूंढ़ना है।

हम और भी आगे बातें करेंगे, थोड़ी देर के बाद मिलते हैं।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

१६. देशनालब्धि - विशेष चर्चा - २

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका द्वांद्वारी भाषा में लिखी है। उसके आधार से हम यहां प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने के पूर्व नियम से जो पांच लब्धि पायी जाती हैं, उन पंचलब्धि के प्रकरण की चर्चा कर रहे हैं।

जिस काल में ज्ञानावरणादि समस्त अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग प्रतिसमय अनंतगुणा घटता हुआ उदय में आता रहता है उसको क्षयोपशमलब्धि कहते हैं। उसीके निमित्त से जीव के रागद्वेष यानी कषाय मंद-मंद होते चले जाते हैं। इस कारण वहां उसके धर्मानुरागरूप परिणाम होते हैं। उनके निमित्त से सातावेदनीय आदि शुभ प्रकृतियों का बंध होने लगता है। ऐसे मंद कषायी जीव को किसी पुण्य के उदय से - यह निमित्तरूप से कहेंगे - ज्ञानी की देशना सुनने का अवसर मिला। ज्ञानी की वाणी देशना है; उसने वह सुनी, समझी, उसको याद रखा, बारंबार विचार करने लगा। यह सब किसमें आता है ? देशनालब्धि में। देशनालब्धि के अंग कौनसे हैं ? श्रवण यानी सुनना, ग्रहण यानी समझना, धारण यानी याद रखना, फिर निर्धारण यानी अपनी बुद्धि से परीक्षा द्वारा यह ऐसे ही है ऐसा निर्णय करना और परिणमन क्योंकि सही है ऐसा अगर समझ में आया तो अभी पुरानी भूल चालू रखेगा कि वह चली जायेगी ? *श्रोताः चली जायेगी।* सहजरूप से निकल जायेगी। अभी मुझे यह छोड़ना चाहिये वगैरह कोई हठ वहां नहीं होता है। जो गलत मान्यता है वह चली जाती है, छूट जाती है, वह नहीं रहती उसको कहेंगे परिणमन। ये सारे ही देशनालब्धि के अंग कहलायेंगे।

उसके बारे में चर्चा करते हुये हम पृष्ठ ८७ पर आये थे, दूसरा पॅरेग्राफ पढ़ेंगे- **देशनालब्धि ज्ञान की पर्याय है और उपयोगरूप ज्ञान में ये सारी बातें चलती हैं।** संस्कार में पड़ी हुयी हैं उनकी बात नहीं है। वर्तमान ज्ञान में, उपयोग में वे बातें चल रही हैं। **देशनालब्धि द्वारा जीव तत्त्वों का श्रवण करता है,** यानी ज्ञानी से मोक्षमार्ग का उपदेश सुनता है। **उसका ग्रहण करता है अर्थात् समझता है और धारण करता है अर्थात् अच्छी तरह याद रखता है - कंठस्थ करता है।** यदि उपदेश को धारण नहीं करेगा तो बाद में उस पर विचार करके उसकी योग्यता-अयोग्यता का निर्णय कैसे करेगा ? यह निर्णय की बात मुख्य है। परीक्षापूर्वक अपनी बुद्धि द्वारा

यह सही है, ऐसा ही है, ऐसे निर्णय तक पहुंचना चाहिये।

आज इसने कहा यह बात सही है, ऐसा करो - मान लिया। फिर दूसरे कोई आये, उन्होंने कहा यह बात ऐसी है तो वह सही लगने लगेगी। जिसने जोर-जोर से चिल्ला-चिल्लाकर बात कही तो यह सही होनी चाहिये। फिर क्या हुआ ? वहां बहुत भीड़ है, वह ऐसा कहता है - वह बात सही लगने लगेगी। यह कैसा हुआ मालूम है ? मुरादाबाद का लोटा आता है, नीचे से गोलाकार उसे बिन पेंदी का लोटा कहते हैं। इधर से धक्का दिया तो उधर लुढ़क गया। उधर से धक्का दिया तो इधर लुढ़क गया। हमारा अपना ठोस निर्णय होना चाहिये, ऐसा ठोस निर्णय कि बस यही सही है, भले सामनेवाला कुछ भी कहे। हां, ठोस निर्णय करते हैं, परंतु कैसा ? उलटा करते हैं। उसकी बात नहीं, निर्णय सही होना चाहिये।

जिस तरह गाय घास खाती है और बाद में आराम से बैठकर जुगाली करती है देखा क्या कभी ? बंबईवालों ने कहां देखी है गाय ? हां गाय ही नहीं देखी तो जुगाली करते हुये कब देखेंगे ? यह हमारे नातेपुतेवालों को पूछो। कहते हैं **उसीप्रकार धारणा में लिये हुये सिद्धान्तों का**, धारणा में यानी हमने सेव्ह कर दिये न इधर सिर में ? ज्ञान मात्र इधर सिर में नहीं होता है - ज्ञान पूरे आत्मप्रदेशों में होता है। हम कहते हैं इधर ज्ञान हुआ, इधर सुख हुआ ऐसा कुछ नहीं होता। धारणा में लिये हुये सिद्धान्तों का **स्मरण कर, उन्हें विचार में लेकर उन पर चिंतन, मनन करना आवश्यक है।** सुबह हमने प्रवचन सुना, परंतु बारंबार उसको याद में लेकर उस पर विचार तो चल सकता है, है न ?

देशना अर्थात् उपदेश सुनते समय जीव को विवेकपूर्वक सुनना चाहिये। विवेक क्यों ? क्योंकि वहां कुछ अलग बात कहते हैं और अपनी बुद्धि से उसका अर्थ कुछ अलग समझता है। जैसे कहते हैं कि शुभभाव से धर्म नहीं होता। किसका निषेध किया है ? शुभभाव का ? *श्रोता: उससे धर्म होता है मानने का।* उससे धर्म होने की मान्यता का निषेध किया है, शुभभाव का कहां निषेध किया है ? इसलिये कहते हैं वह बराबर सुनना चाहिये। आधा-अधूरा अपनी कल्पना से सुनते हैं। देखो, यहां शुभभाव को मना करते हैं तो क्या सबको निगोद में ले जानेवाले हैं ? नहीं। शुभभाव का निषेध नहीं हो रहा है। जो जिस भूमिका में हैं अरे, मुनियों को भी शुभभाव आते हैं। शुभभाव

तो आयेंगे, परंतु शुभभाव से धर्म होता है इस मान्यता का निषेध कर रहे हैं। आधा-अधूरा सुनेगा तो फिर उसका विरोध चालू हो जाता है। विवेकपूर्वक सुनना चाहिये **क्योंकि जिनागम का उपदेश चार अनुयोगों में विभाजित है।** इन चार अनुयोगों के नाम कौन बताना चाहता है ? *श्रोता: प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग।* हां, प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग।

हर एक अनुयोग की भाषा जुदी-जुदी होती है। द्रव्यानुयोग कहेगा कि प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी नहीं करता है, उसकी पर्याय नहीं करता, ना ही कुछ कर सकता है। चरणानुयोग क्या कहेगा ? जीवों की हिंसा नहीं करना चाहिये। सावधानीपूर्वक इसतरह से अपना कार्य करो कि कोई जीव न मरे। अरे, द्रव्यानुयोग में तो कहते हैं कोई किसीको बचा नहीं सकता और कोई किसीको मार नहीं सकता, तुम दूसरे को आयु दे नहीं सकते। वहां चरणानुयोग में कहते हैं कि आपको सावधानीपूर्वक आचरण रखना चाहिये। तो दोनों अनुयोगों में विरोध है क्या ? नहीं, चरणानुयोग में उपदेश की भाषा ऐसी ही होती है। हर एक अनुयोग की भाषा जुदी-जुदी है, कथन पद्धति जुदी-जुदी है। करणानुयोग कहेगा कहां कितने जीव रहते हैं, किस अवस्था में रहते हैं ? वहां कर्मों के निमित्त से होता है कहेंगे।

प्रथमानुयोग में था वाली भाषा आती है कि ऐसे था; उसने ऐसा पुण्य किया, पाप किया उसका ऐसा फल मिला। दो, चार, पांच, दस भवों की सभी बातें वहां बतायी जायेंगी। फिर वह चक्रवर्ती हुआ, उसने आकाश से तारा गिरते हुये देखा और उसे वैराग्य हो गया। वैराग्य हुआ यानी क्या ? उसने जो तत्त्वश्रवण किया था या तत्त्वों को धारण किया था, सम्यग्दृष्टि था कहेंगे तो उसके वैराग्य का कोई बाह्य निमित्त बताया। बाह्य में कुछ देखने से कोई वैराग्य-बैराग्य नहीं होता है। उस जीव को वैराग्य हुआ बस इतना बताना है। जो होगा वह सारा अंतरंग में अपने से ही होता है। तो यह था वाली बात है जो कथा कहेंगे परंतु वहां कथा बताने का प्रयोजन नहीं है। वहां भी जीवों को कोई पापी था, मुनिराज मिले, मुनिराज ने उनको उपदेश दिया तो यह उपदेश बताया जाता है। बचपन में मैंने प्रथमानुयोग के बहुत शास्त्र पढ़े थे। कैसे पढ़े थे मालूम है ? कथा में इंटरेस्ट था न; कथा पढ़ते थे उसमें राजा को मुनि मिले और मुनि ने उपदेश शुरू किया, हमने दो पन्ने पलट दिये। जो मूल पढ़ना था वही रह गया और आगे पढ़ते गये।

प्रत्येक अनुयोग की भाषा अलग-अलग होती है। चारों ही अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है, परंतु प्रत्येक अनुयोग की कथनपद्धति और विषय में अंतर है। एक ही प्रवचन में विवक्षित प्रयोजनवश अन्य-अन्य अनुयोग का कथन किया जा सकता है। वहां कोई कम्पार्टमेंट नहीं है - अभी इसमें कोई प्रथमानुयोग का कथन नहीं आयेगा ऐसा नहीं है। कहीं-कहीं करणानुयोग की बातें भी द्रव्यानुयोग में आती हैं। करणानुयोग में भी द्रव्यानुयोग बताया जायेगा क्योंकि वहां भी द्रव्यानुयोग के जो सिद्धान्त हैं उन्हीं को सिद्ध करना है। वे तो खास प्रयोजनभूत बातें हैं। उन कथनों में से वीतरागता कैसे निकालना है यह जानना हमें आवश्यक है। उस समय उस कथन का योग्य अर्थ और उसका प्रयोजन हमें समझना चाहिये। शास्त्र का प्रयोजन वीतरागता का उपदेश देना है, रागादि मिटाने का ही उसमें प्रयोजन होता है, कहीं पर भी रागादि बढ़ाने का प्रयोजन नहीं होता।

देशना में द्रव्यानुयोग के सिद्धान्तों का बड़ा महत्व है। ये सिद्धान्त यानी छह द्रव्य कौनसे हैं ? उनकी परिणमन व्यवस्था कैसी है ? कारण कौनसे होते हैं ? किससे क्या होता है ? स्व और पर क्या है ? सात तत्त्व क्या हैं ? उनका स्वरूप क्या है ? अभी हमने सब पूरी लिस्ट देखी न, यह सारा क्या है ? ये द्रव्यानुयोग के सिद्धान्त पूरा मोक्षमार्ग है। **क्योंकि जीवादि पदार्थों का** जीवादि पदार्थ जीवादि द्रव्य को भी कहते हैं और जीवादि पदार्थ नौ पदार्थ या सात तत्त्व को भी कह सकते हैं। **यथार्थ श्रद्धान होने की दृष्टि से इसमें विस्तारपूर्वक युक्ति, हेतु, दृष्टान्त** क्या कहा ? द्रव्यानुयोग में क्या देते हैं ? युक्ति। युक्ति यानी प्रमाण, नय, निक्षेपादि से वह विषय समझाया जाता है। हेतु यानी उसके कारण, लॉजिक बताये जाते हैं। दृष्टान्त के द्वारा उसको समझाया जाता है, **देकर निरूपण किया जाता है**, निरूपण यानी कथन। **प्रमाण और नयों से वस्तु का विवेचन किया जाता है, वस्तु-व्यवस्था का ज्ञान कराया जाता है, जिसप्रकार स्व-पर भेदविज्ञान हो।** स्व को स्वरूप से और पर को पररूप से जानना है कि मैं स्व हूं। मैं कहने से वह मनुष्यपर्यायवाला मैं नहीं।

लौकिक में मनुष्यपर्याय को मैं कहेंगे परंतु हमें सच्चा मैं कौन हूं ? यह समझना है। कहते हैं **स्व और पर भेदविज्ञान हो सके उसप्रकार जीव-अजीव का निर्णय कराया जाता है**, किसीको दूर करना नहीं, किसीको लाना नहीं, हटाना नहीं, कुछ नहीं। जो है उसको जानना मात्र है। जिस कारण वीतरागभाव हो उस रीति से

आस्रवादिकों का स्वरूप बताया जाता है, उसमें ज्ञान वैराग्य के कारणभूत आत्मानुभवादिक की महिमा बतायी जाती है। क्या कहना चाहते हैं ? अभी जो शुभराग हैं वे क्या हैं ? संवर है कि निर्जरा है ? *श्रोता: आस्रव है।* आस्रव है। तो आस्रव को क्या बताया है ? दुःखरूप, दुःखमय - हेय बताया है। तो शुभराग छोड़ने की बात बतायी कि नहीं बतायी ? वह छोड़ने लायक है यह पहले निश्चित करना है। कब ? अभी वर्तमान में, वे बाद में यथायोग्य छूटेंगे। मुनिराजों के भी शुभराग हैं कि नहीं हैं ? *श्रोता: हैं।* परंतु वे छोड़ने लायक हैं कब निश्चित किया था ? मिथ्यात्व अवस्था में निश्चित किया, तब आगे जाकर छूटेंगे।

घर में बेटी पैदा हुयी तो क्या निश्चित किया बेटीवालों ने ? *श्रोता: परायी है।* पराया धन है। तो क्या छोड़ दिया उसको ? *श्रोता: नहीं।* उसको पढ़ाया, लिखाया, काबिल कर दिया फिर यथायोग्य समय पर उसको टाटा, बाय-बाय कर दिया। है न ! तो कहते हैं जैसे तैरना सीखते थे तो पहले क्या लगाया ? *श्रोता: ट्यूब।* हां, ट्यूब। पहले तो डब्बा लगाते थे। जब ट्यूब लगाकर तैरना सीखते थे उस समय क्या तय किया था ? कि पूरे लाइफटाइम तक इसको कैसे ठीकठाक संभालें ? नहीं। तैरना जब तक नहीं आता तब तक उसका इस्तेमाल करे, बाद में वह छोड़ने योग्य है। ऐसे ही बाकी दुनियादारी में निर्णय करने में हम बहुत चतुर हैं। परंतु यहां शास्त्र का कोई कथन आता है उसको उलटा-पुलटा समझ लेते हैं कि शुभभाव हेय है, छोड़ने लायक है। कब ? जब हम शुद्धभाव प्रकट करेंगे तब। शुभ को भी छोड़कर शुद्धभाव प्रकट करने योग्य है यह उसका अर्थ होता है।

हमने कहा हमें नदी पार करनी है तो हम नाव में बैठे। नाव में बैठे तो किसीने बताया उस पार जाओगे तो आप नीचे उतरना। हमें तो जल्दी थी न ? तो बीच मंझधार में उतर गये, तो क्या होगा ? *श्रोता: डूब जायेगा।* मरेगा। देखो, पहले निश्चित करना है। हमें बच्चों को सिखाना था तो हमने क्या किया ? उसकी स्कूल की पढ़ाई हो गयी। अभी दसवीं में है, हमारे ज़माने में ग्यारहवीं में एस.एस.सी थी। तो ग्यारहवीं के बाद स्कूल छोड़ना है फिर स्कूललीव्हिंग सर्टिफिकेट लेकर कॉलेज में जाना है। कॉलेज में ही जाना था, स्कूल छोड़ना ही था तो स्कूल में क्यों गये ? सीधे कॉलेज में चले जाते न ! हम निश्चित तो करते हैं परंतु यथासमय छोड़ने लायक है यह हमें निश्चित करना है। शुभराग छोड़ दो और पाप करो ऐसा कहीं भी नहीं लिखा है। क्यों ? तुम छोड़ ही नहीं

सकते। यह तुम्हारे कंट्रोल की बात ही नहीं है। पहले में पहले वे मेरे से जुड़े हैं यह हमें जानना है क्योंकि त्रिकाली स्वभाव जो कायम स्वरूप है वह मैं हूँ। पर्याय में पुण्य-पाप हैं परंतु वे रखने लायक नहीं हैं इतना हमें निश्चित करना है। पहले निश्चित करेगा तब आगे जाकर मोक्षमार्ग में प्रवेश होगा। यही कह रहे हैं, देखो-

पं. टोडरमलजी कहते हैं- देखो, मोक्षमार्गप्रकाशक में इसको विस्तार से बताया है, उसमें से कुछ पैरेग्राफ यहां लिये हुये हैं। जहां अवतरण चिन्ह में लिखा है न, पृष्ठ ८९ के पहले पैरेग्राफ तक वह सारा मोक्षमार्गप्रकाशक का उद्धरण यहां पर है। **‘जो जीव आत्मानुभव का उपाय नहीं करते और बाह्य क्रियाकाण्ड में ही मग्न हैं** क्या कहा ? आत्मानुभव के लिये तत्त्व का विचार वगैरह कुछ नहीं कर रहे हैं। क्या कर रहे हैं ? बाह्य क्रियाकाण्ड यानी कोई व्रत, उपवास, दान, पूजा-विधान आदि सिर्फ बाह्य क्रियाकाण्ड में ही मग्न हैं। **उन्हें आत्मानुभवादि में लगाने को** यानी वह आत्मा का अनुभव करे इसलिये **व्रत-शील-संयमादिक का हीनपना प्रकट करते हैं।** उनको कहते हैं केवल व्रत करने से कुछ नहीं होगा। आचार्य ने उसको बालव्रत, बालतप कहा है। धर्म की शुरुआत तो सम्यग्दर्शन-आत्मानुभव से होगी। इसलिये उसको आत्मानुभव की प्रेरणा देने के लिये कहते हैं। ये सारे कैसे हैं ? अंक बिना बिंदी हैं। नहीं समझे ?

हमें करोड़ रुपये इकट्ठे करने थे। तो हमने राइट साइड से ही करना शुरू किया। वन झिरो, टू झिरो, थ्री झिरो, फोर झिरो... सेव्हन झिरो तक आ गये। कितनी रकम हो गयी ? कुछ नहीं। अंक बिना बिंदी, उसकी कुछ व्हॅल्यू नहीं होती। सम्यग्दर्शन बिना यह सब कुछ क्रियाकाण्ड हो रहा है उसकी कुछ भी कीमत नहीं है, शून्य है यह कह रहे हैं। कहते हैं इसलिये वहां उसका हीनपना बताया। परंतु वह छोड़ने की बात नहीं है। आत्मानुभव करने के लिये कहा है कि आत्मानुभव बिना व्रतों की कोई व्हॅल्यू नहीं है। **वहां ऐसा नहीं जान लेना कि इनको छोड़कर पाप में लगना।** लोग उलटा अर्थ समझते हैं। **शुद्धोपयोग प्रकट करने के लिये शुभोपयोग का निषेध करते हैं।** शुभोपयोग यानी शुभभाव का निषेध; किसके लिये ? वीतरागभाव - शुद्धभाव प्रकट हो इसलिये उसका हीनपना बताते हैं। कैसा हीनपना ? यह भी बंध का कारण है, यह भी संसार का कारण है। यह तो घोर संसार का कारण है। किसको बताया ? इन व्रतादिकों को। किसके सामने ? हां, शुद्धोपयोग के सामने।

जब तक सम्यक्त्व नहीं होता है तब तक कितने भी व्रतादि करे तो भी क्या होगा ? एकाध भव स्वर्ग का मिलेगा, फिर क्या होगा ? वही चक्कर चलेगा। इसलिये कहते हैं वह हीन है। **अध्यात्मशास्त्र में पुण्य और पाप दोनों बंध के कारण होने से समान कहलाते हैं। परंतु पुण्य मंद कषायरूप है और पाप तीव्र कषायरूप है, इसलिये पुण्य छोड़कर पाप में लगना युक्त नहीं है।** उपदेश का मर्म हमें समझना चाहिये। उपदेश का उलटा अर्थ लगाकर यथार्थ उपदेश का निषेध करना योग्य नहीं है। इस बात का लोग ऐसा विरोध करते हैं - आप ऐसा उपदेश दोगे तो सारे स्वच्छंदी होकर पाप में लग जायेंगे। परंतु यहां व्रतादि छोड़ने के लिये कहा है कि आत्मानुभव करने के लिये बताया जा रहा है ? *श्रोता: आत्मानुभव करने के लिये।*

आप व्रतादि कर रहे हैं परंतु केवल इतना करने से कार्य नहीं होगा, बस इतनी बात है। **कुछ लोगों का कहना है कि द्रव्यानुयोग में व्रत संयमादि व्यवहार धर्म को हीन कहा है, सम्यग्दृष्टि के विषयभोग को निर्जरा का कारण कहा है - ऐसे कथन को सुनकर जीव स्वच्छंदी होंगे, पुण्य छोड़कर पाप में मग्न होंगे। इसलिये ऐसे शास्त्र वाचना-सुनना योग्य नहीं है। तुम ही विचार करो, तीव्र मिथ्यात्वी जीव कल्याणकारी अध्यात्मग्रंथों का उपदेश सुनकर भी स्वच्छंदी ही होंगे परंतु इसकारण विवेकी जीव अध्यात्मशास्त्रों का अभ्यास करना तो नहीं छोड़ेंगे।** क्योंकि मूल उपदेश तो द्रव्यानुयोग में अध्यात्मग्रंथों में पाया जाता है कि अपनी आत्मा का अनुभव कैसे करना ? **जो यथार्थ रीति से सुनेगा वह स्वच्छंदी नहीं होगा। परंतु संदर्भरहित कोई बात, संदर्भरहित का अर्थ क्या है ?** पहले कानजी स्वामीजी के बारे में क्या होता था ? मैं जब छोटी थी, तब कानजी स्वामीजी का बहुत विरोध होता था। उन्होंने कोई कथन किया हो उसमें से आधा-अधूरा वाक्य लेकर और फिर उसको हायलाइट करके विरोधी प्रस्तुत करते थे कि देखो ये ऐसा कहते हैं। जैसे कोई कहेगा, मात्र पूजा करने से कोई कल्याण नहीं है। मात्र शब्द डाला है न ? आत्मानुभव से उसका कार्य होगा, मात्र भगवान की पूजा करने से नहीं होगा - ऐसा कानजी स्वामीजी कहते थे; तो विरोधी कहते हैं कि देखो, यहां पूजा का निषेध कर रहे हैं।

अध्यात्मशास्त्र के कथन का ऐसा गलत अर्थ लगाना ठीक नहीं है। हां, **संदर्भरहित कोई वाक्य पढ़कर या सुनकर कोई जीव स्वयं के मिथ्या अभिप्राय से स्वच्छंदी हो जाये** वह अध्यात्म के कारण स्वच्छंदी नहीं होता है, अपने अभिप्राय के

कारण वह स्वच्छंदी हो रहा है तो उसमें ग्रंथों का तो कोई दोष नहीं है उस जीव का ही दोष है। फिर अवतरण चिन्ह में पं. टोडरमलजी का कथन डाला है, देखो- 'यदि झूठे दोष की कल्पना करके अध्यात्मशास्त्रों को पढ़ने-सुनने का निषेध करे तो मोक्षमार्ग का मूल उपदेश तो वहां है; मोक्षमार्ग का मूल उपदेश यानी कैसे अपनी आत्मा का अनुभव करना यह उपदेश तो वहीं पाया जायेगा। उसका निषेध करने से तो मोक्षमार्ग का निषेध होता है। स्वच्छंदी होनेवाला जीव तो पहले भी मिथ्यादृष्टि था और अब भी अध्यात्मशास्त्र पढ़कर भी मिथ्यात्वी ही रहा। उन्होंने कहा जो पहले से ही गिरा हुआ हो वह और क्या गिरेगा ? वह तो स्वच्छंदी है ही, मिथ्यादृष्टि है ही। परंतु यदि अध्यात्मशास्त्र का उपदेश ही नहीं रहा तो बहुत जीवों के मोक्षमार्ग की प्राप्ति का अभाव होता है और इसमें अनेक जीवों का बहुत बुरा होता है। इसलिये अध्यात्मशास्त्रों के उपदेश का निषेध नहीं करना।'

जिस अपेक्षा से जो कथन होता है उसको बराबर सही जानने की कोशिश करना। यह सब विवेचन पं. टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रंथ के 'उपदेश का स्वरूप' नामक आठवें अधिकार में किया है। वह संपूर्ण प्रकरण अर्थात् आठवां अधिकार आदि से अंत तक ध्यानपूर्वक पढ़ना। हम उसमें से यहां कितने उद्धरण देंगे ? उसमें अपनी अनेक शंकाओं का समाधान हो जाता है। वे लिखते हैं- 'कितने ही जीव कहते हैं कि द्रव्यानुयोगरूप अध्यात्म उपदेश है वह उत्कृष्ट है सो उच्च दशा को प्राप्त हो उनको कार्यकारी है; निचली दशावालों को व्रतसंयमादिक का उपदेश देना ही कार्यकारी है।' पं. टोडरमलजी ने उस ज़माने में कहा था, आज की बात नहीं है। यह बात आज भी लागू होती है। अध्यात्म उपदेश तो मुनियों के लिये, श्रावकों के लिये है, मिथ्यादृष्टियों के लिये नहीं है ऐसा कहनेवाले भी हैं।

उनसे कहते हैं- 'जिनमत में यह परिपाटी है कि पहले सम्यक्त्व होता है फिर व्रत होते हैं; यानी प्रथम लेव्हल की बात क्या है ? सम्यक्त्व की बात है और फिर व्रतों की बात है। वह सम्यक्त्व कैसे होता है ? स्व-पर का श्रद्धान होने पर होता है और वह श्रद्धान द्रव्यानुयोग का अभ्यास करने पर होता है; इसलिये प्रथम द्रव्यानुयोग के अनुसार श्रद्धान करके सम्यग्दृष्टि हो, पश्चात् चरणानुयोग के अनुसार व्रतादिक धारण करके व्रती हो। सबसे पहले सम्यग्दर्शन का उपदेश दिया जाता है और बाद में व्रतों का। हां, ऐसा हो सकता है किसीने पहले व्रत अंगीकार किये

वह मिथ्यात्व गुणस्थान से सीधा सातवें में जा सकता है। वह भी तत्त्वविचार से ही इतना पुरुषार्थ हो सकता है, उसकी ना नहीं है। परंतु सामान्यरूप से सम्यक्त्व के बिना केवल व्रत धारण किये, परंतु सम्यक्त्व का कोई पुरुषार्थ नहीं किया, तत्त्वविचार नहीं किया तो उसे कुछ लाभ नहीं होगा यह कहना चाहते हैं।

इसप्रकार मुख्यरूप से तो निचली दशा निचली दशा यानी अभी तो मिथ्यादृष्टि है और आगे चौथा गुणस्थान भी हुआ - सम्यग्दर्शन हुआ तो भी उसको स्वाध्याय की क्या जरूरत है ऐसा नहीं होगा। सम्यक्त्व होने के बाद भी उसको स्वाध्याय से तत्त्वनिर्णय में और दृढ़ता करनी है। उसे दुनियादारी में तो रस बाकी नहीं रहा। करेगा क्या वह ? उसका मन स्वाध्याय में ही लगेगा। तो कहते हैं मुख्यरूप से **निचली दशा में ही द्रव्यानुरूप कार्यकारी है; गौणरूप से जिसे मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती न जाने उसे पहले किसी व्रतादिक का उपदेश देते हैं;** देखो, कोई ऐसा है कि उसकी बुद्धि की अल्पता है, कुछ नहीं जानता है, उसे कुछ सोच यानी विचार-विवेक नहीं है तो उसको आचार्य या अन्य कोई उपदेश करते हैं कि तू इतना व्रत पाल। जिसे कोई विवेक नहीं है, इतनी बुद्धि नहीं है ऐसे सामान्य जीवों को क्या कहेंगे ? यह व्रत तू अंगीकार कर। सामनेवाला जीव कैसा है उसके अनुसार उसको ऐसा कहने में भी आता है।

देखो- **इसलिये ऊंची दशावालों को अध्यात्म-अभ्यास योग्य है ऐसा जानकर निचली दशावालों को वहां से पराङ्मुख होना योग्य नहीं है।** क्योंकि मोक्षमार्ग का मूल उपदेश अध्यात्मग्रंथों में है। इसलिये यह हमारे लेक्चर की बात नहीं है कहकर उसको टालना मत। उसके लिये तो वह और अधिक कार्यकारी है, हर एक जीव को जरूरी है। **‘तथा यदि कहोगे सामनेवाला प्रश्न करता है, कि ऊंचे उपदेश का स्वरूप निचली दशावालों को भासित नहीं होता।** हम निचली दशावाले हैं, हम अज्ञानी हैं, यह समयसार वगैरह अध्यात्मग्रंथ हैं न; उसका उपदेश हमें समझता नहीं है। अभी सुबह पंचास्तिकाय पर गुरुदेवश्री के प्रवचन चल रहे हैं - हमारी समझ में कुछ नहीं आता है; यह द्रव्य, गुण, पर्याय क्या है ? कितनी कठिन बातें हैं - ऐसा लोग कहते हैं। सिद्धान्त प्रवेशिका पढ़ने आते हैं, तब कहते हैं- यह द्रव्य, गुण, पर्याय बहुत कठिन बात है। उसके बदले आसान बातें करो; कौनसी ? व्रत करो, उपवास करो। शास्त्र की बात कहो ही नहीं। हमें कोई उपवास करने को कहो, कोई विधान करने को

कहो, पूजा-विधान, यात्रा करने को कहो, दान देने को कहो - यह सरल बात है। वह हमें समझ में आती है।

उत्तर यह है- और तो अनेक प्रकार की चतुराई जानें यानी लौकिक में तो बहुत चतुर है **और यहां मूर्खपना प्रकट करे, वह योग्य नहीं है।** यहां कहता है यह मेरी समझ में नहीं आता और बाहरी दुनियादारी की सब बातें उसको समझ में आती हैं। **अभ्यास करने से स्वरूप भली-भांति भासित होता है;** क्या कहना चाहते हैं ? किसी भी विषय का अभ्यास करने से वह ख्याल में आता है। हम मराठी मीडियम में पढ़े थे और फिर कॉलेज में गये तो सारा अंग्रेजी मीडियम। पहले दो महीने सुनते रहे- सुनते रहे, कुछ समझता नहीं था क्या सुन रहे हैं। फिर बाद में समझ में आने लगा। हमने ऐसा भी देखा है ये दक्षिण भारत के लड़के जयपुर में टोडरमल स्मारक में प्रवेश लेते हैं। उनको हिन्दी भाषा बिलकुल समझ में नहीं आती। अरे, पानी को क्या कहना वह भी मालूम नहीं है। हमने उनके मुंह से ये सब बातें सुनी हैं। किसीको कुछ पूछना है, किसीको कुछ मांगना है यानी खाने-पीने तक की चीजें वे मांग नहीं सकते क्योंकि हिन्दी भाषा से पूरे अनभिज्ञ हैं। फिर भी वहां छह महीने के अंदर वे हिन्दी में उत्कृष्ट प्रवचन करने लगते हैं। हमने वहां अनेक बच्चों को देखा है। अभ्यास से, अभ्यास यानी प्रॅक्टिस से कोई भी चीज हम हासिल कर सकते हैं। यहां पर भी करणानुयोग के नाम से ही पहले भाग जाते हैं। शिबिर में आने के पहले हमें कुछ नहीं समझ आयेगा ऐसा डर लगता है। दूसरा डर क्या है ? हम छह-छह घंटे कैसे बैठेंगे ? कहां हैं कोबावाले ? हां, आये हैं, वहां बैठे हैं।

उन्होंने हमें पहली बार प्रवचनार्थ कोबा बुलाया था। वहां सबको यही डर था, कि छह घंटे बैठकर ऐसे विषयों को सुनना, यह कैसे होगा ? रोज के छह घंटे की तो हमारी कंडिशन है इसलिये पांच-छह साल से तो यही बात चल रही थी- छह घंटे कौन सुनेगा ? इस बार उन्होंने ढाढ़स करके बुला लिया। दो सौ से भी ज्यादा लोग थे वहां। शिबिर होने पर उन्होंने इतनी सराहना की, वे कहने लगे आगे का नवरंगपुरा का प्रोग्राम कॅन्सल कर दो, अभी और पंद्रह दिन यहीं रुको। क्योंकि तत्त्व सुने ही नहीं थे, समझे ही नहीं थे। जब सुनते हैं, समझते हैं, बात समझ में आती है तो उसका रस बढ़ता है। अभी यहां बहुत सारे कोबावाले भी आये हैं।

क्या कहते हैं ? **अभ्यास करने से** यानी प्रॅक्टिस से **स्वरूप भलीभांति भासित होता है, अपनी बुद्धि अनुसार थोड़ा-बहुत भासित हो; परंतु सर्वथा निरुद्यमी होने का पोषण करें वह तो जिनमार्ग का द्वेषी होना है।** देखो, पहली बार हम सुनते हैं, समझना चाहते हैं या पढ़ते हैं तब बातें ख्याल में नहीं आती हैं। परंतु बार-बार पढ़ते गये, पढ़ते गये तो जरूर वे चीजें भासित होने लगती हैं। अभ्यास करते रहने से वे बातें स्पष्ट हो जाती हैं। अपने ज्ञान की योग्यता बढ़ती है तो सामने सहजरूप से वह बात अपने को मिल जाती है।

यहां क्या कहा ? देखो, **तथा यदि कहोगे कि यह काल निकृष्ट है इसलिये उत्कृष्ट अध्यात्म उपदेश की मुख्यता नहीं करना।** पंचमकाल है। उनसे कहते हैं- **यह काल साक्षात् मोक्ष न होने की अपेक्षा निकृष्ट है, आत्मानुभवनादिक द्वारा सम्यक्त्वादिक होना इस काल में मना नहीं है।** आगम की यह बात है न कि इस काल में भी जो द्रव्य से पुरुष हैं उनका पुरुषार्थ सातवें गुणस्थान तक का है। यानी छठें-सातवें गुणस्थान - मुनि अवस्था उनको प्राप्त हो सकती है। स्त्रियों को ऐसे भी पांचवें गुणस्थान तक का ही पुरुषार्थ होता है, किसी भी काल में-चौथे काल में भी; उसके ऊपर के गुणस्थान उनके नहीं होते। स्त्री पर्याय में रहते हुये मोक्ष नहीं है। हां, वह स्त्री सम्यग्दृष्टि होगी तो मरकर देव में पुरुष होगी। वहां से आकर मनुष्य में भी पुरुष होकर उसका जन्म होगा और उसका मोक्ष होगा - उसकी ना नहीं है। परंतु जो मैं मनुष्य हूं, मैं स्त्री हूं ऐसा मानकर बैठे हैं; मैं जीव हूं, आत्मा हूं ऐसा जिन्होंने नहीं माना है उनको गुस्सा आता है। क्यों ? वे कहते हैं ये शास्त्र पुरुषों ने लिखे हैं न, इसलिये स्त्री को मोक्ष का निषेध किया है - ऐसा नहीं है। किस पर्याय में क्या कार्य हो सकता है ये बातें उचित निमित्तरूप से बतायी जाती हैं। वे बातें सर्वथा सही हैं।

उनसे कहते हैं इस काल में साक्षात् मोक्ष न होने की अपेक्षा निकृष्ट है; इसलिये आत्मानुभवनादिक के अर्थ द्रव्यानुयोग का अवश्य अभ्यास करना। इसी पंचमकाल के कुंदकुंदाचार्य कब के थे ? पंचमकाल के और उपदेश किसके लिये दिया ? चतुर्थ कालवालों को ? नहीं, पंचमकाल के लोगों को। उन्होंने मोक्षपाहुड में कहा है कि इस काल में भी द्रव्यानुयोग का उपदेश मुख्य चाहिये। उन सिद्धान्तों को मुख्य रखकर हम चारों ही अनुयोगों का अभ्यास करें तो उनमें से हम द्रव्यानुयोग के सिद्धान्तों को पुष्ट करके भेदविज्ञान कर सकते हैं। करणानुयोग पढ़ने में

भी हमारा प्रयोजन क्या है ? भेदविज्ञान करना है। देखो, हमारा उपयोग कैसा है ? चंचल है। नहीं समझते ? उसको जुदे-जुदे अनेक अवलंबन चाहिये। एक जगह उसका उपयोग स्थिर नहीं होता है। आपको मालूम नहीं ? हम टीव्ही के सामने बैठते हैं और हाथ में रिमोट है। टीव्ही सीरियल में बीच में क्या आता है? *श्रीता: ब्रेक आता है।* उसमें इश्तेहार दिखाते हैं तो क्या करते हो ? रिमोट लेकर इस चैनल पर क्या चल रहा है ? उस चैनल पर क्या चल रहा है ? देखते रहते हैं, क्योंकि यह उपयोग चंचल है न ?

करणानुयोग का अभ्यास करते समय विषय इतना इंटरेस्टिंग हो जाता है कि हमारा उपयोग उसमें केंद्रित होता है, दूसरे कोई विचार भी नहीं आते। यह तो अनुभव की बात है न ! जब उसमें से बात समझ में आने लगती है तो उसमें इंटरेस्ट बढ़ता है और यहां अपना भिन्न स्वरूप भासित होता है। वहां कर्मों को जानने के लिये उसकी बातें नहीं हैं, इस कर्म से तो हम जुदे हैं। परंतु त्रिलोक में क्या-क्या है ? जीव कैसे परिणाम से क्या करता है ? उसकी क्या-क्या अवस्थायें होती हैं ? आज तक अनादिकाल से हमने कहां-कहां काल बिताया है ? किस-किस पर्याय में कहां जीव हैं ? हम यह सब जानने की कोशिश करते हैं तो उसमें हमारा उपयोग इतना लगता है कि दुनियादारी के विचार भी नहीं आते। उसमें उपयोग सूक्ष्म होता है।

इसलिये यहां द्रव्यानुयोग का उपदेश मुख्य है। उसके सिद्धान्तों को आत्मसात करके फिर हमें सभी अनुयोग कार्यकारी हैं। वहां किसी अनुयोग का निषेध नहीं है। **द्रव्यानुयोग के शास्त्रों का निषेध करना, जिनवाणी का अपमान करना, बाहर फेंक देना, नष्ट करना, वैसा करनेवालों की अनुमोदना करना** जब वह लिखा गया तब कुछ ऐसे प्रसंग बने थे। **उनका आदर करना** किसका ? नष्ट करनेवालों का। **यह तो नरक-निगोद के टिकट पर अपने हाथ से स्वाक्षरी करना है। नहीं समझे ?** आजकल की बात नहीं है। उस ज़माने में क्या करना पड़ता था ?

बाहरगांव जाने से पहले हम रेलवे टिकट का आरक्षण करते थे, उसके लिये स्वाक्षरी करके फॉर्म यानी आवेदनपत्र भरते थे। इसका मतलब यह हुआ की हम स्वयं स्वेच्छा से वहां जाने की तैयारी करते हैं। ये जो आगम का निषेध करते हैं, द्रव्यानुयोग का निषेध करते हैं या जिनवाणी का अवमान करते हैं, तो वे नरक-निगोद का आरक्षण कर रहे हैं। यह तो समझने जैसी बात है। **यहां भी ऐसा ही समझना। ऐसे परिणामों**

के फलस्वरूप ज्ञानावरणादि पाप प्रकृतियों का ऐसा तीव्र बंध होगा। ज्ञानावरणादि तो हर समय बंध रहे हैं। उसका अनुभाग इतना तीव्र बंधेगा कि भविष्य में उसके फलस्वरूप अनंतकाल निगोद में जन्म-मरण करना पड़ेगा। क्योंकि इतना तीव्र अनुभागवाला ज्ञानावरण बंधा है तो एकेन्द्रिय में जाकर ज्ञान की हीन पर्याय होनी है और अनंतकाल वहां भटकना पड़ेगा। अभी तो लगता है कि मैं कुछ विशेष कर रहा हूं, परंतु ऐसा करनेवाले कहां जानेवाले हैं उसका अंदाजा हम लगा सकते हैं।

देशनालब्धि के वर्णन में हमने देखा कि श्रवण, ग्रहण, धारण, निर्धारण इसके अंग हैं। दिव्यध्वनि में चारों अनुयोगों का कथन आता है तो चारों ही देशनारूप हैं। क्या कहा ? चारों ही अनुयोगों को देशना में सम्मिलित कर सकते हैं। उनमें द्रव्यानुयोग कथित तत्त्वों की हेय ज्ञेय उपादेयरूप से परीक्षा करना। यानी द्रव्यानुयोग में हम जो तत्त्व सीखते हैं वे ऐसे ही हैं कि नहीं उसकी परीक्षा करना। उसमें जीवादिक द्रव्यों और तत्त्वों को पहचानना, स्व-पर को पहचानना। वहां त्यागने योग्य जिसको हमने हेय कहा था मिथ्यात्व रागादि और ग्रहण करनेयोग्य क्या है ? सम्यग्दर्शनादिक का स्वरूप पहचानना। निमित्त-नैमित्तिक जैसे हैं वैसे पहचानना। निमित्त का अवलंबन लो, उसको ढूंढो ऐसा नहीं कहा - जैसा है वैसा जानो।

करणानुयोग, चरणानुयोग, प्रथमानुयोग के कथन को जानना। जहां परीक्षा हो सके वहां करना, जैसे मेरु पर्वत कहां है ? उसकी हाइट कितनी है ? उसकी परीक्षा कैसे करोगे ? त्रिलोक की रचना है - स्वर्ग कहां होते हैं ? नरक कहां होते हैं ? कौनसे जीव के परिणाम कैसे होते हैं ? देव कौनसी प्रकृतियां बांधते हैं ? मरकर कहां जा सकते हैं ? नारकी कहां जन्म लेते हैं ? कौनसे संहननवाले कहां तक जाते हैं ? उसमें क्या परीक्षा करोगे ? करणानुयोग अहेतुवाद आगम है। हेतु यानी उसमें कोई तर्क नहीं लगा सकते। उसमें तो जैसा है वैसा भगवान ने जाना है और जैसा जाना है वैसा उनकी वाणी में आया है। उसमें हमारी बुद्धि कोई काम नहीं करती है। 'ऐसा क्यों ?' वहां आचार्य हमेशा कहते हैं कि जो वस्तु का स्वरूप है, उसमें आपके 'ऐसा क्यों ?' इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये स्वभाव बाध्य नहीं है। वस्तुस्वरूप जैसा है वैसा आप जान सकते हैं। करणानुयोग में ऐसा क्यों ? वैसा क्यों ? ऐसे प्रश्न उपस्थित नहीं हो सकते। द्रव्यानुयोग में बिलकुल कहेंगे आस्रव क्यों दुःखकारी है ?

जीवतत्त्व क्या है ? अजीवादि क्या हैं ? उसको हम लक्षणों से पहचान सकते हैं।

इस प्रकार यह पं. टोडरमलजी की बात है **इस जानने के अर्थ** यानी जानने के लिये **कभी स्वयं ही विचार करता है, कभी शास्त्र पढ़ता है, कभी अभ्यास करता है, कभी प्रश्नोत्तर करता है इत्यादिरूप प्रवर्तता है।** यानी उसमें उसको उत्साह है। है न ! **अपना कार्य करने का इसको हर्ष बहुत है,** कौनसा कार्य ? आगम पढ़कर, सुनकर, तत्त्वविचार करना, तत्त्वनिर्णय करना, उसमें उसको बहुत हर्ष होता है, उल्लास आता है। **इसलिये अंतरंग प्रीति से उसका साधन करता है। इसप्रकार साधन करते हुये जब तक** देखो, सच्चा तत्त्वश्रद्धान न हो तो सच्चा तत्त्वश्रद्धान हुआ कि नहीं हुआ कैसे पता चलेगा ? क्या कहते हैं सौमिल ? हां, सम्यग्दर्शन होगा। आत्मा का अनुभव होगा, अतीन्द्रिय आनंद प्रकट होगा। **(१) सच्चा तत्त्वश्रद्धान न हो, (२) 'यह इसीप्रकार है' - ऐसी प्रतीति सहित जीवादि तत्त्वों का स्वरूप आपको यानी अपने को भासित न हो, (३) जैसे पर्याय में अहंबुद्धि है वैसे केवल आत्मा में अहंबुद्धि न आये। इसका क्या अर्थ होता है ?**

जैसे मनुष्यपर्याय में यह मैं हूं ऐसी आत्मबुद्धि है, वैसे वस्त्र में किसीको, मैपना होता है ? लाल वस्त्र पहनने से कोई मैं लाल हो गया हूं मानता है ? नायलॉन पहनने से मैं नायलॉन का हूं और अभी कॉटन पहना तो मैं कॉटन का हो गया हूं ऐसा लगता है ? उसको वस्त्र से जुदाई भासित हो रही है। तो जैसे मनुष्यपर्याय में मैपना है, वैसे जब उसको आत्मा में मैपना भासित होगा तब तक तत्त्वविचार करना है। वह कब होगा ? सम्यग्दर्शन प्राप्त होते ही। **जैसे पर्याय में यानी मनुष्यपर्याय में मैपना है, अहंबुद्धि है वैसे केवल यानी सिर्फ आत्मा में अहंबुद्धि न आये, (४) हित-अहितरूप अपने भावों को न पहचाने,** अहितरूप अपने भाव कौनसे हैं ? रागादि और अपने हितरूप भाव ? संवर, निर्जरा, मोक्ष जो मुझे प्रकट होंगे। **तब तक सम्यक्त्व के सन्मुख मिथ्यादृष्टि है।** जो तत्त्व का विचार कर रहा है, परंतु जब तक सम्यक्त्व नहीं होता है **तब तक सम्यक्त्व के सन्मुख है।** और जब होगा तब क्या कहेंगे ? सम्यग्दृष्टि कहेंगे। सम्यक्त्व के पूर्व की अवस्था बता रहे हैं। वह तत्त्वविचार में लगा है।

यह जीव थोड़े ही काल में सम्यक्त्व को प्राप्त होगा; तभी तो उसको सम्यक्त्वसन्मुख कह दिया है। **इसी भव में या अन्य पर्याय में वह सम्यक्त्व को प्राप्त**

करेगा। अन्य पर्याय में क्यों ? प्रश्न था कि देशना की मर्यादा कितनी होती है ? तो कहते हैं देशना तीन भव तक चलती है, यदि वह संज्ञी पंचेन्द्रिय रहेगा तो। अगर ज्ञान का संस्कार, ज्ञान की धारा छूट जाये, बीच में असंज्ञी हो जाये तो मन संबंधी ज्ञान वहीं समाप्त हो जायेगा। तो उसके नेक्स्ट भव में देशना कार्य नहीं करेगी। संज्ञी से संज्ञी होता रहा तो तीसरे भव तक वह देशना काम कर सकती है। देशना पूर्वभव में मिली थी और बाद में सम्यक्त्व हुआ तो उसको निसर्गज सम्यक्त्व कहते हैं और उसी भव में किसीको ज्ञानी के उपदेश से सम्यक्त्व हो जाये तो उसे अधिगमज सम्यक्त्व कहते हैं।

वे आगे लिखते हैं, देखो, तत्त्वविचार की महिमा ! यह मोक्षमार्गप्रकाशक में सबने बहुत बार पढ़ा है, हैं न ! **तत्त्वविचार रहित** यानी जो तत्त्व का विचार नहीं कर रहा है परंतु क्या कर रहा है ? **देवादिक की प्रतीति करे,** यानी देव-शास्त्र-गुरु का बहुमान करता है। पूजा करता है, यात्रा करता है, यहां दर्शन किया, वहां किया। सच्चे भगवान को मानता है अन्य किसीको नहीं मानता है। **बहुत शास्त्रों का अभ्यास करे,** अभ्यास बहुत करता है परंतु तत्त्वविचार, स्व-पर का भेदविज्ञान कुछ नहीं है। **व्रतादिक पाले, तपश्चरणादि भी करे, उसको तो सम्यक्त्व होने का अधिकार नहीं है।** क्योंकि सम्यक्त्व किसको होगा ? जो तत्त्वविचारपूर्वक तत्त्वनिर्णय तक पहुंचेगा उसीको सम्यक्त्व होगा। **और तत्त्वविचारवाला इनके बिना भी** क्योंकि उसने अभी कोई व्रतादिक अंगीकार नहीं किये हैं। परंतु सहीरूप से तत्त्वविचार द्वारा तत्त्वनिर्णय तक पहुंचा है वह, **सम्यक्त्व का अधिकारी होता है।**

जीव तो केवल तत्त्वविचार और तत्त्वनिर्णय करने लगता है उसीसे प्रायोग्यलब्धि प्राप्त होती है। लोग कहते हैं कुछ प्रयोग करने की बात करो। यह प्रयोग करने का नाम प्रायोग्यलब्धि नहीं है। जिसको देशना मिली है ऐसा जीव जब तत्त्व का विचार करता है तब तत्त्वविचार के काल में कर्मों में बहुत बड़ी उलट-पुलट हो जाती है। सुनामी जैसा क्या-क्या होता है ! कांडकघात वगैरह होते हैं ? वह हम देखेंगे प्रायोग्यलब्धि में क्या होता है ? तत्त्वनिर्णय करता है उसीसे प्रायोग्यलब्धि प्राप्त होती है। यानी उसी काल में वह प्रायोग्यलब्धि में होनेवाले वे सारे परिवर्तन होते हैं जो हम अभी देखने जा रहे हैं। **और गहराई से तत्त्वचिंतन में डूब जाता है** गहराई तक स्थिर हो जाता है तो क्या होगा ? करणलब्धि शुरू हो जायेगी। तत्त्वविचार और तत्त्वनिर्णय करने लगता है तो प्रायोग्यलब्धि है और आत्मसन्मुख अवस्था में तत्त्वविचार में गहराई में लीन

हो गया तो शुद्धात्मसन्मुख अवस्था में करणलब्धि और सम्यक्त्व की प्राप्ति भी कैसे होती है ? सहज होती है। कुछ करना-धरना नहीं है वहां। अभी उपयोग अंदर कैसा लगायेंगे ? कौनसा विचार करेंगे ? वगैरह विकल्प की बात यहां नहीं है। क्या-क्या होता है उसकी चर्चा अभी हम करेंगे। अन्य कुछ करने-धरने की बात नहीं रहती।

देशनालब्धि के प्रकरण में हमने देशना तथा देशनालब्धि का स्वरूप विस्तार से देखा, उसके श्रवण, ग्रहण, धारण, निर्धारण आदि अंगों की चर्चा भी की। द्रव्यानुरूप के जिन तत्त्वों को और सिद्धान्तों को, कौन-कौनसे ? छह द्रव्य कौनसे हैं ? उनके लक्षण क्या हैं ? उनका स्वरूप क्या है ? पर्याय का स्वरूप क्या है ? सात तत्त्व क्या हैं ? हेय, ज्ञेय, उपादेय आदि क्या हैं ? जिनको हमें परीक्षापूर्वक जानना है और निर्णय करना है। उन अति महत्व के विषयों की चर्चा हम 'जैन तत्त्व परिचय' नामक पहली पुस्तक में तथा आगे के जो सिद्धान्त हैं, कौनसे ? सर्वज्ञ का निर्णय, क्रमबद्धपर्याय का निर्णय, स्व-पर का भेदविज्ञान, चार अभाव, षट्कारक, पांच समवाय, निमित्त-उपादान आदि जो सिद्धान्त हैं वे 'जिनागम का कारण कार्य रहस्य' पुस्तक में पत्ररूप स्वाध्याय द्वारा कर चुके हैं। शास्त्रों का श्रवण और वाचन करने के पश्चात् 'अब हमें क्या करना चाहिये ?' ऐसा प्रश्न लोगों के मन में उठता है। यह हर एक का प्रश्न है अभी हम क्या करें ? ऐसा भी पूछते हैं जब तक सम्यग्दर्शन नहीं होता तब तक शुभभाव करना चाहिये न ? अरे, शुभ और अशुभभाव तो हो ही रहे हैं। वह 'चाहिये न' वाला जो वजन है न, वह शुभभाव पर है।

अभी भी शुभभाव के खाते में उसे जरा ज्यादा वजन लगता है। करना चाहिये न का अर्थ क्या है ? कोई गिर गया है तो उसको क्या करना चाहिये ? रास्ते में फिसल गया, क्या करना बेटा ? उठना। उठने के पहले क्या करना ? उठने की कोशिश करना और क्या करना ? ऐसे ही सम्यग्दर्शन नहीं होता तो क्या करना ? अरे, तत्त्वनिर्णय में लगे न। तो शुभभाव करना चाहिये न ? परंतु सर्वोत्कृष्ट शुभभाव तो तत्त्वविचार है। आत्मा संबंधी जो विकल्प होंगे वे हैं तो राग, परंतु सर्वोत्कृष्ट शुभभाव है। करना चाहिये में मैं क्या कर सकता हूं ? तो हम कहते हैं जो कर सकते हो वह करो। क्या कर सकते हो ? जीव तो जानना-जानना ही करता है, वह तो चल ही रहा है न ? फिर भी, प्रश्न में ही उसका कन्फ्यूजन, उसकी भूल ख्याल में आती है।

देखो, इस प्रश्न का कारण है जीव अनादिकाल से कुछ करना चाहता है। क्या करेंगे ? उपवास करेंगे, व्रतादि करेंगे, भगवान की पूजा करेंगे, दान देंगे - तो इसमें से मैं क्या करूँ ऐसा प्रश्न पूछता है। **परंतु मैं क्या कर सकता हूँ और क्या नहीं कर सकता इसका निर्णय न होने के कारण** क्यों नहीं है निर्णय ? क्योंकि मैं जीवद्रव्य हूँ, बाकी जो मुझे दिख रहे हैं, इन्द्रियों के द्वारा जिसको मैं जान रहा हूँ वह सारा पुद्गल है। यह शरीर भी पुद्गल है और शरीर की क्रिया मेरा कार्य ऐसा भासित हो रहा है और यह मैं कर सकता हूँ ऐसी मान्यता है। यहां तत्त्वनिर्णय क्या करना है ? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं कर सकता। मेरे अनंतगुण मुझ में हैं और हर समय परिणमन कर रहे हैं। तो अभी मुझे क्या करना ? यह सवाल ही नहीं उठता। मैं कर ही रहा हूँ; क्या कर रहा हूँ ? ज्ञानादि अपना कार्य कर ही रहा हूँ। परंतु जीव ने उसको अपना कार्य नहीं माना है। राग किया, शुभराग किया, कुछ क्रिया की तो मैंने कुछ किया ऐसा लगता है। यह उसकी भूल है इसलिये अभी उसे क्या करना चाहियेवाला प्रश्न उठता है।

मैं क्या कर सकता हूँ ? इसका उसको निर्णय नहीं होने के कारण **विशिष्ट क्रिया** - कौनसी विशिष्ट क्रिया ? **भक्ति, पूजा, ध्यान**, ध्यान भी करना चाहता है और ध्यान के नाम पर विकल्प में रुका रहता है। जब तत्त्व का निर्णय हो जाता है तो अपना आत्मस्वरूप सहज उसकी पकड़ में आता है। परंतु यह विकल्पदशा है। सविकल्प है वह राग है, राग की दशा है यह उसको ख्याल में नहीं आता। उसका निषेध नहीं है, जैसा शुभभाव का निषेध नहीं है। भले सविकल्प ध्यान होता है - मैं शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ - परंतु शुद्ध हूँ का अर्थ नहीं मालूम। शुद्ध हूँ का अर्थ क्या है ? बोलो ? शुद्ध तो तब होगा जब शुद्ध भाव प्रकटेंगे। अभी शुद्ध क्यों कहते हैं ? उसकी अपेक्षा क्या है वह समझना चाहिये। उसकी बात मैं अभी नहीं उठाऊंगी। शुद्ध किस अपेक्षा से कहा है वह बात कभी आयेगी तो कहूंगी। यहां कहते हैं कि हम केवल वह रटते हैं और रटना चल रहा है उसको हमने ध्यान मान लिया है। वह है तो ध्यान, परंतु वह कौनसा है ? सविकल्प ध्यान है। वह शुभराग है, वह रागरूप ध्यान है। वह वीतराग यानी जिस ध्यान में सम्यग्दर्शन होगा वह ध्यान नहीं है।

निर्विकल्प ध्यान - निर्विकल्प यानी अभेद, अखंड आत्मा को ध्यान में लेना है। लौकिक में तो हम इतने सयाने हैं ! क्या होता है ? आम का सीझन है क्यों नीताबहन ? अच्छा खासा आम लाया और उसका आमरस करके मम्मी ने सामने रखा। हमें

आमरस का आनंद लेना है। तो क्या हम विकल्प करने बैठ गये ? क्योंकि बहुत सुना है न उसके बारे में। यह आम पीला है, मधुर है, सुंदर है - कितना विकल्प करते हैं ? तो कितना विकल्प करने से अनुभव होगा ? तो क्या करते हैं ? गटक- गटक पी जाते हैं। ऐसे ही जिस आत्मा की बात कर रहे हैं वह तो मैं स्वयं हूं और जिसके द्वारा मुझे जानना है वह ज्ञान भी मेरे में हर समय चल रहा है। उसके द्वारा अपने को मात्र जानते रहना है। हम विकल्प में चले गये - जिसको हम जल्प कह रहे हैं। मैं ऐसा हूं, मैं वैसा हूं, बहुत वर्णन कर रहे हैं। परंतु वर्णन कर रहे हैं यानी सेंटर पर पहुंचना है परंतु परीधि-सर्कम्फरन्स पर घूम रहे हैं। कब अंदर पहुंचेंगे ? नहीं पहुंचेंगे क्योंकि हमने सहीरूप से उसको नहीं पकड़ा है। ख्याल में आया न ?

ये सब ध्यान, स्वाध्याय वगैरह किसके लिये कर रहे हैं ? आत्मा की अनुभूति के लिये। परंतु कहीं अभिप्राय में गलत पकड़कर बैठे हैं इसलिये उसकी प्राप्ति नहीं होती। यही कह रहे हैं यहां कि **भक्ति, पूजा, ध्यान, स्वाध्याय आदि करके भी स्वाध्याय भी इसीलिये कर रहे हैं। हम रोज स्वाध्याय करते हैं। गुरुदेवश्री को सुन रहे हैं, चालीस-चालीस साल से सुन रहे हैं। परंतु मेरा सम्यग्दर्शनरूपी कार्य क्यों नहीं होता सोचकर वह निराश होता है।** इस भव का मेरा यही एक ध्येय है कि मुझे सम्यग्दर्शन होना चाहिये। हमने अपने स्वयं से भी सम्यग्दर्शन को बड़ा माना है। नहीं समझे ? मैं शुद्धात्मा हूं, सबसे महान पदार्थ हूं परंतु सम्यग्दर्शन के बिना मैं तो अधूरा हो गया। तो मैंने अपने को क्या माना ? उस सम्यग्दर्शन की पर्याय की महानता अपने शुद्धात्मस्वभाव से भी बड़ी हो गयी है। अरे, शुद्धात्मा में उस पर्याय की योग्यता है। स्व समय पर सम्यग्दर्शन होगा ही होगा। क्यों नहीं होगा ? परंतु हमें महानता किसमें भासित हो रही है ? अभिप्राय में यह भूल रह जाती है।

प्रश्न: किसी भी समय अपनी लब्धि कौनसी है इसका अनुभव या ज्ञान कर सकते हैं क्या ? देखो, हमें शुभभाव हो रहे हैं इतना हम समझ सकते हैं। परंतु अभी उसको देशना मिली है कि नहीं मिली है वह कैसे बतायेगा ? हां, तत्त्व सुने हैं, तत्त्व का विचार करता है तो बस तत्त्वविचार चल रहा है इतना उसको समझेगा। परंतु अभी मुझे यह लब्धि चल रही है, अभी मैं इस लब्धि से इस लब्धि में आया हूं ऐसा नहीं जानेगा, वह तो आगम का विषय है। कर्मों में जो कोई स्थित्यंतर होनेवाले हैं - कोई कर्म के बंध रुकनेवाले हैं, कोई स्थिति घटनेवाली है - वह तो उसके ज्ञान का विषय नहीं है। हम

आगम से वह जान सकते हैं।

प्रश्न: भावभासन और लब्धि में क्या फर्क है ? लब्धि यानी प्राप्ति - अपने ज्ञान की पर्याय ग्रहण, धारण, निर्धारणरूप होती है और भावभासन यानी तत्त्वों का सही भाव ख्याल में आना; उसका सही अर्थ भासित होना उसको भावभासन कहेंगे। *प्रश्न: नरक में कृष्णादि अशुभ लेश्या होने पर भी क्या धर्मानुरागरूप शुभ परिणाम यानी विशुद्धिलब्धि हुयी है ?* देखो, उसका अर्थ है कि उसके कृष्णलेश्या के तीव्र परिणाम थे उसमें वे परिणाम मंदता की ओर हो जायेंगे, उसीको धर्मानुराग कहा या मंद परिणाम कहा। धर्मानुराग यानी वह कहीं मंदिर वगैरह नहीं गया, यात्रा नहीं की। वह क्या कर रहा है इसतरह से हम किसी क्रिया के साथ उसको जोड़ते हैं। क्रिया के साथ नहीं जोड़ना है, परिणाम के साथ जोड़ना है।

प्रश्न: एकेन्द्रिय से लेकर चार इन्द्रिय तक सभी जीवों को सम्मूर्च्छन जीव कहा है। वृक्ष वगैरह बीज से होते हैं तो वे सम्मूर्च्छन कैसे हैं ? देखो, गोम्मटसार में यह गाथा है कि कोई वृक्ष मूल बोने पर उगते हैं, कोई बीज बोने पर उगते हैं, कोई डाली बोने पर उगते हैं, कोई स्कंध यानी बड़ी शाखायें बोने पर उगते हैं - ऐसे वृक्षों के भी आठ प्रकार बताये। उनमें घास वगैरह उगती है न, उसका भी नाम है। किसी भी पद्धति से क्यों न उगे, फिर भी सबको सम्मूर्च्छन में ही गिना है क्योंकि वहां कोई मां-बाप के निमित्त से वे पैदा नहीं होते। कोई किसान भाई हमसे पूछते थे; अरे, हम तो मादा पपया और नर पपया कहते हैं। आप उसको कुछ भी नाम दे दो क्योंकि वह पुद्गल स्कन्धों से, किसरूप से, किस विधि से होता है उसका वह वर्णन है। परंतु विशिष्ट पुद्गल स्कन्धों में विशिष्ट वातावरण में उत्पन्न होते हैं बस इतना ही है। एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक सारे ही जीव सम्मूर्च्छन ही होते हैं।

प्रश्न: पूर्व की देशना कितने भव तक संस्कार में रह सकती है ? तीन भवों तक। *श्रोता: कल हमने देखा था कि ९०० सागर तक उच्चगोत्र का लगातार उदय रह सकता है - देव या मनुष्य का। तो इसका अर्थ यह हो गया कि वह संज्ञी पंचेन्द्रिय रहेगा ?* संज्ञी पंचेन्द्रिय मात्र रहने से उसकी देशना चालू रहेगी ऐसा जरूरी नहीं है। *श्रोता: लेकिन अगर संज्ञी पंचेन्द्रिय है क्योंकि ९०० सागर तक अगर उच्च गोत्रीय है तो उसका संज्ञी पंचेन्द्रिय बना रहेगा ?* देखो, जातिस्मरण होने में उसका निषेध नहीं किया है, परंतु

देशना के प्रकरण में उसका निषेध है। देशना तीन भव तक की ही स्वीकार की गयी है। श्रोता: ९०० सागर तक कोई भी जातिस्मरण रह सकता है ? ९०० सागर तक मत कहना, कुछ भवों तक ऐसा हम कह सकते हैं। अभी उसके कितने भव ? जैसा प्रथमानुयोग में आता है न ? ९ भव पहले आहारदान दिया था उसकी याद थी, जातिस्मरण था। अभी पहला एक भव ही पल्यों का और सागरों का होगा तो उसको वैसा जातिस्मरण होगा। श्रोता: लेकिन देशनालब्धिवाले प्रकरण में ? उसमें तीन भवों की देशना कही है। आगम में जो है उतनी बात हम करेंगे। अपनी बुद्धि तो वहां कुछ चलती नहीं है। है न ? श्रोता: यानी वर्तमान का एक भव पकड़ के उसके आगे... ? हां, वर्तमान का है, उसके पहले का एक और उसके भी पहला एक इसतरह से, तीसरे भव तक देशना काम करती है।

प्रश्न: मिथ्यात्व सर्वधाति प्रकृति है तो जब क्षयोपशम सम्यग्दर्शन होता है तो मिथ्यात्व प्रकृति सम्यक् प्रकृतिरूप होकर उदय में आती है क्या ? हां, सम्यक्त्व होने के बाद उसका वर्तमान का एक निषेक उसरूप होकर उदय में आयेगा। प्रश्न: सर्वधाति प्रकृति कभी देशधातिरूप नहीं होती। तो फिर मिथ्यात्व सम्यक्त्व प्रकृतिरूप होगी क्या ? यह दर्शनमोह की विशेषता है। सम्यक्त्व होने पर मिथ्यात्व प्रकृति में से उसका अनुभाग अनंतगुणा हीन होकर सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति तैयार होती हैं। बंधनेवाली मिथ्यात्व है और बाद में वे दो प्रकृतियां तैयार होती हैं; क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि के मिथ्यात्व प्रकृति उदय के समय में सम्यक् प्रकृति होकर उदय में आती है। प्रश्न: कोथमीर आदि पत्तेवाली भाजी सप्रतिष्ठित है या अप्रतिष्ठित है ? सप्रतिष्ठित यानी ? जिसके आधार से निगोद रहते हैं उनको सप्रतिष्ठित कहेंगे और जिसके आधार से जहां निगोद रहते हैं उसको अनंतकाय कहेंगे। वह सचित्त है परंतु अनंतकाय नहीं है। क्योंकि प्रत्येक शरीरवाले जीवों का वह स्कंध है। जिसको सचित्त का, हरी का त्याग है उसके लिये उसका त्याग है परंतु वह अनंतकायवाली जैसे आलू, प्याज है वैसेवाली सप्रतिष्ठित नहीं है।

बाकी चर्चा हम शाम को करेंगे। अभी तो रुकते हैं।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

१७. प्रायोग्यलब्धि

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने द्वंद्वारी भाषा में सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार नामक भाषाटीका लिखी है, उसके आधार से प्रथमोपशम सम्यक्त्व से पूर्व जीव के जो पांच लब्धि पायी जाती हैं, उनकी हम यहां चर्चा कर रहे हैं।

हमने क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि और देशनालब्धि को विस्तार से देख लिया है। **देशनालब्धि के प्रकरण में हमने देशना तथा देशनालब्धि का स्वरूप विस्तार से देखा।** कौन-कौनसे अंग थे उसमें ? श्रवण, ग्रहण, धारण, निर्धारण और परिणमन भी। उसरूप परिणमन भी तो होगा कि नहीं होगा ? क्योंकि उसने यथार्थ स्वरूप का निर्णय किया है तो पहले की गलत मान्यतायें छोड़ेगा कि नहीं छोड़ेगा ? या वही करता रहेगा ? *श्रोता: छोड़ेगा।* तो परिणमन भी होगा। अभी हम प्रायोग्यलब्धि की चर्चा करेंगे। पृष्ठ ९२, नीचे से दूसरा पैरेग्राफ- यहां क्या कह रहे थे ? जीव कोई क्रियायें करता है - स्वाध्याय करता है और उसे सम्यग्दर्शन नहीं हो रहा है इसलिये वह चिंतित, आकुलित रहता है। **परंतु तत्त्वविचार द्वारा तत्त्वनिर्णय करना यही पुरुषार्थ है** जीवों को लगता है हमारा पुरुषार्थ क्या रहा - पुरुषार्थ क्या रहा ? तत्त्वनिर्णय करना यही पुरुषार्थ है। **और जब जीव पुरुषार्थ करता है तब अन्य समवाय भी सहज उपस्थित रहते हैं।**

हमने देखा है कि किसी भी कार्य में भले वह जड़ का हो या चेतन का हो; कार्य यानी पर्याय, उस पर्याय संबंधी पांच समवाय होते ही हैं। समवाय कहते हैं समूह को। यहां कैसा समूह है ? पांच कारणों का समूह, उनको यहां पांच समवाय भी कहते हैं। पांच समवाय कौन-कौनसे होते हैं ? *श्रोता: स्वभाव, पुरुषार्थ, काललब्धि, होनहार और निमित्त।* हां, स्वभाव, पुरुषार्थ, काललब्धि, होनहार और निमित्त। जो पर्याय जिस समय होनी है वह तो सुनिश्चित है, उसके पांचों समवाय भी सुनिश्चित हैं। यहां पुरुषार्थ की ओर से कथन कर रहे हैं कि जिस पर्याय संबंधी जीव ने पुरुषार्थ किया है उस पर्याय संबंधी अन्य समवाय भी वहां स्वयमेव उपस्थित होंगे। काललब्धि की अपेक्षा बात करेंगे तो - जिसकी काललब्धि आयी है वह उसी पर्याय का वैसा ही पुरुषार्थ करेगा और उसको निमित्त भी वैसा ही मिलेगा। यह कथन हम किसी एक समवाय की ओर से कर सकते हैं परंतु पांचों ही कारण सुनिश्चित हैं। उसमें कोई चेंज, कोई हेराफेरी नहीं होती।

पर्याय अगर सुनिश्चित है तो उसके कारण भी सुनिश्चित होने ही चाहिये। परंतु कथन किसी एक समवाय की अपेक्षा से हो सकता है। कहीं-कहीं काललब्धि की मुख्यता से कहते हैं - इसका काल आया तो यह कार्य हुआ। कहीं-कहीं कहेंगे जिसने पुरुषार्थ किया उसकी यह पर्याय हो गयी। परंतु काललब्धि आयी और पुरुषार्थ के बिना कार्य हुआ ऐसा कभी नहीं होगा। पांचों ही समवाय वहां होंगे ही होंगे। इसलिये क्या कहा ?

तत्त्वविचार द्वारा क्योंकि जीव को उपदेश किसका दिया जायेगा ? काललब्धि का या होनहार का ? पं. टोडरमलजी की भाषा में यह कोई वस्तु नहीं है। वस्तु नहीं है यानी जीव जिस समय पुरुषार्थपूर्वक अपनी वह पर्याय प्रकट करता है तो जो पर्याय हुयी उसको होनहार कहेंगे। जिस समय हुयी उसको काललब्धि कहेंगे क्योंकि उस समय होनेवाली पर्याय तो सुनिश्चित है। उस समय कर्म का उपशम आदि जो निमित्त हैं उसमें तो जीव का कुछ चलता नहीं। वे तो स्वयमेव होते हैं तो उपदेश किसका देंगे ? पुरुषार्थ का - यह कहना चाहते हैं। तो कहते हैं अन्य समवाय भी सहज उपस्थित रहते हैं। **कर्म के उपशमादिरूप निमित्त भी सहज उपस्थित होता है।** अभी जीव को क्या करना है ? तत्त्वनिर्णय। तत्त्वविचार और तत्त्वनिर्णय यही पुरुषार्थ है।

तत्त्वों का उपदेश प्राप्त होने में यानी देशना मिलने में **बाह्य गुरु अर्थात् ज्ञानी निमित्तरूप से होते हैं** तो गुरु हमें देशना देकर हमारा कल्याण करते हैं कि नहीं करते ? सम्यग्दर्शन दिलाते हैं कि नहीं दिलाते ? हमें उनके द्वारा देशना प्राप्त होती है। देखो, क्या कहा ? बाह्य गुरु कहा; क्यों ? अंतरंग में कोई गुरु छिपा है क्या ? तो कहते हैं, बाह्य गुरु ज्ञानी निमित्तरूप से होते हैं **परंतु स्वतत्त्व की प्राप्ति** यानी निज आत्मा की अनुभूति **अर्थात् सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में आत्मा ही आत्मा का गुरु है।** हमें बाह्य गुरु, सत्समागम वगैरह की महिमा आती है। परंतु सचमुच मेरे लिये सत् मैं स्वयं हूं - मैं सत्स्वरूप ही हूं। जीव कभी उसका समागम, उसमें स्थिरता नहीं करेगा तो बाह्य में किसी गुरु का उपदेश सुना तो उसको आगे क्या करना है ऐसा सवाल उठता है। इसलिये क्या कहते हैं ? **सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में आत्मा ही आत्मा का गुरु है। आत्मा स्वयं ही अपना स्वरूप जानने के लिये उत्सुक होता है,** उसकी रुचि कोई दूसरा पैदा नहीं कर सकता है। उसकी जिज्ञासा और तीव्र रुचि ही उसकी उपादान शक्ति है जिसके कारण उसे बाह्य उपदेशक और उपदेश सहज प्राप्त होता है। उसकी जिज्ञासा तीव्र हुयी है, रुचि तीव्र हुयी है तो उसे उपदेशक भी सहज

मिल जाते हैं। उपदेश भी प्राप्त होता है।

आत्मा स्वयं ही उस पर बारंबार विचार करने में प्रवृत्त होता है, हमारे मन में बारंबार कौनसे विचार चलते हैं ? किसी दूसरे के कहने से नहीं होते। जिसकी हमें रुचि है उसीके विचार चलते रहते हैं, है न ? हमारे घर कोई मेहमान आनेवाले हैं, तो बार-बार क्या विचार आता है ? क्या करना है, कैसे करना है ? उसीके विचार चलेंगे। शिबिर में जाना है तो क्या होगा ? शिबिर के विचार चलेंगे। ऐसा होता है कि नहीं ? यहां छह-छह घंटे यह बात सुनते हैं तो जिसको रुचि होगी उसको इसीके विचार चलेंगे, नहीं तो क्या विचार आयेंगे ? अभी घर में क्या हो रहा है ? कहते हैं **आत्मा स्वयं ही उस पर बारंबार विचार करने में प्रवृत्त होता है, उसकी स्वयं की योग्यता से ही** अन्य बातों संबंधी रस कम हो जाता है, स्वरूप अनुभव की उसे तीव्र लगनी लगती है और उसका उपयोग परपदार्थ और पर्यायों से हटकर निज ध्रुव त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव पर केंद्रित होता है। किसीके सिखाने से ये बातें नहीं होती। इसलिये सच में आत्मा को ही आत्मा का गुरु कहा है।

कोई गुरु मेरा भला करेगा ऐसी मान्यता निमित्ताधीन दृष्टि है। गुरु भी होते हैं, उनका उपदेश भी प्राप्त होता है और देशनालब्धि में वे ही निमित्त होते हैं। पहले में पहले गुरु ने ही सिखाया न ! क्या सिखाया ? निमित्त से कार्य नहीं होता। फिर भी कोई गुरु मेरा भला करेगा ऐसी अगर मान्यता होगी, गुरु के कारण शिष्य को ज्ञान होता है ऐसा अगर हम मानते हैं; तो हमने गुरु की सीख मानी ? नहीं मानी। वे तो बारंबार कह रहे हैं निमित्त से परद्रव्य में कुछ कार्य नहीं होता और हम बारंबार गिड़गिड़ा रहे हैं, है न ? गुरु की महिमा आयेगी, गुरु का विनय होगा - यह सब होगा परंतु उन्होंने जो असली तत्त्व सिखाया है वह जब हम निर्णयपूर्वक अंतरंग में धारण करेंगे तो ही हम आगे बढ़ सकते हैं। **कोई गुरु मेरा भला करेगा ऐसी मान्यता निमित्ताधीन दृष्टि है।** निमित्त से ही कार्य होता है ऐसी उलटी मान्यता को कहेंगे निमित्ताधीन दृष्टि। **निमित्त अर्थात् गुरु तो होते हैं - देशना होती है परंतु देशनालब्धि तो उपादान से प्राप्त होती है।** क्योंकि किसी भी द्रव्य में जो कार्य हो रहा है वह उपादान से अपने स्वसमय की योग्यता से उस समय होता है।

देशना तो सच्चे देव, गुरु और शास्त्र द्वारा ही प्राप्त होती है, ही लगाया है।

कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र कभी भी देशना में निमित्त नहीं हो सकते हैं। यह पहले में पहले सुनिश्चित करना है। उसके लिये सच्चे देव कौन हैं वह भी जानना पड़ेगा। सच्चे गुरु किसको कहना ? गुरु यानी यहां मुनिराज को ही गुरु कहते हैं। विद्यागुरु को भी गुरु या गुरुजी कहने की पद्धति है परंतु जब हम देव, गुरु और शास्त्र कहेंगे तो वहां देव, भावलिंगी मुनिराज और शास्त्र यानी उनके द्वारा रचित शास्त्र - उसीको देव, गुरु और शास्त्र कहने में आता है। वैसे तो ज्ञानी में चौथे, पांचवें गुणस्थानवाले को भी देशना में लिया है परंतु कहते समय हम बारंबार देव-गुरु-शास्त्र की बात कहेंगे। **इसलिये सच्चे देव, गुरु, शास्त्र का निर्णय करना हमारा आद्य कर्तव्य है।** शुरुआत में सबसे पहले कर्तव्य क्या है ? सच्चे देव, गुरु और शास्त्र कैसे होते हैं, इसका निर्णय करना।

कुदेवादिकों के द्वारा विपरीत उपदेश मिलता है, पूर्व की विपरीत मान्यताओं का पोषण होता है, क्योंकि मिथ्यादृष्टि है तो मान्यता में कहीं न कहीं गड़बड़ी है ही और उनके द्वारा उसीका पोषण हो जाता है। विशिष्ट क्रिया करने से मोक्ष प्राप्त होगा सुनकर जीवों की दिशाभूल होती है। कौनसी क्रियायें ? व्रत आदि करने से मोक्ष होगा, व्रतादि करते-करते कल्याण हो जायेगा - ऐसा सुना तो उसीके पीछे लग जाते हैं। तत्त्वविचार, तत्त्वनिर्णय की बात तो रह ही जाती है। जो सच्चा उपाय है वह रह जाता है और किसी क्रिया में उलझकर रह जाता है।

सम्यग्दर्शनरूपी कार्य का कारण बाह्य देव, शास्त्र, गुरु, कोई विशिष्ट आचरण, शारीरिक क्रियाओं को मानकर क्या कहा ? देव के कारण मुझे सम्यग्दर्शन होगा यह मान लिया। सम्यग्दर्शन किससे होगा ? उपादान से होगा कि निमित्त से होगा ? निमित्त होते हैं, निमित्तों का ज्ञान भी होगा। निमित्तों का व्यवहार, उनका विनय सब होगा परंतु कार्य तो उपादान से ही होता है यह सुनिश्चित करना है। हमने क्या मान लिया ? कि बाह्य देव-गुरु-शास्त्र, कोई विशिष्ट आचरण, शारीरिक क्रियाओं को कारण मानकर **इस जीव ने कारणविपरीतता कायम रखी।** सम्यग्दर्शन का सही कारण नहीं पहचाना। **परंतु सच्चा कारण तो उपादानरूप से अपने द्रव्य में ही विद्यमान है।** यह बात समझ में आती है ? उपादानरूप कारण अपने द्रव्य में विद्यमान है। प्रत्येक द्रव्य स्वयं अपनी पर्यायरूप परिणमता है कि नहीं ? या कोई दूसरा आकर उसको परिणामरूप परिणमाता है ? *श्रोता: वह स्वयं परिणमता है।* हां। वह द्रव्य का अपना कार्य है, उसका कर्ता द्रव्य स्वयं है। पर्याय का आधार

कौन है ? द्रव्य है, द्रव्य की वह पर्याय है। आज सुबह गुरुदेवश्री के प्रवचन में सुना न ?

कहते हैं कि सच्चा कारण कौन है ? उपादान कारण ही सच्चा है। निमित्त को कारण कह देंगे परंतु वह कैसा कथन है ? उपचार कथन है। तो सच्चा कारण कहां है ? द्रव्य में ही विद्यमान है। द्रव्य अपनी पर्यायरूप से परिणमित होता है उसका कारण कहां है ? द्रव्य में ही है। **स्वभावपर्याय अर्थात् शुद्ध पर्याय का कारण तो त्रिकाल शुद्ध स्वभाव - पारिणामिक भाव है।** बारंबार सभी अध्यात्मग्रंथों में यही बात बतायी है कि स्वभाव तो अनादि अनंत जैसे का वैसा है और रागरहित अपने स्वभाव का श्रद्धान, उसीकी दृष्टि, उसीमें स्थिरता करने से स्वभाव जैसी पर्याय प्रकट होती है। जैसा स्वभाव है वैसी पर्याय प्रकट होती है। यही कह रहे हैं कि शुद्ध पर्याय यानी स्वभावपर्याय - सम्यग्दर्शनरूपी कार्य प्रकट होगा तो कैसे प्रकट होगा ? उसका कारण कौन है ? त्रिकाल यानी कायम अनादि अनंत शुद्ध स्वभाव - पारिणामिक भाव को ही यहां कारणरूप से स्वीकार किया है।

उसे कारणरूप से स्वीकार करके यानी मेरी पर्याय का कारण मेरे में ही विद्यमान है। उसे कारणरूप से स्वीकार करके **उससे अभेद होकर जानते रहने से सम्यग्दर्शनरूपी कार्य प्रकट होता है।** उससे पहले क्या होता है ? ये पांच लब्धि - उसकी चर्चा हम कर रहे हैं। तत्त्वविचार और तत्त्वचिंतन की अवस्था में कर्मों में कैसी अवस्थायें बनती हैं उसकी चर्चा अब प्रायोग्यलब्धि के प्रकरण में करेंगे। **प्रथम उसका स्वरूप बताकर पश्चात् उसे समझेंगे।** प्रायोग्यलब्धि के लिये लब्धिसार की सात नंबर की गाथा मैं पढ़कर सुनाऊंगी, फिर उसकी चर्चा हम आगे बढ़ावेंगे।

अंतोकोडाकोडी बिट्टाणे ठिदिरसाण जं करणं।

पाउगलद्धिणामा भव्वाभव्वेसु सामण्णा ॥७॥

दो बातें बतायी- एक अंतःकोडाकोड़ी और दूसरी द्विस्थान। किसके बारे में ? ठिदि और रस के लिये। स्थिति कितनी होती है ? अंतःकोडाकोड़ी सागर। रस यानी अनुभाग कितना होता है ? द्विस्थानगत। किसका ? अप्रशस्त का, प्रशस्त का तो बढ़ेगा, है न ! प्रायोग्यलब्धि में आते ही पहले झटके से ही दो कार्य होते हैं। स्थिति, कौनसी ? आयु को छोड़कर बाकी कर्मों की। आयु में कटौती नहीं होनी है तो चिंता करने की जरूरत नहीं है। हमें बाक़ी सब कर्मों का क्षय करना है, आयु को कायम रखना है, है

न ? क्योंकि आयु समाप्त होने को आती है तो बहुत चिंता हो जाती है। आयुकर्म क्या करता है, मालूम है ? *श्रोता: बेड़ी की तरह कार्य करता है।* हां, प्राप्त पर्याय से छूटने नहीं देता। जैसे कारावास में कैदी को रखते हैं वैसे आयुकर्म वर्तमान पर्याय से छूटकर अन्य पर्याय में जाने नहीं देता।

हां, आयुकर्म क्या करता है ? इस पर्याय से छूटने नहीं देता क्योंकि हम जितनी मनुष्यायु बांधकर आये हैं उतनी तो चलेगी। तब तक उसका यह मनुष्य जीवन चलेगा। मान लेते हैं कोई बीमारी होती है तो पहले में पहले हम क्या करते हैं ? दौड़ते हैं। कहां ? डॉक्टर के पास। क्यों ? मान लो कोई कैदी है, उसे कारावास में रखा है और बाय चान्स कोई भूकंप आ जाये, कुछ हो जाये और कारावास की दीवार टूट जाये तो वह कैदी क्या करेगा ? *श्रोता: भाग जायेगा।* अरे, भागेगा नहीं तो क्या करेगा ? वह ईंट के ऊपर ईंट रखकर फिर वह दीवार बराबर बनायेगा क्या ? नहीं न ! हम क्या करते हैं ? *श्रोता: ट्रान्सप्लांट करते हैं।* यहां से छूटने का सवाल आया, आयुकर्म खिरने का सवाल आया तो हम डॉक्टर के पास दौड़ते हैं। फिर सब कुछ - जो कुछ ट्रान्सप्लांट वगैरह कर सकते हैं सब कुछ करते हैं। क्या-क्या ? हार्ट ट्रान्सप्लांट, किडनी ट्रान्सप्लांट, घुटने; पहला संहनन कौनसा था ? वज्रवृषभनाराच, अभी हमारा स्टील का संहनन आ गया। स्किन ट्रान्सप्लांट, मैं तो कह रही हूं छोटे बच्चों को पूरा ब्लड भी निकालकर दूसरा डालते हैं; होता है कि नहीं है ? आजकल तो भेदज्ञान आसान हो गया - जो-जो हम ट्रान्सप्लांट कर सकते हैं वह मैं नहीं हूं इतना सोच लो। क्योंकि मैं तो यहां कायम हूं न ! बाकी तो यह चेंज करो, वह चेंज करो, सब कुछ यहां हो रहा है।

यहां क्या कहते हैं ? हम आयुकर्म तो कायम रखना चाहते हैं और बाकी कर्म चला जाये तो कोई बात नहीं है। क्या ऐसा है ? यहां क्या कह रहे हैं ? प्रायोग्यलब्धि में आते ही पहले में पहले, पहले झटके से एक छोटे अंतर्मुहूर्त में क्या कार्य होता है ? तो सात कर्मों की स्थिति कटडाउन होती है। वह कटडाउन कैसे होती है उसका प्रोसेस हम देखेंगे। कितनी स्थिति शेष रहती है ? कभी ७० कोड़ाकोड़ी, कभी ६० कोड़ाकोड़ी, कभी १० कोड़ाकोड़ी जो कुछ यथायोग्य स्थिति बंधी थी। सत्ता में वे सारे कर्म पड़े हैं। वे कटडाउन होकर उनकी कितनी स्थिति शेष रहती है ? अंतःकोड़ाकोड़ी सागर। अंतः का अर्थ क्या है ? कम; किससे कम ? कोड़ाकोड़ी सागर से कम; करोड़ से ऊपर और कोड़ाकोड़ी के नीचे उसको अंतःकोड़ाकोड़ी कहते हैं। इतनी स्थिति शेष रहती है।

अभी परमाणु छूटकर गये नहीं हैं। हमने जो सत्तावाली निषेक रचना देखी थी न, उसमें ऊपर के भविष्य में उदय आनेयोग्य जो निषेक थे उनके सारे परमाणु एक छोटे से अंतर्मुहूर्त में नीचे आकर नीचे के निषेकों में समा जाते हैं। हैं सत्ता में, जीव की सत्ता में पड़े हैं परंतु अधिक स्थिति घट जाती है। पहले में पहले यह एक कार्य होता है।

दूसरा कार्य क्या होता है ? अनुभाग भी घटता है। सत्ता का अनुभाग द्विस्थान रह जाता है; कौनसे कर्मों का ? अप्रशस्त का। तो बोलो, घातिकर्मों के द्विस्थान कौनसे होंगे ? श्रोता: लता, दारु। लता, दारु रह जायेंगे। उसमें सर्वघाति स्पर्धक होंगे कि देशघाति स्पर्धक होंगे ? श्रोता: थोड़े से सर्वघाति और थोड़े से देशघाति। सर्वघाति भी होंगे क्योंकि केवलज्ञानावरण घटकर लतारूप नहीं होगा, दारुरूप देशघाति नहीं होगा। वहां जो सारी सर्वघाति प्रकृतियां हैं उनका अनुभाग घटकर वे दारु के बहुभाग में आयेंगी। शैल, अस्थिवाला अनुभाग मिट जायेगा। सत्ता में वह अनुभाग मिटकर कैसे होगा ? दारु के सर्वघाति जैसे रह जायेगा और देशघाति प्रकृतियों का अनुभाग और नीचे-नीचे आ जायेगा। ख्याल में आयी यह बात ? अघाति में भी जो पापरूप प्रकृतियां हैं उनका अनुभाग कैसे हो जायेगा ? निंब और कांजीररूप रह जायेगा। तो उसके ऊपर के अनुभागवाले परमाणु कहां चले जायेंगे ? परमाणु तो रहेंगे, उन परमाणुओं का अनुभाग घट जायेगा। वह किस विधि से होता है ? उसको हम देखेंगे।

यहां क्या कहते हैं ? देखो पृष्ठ ४३, लब्धिसार की सातवीं गाथा - मैं लब्धिसार में से पढ़ रही हूं- **पूर्वोक्त तीन लब्धि संयुक्त जीव प्रतिसमय विशुद्धता से वर्द्धमान होता हुआ** अभी उसकी विशुद्धि प्रतिसमय बढ़ रही है। हमने देखा न, क्षयोपशमलब्धि में क्या हो रहा है ? प्रतिसमय अनुभाग घट रहा है। यहां जीव के कषाय कैसे हैं ? मंद-मंद हो रहे हैं। अभी वह प्रायोग्यलब्धि तक आया है। तत्त्वविचार के काल में जीव में क्या हो रहा है ? जब कोई जीव, जिसने पहले कभी देशना पायी है वह जिस काल में तत्त्वविचार करने लगता है उस काल में उसकी क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि तीनों अंत अ टाइम वहां विद्यमान हैं। नहीं समझे ?

जिसको देशना प्राप्त हुयी है; अभी किसी मुनिराज के द्वारा उसको देशना मिली और फिर वह अपने काम में लग गया तो उसकी देशनालब्धि चल रही है कि नहीं चल रही है ? श्रोता: चल रही है। नहीं चल रही है। जिस काल में वह तत्त्व का

विचार दुबारा चालू करेगा तब देशनालब्धि होगी। नहीं तो क्या ? हमने चालीस साल पहले सुना। चालीस साल से हमारी देशनालब्धि चल रही है ऐसा लोग मानते हैं परंतु वैसा नहीं है। उसको देशना मिली है। उसको देशनालब्धि तब कहेंगे जब फिर वह तत्त्व का विचार करेगा क्योंकि पांचों लब्धि मिलकर भी अंतर्मुहूर्त ही उसकी लिमिट है, उससे ज्यादा नहीं है। बताने के लिये हमने क्रम-क्रम से बात बतायी है।

उसने पहले उपदेश सुना है, सुना है परंतु सुन लिया फिर बाद में कुछ अन्य चीजों में उलझ गया। जब वह तत्त्वविचार फिर से करने लगा है या स्वाध्याय लेकर, पुस्तक लेकर बैठा है या उस संबंधी विचार कर रहा है उस काल में ये बातें सहज हो जाती हैं। तब कहेंगे उस काल में फिर उसकी देशनालब्धि है। उसने उपदेश को उपयोगरूप ज्ञान में लिया है। जो पहले उसको देशना मिली है और संस्काररूप से उसकी धारा चल रही है। वह जीव जिस समय उपयोगरूप ज्ञान में उसको लेगा तब कहेंगे उसकी देशनालब्धि की पर्याय चल रही है। जिस काल में वह तत्त्वविचार करता है उस काल में उसकी ये सारी बातें फिर होंगी। तब कहेंगे पूर्व की देशना काम करती है। चार लब्धि तो भव्य और अभव्य दोनों के लिये समानरूप से बतायी हैं।

यहां क्या कहा ? देखो, भव्याभव्येषु सामान्यात् या भव्वाभव्वेसु सामण्णा। यह दोनों के लिये समान होती हैं। कौनसी ? प्रायोग्यलब्धि तक चार लब्धि। स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात आदि प्रायोग्यलब्धि में कर्मों में जो कुछ स्थित्यंतर होते हैं, भले ही वे अंतर्मुहूर्त तक रहते हैं परंतु अभव्य के भी होते हैं, परंतु आगे चलकर उसकी करणलब्धि नहीं होगी। प्रायोग्यलब्धि तक आकर छूट जायेगा। भव्य भी अगर प्रायोग्यलब्धि तक आता है और फिर उसकी विशुद्धि छूट जाती है, आत्मसन्मुखता में उसके आगे के करणलब्धि के परिणाम नहीं होते तो उसके भी सम्यक्त्व नहीं होगा। योग्यता पड़ी है परंतु वह आगे नहीं बढ़ा तो उसके सम्यक्त्व नहीं होगा। यही बात कह रहे हैं, देखो, **सात कर्मों की अंतःकोड़ाकोड़ी मात्र स्थिति अवशेष रखता है। उस काल में पहले जो स्थिति थी, पहले ज्यादा थी - अनेक कोड़ाकोड़ी सागरों की थी। उसको एक कांडकघात द्वारा छेदकर** यह कांडकघात क्या होता है हम उसको देखेंगे। कांडकघात होने के लिये एक छोटा अंतर्मुहूर्त लगता है। **उस कांडक के द्रव्य को** द्रव्य को यानी परमाणुओं को कांडक के नीचे के निषेकों में डालता है। वहां कांडक यानी टुकड़ा यानी अनेक निषेकों का समूह।

मान लेते हैं अंतःकोड़ाकोड़ी सागर के ऊपर जितने निषेक हैं; ७० कोड़ाकोड़ी सागर तक कुछ भी हो सकते हैं; एक समय में उनमें से कुछ परमाणु नीचे आये, दूसरे समय में कुछ नीचे आये, तीसरे समय में और कुछ नीचे आये। इसतरह से एक अंतर्मुहूर्त में वे सारे परमाणु वहां से छूटकर नीचे के निषेकों में समा जाते हैं। इसको कहते हैं **अवशेष रही स्थिति में निक्षेपण करता है**, डालता है। ऊपर के निषेकों के परमाणु नीचे के निषेकों में आ मिलते हैं यह उसका अर्थ है। **घातिकर्मों का लता, दारुरूप और अघातिकर्मों का निंब, कांजीररूप द्विस्थानगत अनुभाग यहां अवशेष रहा है।** सत्ता के अनुभाग की बात चल रही है। सत्ता में जितने अप्रशस्त कर्म पड़े हैं उनके अनुभाग की यहां बात है। **पहले जो अनुभाग था, उसमें अनंत का भाग देकर बहुभाग मात्र अनुभाग को छेदकर** यानी अभी अनुभाग जितना था उसके अनंतवें भाग प्रमाण हो जायेगा। **अवशेष रहे हुये अनुभाग में प्राप्त करता है। उस कार्य करने की योग्यता की प्राप्ति वह प्रायोग्यतालब्धि है।**

कौनसा कार्य ? यह बात कर्मों में ही होती है। परंतु कहेंगे जीव ने उसका कांडकघात किया, जीव ने उसका अनुभाग घटाया। ऐसे कार्य करने की योग्यता जीव को हुयी। क्यों ? क्या किया उसने ? तत्त्वों का विचार। तत्त्वविचार करने मात्र से यह सहज होता है। *श्रोता: अभव्य भी कर सकता है ?* अभव्य भी कर सकता है। तत्त्वविचार किया, निर्णय तक नहीं पहुंचा, आत्मसन्मुख नहीं हुआ, करणलब्धि नहीं हुयी। चार लब्धि अभव्यों के भी होंगी। वह आता है न ! द्रव्यलिंग भी धारण करता है, ग्यारह अंग का पाठी भी होता है। तो तत्त्व के विचार कुछ करेगा कि नहीं करेगा ? बिलकुल करेगा। उसके भी प्रशस्त प्रकृतियों का बंध होगा, स्थितिकांडकघात होगा। कुछ काल के लिये कुछ प्रकृतियां बंधने से रुक जायेंगी। फिर वापस उस मूल पोझिशन पर चलेगी उसकी गाड़ी।

हम, आप भी गुरुदेवश्री की सीडी सुनते हैं तब बिलकुल अंदर से ऐसा कुछ आत्मिक रस उत्पन्न होता है। फिर एक घंटा प्रवचन पूरा हो जाता है और चले जाते हैं अपने घर काम के लिये। तो जितनी विशुद्धि बढ़ी, वह तो छूट जाती है, चली जाती है। विशुद्धि के काल में ही आगे चलकर कार्य होता है। बढ़ती हुयी विशुद्धि में आगे करणलब्धि के परिणाम होंगे। विशुद्धि बढ़ी परंतु वहां तक ही रुक गया, उससे आगे नहीं बढ़ा। उसके आगे की विशुद्धि तो आत्मसन्मुख परिणामों में होगी, केवल सुनने से

नहीं होगी। सुनना तो इन्द्रियज्ञान चल रहा है, वह परलक्षी ज्ञान है। आत्मलक्षी ज्ञान से करणलब्धि के परिणाम शुरू होंगे तब जाकर आगे का प्रोसेस होगा। हम वहां तक रुक गये तो कहेंगे, हमारी प्रायोग्यलब्धि होकर छूट गयी।

उस कार्य को करने की योग्यता की प्राप्ति वह प्रायोग्यतालब्धि है। इसको प्रायोग्यलब्धि या प्रायोग्यतालब्धि दोनों ही नाम हैं। जीव कोई प्रयोग करता है, ऐसे बैठता है, ऐसे आंखें लगाता है, वैसा कोई प्रयोग नहीं होता। ख्याल में आयी बात ? **वह भव्य के और अभव्य के भी समान होती है।** अभी इसीका अर्थ पंचलब्धि पुस्तक में देखेंगे, पृष्ठ ९३ निकालना- **क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि और देशनालब्धिपूर्वक** यानी कौनसा जीव लिया है ? जिसको ज्ञानी के द्वारा देशना मिली हुयी है और उसके स्मरण में भी है क्योंकि तभी वह तत्त्वविचार में चढ़ेगा। ऐसे **जीव की विशुद्धि प्रतिसमय बढ़ती जाती है**, विशुद्धि किसी कारण यानी कोई पूजा कर रहा है या भक्ति कर रहा है उससे नहीं, तत्त्वज्ञान के विचार से ही वह आगे बढ़ेगा। **उसके कारण आयु बिना अन्य सात कर्मों की स्थिति घटकर** यहां आयु में कोई परिवर्तन नहीं होता; जो जितनी आयु लेकर आया है उसके निषेक उतने रहेंगे; सात कर्मों की स्थिति घटकर **अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण रह जाती है।**

स्थिति का यह घटना यह स्थिति कही न ? स्थिति यानी स्थितिसत्त्व। बाद में यहां स्थितिबंध की बात करेंगे। सत्ता में जो स्थिति पड़ी है, पूर्व में बंधे हुये सत्ता में पड़े हैं उनकी जो स्थिति है, उसमें यानी उनके निषेकों की संख्या में कटौती होगी। स्थिति घटकर - स्थितिसत्त्व का यह घटना यानी स्थिति का यह घटना **स्थितिकांडकघात द्वारा होता है।** स्थितिकांडकघात क्या होता है उसको हम देखेंगे। पहले पूरा पढ़ लेते हैं। यह स्थिति के बारे में बात हुयी। मेरा सवाल है स्थितिकांडकघात होकर स्थिति घट गयी, तो पुण्य प्रकृतियों में घट गयी कि पाप प्रकृतियों में घट गयी ? *श्रोता: पाप प्रकृतियों में घट गयी। अन्य श्रोता: दोनों में घट गयी।* हमने क्या देखा था ? आयु छोड़कर सभी कर्मों की जितनी स्थिति होगी उसमें कटौती हो जायेगी। तो हमारी पुण्य प्रकृति निकल जायेगी ? हमें चिंता किसकी है ? पाप जाता है न ? जाने दो। अरे, स्थिति में कुछ कटौती हुयी है; सारे परमाणु वहीं पड़े हैं, कहीं गये नहीं हैं; नीचे के निषेकों में आ मिले हैं।

स्थिति की कटौती आयु बिना सभी कर्मों में होती है। प्रशस्त हो या अप्रशस्त हो सबका स्थितिकांडकघात होकर सबकी स्थिति कितनी होती है ? अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण रह जाती है। **अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग** घटता है। यहां अनुभाग में प्रशस्त को छोड़ा है। स्थिति तो सबकी घट जाती है। परंतु अनुभाग ? पाप प्रकृति जिसको अप्रशस्त प्रकृति कहते हैं, उसीका अनुभाग घटेगा। यानी उसमें कटौती होगी। अनंत स्पर्धकों का नाश होकर नीचे के स्पर्धक जैसा अनुभाग रह जायेगा। **अनुभाग घटकर घातिकर्मों का लता और दारुभागरूप तथा अघातिकर्मों का निंब और कांजीररूप शेष रहता है।** शेष रहे हुये अनुभाग की बात है। इसको द्विस्थानगत कहेंगे। नाम लेकर बताना है तो घातिकर्म में लता और दारुभाग और अघातिकर्म की अप्रशस्त प्रकृतियों में निंब और कांजीररूप हो जाता है। **अप्रशस्त कर्मों के अनुभाग का यह घटना अनुभागकांडकघात द्वारा होता है।** जैसे स्थितिकांडकघात कहा वैसे अनुभागकांडकघात होता है। कुछ नये-नये शब्द आयेंगे, उनका अर्थ देखेंगे आगे।

प्रायोग्यलब्धि में जो नया कर्म बंध होता है, यहां बंध भी चल रहा है। पहले सत्ता में पड़े थे उनकी क्या बात हुयी वह बताया। अब यहां नया बंध भी हो रहा कि नहीं हो रहा है ? *श्रोता: हो रहा है।* हां, नया बंध जो हो रहा है। जैसे स्थिति में कटौती हुयी, अब बंध उससे ज्यादा होगा तो स्थिति बढ़ेगी। यहां बंध उससे भी कम होगा। नया बंध कितना होता है ? वह भी **अंतःकोड़ाकोड़ी सागर का होता है जो क्रमशः घटता जाता है।** देखो, यहां एक विशिष्ट बात होती है। स्थिति तो अंतःकोड़ाकोड़ी सागर हुयी और बंध उससे भी छोटा अंतःकोड़ाकोड़ी सागर होगा। अंतर्मुहूर्त तक उतना स्थितिबंध होगा। फिर, जितना है उससे और कटौती होगी; और अंतर्मुहूर्त तक उतना स्थितिबंध होगा। फिर उसमें और कटौती होगी, फिर अंतर्मुहूर्त तक उतना बंधता रहेगा। फिर और कटौती होगी। ऐसी बात चलेगी। कहां से शुरू किया ? अंतःकोड़ाकोड़ी सागर से लेकर आगे स्थितिबंध घटता चला जायेगा।

श्रोता: सम्यग्दर्शन से पहले अंतःकोड़ाकोड़ी कैसे होगा ? सम्यग्दर्शन से पहले ही अंतःकोड़ाकोड़ी सागर होता है। तभी जाकर सम्यग्दृष्टि के सातों कर्म अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण रह जाते हैं। तत्त्वविचार के काल में यह बात सहज होती है। तत्त्वविचार की ही तो महिमा बता रहे हैं आपको ! प्रायोग्यलब्धि तो अभव्यों के भी होती है। ख्याल में आयी न बात ? यह स्थिति घटी है, सम्यग्दर्शन होने पर इतनी कायम

रहेगी परंतु घटना पहले ही हो गया है। अब देखते हैं- यह स्थितिबंध जो घटा है न, उसका नाम क्या है ? स्थितिबंध अपसरण; अपसरण होना यानी घटना। स्थितिबंध क्रमशः घटता जाता है उसका नाम क्या है ? स्थितिबंधापसरण। स्थितिबंधापसरण इतना लंबा नाम कैसे बना ? स्थितिबंध का अपसरण यानी स्थितिबंध का घटते चला जाना; स्थिति हर समय नहीं घटती है। स्थितिबंध में जितनी कटौती हुयी अंतर्मुहूर्त तक उतनी-उतनी स्थिति बंधेगी।

स्थिति अंतःकोड़ाकोड़ी सागर की बंध रही है, आपको समझाने के लिये मान लेते हैं हजार वर्षों की बंध रही थी; फिर कटौती हो गयी। अंतर्मुहूर्त तक नौ सौ वर्ष की बंधने लगी, फिर कटौती हो गयी। आठ सौ वर्ष की बंधने लगी, फिर कटौती हो गयी। इसतरह से बंध घटते ही चला जायेगा। *श्रोता: नये बंध की बात है ?* हां, नये बंध की बात है। *श्रोता: यह अंतर्मुहूर्त कौनसा लेना ?* यथायोग्य। प्रायोग्यलब्धि का अंतर्मुहूर्त है उसमें स्थितिबंधापसरण के अंतर्मुहूर्त अनेक बार होंगे। हर बार कितनी कटौती होती है उसका अंदाजा हम आगे पढ़ेंगे तो आयेगा। एक अंतर्मुहूर्त में कितने ? हजारों कोड़ाकोड़ी बार उसके अंतर्मुहूर्त होनेवाले हैं। हर अंतर्मुहूर्त का प्रमाण सेकंडों में नहीं गिन सकते। इन सब पांचों लब्धि का मिलकर भी काल अंतर्मुहूर्त है। उसमें एक-एक लब्धि का काल भी अंतर्मुहूर्त ही कहेंगे और इस अंतर्मुहूर्त के अंदर स्थितिबंधापसरण भी हजारों बार होंगे - उसको भी अंतर्मुहूर्त कहेंगे। अभी आपको सुनना पड़ेगा, दूसरा कुछ चारा नहीं है। कौनसा अंतर्मुहूर्त कितना बड़ा होता है, छोटा होता है वह सारा वर्णन इसमें है। हमें पढ़ने की फुरसत कहां है ? आगे देखते हैं-

हजारों-हजारों, क्या कहा ? हजारों-हजारों **स्थितिबंधापसरण** एक स्थितिबंधापसरण होने के लिये एक अंतर्मुहूर्त क्योंकि लगातार उतना का उतना स्थितिबंध हर समय होता रहा। फिर कटौती हुयी तो अपसरण हुआ कहेंगे। फिर जितनी कटौती हुयी उतना का उतना स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त तक होगा। अंतर्मुहूर्त यानी मिनटों में, सेकंडों में मत गिनना। उसको संख्यात आवली कह सकते हैं, हां। हजारों-हजारों स्थितिबंधापसरण **होने पर क्रमशः कुछ प्रकृतियों का बंधना रुक जाता है**, देखो, यहां बिलकुल स्थूलरूप से बताया है। यहां क्या-क्या बातें होती हैं ? यहां आते ही पहले में पहले क्या हुआ ? स्थिति में कटौती हुयी - स्थितिकांडकघात हुआ। अप्रशस्त कर्मों के अनुभाग में कटौती हो गयी - अनुभागकांडकघात हुआ। यहां आने पर पहले

अंतर्मुहूर्त में हुआ। अब हर अंतर्मुहूर्त में और क्या हो रहा है ? स्थितिबंध घटते-घटते-घटते-घटते चले जा रहा है। हर बार कितनी कटौती होगी वह बतायेंगे यहां। स्थितिसत्त्व कितना था या स्थितिबंध कितना हो रहा था ? अंतःकोड़ाकोड़ी सागर। उसमें कटौती होने लगेगी। हर बार पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण कटौती होगी।

मान लेते हैं एक बार पल्य का दसवां भाग कटौती होगी। तो दस बार अपसरण होगा तो एक पल्य घटेगा। जब आठ सौ - नौ सौ सागर घटेंगे तब जाकर कुछ विशिष्ट प्रकृतियां बंधना रुक जायेंगी। अभी वह सब क्रम से देखेंगे। शाम का समय है और विषय कुछ सूक्ष्म है। परंतु कभी तो इसको सुनना है न ? प्रायोग्यलब्धि कठिन लगेगी तो फिर करणलब्धि में कैसे प्रवेश करेंगे ? यह होने में कुछ मेहनत नहीं है। वे सभी तीन करण एक छोटे से अंतर्मुहूर्त में होकर सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है और वह अंतर्मुहूर्त भी बहुत छोटा है। सम्यक्त्व की प्राप्ति करना बहुत आसान है, परंतु यह समझना थोड़ा मुश्किल है। इसके लिये अंतर्मुहूर्त नहीं, अभी के दो घंटे हैं और कितनी देर ? चौदह घंटे और। वे भी शायद कम पड़ेंगे। कल के छह, परसों के चार- दस और आज के दो, इतने घंटे शायद पूरे पड़ेंगे कि नहीं पड़ेंगे पता नहीं हैं। कभी-कभी क्या होता है ? करणलब्धि तक आकर रुक जाते हैं। जो अनादि से होता आ रहा है। प्रायोग्यलब्धि तक आकर हमारा समय पूरा हो जाता है तो करणलब्धि के बिना ही चले जाते हैं, है न ? इसलिये आगे बढ़ते हैं।

देखो- स्थिति और प्रकृति का बंध घटता है, उसीतरह अप्रशस्त कर्मों में घटता हुआ द्विस्थानगत अनुभागबंध होता है। देखो, यहां क्या विशेषता हो रही है ? एक तो हमने देखा पहले में पहले स्थिति में कटौती हो गयी। अप्रशस्त कर्मों के अनुभाग की भी कटौती हो गयी और स्थितिबंध में हर अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में कटौती हो रही है। यहां विशिष्ट कटौती होने पर कुछ-कुछ प्रकृतियां भी बंधने से रुकेंगी। कौनसी प्रकृतियां बंधने से रुकेंगी ? वह हम क्रम से देखेंगे। इतनी बार अपसरण हुआ तो विशिष्ट प्रकृतियां बंधने से रुक गयी। जो अभी तक बंधती थी, वे अब नहीं बंधेंगी। और कुछ काल आगे चला गया तो और कुछ प्रकृतियों का बंध रुक जायेगा। इसतरह से चलेगा। उसको क्या कहेंगे ? प्रकृतिबंधापसरण। पहला नाम क्या देखा था ? स्थितिबंधापसरण। यह है प्रकृतिबंधापसरण। और क्या होगा ? यहां जो नया बंध हो रहा है उसमें स्थिति कम बंध रही है। वहां अनुभाग का क्या होगा ? यहां कुछ प्रशस्त

प्रकृतियां भी बंध रही हैं। अभी तक अप्रशस्त भी बंध रही हैं, उनका बंधना रुका नहीं है। उनमें क्या होता होगा ? ज्ञानावरण आदि सारे अप्रशस्त तो हैं ही, मिथ्यात्व भी बंध रहा है तो उनका अनुभाग किसरूप से बंध रहा है ? तो कहते हैं द्विस्थानरूप। और वह भी कैसा ? अनंतगुणा घटता हुआ। ख्याल में आया ?

जीव ने क्या किया कर्मों में ? *श्रोता: कुछ नहीं।* उसने तत्त्वविचार में मन लगाया। पं. टोडरमलजी की भाषा में कहना है कि जीव का कर्तव्य तो इतना ही है कि तत्त्वविचार में तद्रूप होकर परिणमन करना। जीव तत्त्वविचार में लीन हो जाता है, तब कर्मों में सभी बातें अपनेआप होती हैं। यह केवलज्ञानी के ज्ञान का विषय है, उन्होंने ने जाना है कि जब जीव इसतरह से तत्त्वविचार करता है तो कर्मों में क्या-क्या बातें होती हैं। वे बातें नियम से होती हैं। हमें क्या लगता है खाली आत्मा-आत्मा करने से क्या होगा ? फल तो कुछ करने से मिलेगा। क्या करना चाहते हैं, बोलो ? शरीर की क्रिया तो हमारी क्रिया ही नहीं है, परंतु वह अपनी क्रिया लगती है। जानने में और तत्त्वनिर्णय में जो उपयोग लगता है वह ज्ञान की क्रिया अपनी लगती ही नहीं है। यह सब कार्य तो उसीसे होता है। जब हम इसका अभ्यास करते हैं, तब समझ में आता है।

यह तो बिलकुल निश्चित है। जीव को तत्त्वविचार करने में कोई नुकसान है ? कोई तकलीफ है ? किसी संयोग को ठीकठाक करने की राह देखनी पड़ेगी ? क्या करना पड़ेगा ? बस तत्त्वविचार ! और यह सहज होता है। अभी मुझे तत्त्वविचार करना है - ऐसा बैठकर अभी ऐसा करो, फिर वैसा करो, फिर नाक के अग्र पर दृष्टि लगाओ - ऐसी बात नहीं है। सहज प्रक्रिया होती रहती है। देखो- **अप्रशस्त कर्मों में घटता हुआ** और कैसा ? **द्विस्थानगत अनुभागबंध होता है** यानी घातिकर्म में लता-दारुवाला और अघातिकर्म में निंब-कांजीरवाला होता है। उनका अनुभाग घटता हुआ बंधेगा। दूसरी बात क्या है ? **परंतु प्रशस्त प्रकृतियों में बढ़ता हुआ** और कैसा ? **चतुःस्थानगत अनुभागबंध होता है।** यानी सारी बातें जीव को फेवरेबल हैं कि नहीं ? वह तो उत्कृष्ट प्रकार का पुण्य है- प्रशस्त प्रकृतियां चतुःस्थानवाली बंध रही हैं। इतना ही नहीं, सत्ता में जो पहले हीन अनुभागवाली पड़ी थी न ? उनका भी अनुभाग बढ़ता है। क्योंकि नये बंध के साथ वे भी अनुभाग में ऊपर चढ़ जाती हैं। **प्रदेशबंध भी अनुत्कृष्ट और अजघन्य होता है।** प्रदेशबंध के लिये हमारे कुछ विशेष अभ्यास नहीं है, है न ? अनुभाग और स्थिति तो समझ सकते हैं।

प्रदेशबंध यानी नंबर ऑफ़ परमाणु जो एक समय में बंधते हैं। वे किससे बंधते हैं ? हमने देखा था। *श्रोता: योग से। योग से।* यहां योग की हीनाधिकता होगी तो प्रदेशबंध भी वैसे हीनाधिक बंधेंगे परंतु ऐसा नहीं लेते। प्रदेशबंध उत्कृष्ट कब होता है उसका एक नियम है। जब आठ प्रकृतियां बंधती हैं न, तब समयप्रबद्ध का आठ में विभाजन होगा। अब जहां आयु नहीं बंधती, वहां क्या होगा ? उसका सात में विभाजन होगा, प्रदेशबंध हर एक के खाते में ज्यादा होगा। क्या ऐसा कोई जीव है कि जो छह ही प्रकृतियां बांधता है ? *श्रोता: दसवें गुणस्थान में।* दसवें गुणस्थान में मोहनीय की प्रकृति नहीं बंध रही है और आयु भी नहीं बंध रही है तो सारा प्रदेश बटवारा किसमें होगा ? छह में होगा। वहां प्रत्येक का प्रदेशबंध ज्यादा होगा। अभी हमें यहां चिंता करने की कोई जरूरत नहीं है। यहां अनुत्कृष्ट और अजघन्य कह दिया।

जघन्य प्रदेशबंध तो एकेन्द्रियादिक को होगा। जब वह जन्म का पहला समय होता है तब उनका योग मिनिमम पॉसिबल होता है। तो उसकी चिंता नहीं। यहां प्रदेशबंध इन जनरल कैसा है ? उत्कृष्ट भी नहीं तो अनुत्कृष्ट है, जघन्य भी नहीं तो अजघन्य है। समझ में आया न ? हमें डिटेल में नहीं जाना है। हम भी नहीं समझते थे जब लिखा था। पुस्तक में से कॉपी करके लिखा है। जब महाबंध का अभ्यास हुआ तब इसकी विशेषतायें ख्याल में आयी कि कहां किसका प्रदेशबंध उत्कृष्ट होता है और कहां नहीं होता है। उत्तरप्रकृतियों के बारे में जहां अधिक नंबर ऑफ़ प्रकृतियां बंधती हैं जैसे नामकर्म की, वहां अधिक में बटवारा होता है। जहां मिनिमम बंधती हैं वहां कम में बटवारा होता है। उसके अनुसार प्रदेशबंध का हिसाब होता है। वह यहां का विषय नहीं है। वह अनुत्कृष्ट और अजघन्य है बस इतना हम देखेंगे।

उपरोक्त कार्य करने की योग्यता की प्राप्ति होना प्रायोग्यलब्धि है। इसे प्रायोग्यतालब्धि भी कहते हैं। पूर्व में देखी हुयी तीन लब्धिपूर्वक तीन लब्धिपूर्वक यानी देशनालब्धिपूर्वक की तो मुख्य कंडिशन है ही, जब तत्त्वविचार करने लगता है तो क्षयोपशमलब्धि और विशुद्धिलब्धि तो वहां होती है। **जीव तत्त्वविचार करने लगता है उस काल में वृद्धिगत विशुद्धि** उसका अर्थ क्या है ? विशुद्धि बढ़ रही है का अर्थ क्या है ? कषाय मंद हो रहे हैं। कषाय मंदता को प्राप्त होते हैं उसीको कहेंगे विशुद्धि बढ़ रही है। सातवें नरक के नारकी को वृद्धिगत विशुद्धि होगी कि नहीं होगी ? होगी न, हमने देखा था। उसको उसके अपने योग्य विशुद्धि कहेंगे। **वृद्धिगत विशुद्धि के कारण**

ऊपर बतायी हुयी कर्मों की अवस्थायें सहज बनती हैं। हमने बहुत सारी अवस्थायें देखी हैं- स्थितिकांडकघात देखा, अनुभागकांडकघात देखा, स्थितिबंधापसरण, प्रकृतिबंधापसरण और नया स्थितिबंध कैसे-कैसे होता है - बहुत सारी बातें देखी।

ये सभी बातें कर्मों में होती हैं; कर्मों में होती हुयी ये बातें जीव के परिणामों को बताती हैं। जीव के परिणाम कैसे बताये ? वृद्धिगत विशुद्धि। परंतु वृद्धिगत विशुद्धि कैसे समझें ? उसके लिये कर्मों की तरफ से वर्णन कर रहे हैं। वृद्धिगत विशुद्धि के कारण ऊपर बतायी हुयी कर्मों की अवस्थायें सहज बनती हैं। **उसके लिये जीव को कोई अन्य पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता।** तो जीव का पुरुषार्थ कर्मों में चलता होगा कि नहीं होगा ? *श्रोता: नहीं।* जीव का यहां क्या पुरुषार्थ चल रहा है ? तत्त्वविचार। अभी निर्णय नहीं हुआ है। निर्णय होता तो अंतर्मुख होकर करणलब्धिपूर्वक सम्यक्त्व हो जाता। **जीव कुछ विशेष प्रयोग करता हो इसलिये प्रायोग्यलब्धि होती है ऐसा नहीं है। इन चारों लब्धि में जीव बुद्धिपूर्वक इतना ही करता है; बुद्धिपूर्वक यानी सोच-समझकर क्या कर रहा है ? कि तत्त्वजिज्ञासापूर्वक तत्त्वश्रवणादि करके तत्त्वश्रवणादि करके यानी उसमें देशना ली है, तत्त्वजिज्ञासा में क्षयोपशमलब्धि ली है। हमने क्या देखा था ? तत्त्वजिज्ञासा में क्षयोपशमलब्धि होती है और तत्त्वश्रवणादि यानी देशना क्योंकि क्षयोपशम के साथ विशुद्धिलब्धि तो हो ही गयी और श्रवणादि में देशनालब्धि आ गयी यानी देशनालब्धिपूर्वक तत्त्वविचार में लग जाता है।** जिस काल में तत्त्वविचार में लग जाता है उस समय प्रायोग्यतालब्धि चल रही है।

ऊपर बतायी हुयी बातों की अब विस्तार से चर्चा करेंगे क्योंकि उसमें अनेक पारिभाषिक शब्द हैं। इन सब पारिभाषिक शब्दों को हम अलग-अलग समझेंगे। सरल भाषा में कहना हो तो जीव प्रायोग्यलब्धि में आता है तब उसकी सत्ता में पड़े हुये पूर्वबद्ध कर्मों की स्थिति घटकर जीव हर समय कर्म बांध रहा है और सब बंधे हुये पड़े रहते हैं उसको क्या कहते हैं ? सत्तावाला कर्म या सत्त्व कहते हैं। कभी कितनी स्थिति बांधी थी, कभी कितनी, जैसे मिथ्यात्व की उत्कृष्ट ७० कोड़ाकोड़ी सागर परंतु हर बार या हर जीव उतनी नहीं बांधता है। कम भी बांधेगा - कोई ४० कोड़ाकोड़ी, ३० कोड़ाकोड़ी, १० कोड़ाकोड़ी - यथायोग्य कुछ भी बांध सकता है। जैसी संक्लेश-विशुद्धि होगी वैसे हीनाधिक स्थिति बंधती है। कहते हैं कि सत्ता में पड़े हुये पूर्वबद्ध कर्मों की स्थिति घटकर **अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण रह**

जाती है।

उसीतरह नया होनेवाला बंध भी अंतःकोड़ाकोड़ी सागर से कम स्थितिवाला होता है उसको भी अंतःकोड़ाकोड़ी सागर ही कहेंगे परंतु जितनी स्थिति हुयी है उससे भी कम बंध होता है। तथा कितनी ही प्रकृतियों का बंधना रुक जाता है। अभी इन सभी बातों को हम क्रम से एक-एक को जुदा-जुदा करके देखेंगे। **सर्व प्रथम अंतःकोड़ाकोड़ी सागर का अर्थ हम समझते हैं।** सागर किसको कहते हैं ? दस कोड़ाकोड़ी पल्य को एक सागर कहते हैं। यहां सागर यानी अद्धासागर समझना। जैसे पल्य के भी तीन भेद हैं; कौनसे ? एक होता है व्यवहार पल्य, एक है उद्धार पल्य और एक है अद्धा पल्य। सबसे छोटा जो है वह है व्यवहार पल्य। व्यवहार पल्य गिनने का तरीका क्या है ? तो कहते हैं ऐसा बड़ा गड्ढा करना। यहां नीचे लिखा है देखो-

एक योजन चौड़ा, चौड़ा यानी एक योजन डायमीटरवाला गोल। वह कितना ऊंड़ा करना ? **एक योजन ऊंड़ा एक गड्ढा अर्थात् पल्य करना।** पल्य की उपमा दी है न ! यह महायोजन है। यह सब कल्पना में करना है फिर उत्तम भोगभूमि में जन्में हुये ७ दिन से कम उम्रवाले मेंढों के बालों के अग्रभागों से, नहीं समझें ? वह टीव्ही पर विज्ञापन में बाल ऐसा टेपरिंग दिखाते हैं न, उसका अंतिम पॉइंट होता है न, इतना छोटा टुकड़ा करना कि जिसका दूसरा टुकड़ा नहीं होवे। उसको कहेंगे बाल का अग्रभाग; कहां का लिया ? उत्तम भोगभूमिवाले का। क्यों ? हम कर्मभूमिवाले हैं। हमसे जघन्य भोगभूमिवाले के बाल आठगुणा मोटे होंगे। उससे मध्यम भोगभूमिवाले के आठगुणा मोटे और उत्तम भोगभूमिवाले के उससे भी आठगुणा मोटे होंगे। तो उनका बाल कितना पतला और मुलायम होगा। वह भी न्यू बॉर्न का बाल लेना है और बाल के अग्रभाग का टुकड़ा लेना है। उनसे क्या करना ? **वह गड्ढा ठसोसस भर देना।**

उसके बाद क्या करना ? इसको हम कहेंगे रोमखण्ड, बाल का टुकड़ा है न ? **इन्हें रोमखण्ड कहते हैं।** इन रोमखण्डों से वह गड्ढा ठसोसस भर देना। फिर क्या करना ? अब हर सौ साल के बाद एक रोमखण्ड निकालना इसतरह जब गड्ढा खाली होगा तो यह फोर्टी सिक्स डिजिट्स प्रमाण रोमखण्डों की संख्या बतायी है। डिजिट्स यानी अंक हो - उसमें इतने रोमखण्ड आते हैं और सौ साल के बाद एक रोमखण्ड निकालना है। फोर्टी सिक्स डिजिट्स हैं उसमें दो और झिरो आगे बढ़ा दो -

इतने वर्ष होंगे कि नहीं होंगे ? **उतने वर्षों को एक पल्य कहते हैं। १ पल्य के असंख्यातवें भाग में भी असंख्यात करोड़ वर्ष होते हैं।** धवला १३वीं पुस्तक में लिखते हैं कि जो सौ वर्ष कहते हैं वह असंख्यात सौ वर्ष समझना चाहिये। सामान्य से हम व्यवहार पल्य को कहते हैं कि व्यवहार पल्य फोर्टी सिक्स डिजिट में और दो डिजिट बढ़ा दो - इतने वर्ष का होगा। परंतु सच में वह भी असंख्यात-असंख्यात वर्षों का होता है। यहां **१ पल्य के असंख्यातवें भाग** लिखा है वह बात तीनों पल्य के लिये समझनी चाहिये।

अद्धा पल्य के असंख्यातवें भाग में भी असंख्यात करोड़ वर्ष होते हैं। हमने गड्डे में रोमखण्ड भर दिये थे और हर सौ साल के बाद एक रोमखण्ड निकाला था तो गड्डा खाली होने में जो कुछ टाइम लिमिट हो गयी उसको क्या कहेंगे ? **इसे व्यवहार पल्य कहते हैं। श्रोता: व्यवहार पल्य में संख्यात करोड़ ही आयेंगे ?** हां। **ऐसे असंख्यात व्यवहार पल्यों का १ उद्धार पल्य होता है** कितने ? उसकी संख्या है उसको असंख्यात से गुणा करो। अक्चुअलि शास्त्रों में असंख्यात करोड़ वर्षों के जितने समय हैं उससे गुणा करो ऐसा आता है। **और असंख्यात उद्धार पल्यों का १ अद्धा पल्य होता है।** उसमें असंख्यात से और गुणा करो। अभी हम अद्धा पल्य तक आ गये। **ऐसे दस कोड़ाकोड़ी अद्धा पल्यों का १ अद्धा सागर होता है।** दस करोड़ मल्टिप्लाइड बाय एक करोड़ को कहेंगे दस कोड़ाकोड़ी।

कोई जीव मिथ्यात्व का अति तीव्र परिणाम करे तो वह १ समय में उत्कृष्ट अर्थात् अधिक से अधिक ७० कोड़ाकोड़ी सागर का स्थितिबंध करता है। श्रोता: अद्धा मायने आधा ? नहीं, आधा नहीं है। वह पल्य का नाम ही अद्धा पल्य है और उससे जो सागर बनेगा उसका नाम अद्धा सागर। कर्मों की स्थिति अद्धा सागर में नापते हैं। देवों की नारकियों की आयु नापते हैं वह इन सागरों में नापते हैं। हम कहते हैं ३३ सागरवाले देव हुये या ३३ सागर सातवें नरक की आयु है वह अद्धा सागर में होती है।

परंतु एक बात जान लो, इसतरह का उत्कृष्ट स्थितिबंध करनेवाला जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त नहीं कर सकता। क्यों नहीं ? अभी प्रायोग्यलब्धि में आया है या क्षयोपशमलब्धि में आया है वहां से उसके परिणाम कैसे हुये ? मंद हो रहे

हैं। तो मंद परिणाम में इतना उत्कृष्ट बंध होगा उसको ? नहीं । वह तो अति तीव्र संक्लेश में होगा। यहां उसके मंद और मंदतर परिणाम हो रहे हैं, यहां इतना बंध नहीं हो रहा है। यहां तो अंतःकोड़ाकोड़ी सागर का बंध हो रहा है और पहले बंधा हुआ है उसको भी स्थितिकांडकघात द्वारा घटाया है। *श्रोता: यहां उसकी स्थिति भी ऑलरेडी अंतःकोड़ाकोड़ी की है ?* हां, स्थितिकांडकघात के द्वारा स्थिति अंतःकोड़ाकोड़ी सागर बनायी है और यहां उससे भी कम बंध हो रहा है। अति उत्कृष्ट बंध कब होता है ? अति संक्लेश में। अतिसंक्लेश में उसको सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होगी। हमने देखा था न ? जाग्रत होना चाहिये, उसका मंद कषायरूप-धर्मानुरूप परिणामन होना चाहिये। हमने पहले ये सब बातें पात्रता में देखी थी। इतनी अधिक स्थिति बांधनेवाले को उस अवस्था में सम्यग्दर्शन नहीं होगा। बाद में जाकर करेगा उसकी ना नहीं है। जब तक अति संक्लेश परिणाम हैं उस काल में सम्यग्दर्शन नहीं होगा। अंतर्मुहूर्त में या कुछ काल के बाद मंदकषायरूप होगा तब हो सकता है। हम उसको कोई कायम तीव्रकषायी घोषित नहीं कर रहे हैं। *श्रोता: तो अंतर्मुहूर्त में भी इसके परिणाम बदल सकते हैं ?* बदलते हैं, बदल सकते हैं।

देखो- **उसीतरह श्रेणी में आरूढ़ होनेवाले जीवों के समान जो जघन्य स्थितिबंध करता है** क्योंकि जब श्रेणी चढ़ता है तो वहां भी कर्मों का स्थितिबंध बहुत घटता चला जाता है। जैसे असंज्ञी के समान होता है, चतुरिन्द्रिय के समान होता है। आपको याद होगा लास्ट के दो शिबिर हमने श्रेणी के विषय पर किये थे। एकेन्द्रिय के समान यानी स्थितिबंध एक सागर जितना होने लगता है। उससे भी कम होने लगता है। पत्थों में होने लगता है। ऐसी कम स्थिति के साथ भी प्रथमोपशम सम्यक्त्व नहीं होगा। क्योंकि यहां इतनी विशुद्धि नहीं है जो श्रेणी में होती है यह उसका अर्थ है। ७० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध होने जैसा अति उत्कृष्ट संक्लेश भी यहां प्रायोग्यलब्धि में नहीं है और इतनी विशुद्धि भी नहीं है कि सागर जितना बंध हो जाये या कम हो जायेगा। इसलिये यथायोग्य यहां अंतःकोड़ाकोड़ी सागर का ही बंध है।

श्रोता: इसमें से सरल अर्थ हम ऐसा समझ सकते हैं कि जघन्य स्थितिबंध एकेन्द्रियादिवाले जीव करते हैं इसलिये वहां इसप्रकार का नहीं होगा ? ऐसा नहीं है। पात्रता में संज्ञी पंचेन्द्रिय की कंडिशन तो बता दी है, परंतु संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव इतना जघन्य स्थितिबंध कब करता है ? श्रेणी में करता है। मुनिराज भी छठें-सातवें

गुणस्थानवाले हों या आठवें गुणस्थान में भी पहुंचे हैं तो शुरुआत में तो अंतःकोड़ाकोड़ी सागर का ही बंध है। आगे जाकर फिर अति विशुद्धि हो जाती है तब जाकर इतना कम स्थितिबंध है। यहां तो ऐसा नहीं है। अभी संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि है। एकेन्द्रियों में सागर जितना बंध होता है उससे कुछ मतलब नहीं है। *श्रोता: संज्ञी पंचेन्द्रिय के लिये ऐसा बताने की आवश्यकता क्यों पड़ी कि यहां प्रथमोपशम सम्यक्त्व नहीं हो सकता ?* इसलिये बताया है कि यहां की विशुद्धि कितनी है ? कि ७० कोड़ाकोड़ी के बंध जितना संक्लेश भी नहीं है और श्रेणी जैसी विशुद्धि यहां नहीं है। श्रेणी में भी अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण वगैरह परिणाम चल रहे हैं। वहां तो उतनी विशुद्धि है। वहां इतना स्थितिबंध घटा है। परंतु यहां इतना घटा हुआ वैसा स्थितिबंध नहीं है यह कहना चाहते हैं। मूल गाथाओं में यह बात है न, इतना नहीं होता है तो उन्होंने स्पेशली चीज बतायी है। इसीलिये बतायी है कि कंडिशन क्या है ? कितना बंध होता है ? अति तीव्र संक्लेश भी नहीं है और इतनी विशुद्धि नहीं है कि इतना कम बंध हो जाये। बंध के द्वारा उनको विशुद्धि बतानी है कि कितनी विशुद्धि होती है। बस इतना ही।

प्रायोग्यलब्धि से पहले जीव के आयु बिना सात कर्मों की स्थिति अनेक कोड़ाकोड़ी सागरों की होती है। यथायोग्य अनेक कहा। उन सभी सात कर्मों की स्थिति घटकर यानी सत्तावाली स्थिति घटकर अंतःकोड़ाकोड़ी सागर की रह जाती है अर्थात् करोड़ गुणा करोड़ सागर से भी कम होती है। कोड़ाकोड़ी सागर से कम और करोड़ सागर से अधिक संख्या को अंतःकोड़ाकोड़ी सागर कहते हैं। **कर्मों की स्थिति का यह घटना** कौनसे प्रोसेस के द्वारा होता है ? तो कहते हैं कि **स्थितिकांडकघात द्वारा होता है।**

यह स्थितिकांडकघात क्या होता है वह १५ मिनट के बाद हम देखेंगे। अभी थोड़े रुकते हैं यहां।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

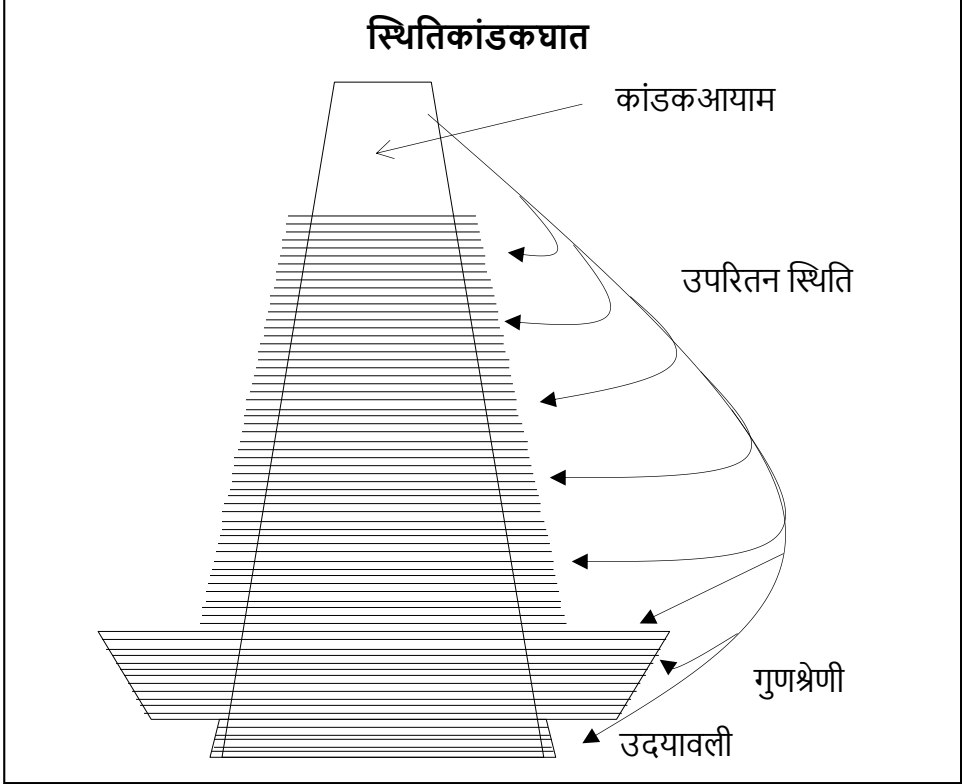
१८. प्रायोग्यलब्धि - कांडकघात, बंधापसरण

सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र ने लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से हम प्रथमोपशम सम्यक्त्व से पूर्व होनेवाली पंचलब्धि की चर्चा कर रहे हैं। जीव प्रायोग्यलब्धि में आता है तो सर्वप्रथम स्थितिकांडकघात होता है। यह कार्य एक समय में पूरा नहीं होता, उसके लिये भी अंतर्मुहूर्त लगता है। उसकी बात हम देखेंगे।

देखो पृष्ठ ९५- **कांडक यानी खण्ड अर्थात् टुकड़ा।** जैसे हम गन्ना लाते हैं न, उसका हमने एक टुकड़ा तोड़ लिया। क्या किया ? कांडक यानी खण्ड यानी टुकड़ा निकाला। **अनेक निषेकों के समूह को यहां कांडक कहते हैं।** हमने देखा था सत्ता में प्रति समय एक-एक निषेक पड़ा है। ऐसे कितने निषेक पड़े हैं ? वर्तमान समय से लेकर अनेक कोड़ाकोड़ी सागरों के। मिथ्यात्व में तो मॅक्झिमम स्थितिसत्त्व हमने देखा था न, जो पहले बंधे हुये हैं। भले ही ७० कोड़ाकोड़ी में अंतर्मुहूर्त, घंटाभर जो कुछ कम हुआ होगा वह वहां हो सकता है। क्योंकि संक्लेश के बाद उतना काल बीत गया है। अभी विशुद्धि हुयी है परंतु सत्ता में इतनी स्थिति तो पड़ी है। पहले यथायोग्य बंधी हुयी वहां अनेक कोड़ाकोड़ी सागरों की स्थिति पड़ी है। एक-एक समय में एक-एक निषेक पड़ा है। इन सबकी कटौती होकर अंतःकोड़ाकोड़ी प्रमाण स्थिति रह जानेवाली है।

ऊपर के जितने निषेक नष्ट होकर नीचे आयेंगे, उनका घात होगा उसको कहेंगे कांडक, उतना टुकड़ा। **अनेक निषेकों के समूह को यहां कांडक कहते हैं।** अभी निषेक किसको कहना ? हम भूल गये न ? इसलिये यहां फिर लिखा है कि **समान स्थितिवाले परमाणुओं के समूह को निषेक कहते हैं।** हमने बहुत पहले इसको देखा था न, इसलिये दुबारा याद किया। यह टर्मिनॉलॉजि हमारे रोज की नहीं है, इन शब्दों से हम परिचित नहीं है इसलिये बार-बार इनको दोहराते हैं। **एक-एक समय में एक-एक निषेक इसतरह अनेक कोड़ाकोड़ी सागरों के;** अभी सागर के कितने साल होंगे ? उस एक-एक साल के कितने सेकंड होंगे ? उस एक-एक सेकंड में कितने समय होंगे ? एक-एक समय में एक-एक निषेक। तो वहां कितने असंख्यात निषेक पड़े हैं, ये सत्ता में रहते हैं। उनमें से नीचे के अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थिति के निषेक छोड़कर ऊपर के सभी निषेकों के समूह को यहां एक कांडकरूप से ग्रहण किया है - बताया है। एक कांडक क्यों कहा ? यहां

प्रायोग्यलब्धि में एक ही बड़ा स्थितिकांडकघात होता है। करणलब्धि में अनेक बार ऐसे स्थितिकांडकघात होते हैं। उसकी बात यहां नहीं है।



यहां एक ही बड़ा स्थितिकांडकघात होता है जिससे सबकी स्थिति इतनी कम हो जायेगी। श्रोता: सभी कर्मों का अलग-अलग रहेगा ? सभी कर्मों का अलग-अलग रहेगा। श्रोता: और उनके कांडकआयाम भी अलग-अलग होंगे ? कांडकआयाम भी यथायोग्य अलग-अलग होता है। जिसकी बहुत ज्यादा स्थिति है उसकी उस मात्रा में कम हो जायेगी। देखो, वहां वर्तमान समय से लेकर सारे निषेक पड़े हैं। यहां गुणश्रेणी लिखा है इसको अभी कन्सिडर मत करो। यहां गुणश्रेणी का कोई कार्य नहीं हो रहा है, यह बाद में होनेवाला कार्य है। हमें यहां केवल स्थितिकांडकघात को समझना है। यहां जो ब्लॉक लिखा है न, यहां भी निषेक हैं ऐसा ही इमॅजिन करो। अब क्या होनेवाला है ? यहां कांडक के जो निषेक हैं उनमें से कुछ परमाणु एक समय में नीचे आकर नीचे के सभी निषेकों में आ मिलते हैं।

कांडक के सभी निषेकों में से ऐसे वर्टिकली निकालो, छीलो। जैसे हमें गन्ने का छोटा सा टुकड़ा छीलना है, क्या करते हैं ? एक बार थोड़ा छीलकर निकालते हैं, फिर दूसरी बार छीलते हैं, फिर तीसरी बार छीलते हैं। इसतरह से एक-एक फालि करके उसके परमाणु नीचे आते हैं। दूसरे समय में दूसरी फालि नीचे आयेगी कहेंगे; उसका नाम क्या है ? फालि। सभी निषेकों में से दूसरा लॉट नीचे आयेगा। फिर तीसरा लॉट नीचे आयेगा। चौथा लॉट नीचे आयेगा और फिर अंतिम लॉट नीचे आयेगा। तो क्या होगा ? कांडक जितनी स्थिति एक छोटे अंतर्मुहूर्त में कटडाउन होगी। असंख्यात वर्षों की स्थिति जो सत्ता में बंधी पड़ी थी वह कटडाउन होगी, वे परमाणु तो रहेंगे परंतु स्थिति में कटौती होगी। स्थिति का यह घटना होता है उस प्रोसेस का नाम है स्थितिकांडकघात यानी उतने कांडक का घात हुआ। घात हुआ यानी अभी वे निषेक सत्ता में नहीं रहे, परंतु उन निषेकों के परमाणु नीचे के निषेकों में आ मिले। नीचे के निषेक ऐसे बड़े-बड़े होंगे। वहां परमाणुओं की संख्या ज्यादा हो जायेगी। इसको कहते हैं स्थितिकांडकघात। यहां तक समझ में आयी बात ?

श्रोता: इसमें स्लाइस होकर कम होंगे कि पूरे एकदम कम होंगे ? एकदम नहीं, एक समय में नहीं, एक छोटे अंतर्मुहूर्त में। एक समय में थोड़े नीचे आये, दूसरे समय में असंख्यातगुणा नीचे आये, तीसरे समय में उससे असंख्यातगुणा नीचे आये, इसतरह से अंतिम फालि नीचे आते ही कांडकघात पूरा हो जाता है। शास्त्र में उसको फालि कहते हैं। *श्रोता: इसमें चार्ट नहीं है ?* यह चार्ट झेरॉक्स में नहीं है। बोर्ड पर लगा हुआ चार्ट अन्य किसी शिबिर के चार्ट्स में से हम लाये हैं। करीबन तीस के ऊपर शिबिर हो गये हैं। अनेक शिबिरों के चार्ट्स में से कुछ चार्ट्स इकट्ठा करके यहां लाये हैं।

फिर से पढ़ते हैं, देखो- **प्रायोग्यलब्धि के प्रारंभ में एक अंतर्मुहूर्त काल में प्रायोग्यलब्धि का अंतर्मुहूर्त है परंतु उससे भी यह अंतर्मुहूर्त बहुत छोटा है। इस एक कांडक के सभी निषेकों के सभी परमाणु नीचे के शेष निषेकों में शेष यानी नीचे के अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण निषेकों में निक्षेपण किये जाते हैं** यानी डाले जाते हैं। ये डाले जाते हैं या जीव नीचे लाता है यह कथन पद्धति है। अभी शब्दों में कैसे बतायें ? परमाणुओं की स्थिति घटती है और अंतःकोड़ाकोड़ी प्रमाण रह जाती है। **अर्थात् उनमें आ मिलते हैं। इसे स्थितिकांडकघात कहते हैं।**

देखो, यहां कर्म अभी सत्ता में ही पड़े हैं, अभी निकल नहीं गये हैं। अभी तो प्रायोग्यलब्धि चल रही है। परंतु तत्त्वविचार के निमित्त से उनकी अनेक कोड़ाकोड़ी सागरों की स्थिति घटकर अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण शेष रह जाती है। यह कार्य आयु बिना शेष समस्त सात कर्मों में होता है इसलिये हमने पूछा था प्रशस्त में होता है कि अप्रशस्त में होता है ? दोनों में होता है। अर्थात् प्रशस्त और अप्रशस्त सभी कर्मों की स्थिति घट जाती है। आयु की स्थिति तो जितनी है उतनी ही रहती है। आयु में हर समय नीचे का एक-एक निषेक उदय में आता है वह कार्य चलता ही रहता है। उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। जब-जब यहां कर्मों की बात बताते हैं, वह तो सात कर्मों में जो-जो होता है उसकी बात यहां चलेगी।

लब्धिसार ग्रंथ में स्थितिकांडकघात का स्वरूप निम्न प्रकार बताया है- पं. टोडरमलजी ने लब्धिसार ग्रंथ शुरू करने से पहले लब्धिसार भूमिका लिखकर बहुत सारे विधान वहां समझाये हैं। यह बात उन्होंने भूमिका में लिखी है, उसीका उद्धरण यहां लिखा है। ‘स्थितिसत्त्व सत्त्व यानी सत्ता में जो निषेक हैं उनकी कितनी स्थिति है ? अर्थात् सत्ता में पड़े हुये कर्मों की स्थिति, उसमें से एक-एक समय व्यतीत होने पर यानी जैसे एक-एक समय बीत जायेगा तो क्या होगा ? नीचे का एक-एक निषेक उदय होकर गल जायेगा। जितनी स्थिति है उससे कम बंध हो रहा है, तो प्रति समय एक-एक निषेक का उदय होकर गल जायेगा तो स्थिति भी एक-एक समय से घटेगी। **एक-एक निषेक ही खिरता है - स्थितिसत्त्व एक-एक समय का घटता है।**

परंतु यहां विशेषता क्या हो रही है ? ये कांडकघात कब होते हैं ? तो कहते हैं दर्शनलब्धि और चारित्रलब्धि के निमित्त से दर्शनलब्धि यानी अभी तो हुयी नहीं है, यहां बाद में होनेवाले स्थितिकांडकघात का स्वरूप बता रहे हैं। स्थितिकांडकघात का सामान्य वर्णन कर रहे हैं। अभी एक ही स्थितिकांडकघात हुआ है। जब वह अनिवृत्तिकरण आदि ऊपर के करण परिणामों में आयेगा तो हर अंतर्मुहूर्त में एक स्थितिकांडकघात, दूसरे अंतर्मुहूर्त में और एक स्थितिकांडकघात, तीसरे में और एक, यह तो गाड़ी चलती जायेगी। इसलिये यहां कहा है कि दर्शनलब्धि और चारित्रलब्धि के निमित्त से स्थितिकांडकघात होते हैं। उसका अर्थ क्या है ? सम्यग्दर्शन के अलग-अलग टाइप हैं जैसे प्रथमोपशम, द्वितीयोपशम या क्षायिक सम्यक्त्व होता है या अन्य जहां-जहां करण परिणाम होते हैं वहां ये स्थितिकांडकघात होते हैं। चारित्रलब्धि में जब

श्रेणी चढ़ते हैं वहां भी ऐसा कार्य होता है।

कहते हैं **दर्शनलब्धि और चारित्रलब्धि के निमित्त से स्थितिकांडकविधान** द्वारा इससे क्या होता है ? स्थिति का घटना होता है, स्थिति में कटौती होती है। **अथवा अपकृष्टि विधान द्वारा** अपकृष्टि यानी अपकर्षण होना। ऊपर के निषेकों में से परमाणु अधिक मात्रा में नीचे आते हैं उसको कहेंगे अपकृष्टि विधान। **अर्थात् अपकर्षण द्वारा बहुत अधिक प्रमाण में स्थितिसत्त्व घटता है।** स्थितिसत्त्व यानी सत्ता में पड़े हुये परमाणुओं की निर्जरा ज्यादा कैसे होगी ? ऐसे ही होगी कि अभी ऊपर के निषेकों का कांडकघात हुआ तो उनके परमाणु नीचे आकर मिले तो नीचे के निषेक बड़े-बड़े हुये। वे जब उदय में आयेंगे तो क्या होगा ? अधिक परमाणु खिरेंगे। प्रतिसमय और क्या हो रहा है ? जो अपकर्षण हुये - अन्यथा भी अपकर्षण हो ही रहा है - ऊपर से परमाणु नीचे आ ही रहे हैं वे अधिक मात्रा में आ रहे हैं। क्यों ? तत्त्वविचार और स्वसन्मुखता की विशेषता है कि उसके निमित्त से अपकर्षण होनेवाले परमाणु ज्यादा नीचे आते हैं और खिर जाते हैं। सत्ता में से बहुत कर्म खिरते चले जाते हैं, निर्जरा होती है। निर्जरा अभी यहां शुरू नहीं हुयी है। उन्होंने भूमिका में तो आगे जहां-जहां स्थितिकांडकघात होता है उसकी चर्चा की है। प्रायोग्यलब्धि में खिरना-विरना नहीं हो रहा है। अधिक अपकर्षण वगैरह यहां नहीं है। जब कभी होता है वहां की बात है।

स्थितिकांडकघात का विधान अर्थात् उसकी प्रक्रिया निम्न प्रकार है। अधिक प्रमाणवाला स्थितिसत्त्व होता है, उसमें हमने देखा था अनेक कोड़ाकोड़ी सागरों का था। प्रतिसमय उदय आने योग्य अनेक निषेक होते हैं अर्थात् एक-एक समय में एक-एक निषेक इसतरह निषेकों की संख्या बहुत होती है। हमने देखा था वर्तमान से लेकर अनेक कोड़ाकोड़ी सागरों के निषेक हैं। उनमें से ऊपर के अनेक निषेकों का नाश करके स्थितिसत्त्व घटाने को स्थितिकांडकघात कहते हैं। नाश करने योग्य सभी निषेकों के समूह को यहां कांडक कहा है। हमने देखा था न, जितना भी नष्ट होनेवाला है उस पूरे का नाम क्या है ? कांडक।

कांडक के निषेकों के सभी परमाणु शेष निषेकों में आवली प्रमाण ऊपर के निषेकों को छोड़कर अर्थात् अतिस्थापनावली छोड़कर नीचे के सभी निषेकों

में निक्षेपण किये जाते हैं अर्थात् उसमें आ मिलते हैं। यह अतिस्थापनावली की बात अभी हम छोड़ देते हैं। अभी यह कांडक नष्ट होनेवाला है। तो कांडक के अंदर ही अंदर उसका द्रव्य नहीं दिया जा रहा है। वे सब परमाणु नीचे आकर, कांडक के नीचे सर्वत्र आ मिलेंगे। परंतु कांडक के जो निषेक हैं वे नीचे कहां जायेंगे ? कांडक के नीचे आवली प्रमाण निषेक छोड़कर उनके नीचे सर्वत्र आयेंगे यह उसका अर्थ होता है। अभी अतिस्थापनावली की बात हम गौण करके छोड़ देते हैं। ऊपर के निषेकों के परमाणु नीचे सर्वत्र आ मिलते हैं बस इतनी बात यहां रखते हैं।

देखो, ग्रंथ आद्योपांत पढ़ना अलग बात है और यहां हम स्थूलरूप से उसकी चर्चा करते हैं वह अलग बात है। जो बहुत सूक्ष्म बातें हैं दैनिक आद्योपांत स्वाध्याय में उनकी चर्चा की है, वे सारे प्रवचन उपलब्ध हैं - वेबसाइट में हैं, सीडीज में हैं, पेनड्राइव में हैं। सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार, कर्मकाण्ड, जीवकाण्ड, धवला, जयधवला, महाधवला जिसको जो चाहिये उन पूरे ग्रंथों के प्रवचन उपलब्ध हैं। एक-एक लाइन का अर्थ हम दैनिक स्वाध्याय में करते हैं वह अलग बात है और यहां हम स्थूलरूप से देखेंगे, बड़ी-बड़ी स्थूल बातें देखेंगे। कुछ बातें गौण करके हम आगे बढ़ेंगे। ख्याल में आती है न बात ? नहीं तो विषय इतना क्लिष्ट हो जायेगा और जिसको रुचि कम है या उसमें कुछ सूझ-बूझ नहीं है वह बोअर होकर चला जायेगा। हमें इतना ही देखना है कि यहां स्थिति में बहुत बड़ी कटौती होती है। किस विधान द्वारा ? स्थितिकांडकघात के द्वारा और यह कार्य अंतर्मुहूर्त तक चलेगा।

उसके लिये लब्धिसार में एक दृष्टांत दिया है। हमने देखा न एक फालि, फिर दूसरी फालि, फिर तीसरी फालि यानी पहले समय में कुछ परमाणु नीचे आयेंगे, दूसरे समय में कुछ, तीसरे समय में कुछ, अंतर्मुहूर्त में सब नीचे आयेंगे। उसीको यहां पं. टोडरमलजी ने छोटी संख्यायें लेकर समझाया है। **इसे दृष्टांत देकर समझाते हैं। जैसे, स्थितिसत्त्व ४८ समय है,** हमने अनेक कोड़ाकोड़ी सागर कहा उसके बदले उन्होंने ४८ की संख्या लेकर समझाना चाहा। **उसके ४८ निषेक हैं और सर्व निषेकों के परमाणु २५००० हैं। उनमें से ८ निषेकों का नाश करना है** यानी कांडक में कितने निषेक लिये ? ८। **अर्थात् ८ निषेकों के एक कांडक का घात करना है, उनमें १००० परमाणु हैं।**

वे परमाणु शेष ४० निषेकों में से ऊपर के २ निषेकों को छोड़कर जिसको हमने अतिस्थापना कहा था, नीचे के ३८ निषेकों में आ मिलते हैं। उनमें से कुछ परमाणु पहले समय में, कुछ दूसरे समय में इसप्रकार चार समयों तक मिलते हैं। चौथे समय में शेष सभी परमाणुओं को उन ३८ निषेकों में मिलाकर ऊपर के ८ निषेकों का अभाव होता है। यानी ४८ की स्थिति घटकर कितनी हो जायेगी ? श्रोता: ४०/४० समय शेष रहेगी। यह तो बहुत स्थूल दृष्टांत है। समझाने के लिये बहुत छोटी संख्या लेकर उसको समझाया है।

दार्ष्टांत में अर्थात् यथार्थ में, वास्तव में अनेक कोड़ाकोड़ी सागरों के निषेक कांडकघात द्वारा नष्ट होकर उनमें से सर्व परमाणु अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण नीचे के निषेकों में आ मिलते हैं। इसतरह एक अंतर्मुहूर्त में अनेक कोड़ाकोड़ी सागरों का स्थितिसत्त्व घटता है। जिस एक आवली प्रमाण निषेकों में ये परमाणु नहीं दिये जाते उन्हें अतिस्थापनावली कहते हैं।' अतिस्थापनावली को हमने गौण करके बताया नहीं था। यह इन्व्हर्टेड-अवतरण चिन्ह में हैं वहां तक की सारी बातें पं. टोडरमलजी ने लब्धिसार भूमिका में लिखी हुयी हैं। दृष्टांत भी उन्हीं का है।

जिसतरह स्थितिकांडकघात द्वारा कर्मों का स्थितिसत्त्व घटता है और अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण शेष रहता है, उसी प्रकार अभी और क्या कार्य होता है यहां ? अनुभागकांडकघात होता है। निषेकों की रचना अलग है, अनुभाग की स्पर्धकों की रचना अलग से बताते हैं। ये जो परमाणु नीचे आये हैं उन्हीं में अनुभाग की अपेक्षा हम दूसरी पंक्ति बनायेंगे। हमने दो पंक्ति बनायी थी न ? एक मार्क्स के अनुसार जुदी पंक्ति और फिर अल्फाबेटीक-नाम के अनुसार जुदी पंक्ति, तो दो अलग-अलग पंक्ति होगी न ! अभी नीचे के जो अंतःकोड़ाकोड़ी प्रमाण निषेक हैं उनकी अनुभाग की अपेक्षा हम पंक्ति करेंगे। सभी निषेकों में अनुभाग जघन्य से उत्कृष्ट तक सब प्रकार का होता है। उसमें ऊपर के यानी निषेकों की अपेक्षा ऊपर नहीं समझना। अनुभाग की रचना हमने अलग से बतायी थी। अनुभाग की रचना में ऊपर के अधिक अनुभागवाले स्पर्धक हैं। उनमें भी कटौती होगी और उनका अनुभाग घटकर नीचे के स्पर्धकों जैसा अनुभाग हो जायेगा उसको अनुभागकांडकघात कहेंगे। परंतु ऊपर के निषेकों में अनुभाग ज्यादा होता है ऐसा मत समझना। हमने पहले भी वह बात स्पष्ट की थी।

यहां कहते हैं **अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग घटकर**, कितनी कटौती होती है ? अनंत स्पर्धकों की कटौती होती है। **अनंतवें भाग प्रमाण अनुभाग शेष रहता है। यह कार्य अनुभागकांडकघात द्वारा सम्पन्न होता है।** हमने दो विधानों के नाम सीखे; कौनसे दो ? स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात। दोनों एक-एक ही बार हुये हैं - एक ही स्थितिकांडकघात हुआ और स्थिति अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण शेष रही। एक ही अनुभागकांडकघात हुआ; किसमें ? सभी अप्रशस्तों में और अनुभाग कितना शेष रहा ? द्विस्थानगत। सबका अपना-अपना अनुभाग जुदा। ज्ञानावरण का जुदा, दर्शनावरण का जुदा, मोहनीय का जुदा, अंतराय का जुदा - सबका जुदा। अघातिकर्म में भी अप्रशस्त में अपना-अपना जुदा। कितना अनुभाग शेष रहा ? द्विस्थान। घातिकर्म में द्विस्थान लता और दारु; अघाति में द्विस्थान क्या कहेंगे ? निंब और कांजीर। यहां तक समझ में आयी बात ?

पूर्व में सत्ता के अप्रशस्त प्रकृतियों में जितना अनुभाग था उसके अनंत भाग करेंगे तो बहुभाग स्पर्धकों का अनुभाग घटकर एकभाग जितने स्पर्धकों के समान कम अनुभाग होता है। या इसे ऐसा भी कह सकते हैं कि तीव्र अनुभागवाले यानी शैल और अस्थिवाले तथा हलाहल और विषवाले स्पर्धक नष्ट होकर स्पर्धक नष्ट हुये यानी क्या ? परमाणु तो कायम रहे, उनका अनुभाग हीन हुआ। जो शैल या हलाहल जाति का था, उनके परमाणु मंद अनुभागवाले दारु और लतावाले तथा घाति में निंब और कांजीरवाले स्पर्धकों में आ मिलते हैं। समझ में आयी बात ? उनके जैसा अनुभाग बन गया। यहां तक अनुभागकांडक की बात है।

तीव्र अनुभागवाले अनेक स्पर्धकों का अर्थात् एक अनुभागकांडक का नाश एक अंतर्मुहूर्त में होता है, इसे अनुभागकांडकघात कहते हैं। यह प्रक्रिया प्रक्रिया यानी प्रोसेस-विधान केवल अप्रशस्त प्रकृतियों में ही होती है। ही लगाया है। प्रशस्त प्रकृतियों में तो अनुभाग बढ़ेगा। **प्रशस्त प्रकृतियों में तो अनुभाग कितना ? अनंतगुणा बढ़कर चतुःस्थानगत गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत भागरूप हो जाता है।** क्योंकि यहां जो नया बंध हो रहा है न, वह प्रशस्त प्रकृतियों का उत्कृष्ट यानी अनुभाग बढ़कर हो रहा है। अगर सत्ता में पड़ा हुआ अनुभाग बढ़ना है तो नये बंध की अपेक्षा आती है। सत्ता में कम अनुभाग था वह भी बढ़ जायेगा और नया बंध होता है वह भी बढ़कर होगा - चतुःस्थानवाला होगा। किसमें ? प्रशस्त में।

पूर्व में बंधे हुये और सत्ता में पड़े हुये आयु छोड़कर अन्य सर्व कर्मों की स्थिति इसतरह घटती है। उसीप्रकार अब जो नवीन कर्मबंध होता है वह भी अंतःकोड़ाकोड़ी सागर का ही होता है, स्थितिसत्त्व भी उतना और स्थितिबंध भी उतना। तो क्या दोनों समान होंगे ? नहीं, सत्त्व से भी बहुत कम बंध होगा। तो भी स्थितिसत्त्व के संख्यातवें भाग जितना नया स्थितिबंध होता है। उसमें से क्या होता है ? एक-एक निषेक गल रहा है तो स्थिति एक-एक समय से घटती हुयी नीचे-नीचे आती रहती है। नया स्थितिबंध हो रहा है वह भी क्रमशः घटता जाता है, इसे स्थितिबंधापसरण कहते हैं। पहले हमने क्या देखा था ? घात होता है। किसका ? स्थितिकांडकघात हुआ तो सत्ता की स्थिति घटी। अनुभागकांडकघात हुआ तो सत्ता का अनुभाग घटा। अब बंध के घटने की बात है। नया स्थितिबंध घटेगा और हर अंतर्मुहूर्त में और घटता चला जायेगा, उसका नाम है स्थितिबंधापसरण। अपसरण अर्थात् कम होना - घटना। बात ख्याल में आयी ?

लब्धिसार ग्रंथ में स्थितिबंधापसरण का वर्णन इस प्रकार है- भूमिका में पृष्ठ २१ आप देख सकते हैं। स्थितिबंध कषाय के अनुसार होता है हमने पहले देखा था बंध चार प्रकार के हैं। कषाय के अनुसार स्थिति और अनुभाग का बंध होता है। इसलिये मिथ्यात्व और कषाय हीन होने से - हीन का अर्थ क्या है ? मंद होने से मंद होकर उदय में आ रहे हैं न ? क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि में यही तो हमने देखा था, यहां तो विशुद्धि और बढ़ रही है, क्योंकि जीव तत्त्वविचार में लगा है। तो कहते हैं कि स्थितिबंध घटता है - नया बंध कम स्थितिवाला होता है। घटने को अपसरण कहते हैं, स्थितिबंध घटने को स्थितिबंधापसरण कहते हैं। उसका पूरा एक शब्द कैसा हुआ ? स्थितिबंधापसरण।

प्रायोग्यलब्धि में स्थितिबंध क्रमशः घटता जाता है। जितनी स्थिति कम बंधी अर्थात् स्थितिबंध में जितनी घट हुयी यानी कटौती जितनी होगी उतना तो स्थितिबंधापसरण हुआ और घटने पर जितने प्रमाण में स्थिति बंधेगी वह तो स्थितिबंध शेष रहा। नहीं समझे ? जैसे मान लेते हैं अंतःकोड़ाकोड़ी समझाने के लिये अगर अंतर्मुहूर्त तक १००० वर्ष का स्थितिबंध होता था; फिर कटौती होकर, कटौती कितनी हुयी ? श्रोता: १००/१०० वर्ष की हुयी। फिर नया बंध ९०० वर्ष का होगा। तो अपसरण कितने का हुआ ? श्रोता: १०० का/१०० वर्षों का और नया बंध कितने का

होगा ? श्रोता: १०० वर्ष/ १०० वर्षों का। समझ में आयी बात ? देखो, क्या कहा ? जितनी घट हुयी उतना तो स्थितिबंधापसरण हुआ और घटने पर जितने प्रमाण में स्थिति बंधेगी वह तो स्थितिबंध शेष रहा। नया स्थितिबंध उतना होने लगेगा। जितना स्थितिबंध रहा उतना स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त काल तक समान प्रमाण में होता रहता है, अंतर्मुहूर्त में यानी असंख्यात समयों तक समान - उतना का उतना स्थितिबंध होता है। फिर और कटौती हो जाती है। इस काल को स्थितिबंधापसरण काल कहते हैं। इसके पश्चात् दुबारा स्थितिबंधापसरण होता है।

लब्धिसार में इसका भी दृष्टांत दिया है। देखो, उन्होंने यही बात बतायी है। इसे दृष्टांत देकर कथन किया है। जैसे, उन्होंने १ लाख का उदाहरण बताया है। पहले १ लाख वर्ष का स्थितिबंध होता था, उसमें १००० वर्ष प्रमाण स्थितिबंधापसरण हुआ। कटौती इतनी हुयी तब ९९००० वर्ष जितना स्थितिबंध रहा। स्थितिबंधापसरण काल के पहले समय में, दूसरे समय में... इसतरह अंतर्मुहूर्त काल तक इतना ही समान स्थितिबंध होता रहेगा। पश्चात् ८०० वर्ष प्रमाण दूसरा स्थितिबंधापसरण हुआ, तब ९८२०० वर्ष जितना स्थितिबंध रहा। अंतर्मुहूर्त काल तक इतना समान स्थितिबंध होता रहेगा। पश्चात् तीसरा स्थितिबंधापसरण होगा। दृष्टांत में १००० वर्ष का, ८०० वर्ष का काल्पनिक प्रमाण बताया है। प्रत्यक्ष में अपसरण कितना होता है ? हर बार कटौती कितनी होगी ? बंध कितना हो रहा है ? अंतःकोड़ाकोड़ी सागर। उसमें कटौती कितनी होगी ? पल्य के संख्यातवे भागप्रमाण स्थितिबंधापसरण होता है। इसप्रकार संख्यात हज़ार बार, हज़ारों यानी वह करोड़ों बार होगा। स्थितिबंधापसरण होने पर पृथक्त्व सौ सागर अर्थात् ७०० से ८०० सागर जितनी घट होती है।

जरा हिसाब लगाते हैं। कितनी बार कटौती होने पर ७०० से ८०० सागर जितनी घट होगी ? हर अंतर्मुहूर्त में कटौती कितनी हो रही है ? पल्य का संख्यातवां भाग। आपको समझाने के लिये हम कहेंगे पल्य का दसवां भाग। तो १० बार जब कटौती होगी तो एक पल्य घटेगा। एक पल्य घटने के लिये १० बार कटौती होती है तो एक सागर घटने के लिये कितनी बार कटौती होनी पड़ेगी ? १० कोड़ाकोड़ी पल्यों का एक सागर होता है परंतु एक-एक बार कितनी कटौती होगी ? पल्य का दसवां भाग ही कटौती होगी। श्रोता: डिक्वाइडेड बाय १० ? डिक्वाइडेड बाय टेन नहीं, मल्टिप्लाइड

बाय १०। श्रोता: १०० कोड़ाकोड़ी बार। १०० कोड़ाकोड़ी बार अपसरण होगा तब कितनी कटौती हुयी ? एक सागर। हमें ७०० से ८०० सागर की कटौती करनी है, बोलो कितनी बार होगा ? एक सागर कटौती के लिये १०० कोड़ाकोड़ी बार हुये थे, उसको ७००-८०० से गुणा करो। श्रोता: आप कहो वह मान्य है। मान्य है ?

अभी आगे बढ़ेंगे। ८०००० कोड़ाकोड़ी बार पल्य का दसवां भाग कटौती होगी तब जाकर ८०० सागर कटौती होगी। इतने अंतर्मुहूर्त गये कि नहीं ? बात कुछ समझ में आती है ? हमने आपको दसवां भाग समझाने के लिये बताया। वहां यथायोग्य जो कुछ संख्यातवां भाग होगा। यहां तो कह देते हैं बहुत बार होता है, हज़ारों बार होता है परंतु हज़ारों बार नहीं करोड़ों बार होता है। एक सागर कटौती होने के लिये १०० कोड़ाकोड़ी बार अपसरण होता है, उसको हमने ८०० से गुणा किया तो १०० कोड़ाकोड़ी बार x ८०० यानी ८०००० कोड़ाकोड़ी, हां। यानी ८०००० करोड़ इन टू करोड़ इतनी बार होगा और हर बार एक-एक अंतर्मुहूर्त में यह कटौती होगी। तो एक ही बड़े अंतर्मुहूर्त के अंदर कितने अंतर्मुहूर्त पाये जायेंगे ! किसने जाना ? केवली ने जाना। हमारी बुद्धि वहां कुछ काम नहीं करती। हमें आगम से देखना है, आगम ही प्रमाण है।

यहां क्या कहते हैं ? देखो, जब-जब ७०० से ८०० सागर जितनी कटौती होगी; एक बार कटौती कितनी होगी ? पल्य का संख्यातवां भाग। ऐसे ७०० से ८०० सागर की कटौती होगी तब क्या होता है ? तब पहली बार प्रकृतिबंधापसरण होता है। अब यह नया झमेला शुरू होगा। अभी तक तो मिथ्यादृष्टि के यथायोग्य जितनी प्रकृतियां बंधती थी वे यहां तक बंध सकती थी। परंतु अब यहां कुछ प्रकृतियां बंधने से रुकेंगी। हर बार अपसरण होते-होते-होते-होते ७०० से ८०० सागर की स्थिति कम बंधने लगी। अंतःकोड़ाकोड़ी में से ८०० सागर कम करो, उसको भी अंतःकोड़ाकोड़ी ही कहेंगे। वहां इतना स्थितिबंध होने लगा तब जाकर विशिष्ट एक प्रकृति का बंध यहां तक पॉसिबल था, वह अभी नहीं होगा। उसका नाम हम बतायेंगे।

श्रोता: विशुद्धि प्रतिसमय बढ़ रही है बस ? विशुद्धि का बढ़ना प्रतिसमय होता है परंतु स्थितिबंध का घटना अंतर्मुहूर्त के बाद होता है। श्रोता: लेकिन स्थितिबंध तो अंतर्मुहूर्त तक उतना ही रहेगा ? बिलकुल। श्रेणी में भी ऐसा ही होता है। विशुद्धि का

बढ़ना - विशुद्धि प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ेगी। आगे-आगे तो और बढ़ेगी। कहां ? करणलब्धि में। यहां सामान्य से विशुद्धि बढ़ रही है इतना ही कहेंगे। परंतु स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त तक उतना का उतना रहेगा। जहां विशुद्धि अनंतगुणी बढ़ती है वहां भी यही नियम है। स्थितिबंध तो अंतर्मुहूर्त तक उतना का उतना रहता है भले ही विशुद्धि अधिक बढ़ रही है। उसके लिये स्थितिबंध के कारणभूत परिणामों की विशेषता है - वह सब कर्मकाण्ड का विषय है, वह जुदा है। हम उसमें नहीं पड़ेंगे। विशुद्धि के अनेक अलग-अलग परिणामों के साथ उतना का उतना स्थितिबंध हो सकता है। उसकी भी रेंज होती है। *श्रोता: यह भावपरावर्तन के प्रकरण में जो बताते हैं वही बात है ?* हां। एक ही पर्टिक्युलर स्थिति बांधने के लिये कारणभूत परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण होते हैं। यहां तो अनंतगुणा विशुद्धि के अलग-अलग परिणाम पलटे परंतु स्थितिबंध उतना का उतना हो रहा है। बाद में उसमें कटौती होगी।

श्रोता: यहां विशुद्धि बढ़ रही है लेकिन अपसरण का प्रमाण १००० से ८०० क्यों घटाया ? क्योंकि जितनी स्थिति घटती है उसके अनुसार अपसरण का प्रमाण भी घटता है। पहले पं. टोडरमलजी ने लाखवाली बात कही थी न ? तो लाख में हजार की कटौती हुयी, तो ९९००० वर्षों का बंध होने लगा। अभी ९९००० के प्रपोर्शन में कटौती होगी। हमने तो आपको पल्य का दसवां भाग समान बताया, उसमें भी डिफरन्स होगा। यह साधारण स्थूलरूप से कैल्क्युलेशन करने की बात अलग है। उन्होंने इस दृष्टांत में ही बताया है कि कटौती भी कम होती चली जायेगी। इसतरह से जब ७००, ८०० सागर कटौती हो जायेगी तब जाकर पहला स्थान आयेगा। किसका ? प्रकृतिबंधापसरण का। कोई प्रकृति यहां तक बंध सकती थी, अब यहां से आगे नहीं बंधेगी यह उसका अर्थ होता है।

ऐसे प्रकृतिबंधापसरण के ३४ स्थान हैं। एक प्रकृतिबंधापसरण हुआ उसके बाद दूसरी बार प्रकृतिबंधापसरण कब होगा ? स्थितिबंध में ७०० से ८०० सागर की और कटौती होगी तब। बीच में उतने स्थितिबंधापसरण के अंतर्मुहूर्त जायेंगे। फिर तीसरा प्रकृतिबंधापसरण का स्थान आयेगा। कब ? स्थितिबंध में ७०० से ८०० सागर की और कटौती होगी तब। अभी कटौती छोटी-छोटी हो रही है। तो स्थितिबंधापसरण के अंतर्मुहूर्त भी अनेक बार होंगे न ? यानी बीच-बीच में करोड़ों बार हो रहे हैं। हमने पहले उसके लिये ८०००० कोड़ाकोड़ी बार देखे थे, है न ? यानी इतने अंतर्मुहूर्त जाने

के बाद वह विशिष्ट प्रकृति बंधना रुकी। प्रकृतिबंधापसरण का पहला स्थान हुआ; यहां से आगे प्रकृतिबंध में कटौती हो रही है। फिर स्थितिबंध में ७०० से ८०० सागर की और कटौती होगी तब प्रकृतिबंधापसरण का दूसरा स्थान आयेगा। इसी पद्धति से स्थितिबंध में ७०० से ८०० सागर की और कटौती होगी तो प्रकृतिबंधापसरण का तीसरा स्थान आयेगा, फिर चौथा स्थान। ऐसे प्रकृतिबंधापसरण के स्थान कितने होते हैं ? चौतीस स्थान होते हैं। कहीं-कहीं एक प्रकृति रुकती है, कहीं-कहीं कॉम्बिनेशनवाली प्रकृतियां रुकती हैं जिसको हम संयोगरूप प्रकृतियां कहेंगे।

इसतरह से कहां कौनसी, कहां कौनसी प्रकृति रुकते-रुकते इन चौतीस स्थानों में टोटल छियालीस प्रकृतियों का बंध यहां रुकता है। कब से कब तक रुकेगा ? यहां से लेकर उपशम सम्यक्त्व के शुरुआत में कुछ काल तक रुकेगा। बाद में उनमें से कुछ प्रकृतियों का बंध शुरू भी होगा और यहां जिनकी कटौती नहीं हुयी थी उनकी कटौती सम्यक्त्व होने पर होगी। ऐसी भी कोई प्रकृति है जिनकी यहां कटौती नहीं होगी ? *श्रोता: आयु ?* अरे मिथ्यात्व; आयु की बात नहीं है। मिथ्यात्व का बंध अभी अंतिम समय तक होगा; कौनसा अंतिम समय ? अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय तक। अनंतानुबंधी भी बंध रही है, अभी उसकी कटौती नहीं हुयी है। उसका बंध हो रहा है। कुछ अन्य ही प्रकृतियां हैं जिनका बंध रुकता है।

श्रोता: यहां कोई घातिकर्म की प्रकृति का बंधापसरण नहीं होगा ऐसा सीधा-सीधा अर्थ समझें ? देखो, प्रकृतिबंधापसरण के नियम हैं। कौनसी प्रकृति कौनसे गुणस्थान तक बंधती ही रहती है ? जब तक उसकी बंधव्युच्छिति नहीं होगी तब तक उसकी कटौती नहीं होगी। पांचों ज्ञानावरण कहां तक बंधती हैं ? दसवें गुणस्थान तक बंधती हैं, उनकी कटौती नहीं होगी। दर्शनावरण नौ की नौ बंधती रहती हैं, अभी उनकी तीन की कटौती, जब दूसरे गुणस्थान के योग्य बंधव्युच्छिति बतायेंगे तब सम्यक्त्व होने पर उनकी कटौती कहेंगे। जहां जिसकी कटौती होती है उसकी बात करेंगे। अभी मिथ्यात्व, १६ कषाय सब बंध रहे हैं, उसमें कोई कटौती नहीं हुयी है। हां, यहां नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और अरति-शोक का बंधापसरण होगा।

अब आगे- **जिसतरह स्थितिबंध के क्रमशः घटने को क्या कहा था ?** स्थितिबंधापसरण। ये नये-नये बहुत शब्द अभी आ रहे हैं। *श्रोता: शाम का समय है।*

सुबह फिर स्पष्ट हो जायेगा। हां, अभी भले नींद में घोलन चलेगा। *श्रोता: आपने अभी कहा मिथ्यात्व वगैरह में स्थिति की कटौती होगी न ? वह बंधापसरण में नहीं आयेगा ?* प्रकृतिबंधापसरण में नहीं आयेगा। स्थितिबंध में तो सबकी कटौती हो रही है। जिसतरह स्थितिबंध के क्रमशः घटने को स्थितिबंधापसरण कहते हैं उसीतरह विवक्षित कर्म प्रकृतियों का बंध क्रमशः घटता है - उनका बंध होना रुकता है इसे प्रकृतिबंधापसरण कहते हैं। अभी इतना तो क्लिअर हो रहा है ? हम पहली बार पढ़ते थे तो क्या पढ़ रहे हैं ? क्या प्रकृतिबंधापसरण, क्या स्थितिबंधापसरण ? कुछ समझ नहीं आता था, बस पढ़ रहे हैं, पढ़ रहे हैं, पढ़ रहे हैं।

देखो- एक-एक स्थितिबंधापसरण द्वारा पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण स्थितिबंध में घट होती है यानी कटौती होती है। यहां लिखा है देखो, दसवीं गाथा की टीका में- उस अंतःकोड़ाकोड़ी सागर स्थितिबंध से पल्य के संख्यातवें भाग मात्र हीन स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त तक समान प्रमाण युक्त करता है। पुनश्च उससे पल्य का संख्यातवां भाग मात्र हीन घटकर स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त तक करता है। इसतरह क्रम से संख्यात स्थितिबंधापसरणों के द्वारा, संख्यात में हमने ८०००० कोड़ाकोड़ी देखे, उसको संख्यात कह दिया। इतने स्थितिबंधापसरण के द्वारा पृथक्त्व सौ सागर जिसको हमने ७००-८०० सागर कह दिया इतना, स्थितिबंध घटने पर पहला प्रकृतिबंधापसरण स्थान होता है।

इसी क्रम से, इसी क्रम से यानी हर बार स्थितिबंधापसरण होते-होते जब-जब ७००-८०० सागर प्रमाण कटौती हो जायेगी यानी इतने स्थितिबंधापसरण के अंतर्मुहूर्त जायेंगे, तब जाकर दूसरा प्रकृतिबंधापसरण स्थान आ जायेगा। इसतरह इसी क्रम से इतना-इतना स्थितिबंध घटने पर प्रकृतिबंधापसरण का एक-एक स्थान होता है। हर बार बीच में इतनी कटौती होगी। यानी हर बार वहां इतने अंतर्मुहूर्त चले जायेंगे और हर अंतर्मुहूर्त में एक-एक स्थितिबंधापसरण होता है। तब जाकर प्रकृतिबंधापसरण का दूसरा स्थान आता है। उतनी और कटौती होने पर तीसरा स्थान आता है, फिर चौथा स्थान आता है। जब हम स्कूल में पढ़ते थे तब 'न संपणारी गोष्ठ' बताते थे। नहीं समझें ? नेहरू एंडिंग स्टोरी, हां। ऐसे प्रकृतिबंधापसरण के चौंतीस स्थान होते हैं। दसवीं गाथा की टीका में यह सब बात आयी है। यहां पृथक्त्व नाम सात या आठ का है, पृथक्त्व सौ सागर; पृथक्त्व का अर्थ क्या किया ? सात और आठ,

उसके आगे सौ सागर यानी ७०० से ८०० सागर। **इसलिये यहां पृथक्त्व सौ सागर कहने से सात सौ सागर वा आठ सौ सागर जानना।** इन चौतीस स्थानों में कौन-कौनसी प्रकृतियां बंधना रुकती हैं वह हम थोड़ी देर के बाद देखेंगे।

अभी हम थोड़े प्रश्नों को लेते हैं। विषय थोड़ा आसान करना है न। हां, देखते हैं। हमने क्या-क्या देखा ? स्थितिकांडकघात देखा और अनुभागकांडकघात देखा। स्थितिबंध घटकर होता है और अनुभागबंध भी द्विस्थानगत होता है - यहां तक देखा। उसमें अभी और कटौती हो रही है। क्या-क्या होता है ? बंध में कटौती होती है उसको स्थितिबंधापसरण कहते हैं। वह अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में होता है। जब ७०० से ८०० सागर जितनी स्थितिबंध की कटौती होगी तब जाकर एक प्रकृतिबंधापसरण का स्थान होता है। यह प्रकृतिबंधापसरण का पहला स्थान। फिर दूसरा स्थान, फिर तीसरा स्थान ऐसे चौतीस स्थान हैं। कहीं-कहीं एक प्रकृति है, कहीं दो प्रकृति हैं, कहीं कॉम्बिनेशनरूप दो, चार, पांच प्रकृतियां बंधने से रुकती हैं।

प्रश्न: केवली समुद्घात में जीव के प्रदेश फैलने से नाम, गोत्र कर्म की स्थिति कम हो जाती है। तो ऐसी क्या घटना घटती है कि स्थिति कम हो जाती है ? देखो, हमने स्थितिकांडकघात अभी-अभी देखा। एक स्थितिकांडकघात होने के लिये कितना समय लगता है ? *श्रोता: अंतर्मुहूर्त।* अंतर्मुहूर्त। केवली समुद्घात में यह विशेषता होती है कि उसके एक-एक समय में एक-एक स्थितिकांडकघात होता है। दण्ड में एक स्थितिकांडकघात हुआ, कपाट में दूसरा स्थितिकांडकघात हुआ, प्रतर में तीसरा स्थितिकांडकघात हुआ, लोकपूरण में चौथा स्थितिकांडकघात हुआ। बाद में अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त के स्थितिकांडकघात होते रहेंगे। तो सभी अघाति कर्मों की स्थिति आयु की स्थिति के समान हो जायेगी। आयु की स्थिति तो जितनी है उतनी रहनी है। बाकी वेदनीय, नाम, गोत्र सबकी घट जाती है। यह उसका कार्य होता है। समुद्घात में कर्मों की निर्जरा भी विशेष अधिक होती है। तत्त्वार्थसूत्र में असंख्यातगुणा निर्जरा के स्थानों में भी सामान्य केवली की निर्जरा से समुद्घात केवली की निर्जरा असंख्यातगुणी बतायी है। यह बात धवला की पंद्रहवीं पुस्तक में भी आयी थी कि केवलीसमुद्घात में विशेष निर्जरा क्यों होती है ? बहुत सूक्ष्म पॉइंट है उसकी बात छोड़ देते हैं।

प्रश्न: निगोद का पार्टिक्युलर स्थान कौनसा है ? पूरा लोक है। सूक्ष्म निगोद तो

पूरे लोक में हैं और बादर निगोद किसीके आधार से रहते हैं। किसके आधार से ? द्वीन्द्रियादिक जीवों तथा मनुष्य के औदारिकशरीर के आधार से या प्रत्येक वनस्पति के आधार से जिसको हम सप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं। सूक्ष्म निगोद के लिये कोई आधार की जरूरत नहीं है। वे पूरे लोक में हैं। प्रश्न: सातवें नरक के नीचे कलकल पृथ्वी का स्वरूप क्या है ? कलकल पृथ्वी यानी कलकल भूमि वहां निगोद ही निगोद है। परंतु वे सूक्ष्म होने चाहिये।

प्रश्न: तारा खिरता है तो वह किसी भव्य जीव को वैराग्य का कारण बन जाता है। ऐसा प्रथमानुयोग में आता है। तारा तो ज्योतिषि देवों का विमान है। तब घटना क्या घटती है ? अरे, पूरा तारा नहीं वह तो पृथ्वी का कोई खण्ड है जो वहां से नीचे आता है। वह चमकता है क्योंकि प्रचंड प्रमाण में घर्षण से आता है न ? वहां पूरा ज्योतिष्क विमान नहीं गिर रहा है। प्रश्न: स्त्री को क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त हो सकता है क्या ? नहीं। श्रोता: भाव से स्त्रीवेदी हो तो भी ? भाव से स्त्री होगी तो क्षायिक सम्यक्त्व हो सकता है। यहां स्त्री को लिखा है वह तो द्रव्य से स्त्री की बात पूछी थी। हां, यह जीवकाण्ड में कहीं आया है कि पंचम गुणस्थानवर्ती आर्यिका स्त्री को क्षायिक सम्यक्त्व हो सकता है, ऐसा स्वीकार है। फिर भी अनेक ग्रंथों में स्त्री को क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होता, ऐसा भी लिखा है। शास्त्र में दोनों ही कथन आते हैं। प्रश्न: क्षयोपशमलब्धि के समय अप्रशस्त कर्म प्रकृतियों का अनुभाग अनंतगुणा घटता है तो सत्ता में जो कर्म हैं उनका अनुभाग अनंतगुणा घटता है ? यह अनुभाग घटकर उदय में आने की बात है। अभी प्रायोग्यलब्धि में तो अनुभागकांडकघात द्वारा सत्ता में से घट रहा है, है न ?

प्रश्न: तीव्र कषाय होने पर क्या पूर्व में बांधे गये कर्मों की स्थिति और अनुभाग बढ़ जाते हैं ? कर्मों की स्थिति और अनुभाग बढ़ने को उत्कर्षण कहते हैं और उत्कर्षण होने के लिये आवश्यक है कि वहां उस कर्म का नया बंध होना चाहिये। मान लेते हैं कि सत्ता में कर्म पड़े हैं। कितने हैं ? अभी नीचे से लेकर ऊपर तक सारे निषेक पड़े हैं तो वहां मान लेते हैं न, सौ साल ऊपर मिथ्यात्व का कोई एक निषेक है उसमें से कुछ परमाणुओं का नये बंध के साथ उत्कर्षण होगा। अब नया बंध कितना हुआ ? मान लेते हैं ७० कोड़ाकोड़ी सागर का। तो ऊपर कहां तक पहुंचेगा ? ७० कोड़ाकोड़ी सागर तक तो नहीं पहुंचेगा। वे पार्टिक्युलर परमाणु कब बांधे थे ? अपने बंध के समय से लेकर ७० कोड़ाकोड़ी सागर ऊपर तक जा सकते हैं - भले बंध के समय उनकी

कितनी भी स्थिति क्यों न बंधी हो। जैसे एकेन्द्रिय जीव एक सागर का बंध करता है और उसने एक सागर का बंध किया। उतनी स्थिति लेकर वह संज्ञी पंचेन्द्रिय में आया।

संज्ञी पंचेन्द्रिय में आते ही अपर्याप्त अवस्था में अंतःकोड़ाकोड़ी सागर का बंध करता है। फिर बाद में अनेक कोड़ाकोड़ी सागरों का बंध शुरू करता है। अभी उसकी शक्तिस्थिति कितनी है ? भले बंधते समय एक सागर बांधा है परंतु मिथ्यात्व कर्म की शक्तिस्थिति ७० कोड़ाकोड़ी सागर की है। एकेन्द्रिय में एक सागर इतना कम स्थितिबंध किया है। वही जीव पंचेन्द्रिय में आता है तो एकेन्द्रिय में बंधे हुये पूरे निषेक नष्ट नहीं होते परंतु बहुत सारे परमाणु अपने बंध के समय से लेकर ७० कोड़ाकोड़ी सागर तक कहीं पर भी ऊपर चढ़ते हैं। उसको कहेंगे स्थिति का उत्कर्षण। अनुभाग भी - एकेन्द्रिय में एकेन्द्रिय के योग्य अनुभागबंध होता है। पंचेन्द्रिय में जब अप्रशस्त का अधिक अनुभाग बंधता है, तो वहां उसका अनुभाग भी बढ़ेगा। नये बंध के साथ स्थिति और अनुभाग बढ़ सकते हैं यह कहना है।

प्रश्न: वे कौनसे कर्म हैं जो जीव को भोगने ही पड़ते हैं, जिसकी निर्जरा नहीं होती ? आयुकर्म को ले लो न। तीर्थकर जैसे जीव को भी भोगने पड़े, निर्जरा नहीं हुयी। अरे, निर्जरा तो चलती रहती है परंतु उसके सभी निषेक नहीं खिरते हैं। निर्जरा होना बात अलग है। असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा निर्जरा होते हुये भी चौदहवें गुणस्थान के अंतिम समय में डेढ़गुणहानि गुणित समयप्रबद्ध द्रव्य वहां रहता है। अभी तक असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा निर्जरा नहीं हुयी ? क्या हुआ ? वह तो सब मिलकर भी असंख्यातवें भाग प्रमाण ही हुयी, जो नहीं के बराबर हुयी। जितने कर्म क्षय नहीं हुये हैं, जो उदयरूप हैं, वे वहां उदय में आयेंगे। भोगने पड़ते हैं का अर्थ क्या है ? अरे-अरे, दुःखी बेचारा भोगता है ऐसा हमने समझ लिया है। ये कर्म भोगने पड़ते हैं ? कोई भोगने नहीं पड़ते। कर्म का उदय हमसे जुदा है। उसको हमें जुदा जानना है। यह भोगने-वोगने की बात ही छोड़ो। तीर्थकर कहां क्या भोग रहे हैं ? हम आप भी कहां भोग रहे हैं ? हमने माना है कि हम असाता को भोग रहे हैं, इसको भोग रहे हैं, उसको भोग रहे हैं। जीव किसका भोग कर सकता है ? अपनी पर्याय का ही भोग कर सकता है, पर का तो भोग कर ही नहीं सकता। तो कौनसे कर्म को भोगता है यह सवाल ही पैदा नहीं होता। वैसा मानना यही बहुत बड़ा मिथ्यात्व है।

प्रश्न: जब तत्त्वविचार कर रहे हैं तब तो लब्धि शुरू हुयी। कौनसी ? हमने देखी न, जिसको देशना मिली है उसको प्रायोग्यलब्धि वगैरह चल रही है। परंतु जब तत्त्वविचार नहीं करते हैं तब वह लब्धि पूर्ण रीति से निकल जाती है कि उनका कुछ अंश वहां बाकी है ? आपका क्या कहना है ? मैं सबके परिचय की बात कहती हूं। हम रोटी बनाने के लिये गॅस पर तवा रखते हैं, गरम करने लगते हैं। अभी यहां सब तैयारी हुयी। अभी रोटी बेलनी है। इतने में क्या होता है ? फोन आ जाता है, मायके का। तब क्या करते हैं ? गॅस बंद करते हैं इतना तो विवेक है। फोन के बाद हमें रोटी सेकनी है तो ठंडे तवे पर सेकी जायेगी कि नहीं जायेगी ? तो पहले की गर्मी का क्या हुआ ? श्रोता: चली गयी। निकल गयी। तत्त्वविचार छूट गया है तो अभी कौनसे परिणाम चल रहे हैं ? दुकान के होंगे, दुनियादारी के होंगे, किसीसे झगड़े के होंगे - उसने मुझे बोला था मगर मैंने कुछ नहीं बोला, मुझे ऐसा बोलना चाहिये था। हमारे मन ही मन में डायलॉग चल रहे हैं। तो हमारे क्रोध, मान, माया सारे तीव्र हो रहे हैं तो वैसे कर्म भी बंध रहे हैं। वह लब्धि सारी चली गयी। लब्धि का काल अंतर्मुहूर्त बताया, उससे ज्यादा नहीं होता। उतने काल में अपना कार्य कर लो यह कह रहे हैं।

जब विशुद्धि बढ़ रही है, स्वाध्याय में हमारी विशुद्धि बढ़ती है परंतु स्वाध्याय होते ही हम दौड़ादौड़ी करते हैं और स्वाध्याय की सभी बातें वहीं छोड़कर आ जाते हैं। मेरी भाषा में सभी कार्य उपशमित करके हम स्वाध्याय करते हैं और बाद में क्या होता है ? उनकी उदीरणा चालू होती है। क्योंकि हमें कितने ही कार्य करने हैं न ! अपने सारे काम स्थगित करके अभी पांच दिन के लिये सब यहां आये हैं। यहां से जाने के बाद क्या होगा ? ऐसे ही देखो, तत्त्वविचार के काल में कर्म की ये सब अवस्थायें होती हैं, जीव के परिणाम विशुद्धि की ओर बढ़ते हैं उस काल में अगर वह अंतर्मुख होगा - अपने में स्थिर होगा तो उस काल में करणलब्धि होकर उसको सम्यक्त्व होगा। भले उसको स्वाध्याय के काल में अंतरंग में बहुत रस आ रहा है, अंतरंग में बहुत उमंग आ रही है परंतु वह उतनी की उतनी होकर रुक जाती है। आगे का कार्य नहीं होता। हम अलग से बैठते हैं ध्यान करने, हो सकता है कि उस समय, तत्त्वविचार में किसीकी विशुद्धि बढ़ भी सकती है। फिर उसे सम्यक्त्व हो जायेगा। परंतु केवल बैठने के लिये वह बैठ जाता है उसका क्या होगा ? जो रस गुरुदेवश्री की वाणी सुनते समय आया था वह रहा क्या उस समय ? बात समझ में आती है न ?

तो स्वयं तत्त्वविचार करें या पुस्तक पढ़ते समय में - हर एक का परिणाम अलग-अलग होगा। किसीको पढ़ने में वह रस हो सकता है, किसीको सुनने में हो सकता है तो ऐसा कोई हार्ड अँड फ़ास्ट रूल नहीं कह सकते। लोग देखते हैं कि यह तो सीडी सुनते नहीं हैं, अरे, सुनते नहीं हैं तो पुस्तक में से पढ़ते होंगे; उसमें क्या है ? ख्याल में आयी न बात ? हम स्वाध्याय किसरूप से करते हैं ? हमारे परिणाम कब कितने विशुद्ध होते हैं ? हमें परिणाम मालूम हैं। किसीको पूजा करते समय परिणामों की अधिक विशुद्धि होती होगी क्योंकि उसमें भी तत्त्वविचार तो चलते हैं। भगवान को देखते-देखते भी उनके स्वरूप का चिंतन होता है - उस समय विशुद्धि होती होगी। ऐसा कोई निश्चित कारण - यही पढ़ने से, यही सुनने से होता है - ऐसा कुछ नहीं है। हमारा उपयोग कब उसमें लगता है, विशुद्धि बढ़ रही है, पता है हमें। उसको अंदर से उमंग आती है तब स्थिर हो जाने की बात है। तब उस काल में उसका कार्य हो जायेगा।

श्रोता: सम्यग्दर्शन से पहले ध्यान की जो अवस्था होती है, यह भावकर्म का कम होना है कि ध्यान में आगे बढ़ना है। ऐसी कुछ बात है ? देखो, अन्य किसी कर्म के साथ कोई संबंध नहीं है। मात्र भावकर्म का कम होना कारण नहीं है। भावकर्मों से हमारी भिन्नता भेदज्ञान है। भावकर्म कितना भी मंद-तीव्र क्यों न हो, मूल बात तो रह जाती है; हम उससे भिन्नता की बात भूल जाते हैं और केवल रागद्वेष कम करने की बात सोचते हैं। परंतु मेरा स्वरूप ही रागद्वेषरहित है और स्वरूप में स्थिर हो जाने से राग का लक्ष छूट जाता है। वह कितना रहा ? क्या रहा ? कितनी डिग्री में रहा ? उससे हमारा कोई संबंध नहीं है। *श्रोता: नहीं, स्वरूप को ध्यान में रखते हुये ?* स्वरूप को ध्यान में रखते तो राग का ध्यान कहाँ रहा ? हमने राग का ध्यान छोड़ दिया है न ? राग को छोड़ना है। छोड़ना है का क्या अर्थ है ? स्वरूप को ग्रहण करना है। दाहिने हाथ से ग्रहण करो और बायें हाथ से छोड़ो ऐसा थोड़े ही है ?

ग्रहण करने का अर्थ क्या है ? जानो। तो छोड़ो का अर्थ क्या है ? जानना छोड़ो। राग छोड़ने की कहाँ बात है ? वह अबुद्धिपूर्वक में चला जाता है। हमारे ज्ञान का वह विषय नहीं रहा। हमारे ज्ञान को हमने किसमें स्थिर कर दिया ? वह तो स्वभाव भाव में स्थिर है। राग को कम करने की बात नहीं है। देखो, हम जब भेदज्ञान की बात करते हैं तो रागादि से लेकर सबको पर में डाल दिया है। अपने पर्याय में होनेवाले राग

आदि को पर में रखा है। पर का लक्ष करते-करते थोड़े ही यहां स्वभाव का लक्ष होगा ? स्वभाव का लक्ष किया है उसका अर्थ क्या है ? स्व का लक्ष किया तो उसी समय पर का लक्ष छोड़ा कि नहीं छोड़ा ? ख्याल में आती है न बात ? श्रोता: क्या ध्यान की अवस्था यही है ? अभी क्या है, उसको आप कुछ भी नाम दे दो। जो विकल्पात्मक ध्यान होता है, वहां तो रागभाव चल रहे हैं क्योंकि वे तो विकल्प हैं।

श्रोता: क्या ऐसा हो सकता है कि किसीको क्षयोपशमलब्धि प्रकट हुयी, फिर रुक जावे। फिर दो हुयी फिर रुक सकता है। फिर तीन भी छूट सके ? जैसे चार तक तो अभव्य भी जा सकते हैं ऐसी बात आती है। दो या तीन भी होवे फिर छूट जावे या चार तक तो होवे ही होवे ? देखो-देखो, उसका अर्थ ऐसा होता है एक लब्धि हुयी। हमने देखा था क्षयोपशमलब्धि के साथ-साथ विशुद्धिलब्धि होती ही है, बराबर ? परंतु उसको लब्धि कब कहेंगे ? आगे जाकर कुछ पाया तो उसको लब्धि कहेंगे। सामान्यरूप से जीवों को सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियां बंध रही हैं कि नहीं बंध रही है ? साता, स्थिर, शुभ वगैरह प्रकृतियों का बंधना है यानी राग की मंदता होना तो एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक सबको हो रहा है। उसको बताने के लिये, सिखाने के लिये हम जरूर उसको क्षयोपशमलब्धि और विशुद्धिलब्धि में संतुष्ट होकर बैठ गया ऐसा कहेंगे। परंतु उसको लब्धि तभी कहेंगे जब आगे चलकर कुछ बात पायी जाती है। सामान्यरूप से कहेंगे, हां, उसका अनुभाग इतना मंद होकर उदय में आ रहा था, उसके कषाय मंद हो रहे थे, उसके सातावेदनीय वगैरह बंध रही थी। अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में यह हो सकता है। परंतु सदाचारी होकर, उसमें संतुष्ट होकर रहने की बात नहीं है। परंतु यहां कौनसी बात ली ? यहां आत्मा संबंधी जिज्ञासावाला जीव लिया है। अभी जिज्ञासा हुयी, अभी उसे देशना भी नहीं मिली ऐसा जीव यहां लिया था। समझ में आयी बात ? हो सकता है कि उतने मात्र से वह संतुष्ट होकर बैठता है। अभी वहां तक आकर फिर वापस संक्लेश की ओर जाता है; क्योंकि अंतर्मुहूर्त से ज्यादा तो लब्धि टिकेगी नहीं।

प्रश्न: एक जीव प्रायोग्यलब्धि तक मॉक्झिमम कितनी बार आ सकता है ? अनंतों बार। भव्य हो या अभव्य हो जब तक भव्य जीव करणलब्धि में नहीं जाता तो वह भी अनंतों बार प्रायोग्यलब्धि तक आ सकता है। उसको देशना नहीं मिली है ऐसा भी नहीं है। आता है न, अनंतों बार समवसरण में गया था। श्रोता: हम कैसे कन्फर्म करें कि

हमने परीक्षा करके निर्णय किया है ? यदि निर्णय हो गया हो तो आत्मानुभव होना चाहिये। अभी प्रश्न उठ रहा है इसका अर्थ है अभी निःशंक नहीं हुआ है। श्रोता: हालांकि हमें संशय तथा विपर्यय का आभास सालों से नहीं हुआ है। सालों से नहीं है परंतु यही संशय है न, कि आगे क्या करें ? यह संशय तो अभी बना है। तत्त्वज्ञान - द्रव्यानुयोग के विषय संबंधी आत्मस्वरूप की मुख्य जानकारी में हमें कोई संशय नहीं है। अच्छी बात है। यानी अभी आप जो सही है वह उपदेश सुन रहे हैं परंतु तत्त्वनिर्णय होने का चिन्ह क्या है ? उसी समय आत्मानुभूति होनी चाहिये। जब तक नहीं हुयी है तब तक अर्थ क्या है ? अभिप्राय में कहीं कुछ कचास रह गयी है।

श्रोता: जो परीक्षा में कमी रह गयी उस पर हल, लाभदायक बात करें। अभी किसकी परीक्षा में कितनी कमी रही वह हम कैसे कहेंगे ? अपनी भूल तो अपने में ही ख्याल में आयेगी। कहीं रुचि की कमी होगी, कहीं अन्य अटकता है, कहीं जो कुछ बातें बन रही हैं। अभी तो तत्त्वनिर्णयपूर्वक ही आगे बढ़ना होगा। श्रोता: जैसे संसारी जीव के कार्य में परद्रव्य निमित्तरूप देखने-जानने में आता है। सिद्ध भगवान के परद्रव्य निमित्त नहीं कहलाते। जो अन्य अनंत जीवों को, सर्वज्ञता में अन्य पांच द्रव्यों को निमित्त कहेंगे ? सर्वज्ञता यानी वह ज्ञान की पर्याय है। उसमें सभी द्रव्यों का प्रमेयत्व गुण निमित्त होगा। क्योंकि किसी न किसी ज्ञान में झलक रहा है, केवलज्ञान में तो सभी द्रव्य झलकेंगे ही। उसको निमित्त में ले सकते हैं।

प्रश्न: पांच लब्धियों की परिभाषा इन्क्वर्टेड कॉमा-अवतरण चिन्ह में है। क्या यह ग्रंथ की ओरिजिनल गाथा का अनुवाद है या अलग ग्रंथों का ? जहां जो है वह बताया है। कभी पं. टोडरमलजी की बात लिखी है, कहीं लब्धिसार की बात लिखी है तो वह बात वहां बता दी है।

अभी अपना समय हो गया। सुबह प्रायोग्यलब्धि को आगे बढ़ाना है।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

१९. प्रायोग्यलब्धि - प्रकृतिबंधापसरण

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका द्वंद्वारी भाषा में लिखी है। उसके आधार से हम यहां पंचलब्धि का प्रकरण देख रहे हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व से पूर्व जो पांच लब्धि होती हैं उसकी चर्चा चल रही है। हमने बहुत विस्तार से क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि की चर्चा की। अब प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि की चर्चा चलेगी।

कितने ही नाम हमारे लिये नये हैं। यह पूरा विषय थोड़ा सूक्ष्म है इसलिये अभी उपयोग सूक्ष्म करके हम पढ़ेंगे। कितनी ही बातें ख्याल में नहीं आयेंगी या पहली बार सुनते हैं तो लगता है कि हमें कुछ नहीं समझा। परंतु अनेक बार सुनने से, उसका अभ्यास करने से बातें जरूर समझ में आ जायेगी। चिंता नहीं करना, जो कुछ हम सुन रहे हैं वह समझ में आता है कि नहीं बस इतनी यहां मुख्यता रखनी है। कुछ बातें समझ में नहीं आयेगी, हम बार-बार रिपीट करेंगे। अभी जो कुछ विधान हैं - कर्मों में क्या-क्या होता है उसको हम देख रहे हैं। जीव में विशुद्धि बढ़ रही है। परंतु जीव की विशुद्धि कितनी बढ़ी ? कौनसे पॉइंट पर कर्म में क्या हुआ इसका विषय यहां चल रहा है। कर्म की सभी अवस्थायें कर्म में कर्म के कारण होती हैं और जीव की सभी अवस्थायें जीव में उसके अपने कारण होती हैं। अभी गुरुदेवश्री के प्रवचन में घंटा भर यही सुना न, हां, वह सभी यहां लागू करना।

हम कर्मों की सब बातें क्या-क्या होती हैं बतायेंगे, परंतु वे बातें द्रव्यानुयोग के सिद्धान्तों को ख्याल में रखकर ही जानना है। अभी हम प्रायोग्यलब्धि की बात करते हैं। जो तीन लब्धिपूर्वक, कौनसी ? क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि और देशनालब्धि। देशना इस भव की भी हो सकती है, पूर्वभव की भी हो सकती है। देशना को सुना है, समझा है परंतु जिस काल में उसको उपयोगरूप ज्ञान में लेकर तत्त्व का विचार करते हैं, उस समय प्रायोग्यलब्धि शुरू हो जाती है। इसलिये अनेक सालों से लगातार देशनालब्धि या लगातार प्रायोग्यलब्धि चल रही है ऐसा कभी नहीं होता। इन सबका मिलकर भी काल अंतर्मुहूर्त से अधिक नहीं है और अंतर्मुहूर्त भी मिनटों में और सेकंडों में गिनने की आवश्यकता नहीं है। बस यथायोग्य अंतर्मुहूर्त होता है। इतना

अभी हमें ख्याल में रखना है। प्रायोग्यलब्धि में बहुत सारे कार्य होते हैं वे निम्न प्रकार हैं।

प्रायोग्यलब्धि	
सत्त्व	- स्थितिकांडकघात (आयु बिना ७ कर्मों में) अनुभागकांडकघात (अप्रशस्त प्रकृतियों में)
बंध	- स्थितिबंध - अंतःकोड़ाकोड़ी सागर अनुभागबंध - अप्रशस्त प्रकृतियों में द्विस्थानगत प्रशस्त प्रकृतियों में चतुःस्थानगत प्रदेशबंध - अनुत्कृष्ट, अजघन्य (१९ प्रकृतियों में उत्कृष्ट/अनुत्कृष्ट)
उदय	- अप्रशस्त प्रकृतियों में द्विस्थानगत प्रशस्त प्रकृतियों में चतुःस्थानगत
स्थितिबंधापसरण	- पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण
प्रकृतिबंधापसरण	- ३४ स्थान

यहां सत्त्व में क्या फर्क होता है ? नये होनेवाले बंध में क्या बातें होती हैं ? वहां कौन-कौनसा उदय किसरूप होगा ? वहां और क्या विधान होते हैं ? ये सब बातें हम यहां देखेंगे। सत्ता में जो कर्म पड़े हैं उनमें क्या बातें होती हैं ? कहते हैं कि वहां आयु बिना अन्य सात कर्मों में स्थितिकांडकघात होता है। वहां कर्मों की अनेक कोड़ाकोड़ी सागरों की स्थिति पड़ी थी वह स्थितिकांडकघात के द्वारा प्रशस्त और अप्रशस्त यानी पुण्यप्रकृति हो या पापप्रकृति हो सबकी स्थिति घटकर कितनी हो जाती है ? अंतःकोड़ाकोड़ी सागर। यह स्थितिकांडकघात हमने कल देखा था। वर्तमान समय से यहां अनेक कोड़ाकोड़ी सागर तक स्थिति नापी जाती है। ऊपर का इतना बड़ा कांडक; कितना बड़ा टुकड़ा ? अनेक कोड़ाकोड़ी सागरों का, वह कट डाऊन होता है। एक समय में कुछ परमाणु नीचे आते हैं। दूसरे समय में आते हैं, तीसरे समय में आते हैं, नीचे सर्वत्र डिस्ट्रिब्यूट होते हैं और इतने सारे निषेकों का घात होकर अंतःकोड़ाकोड़ी प्रमाण स्थितिसत्त्व बाकी रहता है। सत्ता की बात है।

अब उसी समय और क्या होता है ? अनुभागकांडकघात भी होता है। परंतु अनुभागकांडकघात की विशेषता है कि यह अप्रशस्त कर्मों में ही होता है। अप्रशस्त

कर्मों में पूर्व में बंधे हुये अलग-अलग टाइप के सारे अनुभाग पड़े थे। अप्रशस्त कर्म यानी घातिकर्म तो अप्रशस्त हैं; उनमें लता, दारु, अस्थि और शैल टाइप के स्पर्धक थे। तो शैल और अस्थिवाले स्पर्धकों का अनुभाग घटकर, वे ही परमाणु लता, दारुवाले होते हैं। परंतु वहां ऐसा नहीं समझना कि सर्वघाति प्रकृतियों के सर्वघाति स्पर्धक देशघातिरूप हो गये हैं। सर्वघाति तो सर्वघातिरूप ही रहेंगे, परंतु दारु का बहुभाग है न, उसरूप होकर रहेंगे। देशघाति प्रकृतियों के स्पर्धकों का अनुभाग यथायोग्य कम होगा। अभी उसकी बात नहीं करेंगे। अनुभागकांडकघात अप्रशस्त कर्मों में ही होता है। प्रशस्त कर्मों में अनुभाग बढ़ेगा, परंतु नये बंध के साथ बढ़ेगा इसलिये अभी उसकी चर्चा नहीं की। सत्ता में क्या हुआ था ? स्थितिकांडकघात। कौनसी प्रकृतियों में ? आयु बिना सभी - भले पुण्यप्रकृति हो या पापप्रकृति हो। अनुभागकांडकघात मात्र अप्रशस्त प्रकृतियों में होता है। अनुभागकांडकघात होता है तो कितना अनुभाग शेष रहता है ? तो कहते हैं द्विस्थानगत यानी घातिकर्म में लता और दारुरूप तथा अघातिकर्म में नीम और कांजीररूप। यहां तक हमने बात देखी थी। यह सत्तावाले कर्मों की बात हुयी।

यह कार्य एक अंतर्मुहूर्त में घटित हो जाता है। फिर क्या होता है ? नया बंध किसरूप से होता है ? अभी स्थिति घटकर अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण बची है, उसके भी संख्यातर्वे भागप्रमाण नया स्थितिबंध होता है। नया स्थितिबंध कितना होता है ? तो अंतःकोड़ाकोड़ी सागर। जैसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, नाम, गोत्र वगैरह जो जिस प्रपोर्शन में है वैसा उनका बंध होगा। प्रपोर्शन क्यों कहा ? क्योंकि मिथ्यात्व की उत्कृष्ट स्थिति ७० कोड़ाकोड़ी सागर है; चारित्रमोहनीय की ४० कोड़ाकोड़ी सागर, ज्ञानावरणादि की ३० कोड़ाकोड़ी सागर और नाम, गोत्र की २० कोड़ाकोड़ी सागर है। २० कोड़ाकोड़ी सागरवालों को बीसिय कर्म कहते हैं। ३० कोड़ाकोड़ी सागरवाले तीसिय हैं। चारित्रमोहनीय चालिसीय है। अंतःकोड़ाकोड़ी सागर में भी उनका वही प्रपोर्शन रहेगा। वह हमारा यहां का विषय नहीं है। सबके लिये सामान्य से एक कथन होगा - अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण नया बंध होता है। यह स्थितिबंध की बात हुयी।

नया अनुभागबंध प्रशस्त प्रकृतियों में चतुःस्थानगत होगा। कौनसे चार स्थान ? श्रोता: गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत। गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत और अप्रशस्त प्रकृतियों में द्विस्थानगत होगा यानी घातिकर्म में लता, दारुवाला और अघातिकर्म में नीम, कांजीरवाला। यानी घटकर हुआ न ? सत्ता में पड़ा हुआ अनुभाग तो घटा ही घटा,

अभी नया बंध भी वैसा ही होता है और वह भी और घटते चला जायेगा। इतना द्विस्थानगत तो होगा ही होगा। परंतु प्रतिसमय विशुद्धि बढ़ रही है तो अप्रशस्त में प्रतिसमय अनंतगुणा घटता हुआ और प्रशस्त में अनंतगुणा बढ़ता हुआ ऐसा नया अनुभाग बंध होगा।

प्रदेशबंध कैसा होगा ? स्थितिबंध की बात देखी, अनुभागबंध की बात देखी, प्रदेशबंध की बात हम देखेंगे। आप कहेंगे, प्रकृतिबंध नहीं लिखा है, हां, प्रकृतियां अभी बंधना रुकी नहीं। यथायोग्य प्रकृतियों का बंध चल रहा है। यहां तक चारों गतियों का बंध हो सकता है। चारों गति तो मनुष्य, तिर्यचों को बंधती हैं। हम अलग-अलग मार्गणाओं की बात यहां नहीं ले रहे हैं। इन जनरल बात देख रहे हैं। देवगति के जीव अलग प्रकृतियां बांधेंगे, नरकगति के यथायोग्य बांधेंगे। परंतु हम सामान्य से सबके लिये जो लागू होता है, ऐसी प्रकृतियों की यहां बात करेंगे। मूल पुस्तक में बहुत विस्तार से कथन है; अलग-अलग गतियों में क्या-क्या होता है उसकी भी बात है। हमारा वह विषय नहीं है। हम तो सामान्य से या मनुष्यों में जो लागू हो रहा है उसकी बात करेंगे।

प्रदेशबंध कैसा होता है ? हमने देखा था प्रदेशबंध योग के कारण होता है और योग हीनाधिक कुछ भी हो सकता है, परंतु यहां प्रदेशबंध अनुत्कृष्ट बताया है। यहां उत्कृष्ट प्रदेशबंध नहीं है ऐसा कहा है। दसवें गुणस्थान में छह मूल प्रकृतियां बंधती हैं वहीं पर उनका उत्कृष्ट प्रदेशबंध होगा। वहां मोहनीय नहीं बंधती है, आयु का वहां सवाल ही नहीं है। परंतु यहां प्रायोग्यलब्धि में अनुत्कृष्ट और अजघन्य - सामान्य से सभी प्रकृतियां कैसी बंधेंगी ? प्रदेशबंध उत्कृष्ट नहीं होगा। उत्कृष्ट नहीं उसको अनुत्कृष्ट कहेंगे। आप कहेंगे कि जघन्य भी नहीं, अजघन्य है। यह सामान्य से कथन है और उसमें १९ प्रकृतियां बतायी हैं उनमें उत्कृष्ट प्रदेशबंध हो सकता है। क्यों ? क्योंकि मिथ्यात्व प्रकृति यहीं बंधेगी। यहां उसका उत्कृष्ट प्रदेशबंध हो सकता है। अनंतानुबंधी यहीं बंधती है, ऊपर जाकर नहीं बंधेगी; ऊपर यानी चौथे गुणस्थान में। उनका भी यहां उत्कृष्ट प्रदेशबंध हो सकता है। देखो, हमें भी महाबंध पढ़ने के बाद यह अभी-अभी समझ में आने लगा है। इसलिये यह बात नहीं समझे तो कोई चिंता नहीं है। परंतु लब्धिसार ग्रंथ में पच्चीसवीं गाथा में इन १९ प्रकृतियों के नाम लिखे हैं कि उनका यहां उत्कृष्ट प्रदेशबंध हो सकता है। क्यों ?

देखो, मूलप्रकृतियों में मोहनीय का बंध कौनसे गुणस्थान तक हो रहा है ? नौवें तक होता है। मोहनीय की कौनसी प्रकृति नौवें में लास्ट-लास्ट में बंध रही हैं ? संज्वलनलोभ बंध रहा है। तो उसके खाते में कितना द्रव्य आयेगा ? समयप्रबद्ध का एक बटे सात भाग। नौवें गुणस्थान में आयु बिना सात मूलप्रकृतियां बंध रही हैं। तो सातवां हिस्सा मोहनीय के खाते में आया और जितना आया वह सारा संज्वलन को मिला। क्रोध-मान-माया-लोभ बंधते तो चार में डिक्वाइड होगा। अभी क्रोध का बंध रुक गया है, फिर मान का रुक गया, माया का रुक गया। नौवें के अंत में अकेले लोभ का बंध रह गया तो सारा द्रव्य किसमें जायेगा ? लोभ में। तो जहां मिनिमम प्रकृतियां बंधेगी वहां मैक्झिमम द्रव्य मिलेगा।

मिथ्यात्व अवस्था में मोहनीय का पूरा द्रव्य किसमें जा रहा है ? मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय-जुगुप्सा ये १९ और हास्य-रति या अन्य युगल और एक वेद - इनमें उसका विभाजन होगा। इसलिये मिथ्यात्व में जितना जाना है वह यहां जा सकता है। आगे मिथ्यात्व नहीं रहेगा, अनंतानुबंधी नहीं रहेगा, तो अप्रत्याखानावरण का मैक्झिमम द्रव्य चौथेवाले को हो सकता है। यह सारी उसकी रीझनिंग है। वह रीझनिंग हमें अभी समझ में नहीं आयेगी क्योंकि यह थोड़ा सूक्ष्म विषय है कि कौनसे गुणस्थान में कौनसी प्रकृतियां बंधती हैं। हमें इतना ही लेना है कि १९ प्रकृतियां यहां बतायी हैं इनका उत्कृष्ट प्रदेशबंध यहां हो सकता है। बस इतनी बात है। उसमें मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी चतुष्क, स्त्यानगृद्धि त्रिक, देवगति चतुष्क, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभग आदि तीन, नीचगोत्र ये १९ प्रकृतियां यहां बतायी हैं। प्रदेशबंध की बात हो गयी।

उदय की बात चल रही है। यहां उदय किसरूप होगा? उदय में ज्ञानावरणादि का उदय चल रहा है, परंतु यहां प्रदेशउदय कितना होता है ? जीव को उससे कुछ मतलब नहीं। कितने नंबर ऑफ परमाणु खिरते हैं, उससे उसको कुछ निमित्तपना नहीं बनता है। उसका निमित्तपना किससे बनेगा ? अनुभाग से। तो अनुभाग किसरूप से उदय में आ रहा है ? अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग द्विस्थानरूप से उदय में आ रहा है और प्रशस्त प्रकृतियों का चतुःस्थानरूप से उदय में आ रहा है। उसका अर्थ क्या है ? अभी जीव में वैसा ही निमित्त बनेगा। सहजरूप से होगा न ? पहले कोशिश क्या करना चाहता है ? नहीं, पहले संयोग सुधारूंगा, फिर स्वाध्याय सुनूंगा और फिर

तत्त्वविचार की बात तो बहुत आगे है। हम आपको शॉर्ट कट बता रहे हैं।

अरे, स्वाध्याय करो, तत्त्वविचार करो तो अपनेआप अप्रशस्त प्रकृतियां- अघाति की भी अप्रशस्त प्रकृतियां द्विस्थानरूप होकर उदय में आयेंगी। तो आपके प्रतिकूलता रहेगी क्या ? उनका लक्ष कर करके हम यहां दुःखरूप हो रहे हैं। परिस्थितियों में कुछ चेंज नहीं होगा। आपके साता-असाता में जो हो रहा है; असाता का भी अनुभाग हीनरूप होकर उदय में आयेगा तो क्या आपको इतनी प्रतिकूलता रहेगी ? पहले तो संयोगों को देख-देखकर ही दुःखी हो रहा था। अभी कर्मों के निमित्त की अपेक्षा से बतायेंगे। असाता का अनुभाग घटकर उदय में आ रहा है। तो नॅचरली इस जीव को उसमें तकलीफें कम होंगी कि नहीं होंगी ? तत्त्वविचार सबकी दवा है, परंतु हमारा विश्वास नहीं है न ! इसलिये इतना कठिन विषय समझाना पड़ता है। नहीं समझे ?

आप तत्त्वविचार करो तो यह सब नियम से होनेवाला है। लगता है न कि कुछ करूं-करूं। क्या करूं? शरीर की क्रिया करूं। क्यों ? उसको मैंने मैं यानी अपना स्वरूप मान लिया है। कहते हैं कि नहीं, पुण्य तो करना ही चाहिये। तो यह पुण्य हो रहा है कि पाप हो रहा है ? कौनसी भक्ति से और कौनसी यात्रा से या कौनसे दान से यह होनेवाला है ? बोलो ? नहीं होनेवाला। तत्त्वविचार के काल में ये बातें अपनेआप होंगी। अरे, अभव्यों को भी होती हैं, अकेले भव्यों की बात नहीं है। हमने उदय की बात देखी। अप्रशस्त कर्मों का द्विस्थानगत अनुभाग उदय होगा।

अभी घातिकर्म में भी लगाना। ज्ञानावरण का भी अनुभाग घटकर उदय में आयेगा तो वहां ज्ञान का विकास चलेगा कि नहीं ? तत्त्वविचार में वे बातें उनका मर्म, उनका रहस्य सहजरूप से ख्याल में आयेगा। उसमें अपनी बुद्धि लगाते हैं तो निर्णय तक पहुंचने में काफी मदद हो जायेगी। सबमें लगाना यानी मिथ्यात्व भी मंद हो रहा है। राग-द्वेष यानी चारित्रमोहनीय भी मंद हो रहा है। अंतराय मंद हो रहा है तो उसका उस जाति का पुरुषार्थ भी बढ़ेगा। ये सब बातें सहज होती हैं। प्रशस्त कर्मों का उदय चतुःस्थानगत होता है, अप्रशस्त कर्मों का द्विस्थानगत होता है।

अभी यहां और दो विधान होते हैं जिनकी हमने कल बात की थी। स्थितिबंध घट जाता है। कितना होता है ? अंतःकोड़ाकोड़ी सागर। हर अंतर्मुहूर्त उतना का उतना बंध होता रहेगा फिर उसमें कटौती होती है - घट होती है। कितनी ? अँट अ

टाइम पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण। फिर उतना घटकर अंतर्मुहूर्त तक समान स्थितिबंध होगा, फिर कटौती होगी। हर अंतर्मुहूर्त में यह कटौती चलेगी। एक बार पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण कटौती होती है। इसतरह से जब टोटल कटौती ७०० से ८०० सागर हो जायेगी तब इस स्थान पर विशेषता होती है। अभी तक जो कोई प्रकृतियां बंधती हैं उनमें से विशिष्ट प्रकृतियां यहां से बंधना रुक जायेंगी। इस विधान का नाम है प्रकृतिबंध का अपसरण होना - घटते चले जाना। कौन-कौनसी प्रकृतियां यहां घटती हैं ? पहले स्थान पर कुछ विशिष्ट प्रकृति घटती है। दूसरा स्थान कब होगा ? स्थितिबंध में और ७००-८०० सागर की कटौती होगी तब दूसरा स्थान होगा।

हमने देखा न, ७००-८०० सागर कटौती होने के लिये करोड़ों बार स्थितिबंधापसरण होगा यानी इतने अंतर्मुहूर्त चले जायेंगे। वहां तो कहेंगे संख्यात हो गये। संख्यात कहते हैं, कहीं संख्यात हजार कहते हैं। हमने कल उसका हिसाब लगाया था- अनेक कोड़ाकोड़ी बार अपसरण होता है तब जाकर ७००-८०० सागर की कटौती होगी, तब जाकर प्रकृतिबंधापसरण होंगे। अब प्रकृतिबंधापसरण के ३४ स्थान हैं उनकी हम चर्चा करेंगे। पहले स्थान पर यानी यहां तक मिथ्यादृष्टि के बंधयोग्य सारी प्रकृतियां बंध रही थी। इससे आगे पर्टिक्युलर प्रकृतियां नहीं बंधेंगी। हम आपको कॉम्बिनेशनवाली प्रकृतियां बतायेंगे। वह कॉम्बिनेशन यहां तक बंधता है। उसमें से आगे सिंगल-सिंगल प्रकृतियां अलग कॉम्बिनेशन के साथ बंधती हैं परंतु यह पर्टिक्युलर कॉम्बिनेशन यहां तक बंधेगा। जब हम पढ़ेंगे तो ख्याल में आ जायेगा।

अभी हम प्रकृतिबंधापसरण के स्थान देखते हैं। १, २, ३, ४ ऐसे नंबर डाल कर लिखा है। लब्धिसार में एक-एक गाथा में बहुत सारे नाम लिखे हैं, तो हमें कन्फ्यूजन होता है। लब्धिसार ग्रंथ के आधार से ही लिखा है परंतु हमारे समझ में आवे इसलिये नंबरिंग दिये हैं। हमने देखा न, प्रकृतिबंधापसरण का एक स्थान हुआ। फिर ७००-८०० सागर की कटौती हुयी। तब तक स्थितिबंधापसरण होता रहा। फिर प्रकृतिबंधापसरण का दूसरा स्थान आता है। इसी विधि से आगे चलेगा। ये ३४ स्थान और वहां जो प्रकृतियां बंधने से रुकती हैं उनके नाम हम पढ़ेंगे। पृष्ठ ९९, नीचे से दूसरा पॅरेग्राफ-

इन ३४ स्थानों में जिन ४६ प्रकृतियों का बंध रुक जाता है, उन्हें देखते हैं। इनमें कुछ स्थानों में एक से अधिक प्रकृति के नाम हैं, जैसे सूक्ष्म, साधारण,

अपर्याप्त कहेंगे तो तीन नाम हैं। तो यह कॉम्बिनेशन यहां रुका। सूक्ष्म का बंध आगे प्रत्येक के साथ भी होगा, पर्याप्त के साथ भी होगा। अपर्याप्त नामकर्म आगे अन्य बादर एकेन्द्रिय के साथ भी होगा, द्वीन्द्रिय के साथ भी होगा। यानी सिंगल-सिंगल बंध नहीं रुके हैं, यह कॉम्बिनेशनवाला बंध यहां तक होता है यह उसका अर्थ होता है। **वहां इन प्रकृतियों का संयोगरूप बंध रुक जाता है ऐसा समझना।** मैंने उसको कॉम्बिनेशन कहा- उनका संयोगरूप यानी तीनों का इकट्ठा जो कॉम्बिनेशन है - संयोग है वह यहां तक बंध सकता है, इससे आगे नहीं बंधेगा। यह क्या सूचित करता है ? अति अप्रशस्त प्रकृतियां पहले बंधने से रुकती हैं।

सभी अप्रशस्त प्रकृतियों के पहले चारों आयु को भी ले लिया है। आयु का बंध यहां रुकता है। कहां ? प्रायोग्यलब्धि में। कब तक रुकेगा ? पूरे प्रथमोपशम के काल में किसी भी आयु का बंध नहीं होता। तो क्या सम्यक्त्व होने पर आयु का बंध रुक जाता है ? नहीं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व का काल पूरा होने के बाद जो जिस गति में है वहां जिस आयु का बंध हो सकता है, वह बंधेगी। जैसे मनुष्य, तिर्यच सम्यग्दृष्टि को आयु का बंध होगा तो देवायु का ही होगा। सम्यग्दृष्टि देव और नारकी को आयु का बंध होगा तो मनुष्यायु का बंध होगा। ऐसे कुछ नियम हैं। पहले हम इन जनरल बात करेंगे। यानी आयु का बंध यहां से प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल तक रुका है। बाद में क्षयोपशम सम्यक्त्व होने के बाद उसका बंध यथायोग्य समय में हो सकता है। यह उसका अर्थ होता है।

श्रोता: यहां से लेकर प्रथमोपशम सम्यक्त्व तक मरण भी नहीं होगा ऐसे कह सकते हैं ? प्रायोग्यलब्धि में मरण हो सकता है। यहां करणलब्धि में और प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में मरण नहीं होता। *श्रोता: पूर्व बद्धायुष्क का किसी भी लब्धि में मरण हो सकता है ?* हां, चार लब्धि तक कहीं भी मरण हो सकता है। तत्त्वविचार के काल में अँट अ टाइम चारों लब्धि हैं। प्रायोग्यलब्धि में उसका कहीं पर भी मरण हो सकता है। *श्रोता: किसीने आयुबंध किया है और आयु इतनी ही बांधी है कि प्रथमोपशम काल में ही खलास हो जावे तो ?* ऐसा कभी नहीं होगा। बहुत सारे नियम हैं। अगर आयु इतनी है तो वह प्रथमोपशम उसके पहले करेगा और प्रथमोपशम के बाद वह मिथ्यात्व में भी आ सकता है। मिथ्यात्व में कोई भी सम्यग्दृष्टि, प्रथमोपशम की बात छोड़ो, क्षयोपशम सम्यक्त्व छूटकर पहले में आया तो भी अंतर्मुहूर्त तक मरण नहीं

होता। सासादन में जाकर मरण हो सकता है परंतु सम्यक्त्व छूटकर मिथ्यात्व में आता है तो अंतर्मुहूर्त तक मरण नहीं होता। बहुत सारे नियम हैं जो याद भी नहीं रह सकते परंतु उनको हमें देखना है। हमारे ऐसे तर्क चलते हैं, परंतु हमारे तर्क के अनुसार वस्तुव्यवस्था नहीं होती।

आगे देखते हैं- जैसे सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त का संयोगरूप बंध रुक जाता है परंतु सूक्ष्म, साधारण, पर्याप्त का बंध होता है या बादर, द्वीन्द्रिय के साथ अपर्याप्त का बंध चालू रहता है। कौन-कौनसे कॉम्बिनेशन रुकते हैं, वह बात यहां बतायेंगे। इन प्रकृतियों का एक साथ बंधना रुक जाता है। उसको कहेंगे यहां संयोगरूप बंध रुक जाता है। ये प्रकृति यथासंभव अन्य प्रकृति के साथ बाद में भी बंधती रहती हैं। जब हम उन स्थानों को पढ़ेंगे तो यह बात और स्पष्ट हो जायेगी। एक बात और समझ लो। यहां हम ४६ प्रकृतियों का बंधापसरण होता है कहते हैं तब यह समझना की ये अपुनरुक्त प्रकृति हैं।

हम यहां जो ४६ गिनेंगे और एक-एक स्थान में कहीं तीन नाम बतायेंगे, कहीं चार, कहीं छह-छह नाम भी बतायेंगे। परंतु हो सकता है कि यह नाम रिपीटेडली आये हैं। जैसे अपर्याप्त नामकर्म, सूक्ष्म एकेन्द्रिय के साथ भी आया है, बादर के साथ भी आया है, द्वीन्द्रिय के साथ भी आया है, चतुरिन्द्रिय के साथ भी आया है, पंचेन्द्रिय के साथ - सबके साथ आया है। परंतु उसको इतनी बार नहीं गिनना है। अपर्याप्त को एक ही बार गिनेंगे क्योंकि टोटल में अपर्याप्त-अपर्याप्त-अपर्याप्त; द्वीन्द्रिय के साथ अपर्याप्त आ गया है, त्रीन्द्रिय के साथ अपर्याप्त आ गया परंतु अपर्याप्त नामकर्म को एक ही बार गिनेंगे। परंतु जैसे एकेन्द्रिय पर्याप्त का बंध रुका, द्वीन्द्रिय पर्याप्त का बंध रुका, त्रीन्द्रिय पर्याप्त का रुका, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त का रुका, असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त का रुका, परंतु संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त का तो चलता रहेगा। तो पर्याप्त नाम हमने इतनी बार लिया फिर भी पर्याप्त का बंध रुका ही नहीं। समझ में आती हैं कुछ बातें ? जैसे बादर नामकर्म एकेन्द्रिय के साथ, द्वीन्द्रिय के साथ बंधना रुकेगा, परंतु बादर नामकर्म तो पंचेन्द्रिय के साथ बंधेगा कि सभी कर्म बंधना रुक जायेंगे ? यानी संज्ञी पंचेन्द्रिय संबंधी बंध हो रहा है, तो उसके साथ बादर, प्रत्येक का बंध तो होता रहेगा। कोई विशिष्ट कॉम्बिनेशन वहां रुक गया है। हम आगे बढ़ते हैं, देखो-

एक बार ही गिनना। जैसे अपर्याप्त नामकर्म का नाम एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय के साथ अनेक बार आया है, परंतु उसे एक बार ही गिनना। इससे विपरीत पर्याप्त नामकर्म संयोगरूप से एकेन्द्रिय से असंज्ञी पंचेन्द्रिय के साथ अनेक बार आया है, फिर भी संज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्त का बंध चालू ही रहता है। टोटल बंध से रहित नहीं हुआ है न, नामकर्म तो बांधेगा। जैसे मनुष्य के तिर्यचगति, मनुष्यगति का बंध रुक गया परंतु देवगति के साथ बांधेगा कि नहीं बांधेगा ? **उसका बंध नहीं रुकता इसलिये बंधापसरण होनेवाली ४६ प्रकृतियों में पर्याप्त नामकर्म को नहीं गिनते।** हमने पर्याप्त की बात ली थी। एकेन्द्रिय, पर्याप्त नहीं बंधेगा, द्वीन्द्रिय, पर्याप्त का बंध नहीं होगा परंतु संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त का बंध चालू रहेगा। इसलिये पर्याप्त नामकर्म का बंधापसरण हुआ क्या ? *श्रोता: नहीं।* नहीं। कॉम्बिनेशन में लिया था परंतु टोटल ४६ गिनेंगे उसमें उसका नाम नहीं लेना है यह उसका अर्थ होता है।

अब हम उन ३४ स्थानों को क्रमशः देखेंगे तो यह बात तुम्हें स्पष्ट समझ में आ जायेगी। इसमें स्थानों के क्रमांक और उस स्थान में बंधापसरण होनेवाली प्रकृतियों के नाम लिखते हैं। लब्धिसार गाथा ११ से लेकर १५ तक पूरा विस्तार से बताया है उसीको अपनी भाषा में शॉर्ट करके और नंबर देकर यहां बताया है। पहला स्थान है नरकायु यानी यहां तक नरकायु बंध सकती है, इससे आगे नहीं बंधेगी। फिर ७००-८०० सागर के स्थितिबंधापसरण होंगे, इतने अंतर्मुहूर्त चले जायेंगे तो तिर्यचायु बंधना रुक जायेगी। यह प्रकृतिबंधापसरण का दूसरा स्थान है। कॉम्बिनेशन नहीं बता रहे; १, २, ३, ४ नंबर दिये हैं। प्रकृतिबंधापसरण का **पहला स्थान** तो यहां तक **नरकायु** बंधी, इससे आगे नहीं बंधेगी। **दूसरे स्थान तक तिर्यचायु** बंध सकती थी, इससे आगे नहीं बंधेगी। फिर **तीसरे नंबर पर मनुष्यायु** है और **चौथे नंबर पर देवायु** है। यानी यहां से आगे कोई भी आयु नहीं बंधेगी। समझ में आयी बात ? **यहां चारों ही आयुक्रम का बंध क्रमशः रुक जाता है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व का काल पूर्ण होने पर क्षयोपशम सम्यक्त्व होता है, तब मनुष्यायु और देवायु का बंध पुनश्च प्रारंभ होता है।** यानी सबको नहीं लेना- मनुष्य और तिर्यच के लिये देवायु का बंध हो सकता है, देव और नारकी के लिये मनुष्यायु का बंध हो सकता है। परंतु यहां चारों गतियों का मिलकर कथन है इसलिये दोनों आयु की बात की। सम्यग्दृष्टि को ना नरकायु बंधेगी, ना तिर्यचायु बंधेगी।

अन्य भी कई प्रकृतियों का बंध प्रारंभ होता है। ३४ वें स्थान में कही गयी कुल ६ प्रकृतियों का बंध पुनः प्रारंभ होता है। अभी हम स्थान देखने के बाद फिर उसकी चर्चा करेंगे। अब आगे के स्थान देखते हैं। देखो, इन ३४ स्थानों में कहीं भी मिथ्यात्व का नाम नहीं है और ना ही अनंतानुबंधी का नाम है। उसका अर्थ क्या है ? ये प्रकृतियां करणलब्धि के अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय तक बंधेंगी। जब सम्यक्त्व होगा उसके पहले समय से वे बंधना रुक जायेगी। अभी हमने चार आयु के चार स्थान देखे। पहले सबसे अप्रशस्त नरकायु को लिया। बाकी तीन आयु प्रशस्त होने पर भी आयु का बंध रुकता है तो तिर्यचायु लिया, फिर मनुष्यायु, फिर देवायु।

श्रोता: यह नरकायु और तिर्यचायु के बीच में ७०० से ८०० सागर की कटौती होगी। इस प्रकार क्रम-क्रम से हर एक स्थान में घटित करना, बराबर ? हर दो स्थान के बीच में ७०० से ८०० सागर की कटौती होती है। वहां करोड़ों बार स्थितिबंधापसरण के एक-एक अंतर्मुहूर्त करके इतने अंतर्मुहूर्त बीत जाते हैं। अंतर्मुहूर्त की सूक्ष्मता ख्याल में आती है न हमें ? अंतर्मुहूर्त यानी हर बार एक समय कम ४८ मिनटवाला अंतर्मुहूर्त नहीं है। पांचों लब्धि मिलकर भी अंतर्मुहूर्त है। उसके साथ प्रथमोपशम को जोड़ दो तो भी सारा मिलकर अंतर्मुहूर्त का ही मामला है। देखो, पांचवें स्थान पर नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वी - यहां तक बंध सकती थी, अब इसके आगे नहीं बंधेगी। इसके पश्चात् अपर्याप्त नामकर्म के साथ संयोगरूप स्थान इस प्रकार हैं- हमें इसकी विशेषता ख्याल में आवे इसलिये बीच-बीच में ऐसे कुछ वाक्य लिखे हैं।

देखो- छठे स्थान पर कौनसा कॉम्बिनेशन रुक गया ? संयोगरूप सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण। सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण में यानी सूक्ष्म निगोद लब्धिअपर्याप्त में उत्पन्न हो ऐसे जो कर्म बंधते हैं या ऐसे जो परिणाम होते हैं वे परिणाम यहां तक हैं, इसके आगे ऐसे संक्लेश परिणाम नहीं होंगे। यहां तक यह कॉम्बिनेशन बंध सकता है। सातवें स्थान पर सूक्ष्म, अपर्याप्त, प्रत्येक। यहां तक प्रत्येकशरीर के साथ सूक्ष्म, अपर्याप्त बंधेगा। फिर बादर, अपर्याप्त और साधारण। फिर बादर, अपर्याप्त और प्रत्येक। ये सारे अपर्याप्तकों के कॉम्बिनेशन्स ले रहे हैं।

फिर द्वीन्द्रिय, अपर्याप्त का बंध यहां तक हो सकता है, इसके आगे नहीं होगा। फिर त्रीन्द्रिय, अपर्याप्त। फिर बारहवें स्थान पर चतुरिन्द्रिय, अपर्याप्त;

तेरहवें स्थान पर असंज्ञी पंचेन्द्रिय, अपर्याप्त और चौदहवें स्थान पर संज्ञी पंचेन्द्रिय, अपर्याप्त। चौदहवें स्थान तक अपर्याप्त बंध सकता था, इसके आगे अपर्याप्त नामकर्म नहीं बंधेगा। पन्द्रहवें स्थान पर फिर भी सूक्ष्म का बंध यहां तक है, परंतु कौनसे सूक्ष्म ? पर्याप्त, सूक्ष्म का बंध होगा। तो सूक्ष्म, पर्याप्त और साधारण। फिर सोलहवें स्थान पर सूक्ष्म, पर्याप्त और प्रत्येक; सत्रहवें स्थान पर बादर, पर्याप्त और साधारण। यानी पर्याप्त बादर निगोद का बंध यहां तक पॉसिबल है।

अठारहवें स्थान पर बादर, पर्याप्त और प्रत्येक, अभी इसके आगे एकेन्द्रिय का बंध होनेवाला नहीं है। तो एकेन्द्रिय नामकर्म, स्थावर नामकर्म और आतप नामकर्म भी उसके साथ यहां तक लिये। आतप नामकर्म एकेन्द्रिय के साथ ही बंधता है और एकेन्द्रिय का बंध यहां तक ही है। इसलिये इन छह प्रकृतियों का संयोगरूप भंग यहां तक बताया है। अठारहवें स्थान तक हम आ गये हैं, एकेन्द्रिय संबंधी बंध यहीं तक है। अब उन्नीसवां स्थान देखते हैं; देखो नीचे- सभी अपर्याप्त खलास हुये, एकेन्द्रिय के भी बंध के स्थान चले गये परंतु अभी तक पर्याप्त द्वीन्द्रिय संबंधी बंध हो रहा था। तो यहां द्वीन्द्रिय, पर्याप्त रुकेगा। बीसवें स्थान पर त्रीन्द्रिय के साथ पर्याप्त। इक्कीसवें स्थान पर चतुरिन्द्रिय के साथ पर्याप्त बंधता था वह रुक गया। बाइसवें स्थान पर असंज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्त का बंध यहां रुका। परंतु देखो संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त का बंध थ्रू आउट चलता ही रहेगा - यहां और उपशम सम्यक्त्व के काल में भी और बाद में भी। क्योंकि बंध तो होगा, नामकर्म तो बंधेगा - कोई गति बंधेगी, जाति बंधेगी तो उसका बंध नहीं रुकता।

तेईसवें स्थान पर तिर्यचगति, तिर्यचगत्यानुपूर्वी और उद्योत - यहां तक तो तिर्यचगति बंध सकती थी, इसके आगे नहीं बंधेगी। चौबीसवें स्थान पर नीचगोत्र, आप कहेंगे, तिर्यचगति के साथ नीचगोत्र क्यों नहीं लिया ? नरकगति भी पहले चली गयी और तिर्यचगति भी तेईसवें के स्थान पर चली गयी। ऐसा हो सकता है कि मनुष्यगति के साथ किसीको उच्चगोत्र बंधता है तो किसीको नीचगोत्र बंधता है। इसलिये आगे के स्थान पर नीचगोत्र को लिया। अब पच्चीसवें स्थान पर अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेय। छब्बीसवें स्थान पर अंतिम संस्थान और अंतिम संहनन जो छह नंबर के अति अप्रशस्त हैं उनको पहले लेते हैं। छब्बीसवें स्थान पर हुंडकसंस्थान और असम्प्राप्तासृपाटिकासंहनन। शायद किसीको संहनन और

संस्थान के नाम मालूम न हो इसलिये यहां छह नंबर का है ऐसा लिख दिया। **यह छठवां संस्थान और छठवां संहनन है। इसतरह से याद रखना आसान होगा।**

सत्ताईसवें स्थान पर नपुंसकवेद तो नपुंसकवेद का बंध यहां तक हो सकता था। मिथ्यादृष्टि जीव है। हर अंतर्मुहूर्त में बंध की बात कर रहे हैं, उदय की नहीं। जिस भव में जिस वेद का उदय है मरण तक वही वेद कायम रहता है – भाववेद भी और द्रव्यवेद भी। यहां बात क्या हो रही है ? बंध की। मिथ्यादृष्टि जीव हर अंतर्मुहूर्त नपुंसकवेद, पुरुषवेद, स्त्रीवेद ऑल्टरनेटली बांधता है, हां, उसका बंध का काल जुदा-जुदा होगा। कितने काल तक कौनसा वेद बांधते हैं ? उसका अंतर्मुहूर्त का प्रमाण जुदा-जुदा है। परंतु नियम से तीनों वेदों में से एक-एक का टर्न बाय टर्न बंध होता ही होता है। यहां तक नपुंसकवेद बांध सकता है। ये मिथ्यादृष्टि की बातें चल रही हैं न, पांच लब्धि मिथ्यादृष्टि के होती हैं।

इसके बाद **अट्ठाईसवें स्थान पर वामनसंस्थान और कीलितसंहनन** यह पांचवां संस्थान और पांचवां संहनन है। **उनतीसवें स्थान पर कुब्जकसंस्थान और अर्धनाराचसंहनन** जो चौथा संस्थान और चौथा संहनन है। **तीसवें स्थान पर स्त्रीवेद** है यानी यहां तक स्त्रीवेद का बंध होता था, अब इससे आगे पुरुषवेद का ही बंध होगा। उपशम सम्यक्त्व के काल में यानी यहां से लेकर आगे करणलब्धि में और उपशम सम्यक्त्व में तो पुरुषवेद ही बंधेगा और वह सम्यग्दृष्टि ही रहा तो पुरुषवेद का ही बंध करता रहेगा। **इकतीसवें स्थान पर स्वातिसंस्थान और नाराचसंहनन** यह तीसरा संस्थान और तीसरा संहनन है। **बत्तीसवें स्थान पर न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान और वज्रनाराचसंहनन** यह दो नंबर का संस्थान, दो नंबर का संहनन है।

तैंतीसवें स्थान पर मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, औदारिकशरीर, औदारिकअंगोपांग और वज्रवृषभनाराचसंहनन यह कॉम्बिनेशन यहां तक बंधेगा। मनुष्य और तिर्यच इससे आगे देवगति का ही बंध करेंगे। ख्याल में आती है न बात ? हमने देव, नारकी की बात नहीं की। अगर देव, नारकी की बात करनी है तो उनके यह ३३ नंबर का स्थान नहीं होगा क्योंकि वे मनुष्यगति बांधते रहेंगे। यहां पर भी बांधेंगे सम्यग्दर्शन होने पर भी बांधेंगे। ये इन जनरल बातें की हैं। परंतु एक-एक गतिवाले की अपेक्षा बात करेंगे तो अलग-अलग जितने स्थान बंधते हैं, उनमें से अपसरण यानी

कटौती होगी। जैसे देव और नारकी नरकगति बांधते ही नहीं हैं तो ५ नंबर का स्थान उनको होगा ही नहीं, तो उसका बंधापसरण हुआ ऐसा हम नहीं कहेंगे। जो प्रकृतियां बंधती हैं, उनका बंध रुकेगा।

यह कर्मकाण्ड का विषय है कि कौनसे गतिवाले कौनसे कर्म बांधते हैं - हमें उसके विस्तार में नहीं जाना है। यह सारा विस्तार लब्धिसार में लिया हुआ है कि देवों के कौन-कौनसे स्थान होते हैं, कौनसे नहीं होते; नारकियों के कौनसे होते हैं। देवों में भवनत्रिक के कौनसे होते हैं ? ऊपर के देवों के कौनसे हैं ? कौनसे देव कौनसी प्रकृतियां बांध सकते हैं ? तो जो बांधते हैं उनमें कौनसे बंधापसरण हैं उसकी वहां चर्चा है। हमारा वह विषय नहीं है क्योंकि वह बहुत सूक्ष्म चर्चा है। मनुष्य, तिर्यच के लिये ये सभी स्थान लागू होते हैं तो उनकी अपेक्षा यहां समझ लेना।

हमने ३३ नंबर का स्थान देखा। अभी चौतीसवां बाकी है। देखो ३२वें स्थान पर दूसरा संस्थान, दूसरा संहनन लिया था और ३३वें स्थान पर मनुष्यगति के साथ पहला संहनन लिया, संस्थान का नाम नहीं लिया। क्यों नहीं लिया ? देखो, मनुष्यगति और तिर्यचगति के साथ ही संहनन बंधता है। परंतु मनुष्य और तिर्यच यहां देवगति बांध रहे हैं - देव वैक्रियिकशरीरवाले होते हैं। वैक्रियिकशरीर में संहनन नहीं होता है तो देवगति के साथ कोई संहनन बंधेगा ही नहीं परंतु संस्थान बंधेगा। कौनसा ? समचतुरस्रसंस्थान। देव, नारकी भी यहां मनुष्यगति के साथ समचतुरस्रसंस्थान बांधेंगे ही बांधेंगे। बात समझ में आती है न ? इसलिये यहां प्रथम संस्थान का नाम नहीं लिया, प्रथम संहनन का नाम ले लिया।

नीचे देखते हैं- अंतिम **३४ नंबर का स्थान अस्थिर, अशुभ, असातावेदनीय, अयशस्कीर्ति, अरति और शोक** ये छह अप्रशस्त प्रकृतियां यहां बंधना रुकी हैं। कब तक ? अभी करणलब्धि में नहीं बंधेगी। बाद में प्रथमोपशम के प्रारंभ में कुछ काल तक नहीं बंधेगी। परंतु प्रथमोपशम की अवस्था में ही ये बंधना शुरू होंगी क्योंकि असाता भी वहां बंध सकती है। ये प्रकृतियां छठे गुणस्थान में बंधव्युच्छित्ति होनेवाली हैं तो वहां तक बंध सकती हैं। परंतु अभी यहां से विशुद्धि बढ़ रही है, बाद में स्टेडी हो जायेगी। प्रथमोपशम के काल में बाद में इनका बंध शुरू हो जायेगा, शुरुआत में नहीं। शुरुआत में विशुद्धि ज्यादा है तब नहीं बंधेगी, बाद में बंधेगी।

३३ नंबर का कौनसा है ? मनुष्य, तिर्यच के लिये मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानपूर्वी वगैरह का बंध पुनः प्रारंभ नहीं होता। देव, नारकी के लिये उनका बंध तो रुका ही नहीं है। देवों के लिये यह बंधापसरण का स्थान है ही नहीं। कौनसा ? ३३ नंबर का और मनुष्य, तिर्यचों के लिये तो वह बंध रुक जाता है। **३४वें स्थान का बंध पुनः प्रारंभ होकर छठे गुणस्थान के अंत तक होता रहता है।** यह नहीं भी समझे तो कोई बात नहीं क्योंकि कहां कौनसी प्रकृतियों का बंध होता है, व्युच्छित्ति होती है वह आगे का विषय है, हमारा अभी का विषय नहीं है। हमें केवल ये ३४ स्थान कौनसे हैं और उनमें कौन-कौनसी प्रकृतियों का बंध रुकता है यह देखना है। इसको बंधापसरण कहने में आता है। कहीं-कहीं इसीको बंधव्युच्छित्ति नाम देते हैं परंतु व्युच्छित्ति का अर्थ होता है उस गुणस्थान तक बंधेगी, ऊपर कहीं पर भी नहीं बंधेगी। अभी हमने जो असाता वगैरह लिस्ट पढ़ी थी उसकी बंधव्युच्छित्ति तो छठे गुणस्थान में है, परंतु अभी विशुद्धि में वे नहीं बंध रही हैं इसलिये यहां अंतर्मुहूर्त काल तक उनका बंध रुका है। बाद में फिर उनका बंध शुरू होनेवाला है।

अभी इसकी इतनी सारी विशेषतायें हैं, आप सुन रहे हैं परंतु बहुत कन्फ्यूजन हो रहा है। कभी हमने यह बात सुनी नहीं है और बंध के जो नियम हैं - कहां तक बंध सकते हैं, कौन बांध सकता है उसके बारे में अभी अनभिज्ञ हैं। इसलिये ये बातें ख्याल में आने में थोड़ी तकलीफ होती है। अभी एक ही चारा है कि सुनना पड़ेगा। *श्रोताः घर पर जाकर पढ़ें ?* जरूर पढ़ना। क्योंकि अभ्यास जितना सूक्ष्म होगा न उतनी स्पष्टता और बढ़ेगी। अभी इतना ही समझना कि यहां कुछ अप्रशस्त प्रकृतियां नहीं बंधेंगी। जैसे हमने स्थितिबंध का अपसरण देखा वैसे कितनी ही प्रकृतियों का बंध यहां रुक गया है। क्यों रुका ? निमित्तरूप से जीव के तत्त्वविचार चल रहे हैं।

अभव्यों के भी ये सारे स्थान होंगे, अभव्यों के भी यहां तक की विशुद्धि होगी। इस विशुद्धि के निमित्त से जितना स्थितिसत्त्व घटा है या प्रशस्त प्रकृतियों का जितना नया स्थितिबंध भी हुआ है; पूर्व में बंधे हुये अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग घटा है। ये सब बातें अभव्यों के लिये भी होती हैं परंतु वह आगे स्वसन्मुखता का पुरुषार्थ नहीं करता। उसमें वह योग्यता भी नहीं है। भव्य जीव भी यहां तक आकर अगर फिर अपने रूटीन में चला जाता है, उसका तत्त्वविचार यहां तक ही चलता है, और आगे नहीं जाता, तो उसके भी करणलब्धि शुरू नहीं होती। यह उसका अर्थ है।

अभी हम आगे बढ़ते हैं, पृष्ठ १०३- तुम कहोगी, 'चलो, बहुत अच्छी बात बतायी। अब हम प्रायोग्यलब्धि में ही रहेंगे यह मान्यता कैसी है ? अभी सात तत्त्वों संबंधी अभिप्राय में भूल चल रही है, हैं न ! हम कहां अटके हैं ? तर्क लगाते हैं न ? चलो, अच्छी बात बतायी। तो हमारे इन प्रकृतियों का बंध होना रुक जायेगा और हमारा संवर प्रारंभ होगा। प्रायोग्यलब्धि में संवर होगा ? नहीं। क्योंकि अभी मिथ्यात्व का उदय भी है और बंध भी है। कुछ पुण्य परिणाम हुये हैं और अंतर्मुहूर्त के लिये कुछ पाप प्रकृतियों का बंध रुका है उसको संवर नहीं कहते। क्योंकि ये पलट-पलटकर बंधनेवाली जो परावर्तमान प्रकृतियां हैं, अरे, एकेन्द्रिय में भी उनका बंध होता है, कभी रुकता है, कभी कुछ होता है। उससे कुछ लेना-देना नहीं है। प्रश्न क्या पूछा ? चलो अच्छा हुआ, हमारा संवर प्रारंभ होगा। **क्योंकि सात तत्त्व के प्रकरण में हमने सीखा था कि बंध का रुक जाना संवर है।**' क्योंकि बेटी सयानी है न, हमें ही सिखा रही है। तत्त्वों का थोड़ा अभ्यास होता है तो ऐसा लगता है कि हम बहुत सयाने हो गये हैं। परंतु उसमें अनेक त्रुटियां रह जाती हैं।

बेटियों, ऐसी भूल कभी मत करना। यदि पापप्रकृति का बंध नहीं हुआ और पुण्यप्रकृति का बंध हुआ इसलिये संवर मानोगी, तो जब पुण्यप्रकृति के बदले पापप्रकृति बंधेगी तब पुण्यप्रकृति का भी संवर मानना पड़ेगा। अभी उसमें वही नियम लगा लो। यहां तो केवल अघातिकर्मों की कुछ पाप प्रकृतियों का बंध अघातिकर्म शब्द डाला है। घातिकर्म तो सभी बंध रहे हैं- ज्ञानावरण पांचों बंध रहे हैं, दर्शनावरण नौ बंध रहे हैं, अंतराय पांचों ही बंध रहे हैं, मोहनीय की ध्रुवबंधी १९ बंध रही हैं। हास्य-रति और शोक-अरति युगल में से, शोक-अरति अंतर्मुहूर्त के लिये बंधना रुक गये हैं, परंतु हास्य-रति तो बंध ही रहे हैं। नपुंसकवेद, स्त्रीवेद नहीं बंध रहे परंतु पुरुषवेद तो बंध रहा है। यानी बंधने योग्य यहां सब बंध ही रहे हैं। **केवल अंतर्मुहूर्त के लिये बंध रुक गया है।** अंतर्मुहूर्त के लिये ही क्योंकि अभी तत्त्वविचार का शुभभाव चल रहा है। अंतर्मुहूर्त के लिये अघातिकर्म में कुछ पाप प्रकृतियों का बंध रुक गया है। सभी घातिकर्म तो पापरूप ही हैं, वे तो बंध ही रहे हैं।

और ऐसे प्रायोग्यलब्धि के परिणाम और प्रकृतिबंधापसरण के ३४ स्थान तो अभव्यों के भी पाये जाते हैं। हमने देखा न, भव्यों-अभव्यों के लिये सारे स्थान समान हैं। तो क्या तुम मानोगी कि अभव्य जीवों को भी संवर होता है ? घातिकर्म

तो समस्त पापरूप ही हैं, वे तो निरंतर बंधते ही हैं। संवर कब कहलायेगा ? जब मिथ्यात्व का बंध रुक जायेगा। वह कब होगा ? करणलब्धि के बाद इमीजिएट नेक्स्ट समय में यानी सम्यक्त्व के पहले समय से मिथ्यात्व का बंध रुकेगा। अभी तक कोई संवर प्रारंभ नहीं हुआ है। **सबसे बड़ा पाप और पापकर्म तो मिथ्यात्व है।** पाप और पापकर्म ये दो भेद क्यों किये ? हां, सबसे बड़ा पाप यानी जीव का मिथ्यात्व परिणाम और सबसे बड़ा पापकर्म यानी मिथ्यात्व नाम का द्रव्यकर्म। मिथ्यात्व है - **उसका बंध और उदय भी यहां चल ही रहा है।**

करणलब्धि के अंत समय तक मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी कषाय आदि का बंध होता रहता है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पहले समय से उनका बंध तथा उदय दोनों मिट जाते हैं। जीव शुद्धोपयोगरूप भावसंवर करता है देखो, भावसंवर और द्रव्यसंवर दोनों हो गये न ? भावसंवर में क्या लेना ? जिसको हम द्रव्यानुयोग में शुद्धोपयोग कहते हैं। हां, **तब कर्म में मिथ्यात्वादि १६** यानी मिथ्यात्व के निमित्त से बंधनेवाली १६ प्रकृतियां **और अनंतानुबंधी आदि २५** इसतरह **कुल ४१ प्रकृतियों का द्रव्यसंवर अपने आप होता है।** हमने प्रकृतिबंधापसरण में ४६ प्रकृति गिनी थी, परंतु उनमें से कुछ प्रकृतियों का बंध प्रारंभ होता है। कुछ प्रकृतियों का बंधापसरण नहीं हुआ था, यहां से वे बंधना रुकती हैं। **कर्म की किसी भी अवस्था को जीव कर ही नहीं सकता।** अभी गुरुदेवश्री के प्रवचन में सुना न, द्रव्यानुयोग के सारे सिद्धान्तों को हमें यहां लगाना है। नहीं तो निमित्ताधीन दृष्टि और पुष्ट हो जायेगी। **जीव मात्र पुरुषार्थ करता है।** किसका ? बंधापसरण करने का ? नहीं। यहां अपना निर्णय करने का पुरुषार्थ चल रहा है। अपनी महिमापूर्वक तत्त्वविचार की बात यहां चल रही है।

पुरुषार्थ पर्याय है। इस कारण वह स्वद्रव्य के संपूर्ण भाग में होती है, हमने गुण की परिभाषा क्या देखी ? याद है किसीको ? गुण द्रव्य के संपूर्ण भागों में और उसकी संपूर्ण अवस्थाओं में पाया जाता है। पर्याय की परिभाषा क्या करेंगे ? बोलो, कौन बतायेंगे ? पर्याय की परिभाषा इसी गुण की परिभाषा जैसी बनानी है। *श्रोताः द्रव्य के संपूर्ण भागों में और उसकी सभी अवस्थाओं में...* सभी अवस्थाओं में नहीं। द्रव्य के संपूर्ण भागों में परंतु एक समय में एक ही अवस्था है। पर्याय एक समय की है। उसका द्रव्य के साथ अनित्यतादात्म्य संबंध है न, पर्याय एक समय तक है, परंतु एक समय तक उसका द्रव्य के साथ पूर्ण तादात्म्य है। वह उससे जुड़ी नहीं है। वह उससे

एकमेक है, एक समय के लिये। यह गुरुदेवश्री के कल के प्रवचन में आया था। इसलिये उसे तादात्म्य कहा था। है न ? द्रव्य का गुण के साथ नित्यतादात्म्य संबंध है और पर्याय के साथ अनित्यतादात्म्य संबंध है। जीव की पर्याय अपने में एक समय के लिये होगी न और उसके संपूर्ण भागों में होगी। **द्रव्य के बाहर नहीं होती, परद्रव्य में तो होती ही नहीं।** तो कर्म की पर्याय जीव में होगी कि नहीं होगी ? नहीं। उन दोनों का आकाश का क्षेत्र एक है।

जहां जीव है वहीं उसके कर्म भी हैं। कहने के लिये कर्म उसके कहेंगे, जीव के कोई कुछ नहीं लगते हैं परंतु यह उपचार है। हां, ऐसा भी कहेंगे कि जीव ने कर्म बांधा, जीव ने कर्म उपशमाया, यह सब कहेंगे, कथन में कोई दोष नहीं है। अगर हम अभिप्राय में ऐसा ही मानेंगे - जीव ने उसे किया देखो और कर्म ने जीव को ऐसा सताया - ऐसा मानते हैं वह भूल है यह कहना चाहते हैं। **इसलिये जीव का पुरुषार्थ जीव में होता है, शरीर या कर्म में नहीं।** ये सारे द्रव्यानुयोग के सिद्धान्त हैं कि नहीं ? अभी पंचास्तिकाय तो पूरा सिद्धान्तों से भरा है। सबसे पहले उसका अभ्यास करना चाहिये। उसके बिना समयसार पढ़ने बैठ जावो, तो कुछ समझ में नहीं आयेगा।

गुरुदेवश्री ने तो प्रवचनसार के व्याख्यान में बताया है - पहले प्रवचनसार पढ़कर बाद में समयसार पढ़ना चाहिये। समयसार में तो राग को हम पुद्गल के खाते में डाल देते हैं। अरे, परंतु अनुभव के लिये वह ऐसा बताया है। प्रवचनसार में क्या कहते हैं ? जिस समय जीव क्रोध करता है उस समय जीव को क्रोधी नहीं कहा है, क्रोध कहा है। क्रोध के साथ उस समय वह एकमेक है। सारी अपेक्षा समझना हमारा कर्तव्य है। केवल गिनी-चुनी गाथायें पढ़ने से, सुनने से कुछ काम नहीं चलेगा। समयसार आद्योपांत पूरा पढ़ना पड़ेगा। जोड़ी-जोड़ी की गाथा है। जहां एक बात निश्चय से कहेंगे वहां दूसरी गाथा में व्यवहार की बात उठायेंगे। दोनों अपेक्षा बराबर समझनी पड़ेगी।

आगे बढ़ते हैं- **यह बात ठीक तरह से समझ लो कि इन पहली चार लब्धि में होनेवाले शुभ-शुभतर यानी अधिक शुभ विशुद्ध परिणामों द्वारा मोक्षमार्ग में अनुकूल संवर नहीं होता।** अभी मोक्षमार्ग शुरू हुआ कि नहीं ? *श्रोता: नहीं हुआ।* हमने तत्त्वविचार किया, हमने सविकल्प ध्यान किया। जब तक आत्मा का अनुभव नहीं हुआ है तब तक उसको मोक्ष का मार्ग शुरू नहीं हुआ है। यह बात ख्याल में लेना।

दूसरी बात, क्या तुम प्रायोग्यलब्धि में ही रहना चाहती हो ? लोग पूछते हैं, हमारी कितनी लब्धि है ? अरे, लब्धि से क्या लेना-देना ? सम्यक्त्व है कि नहीं ? क्यों नहीं है ? अभिप्राय में कहीं कचास है, रुचि कहीं अन्यत्र पड़ी है इतना समझ लो। मुझे कौनसी लब्धि है ? अरे, तत्त्वविचार करो न, सारी लब्धि प्रकट हो जायेगी। उसमें कहां तक पहुंचा है ऐसी कोई कहां तक की बात नहीं होती है। क्या तुम प्रायोग्यलब्धि में ही रहना चाहती हो **या सम्यक्त्व की प्राप्ति करना चाहती हो ? इतने में संतुष्ट होकर कुछ पुण्य बांधकर उसका फल कितने काल तक भोगोगी ?**

क्या वह बांधा हुआ पुण्य वैसे रहनेवाला है ? गॅरंटी है क्या ? अभी तत्त्वविचार है तो अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग घटा है। अंतर्मुहूर्त में ऐसे पाप परिणाम में लग जायेंगे तो फिर उनका अनुभाग बढ़ जायेगा। अनुभाग का भी उत्कर्षण हो जाता है। वर्तमान परिणाम के साथ सत्ता में पड़े हुये पूर्वबद्ध कर्मों में भी स्थित्यंतर होते हैं। थोड़े टाइम के लिये पुण्य किया। हमने सुबह पूजा की, णमोकार मंत्र पढ़ा, सब कुछ किया और दिनभर क्या-क्या करते हैं सबको मालूम है। अपने परिणाम कैसे-कैसे होते हैं ? जब तक उन परिणाम में थे तब तक शांति थी। फिर क्या हुआ ? ये सभी पापकर्म वगैरह बंधेंगे। ख्याल में आती है यह बात ? यानी उससे संतुष्ट होने की बात ही नहीं है।

किसी भी पुण्य परिणाम से, रागभाव से संतुष्ट होंगे तो आगे बढ़ नहीं पायेंगे। हमने इतना तो किया, हमने इतना तो किया, हमारा जब काल पकेगा, सम्यग्दर्शन होगा आदि बातें सुनाता है। बाकी लौकिक में जब खाना मिलना है तब मिलेगा, कहकर बैठ जाते हो क्या ? सुबह चाय मिलनी है तब मिलेगी ऐसा निश्चित कर लो और घंटाभर जाने दो बिना चाय के फिर देखो क्या होता है ? **पुण्य और उसके फल की वांछा में तो मिथ्यात्व पनपता ही रहेगा,** क्या कहा ? मिथ्यादृष्टि तो है ही और फिर पुण्य की वांछा चल रही है। सात तत्त्वों के संबंध में जो श्रद्धान है; उसमें हेय-ज्ञेय-उपादेय की भूल चल रही है, मिथ्यात्व कायम है, कुछ पुण्य किया और उसमें संतुष्ट हो गया तो मिथ्यात्व को और पुष्ट कर दिया। मिथ्यात्व का पोषण हो गया। नहीं समझे ?

क्या होता है ? रास्ते में चलते-चलते वहां बहुत गंदगी थी, कोई बच्चा फिसल गया और उसे चोट लग गयी। हमारे बच्चे तो सयाने हैं। उसने क्या किया ? घर आते ही बिना साफ किये जख्म पर बँडेज लगा दिया। क्या होगा ? इन्फेक्शन होगा, गॅंग्रीन

होगा। क्यों ? क्योंकि अंदर इन्फेक्शन हुआ है उसमें सेप्टिक होगा, नहीं समझे ? अगर जख्म धो देते, कुछ साफसूफ करते तो गंदगी निकल जाती। उसको वैसे ही रखा और ऊपर बंद कर दिया यानी जंतुओं को पनपने के लिये उनको प्रोटेक्शन दिया। ऐसे मिथ्यात्व तो अंदर पड़ा है और उसको प्रोटेक्शन दिया। कैसे ? व्रतादिक करके। केवल व्रतादिक करने से नहीं, उसका निषेध नहीं है परंतु मान लिया। क्या मान लिया ? अभी हम मोक्षमार्ग पर हैं। हम कुछ धर्म की क्रिया कर रहे हैं, हम धार्मिक हो गये हैं। यह मान्यता है न ? वह मान्यता इटसेल्फ मिथ्यात्व है।

पहले से मिथ्यात्व चल ही रहा था और ऐसे कुछ पुण्य परिणाम किये और मान लिया कि अभी मैं आगे बढ़ा हूं। तो मिथ्यात्व टालने का, सम्यक्त्व प्राप्ति का पुरुषार्थ वह छोड़ देगा। मिथ्यात्व और पुष्ट होगा क्योंकि संतुष्ट होकर बैठा है कि मैं तो ये सारी क्रिया कर रहा हूं न, पुण्य तो है न। उसको पुण्य की महिमा है, परंतु पुण्य भले हीन जाति का हो या उच्च जाति का हो, वह बंध का कारण है, वह मुक्ति का कारण नहीं है। तत्त्वविचार में विकल्पात्मक बातें जो चल रही हैं वह तो राग है। राग है यानी पुण्य का राग है, शुभराग है। शुभराग से भी बंध हो रहा है, उससे मुक्ति नहीं होगी। विकल्प करने से निर्विकल्प अवस्था नहीं होगी। राग से वीतरागता नहीं होनेवाली है। राग छूटकर, विकल्प छूटकर जब अपने आत्मा में स्थित हो जायेगा तब उसको आत्मा का अनुभव होगा। हमने राग करके, विकल्प करके उसमें समाधान माना है।

हमने तो ध्यान कर दिया। हम रोज एक घंटे तक ध्यान करते हैं। कैसा ध्यान करते हैं ? वह सविकल्प है। विकल्प है वह राग है। वह आत्मा की अनुभूति नहीं है। ध्यान करने का निषेध नहीं है, उसमें संतुष्ट होकर बैठने का निषेध है। लोग आधा-अधूरा सुनते हैं न - देखो, यह तो इसका निषेध करते हैं। निषेध किस बात का करेंगे और दूसरों का निषेध करके हमें क्या मिलेगा ? हम कहां अटके हैं, कहां भटके हैं, कहां रुके हैं उसको हमें देखना है। हमें अपना कल्याण करना है। दुनिया का जब होना है वह उनके अपने से होगा। हम किसीका कुछ कल्याण कर नहीं सकते। परंतु मान कर बैठते हैं। यह संतुष्ट होकर बैठने की बात है।

अभी समय हो गया, अभी हम रुकते हैं। बाकी चर्चा १५ मिनट के बाद करेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२०. करणलब्धि

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका लिखी है और उसके आधार से ही हम यहां प्रथमोपशम सम्यक्त्व से पहले होनेवाली पांच लब्धि की चर्चा कर रहे हैं। अभी तक हमने क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि और प्रायोग्यलब्धि की बात देखी। प्रायोग्यलब्धि में कर्मों की अवस्थाओं की बहुत सारी चर्चा हमने की। परंतु ये सारी बातें जीव की बढ़ती हुयी विशुद्धि को बतानेवाली हैं।

सबको आकुलता हो रही है कि हमारी करणलब्धि होगी कि नहीं होगी ? हम आगे बढ़ते हैं देखो- पांचवीं करणलब्धि भव्यों के ही होती है, परंतु भव्य है इसलिये होगी ही ऐसा नहीं है। होगी तो जीव के पुरुषार्थ के द्वारा होगी। पुरुषार्थ भी होता है काललब्धि भी होती है, पांचों ही समवाय सब इकट्ठे पाये जाते हैं। पुरुषार्थ करेगा और वहां कर्मों का उपशम नहीं होगा तो ? निमित्त वहां स्वयमेव होगा। जीव ने पुरुषार्थ किया और कर्म उपशमित होने से रुक गये, भूल गये तो ? ऐसा नहीं होता है। वहां ये सभी बातें सहज होती ही होती हैं। इसलिये हमें उसकी चिंता करने की या व्यग्र होने की जरूरत नहीं है। भव्य होने पर भी कोई जीव बस प्रायोग्यलब्धि तक आकर वापस लौटेंगे या कोई करणलब्धि भी प्रकट करेंगे।

हम पढ़ते हैं पृष्ठ १०७, दूसरा पैरेग्राफ- **भव्य जीवों में से कुछ जीव करणलब्धि प्राप्त करेंगे अथवा कितने ही जीव नहीं भी करेंगे।** करण का अर्थ क्या होता है ? करण परिणाम को भी कहते हैं; करण साधन को भी कहते हैं; कर्ताकारक, कर्मकारक, करणकारक होते हैं न ? करण इन्द्रियों को भी कहते हैं जैसे अंतःकरण यानी मन। यह करण है न - बाह्यकरण हैं इन्द्रियां और मन अंतरंगकरण है। ऐसे ही गणित के फॉर्म्युले होते हैं उनको भी करण कहते हैं। यहां करणलब्धि यानी जीव के परिणामों की विशेष बातें हैं। उसमें कर्मों की क्या-क्या अवस्थाएं होती हैं उसकी भी हम यहां चर्चा करेंगे। कितने ही जीव करणलब्धि में प्रवेश नहीं भी करेंगे। **उन जीवों में** यानी भव्य जीवों में **पात्रता होने पर भी उपादानगत योग्यतानुसार,** यानी किस समय वह कार्य होना है उसकी योग्यता उस द्रव्य में पड़ी है। **पुरुषार्थानुसार, भवितव्यतानुसार और काललब्धि अनुसार जो जीव अंतर्मुहूर्त में सम्यक्त्व प्राप्त**

करनेवाले हो वे ही जीव करणलब्धि में प्रवेश करेंगे अर्थात् उनके करणलब्धि होगी। प्रवेश करना यह कथन पद्धति है। यानी उनके वैसे परिणाम होंगे। आत्मसन्मुख परिणाम के बिना, उसमें स्थिर हुये बिना ये बातें प्रकट नहीं होंगी।

वहां निमित्तरूप से अब यहां किसका निमित्त लेना ? **कर्म का उपशम** क्योंकि करणलब्धि में दर्शनमोहनीय का उपशम होने के पूर्व वहां कुछ विधान चलते हैं। उपशमित करने का कार्य बाद में होगा। उपशम होने पर औपशमिक सम्यक्त्व प्रकट होगा यानी यहां निमित्तरूप से कर्म की अवस्था बतायी है। उपशमित होने का कार्य यहां शुरू होगा। वह भी **कर्म में स्वयं की उपादान योग्यता से स्वयमेव होगा।** जीव उसमें कुछ नहीं करता, जीव का कार्य तो अपने में चल रहा है। कर्मों में स्वयमेव अपने आप होनेवाली बातें हैं। **शास्त्र में काललब्धि की अपेक्षा से** - देखो, यह बात हमने कल देखी थी। कहीं काललब्धि की अपेक्षा से बात करते हैं कि उसकी काललब्धि आयी तो उसको सम्यग्दर्शन हुआ। पुरुषार्थ की मुख्यता से कहेंगे कि इसने पुरुषार्थ किया इसलिये हुआ। यानी पुरुषार्थ किया और काललब्धि नहीं आयी ऐसा भी नहीं होगा। काललब्धि आ गयी है और पुरुषार्थ के बिना हुआ, ऐसा भी नहीं है।

सभी बातें होती हैं- काललब्धि भी है, उस समय की पर्याय भी निश्चित है। उसीको होनहार भी कहेंगे और वह पुरुषार्थ से ही होगी। उसकी उपादानगत योग्यता भी वहां पड़ी है, उसको स्वभाव में ले लेंगे और कर्म का उपशम भी उस समय पाया ही जायेगा, तो उसको निमित्त में लेंगे। पांचों ही कारण-समवाय यहां होते ही हैं। हां, हम कथन किसी एक की मुख्यता से कर सकते हैं परंतु बाकी सब कारण वहां है ही ऐसा समझना चाहिये। **शास्त्र में काललब्धि की अपेक्षा से** - उसकी मुख्यता से कथन करते हैं तब कहा जाता है कि जिसकी काललब्धि आयी हो उसीको सम्यक्त्व प्रकट होगा। कथन किसी एक समवाय की अपेक्षा से किया हो, तो भी वहां पांचों ही समवाय का सुमेल होता है। उपदेश में पुरुषार्थ करने की प्रेरणा देते हुये पुरुषार्थ की मुख्यता से कथन किया जाता है कि जो जीव मोक्ष का पुरुषार्थ करेगा - मोक्ष का उपाय करेगा, उसके पांचों ही समवाय उपस्थित रहते हैं और उसका मोक्षमार्ग प्रारंभ होता है।

क्या कहा ? मोक्ष का पुरुषार्थ करके मोक्ष होता है यह नहीं कहा, मोक्षमार्ग

प्रारंभ होता है कहा। **देखो, यहां सम्यक्त्व का पुरुषार्थ न कहकर मोक्ष का क्यों कहा ?** हम किसीको पूछते हैं कि आप कौनसा पुरुषार्थ करेंगे ? मोक्ष का कि सम्यक्त्व का ? तो कहते हैं सम्यक्त्व का पुरुषार्थ न कहकर **मोक्ष का पुरुषार्थ कहा है।** क्योंकि कोई भिन्न-भिन्न पुरुषार्थ नहीं है, वही पुरुषार्थ है। अपना स्वरूप जैसा है वैसा स्वीकार करके - तत्त्वनिर्णय करके उसीमें स्थिर होना यही पुरुषार्थ है। मोक्ष के लिये कुछ अलग पुरुषार्थ, मुनि होने के लिये कुछ अलग पुरुषार्थ और सम्यक्त्व के लिये कुछ अलग पुरुषार्थ - ऐसा है ही नहीं।

देखो, सम्यक्त्व का पुरुषार्थ न कहकर मोक्ष का पुरुषार्थ कहा है। तत्त्वनिर्णय करके, स्व और पर का भेदविज्ञान करके, अभेद अखंड त्रिकाली ध्रुव निज शुद्धात्मा को निजरूप से जानते रहना यही पुरुषार्थ है। इस भेदविज्ञान द्वारा ही सम्यक्त्व प्राप्त होता है, इसीके द्वारा ऊपर के गुणस्थान प्राप्त होते हैं क्योंकि भेदविज्ञान चलता रहेगा कि नहीं चलता रहेगा ? और केवलज्ञान भी इसी के द्वारा प्राप्त, **प्रकट होता है।** शास्त्र में आता है न, भावयेत् भेदविज्ञानं इदं अछिन्न धारया। कब तक ? तावद् यावद् पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठति। ज्ञान जो ज्ञान में कायम के लिये प्रतिष्ठित हो जाये, स्थिर हो जाये तब तक भेदज्ञान का पुरुषार्थ करना। भेदविज्ञान से ही सम्यक्त्व होगा, भेदविज्ञान से ही मुनिपना होगा, भेदविज्ञान से ही केवलज्ञान हो जायेगा। यह समयसार कलश में है, हम अपनी ओर से नहीं बता रहे हैं।

यही मोक्षमार्ग प्रकट करने की विधि है। इसलिये केवली भगवान ने हमारा सम्यक्त्व जब होनेवाला है जाना है, तभी होगा तो फिर पुरुषार्थ करने का उपदेश क्यों देते हैं ? ऐसे प्रश्न उठते हैं। अथवा केवली भगवान ने हमारी भविष्य की पर्यायें जैसी होनेवाली हैं वैसी जानी हैं, इसलिये वे उसीप्रकार होगी ही। तो फिर हमारा पुरुषार्थ क्या रहा ? उन्होंने जाना तो हम पराधीन हुये ऐसा जीव ने मान लिया। हम तो पराधीन हो गये आदि प्रश्न तथा मान्यतायें भूल भरी हैं। यह बात तुम्हारे ख्याल में आ गयी होगी। तुमने इस बात का आश्चर्य व्यक्त किया था कि भव्य जीवों के समान अभव्य जीवों के भी प्रायोग्यलब्धि हो सकती है और उनके कर्मों में भी स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात, स्थितिबंधापसरण, प्रकृतिबंधापसरण आदि सभी बातें होती हैं। हमने पूरी लिस्ट देखी न ! कहते हैं कि शुभभाव तो अभव्य और भव्य दोनों को होते हैं और उनके निमित्त से प्रशस्त

कर्मों का बंध होता है। परंतु भव्य जीव भी यदि प्रायोग्यलब्धि तक आकर स्वभाव सन्मुखता का, तत्त्वनिर्णय का एवं तदनुरूप परिणमन का पुरुषार्थ नहीं करेंगे अर्थात् यदि उन्हें करणलब्धि प्राप्त नहीं होगी तो उन्हें भी सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होगी। योग्यता पड़ी है, फिर भी बिना पुरुषार्थ के तो सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होगी। तो पुरुषार्थ क्या है ? उसकी यहां बात की है।

जिस करणलब्धि का नाम तुमने अनेक बार सुना है और जिसके होने पर नियम से सम्यक्त्व होता ही है देखो, हमने देखा कि कोई जीव प्रायोग्यलब्धि से भी लौटकर वापस आता है। परंतु एक बार करणलब्धि शुरू हुयी, अभी एक ही करण किया और वापस लौटा ऐसा नहीं होगा। अब नियम से तीनों करण करके सम्यक्त्व लेकर ही आगे बढ़ेगा। तो कहते हैं कि जिसके होने पर नियम से सम्यक्त्व होता ही है और जिसके नहीं होने पर सम्यक्त्व हो ही नहीं सकता, उसका स्वरूप जानने के लिये तुम बहुत उत्सुक हो यह बात मैं जानती हूं। अब यह करण क्या है उसको देखते हैं। करण परिणाम को कहते हैं। पूर्वोक्त चार लब्धिपूर्वक जीव के परिणामों की विशुद्धि प्रतिसमय वृद्धिगत होती जाती है। देखो, यह तत्त्वज्ञान संबंधी निर्मलता हो रही है, अन्य किसी शुभभाव से ऐसी विशुद्धि नहीं होती।

चारों गति के और त्रिकालवर्ती समस्त जीव कि जो करणलब्धि में प्रवेश कर चुके हैं, क्या कहना चाहते हैं ? जिनकी करणलब्धि शुरू हुयी है। किसीने पांच मिनट पहले प्रारंभ की है, किसीने करोड़ों साल पहले की है, किसीने अनंतकाल पहले की है। यह बात केवली के ज्ञान में आयेगी कि नहीं आयेगी ? भविष्य में जो करनेवाले हैं उनकी बात केवली के ज्ञान में आयेगी कि नहीं आयेगी ? तो उनके पहले समय में कैसे परिणाम हैं ? दूसरे समय में, तीसरे समय आदि में कैसे परिणाम हैं ? कितने जीवों के ? अनंतों के। अनादि से अनंतकाल तक जो-जो जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करने जा रहे हैं, उन सभी जीवों के परिणाम कैसे हैं, इसका ज्ञान, इसकी तुलना वे जान सकते हैं कि नहीं ? वह सब एक समय में उनके ज्ञान में आता है। नहीं समझे ?

जैसे क्रिकेट मॅच चलती है। उसके वह क्या ? श्रोता: स्कोरकार्ड बनते हैं चार्ट बनते हैं। वे सब चार्ट बनते हैं। किसके ? कि पूर्व में इस साल में ऐसा हुआ था, उस टीम ने एक ओवर में इतने रन किये थे। फिर अन्य किसीने इतने किये। भविष्य की

भी बातें आती हैं क्या उसमें ? नहीं ? भविष्य की नहीं आती, भूतकाल की आती हैं क्योंकि भूतकाल की जानी हुयी, उसके रेकॉर्ड हैं। इसलिये भूतकाल और वर्तमान की तुलना होती है। केवली के ज्ञान में तो तीन काल की सब बातें आती हैं। उनको मालूम है पहले समय में सबके परिणाम कैसे हैं जिसको हम तुलनात्मक कहेंगे। उनके ज्ञान में हैं कि सबके परिणाम कैसे हैं - किसीके कम विशुद्ध हैं, किसीके अधिक विशुद्ध हैं। वे दूसरे समय के परिणाम भी जानते हैं। तीसरे समय के परिणाम भी जानते हैं।

उनके ज्ञान में ऐसा भी है कि किसी जीव के पहले समय में जैसा विशुद्ध परिणाम है किसीके चौथे समय में इतनी विशुद्धि है। जहां तक हीनाधिकता हो सकती है; यहां ऊपर के और नीचे के समयों में जो परिणाम हैं, उन परिणामों में सदृशता हो सकती है। ऐसे जहां परिणाम हैं उसको पहला करण अधःप्रवृत्तकरण कहते हैं। आगे के अंतर्मुहूर्त में क्या होता है ? इस अपूर्वकरण में ऊपर और नीचे के समयों में परिणामों की सदृशता नहीं होगी। एक ही समय में परिणामों की रेंज हो सकती है, उसमें हीनाधिकता होगी। परंतु अपूर्वकरण के पहले समय से भी दूसरा समय शुरू हुआ तो किसी भी दूसरे समयवाले का कोई भी परिणाम पहले समयवाले परिणाम के साथ मॅच नहीं करेगा। उसके समान नहीं होगा, अनंतगुणा विशुद्ध ही होगा। हां, एक ही समय में जघन्य से उत्कृष्ट तक रेंज होगी। उस अंतर्मुहूर्त में होनेवाले परिणाम हैं उनको क्या कहेंगे ? अपूर्वकरण के परिणाम।

तीसरे अंतर्मुहूर्त में क्या होता है ? एक समय का एक परिणाम। कितने जीवों के लिये ? अनंतों के लिये। इसको कहेंगे अनिवृत्तिकरण। अनिवृत्ति यानी ? अनादि से अनंतकाल तक जो-जो जीव अनिवृत्तिकरण में हैं, उनके परिणामों में अनिवृत्ति यानी कोई भेद नहीं हैं। हर एक जीव का हर एक समय का सुनिश्चित परिणाम होता है। तो उस अंतर्मुहूर्त के जितने समय हैं उतने प्रति समय का एक-एक परिणाम सुनिश्चित होगा। अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण तीनों को मिलकर करणलब्धि के परिणाम कहते हैं। पहला अंतर्मुहूर्त है उसका नाम है अधःकरण या अधःप्रवृत्तकरण, दूसरे अंतर्मुहूर्त का नाम है अपूर्वकरण और तीसरे अंतर्मुहूर्त का नाम है अनिवृत्तिकरण। यह नाम अनंत जीवों के परिणामों की तारतम्यता की अपेक्षा से हैं जो केवली के ज्ञान में आये हैं।

एक जीव की अपेक्षा बात करेंगे तो उसकी अपनी विशुद्धि तो हर समय बढ़ रही है। उसे अगर दूसरे के साथ तुलना नहीं करनी है तो उसमें क्या हो रहा है ? विशुद्धि बढ़ रही है। हां, उस विशुद्धि के कारण कर्मों में क्या-क्या कार्य होते हैं वह हम देखेंगे। परंतु इनके नाम ऐसे क्यों पड़े ? जुदे-जुदे जीवों के परिणाम कैसे-कैसे हो सकते हैं इस अपेक्षा से ये तुलनात्मक तीन नाम पड़े हैं। हमने अभी नाम तो देखे और ये क्रम से होते हैं। पहला अंतर्मुहूर्त है अधःप्रवृत्तकरण - वह बड़ा अंतर्मुहूर्त है। दूसरा कौनसा है ? अपूर्वकरण। वह अंतर्मुहूर्त उससे छोटा है, उसके संख्यातवें भाग है। आधा है कि वन थर्ड है उसकी चर्चा नहीं है। शास्त्र में संख्यातवें भाग इतना आता है।

श्रोता: संख्यातवां भाग वह जरा समझाना। बहुत लोग समझेंगे यह पल्य का संख्यातवां भाग होगा ? हां-हां, स्थितिबंधापसरण का प्रमाण यहां लिखा था प/नृ, इसको कहते हैं पल्य का संख्यातवां भाग, उसकी यह संदृष्टि है, सिम्बॉल है। शास्त्र में संख्यात, असंख्यात, पल्य, अनंत वगैरह के लिये अलग-अलग सिम्बॉल बनाये हैं इसको संदृष्टि यानी चिन्ह कहते हैं। इन चिन्हों के द्वारा असंख्यातों और अनंतों के बड़े-बड़े गणित किये जाते हैं। उसका सारा वर्णन भी चिन्हों के द्वारा किया जाता है। यह प यानी पल्य और नृ यानी संख्यात है। पल्य डिक्वाइडेड बाय संख्यात। यहां पल्य के संख्यातवें भाग से कोई संबंध नहीं है। ये तीन करण परिणाम प्रत्येक अंतर्मुहूर्त प्रमाण हैं। पहले अंतर्मुहूर्त से दूसरा अंतर्मुहूर्त उसके संख्यातवें भाग प्रमाण है। मान लो, उसके आधे प्रमाण हो या तीसरे भाग प्रमाण हो या चौथे भाग प्रमाण हो। उसीतरह दूसरे अंतर्मुहूर्त से तीसरा अंतर्मुहूर्त उसके संख्यातवें भाग प्रमाण है।

देखो, मुनि के भी, जो ऑलरेडि सम्यग्दृष्टि हैं और आत्मा का प्रचुर आनंद भी ले रहे हैं, उनके लिये भी करणानुयोग का विषय बहुत कार्यकारी है। उसके अभ्यास में रागद्वेष रहित होकर उपयोग की एकाग्रता होती है। इस विषय में एकाग्रता बहुत होती है और उसमें कोई रागद्वेष नहीं हो रहे हैं वही ध्यान है। सत्य बातें भगवान ने बतायी हुयी हैं उनको जानने में उपयोग सूक्ष्म होता है, वही उनके असंख्यातगुणा निर्जरा का कारण है। मिथ्यादृष्टि को करणानुयोग से क्या लेना-देना है ? उसकी निर्जरा नहीं होती ऐसा कहना ठीक नहीं। उसको भी करणानुयोग के अभ्यास से भेदज्ञान के लिये बहुत पुष्टि मिलती है। चारों ही अनुयोग वीतरागता की प्राप्ति और पुष्टि के लिये कार्यकारी हैं।

द्रव्यानुरयोग के सिद्धान्तों से तो हम आप सब परिचित हैं क्योंकि गुरुदेवश्री की वाणी हम रोज सुनते हैं। उसके साथ अगर करणानुरयोग का ज्ञान मिल जाये तो भेदज्ञान के लिये बहुत बल मिलेगा। जिन्होंने उसके अभ्यास की शुरुआत की है, जो हमारे साथ पढ़ते हैं वे तो जानते ही हैं कि उसका कितना महत्व है। ये शिबिर वगैरह भी इसलिये रखते हैं कि इन शब्दों के अर्थ भासित हो जाये। हमें भी भासित नहीं होते थे परंतु बारंबार- बहुत बार अभ्यास होने के कारण इनके अर्थ स्पष्ट हुये हैं। करणलब्धि शब्द तो द्रव्यानुरयोग में भी आता है परंतु वह क्या है मालूम नहीं है। करणलब्धि करना यानी क्या करना ? कुछ नहीं करना है। जीव को तो तत्त्वविचार, तत्त्वनिर्णय करना है। तब ये अपने आप होनेवाली बातें हैं। जब इनके बारे में कोई संदेह नहीं रहता है, कोई शंकायें नहीं रहती हैं तो बिलकुल निःसंदेह तत्त्वविचार में अपना मन लग जाता है।

आगे बढ़ते हैं- पृष्ठ १०८, लास्ट पैरेग्राफ- **करण परिणाम को कहते हैं। पूर्वोक्त चार लब्धिपूर्वक जीव के परिणामों की विशुद्धि प्रतिसमय वृद्धिगत होती जाती है।** एक जीव की अपेक्षा बात करेंगे तो क्या है ? उसकी विशुद्धि प्रतिसमय अनंतगुणा-अनंतगुणा बढ़ती है। **चारों गति के और त्रिकालवर्ती समस्त जीव, कि जो करणलब्धि में प्रवेश कर चुके हैं, उन जीवों के परिणामों की तुलना करने पर उनमें तीन प्रकार पाये जाते हैं। देखो, केवली भगवान तो सभी द्रव्य गुण पर्यायों को जानते हैं। कैसे जानते हैं ? युगपत् स्पष्ट जानते हैं। अनंत जीवों के अनादि अनंतकाल के प्रतिसमय के परिणामों को वे एक साथ जानते हैं।**

पूर्व में जिन जीवों ने करणलब्धि के परिणाम किये थे, वर्तमान में जो कर रहे हैं और भविष्य में जो जीव करेंगे, उन सभी जीवों के परिणामों को केवली भगवान युगपत् जानते हैं। प्रत्येक जीव के परिणामों की विशुद्धि प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ती है। एक-एक जीव की अपेक्षा देखेंगे तो परिणामों की विशुद्धि अनंतगुणा-अनंतगुणा बढ़ती है। **परंतु भिन्न-भिन्न जीवों के परिणामों में समानता या असमानता होने की अपेक्षा** क्योंकि उसी विशुद्धि के साथ करणलब्धि में प्रवेश करते हैं ऐसा नहीं। किसीकी कम विशुद्धि के साथ करणलब्धि शुरू हुयी, किसीकी अधिक विशुद्धि के साथ करणलब्धि शुरू हुयी यह हो सकता है। अलग-अलग असंख्यात लोकप्रमाण परिणामों के साथ करणलब्धि शुरू हुयी है यह हो सकता है। केवली के ज्ञान में वे बातें आयी हैं और उनकी वाणी के अनुसार उसका वर्णन शास्त्र में आता है।

भिन्न-भिन्न जीवों के परिणामों में समानता या असमानता होने की अपेक्षा से इन परिणामों के तीन भेद किये जाते हैं। उन परिणामों के या तीन करण के नाम इसप्रकार हैं- करण यानी परिणाम। ये कौनसे तीन करण हैं ? मैं एक-एक नाम लूंगी, आपको रिपीट करना है। अधःप्रवृत्तकरण, श्रोता: अधःप्रवृत्तकरण। अपूर्वकरण, श्रोता: अपूर्वकरण। और अनिवृत्तिकरण। श्रोता: अनिवृत्तिकरण। ये तीन नाम हैं। इसप्रकार चार लब्धिपूर्वक जीव का उपयोग जीव का उपयोग किसमें लगेगा ? अपनी ओर जब निजशुद्धात्मा की ओर लगता है, तब क्रम से अधःप्रवृत्तकरण अर्थात् अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण परिणाम होते हैं। इसे करणलब्धि कहते हैं। अब उसने अपना लक्ष शुद्धात्मा में लगा दिया, उसमें स्थिर होगा अंतर्मुहूर्त तक, तब जाकर आत्मा की अनुभूति होगी।

करणलब्धि का काल एक अंतर्मुहूर्त होता है, तीनों करणों का काल भी अपना-अपना एक-एक अंतर्मुहूर्त होता है। अंतर्मुहूर्त के व्हेरिएशन्स बहुत हैं। तीनों मिलकर भी बड़ा अंतर्मुहूर्त होगा। उसमें एक-एक का काल भी अंतर्मुहूर्त है। तथापि अनिवृत्तिकरण का काल सबसे अल्प है, अगर अधःप्रवृत्तकरण की ओर से बात करेंगे तो उसका काल सबसे बड़ा है, अपूर्वकरण का उससे छोटा है, अनिवृत्तिकरण का उससे छोटा है। यहां छोटे से बात शुरू की। अनिवृत्तिकरण का काल सबसे अल्प है। अपूर्वकरण का काल उससे संख्यातगुणा बड़ा है और अधःकरण का काल उससे भी संख्यातगुणा बड़ा है। उलटा कहना है तो संख्यातवें भाग कहेंगे। श्रोता: अभी तक जीव की सविकल्प अवस्था है ? अभी वह सविकल्प से निर्विकल्प नहीं हुआ है। परंतु उसने शुद्धात्मा में स्थिरता कर दी है। उसे बुद्धिपूर्वक सविकल्पता भी नहीं कह सकते। द्रव्यानुयोग की भाषा जुदी है, करणानुयोग की भाषा जुदी हैं। अभी तो केवल हमें शांति से यह करण की भाषा में ही यह विषय समझना चाहिये। जिसे शुद्धोपयोग कहेंगे वह द्रव्यानुयोग की भाषा जुदी है, करणानुयोग की जुदी है। स्वयं पं. टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक में भी बताया है। हम उसकी भी चर्चा करेंगे।

सर्वप्रथम तीनों करणों का स्वरूप एवं विशेषता देखकर पश्चात् उस पर सविस्तार चर्चा करेंगे। पहले हम संक्षेप में तीनों की परिभाषा देखेंगे। फिर एक-एक करण में, जीवों की और कर्मों की भी डिटेल् में क्या-क्या बातें होती हैं उसकी चर्चा बाद में करेंगे। तीनों के नाम हमने देखे न ? तो ऐसे नाम क्यों पड़े उसकी यहां चर्चा

होगी। जैसे हमने पहले प्रायोग्यलब्धि में कर्मों में क्या-क्या होता है देखा था, वैसे ही यहां कर्मों में क्या-क्या बातें होती हैं ? उसकी भी चर्चा करेंगे।

देखो, **अधःप्रवृत्तकरण मांडकर** यानी जिसकी अधःकरण की शुरुआत हुयी है **जिसे अधिक समय हुये हैं**, मान लेते हैं कि किसीके तीन समय, चार समय, दस समय हुये हैं, **ऐसे ऊपर के समयवर्ती किसी जीव के परिणाम** अभी यहां ऊपर का समय, नीचे का समय का अर्थ क्या है ? अधःकरण शुरू हुआ है, कोई पहले समय में है, कोई चौथे समय में है, कोई दसवें समय में है। कोई बहुत ऊपर चला गया है। जिसको शुरू करके अधिक समय हुये हैं उसको कहेंगे ऊपर के समयवर्ती जीव। फिर से, **अधःप्रवृत्तकरण मांडकर** यानी शुरू करके **जिसे अधिक समय हुये हैं, ऐसे ऊपर के समयवर्ती किसी जीव के परिणाम** भिन्न-भिन्न अनेक जीवों की तुलना कर रहे हैं। और **अधःप्रवृत्तकरण मांडकर थोड़े ही समय हुये हैं ऐसे निचले समयवर्ती कुछ जीवों के परिणाम** सब जीवों के नहीं। कुछ जीवों के परिणाम इनमें **संख्या और विशुद्धता की समानता हो सकती है। इसे अनुकृष्टी रचना कहते हैं।** यह संख्या और परिणाम का अर्थ यहां बिलकुल भासित नहीं होगा। फिर भी जब हम उसके डिटेल देखेंगे तब फिर उसकी चर्चा करेंगे।

अभी तो किसीका नीचे के समय में जो परिणाम है वैसा ही परिणाम किसीको चौथे, पांचवें आदि समयों में हो सकता है। इतनी ही बात हमें यहां देखनी है। इसमें और डिटेल हम बाद में देखेंगे। अब यहां क्या-क्या बातें होने जा रही हैं, उसकी भी बाद में चर्चा करेंगे। पहले उनके नाम गिनायेंगे। **यहां चार आवश्यक होते हैं। आवश्यक का क्या अर्थ है ? नियम से होनेवाली बातों को आवश्यक कहते हैं। वे इस प्रकार हैं-** पहले तो तुलना करके क्या होता है वह बात बतायी कि ऊपर के समयवर्ती जीवों के परिणाम की किसी नीचे के समयवर्ती जीवों के परिणाम के साथ समानता हो सकती है। बस इतनी सी बात बतायी है।

अब कहते हैं जीव में क्या हो रहा है और उसके निमित्त से कर्मों में क्या हो रहा है ? **(१) विशुद्धि समय-समय प्रति अनंतगुणा बढ़ती है।** समय-समय प्रति यानी प्रतिसमय। एक समय में जितनी विशुद्धि है, दूसरे समय में उससे अनंतगुणा, तीसरे समय में उससे भी अनंतगुणा होती है। दूसरी बात **(२) स्थितिबंधापसरण होता है।**

स्थितिबंधापसरण तो शुरू हुआ था, वह यहां भी चलता है। यहां स्थितिबंध में और कटौती होकर और छोटा स्थितिबंध होता रहेगा। तीसरी बात अनुभाग संबंधी **(३) प्रशस्त प्रकृतियों में प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ता हुआ चतुःस्थानगत अनुभागबंध होता है।** चतुःस्थानगत तो पहले प्रायोग्यलब्धि में भी हुआ था। परंतु उससे भी अनंतगुणा बढ़ता हुआ। चतुःस्थानगत में भी अनंत स्पर्धक होते हैं। तो उसमें और अधिक, और अधिक, और अधिक अनुभागवाले स्पर्धकों का बंध होगा। बंध की बात है और चौथा पॉइंट कौनसा है ? **(४) अप्रशस्त प्रकृतियों में प्रतिसमय अनंतगुणा घटता हुआ द्विस्थानगत अनुभागबंध होता है।** द्विस्थानगत तो हमने प्रायोग्यलब्धि में भी देखा था। यहां विशुद्धि और बढ़ती जा रही है, इसलिये प्रतिसमय द्विस्थानगत है परंतु और अनंतगुणा घटता हुआ अनुभागबंध हो रहा है।

अलग-अलग जीवों के विशुद्धि के परिणाम अलग-अलग होते हैं। किसीकी थोड़ी कम विशुद्धि है, किसीकी अधिक है और किसीकी और अधिक है। **तीनों काल के अनंत जीवों के करणलब्धि के परिणाम जिनेन्द्र भगवान ने प्रत्यक्ष जाने हैं और बताये हैं, जो असंख्यात लोकप्रमाण हैं।** हमने देखा था यह लोक क्या है ? एक यूनिट है। असंख्यात को बताने के लिये यह यूनिट बताया है। लोक में जितने प्रदेश हैं उतनी संख्या बतानी है, हमें लोक से कोई मतलब नहीं है। लोकप्रमाण कहेंगे तो उतने भेद होंगे। परंतु यहां क्या बताया है ? असंख्यात लोक। यानी लोक में प्रदेशों की जो संख्या होती है उसको भी असंख्यातगुणा करो - इतने क्लेरिफिकेशन; किसके ? विशुद्धि के। इतनी अलग-अलग विशुद्धि के साथ करणलब्धि शुरू हो सकती है।

लोकाकाश में जितने असंख्यात प्रदेश हैं उस संख्या को एक लोक कहते हैं और उसे सहनानी या चिन्ह द्वारा बताना हो तो $\equiv$ ऐसा बताते हैं। ऐसे १ लोक, २ लोक, ३ लोक, करोड़ लोक ... ऐसे असंख्यात लोक बताने के लिये $\equiv$ ऐसा चिन्ह लिखते हैं। असंख्यात लिखा राईट साइड में और लेफ्ट साइड में तीन आड़ी लाइन्स लिखी हैं। असंख्यात लोक पढ़ते समय राईट से लेफ्ट की तरफ पढ़ते हैं। नहीं समझे ? चौरासी कैसे लिखते हैं ? अंग्रेजी में पढ़ते समय एटी फोर बोलते हैं - लिखते समय भी, पहले आठ लिखते हैं बाद में चार लिखते हैं। और हिंदी, मराठी, गुजराती में कैसे बोलते हैं ? चौरासी। पहले चार का नाम लेते हैं, फिर आठ का। अंकों की उलटी गति होती है। अंकानां वामतो गति। अक्षर हम लेफ्ट से राईट लिखते और पढ़ते हैं और

अंक लेफ्ट से राईट लिखते हैं और राईट से लेफ्ट पढ़ते हैं। नहीं समझे ?

देखो, अंग्रेजी में क्या कहेंगे ? फोर्टी फाईव्ह। पहले चार कहा, फिर पांच कहा। हम हिंदी में कैसे कहेंगे ? पैतालीस। पहले पांच कहा, फिर चालीस कहा। लिखते समय हम चार लेफ्ट साइड में लिखेंगे और पांच राईट साइड में लिखेंगे। तो असंख्यात लोक कैसे लिखेंगे ? लिखते समय पहले लेफ्ट साइड में लोक की साइन लिखी फिर राईट साइड में असंख्यात लिखा। इसको कैसा पढ़ेंगे ? असंख्यात लोक। ख्याल में आयी बात ? इतना आसान है। लोग कुछ फिगर देखते हैं तो डर जाते हैं। यह क्या होगा ? हमें समझता नहीं तो कठिन होगा ऐसा लगता है, है न। हमारे सुबह के स्वाध्याय में अभी पं. टोडरमलजी का अर्थसंदष्टि अधिकार चल रहा है। उसमें इन चिन्हों की भाषा में यानी संदष्टि में सारे विषय समझाये हैं।

अब अपूर्वकरण का स्वरूप देखते हैं। हम पहले संक्षेप में देख रहे हैं, बाद में एक-एक का स्वरूप हम बहुत विस्तार से देखनेवाले हैं। जैसे हमने प्रायोग्यलब्धि में भी देखा न, वैसे ही यहां कौनसे विधान होते हैं उसकी बात भी हम देखेंगे। **अपूर्वकरण:- यहां समय-समय प्रति** यानी प्रतिसमय, एव्हरी समय। **विशुद्धि के परिणाम अपूर्व-अपूर्व होते हैं।** यानी प्रत्येक जीव की विशुद्धि अभी भी प्रतिसमय अनंतगुणा-अनंतगुणा बढ़ रही है। **नीचे के और ऊपर के समयवर्ती परिणाम कभी भी समान नहीं हो सकते।** पहले अधःकरण में क्या था ? समानता हो सकती थी। होती ही है ऐसा नहीं है, हो सकती थी। कुछ जीवों के परिणाम आपस में समान हो सकते थे।

अब क्या होगा ? पहले समय का कोई परिणाम दूसरे समय के किसी भी परिणाम के समान नहीं होगा। दूसरे समय का परिणाम अनंतगुणा विशुद्ध ही होगा। पहले समय का उत्कृष्ट परिणाम और दूसरे समय का जघन्य परिणाम - इनमें भी अनंतगुणा का डिफरन्स होगा यह कहना चाहते हैं। परंतु एक समय में परिणामों की रेंज होगी। हां, एक समय में किन्हीं के परिणाम कम विशुद्ध हैं, किन्हीं के ज्यादा विशुद्ध हैं यह हो सकता है। परंतु दूसरे समय में वैसा परिणाम किसीका भी नहीं होगा। उसको कहेंगे अपूर्व। परिणाम अपूर्व-अपूर्व होंगे। कहते हैं **नीचे के और ऊपर के समयवर्ती परिणाम कभी भी समान नहीं हो सकते अर्थात् यहां अनुकृष्टी रचना नहीं होती।** नीचे और ऊपर के समय के परिणामों में समानता होने को ही

अनुकृष्टी रचना कहते हैं, वैसी बात यहां नहीं होगी। नीचे ऊपर यानी कोई पहले समयवाला है, कोई दूसरे, तीसरे, चौथे समयवाला है उनमें कोई सदृशता नहीं है। अन्य-अन्य जीवों की अपेक्षा बात है। एक जीव की अपेक्षा उसकी विशुद्धि अनंतगुणा बढ़ ही रही है। वह तो अधःकरण से ही शुरू हो गयी है, यहां भी चल रही है।

अधःप्रवृत्तकरण में होनेवाले चार आवश्यकों के साथ-साथ यहां चार आवश्यक और यानी एक्स्ट्रा **होते हैं।** पहले कौनसे देखे थे ? प्रतिसमय विशुद्धि अनंतगुणा बढ़ती है, स्थितिबंधापसरण होते हैं, अप्रशस्त प्रकृतियों में अनंतगुणा घटता हुआ और प्रशस्त प्रकृतियों में अनंतगुणा बढ़ता हुआ अनुभागबंध होता है। वे बातें तो यहां चल ही रही हैं। प्लस - इसके अलावा और क्या होता है ? (१) **गुणश्रेणी।** अभी हमें मालूम नहीं यह क्या होती है, हम पढ़ेंगे। (२) **गुणसंक्रमण,** (३) **स्थितिकांडकघात,** (४) **अनुभागकांडकघात।** ये बातें और होंगी। पहली चार तो होती ही हैं। ये चार बातें यहां और एक्स्ट्रा होंगी। **अधःप्रवृत्तकरण के परिणामों से भी यहां के परिणाम असंख्यात लोकगुणा हो जाते हैं।** नहीं समझे ? अलग-अलग जीवों के पहले एक समय में कितने परिणाम हो सकते हैं ? असंख्यात लोक। यहां कितने होंगे ? असंख्यात लोक गुणा असंख्यात लोक इतने व्हेरिएशन्स यानी अलग-अलग परिणाम हो जायेंगे। क्योंकि हर एक की विशुद्धि अनंतगुणा हुयी है। वह हीनाधिक हो सकती है। इसलिये इतने एक्स्ट्रा परिणाम यहां तैयार हो जाते हैं।

श्रोता: वह भी असंख्यात लोक ? उसको भी मिलकर असंख्यात लोक ही कहेंगे परंतु पहलेवाले से असंख्यात लोकगुणा हैं। यानी दो बार असंख्यात लोक लिखकर आपस में गुणा करो। **उपरोक्त सभी आवश्यकों का सविस्तार स्वरूप हम बाद में देखेंगे।** अभी यहां संक्षेप में तीनों के नाम और उनमें क्या-क्या कार्य होते हैं उसकी लिस्ट बता रहे हैं। फिर एक-एक विधान को बाद में समझेंगे। **उसके पहले अनिवृत्तिकरण का स्वरूप देखते हैं।** अनिवृत्तिकरण शब्द कैसे तैयार हुआ ? **निवृत्ति का अर्थ** होता है **परिणामों में भेद या असमानता। अनिवृत्ति यानी भेद या असमानता नहीं होना यानी समानता होना। त्रिकालवर्ती नाना जीवों के परिणामों में समानता।** उसका नाम क्या है ? अनिवृत्तिकरण।

यहां प्रत्येक समय के परिणाम अनंतगुणा विशुद्ध होते जाते हैं, फिर भी

सभी अनंत जीवों के एक-एक समय के परिणाम समान पाये जाते हैं। श्रोता: एक साथ सब जीवों की विशुद्धि समान होगी ? सब जीवों की प्रत्येक समय में समान। पहले समय से दूसरे समयवाले के अनंतगुणा विशुद्ध, परंतु सभी समान। तीसरे समय में उससे अनंतगुणा विशुद्ध, परंतु सबका एक समान। इसीको अनिवृत्तिकरण कहते हैं। श्रोता: यहां से लेकर ऊपर के सभी गुणस्थानों में सभी जीवों के समान ? गुणस्थानों में नहीं कहना, अभी करण में कहना। अगर हम श्रेणी की बात करेंगे तो वहां समानता होगी क्योंकि वहां गुणस्थान का ही नाम अनिवृत्तिकरण गुणस्थान है। वहां ऊपर के गुणस्थानों में सबके परिणाम समान है। यहां उसकी बात नहीं है।

यहां किस अपेक्षा से समानता है ? सम्यक्त्व प्राप्त होने के पहलेवाली विशुद्धि में यहां समानता है। योग में असमानता है। क्रोधादि के उदय में असमानता है। उनके शरीर की हाइट, बॉडी में असमानता है। गति, कषाय, लेश्या, वेद आदि औदयिक भावों में असमानता है। यहां उनकी बात नहीं है। यहां विशुद्धि यानी तत्त्वज्ञान संबंधी जो निर्मलता है वह सबकी समान हो जायेगी। अभी सम्यक्त्व प्राप्त करने का उसका समय आ गया है। श्रोता: परिणाम समान हैं तो सबका काल भी समान होना चाहिये ? काल समान ही होता है। यहां के अंतर्मुहूर्त सबके लिये बिलकुल समान अंतर्मुहूर्त हैं। तभी तो सबके परिणाम समान होंगे। नहीं तो कोई और विशुद्ध होते चला जायेगा और किसीके कम विशुद्धि में ही सम्यक्त्व होगा - ऐसा नहीं है।

यहां भी आयु बिना शेष सात कर्मों में गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात होते हैं। स्थितिकांडकघात प्रशस्त अप्रशस्त सभी कर्मों में होगा। अनुभागकांडकघात अप्रशस्त में ही होगा क्योंकि अनुभाग का घटना अप्रशस्तों में होता है। प्रायोग्यलब्धि में शुरुआत में एक ही स्थितिकांडकघात और एक ही अनुभागकांडकघात हुआ था, अपूर्वकरण से हर अंतर्मुहूर्त में स्थितिकांडकघात लगातार होते हैं। एक-एक स्थितिकांडकघात के काल में हजारों बार अनुभागकांडकघात होते हैं। सम्यक्त्व होता है तो अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग कितना सारा घटेगा ! अभी तो सम्यक्त्व नहीं हुआ है। जब मुनि हो जायेगा और श्रेणी चढ़ेगा तो अप्रशस्त कर्म नहीं के बराबर रह जायेंगे। ख्याल में आयी न यह बात ? हमने बहुत पाप किया हुआ है तो हमारा क्या होगा ? कुछ नहीं होगा। कर्म हमारे से जुदी वस्तु है, वह हमें कुछ नहीं कर सकती।

अनिवृत्तिकरण का संख्यात बहुभाग बीत जाने पर दर्शनमोहनीय कर्म का अंतरकरण और उपशमकरण होता है। अंतर कैसे होता है ? क्या होता है ? वह सब हम देखेंगे। अभी तक मिथ्यात्व के निषेक क्रम से हर समय उदयरूप होते थे। अभी बीच में ऐसा होगा कि कुछ निषेक नष्ट होकर गॅप तैयार होगी। जब तक निषेक उदय में आयेंगे तब तक मिथ्यात्व है और जब गॅप होगी तो वहां मिथ्यात्व नहीं है और यहां जीव ने सम्यक्त्व प्राप्त किया। ऐसी वहां अवस्था होनेवाली है। यह सहज होता है। नहीं तो अनादि से क्या हो रहा था ? मिथ्यात्व का उदय है। उदय है तो मिथ्यात्व का बंध भी है और जीव का मिथ्यात्व भी चल ही रहा है। अब तत्त्वविचार करते हुये तत्त्वनिर्णय तक पहुंचकर, आत्मस्थिरता द्वारा यह सारा कार्य होनेवाला है। कोई कर्म कहीं भी उसको रुकावट डालनेवाला नहीं है।

श्रोता: यहां पर आयु का बंध होगा ? प्रायोग्यलब्धि से आयु का बंध रुक गया है। यहां भी नहीं है। आगे प्रथमोपशम के काल में भी आयु का बंध नहीं होता, ना ही मरण होता है। यह कार्य चालू किया तो अभी मरण नहीं होगा। कहां तक ? उपशम सम्यक्त्व का काल समाप्त होने तक। **अब इन तीन करणों का स्वरूप विस्तार से देखते हैं।** इसमें हमने बहुत सारे नये-नये शब्द देखे। पहले में पहले तीन नाम कैसे पड़े उसकी चर्चा की। क्यों तीन नाम पड़े ? क्योंकि केवली भगवान के ज्ञान में तीन काल के यानी अनादि अनंत सभी जीवों के परिणाम एक समय में जाने जाते हैं। तो जो-जो जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पूर्व करणलब्धि में आये हैं उनकी बात उनके ज्ञान में है कि नहीं ? किसीने अनादिकाल पहले सम्यक्त्व प्राप्त किया था, कोई अभी वर्तमान में कर रहे हैं, कोई भविष्य में करेंगे। तो पहले समय में सभी जीवों के परिणाम कितने अलग-अलग टाइप के हो सकते हैं ? कितने व्हेरिएशन्स हो सकते हैं ? तो कहते हैं कि असंख्यात लोकप्रमाण। जीव कितने हैं ? *श्रोता:* असंख्यात। ना, अनंत। नहीं समझे ?

जैसे किसी बड़ी परीक्षा में दस लाख विद्यार्थी बैठे हैं। तो समान मार्कस् वाले दस लाख होते हैं क्या ? नहीं। उसमें कितने व्हेरिएशन्स हो सकते हैं ? सौ मार्कस् हैं, दस लाख विद्यार्थी हैं, तो मार्कस् के व्हेरिएशन्स कितने हो सकते हैं ? *श्रोता:* एक सौ एक/एक सौ एक - किसीको झिरो भी मिलेगा। झिरो को भी काउंट करो और वन, टू, थ्री से सौ तक को भी काउंट करो। दस लाख विद्यार्थी परीक्षा में बैठे हैं और मार्कस् के व्हेरिएशन्स कितने हैं ? एक सौ एक। ऐसे ही तीन काल के करण परिणामवाले जीव

कितने हैं ? अनंत। उनके व्हेरिएशन्स कितने हैं ? असंख्यात लोक। ख्याल में आयी बात ? हमें थोड़ा उदाहरण दे-देकर आगे बढ़ना है।

केवली के ज्ञान में उनके भेद आये हैं। उनमें वे कह सकते हैं न, यह पहले नंबर का विशुद्धि का परिणाम है। यह दूसरे नंबर का उससे थोड़ा ज्यादा विशुद्ध है। यह तीसरे नंबर का परिणाम है, यह चौथे नंबर का परिणाम है। उसमें ऐसे असंख्यात लोक प्रमाण नंबरिंग कर सकते हैं। उनके ज्ञान में वह है कि नहीं ? ये सब इतने परिणाम हैं, फिर आगे चलकर उनके भेद कैसे करना ? कैसे खण्ड करना ? उसकी बात करेंगे। संख्या और परिणामों में समानता हो सकती है यह बात समझने के लिये कुछ अलग उदाहरण देकर वहां समझाएंगे। **अब तीन करणों का स्वरूप विस्तार से देखते हैं। इसमें अनेक नये शब्द पढ़कर घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है। बारंबार सुनने या पढ़ने से हम किसी भी विषय से परिचित हो जाते हैं।**

हमारे घर में बच्चा पैदा होता है तो उसको सब लोग सामने क्या-क्या बातें सुनाते हैं ? उसकी मां, दादी, नानी, चाचा, मामा जो कोई हैं, बच्चे को कितना सुनाते हैं। उसकी बारात तक ले आते हैं। बारात में हाथी झुलेंगे और क्या-क्या ? सब कुछ। उस बच्चे के साथ जो कुछ बातें करते हैं तो बच्चा सीख जाता है न ? पांच, छह महीने में बाबा-मामा सब बोलना भी सीख जाता है। डेढ़-दो साल में इतनी बड़बड़-बड़बड़ चालू करता है कि अब चुप हो जाये तो अच्छा ऐसा लगता है। तो मुझे प्रश्न है - गुजराती बच्चे गुजराती कैसे बोलते हैं ? मराठी बच्चे मराठी कैसे बोलते हैं ? हमने पूना में शिबिर लिये थे, इ.स. १९९६, ९७, ९८ में। हर दो-ढाई महीने में हम शिबिर लेते थे। पूना में ऐसे ८-१० शिबिर किये थे। एक शिबिर में मुंबई की एक बहुत प्रतिष्ठित यानी समाजकार्य में अग्रेसर यानी सोशल वर्कर आयी थी। वह अपने को बहुत उच्च शिक्षित और प्रतिष्ठित मानती थी। तो यह विषय चल रहा था कि जो हम सीखते हैं, बारंबार पढ़ते हैं उसीको हम समझ सकते हैं। हमने वहां उस शिबिर में एक कहानी बतायी थी।

क्या कहानी बतायी थी ? हमें दो लड़कियां हैं, कोई लड़का नहीं है। बेटियां तो ब्याह करके पराये घर जानेवाली हैं। उस समय दोनों गयी भी थी। तो हमने नक्की किया कि एक लड़का गोद लेंगे। नहीं समझे ? 'आ बैल मुझे मार।' इस उमर में वह क्या हमारी मदद करेगा ? हमें ही उसका सब कुछ करना पड़ेगा। फिर भी हमने

निश्चित किया कि एक बच्चा गोद लेंगे। तो हम अनाथालय में गये। बहुत सारे बच्चों को देखा। हमें इंटेलिजेंट बच्चा चाहिये था। तो एक बहुत अच्छा बच्चा देखा, उसकी आंखों से पता चलता था कि यह बच्चा बहुत इंटेलिजेंट है। हमने निश्चित किया कि हम इसको गोद लेंगे। सब बातें निश्चित हुयी, बस एक समस्या थी। क्या थी ? वह साऊथ इंडियन बच्चा था। कन्नड भाषावाला। *श्रोता: हुबलीवाला था।* हुबलीवाला था, अच्छा ! तो फिर हमने नक्की किया कि हम किसी टीचर को बुलायेंगे, छह महीने तक हम कन्नड भाषा सीखेंगे, फिर उस बच्चे को गोद लेंगे। क्यों मंजू बराबर किया न ? नहीं ?

अरे, वह बच्चा हमारे घर में आता है तो हम जो बोली बोलते हैं वह सीखनेवाला है। कोई चिन्ह लेकर नहीं जन्मता कि यह गुजराती बच्चा है तो उसके साथ मराठी बात करेंगे तो वह गुजराती बोलेंगा। ऐसी कुछ बात है ? हमने उदाहरण दिया था कि भले शास्त्र के शब्द नये हैं, परंतु हम बार-बार सुनते हैं तो हम इनसे परिचित होते हैं और इन्हें जानने लगते हैं। वह विषय वहीं समाप्त हुआ। रात को १०:३० बजे वह बहन हमारे रूम पर आयी और पूछने लगी उस बच्चे का क्या हुआ ? वह सोशल वर्कर थी न ! कोई समस्या है तो मुझे बताना। लोग क्या सुनते हैं और उसमें से क्या अर्थ ग्रहण करते हैं ? यह उदाहरण था- ये कहानियां हम बनाते हैं न, वह विषय समझाने के लिये होती हैं। हम जो सुनते हैं उससे परिचित होते हैं। भले ही कठिन लगे - एक बार, दो बार, तीन बार सुनने में कठिन लगते हैं। बारंबार सुनने से, उस पर गौर से थोड़ा विचार करने से, वे क्या कहना चाहते हैं वे बातें जरूर ख्याल में आती हैं। इसलिये कोई निराश नहीं हो जावे कि यह बहुत कठिन है हमें कैसे समझेंगे ? हम पहले से ब्लॉक लगाते हैं यानी आगे पढ़ना नहीं चाहते। क्यों नहीं समझेंगे ? अरे, जरूर समझेंगे, पढ़ो।

इसमें अनेक नये शब्द पढ़कर घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है। बारंबार सुनने से या पढ़ने से हम किसी भी विषय से परिचित हो जाते हैं। मोना, तुमने ही तो बताया था कि रोज तुम रिया को छह द्रव्य, सात तत्त्व, इन्द्रियां, पाप, कषाय आदि के नाम सिखाती हो। मोना पाठशाला लेती थी न, औरंगाबाद में। पांच साल की रिया जब कषायों के नाम बताते हुए क्रोध, मान कहकर रुक गयी तो पौने दो साल का सोहम उसकी तोतली भाषा में झट से बोला माया और लोभ। अभी भले वे बच्चे हैं, हमें पता ही नहीं कि बच्चे सुन रहे हैं, समझ रहे हैं, पूछ रहे हैं। मन ही मन रटन चल रहा होगा। छोटी उमर में उनकी बुद्धि ज्यादा काम करती है।

अभी तो यह सायन्स ने भी सिद्ध किया है। उस उमर में सर्वाधिक ग्रास्पिंग पॉवर - आकलन शक्ति होती है, बाद में वह कम हो जाती है। तब मोना, तुम स्वयं आश्चर्यचकित हो गयी थी और अब रोज दोनों ही बच्चों को सिखाती हो।

छोटे बच्चों की आकलन तथा निरीक्षण शक्ति तीक्ष्ण होती है, बड़ों का अनुकरण करने की वृत्ति उनमें पायी जाती है। घर में मां-बाप जैसे बोलते हैं, आचरण करते हैं, बच्चे उनका निरीक्षण करते हैं और उनकी बातें बच्चे सीख जाते हैं। रीना, सात और पांच साल के तेरे रोहित और रोहन तेरे से स्वाध्याय की बातें तो सीखते ही हैं, साथ-साथ कुदेवादिकों को नहीं मानना, अभक्ष्यभक्षण नहीं करना, बाजार के केक आदि न खाना इस संबंध में भी वे बहुत चुस्त हैं। किसीके पार्टी में गये तो जोर से पूछते थे, मम्मी इसमें अंडा है क्या ? किसीके घर पर कोई नया पदार्थ खाने का प्रसंग आ जाये तो पहले पूछते हैं, मम्मी, क्या तुम यह पदार्थ खा सकती हो ? यदि हां, तो ही हम खायेंगे। मैंने अमेरिका में देखा है- वहां पेरेंट्स बच्चों को सब सिखाते हैं। पेरेंट्स तो करेंगे ही परंतु वहां के स्कूलटीचर्स भी इतना ध्यान रखते हैं कि उन बच्चों को क्या देना, क्या नहीं देना। उनके कैंड्रीज या मिठाई, मिठाई यानी उनकी जो चॉकलेट्स वगैरह हैं न, उनके कैंड्रीज पढ़कर फिर वह बच्चे को देना कि नहीं देना, यह पूरी जिम्मेदारी वहां के टीचर्स अच्छी तरह से निभाते हैं।

हमने यह भी देखा था- वहां हॉलोवीन का दिन था और स्कूल में हर क्लास में बहुत सारी टॉफीज वगैरह बांटते हैं। तो मेरे भाई के लड़की की लड़की, इतनी ढेर सारी टॉफी चॉकलेट्स घर में ले आयी। फिर उसने पूछा मम्मी, इसमें से कौनसी खाने के लायक है ? उनमें से केवल दो निकली। बाकी पूरा इतना भरा हुआ बैग सब उसने गार्बेज में डाल दिया। यानी वहां के बच्चे बहुत समझदार हैं। वहां के हो या यहां के - अगर हम एक बार उनको ये बातें बताते हैं तो अपने से ज्यादा चौकन्ना रहकर वे उसको आचरण में लाते हैं। हम ही नहीं चाहते हैं न ! मां-बाप ही पहले कतराते हैं कि क्या करें ? क्या करें ? ऐसा नहीं है। अगर उन्होंने एक बार बच्चे को बता दिया तो उस उम्र में जो ग्रहण करते हैं तो उनका बिलकुल पक्का रहता है। बच्चों पर सुयोग्य संस्कार करना यही उनके हित की बात है। यही उनके लिये उत्तम धन है।

अभी आगे बढ़ते हैं, वहां तो इतना ही बताया था कि अपने बच्चों के साथ अन्यों

को भी पढ़ाना चाहिये - जिसको जो आता है। दूसरों को पढ़ाना, वह अपना स्वाध्याय है। हम दूसरों को नहीं पढ़ा रहे हैं। यह अपने लिये स्वाध्याय है। हमें कुछ नहीं आता यह विकल्प मत करना। मुझे भी कहां अधिक ज्ञान है ? मेरे अल्पज्ञान में जो कुछ आया है, उसे शास्त्रानुसार लिखने का विकल्प आता है, उसमें मेरा ही गहरा चिंतन होता है। बोलने में या लिखने में उपयोग की इतनी सूक्ष्मता होती है। दूसरों का उसमें जो कुछ भला होना है वह उनकी योग्यतानुसार होगा। यह अपने लिये अधिक कार्यकारी है क्योंकि बिलकुल एक धाराप्रवाह वह चिंतन चलता है। हो सकता है इसके निमित्त से तुम्हारी रुचि जाग्रत होकर तुम्हें मूल ग्रंथ पढ़ने की प्रेरणा मिले और ग्रंथों का अर्थ करने में तुम्हें सुलभता प्राप्त होगी।

तुम्हारा प्रश्न था कि तुम शुद्धोपयोग की तो बात ही नहीं कर रही हो, क्योंकि द्रव्यानुयोग सुनने की हमें आदत है, उससे हम युज्ज दू हैं। तो उसमें शुद्धोपयोग की बात तो आती है। यहां तो शुद्धोपयोग की बात ही नहीं उठायी है। मात्र करणपरिणामों के फलस्वरूप सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है ऐसा बारंबार कह रही हो, ऐसा क्यों ? अच्छा प्रश्न है। यहां हम करणानुयोग द्वारा परिणामों तथा कर्मों का सूक्ष्म वर्णन देख रहे हैं। प्रत्येक अनुयोग की भाषा अर्थात् वर्णन करने की पद्धति भिन्न-भिन्न होती है। मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रंथ में पं. टोडरमलजी इस विषय को इसप्रकार समझाते हैं- यह अवतरण चिन्ह में डाला है न, वह सारा पं. टोडरमलजी का है।

‘चरणानुयोग में बाह्य क्रिया की मुख्यता से समझाया जाता है, ऐसा करो, वैसा करो इसतरह से। पानी छानकर पीओ, सावधानीपूर्वक चलो कि किसी जीव की हिंसा न हो। यह चरणानुयोग की भाषा होती है। द्रव्यानुयोग में क्या कहेंगे ? एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता है। द्रव्यानुयोग में आत्मपरिणामों की मुख्यता से वर्णन किया जाता है और करणानुयोग में सूक्ष्म वर्णन किया जाता है। द्रव्यानुयोग में क्या लिखा है ? स्थूल निरूपण होता है। जब हमने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका की पीठिका पढ़ी थी उसमें आता है। द्रव्यानुयोग का पक्षपाती प्रश्न पूछता है कि करणानुयोग क्यों पढ़ना ? तो उसको बताया, हे सूक्ष्माभासबुद्धि ! यानी उसको सूक्ष्म का आभास हुआ है। मुझे बहुत सूक्ष्म तत्त्वचर्चा चाहिये, सूक्ष्म चाहिये। तुझे सूक्ष्म पढ़ना है ? तो करणानुयोग पढ़ो कहते हैं। द्रव्यानुयोग में स्थूल निरूपण होता है।

द्रव्यानुराग में उपयोग के तीन भेद बताये- कौनसे ? **शुभोपयोग, अशुभोपयोग और शुद्धोपयोग।** छद्मस्थ जीवों के बुद्धिगोचर बुद्धिगोचर यानी अपने परिणाम अपने ही ख्याल में आते हैं कि अभी हमें शुभभाव हो रहे हैं कि अशुभभाव हो रहे हैं। अभी भक्ति के परिणाम हो रहे हैं कि अभी कुछ लोभ के, धंधे के परिणाम हो रहे हैं। अपने ख्याल में आते हैं न ? जो स्थूल परिणाम हैं वे अपने बुद्धिगोचर हैं उनको यहां शुभोपयोग, अशुभोपयोग और शुद्धोपयोग ऐसा कहा है। यही कहते हैं- **छद्मस्थ जीवों के** छद्मस्थ किसको कहते हैं ? छद्म यानी आवरण। आवरण सहित कब तक हैं ? बारहवें गुणस्थान तक। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक, पहले गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक सारे जीव कैसे हैं ? छद्मस्थ, अल्पज्ञ। जो सर्वज्ञ नहीं हैं वे सारे छद्मस्थ हैं। **छद्मस्थ जीवों के बुद्धिगोचर** बुद्धिगोचर यानी उनके अपने ज्ञान में आ जावे। **अर्थात् ज्ञान में आने योग्य परिणामों की अपेक्षा से यह कथन किया है।** कौनसा ? उपयोग के तीन भेद हैं उनकी बात है।

इसमें धर्मानुरागरूप परिणाम शुभोपयोग है, यानी उसके ख्याल में आया न कि अभी हमें भक्ति के, पूजा के, मंदिर में जाने के परिणाम हैं तो उसको क्या कहेंगे ? शुभोपयोग। **पापानुरागरूप और द्वेषरूप परिणाम अशुभोपयोग है** पाप के परिणाम हिंसा, झूठ, चोरी आदि जो हैं या जो व्यापार धंधा के यानी परिग्रह बढ़ाने के परिणाम उसके ख्याल में आ रहे हैं। वे क्या हैं ? पापानुराग। द्वेष यानी किसीके प्रति नफरत होती है, जो उसके ख्याल में आती है। वह अशुभोपयोग है। **और रागद्वेष रहित परिणाम शुद्धोपयोग है।** बुद्धिगोचर राग नहीं हैं यानी राग उसके ख्याल में नहीं आ रहे हैं उसको शुद्धोपयोग कहा। परंतु वह पूरा रागरहित नहीं हुआ है। शुद्धोपयोग के काल में वे अबुद्धिपूर्वक में चले गये। उसका उपयोग अभी शुद्धात्मा की तरफ लगा है तो वह राग उसकी बुद्धि में नहीं आ रहे हैं। राग अगर नहीं मानेंगे तो वहां बंध का अभाव हो जायेगा - पूर्ण वीतराग मानना पड़ेगा।

उसकी और चर्चा हम दोपहर में करेंगे । अभी यहीं रुकते हैं।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२१. करणलब्धि - अधःकरण

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य द्वारा रचित लब्धिसार ग्रंथ के आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका लिखी है। उसीके तथा अन्य भी अनेक ग्रंथों के आधार से हम यहां पंचलब्धि का प्रकरण देख रहे हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है, उसके पूर्व में जीव के परिणाम और कर्म की अवस्थाओं का यह सुनिश्चित क्रम है इनका यहां वर्णन चल रहा है।

हमने देखा था क्षयोपशमलब्धि और विशुद्धिलब्धि एक साथ ही होती हैं। जब देशना मिलती है, जीव देशना सुनता है, ग्रहण करता है, धारण-निर्धारण करता है, तब उसकी देशनालब्धि भी होती है। जिसको देशना मिली है, ऐसा जीव जब तत्त्वविचार में मग्न होता है तो उसके चारों ही लब्धि एक साथ चालू होती हैं। उसकी सभी चार लब्धि अंतर्मुहूर्त तक चलती हैं। ऐसा जीव जब आगे बढ़ता है; स्वसन्मुख होता है तब उसे हम द्रव्यानुयोग में शुद्धोपयोग कहते हैं परंतु यहां करणानुयोग में तो तीन करण परिणाम इतनी ही बात आती है। हमने तीन करण परिणामों के नाम देखे थे। अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। ये क्रम से हैं, इनके बीच में कोई अंतर नहीं है, ये परिणाम निरंतर हैं।

एक जीव की अपेक्षा बात करेंगे तो प्रतिसमय उसकी विशुद्धि अनंतगुणा-अनंतगुणा बढ़ रही है। परंतु इन तीन करणों के नाम और विशेषतायें भिन्न-भिन्न जीवों की अपेक्षा से हैं। आपस में उनके परिणामों की तुलनात्मक स्थिति क्या है उसको बताने के लिये तीन नाम अलग-अलग हैं। पहले अंतर्मुहूर्त को अधःप्रवृत्तकरण कहेंगे। यहां जीवों के परिणाम किसीके निचले के समय में और किसीके ऊपरवर्ती समय में समान हो सकते हैं; असमान तो हो ही सकते हैं। इसलिये इसका अधःप्रवृत्तकरण नाम है। जब अपूर्वकरण शुरू होता है, तब किसी एक समय में उनके परिणाम समान या असमान होंगे। परंतु पहले समय का कोई भी परिणाम ऊपर के किसी भी समय के परिणाम के साथ समान नहीं होगा, ऊपर के समयवर्ती कोई भी परिणाम अपूर्व ही होगा यानी अनंतगुणा विशुद्ध ही होगा। तीसरा नाम क्या है ? अनिवृत्तिकरण। वहां परिणामों में कोई भेद नहीं है। सभी जीवों का एक समय में एक सुनिश्चित परिणाम होता है। दूसरे समय में अनंतगुणा बढ़ता हुआ परंतु सबका एक समान एक ही

परिणाम। तीसरे समय में अनंतगुणा बढ़ता हुआ, परंतु सब जीवों का समान। इसतरह से हमने सामान्य से ये तीन भेद देखे थे। इनमें जो विशेष बातें होती हैं, यानी कर्मों में जो अवस्थायें बनती हैं, जीवों के परिणाम जो होते हैं, उसकी अपनी चर्चा चलेगी।

प्रश्न था कि बार-बार आप करण परिणामों की बात करते हैं और शुद्धोपयोग की बात ही नहीं कर रहे हैं ? हम द्रव्यानुयोग के अभ्यासी हैं तो शुद्धोपयोग शब्द से हम परिचित हैं और आप उसका नाम ही नहीं ले रही हैं, ऐसा प्रश्न आया था। उस संदर्भ में पं. टोडरमलजी क्या कहते हैं वह बात अपनी चल रही थी। द्रव्यानुयोग बहुत स्थूल कथन करता है और करणानुयोग में बहुत सूक्ष्म वर्णन आता है - परिणामों का भी और कर्मों का भी। द्रव्यानुयोग की अपेक्षा उपयोग के तीन भेद बताये हैं। कौनसे ? यह चारित्र गुण की अपेक्षा से बात है। ज्ञान गुण, दर्शन गुण के तो ज्ञानोपयोग-दर्शनोपयोग होते हैं। यहां उसकी बात नहीं है। जीव के अपने परिणाम उसके ख्याल में आते हैं, उन बुद्धिगोचर परिणामों की अपेक्षा शुभ परिणाम, अशुभ परिणाम और शुद्ध परिणाम उसीको उपयोग कहेंगे। उसको शुभोपयोग, अशुभोपयोग, शुद्धोपयोग ऐसे तीन नाम दिये जाते हैं। यानी जीव के अपने परिणाम अपने ही ख्याल में आये, उसके ये नाम हैं।

जहां बुद्धिगोचर स्थूल हिंसादि पाप परिणाम नहीं हो रहे हैं और बुद्धिगोचर भक्ति, पूजा, दान आदि शुभ परिणाम नहीं हो रहे हैं, उसके आत्मसन्मुख परिणाम हैं तो उसको क्या कहेंगे ? *श्रोता: शुद्धोपयोग।* शुद्धोपयोग। यहां यही बात चल रही थी। पृष्ठ ११२, नीचे का पॅरेग्राफ- **करणानुयोग में कषायशक्ति की अपेक्षा से गुणस्थानों में** देखो, कषायों की जाति अलग है और कषायों की शक्ति अलग है। अनंतानुबंधी यह जाति हुयी और उसमें भी तीव्र मंद के भेद हो सकते हैं वह शक्ति है। अप्रत्याख्यानावरण यह जाति हुयी और उसमें भी तीव्र मंद भेद हो सकते हैं। ऐसा भी हो सकता है कि पहले गुणस्थानवाले का अनंतानुबंधी का मंद परिणाम है और चौथे गुणस्थानवाले का अप्रत्याख्यानावरण का तीव्र परिणाम है। वहां शक्ति ज्यादा दिखायी देती है, परंतु वहां जाति की अपेक्षा हम तुलना करेंगे तो उस अपेक्षा से अलग कथन आता है। वहां चौथे गुणस्थानवाले की कषायशक्ति कम कहेंगे यही बात यहां कह रहे हैं। **करणानुयोग में कषायशक्ति की अपेक्षा से गुणस्थानों में संक्लेश या विशुद्ध परिणामों की अपेक्षा से कथन किया जाता है।** करणानुयोग में रागादिरहित

परिणाम शुद्धोपयोग शुद्धोपयोग कब कहेंगे ? रागादिरहित यानी जहां केवलज्ञानगम्य रागादि भी नहीं रहेंगे। **यथाख्यातचारित्र होने पर होता है और वह मोह का नाश होने पर स्वयमेव होता है।**

मोह का नाश यानी बारहवां गुणस्थान है। नीचे के गुणस्थानों में ऐसा शुद्धोपयोग किसतरह हो सकता है ? मोक्षमार्गप्रकाशक के ये सारे उद्धरण हैं। परंतु द्रव्यानुयोग में शुद्धोपयोग करने का ही मुख्य उपदेश दिया जाता है। इसलिये छद्मस्थ जीव जिस काल में बुद्धिगोचर बुद्धिगोचर का अर्थ है अपने ज्ञानगम्य, भक्ति आदि तथा हिंसा आदि भक्ति आदि में वह शुभ परिणाम, हिंसा आदि में अशुभ परिमाण, कार्यरूप परिणामों को छोड़कर आत्मानुभवनादि कार्य में प्रवर्तन करता है, उस काल में उसे शुद्धोपयोगी कहते हैं। इसलिये चौथे गुणस्थान से शुद्धोपयोग होता है यह हम सबको मालूम है। उस काल में भी केवलज्ञानगम्य सूक्ष्म रागादिक होते हैं, जब चौथे गुणस्थानवर्ती शुद्धोपयोग में है या जब मुनिराज शुद्धोपयोग में हैं, तब उनको रागादि हैं कि नहीं हैं ? वहां बंध है कि नहीं है ? बिलकुल है। परंतु वे रागादि उस जीव के ज्ञान में नहीं आ रहे। उनको अबुद्धिपूर्वक कहते हैं क्योंकि उसका राग की तरफ लक्ष नहीं है। उसका लक्ष तो अभी आत्मा की तरफ है। परंतु केवलज्ञानी जानते हैं वहां कौनसे रागादि हैं।

जैसे चौथे गुणस्थान में कहेंगे वहां तीन कषाय चौकड़ी का उदय है, उतना बंध भी है। सातवें गुणस्थानवाले मुनिराज हैं तो वहां संज्वलन का उदय भी है, बंध भी है। परंतु उन सबको क्या कहेंगे ? अबुद्धिपूर्वक कहेंगे, सूक्ष्म रागादि हैं ऐसा कहेंगे परंतु द्रव्यानुयोग में उसकी विवक्षा नहीं की जाती, वहां तो राग नहीं है ऐसा भी कहेंगे। हमें अपेक्षावश उसका अर्थ ग्रहण करना चाहिये। स्वयं की बुद्धि में जाने जानेवाले यानी ज्ञात होते रहे ऐसे बुद्धिगोचर रागादिक छोड़ने की अपेक्षा से उसे शुद्धोपयोगी कहते हैं। यथाख्यातचारित्र होने पर द्रव्यानुयोग और करणानुयोग दोनों की अपेक्षा शुद्धोपयोग है। बारहवें गुणस्थान में द्रव्यानुयोग भी कहेगा और करणानुयोग भी कहेगा। परंतु नीचे के गुणस्थानों में द्रव्यानुयोग की अपेक्षा से कभी-कभी शुद्धोपयोग होता है, चौथे-पांचवें में कभी-कभी होता है। परंतु करणानुयोग की अपेक्षा से सदा ही कषाय अंश का सद्भाव होने से शुद्धोपयोग नहीं होता यानी नहीं कहा है। इसलिये द्रव्यानुयोग की कथनपद्धति करणानुयोग

से मिलाने पर कभी मिलती है तो कभी नहीं मिलती।

करणानुयोग में करण परिणामों की बात बहुत बार आती है। पं. टोडरमलजी आगे लिखते हैं- 'करणानुयोग में कषायशक्ति की अपेक्षा से कथन होता है। कषायों की प्रवृत्ति अलग बात है और अंतरंग कषायशक्ति अलग बात है। प्रवृत्ति यानी उस कषाय के कारण बाहर जो कुछ प्रवृत्ति हो रही है वह बात अलग है और वहां उसकी शक्ति कितनी है वह बात अलग है। किसी जीव के कषायों की प्रवृत्ति अधिक हो और यदि उसकी अंतरंग कषायशक्ति कम हो तो उसे मंदकषायी कहते हैं। परंतु जिन जीवों की कषायों की प्रवृत्ति थोड़ी है, परंतु अंतरंग कषायशक्ति बहुत अधिक हो तो उन्हें तीव्रकषायी कहते हैं।

जैसे व्यंतरादि देव कषाय से नगरादि का नाश करने का कार्य करे तो भी उनकी कषायशक्ति थोड़ी होने से उनकी पीतलेश्या होती है। देवों में शुभ लेश्यायें होती हैं। वे कैसा भी कार्य करे फिर भी पीतलेश्या से उनकी कृष्ण-नीललेश्या नहीं होती यह कहना चाहते हैं। इससे विपरीत एकेन्द्रियादि जीव कोई भी कषायकार्य करते हुये नहीं दिखायी देते एकेन्द्रिय जीव क्या कर रहे हैं ? मार-पीट कर रहे हैं ? कुछ नहीं कर रहे हैं। उलटा तो उनको देखकर हमें खुशी होती है, है न। नहीं समझें ? हम पर्यटन क्यों करते हैं ? एकेन्द्रियों को देखने के लिये। नहीं समझें ? अमेरिका में जाते हैं तो क्या देखते हैं ? फॉल देखते हैं। किसका ? या तो वॉटरफॉल या तो वृक्षों का फॉल। फॉल सीझन आता है न ! तो क्या होता ? वृक्षों के सारे पत्ते कलरफुल हो जाते हैं- कोई पिंग होते हैं, जामुन कलर के होते हैं, पीले होते हैं, झड़ते भी है। तो उसका फॉल हमें अच्छा लगता है। फॉल यानी पतन। उसे देख-देखकर हम खुश होते हैं, आनंद मानते हैं। उन जीवों के परिणाम कैसे हैं ? अरे, एकेन्द्रिय में तो कृष्ण, नील, कापोत तीन लेश्या होती हैं। वे वहां अपने परिणामों से दुःखी हैं। यहां क्या लिखते हैं ?

देखो- एकेन्द्रियादि जीव कोई भी कषायकार्य करते हुये नहीं दिखायी देते हमें तो वृक्षों के फूल-पत्ते हवा से इधर-उधर झूमते हुये अच्छे दिखते हैं - कितना अच्छा लगता है और उनको देख-देखकर खुशी होती है। फिर भी कषायशक्ति बहुत ज्यादा होने से उनके कृष्णादि तीन लेश्या होती हैं। सर्वार्थसिद्धि नामक सबसे ऊपर के स्वर्ग के देव कषायरूप थोड़ासा प्रवर्तन करते हैं क्योंकि वहां

शुक्ललेश्या है। **परंतु कषायशक्ति अधिक होने से कषायशक्ति क्यों ?** क्योंकि चौथा गुणस्थान है- उनके अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन कषाय विद्यमान हैं तो उनके असंयम है। इससे विपरीत पंचम गुणस्थानवर्ती गृहस्थ, शादी-ब्याह करता है, व्यापारादि करता है। अरे, युद्ध में भी जायेगा। कषायकार्य तो बहुत करता है, परंतु कषायशक्ति मंद होने से उन्हें देशसंयमी कहा है।

एक-एक लेश्या में असंख्यात लोकप्रमाण कषायों के स्थान होते हैं, असंख्यात लोक किसे कहना हमने देखा था। उतने स्थान यानी भेद। मंद तीव्र भेद होते हैं। जीव के सभी कषाय असंख्यात लोकप्रमाण होते हैं, उसे यथायोग्य असंख्यात लोक से भाग देने पर भी असंख्यात लोक ही आता है। हमने कल यह फिगर दिखायी थी कि जो टोटल कषाय हैं उनमें बहुभाग; हमने उसको ९०० कहा था; वहां असंख्यात बहुभाग संक्लेश परिणाम हैं और असंख्यातवां भाग विशुद्ध परिणाम हैं। संक्लेश में कृष्ण, नील, कापोत लेश्या ऐसे तीन भेद होते हैं और विशुद्धि में पीत, पद्म, शुक्ल ऐसे तीन भेद होते हैं। यहां यही कहा है। **उसमें बहुभाग प्रमाण तो संक्लेश परिणाम हैं जिनमें कृष्ण, नील और कापोत लेश्या होती हैं। एकभाग प्रमाण विशुद्ध परिणाम हैं जिनमें पीत, पद्म और शुक्ल लेश्या होती हैं।**

संक्लेश परिणामों में किसी एक लेश्या में तीव्र संक्लेश को तीव्र कषाय और संक्लेश की हानि को मंद कषाय कहते हैं। हमने यह बात भी देखी थी। सातवें नरक में सारे ही कृष्णलेश्यावाले हैं परंतु उनमें तीव्र कषाय होंगे और मंद कषाय होंगे। तो इस प्रकरण में मंदकषाय को वहां विशुद्धि में लिया है। **परंतु विशुद्ध परिणामों में किसी एक लेश्या में विशुद्धि की वृद्धि को मंदकषाय और विशुद्धि की हानि को तीव्र कषाय कहते हैं।** इसको समझते हैं। संक्लेश की हानि होना मंदकषाय है। यह समझ में आता है। अब विशुद्धि की ओर बढ़ते हैं। विशुद्धि में हमने क्या देखा था ? पीतलेश्या से बढ़ती हुयी विशुद्धि में पद्मलेश्या, उससे बढ़ती हुयी विशुद्धि में शुक्ललेश्या होती है। विशुद्धि की हानि होना क्या कहेंगे ? तीव्र कषाय और विशुद्धि की वृद्धि ? मंदकषाय। संक्लेश में- संक्लेश की हानि मंद कषाय है और संक्लेश की वृद्धि ? *श्रोता: तीव्र कषाय।* यह तो आसान है न ? समझ में आये ऐसी बात है।

कषायों की भांति योग के बारे में ऐसा ही है। योग की प्रवृत्ति अलग बात

है और कर्माकर्षण योगशक्ति अलग बात है। हमने देखा था बाह्य प्रवृत्ति अलग बात है। कोई ज्यादा हाथ-पैर हिलाता हो, कसरत करता हो तो योग ज्यादा है ऐसा नहीं है। भावयोग यानी योग की शक्ति अलग बात है और बाह्य में जो कोई प्रवृत्ति चल रही है - बोलने की या शारीरिक कोई क्रिया करने की वह अलग बात है। **किसी जीव के मन, वचन, काया की प्रवृत्ति यानी क्रिया बहुत थोड़ी दिखायी देती है,** शांति से चुपचाप बैठा है तो उसके योग बहुत मंद है ऐसा कहेंगे ? नहीं कह सकते। **परंतु कर्माकर्षण शक्ति की अपेक्षा से उसके योग अधिक है।** इसके विपरीत किसी जीवों की यह प्रवृत्ति यानी प्रयत्न अधिक दिखायी देते हैं, परंतु कर्माकर्षण शक्ति अल्प होने से अल्प योग कहा है।

जैसे, केवलीभगवान गमनादि क्रियाओं से रहित हैं, अभी समवसरण में बैठे हुये हैं, **उन्हें योग अधिक है।** किसके साथ तुलना की ? द्वीन्द्रियादिक के साथ। **और द्वीन्द्रियादिक जीव गमनादि करते हैं, तो भी उनका योग अल्प है।** गमनादि यानी चल रहे हैं। उनकी क्रियायें दिख रही हैं, वहां प्रवृत्ति है और केवलीभगवान तो स्थिर बैठे हुये हैं। द्वीन्द्रियादि गमन करते हैं फिर भी उनका योग द्वीन्द्रिय के योग्य होगा और पंचेन्द्रिय जीव स्थिर हैं फिर भी उनका योग पंचेन्द्रिय के योग की रेंज में होगा, वह पंचेन्द्रिय के योग्य हीनाधिक होगा। केवली भगवान वहां बैठे-बैठे भी संज्ञी पंचेन्द्रियों के जघन्य से उत्कृष्ट योग की जो रेंज है, उसमें उनके योगों का परिवर्तन होगा। उनकी क्रिया से मतलब नहीं है। *श्रोता: केवली भगवान को भी भावयोग है ?* सयोगकेवली गुणस्थान तक हर एक जीव को भावयोग है। भावयोग यानी कर्माकर्षण शक्ति, आत्मा के प्रदेशों का परिस्पंदन। उसका कषाय से कोई लेना-देना नहीं है।

आगे- करणानुयोग में परिणाम और कर्मों की अवस्था का सूक्ष्म विवेचन किया जाता है। जीव के परिणाम और कर्मों की अवस्थाएँ उनमें निमित्त-नैमित्तिक संबंध है। दोनों का ही सूक्ष्म वर्णन आता है। **उसके अनुसार प्रयत्नपूर्वक कोई भी उद्यम हो नहीं सकता।** तो हमें इतना सब झमेला क्यों सिखाते हैं ? यह प्रश्न है। अभी अधःप्रवृत्त में क्या होता है, अनिवृत्तिकरण में क्या होता है, कौनसी अवस्थाएँ होती हैं यह समझ में आया। तो अभी हमें क्या करना ? उसमें कुछ नहीं करना है। उपशम करना कि क्षय करना ? यह तो ज्ञान का विषय है कि क्या होता है। सोच समझकर कर सकते तो सभी कर देते न ? यह अपने हाथ की बात है ? हमें भेदविज्ञान करना है। हमें

तत्त्वविचार करना है। कहते हैं कि **उसके अनुसार प्रयत्नपूर्वक कोई भी उद्यम हो नहीं सकता। करणानुयोग में यथार्थ वस्तुस्थिति बतायी जाती है, उसमें आचरण की मुख्यता नहीं होती। चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग आदि के उपदेशानुसार जो चलेगा, उसके निमित्त से जो कार्य होना होगा वह स्वयमेव होगा।** होना होगा का अर्थ क्या है ? प्रत्येक द्रव्य की अपनी सुनिश्चित पर्याय, उसका क्रम भी निश्चित है। इसलिये यहां कार्य होना होगा कहा। नहीं होनेवाला नहीं होगा ऐसा नहीं है।

जो तत्त्वविचार करेगा, स्वसन्मुख होगा तो उसके क्रमबद्ध में नियम से उसको सम्यग्दर्शन होगा ही होगा। ऐसा नहीं कि यथार्थ पुरुषार्थ हो रहा है उसका कार्य नहीं होगा। **जैसे, कोई कर्म का उपशम आदि करना चाहे तो किस प्रकार होगा ?** हमारी चाह से तो कुछ नहीं होगा। **जो स्वयं तत्त्वादिकों का निर्णय करने का उद्यम करेगा, उसके निमित्त से सहज ही उपशमादि सम्यक्त्व होता है।** यह सहज होता है, वह ख्याल में नहीं लेता है तो उसको ऐसा लगता है अरे ! क्या हुआ ? क्या हुआ ? अभी सम्यग्दर्शन क्यों नहीं हुआ ? बार-बार देखता है अभी हुआ कि नहीं हुआ ? जैसे किसी बच्चे को स्कूल में बताया था कि यह बीज लो और उसको मिट्टी में डालो और देखो कुछ दिनों में पौधा आयेगा। तो वह क्या करता है ? वह बीज बोता है और हर आधे घंटे में बार-बार मिट्टी निकालकर कितना हुआ, कितना हुआ देखता है तो उसका बीज उगनेवाला नहीं है। ऐसे ही यहां जो कुछ बातें होनी हैं; जीव का कार्य क्या है ? उसको उपदेश में क्या कहेंगे ? तुम तत्त्व का विचार करो, तत्त्व के निर्णय तक पहुंचो। तो हमारा तत्त्वनिर्णय हुआ कि नहीं हुआ यह कैसे समझेगा ? बार-बार पर्याय की ओर देखना पड़ेगा कि नहीं ? अरे, आत्मा का अनुभव हो जायेगा। स्वानुभव से प्रमाण करना - आता है न।

इसलिये करणानुयोग अनुसार जैसा है वैसा जान लेना परंतु प्रवृत्ति तो बुद्धिगोचर जिससे भला होगा वैसी करना। बुद्धिगोचर जो अपने बुद्धि में आता है। तो बुद्धि में क्या करना ? तत्त्व का स्वाध्याय करना यानी तत्त्व को बराबर सीख लेना, बारंबार उसकी परीक्षा करना - यह बुद्धिगोचर जैसा भला हो वैसा करना। **यह संपूर्ण विवेचन मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रंथ के आठवें अधिकार में है। तुम पूछोगी 'यदि प्रयत्न अथवा पुरुषार्थ द्रव्यानुयोगानुसार तत्त्व जानकर तत्त्वनिर्णय करनेका ही है, तो करणानुयोग जानना ही क्यों ?** बेटी सयानी है न ! हमारी यंग पीढ़ी बहुत

सयानी है। **बिना वजह समय और शक्ति का अपव्यय क्यों करें ?** सबका यही प्रश्न है। उसमें हमें शक्ति का अपव्यय लगता है और बाकी कहीं सांसारिक कार्य में कभी भी अपव्यय नहीं लगता है। देवलाली में छह-छह घंटे स्वाध्याय में बैठना बहुत कठिन लगता है और दोपहर में कड़ी धूप में पूरा बाजार घूमकर आने में कोई तकलीफ नहीं होती है। देवलाली में आये तो यहां क्या-क्या मिलता है वह आने के पहले सबको कैसे पता चलता है ? यह मुझे पता नहीं है। वे लोग अन्य सबका भी ख्याल रखते हैं, सबको बताते हैं। चलो, यहां ये चीजें अच्छी मिलती हैं, चलो। हमें भी पूछते हैं कि आपके लिये क्या लाना है। हम कहते हैं हमारे घर में जगह नहीं है कुछ और रखने की।

बेटियों, हमें जिसमें रुचि है ऐसे मोक्षमार्ग का सर्वांगीण स्वरूप जानने की जिज्ञासा भी सहज ही होती है। दुनियाभर की अन्य घटनाओं को जानने का रस कम होकर सत्यस्थिति जानने का उत्साह होना स्वाभाविक है। जिन्हें क्रिकेट में रुचि है, क्या उन्हें मॅच किसने जीति उतना ही सुनकर समाधान होता है ? वे लोग तो दिनभर टीव्ही के सामने बैठकर शुरू से अंत तक मॅच देखते हैं, दुबारा हायलाइट्स देखते हैं, पुनः पुनः उसी विषयपर एक दूसरे से बातचीत करते हैं। हम और आपको यह बताने की जरूरत नहीं है। जिसको जिसकी रुचि है, उसमें उसका मन, उसका उपयोग बारंबार उसी तरफ दौड़ता रहता है। **मेरे जैसे किसीको प्रश्न उठता है कि एक गेंद को उछालने में इतने सारे खिलाड़ी दौड़धूप करते हैं मेरी भाषा में गेंद तो अपनी उपादान शक्ति से इधर का उधर, उधर का इधर हो रहा है। और उन्हें देखते हुये लाखों जीव ऊपर नीचे होते हैं - नहीं समझे ? वे देखते-देखते सोफा पर उछलते रहते हैं। हर्ष-शोक मनाते हैं; ऐसा उसमें क्या है ?**

इस पर कोई क्रिकेट रसिक उत्तर देगा, **‘अरसिकेषु कवित्व निवेदनं शिरसि मा लिख, मा लिख, मा लिख।’** नहीं समझे ? संस्कृत वाक्य है। जिसको साहित्य में कोई आनंद नहीं आता है, उसको कवि क्या कहता है ? अरे, यह अरसिक है। अभी उसको कवित्वपना या साहित्य की अलंकारिक भाषा समझाना मेरे माथे में, मेरे नसीब में मत लिखो, मैं उनको नहीं समझा सकता। अर्थात् **‘हे भगवान, जिसे काव्य, साहित्य, विनोद आदि में रस नहीं है, उसकी रुचि नहीं उसे काव्य क्या है समझाना मेरे नसीब में कभी मत लिखना।’** ऐसे वे क्रिकेटरसिक बताते हैं। देखो-परंतु यहां तो जिसे करणानुयोग में रस या रुचि नहीं है, ऐसे जीवों को भी उन्हीं

के कल्याण हेतु कहने का मन होता है कि 'हे जीव ! तुम क्या कर रहे हो इसकी तुम्हें खबर नहीं है।' करणानुयोग का विषय तो सारा केवलीगम्य है, केवली ने बताया हुआ है और यह सब सत्य परिस्थिति है।

क्या होता है ? इतनी सारी बातें जानकर हमें इतना तो भरोसा होता है कि तत्त्वविचार करने से यह सारा कार्य होता है। मोक्षमार्गप्रकाशक में पं. टोडरमलजी ने लिखा है कि देखो तत्त्वविचार की महिमा ! तो ऐसा लगता है कि नहीं-नहीं उन्होंने ऐसे ही तत्त्वविचार की महिमा बतायी होगी। यह सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका उन्होंने ही लिखी है। जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार, त्रिलोकसार भी। उन्हें पता है कर्मों में क्या-क्या बातें होती हैं इसलिये उन्होंने संक्षेप में लिख दिया कि तत्त्वविचार से यह सब होगा और व्रतादि करने से कुछ नहीं होगा। कुछ नहीं होगा यानी व्रतादि किये और तत्त्वविचार नहीं किया तो वह सम्यक्त्व का अधिकारी नहीं है। किसीने व्रतादि कुछ नहीं किये हैं और तत्त्वविचार से तत्त्वनिर्णय किया तो वह सम्यक्त्व होने का अधिकारी है। हमें तो ऐसा लगता है न, कुछ करने से होगा-कुछ करने से होगा और करने से यानी कौनसी क्रिया अपनी लगती है ? वह शारीरिक क्रिया - व्रत-उपवास अपनी क्रिया लगती है और जो हमारी जाननरूप क्रिया चल रही है वह अपनी क्रिया लगती ही नहीं है। क्यों ? क्योंकि मैं शरीर हूँ यह मान्यता इतनी दृढ़ है कि मैं आत्मा और मेरा कार्य जानना है यह कभी सोचने में भी नहीं आता। इसलिये वह अपनी क्रिया नहीं लग रही है।

यही कहते हैं देखो- **'हे जीव, तुम क्या कर रहे हो, इसकी तुम्हें खबर नहीं है। अनादि कर्मबंध में फंसकर निरंतर कर्मबंधन का ही कार्य तुम कर रहे हो। देखो, इसमें से छूटने का मार्ग अत्यंत सरल, सुलभ और सहज है।** कोई परेशानी नहीं, कोई पराधीनता नहीं है। क्या कहा ? अत्यंत सरल है, सुलभ है, सुगमता से उपलब्ध है। है न ? सहज है। **सुनो, तुम तो केवल तत्त्वविचारादिक का कार्य करो, कर्म में ये सारे अवस्थांतर स्वयमेव होंगे, तुम्हें सम्यक्त्व की प्राप्ति होगी, तुम्हारे कर्मबंधन ढीले पड़ेंगे। पूर्वबद्ध पापकर्म शक्तिहीन होंगे, अभी हमने कितनी बार देखा, अप्रशस्त कर्मों का अनुभागबंध द्विस्थानगत हो जाता है, उसका अनुभागसत्त्व भी द्विस्थानगत होता है। हम अनादि से लगातार कोई न कोई कर्म बांधते आये हैं और हमने असंख्यात भवों में अनेक कोड़ाकोड़ी सागरों के कर्म उपार्जित किये हैं। अभी सत्ता में वे सारे पड़े हैं। अनुभाग घटने से पापकर्म शक्तिहीन होंगे; पहले बहुत सारे**

पापकर्म बांधे हैं उनकी शक्ति कम हो जायेगी। **उनकी स्थिति भी घटेगी** वह पुण्य का लोभी है न, पाप से डरता है और पुण्यकर्म चाहता है। इसलिये उसको समझाते हैं।

परंतु पुण्यकर्मी की शक्ति बढ़कर तुम्हें उनका फल भी मिलता रहेगा कोई फल चाहता है तो तत्काल करने को तैयार है। वह आता है न, शिखरजी में जाता है तो इस टोंक का दर्शन करो, यहां इसकी वंदना करो तो इतने उपवास का फल मिलेगा। हम पहली बार इ.स. १९७५ में धर्मचक्र यात्रा में शिखरजी गये थे। तो वहां छोटी-छोटी पुस्तकें सबके हाथ में आ गयी - यहां इतनी वंदना करो, इतने उपवास का फल मिलेगा। तो पं. बाबूभाईजी मेहता, जिन्होंने यात्रा निकाली थी उनके पास जाकर हमने पूछा यह ऐसा लिखा है, इसका क्या अर्थ होता है ? क्योंकि तभी हमारा किसीका कोई अभ्यास तो नहीं था, अभी यात्रा से स्वाध्याय की शुरुआत हुयी थी। वे मुस्कुराकर बोले स्वाध्याय करो, जान जाओगे। उनका इतना ही उत्तर था। उस एक वाक्य में पूरा मर्म आया है। स्वाध्याय करो, स्वयमेव जान जाओगे। यही होता है क्योंकि पुण्य की रुचि है न, यहां कहते हैं कि तुम्हारे पुण्य का भी अनुभाग बढ़ जायेगा, उसका फल भी मिलेगा **तथा उनका भी नाश होकर तुम्हें शीघ्र मोक्ष की प्राप्ति होगी।** अभी सम्यक्त्व प्राप्त होगा तो मोक्ष तो निश्चित है।

लोग पूछते हैं, इतना सारा हमें याद करना पड़ेगा ? बिलकुल नहीं। एक ही वाक्य में उसका मर्म है कि कर्म जुदा है और मैं जुदा हूं। कर्म की अवस्था कर्म में कर्म के कारण होती है और मेरी प्रत्येक अवस्था मुझ में मेरे कारण होती है। यह सब याद नहीं रहता तो कोई बात नहीं है। यह ज्ञान का विषय है। इसमें उपयोग नहीं लगता, नहीं लगने दो। उसमें समझ में नहीं आता, कोई बात नहीं है। परंतु अगर तुम्हारे अभिप्राय में इन बातों का निषेध है तो तुम धोखे में हो। किसीको किसी अन्य विषय में अधिक रुचि होगी, उसका अर्थ क्या है ? करणानुयोग के इस विषय में उसकी बुद्धि अधिक काम नहीं करती होगी। परंतु उससे उसका कोई सम्यग्दर्शन नहीं रुकेगा। यदि उसके अभिप्राय में करणानुयोग का निषेध वर्तता है तो उसने सर्वज्ञ की वाणी का निषेध किया है और उसमें अपने ज्ञान स्वभाव का निषेध हो जाता है। क्योंकि ज्ञान का कार्य तो जानना-जानना-जानना है। अभिप्राय में उसका निषेध होगा तो उसे सम्यक्त्व होने की शक्यता नहीं है।

यहां हम करणानुयोग के आधार से करण परिणामों की चर्चा कर रहे हैं। पूर्वोक्त चार लब्धिपूर्वक जीव करण परिणाम मांडता है मांडता है कहेंगे यानी शुरू होते हैं या उसका स्वसन्मुख पुरुषार्थ शुरू हो जाता है। जयसेन आचार्य की भाषा में कहना हो तो, देखो, जयसेन आचार्य ने अध्यात्म में किसतरह से परिभाषा करना और करणानुयोग की अपेक्षा आगमभाषा में कैसे कहना वह बताया है। ‘अध्यात्मभाषा में निजशुद्धात्मभावनारूप भावना यानी इच्छा करने को भावना नहीं कहते, भावना यानी उसरूप होना यानी एकाग्र होना। निज शुद्धात्मा में एकाग्र होना उसको कहेंगे निजशुद्धात्मा की भावनारूप सविकल्प, स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा तो क्या वह सविकल्प होता है ? यहां रागसहित को सविकल्प नहीं कहा है परंतु ज्ञान की अपेक्षा सविकल्प कहा है। ज्ञान हमेशा सविकल्प ही होता है, वह भेद कर-करके जानता है। सविकल्प स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा स्वसंवेदन- स्वयं अपने को जाने उसे स्वसंवेदन कहते हैं। स्वसंवेदन ज्ञान के द्वारा यह अध्यात्म भाषा हुयी और आगमभाषा में करणानुयोग की भाषा में क्या कहेंगे ? अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन तीन करण परिणामों द्वारा आत्मा में लीन होता है - एकाग्र होता है।’ जयसेन आचार्य की भाषा है तीन करण परिणामों में आत्मा में लीन हुआ है, अभी अनुभव नहीं हुआ है।

मुझे याद है पहले शिबिर में यह बात की थी तो बहुत चर्चा, खलबली मची थी। स्वसन्मुख हुआ है, आत्मा को ज्ञान का विषय बनाया है, फिर भी अंतर्मुहूर्त स्थिरता होगी तब जाकर अनुभव होगा। एक समय में लक्ष किया और अनुभव हुआ, यह नहीं होगा। सविकल्प, स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा। वह कैसा लिया ? निजशुद्धात्मभावना यानी निजशुद्धात्मा में एकाग्र होना यानी उसने ज्ञान उसमें लगाया। उसने विकल्प किये ऐसा नहीं कहा। यहां सविकल्प कहा, वह ज्ञान का विशेषण है इसलिये सविकल्प कहा। परंतु वह अवस्था कैसी है ? रागरहित अवस्था है। उस अपेक्षा कहेंगे तो निर्विकल्प है। आत्मा में लीन होता है, एकाग्र होता है। यहां भावना का अर्थ है उसरूप होना- एकाग्र होना। मात्र इच्छा करते रहना यह भावना शब्द का अर्थ नहीं है।

देखो, पं. टोडरमलजी मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखते हैं- ‘करणलब्धिवाले जीव का बुद्धिपूर्वक इतना ही उद्यम होता है कि वह तत्त्वविचार में उपयोग को तद्रूप होकर लगाता है, उसके कारण प्रतिसमय परिणाम निर्मल होते जाते हैं। तत्त्वज्ञान की निर्मलता बढ़ती चली जाती है बस अभी उसमें लीन होना है। मुझे क्या

करना है ? अभी यह करना है, वह करना है ऐसा कुछ नहीं है। और तत्त्वोपदेश का विचार निर्मल होते जाने से थोड़े ही काल में उसे तत्त्वश्रद्धानरूप सम्यक्त्व होता है। क्योंकि इस काल में उसके तीन करण परिणाम चल रहे हैं और उसकी विशुद्धि प्रतिसमय बढ़ रही है। तत्त्वज्ञान की निर्मलता बहुत बढ़ रही है ऐसा यहां विशुद्धि का अर्थ लेना है। **इन परिणामों की तारतम्यता - हीनाधिकता केवलज्ञानी जानते हैं, उनका निरूपण करणानुयोग में किया जाता है।** यह तारतम्यता हमारे ज्ञान का विषय नहीं है। जीव का मन तो तत्त्वविचार में ही लगा है। उसके बाहर के कोई विकल्प आवें तो उसका वह करण परिणाम नहीं है ऐसा हम कहेंगे।

आगे बढ़ते हैं, अभी यहां से करण परिणामों की बातें चलेगी। देखो- अब हम एक-एक करण परिणाम का स्वरूप विस्तार से देखेंगे। तत्त्वविचार और तत्त्वनिर्णय में उपयोग लगता है तब जीव के परिणाम अनंतगुणा विशुद्ध होते जाते हैं। प्रतिसमय कहा। हमने विशुद्धिलब्धि में विशुद्धि बढ़ने की बात की थी और अब यहां करणलब्धि में भी विशुद्धि कही जाती है। पहले तो सातावेदनीय आदि प्रकृतियों के बंध के कारणभूत परिणामों को विशुद्ध परिणाम कहा था, वहां तो केवल मंदकषाय इतनी ही बात की थी। अब यहां जो विशुद्धि है वह तत्त्वज्ञान संबंधी निर्मलता जानना, श्रद्धासंबंधी निर्मलता जानना। यहां करणलब्धि में मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय उत्तरोत्तर मंद, मंदतर और मंदतम होते जाते हैं उनकी अपेक्षा से विशुद्धि समझना। यह उसका अर्थ है।

देखो, आगे देखते हैं- हमने पहले देखा था कि चारों गतिवाला भव्य मिथ्यादृष्टि जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है। उसमें कोई सातवें नरक का नारकी होगा, जिसके कृष्णलेश्या होती है, तो ग्रैवेयक के कोई मिथ्यादृष्टि देव होंगे कि नहीं जो प्रथमोपशम करेंगे ? वहां भी मिथ्यादृष्टि हैं, हां, सम्यग्दृष्टि ज्यादा हैं उसकी बात छोड़ो। ग्रैवेयकों में मिथ्यादृष्टियों से सम्यग्दृष्टि ज्यादा हैं, परंतु वहां मिथ्यादृष्टि हैं। **कोई नौवें ग्रैवेयक स्वर्ग का मिथ्यादृष्टि होगा, जो शुक्ललेश्यावाला होता है** अभी करण परिणाम में जो प्रवेश कर रहे हैं, उनके परिणामों में क्या-क्या समानता या असमानता है उसकी बात है। कोई शुक्ललेश्यावाला है और कोई सातवें नरक का नारकी कृष्णलेश्यावाला है। **कोई मनुष्य या तिर्यच होगा जिनके पीत, पद्म या शुक्ललेश्या होती है।** तो परिणामों में अंतर है। यहां अपनी-अपनी लेश्या तो

कायम रहती है, परंतु अशुभ लेश्यावालों के संक्लेश घटते हैं, शुभ लेश्यावालों के विशुद्धि बढ़ती है। संक्लेश घट रहे हैं। जहां विशुद्धि है वह और अधिक बढ़ती है। उनके कषायों के स्थान अपने पूर्व परिणामों से घटते हुये होते हैं।

हमने उदाहरण के तौर पर कषायों के टोटल स्थान १ से लेकर १००० तक बोर्ड पर दिखाये थे। अपने-अपने पूर्व परिणाम से वे कषायों के स्थान घटते हैं। विशुद्धि में भी कषायस्थान घटने की ही बात करेंगे। तो कषाय घटने को विशुद्धि कहेंगे। **फिर भी उन समस्त जीवों में तत्त्वज्ञान की निर्मलतारूप विशुद्ध परिणामों में प्रारंभ में समानता या असमानता होती है** सभी जीवों को एक साथ लेना, उनमें भी किसीमें समानता और असमानता हो सकती है। यह कौनसी विशुद्धि लेना है ? तत्त्वज्ञान संबंधी निर्मलता लेनी है। उनकी कौनसी लेश्या है उसको यहां नहीं लेना है। **और अनिवृत्तिकरण में सबके परिणाम एक से विशुद्ध होते हैं - समान होते हैं।** यानी ग्रैवेयक का शुक्ललेश्यावाला देव होगा और सातवें नरक का कृष्णलेश्यावाला नारकी - जो कोई अनिवृत्तिकरण में आ गये हैं, सबकी विशुद्धि समान होगी यह कहना चाहते हैं। इनकी लेश्या पलटनेवाली नहीं है, ना ही उनकी पलटनेवाली है। कृष्णलेश्यावाले कृष्णलेश्यावाले ही रहेंगे और शुक्ललेश्यावाले शुक्ललेश्यावाले ही रहेंगे। परंतु तत्त्वज्ञान संबंधी जिस निर्मलता तक पहुंचे हैं वहां उन सबकी विशुद्धि समान होगी।

अधःप्रवृत्तकरण में ऊपर और नीचे के समयों में समान परिणाम होते हैं, उसे अनुकृष्टि रचना कहते हैं। हमने अभी समान परिणामों की बात देखी थी। किसीके पहले समय में जितनी विशुद्धि है और किसी जीव को उतनी विशुद्धि दूसरे समय में, किसीको तीसरे समय में, किसीको चौथे समय में होती है। तो ऊपर के समयों तक यह समानता हो सकती है। इसीको अनुकृष्टि रचना कहते हैं। **उसका स्वरूप अब हम देखेंगे। तुम टीव्ही पर क्रिकेट मॅच देखती हो उस मॅच का वर्णन-कॉमेंट्री करते-करते पूर्व में खेली गयी अन्य मॅचों के साथ उसकी तुलना करके उसका विवरण किया जाता है। कोई टीम चौथे ओव्हर तक जितने रन निकालता है उतने ही रन कोई टीम तीसरे ओव्हर तक, कोई दूसरी ओव्हर तक, तो कोई पहली ही ओव्हर में करता है। उनकी धावसंख्या में इसप्रकार की समानता हो सकती है। धावसंख्या यानी रन्स।**

उसीप्रकार यहां त्रिकालवर्ती अनंत जीव। क्रिकेट के उदाहरण में भूतकाल की मॅचों के साथ तुलना होती है और केवलज्ञानी तो त्रिकालवर्ती सब जीवों को जानते हैं। त्रिकालवर्ती अनंत जीव **जो अधःप्रवृत्तकरण मांडते हैं उनके परिणामों में प्रथम द्वितीय आदि समयों में समानता हो सकती है।** अब यह समानता कैसे हो सकती है, इसको आप देखना, पृष्ठ १२३ निकालना। हमें संख्या और परिणामों की बात समझना है। पहले यहां से पढ़कर फिर हम इसको समझेंगे। यह सब संदृष्टि से समझाया है, डिटेल में है इसलिये इसे लेना कि नहीं लेना, वह मैं सोचती थी। तीसरा पैरेग्राफ पढ़ते हैं- **नीचे के तथा ऊपर के समयों के परिणामों की विशुद्धि तथा संख्या में समानता हो सकती है, इसे ही अनुकृष्टि रचना कहते हैं। ध्यान रखना यह समानता भिन्न-भिन्न अर्थात् नाना जीवों की अपेक्षा बतायी है।** एक जीव के अपनी पूर्व विशुद्धि से अनंतगुणा बढ़ती हुयी विशुद्धि होती है। **एक ही जीव की अपेक्षा तो प्रति समय विशुद्धि अनंतगुणा बढ़ती जाती है तथा एक जीव का प्रतिसमय एक ही परिणाम होता है।** उसका अपना परिणाम एक ही है।

हमने असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम देखे, वे अलग-अलग जीवों के देखे थे। जुदे-जुदे अनंत जीवों के इतने परिणाम देखे थे। अभी हम संदृष्टि देखने की कोशिश करते हैं। अधःप्रवृत्तकरण का काल कितना है ? अंतर्मुहूर्त। अंतर्मुहूर्त में १६ समय हैं ऐसा हम मान लेते हैं। अब उसके पहले समय में टोटल कितने परिणाम हैं ? पृष्ठ १२२ निकालना, वह टेबल नीचे से ऊपर पढ़ना। नीचे से लेफ्ट साइड के पहले कॉलम में समय लिखा है। समय नीचे से ऊपर तक १ से १६ बताये हैं। दूसरे कॉलम में लिखा है परिणाम पुंज यानी टोटल नंबर ऑफ़ परिणाम। पहले समय में १६२ हैं, दूसरे समय में १६६ हैं। परंतु उन परिणामों को अगर हम नंबरिंग देंगे तो कैसे देंगे ? पहला नंबर, दूसरा नंबर, तीसरा नंबर, चौथा नंबर; ऐसे अंतिम नंबर कौनसा होगा ? १६२वां होगा।

दूसरे समय में १६६ परिणाम लिखे हैं। परंतु उनका नंबरिंग कहां से लेना ? ४०वां, ४१वां, ४२वां... ऐसे १६६ गिनो। १६२ के आगे ४ नहीं बढ़ाये। पहले समय के परिणाम नंबर १ से नंबर १६२ थे। दूसरे समय के कहां से हैं ? ४० नंबर से लेकर २०५ नंबर तक आगे १६६ टोटल संख्या वहां होगी। तीसरे समय में वहां टोटल संख्या १७० होगी। तीसरे समय में; वहां परिणाम कहां से शुरू होंगे ? ८०वें से शुरू होंगे और २४९वें तक कुल संख्या १७० होगी। अब इसको देखने के लिये पृष्ठ १२० निकालना

नीचे की लाइन में १ला समय है। वहां टोटल परिणाम कितने बताये ? १६२। यानी वहां १ले से लेकर १६२वें तक के परिणाम हैं। अब उसके चार खण्ड किये, चार भेद किये, चार ग्रुप किये। पहला ग्रुप १ले नंबर से ३९वें नंबर तक, ये सारे अलग-अलग हैं; ये पहले समय के पहले ग्रुप के परिणाम हैं। पहले समयवाले परिणाम में हमने चार ग्रुप बना दिये - पहले से दूसरे में विशुद्धि थोड़ी ज्यादा है, दूसरे से तीसरे में ज्यादा है, तीसरे से चौथे में ज्यादा है। १ले से लेकर ३९वें नंबर तक का एक ग्रुप है वहां संख्या ३९ होती है। १ से ३९ कितने होते हैं ? ३९ होते हैं तो ३९ लिखे हैं।

अब ४० से ७९ तक कितने होते हैं ? ४० होते हैं। ४० को भी गिनो - ४०, ४१, ४२ गिनो। तो टोटल संख्या कितनी होती है ? ४०। परंतु उनके अगर नंबरिंग करेंगे तो ४०वां, ४१वां, ४२वां, ४३वां इसतरह से उनको गिनना है। उनकी संख्या कितनी हुयी ? ४०। तीसरा ग्रुप ८०वें से लेकर १२०वें परिणाम तक है। ८० को भी गिनो और १२० को भी गिनो, संख्या कितनी होगी ? ४१। लास्ट ग्रुप है १२१वें से लेकर १६२वें परिणाम तक। उनकी टोटल संख्या कितनी होती है ? ४२। यानी १ से ३९वाला पहला ग्रुप है, ४० से ७९वाला दूसरा ग्रुप है उसकी टोटल संख्या है ४०। तीसरे ग्रुप की टोटल संख्या है ४१ और चौथे ग्रुप की टोटल संख्या है ४२। ये सारे पहले समय के परिणामों की बात है।

अब जो पहला ग्रुप है न १ले से ३९वें तक उनकी विशुद्धि दूसरे समय में बढ़ जायेगी - अनंतगुणा हो जायेगी तो वह किसके समान होगी ? जो पहले समय का दूसरा ग्रुप था ४०वाला। उसका नंबरिंग क्या था ? ४०वें से ७९वें तक। पहले खण्ड की विशुद्धि बढ़कर वैसी होगी। अभी दूसरा समय देखो। वहां पहला खण्ड कैसा है ? उसको ४० लिखा है यानी उसकी विशुद्धि कैसी है ? ४०वें से ७९वें तक जैसी। जो पहले समय में दूसरा खण्ड है, दूसरे समय में पहला खण्ड वैसा ही है। जो पहले समय में तीसरा खण्ड है, दूसरे समय में दूसरा खण्ड वैसा ही है। *श्रोता: संख्या भी समान है और विशुद्धि भी ?* हां, संख्या और विशुद्धि उसको ही कहेंगे। परिणाम भी समान हैं और संख्या भी समान है। पहले हमने वाक्य पढ़ा था संख्या और विशुद्धि समान होते हैं या परिणाम समान होते हैं। यह थोड़ा सूक्ष्म पॉइंट है। पकड़ में आवे तो आवे, नहीं आवे तो चिंता की बात नहीं है। ऐसी संदृष्टि बनाये बिना उसका अर्थ भासित नहीं होता।

हम भी जब पहले पढ़ते थे तो कुछ ख्याल में नहीं आता था कि संख्या, परिणाम

– संख्या, परिणाम क्या बात होती है। परंतु इसतरह से जब संदृष्टि बनायी तो उसकी बात ख्याल में आने लगी। देखो, दूसरे समय का तीसरा खण्ड कितना है ? ४२वाला। पहले समय में चौथा खण्ड ऐसा ही है। अब दूसरे समय का जो चौथा खण्ड है न, वे परिणाम वहां नये हैं जो पहले समय में किसीके नहीं थे। अभी ऐसा ही ऊपर अगर करते जाओ, तो पहले समय का पहला खण्ड ऊपर कहीं नहीं है। दूसरे खण्ड के समान दूसरे समय का पहला खण्ड है। अगर और ऊपर चले जायेंगे चौथे समय तक तो क्या होगा ? पहले समय का जो चौथा खण्ड है वैसा चौथे समय का पहला खण्ड होगा। यानी पहले समय में चौथा खण्ड है, उसके समान दूसरे समय तीसरा खण्ड होगा, तीसरे समय में दूसरा खण्ड वैसा होगा, चौथे समय में पहला खण्ड वैसा होगा। तो ऐसी हम तिरछी लाइन ड्रॉ कर सकते हैं। उसकी समानता चौथे समय तक चलेगी।

श्रोता: यह अन्य-अन्य जीवों की अपेक्षा ? बिलकुल यह बात नाना जीवों की ही अपेक्षा है। एक जीव में तो अपनी-अपनी विशुद्धि अनंतगुणा बढ़ रही है। उसमें जो चार आवश्यक होते हैं, वह तो हम देखेंगे। यह सारा झमेला अन्य-अन्य जीवों की अपेक्षा से है। उनकी विशुद्धि कहां समान हो सकती है या नहीं हो सकती ? उसकी बात बतायी है। पहले समय में पहला खण्ड जो ३९वाला ग्रुप था। दूसरे समय में वह ४०वाला जैसे होगा। *श्रोता: खण्ड का अर्थ क्या है ?* खण्ड यानी उसका ग्रुप जो हमने विभाग किये थे। पहले १६२ परिणाम जुदे-जुदे थे, १ से लेकर १६२ तक के परिणाम थे। तो १ले से लेकर ३९वें परिणाम तक हमने एक ग्रुप बनाया, एक खण्ड बनाया। दूसरा खण्ड ४०वें से लेकर ७९वें परिणाम तक का ग्रुप बनाया।

श्रोता: चार जीवों को लेकर यह कंपॅरिझन है ? चार जीवों को नहीं, अनेक जीवों के परिणामों को; चार खण्डों को, चार ग्रुप्स को लेकर यह बात है। दूसरे ग्रुप के जो परिणाम ४०वें से ७९वें तक और उनकी जो संख्या ४० थी, दूसरे समय में पहले ग्रुपवालों की वैसी होगी। यह उसका अर्थ होता है। *श्रोता: कंपॅरिझन का फ़ायदा क्या है ?* फ़ायदा कुछ नहीं, वह ज्ञान का विषय है। *श्रोता: १६२ परिणाम कैसे आ सकते हैं ?* परिणाम तो असंख्यात लोकप्रमाण हैं। यहां समझाने के लिये छोटी संख्या ली है। नहीं तो क्या कहेंगे ? असंख्यात लोकप्रमाण और एक खण्ड में कितने परिणाम होते हैं ? असंख्यात लोक उसको भी कहेंगे। उसके खण्ड कितने किये ? यहां हमने चार खण्ड किये, वहां खण्ड भी असंख्यात होंगे। *श्रोता: खण्ड निकालने का कोई फॉर्म्युला है ?*

फॉर्म्युला है परंतु अभी हम उसमें नहीं जायेंगे। लब्धिसार का विषय दैनिक स्वाध्याय में लाइन बाय लाइन समझाया है उनके प्रवचन उपलब्ध हैं। शिबिर का तात्पर्य यहां स्थूल-मोटी बातें बताना है जिससे विषय प्रवेश आसान हो जाये। इसमें कितने जुदे-जुदे विशुद्धिवाले जीव शुरुआत कर सकते हैं यह उसका विषय है। ख्याल में आयी बात ? जानने का फ़ायदा अन्य कुछ नहीं है। इस संबंधी हमारा अज्ञान दूर हुआ यही जानने का फल है। ज्ञान का फल तो इतना ही होता है। *श्रोता: जीव का पुरुषार्थ कम ज्यादा है क्या ?* पुरुषार्थ कम ज्यादा की बात नहीं है। किसीके इतनी कम विशुद्धि के साथ शुरुआत हो गयी थी। परंतु उसमें इतने भेद हैं इतना बताना है।

श्रोता: अधःकरण के पहले समय में समझ लो किसीके ४० नंबर का मतलब द्वितीय खण्ड का परिणाम है और अधःकरण के दूसरे समय में अन्य किसीका पहले खण्ड का परिणाम है। तो अलग-अलग समयवर्ती दोनों जीवों के परिणाम समान हैं ? हां, वही तो। जो पहले समय में पहले खण्ड में थे न, दूसरे समय में हर एक की विशुद्धि बढ़ी। तो बढ़कर कितनी हुयी ? पहले समय के दूसरे खण्ड के समान हुयी। इसतरह से उसका अर्थ लेना। जो पहले समय में अधिक विशुद्धि के साथ थे; कौनसे ? चौथे खण्डवाले, उनकी विशुद्धि बढ़कर दूसरे समय में वे परिणाम अलग जाति के हुये जो पहले समय में किसीके नहीं थे, क्योंकि चौथे खण्ड में पहले समय के सर्वोत्कृष्ट परिणाम थे। उसके अपने परिणाम बढ़कर दूसरे समय में भी सर्वोत्कृष्ट होंगे। वह किसीके तीसरे समय में पाये जायेंगे। दूसरे समय का जो चौथा खण्ड है, उसके परिणाम तीसरे समय के तीसरे खण्ड में समान होंगे। अगर आप यह पूरी फिगर बनाते हैं तो ऐसी तिरछी लाइन आपको दिखेगी। देखो, पृष्ठ १२२ निकालना।

देखो, पहले समय में हमने चार खण्ड कर दिये हैं। टोटल नंबर ऑफ़ परिणाम १६२ हैं। पहले ग्रुप में संख्या ३९ है। अभी ३९ का अर्थ समझते हैं न ? उसमें परिणाम १ से ३९ ऐसे समझना। दूसरे ग्रुप में संख्या ४० है, उसमें परिणाम ४०वें से लेकर ७९वें तक हैं। तीसरे ग्रुप में संख्या ४१ है, उसमें परिणाम ८०वें से १२०वें तक हैं और चौथे ग्रुप में संख्या ४२ है, उसमें परिणाम १२१वें से लेकर १६२वें तक हैं। टेबल नीचे से ऊपर पढ़ना है। पहले समय के हमने चार खण्ड देखे। उसमें ३९ परिणामों की संख्या है। परंतु उसमें परिणाम नंबर १ से ३९ तक हैं। ४० परिणामों की संख्या है परंतु उसमें ४० नंबर से लेकर ७९ तक के परिणाम हैं। इसतरह से हर एक में समझना। यहां तक तो

बात समझ में आयी न ? यह बात समझेंगे तो आगे की बात अपने पल्ले पड़ेगी।

श्रोता: परिणामों की संख्या विशुद्धि से तय होगी ? हां, उसकी विशुद्धि अलग है उसको हम नंबरिंग करेंगे। १ नंबर का परिणाम यानी सबसे जघन्य विशुद्धिवाला परिणाम है। उससे अधिक विशुद्धिवाला २ नंबर का परिणाम। उससे अधिक विशुद्धिवाला ३ नंबर का। यहां तो ३९ कहे हैं, यथार्थ में पहले खण्ड में असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम हैं। अब उसके आगे और विस्तार देखना है ? उसमें भी षट्गुणवृद्धि के असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थान होते हैं। अभी उसके डिटेल में नहीं जाना है। परिणाम १, २, ३, ४ ऐसे १ से लेकर ३९ तक हैं। इन सबकी विशुद्धि अनंतगुणा बढ़ गयी तो परिणाम ये कैसे होंगे ? ४० से लेकर ७९ - ऐसे परिणाम उन जीवों के दूसरे समय में होंगे।

श्रोता: ये ग्रुप में क्यों हैं ? ग्रुप का अर्थ है यहां टोटल कितने परिणाम हैं ? असंख्यात। इसको हमें अपनी भाषा में समझना है। हमने इसको उदाहरणार्थ १६२ मान लिये हैं। *श्रोता: तीन काल के जीवों की अपेक्षा ?* हां, तीन काल के अनंत जीवों में इतने विशुद्धि के भेद हमने मान लिये हैं। यथार्थ में ये असंख्यात लोकप्रमाण हैं। इस काल्पनिक संख्या को अंकसंदष्टि कहते हैं। जो यथार्थ में संख्यायें होती हैं उसको अर्थसंदष्टि कहते हैं, अर्थ यानी यथार्थ। जब समझाने के लिये हमारी कल्पना के छोटे फिगर्स होते हैं उसको कहते हैं अंकसंदष्टि। जहां-तहां पं. टोडरमलजी ने अंकसंदष्टि लेकर समझाया है और फिर अर्थसंदष्टि तो अलग बतायी ही बतायी है।

पहले समय की बात ख्याल में आयी ? ३९वाला ग्रुप। उनकी टोटल परिणामों की संख्या कितनी है ? ३९ है। जैसे हमने देखा १० लाख विद्यार्थी परीक्षा में बैठे हैं। उनके मार्क्स कितने हो सकते हैं ? ० से लेकर १०० तक। टोटल १०१, है न ? तो उसमें हम चार खण्ड कर सकते हैं। अभी यहां उदाहरण में परिणामों की कोई बात नहीं है, समयों की कोई बात नहीं है। उसकी संदष्टि या उसका उदाहरण उतना ही समझो। यह दृष्टांत अभी भूल जाओ। अभी यहां प्रतिसमय विशुद्धि बढ़ रही है। पहला जो ग्रुप है, जिसमें ३९ अलग-अलग परिणाम हैं उनकी विशुद्धि दूसरे समय में बढ़ गयी। अब विशुद्धि बढ़कर; विशुद्धि थोड़ी हीनाधिक बढ़ेगी। तो उनके अभी विशुद्धि के परिणाम जो ३९ संख्या थी, वह परिणामों की संख्या बढ़कर ४० हो गयी।

प्रत्येक खण्ड में जीव अनंत हैं और हर एक की अपनी विशुद्धि बढ़ने का जो पर्सेंट है वह जुदा-जुदा हो सकता है। यहां ३९ संख्या थी वह दूसरे समय में ४० हो गयी यानी जो पहले समय में ४०वाला ग्रुप था, वैसी विशुद्धि पहले खण्डवालों की दूसरे समय में हुयी। परंतु जो पहले समय में चौथा खण्ड था; कौनसा ? वह ४२वाला तो वह बढ़कर ४३वाला नया हो गया। परंतु ४२वाला पहले समय में चौथा खण्ड था, पहले समय में ४१वाला जो तीसरा खण्ड था, दूसरे समय में वह ४२वाले जैसा हो गया। विशुद्धि अनंतगुणा बढ़ी, परंतु परिणामों की संख्या एक से बढ़ गयी। उनके परिणाम जुदे-जुदे हो गये। नहीं समझे ? ३९ भूल जाओ, १ से ४ तक लेते हैं। १ से ४ तक के और हर एक अगर चार गुणा बढ़ते, हर एक को चार गुणा होता। तो १ का ४ हो जाता, २ का ८ होता, ३ का १२ होता और ४ का १६ होता। परंतु यहां हर एक का एक्झॅक्टली चार गुणा नहीं बढ़ता न, कोई साढ़े तीन गुणा होगा, कोई चार गुणा होगा, कोई थोड़ा हीनाधिक हो सकता है। तो ऊपर ४, ८, १२, १६ परिणामों ऐसे चार के बदले पांच अलग-अलग परिणाम होंगे। इसतरह से उसको समझना।

श्रोता: यह तो मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी कषाय की शुरुआत है ? मिथ्यात्व में कोई विशुद्धि नहीं है। अभी मिथ्यादृष्टि जीव के परिणामों में जो तत्त्वज्ञान की निर्मलता बढ़ रही है उन विशुद्धि के स्थानों की बात चल रही है। अधःकरण में उसके परिणाम कितने अलग-अलग हो सकते हैं उसकी बात है। पहले समय के कुछ परिणामों की ऊपर के दूसरे समय के, तीसरे समय के, चौथे समय के कुछ परिणामों के साथ समानता हो सकती है। अभी पहले समय का जो चौथा खण्ड है; कौनसा ? ४२वाला, अब ढूंढो ऊपर कहां तक है ? देखो, वैसा दूसरे समय में तीसरा खण्ड है, तीसरे समय में दूसरा खण्ड है और चौथे समय में पहला खण्ड है। तो यह समानता कितने समय तक है ? चार समय तक है। अब ऐसा ही देखो, ऊपर कहीं से भी शुरू करो। चौथे समय में चार खण्ड कैसे थे ? ४२, ४३, ४४, ४५। अब ४५ चौथे समय में भी है, पांचवें में भी है, छठे में भी है और सातवें में भी है। यानी ४, ५, ६, ७ चार समयों तक समानता है। यही उसका अर्थ होता है।

श्रोता: ऐसे कितने समय तक की समानता होती है ? अभी-अभी चार समय तक समानता मानी थी, हमने कुल सोलह समय मान लिये हैं। परंतु उसमें से समानता कहां तक है ? सोलह का संख्यातवां भाग लिया। यह जो चार संख्या है उसके और

नाम भी हैं। अभी हम उसमें उलझेंगे नहीं। श्रोता: यह प्रमाण कैसे निकाला ? हां, उसके कितने खण्ड होते हैं और उसमें कैल्क्युलेशन कैसे करना वह पूरा गणित है। पं. टोडरमलजी ने कोई गणित बाकी नहीं छोड़ा है। परंतु हम उस गणित को छोड़कर आगे बढ़ेंगे क्योंकि गणित की किसीको अलर्जी होती है। जहां तक वह समानता है उसको कहेंगे निर्वर्गणाकांडक। यहां चार समय तो हमने मान लिये हैं, परंतु उसके विशिष्ट असंख्यात समय होंगे। क्योंकि पूरा अंतर्मुहूर्त है, अंतर्मुहूर्त के भी विशिष्ट यानी पर्टिक्युलर असंख्यात समयों तक समानता हो सकती है। यह उसका अर्थ होता है।

श्रोता: क्या अधःप्रवृत्तकरण का टाइम सबके लिये समान है ? अधःप्रवृत्तकरण का समय सबके लिये समान है। समयों में कोई हीनाधिकता नहीं है, परिणामों में विशेषता यानी डिफरन्स है। तीनों करणों का काल सबका समान है। पहले गुणस्थान से चौथे गुणस्थान में जानेवाले की बातें, उनकी विशुद्धि अलग होगी। उनके परिणामों में समानता-असमानता जुदी होगी। पहले गुणस्थान से पांचवें गुणस्थान में जानेवाले की अलग होगी, पहले गुणस्थान से सातवें गुणस्थान में जानेवाले की अलग होगी। उनके कांडकघात का प्रमाण, स्थितिबंध का प्रमाण जो कुछ हैं वे सब विधान जुदे होंगे। परंतु चौथे गुणस्थान में जानेवाले सभी जीवों के परिणामों की विशुद्धि अनिवृत्तिकरण में जाकर समान होगी। पहले से पांचवें में जानेवालों की विशुद्धि अनिवृत्तिकरण में जाकर समान होगी। वह बात अभी आयेगी। अभी तो अधःकरण के अन्य विधान देखना है। अभी तो केवल ऊपर और नीचे में क्या समानता हो सकती है, उसकी संख्या में और परिणामों में समानता का अर्थ यह होता है। संख्या यानी ३९, ४०, ४१, ४२ इसको हम संख्या कहेंगे और उसका जो नंबर है न, १ नंबर का परिणाम, २ नंबर का परिणाम, ४ नंबर का परिणाम, १६२ नंबर का परिणाम - यह परिणाम है। नीचे के जो ग्रुप बनाये वह संख्या और उसका जो नंबर है १ला, २रा, ३रा, वह है परिणाम। भिन्न-भिन्न जीवों की अपेक्षा परिणाम नीचे के समय में और ऊपर के समय में समान हो सकते हैं। भिन्न-भिन्न जीवों की अपेक्षा समय तो डिफरेंट है ही न।

हां, बाकी चर्चा १५ मिनट के बाद करेंगे। अभी हम रुकेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२२. करणलब्धि - अधःकरण - विशेष चर्चा

सिद्धान्तचक्रवर्ती श्री नेमिचन्द्र आचार्य ने लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका ढूंढ़ारी भाषा में लिखी है। उसीके आधार से अपनी पंचलब्धि की चर्चा चल रही है। अधःप्रवृत्तकरण के नीचे के, ऊपर के समयवर्ती जीवों के परिणाम समान हो सकते हैं, उसकी चर्चा चल रही है। उसीको अनुकृष्टि रचना कहते हैं। भिन्न-भिन्न जीवों के परिणामों की अपेक्षा यह बात चल रही है।

तीन काल के अनंत जीव जो अधःप्रवृत्तकरण में हैं, हम अगर उनके टोटल परिणाम देखेंगे तो जुदे-जुदे असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम पाये जाते हैं। प्रथमादि समयों से द्वितीयादि समयों में थोड़े बढ़ते हैं, संख्या बढ़ती है। फिर भी सामान्य से उसका कथन क्या है ? असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम। लोगों का ऐसा कहना है कि दूसरों के परिणामों का तुलनात्मक अभ्यास करने से हमें क्या लाभ है ? जीवों के कहां कैसे क्या परिणाम होते हैं उसका शास्त्र में वर्णन किया जाता है। एक-एक जीव की विशुद्धि तो अनंतगुणा बढ़ रही है। वह सहज बढ़ेगी। क्यों ? जीव क्या कर रहा है ? तत्त्वनिर्णय तक पहुंच रहा है। उसके तत्त्वनिर्णय में आत्मसन्मुख परिणाम चल रहे हैं और उसीमें उसकी निर्मलता बढ़ रही है, अभी सम्यग्दर्शन होनेवाला है। एक अंतर्मुहूर्त में वह सम्यक्त्व प्राप्त करनेवाला है। उस जीव के परिणामों की यहां चर्चा चल रही है।

ये तीन नाम क्यों पड़े हैं ? करणलब्धिवाले जीवों के परिणामों में जो असमानता या समानता पायी जाती है, उसीके कारण ये नाम पड़े हैं। अधःप्रवृत्तकरण का अन्य-अन्य जीवों के परिणाम की अपेक्षा क्या स्वरूप है वह देखकर जीव में और कर्मों में क्या हो रहा है उसकी भी बात हम करेंगे। पहले हमने संख्या और परिणाम इतना ही कहा था। अभी हमारे सामने अंकसंष्टि है, उसके फिगर्स हैं। इसको दुबारा देखेंगे। पृष्ठ ११८, सेकंड पैरेग्राफ- **अधःप्रवृत्तकरण के अंतर्मुहूर्त काल के प्रतिसमय में परिणामों की संख्या विशिष्ट होती है।** जैसे हमने मान ली थी १६२ थी, फिर १६६ हुयी, फिर उसमें प्रतिसमय चार-चार की वृद्धि हुयी। **उसमें पहले समय में जितने परिणाम हो सकते हैं उनसे दूसरे समय में विशुद्धि तो अनंतगुणा बढ़ती ही है परंतु परिणामों की संख्या में विशिष्ट वृद्धि होती है।** हमने माना है संख्या में

प्रतिसमय चार की विशिष्ट वृद्धि होती है। पहले समय में परिणामों की अलग-अलग संख्या १६२ थी। दूसरे समय में ? १६६ हो गयी। परंतु पहले समय में संख्या १६२ थी उसमें परिणाम एक से लेकर १६२ तक थे और दूसरे समय में संख्या १६६ हुयी, जिसमें ४०वें परिणाम से लेकर २०५वें तक के परिणाम हैं। ख्याल में आयी यह बात ?

तीसरे समय में विशुद्धि उससे भी अनंतगुणा होती है और उनकी संख्या में वैसी ही समान वृद्धि होती है। वैसी ही समान यानी ? जैसे १६२ में ४ की वृद्धि होकर संख्या १६६ हुयी थी और १६६ में ४ की वृद्धि होकर संख्या १७० होगी। उसमें ४ और बढ़ेंगे तो १७४ होगी। परंतु अगर उनके नंबरिंग देखेंगे तो उसमें आगे-आगे के परिणाम होंगे। **प्रतिसमय संख्या में समान वृद्धि होती है इसे चय कहते हैं।** चय यानी फिक्स्ड डिफरन्स। उतनी-उतनी वृद्धि प्रतिसमय होती है। **इसतरह सभी समयों में कुल परिणामों की संख्या असंख्यात लोकप्रमाण है।** स्टार्टिंग में भी असंख्यात लोक थी। थोड़े बढ़े, थोड़े बढ़े, थोड़े बढ़े फिर भी टोटल असंख्यात लोक; अभी उसको असंख्यात लोक ही कहेंगे। पहले जो बताया था असंख्यात लोक उससे बड़ावाला असंख्यात लोक। **इसका सविस्तार वर्णन जीवकाण्ड, लब्धिसार आदि ग्रंथों में किया है। हम यहां स्थूलरूप से उसकी चर्चा करेंगे।** जीवकाण्ड में भी गुणस्थान के प्रकरण में इसकी चर्चा है। गुणस्थानों में भी सातवें सातिशय अप्रमत्त गुणस्थान में अधःकरण होता है - जो श्रेणी के पहले होता है, वहां भी यह पूरा विषय समझाया है। लब्धिसार में प्रथमोपशम सम्यक्त्व के प्रकरण में तो यह विषय है ही।

हम यहां काल्पनिक संख्यायें लेकर इस अधःप्रवृत्तकरण की अनुकृष्टि रचना को समझेंगे। अनुकृष्टि रचना यानी ऊपर और नीचे के परिणाम और संख्या की समानता की शक्यता को अनुकृष्टि रचना कहते हैं। **इन काल्पनिक संख्याओं द्वारा गणित को समझना अंकसंदृष्टि कहलाता है** छोटी-छोटी फिगर बताकर हमें यह विषय समझाया जाता है। **और यथार्थ संख्याओं द्वारा उसे समझना अर्थसंदृष्टि कहलाता है।** यथार्थ में उसको असंख्यात लोक लिखेंगे। फिर उसमें कितनी वृद्धि होती है वह सब लिखेंगे तो उसको कहेंगे अर्थसंदृष्टि। **अधःप्रवृत्तकरण की अंकसंदृष्टि इसप्रकार है-** हमने टेबल पढ़े थे न, अभी उसीको हम यहां पढ़ेंगे। **अधःप्रवृत्तकरण का काल अंतर्मुहूर्त है,** वैसे अंतर्मुहूर्त में तो असंख्यात समय होते हैं यानी संख्यात आवली होती हैं परंतु हम यहां छोटी संख्या माननेवाले हैं। **हम मानेंगे १६ समय हैं।**

त्रिकालवर्ती अनंत जीवों के अधःकरण परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण हैं, हम मानेंगे कि ३०७२ हैं। १६ समयों के मिलकर परिणामों की टोटल संख्या ३०७२ है।

आपने पृष्ठ १२३ पर टेबल देखा था, उसमें १६२, १६६, १७०, १७४... ऊपर २२२ तक इन सबकी टोटल करो - ३०७२। कैसे निकाला ? लिखा है इसलिये ? हिसाब करके निकालो। बोलो निलेशभाई, निकालेंगे न ? एक मिनट का अवसर है। देखो, १६२ से शुरू किया, १६२ सबमें कॉमन है तो १६२ इन टू १६। करो चेतन, मोबाइल से नहीं, डायरेक्ट करो न। १६२ इन टू १६, २५९२ हो जायेंगे; १६२ संख्या १६ बार आयी है तो २५९२ हो गया। हर बार चार-चार की वृद्धि हुयी। कितनी बार हुयी ? १५ बार। दूसरे समय में एक बार, तीसरे समय में दो बार, चौथे समय में तीन बार, पांचवें समय में चार बार तो टोटल कितनी हुयी ? $१+२+३+४+५ \dots १५$ तक गिनो। १ से १५ तक की टोटल करो। फिर उस संख्या को इन टू ४ करना पड़ेगा। $१+२+३+४ \dots १५$ तक गिनो, उसकी टोटल १२० होगी। इसको संकलनधन कहते हैं। उसका फॉर्म्युला बताती हूं।

१५ का संकलनधन यानी १ से लेकर १५ तक की संख्याओं की टोटल करनी है। उसका फॉर्म्युला क्या है ? १५ इन टू उसके आगे की संख्या है १६ डिक्वाइडेड बाय २। १५ गुणा ८ तो १२० हो जायेंगे। हर बार चार-चार की वृद्धि हुयी, इसलिये इन टू ४। $१२० \times ४ = ४८०$ । $२५९२ + ४८० = ३०७२$ । यहां लिखा है न टोटल परिणाम ? यह भी पुस्तक में लिख देते तो पुस्तक मोटी हो जाती। मूल पुस्तक में है। ज्ञानमार्गणा वगैरह में हमने सिखाया है, जीवकाण्ड का विषय है। १६२ है वह मूल संख्या १६ बार ली है और उसमें चयों की टोटल-चयधन मिलाना। हम चय को च कहेंगे। १ च + २ च + ३ च + ४ च। ऐसे १५ च तक गिनना है। उसके लिये एक अधिक दो, अधिक तीन, अधिक चार, अधिक पांच, ... ऐसे १५ तक टोटल करो और उसे चय ४ से गुणा करो। उसका फॉर्म्युला मैं आपको बताती हूं। हमारे पास ऐसे अलग-अलग बहुत सारे फॉर्म्युले हैं।

राजकोट में पंचकल्याणक के अवसर पर स्कीम निकाली थी। वहां बताया गया कि यहां एक बॉक्स रखा है। उसमें एक से लेकर २५०० रुपये तक चिट्ठियां रखी हैं। आप कोई भी चिट्ठी निकालो और उस पर लिखा है उतना दान दे दो। किसीके हाथ में १ रुपये की चिट्ठी आयेगी तो सोचेगा दे दो उसमें क्या है ? किसीके १० रुपये, बिलकुल दे देंगे। क्यों नहीं देंगे ? मैक्झिमम तो २५०० ही देने पड़ेंगे न ! लोगों ने फटाफट

चिट्ठियां निकाली। सब चिट्ठियां निकल गयीं। टोटल कितने मिले होंगे बोलो ? लाखों रुपये दान में आये। 2500×2501 डिक्वाइडेड बाय २। उतने हो जायेंगे। कितना ? ३१,२६,२५०। मैंने जयपुर के पियूष जैन को बोला कि अच्छा है, आपने ३१ लाख रुपये से अधिक कमाये। उसने कहा आपको कैसे समझा ? मैंने कहा अरे, हम करणानुयोगवालों को पूछ रहे हैं आपको कैसे समझा ? आप भी अपने-अपने गांव में यह स्कीम निकालो।

पहले समय से लेकर सोलहवें समय तक परिणामों की टोटल हमने ३०७२ देखी। **पहले समय में अलग-अलग जीवों की विशुद्धि अलग-अलग होती है।** हमने देखे नंबर १, नंबर २, नंबर ३। यानी नंबर १ से नंबर २ की विशुद्धि ज्यादा है। **सबसे जघन्य विशुद्धि को हम पहले क्रमांक का परिणाम कहेंगे, उससे अधिक विशुद्ध कोई अन्य परिणाम दूसरे क्रमांक पर है, उससे भी अधिक विशुद्ध ऐसा तीसरा परिणाम है।** इसप्रकार पहले समय में संभवते ऐसे परिणाम यहां अंकसंदृष्टि में १६२ हैं। जो यथार्थ में असंख्यात लोक हैं। **इन परिणामों के हम चार खण्ड करेंगे - चार ग्रुप्स बनायेंगे। परंतु पहले ग्रुप से दूसरे में एक परिणाम अधिक होगा।** जैसे पहला ग्रुप है हमारा ३९ का, दूसरा ४० का, तीसरा ४१ का और चौथा ४२ का। एक-एक से बढ़ते हुये हैं। **दूसरे से तीसरे में और एक अधिक तथा तीसरे से चौथे में और एक अधिक।** उसकी बात छोड़ दो। अब नीचे दूसरा पॅरेग्राफ-

पहला खण्ड कितना था ? ३९ का। जैसे हमने परिणामों में १६२ में ४ मिलाये, फिर और ४ मिलाये, फिर और ४ मिलाये। अभी खण्डों में जो संख्या है तो उसमें हमने एक-एक मिलाया है। पहले ग्रुप की टोटल संख्या ३९, दूसरा प्लस १ यानी ४०, तीसरा ४१, चौथा ४२। यहां तक बात समझ में आयी ? तो **चार खण्ड इसप्रकार होंगे- ३९, ४०, ४१ और ४२। इसका तात्पर्य यह हुआ कि एक से ३९ तक भिन्न-भिन्न परिणामों का एक खण्ड या ग्रुप है। ४० से ७९ तक भिन्न-भिन्न परिणामों के द्वितीय खण्ड में कुल ४० परिणाम हैं। तृतीय खण्ड में ८० से १२० तक कुल ४१ परिणाम हैं और चतुर्थ खण्ड में १२१ से १६२ तक कुल ४२ परिणाम हैं।** इसतरह पहले समय में कुल १६२ परिणाम हो सकते हैं। उसमें चार खण्ड हैं। यहां तक समझ में आयी बात ? संदृष्टि हमने देखी थी, उसीके आधार से हम बात कर रहे हैं।

पहले परिणाम को प्रथम समय के प्रथम खण्ड का जघन्य परिणाम कहते हैं वह पहले खण्ड का मिनिमम विशुद्धिवाला परिणाम है और ३९वें परिणाम को प्रथम समय के प्रथम खण्ड का उत्कृष्ट परिणाम कहते हैं। यहां तक बात ख्याल में आयी ? १ से ३९ तक एक से दूसरा, दूसरे से तीसरा अधिक-अधिक विशुद्धिवाला है। परंतु पहले से ३९वाला अनंतगुणा विशुद्ध हुआ। और २रे से ३८वें परिणाम तक सभी प्रथम खण्ड के मध्यम परिणाम कहलाते हैं। प्रत्येक खण्ड के जघन्य परिणाम से उसी खण्ड का उत्कृष्ट परिणाम अनंतगुणा विशुद्ध होता है। अपनी भाषा में १ नंबर से ३९ नंबर अनंतगुणा विशुद्ध होगा। परंतु ३९ से ४०वां थोड़ा विशुद्ध नहीं है, वह भी अनंतगुणा है। अभी उसके रीझनिंग और डिटेल में जाने की यहां जरूरत नहीं है।

उसी प्रकार ४०वां परिणाम प्रथम समय के द्वितीय खण्ड का जघन्य परिणाम है, ७९ वां परिणाम प्रथम समय के द्वितीय खण्ड का उत्कृष्ट परिणाम है तथा ४१ वें से ७८ वें परिणाम तक सब परिणाम मध्यम हैं। ऐसे ही तीसरे खण्ड में लेना। अपने-अपने जघन्य से अपना-अपना उत्कृष्ट अनंतगुणा होगा। यह ध्यान में रखना कि भिन्न-भिन्न जीवों के ये भिन्न-भिन्न परिणाम हैं। १ले परिणाम से २रा परिणाम अधिक विशुद्ध है, उससे तीसरा अधिक विशुद्ध है। १ले परिणाम से ३९वां परिणाम अनंतगुणा विशुद्ध है। और एक आगे की स्पेशल बात देखो। ३९वें परिणाम से ४०वां परिणाम अनंतगुणा विशुद्ध है। वहां विशेष विशुद्ध नहीं कहा। पहले ग्रुप से दूसरे ग्रुप में जाते हैं तो अनंतगुणा हो जाता है। यानी ३९वें से भी ४०वां अनंतगुणा विशुद्ध हो जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि पहले खण्ड के उत्कृष्ट परिणाम से यानी ३९वें से दूसरे खण्ड का जघन्य परिणाम अनंतगुणा विशुद्ध है। यह पहले समय की बात हुयी। पहले समय में हमने चार खण्ड किये। हर एक खण्ड का अपना-अपना जघन्य से अपना-अपना उत्कृष्ट अनंतगुणा है। परंतु पहले खण्ड के उत्कृष्ट से दूसरे खण्ड का जघन्य यानी ३९ से ४० नंबर, वह अनंतगुणा विशुद्ध है।

श्रोता: १ से ३९ में विशुद्धि थोड़ी-थोड़ी बढ़ती है ? थोड़ी-थोड़ी बढ़ती है। अभी तो थोड़ी-थोड़ी ही कहेंगे। वैसे १ से लेकर ३९ तो हमने उदाहरण में कहा है, वह भी असंख्यात लोकप्रमाण है। उसमें तो बीच में असंख्यात लोक बार अनंतगुणी विशुद्धि बढ़ेगी। परंतु उन सबकी चर्चा नहीं करनी है। १ से ३९ बस थोड़ा-थोड़ा विशुद्ध होता है इतना ही हम कहेंगे। थोड़ी बात पचेगी, तो ग्रंथ में से विशेष जान लेना। श्रोता: विशुद्ध

परिणाम का कोई उदाहरण ? विशुद्ध परिणाम का कैसा उदाहरण ? जीव तत्त्वविचार में मग्न है। ये सारी केवलज्ञान गम्य बातें हैं। उसमें आप क्या उदाहरण चाहते हैं ? विशुद्धि अविभागप्रतिच्छेदों में गिनते हैं। हमने उसको पहला नंबर, दूसरा नंबर दिया, बस इतना याद रहे बहुत हो गया। अब जिसने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया क्या वह बता सकेगा कि मेरा यह नंबर का चल रहा था, फिर यह नंबर ? अरे, वह तो अंतरंग में लीन है। हां, केवली के ज्ञान में ये बातें आती हैं।

अब प्रत्येक जीव की द्वितीय समय में अपने-अपने पूर्व समय के परिणाम की अपेक्षा विशुद्धि अनंतगुणा बढ़ेगी। जो पहले एक नंबर पर था उसकी विशुद्धि कितनी बढ़ेगी ? ३९ तक के परिणाम जैसे नहीं, एकदम ४० जैसी हो सकती है। भले १ से लेकर ३९ तक अनंतगुणा विशुद्धि के जुड़े-जुड़े परिणाम हैं, परंतु उसकी विशुद्धि इतनी बढ़ेगी कि जो आगेवाला ४० का ग्रुप है, उसमें से कोई परिणाम उसका होगा। दूसरे खण्ड के परिणामों जैसी होगी, हां। तो कहते हैं प्रत्येक जीव के अपने-अपने परिणाम हैं वे अनंतगुणा विशुद्ध हो जाते हैं तो **उसीप्रकार कुछ परिणामों की संख्या भी बढ़ जाती है।** यहां तो १ से ३९ तक के परिणाम थे। हर एक की विशुद्धि अनंतगुणा बढ़ी। परंतु अनंतगुणा में भी थोड़ा हीनाधिक होकर; उसके ३९ भेद नहीं, ४० भेद हो गये। जो पहले समय के द्वितीय खण्ड के थे, वैसे हो गये। **हम मानते हैं कि प्रत्येक खण्ड की संख्या में एक की वृद्धि होती है** जैसे ३९ से ४०, ४० से ४१ और ४१ से ४२। **अर्थात् प्रत्येक समय में चार-चार परिणामों की वृद्धि होती है।** क्या कहा ? प्रत्येक खण्ड में एक-एक वृद्धि की। ३९वाला था वह ४० हुआ, ४० था वह ४१ हुआ, ४१ था ४२ हुआ, ४२ था वह ४३ हुआ। एक-एक खण्ड में एक-एक की वृद्धि हुयी तो चारों खण्ड मिलकर एक समय में परिणामों की संख्या में चार की वृद्धि हुयी यह कहना है।

श्रोता: विशुद्धि सब असंख्यात लोकप्रमाण है ? हर एक को असंख्यात लोक कहेंगे। उसकी हीनाधिकता ख्याल में नहीं आती है। इसलिये उसको यहां छोटी संख्या देकर समझाने का प्रयास किया है। पं. टोडरमलजी ने यह संदृष्टि बनायी। **श्रोता: ऐसा सोलहवें समय तक है ?** हां, हम सोलहवें समय तक आयेंगे। अभी तो पहले, दूसरे, तीसरे की बात समझेंगे। देखो- **पहले समय में हमने १६२ परिणाम देखे थे तो दूसरे समय में विशुद्धि अनंतगुणा होती है और टोटल चारों खण्डों की मिलकर कितने होंगे ? परिणाम १६६ होते हैं।** यह बात समझ में आयी ? **प्रथम समय में प्रथम खण्ड**

के परिणाम १ से ३९ थे उनकी प्रत्येक की विशुद्धि अनंतगुणा बढ़ती है। और संख्या में भी वृद्धि हुयी- केवल ३९ भेद नहीं हुये, उसके और कुछ एक्स्ट्रा भेद हो गये। संख्या में भी वृद्धि होकर अब उनकी विशुद्धि और संख्या ४० से ७९ के समान होती है। जो पहले समय का दूसरा खण्ड था। देखो, प्रथम समय के द्वितीय खण्ड में जितनी विशुद्धि और संख्या थी, उतनी ही विशुद्धि और संख्या द्वितीय समय के प्रथम खण्ड में होती है। अभी इसका अर्थ समझ में आया ?

उसीप्रकार पहले समय के द्वितीय खण्ड में ४० से ७९ तक ४० परिणाम थे। दोनों को गिनो- ४० को भी गिनो और ७९ को भी गिनो। उनकी विशुद्धि अनंतगुणा और संख्या एक-एक खण्ड में संख्या एक-एक से बढ़ती है। एक से बढ़कर वे द्वितीय समय के द्वितीय खण्ड में ८० से १२० तक ४१ हो जाती हैं। यहां तक समझ में आया ? उसके साथ आप टेबल देखना तो समझ में आ जायेगा क्या कहना चाहते हैं। पहले समय के तृतीय खण्ड में ८० से १२० तक के ४१ परिणाम थे उनकी विशुद्धि और संख्या बढ़कर दूसरे समय के तृतीय खण्ड में १२१ से १६२ तक ४२ हो जाते हैं। पहले समय के चतुर्थ खण्ड में यह पहले समय का सबसे अधिक विशुद्धवाला ग्रुप था। पहले समय के चतुर्थ खण्ड में १२१ से १६२ तक ४२ परिणाम थे उनकी विशुद्धि और संख्या बढ़कर दूसरे समय के चतुर्थ खण्ड में १६३ से २०५ तक ४३ परिणाम हो जाते हैं। इसतरह दूसरे समय के कुल परिणाम $४०+४१+४२+४३= १६६$ हो जाते हैं। यहां तक बात समझ में आयी ?

यह संख्या और परिणाम का अर्थ होता है। उन्हें निम्न प्रकार लिखेंगे। जो अभी हमने पढ़ा है उसीको टेबल में इसतरह से लिख दिया है। तीसरे समय में भी परिणामों की विशुद्धि तो अनंतगुणा बढ़ती है और संख्या समान वृद्धि से- समान चय से बढ़ती है। यानी वह १६६ थी, अभी १७० हो जायेगी। दूसरे समय का पहला ग्रुप ४० का था। वह ४१वाला हो जायेगा। चय अर्थात् डिफरन्स। पहले समय में हमने १६२ परिणाम माने थे, दूसरे समय में ४ से वृद्धि होकर उनकी संख्या १६६ होती है, तीसरे समय में और ४ से वृद्धि होकर उनकी संख्या १७० हो जाती है। एक-एक समय के कुल परिणामों की संख्या में ४ से वृद्धि होती है तथा प्रत्येक खण्ड के परिणामों में एक से वृद्धि होती है। अभी दूसरे समय में ४० था वह तीसरे समय में ४१ हो जायेगा, जो ४१ था वह ४२ होगा, जो ४२ था वह ४३ होगा, इसतरह से।

अधःकरण के हमने १६ समय माने थे। उसमें प्रत्येक समय के परिणामों की संख्या क्रमशः क्रमशः यानी पहले समय, दूसरे समय, तीसरे समय - १६२, १६६, १७०, १७४, १७८, १८२, १८६, १९०, १९४, १९८, २०२, २०६, २१०, २१४, २१८ और २२२ होगी तथा इन सबको मिलाकर अधःकरण के कुल परिणाम ३०७२ होंगे। अभी हमने उसका हिसाब देखा था। **इन १६ समयों के परिणाम तथा खण्ड निम्न प्रकार कोष्टक द्वारा देखते हैं।** हमने आपको पृष्ठ १२२ पर पूरा कोष्टक बताया था। उसीको हम यहां पढ़ेंगे। अब इस कोष्टक को गौर से देखोगी तो यह बात ख्याल में आयेगी कि ३९ परिणाम तो केवल पहले समय में ही हैं। अब देख लो टेबल - यह ३९वाला ग्रुप आपको ऊपर कहीं दिखता है ? नहीं क्योंकि पहले समय के सर्व जघन्यवाले परिणाम हैं। वह पहला ग्रुप है, वह ऊपर कहीं भी नहीं है क्योंकि ऊपर विशुद्धि बढ़ गयी है। उस जैसा कोई परिणाम नहीं है। **उसीतरह १६वें समय के चतुर्थ खण्ड के ५७ परिणाम अन्य कहीं भी नहीं हैं।** उसको भी देख लो क्योंकि १५वें समय में ५६वाला ग्रुप था वह ५७वाला हुआ। वह अंतिम समय का अंतिम ग्रुप है। वह सबसे ज्यादा विशुद्ध है। नीचे कहीं भी वैसे परिणाम नहीं हैं।

४० परिणाम पहले और दूसरे समय में समान हैं। पहले समय में दूसरा खण्ड ४० का था, वह दूसरे समय में पहला खण्ड होगा। **४१ परिणाम पहले, दूसरे और तीसरे समय में समान हैं** आप वह चार्ट में देखकर कम्पेअर करो। तथा **४२ परिणाम पहले, दूसरे, तीसरे तथा चौथे समय में समान हैं।** परिणामों की यह समानता ४ समयों तक ही पायी जाती है। हमारे उदाहरण में - हमने जो संदृष्टि बनायी उसमें। जैसे ४८ परिणाम ७वें, ८वें, ९वें और १०वें समयों में समान हैं। जितने समयों तक परिणामों में समानता हो सकती है उतने समयों को **निर्वर्गणाकांडक कहते हैं। जो यहां ४ है।** यानी ४ समयों का यहां निर्वर्गणाकांडक है, वहां तक समानता हो सकती है।

हम प्रत्येक समय के परिणामों में उतने ही खण्ड करते हैं। जहां तक समानता है न ? ४ समयों तक समानता है इसलिये हमने ४ खण्ड किये हैं। वे खण्ड भी ऐसे किये हैं कि वे समान चय से वृद्धिगत हो। इसलिये उसको समान चय यानी एक-एक से वृद्धिवाले - तीन बार एक-एक की वृद्धि हुयी। यानी एक की वृद्धि, दो की वृद्धि और तीन की वृद्धि। नहीं समझे ? ३९ से ४० में एक ज्यादा है और ४१ में ३९ से दो

ज्यादा है। पहले हमने ३९ के ४ गुण किये। फिर दूसरे में एक मिलाया, तीसरे में दो मिलाये, चौथे में तीन मिलाये। जैसे हमने पहले १६२ सोलह बार देखा था वैसे यहां भी बात है। जितने समयों तक परिणामों की समानता है, हमने चार माना था, हमने एक-एक समय में उतने खण्ड किये थे यह उसका अर्थ है। **एक-एक समय के परिणाम खण्डों को वर्गणाकांडक कहते हैं। वर्गणा समय की समानता को कहते हैं, उससे रहित ऊपर समयवर्ती परिणाम खण्डों का कांडक निर्वर्गणाकांडक है।**

वर्गणाकांडक और निर्वर्गणाकांडक शब्द कैसे तैयार हुआ ? उसकी बात है। एक समय के परिणामों को हम वर्गणा कहेंगे और अन्य-अन्य समयों तक कहां तक समानता है उसको निर्वर्गणाकांडक कहेंगे। **एक समय के खण्ड हम आड़ी पंक्ति में लिखते हैं।** हॉरिज़ॉन्टल। **उन चार खण्डों को तिर्यक् गच्छ कहते हैं।** इतने अन्य-अन्य नाम क्यों बता रहे हैं ? जब आप स्वयं ग्रंथ पढ़ोगे तो गच्छ क्या होता है ? निर्वर्गणा क्या है ? ये बहुत प्रश्न उठते हैं और फिर कन्फ्यूजन होता है तो हम छोड़ देते हैं। देखो- **और अधःकरण के १६ समय एक के ऊपर एक लिखते हैं तो १६ को ऊर्ध्वगच्छ कहते हैं।** हॉरिज़ॉन्टल को क्या कहेंगे ? तिर्यक् और वह कैसा है ? ऊर्ध्व-व्हर्टिकल।

मूल ग्रंथ पढ़ने में आसानी हो, इसलिये ये शब्द मैं यहां लिख रही हूं। गत नौ सालों में हमने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका के सर्व भाग यानी जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार-क्षपणासार तथा उनके अर्थसंहृष्टि अधिकार का अनेक बार अभ्यास किया, मैंने उसे पढ़ाया भी। पहले हम दोनों ही पढ़ते थे। फिर हमारे स्वाध्यायी हमारे पीछे पड़े, हमें भी पढ़ाओ। उनको भी पढ़ाया। परंतु अपनी मंद बुद्धि से उसका अर्थ स्पष्ट होते-होते बहुत कठिनाई पड़ी थी। क्योंकि किसीसे पढ़ने का मौका तो था ही नहीं। हम ही पढ़ते गये थे। मैं नहीं चाहती कि उसी कठिनता के कारण तुम ग्रंथों का पढ़ना ही कहीं छोड़ दो ! इसलिये कई शब्द जान बूझकर बता रही हूं।

यहां अंकसंहृष्टि में १ से ३९ तक के परिणाम अधिकाधिक विशुद्ध होते हैं, ऐसा कहा है हमने केवल १ से ३९ की बात कही न, इसलिये थोड़े विशुद्ध-थोड़े विशुद्ध कहा है। यथार्थ में क्या है ? परंतु यथार्थ में यानी अक्चुअल में **एक-एक खण्ड के परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण होते हैं।** हमने ३९ ही बताये। खण्ड भी असंख्यात लोक और सब खण्ड मिलकर भी असंख्यात लोक - बड़ा असंख्यात लोक। **उसमें**

षट्स्थानपतितवृद्धि के असंख्यात लोकप्रमाण स्थान होते हैं। एक बार षट्स्थान वृद्धि होती है तो उसमें एक बार अनंतगुणवृद्धि लास्ट में होती है। ऐसी अनंतगुणवृद्धि भी इस बीच में असंख्यात बार हो चुकी है। १ से ३९वाला एक बार ही अनंतगुणा नहीं है। असंख्यात लोक बार अनंतगुणा है। उसकी मॅग्निट्यूड ख्याल में आवे इसलिये ये बातें बताती हूं। षट्स्थानवाली वृद्धि यानी अनंतभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि आदि वह सब विषय यहां का नहीं है। परंतु बीच में अलग-अलग विशुद्धि के इतने भेद हैं यह कहना चाहते हैं। **यह विषय लिखकर समझाना कठिन है, इसलिये उसकी चर्चा यहां नहीं करूंगी। तुम्हें जिज्ञासा हो तो अभी-अभी ज्ञानमार्गणा में मैंने यह विषय विस्तार से समझाया है उसकी कॅसेट सुन लेना।**

उस समय कॅसेट चलती थी। उसके बाद जो कॉम्प्यूटर पर भी रेकॉर्ड हुये, उनकी सीडीज आयी, फिर DVDs भी आयी। यहां कितनी बार शिबिर हुये थे। तो उनकी व्हिडिओज् भी उपलब्ध हैं। अभी वे सारे यूट्यूब पर भी हैं। आपको पेपर दिया है न, उसमें लिखा है कहां क्या मॅटर उपलब्ध है। अभ्यास करनेवालों के लिये बहुत सारे साधन उपलब्ध हैं और सारे फ्री में हैं। उसका कोई चार्ज नहीं है। बस पढ़ो, इतना ही है। ये सारे व्हिडिओज् हमारे किशनभाई ने यूट्यूब पर फ्री में अपलोड किये हैं, वह भी है, कोई चार्ज नहीं। हमसे भी कुछ नहीं लिया और वे भी किसीसे कुछ नहीं ले रहे हैं। यहां अपने जितने २५-३० शिबिर हुये हैं न, उनका सारा मॅटर हमने उनको दे दिया है और वह सारा उन्होंने जैनतत्त्व नाम से यूट्यूब पर डाला है। २७ साल की छोटी उम्र है और अपना स्वयं का बिज़नेस है। रातभर में अपलोडिंग करते हैं। एक-एक घंटे का प्रवचन अपलोड करने के लिये कई घंटे लगते हैं। बहुत मेहनत चल रही है क्योंकि ये सारे स्वाध्याय के प्रति समर्पित लोग हैं। यंगस्टर्स ऐसी रुचि लेते हैं तो अच्छा लगता है।

हम चाहते थे कि ऐसा कोई आउटलेट मिले DVDs के लिये क्योंकि वेबसाइट पर इतना सारा मॅटर है। साइटवालों ने बताया हम इतना मटेरियल नहीं डाल सकते, इतनी स्पेस नहीं है। वहां सब ऑडिओ प्रवचन हैं। करीबन सोलह हजार से भी ज्यादा घंटों की ऑडिओ वहां उपलब्ध हैं - सभी ग्रंथ, आप कोई भी नाम लो उनके प्रवचन उपलब्ध हैं। अगर कोई नाम नहीं होगा तो हमें बताओ। क्योंकि हम चाहते हैं नया-नया विषय लें। कई ग्रंथों पर तो दुबारा प्रवचन हुये हैं। हमारी पद्धति है कि सारे जो मूलग्रंथ हैं, उनकी गाथा, अन्वयार्थ, भावार्थ पहले पढ़ते हैं फिर गुरुदेवश्री के प्रवचन गुजराती में

पढ़ते हैं और फिर उसको हिंदी में समझाते हैं। चार-चार लाइन पढ़ेंगे - गुरुदेवश्री ऐसा क्यों कहते हैं। वह मूल सिद्धान्तों से लेकर सारा समझाया जाता है। समयसार पर ९०० लेक्चर्स हैं, प्रवचनसार पर ८७५ लेक्चर्स हैं - इसतरह से सभी ग्रंथों पर लेक्चर्स हैं। एक-एक घंटे के इतने प्रवचन हैं, कितने ही ग्रंथों पर हमारे डेढ़-डेढ़ घंटों के प्रवचन हैं। आपके पास दी हैं न पेन ड्राइववाली सारी लिस्ट ? उसमें कितने घंटों के क्या-क्या विषय लिये हैं, वह सब उसमें लिखा है। जिसको जो चाहिये वह पूरा उपलब्ध है।

हमने तो यही सोचा कि अभी यह सब बंद करना है, इस चक्रव्यूह से हमें बाहर पड़ना है। इसलिये ऐसे कोई साथी मिलते हैं तो हम उनको सुपूँर्ण करते हैं कि यह अभी आगे चलाओ। अभी हमें यह प्रवृत्ति भी अच्छी नहीं लगती है। हमारे पं. निलेशभाई शाह जैसे लोग पकड़ के रखते हैं कि नहीं-नहीं, आपको शिबिर करना ही है, लोगों का फ़ायदा होता है। पता नहीं, लोगों को कितना फ़ायदा होता है, हां, हमारा भी फ़ायदा होता है, उसमें हमारा अपना स्वाध्याय गहरा होता है। हां, देखो हम यहां देख रहे थे अभी षट्स्थानपतित वृद्धि का विषय यहां नहीं चलेगा, वह अलग विषय है।

नीचे के तथा ऊपर के समयों के परिणामों की विशुद्धि तथा संख्या में समानता हो सकती है, यह अभी हमने देखा न विस्तार से। इसे ही अनुकृष्टि रचना कहते हैं। ध्यान रखना यह समानता भिन्न-भिन्न अर्थात् नाना जीवों की अपेक्षा बतायी गयी है। एक ही जीव की अपेक्षा तो प्रतिसमय विशुद्धि अनंतगुणा बढ़ती जाती है। तथा एक जीव का प्रतिसमय एक ही परिणाम होता है। यह तो स्वाभाविक है न। उसके दूसरे समय में अनंतगुणा विशुद्धि, तीसरे समय में और अनंतगुणा, चौथे समय में और अनंतगुणा। तो अंतर्मुहूर्त के जितने असंख्यात समय हैं, उतनी बार उसकी विशुद्धि अनंतगुणा बढ़ी। अभूतपूर्व कार्य होने जा रहा है; कौनसा ? सम्यक्त्व का। तो उसकी उतनी निर्मलता आयेगी न।

अधःप्रवृत्तकरण में हमने चार आवश्यक देखे थे। हम यहां पढ़ते हैं फिर उसके डिटेल्स देखेंगे। बोर्ड पर देखना- यह अधःप्रवृत्तकरण लिखा है न, उसमें चार आवश्यक बातें क्या-क्या होती हैं ? विशुद्धि प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ती है। कैसी बढ़ती है ? अभी हमने देखी, प्रतिसमय अनंतगुणा। स्थितिबंधापसरण यानी अंतर्मुहूर्त तक स्थितिबंध समान होगा, फिर घटेगा, फिर अंतर्मुहूर्त तक समान होगा यह तो

चलता ही रहेगा। जहां-जहां विशुद्धि बढ़ती है वहां-वहां स्थिति घटेगी। परंतु विशुद्धि प्रतिसमय बढ़ रही है। अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग प्रतिसमय घटेगा परंतु स्थितिबंध प्रतिसमय चेंज नहीं होगा। यह विशेषता है। विशुद्धि बढ़ने पर भी अंतर्मुहूर्त तक तो समान स्थितिबंध हुआ, फिर कटौती होगी। फिर अंतर्मुहूर्त समान स्थितिबंध, फिर कटौती। यह स्थितिबंध में और अनुभागबंध में अंतर है। अनुभागबंध में प्रतिसमय चेंज होगा, परंतु स्थिति में ऐसा नहीं। स्थितिबंधापसरण अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में होगा।

अधःप्रवृत्तकरण

- १) विशुद्धि प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ती है।
- २) स्थितिबंधापसरण
- ३) प्रशस्त प्रकृतियों का प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ता हुआ चतुःस्थानगत अनुभागबंध
- ४) अप्रशस्त प्रकृतियों का प्रतिसमय अनंतगुणा घटता हुआ द्विस्थानगत अनुभागबंध

तीसरा और चौथा पॉइंट क्या है ? प्रशस्त और अप्रशस्त में अनुभाग की बात अलग-अलग करनी पड़ती है। सब कर्मों के लिये कॉमन स्थिति की बात स्थितिबंधापसरण कह देते हैं। पुण्य और पाप सभी प्रकृतियों की स्थिति घटती है, नया बंध भी और स्थितिसत्त्व भी कम होता है। देखो यहां लिखा है- स्थितिबंधापसरण अंतर्मुहूर्त में हुआ था। स्थितिबंध अंतर्मुहूर्त में चेंज होता है और अनुभागबंध प्रतिसमय लिखा है न ? प्रशस्त प्रकृतियों का प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ता हुआ चतुःस्थानगत अनुभागबंध होता है। चार स्थान कौनसे ? श्रोता: गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत। हां, गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत। वहां अमृत टाइप के अनुभाग बंधेंगे। अमृतवाले बंधेंगे उसमें सभी हैं इसलिये उसको चतुःस्थानगत कहते हैं।

अप्रशस्त कर्मों में क्या होगा ? अप्रशस्त प्रकृतियों का प्रतिसमय अनंतगुणा घटता; जितना एक समय में बंध हुआ है, दूसरे समय में उससे अनंतगुणा हीन बंध हो जायेगा। अनुभागबंध कैसा है ? द्विस्थानगत है। अप्रशस्त में ज्ञानावरणादि घातिकर्म और अघाति के पाप प्रकृति बंध रही हैं कि नहीं ? यहां मिथ्यात्व का बंध है कि रुक गया ? श्रोता: है। है, वह अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय तक चलेगा। परंतु नया बंध कैसा होगा ? सभी अप्रशस्त प्रकृतियों में अनंतगुणा घटता हुआ होगा। घाति-अघाति सभी जो-जो अप्रशस्त हैं, उनका अनुभागबंध द्विस्थानगत और वह भी प्रतिसमय

अनंतगुणा घटता हुआ होता है। ये चार आवश्यक हैं। अब इसको पुस्तक में से पढ़ेंगे।

अधःप्रवृत्तकरण में हमने चार आवश्यक देखे थे। जब हमने शॉर्ट में सभी तीन करण परिणामों की बात की थी तब इन चार आवश्यकों के नाम बताये थे। वही बात यहां दोहराते हैं। **(१) समय-समय प्रति अनंतगुणा विशुद्धि- जीव के पहले समय से दूसरे समय में विशुद्धि अनंतगुणा बढ़ती है।** प्रश्न यह था अभी नाना जीवों की, भिन्न-भिन्न जीवों की अपेक्षा तुलना कर दी। एक जीव में क्या हो रहा है ? उसकी अपनी विशुद्धि प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ती है। **तीसरे समय में उससे भी अनंतगुणा, इसतरह अंतर्मुहूर्त काल तक विशुद्धि प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ती जाती है।**

(२) स्थितिबंधापसरण - स्थितिबंध का अपसरण यानी घटना। इसका स्वरूप तो हमने प्रायोग्यलब्धि में देखा था। परंतु यहां अन्य घटते प्रमाण को लिये नया स्थितिबंध होता है। यानी घटने का - कटौती का जो प्रमाण होता है वह जुदा-जुदा होता है। क्योंकि जितनी स्थिति कम होगी, उस प्रपोर्शन में उसका जितना अपसरण होता है उसका प्रपोर्शन भी जुदा-जुदा होगा। **यह स्थितिबंध घटता जाता है और ऐसे हजारों स्थितिबंधापसरण होते हैं।** हजारों में हमने पहले करोड़ों भी देखे थे। यहां भी यह बात चल ही रही है। **स्थितिबंध में हर बार पत्य के संख्यातवां भाग इतनी घट होती है। इसके कारण अधःकरण के प्रारंभ में जितना स्थितिबंध होता था अंतःकोड़ाकोड़ी सागर से घटता-घटता गया था। अधःकरण के शुरुआत में जितना था उसके संख्यातवें भाग जितना स्थितिबंध उसके अंत में होने लगता है। भले उसके दसवें भाग या हजारवें भाग - जो कुछ यथायोग्य होगा।**

जो जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करके पहले से पांचवें गुणस्थान में जाता है फिर से- कोई जीव प्रथमोपशम सहित पहले से चौथे में जायेगा, कोई पहले से पांचवें में जा सकता है और कोई पहले से सीधा सातवें में जा सकता है। हां, उसकी कुछ कंडिशन होगी। पांचवें गुणस्थान के योग्य जिन्होंने अणुव्रत आदि धारण किये हैं, वे ही पांचवें में जायेंगे परंतु केवल व्रत हैं इसलिये पांचवां होगा ऐसा भी नहीं है। द्रव्यलिंग यानी बाह्य मुनि अवस्था धारण की है वह सातवें तक जा सकता है, परंतु बाह्य में मुनिलिंग धारण किया है इसलिये वह सातवें में ही जायेगा और वह चौथे या पांचवें में नहीं जायेगा, ऐसा नहीं है। हां, बाह्य में मुनिलिंग अवस्था धारण की है और विशुद्धि चौथे

जितनी होगी तो वह चौथे में जायेगा। इसके बारे में गलत मान्यता भी चलती है।

हम कहीं किसी शहर में गये थे। वहां कोई विद्वान थे। वे ऐसा ही कहते थे कि मुनिव्रत लिये हैं वे तो नियम से सातवें गुणस्थान में जायेंगे। अगर व्रत हैं इसलिये नियम से सातवें गुणस्थान में जायेंगे तो सातवें में से गिरने का सवाल कहां है ? व्रत कहां छूटे हैं ? तो कोई मुनिराज छठे में से चौथे में भी आते हैं, अंतर्मुहूर्त में फिर सातवें में चले जाते हैं। यह तो उसका स्वरूप है। अगर व्रत कायम हैं तो फिर गिरते ही नहीं यह सवाल है। उनका ऐसा भी मत था कि चौथे-पांचवें को टच करते-करते सातवें में जाता है - ऐसा बिलकुल नहीं होता है। प्रथमोपशम के साथ पांचवां या सातवां गुणस्थान प्राप्त करता है तो शुरुआत से ही उसके जो स्थितिकांडकघात होते हैं, जो बंधापसरण होते हैं, उन सबका प्रमाण जुदा होता है क्योंकि पहले से चौथे में जानेवाले की अपेक्षा पहले से पांचवें में जानेवाले की विशुद्धि ज्यादा होगी और पहले से सातवें में जानेवाले की विशुद्धि और ज्यादा होगी। हां, वह सीधा पहले से सातवें में जायेगा।

श्रोता: पहले गुणस्थान से पांचवें में जाता है तो पहले गुणस्थान में क्या प्रतिमा हो सकती है ? दर्शनप्रतिमा या अन्य कोई प्रतिमा ? देखो, पहले गुणस्थान में कोई प्रतिमा होती ही नहीं क्योंकि प्रतिमा कहेंगे जब आत्मानुभूतिपूर्वक अंतरंग में उतनी स्थिरता है; दो कषाय का अभाव है यानी अनुदय है, दो कषाय का उदय है तब उस जीव को प्रतिमा कहेंगे। जिसने मात्र बाह्य व्रत अंगीकार किये हैं और आत्मानुभूति नहीं हुयी हो तो उसका गुणस्थान पहला है और उसको एक भी प्रतिमा नहीं है। हम समाज में कहते हैं यह प्रतिमाधारी है - उसने पहली प्रतिमा ली है, दूसरी ली है, सातवीं ली है। वह व्रतों को गिन रहे हैं। ऐसे बाह्य में जिसने मुनि अवस्था धारण की है, उसको मुनि भी कह रहे हैं, है न। जो तत्त्वनिर्णयपूर्वक अंतरंग में लीन होता है वह पांचवें में जायेगा।
श्रोता: वह ऑटोमैटिकली जायेगा ? ऑटोमैटिक नहीं, उसके उतनी उच्च जाति की विशुद्धि होगी। बाहर में अणुव्रतादि सहचररूप से, निमित्तरूप से पाये जायेंगे। जिसने बाहर में अणुव्रत ग्रहण ही नहीं किये हैं, उसके पांचवें के योग्य विशुद्धि नहीं होगी। उसके कारण होती है ऐसा नहीं है। जैसे बाहर में मुनिलिंग धारण नहीं किया है तो उसे सातवें के योग्य पुरुषार्थ भी नहीं होगा। मुनिलिंग के कारण पुरुषार्थ होता है ऐसा भी नहीं है। परंतु कपड़े के साथ कोई सातवें में जायेगा और बाद में जाकर मुनिदीक्षा लेगा ऐसा नहीं होगा। बाद में मुनि दीक्षा लेने की क्या आवश्यकता है ? कपड़े के साथ ही

मुनिपना होता होगा तो बाद में कपड़े छोड़ने की क्या आवश्यकता है ? यह सहज निमित्त-नैमित्तिक संबंध होते हैं और उनका ऐसा ही सुमेल होता है।

इन बातों को समझना पड़ेगा। उसका संतुलन कभी नहीं खोना। पहले से सातवें में जानेवाले जीवों में १५ दिन का अंतर पड़ सकता है। कहीं कहीं २४ दिन भी कहा है। भरतक्षेत्र या हिंदुस्तान की बात मत करो, हम तो पूरे विश्व की बात करेंगे कि कहां क्या होता है ? अरे, नियम से हर सातवें दिन में कोई ना कोई जीव औपशमिक सम्यक्त्व सहित मिथ्यात्व में से चौथा गुणस्थान प्राप्त करता ही करता है। उसमें इससे ज्यादा अंतर नहीं पड़ेगा। पहले से पांचवें में जानेवाले के भी १४ दिन का अंतर पड़ता है, कहीं-कहीं उसके लिए १५ दिन कहा है। अंतर का अर्थ उसमें मॅक्झिमम इतनी गॅप पड़ सकती है। उसके पहले भी पहले से सातवें में जानेवाले कोई मुनि होंगे। पूरे ढाईद्वीप में जहां मनुष्य हैं, उसकी बात है। हमारे आजू-बाजू में कोई दिखते नहीं इसलिये कहीं होते ही नहीं ऐसा मत समझना; जहां कहीं होते हैं। अभी विदेहक्षेत्र में तो होते ही रहेंगे न ? वहां कितने करोड़ों मुनिराज होंगे। एक विदेह थोड़ा ही है ? १६० विदेहक्षेत्र हैं। हम आगम के आधार से केवलज्ञानगम्य जहां जो कुछ हो रहा है उसकी अपेक्षा बात करेंगे। अभी कोई सच्चे हमें मिले नहीं और धर्म का लोप हो जायेगा इसलिये जो नहीं हैं उनको मानना वह भी गलत है। नहीं समझे ? मान लो, हमारे गांव में कोई हंस दिखते ही नहीं हैं, हमने कौवे और बगुले को ही हंस मान लिया तो चलेगा या नहीं चलेगा ? नहीं चलेगा। ऐसा है, अभी समझ लो। मैं ज्यादा नहीं कहती।

श्रोता: पहले से चौथे में जानेवाला और पहले से पांचवें में जानेवाला उसके अंदर दोनों में क्षयोपशमलब्धि से ही उसकी विशुद्धि में फर्क पड़ता जायेगा ? हां। पहले से चौथे में जानेवाले के अभी अनंतानुबंधी का अनुदय होनेवाला है, अभी हुआ नहीं है। पहले से पांचवें में जानेवाले के अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण दोनों का ही अप्रशस्त उपशम होनेवाला है। पहले से पांचवें में जावे, चौथे में जावे या सातवें में जावे, वे तो मिथ्यात्व के उपशम सहित सम्यक्त्व प्राप्त करने ही वाले हैं। परंतु सम्यक्त्व सहित चौथेवाला अविरत है और उसके केवल अनंतानुबंधी का अप्रशस्त उपशम यानी अनुदय होनेवाला है। पहले से पांचवें में जानेवाले के मिथ्यात्व तो चला जायेगा, परंतु उसके दो कषाय चौकड़ी का अनुदय होगा। पहले से सातवें में जानेवाले के तीन कषाय चौकड़ी का अनुदय होगा। तो उनकी उतनी विशुद्धि ज्यादा होगी न ? उनको

चारित्र संबंधी भी उतनी विशुद्धि बढ़ेगी यह कहना चाहते हैं।

जैसे दर्शनलब्धि और चारित्रलब्धि ऐसे नाम हैं। तो उसमें उस जाति की उसकी निर्मलता भी बढ़ेगी। अभी क्या है ? हम अपनी भाषा में समझ नहीं सकते क्योंकि विशुद्धि के अविभागप्रतिच्छेदों की अपेक्षा बात आती है। विशुद्धि बढ़ना यानी केवल शुभभाव किये, पूजा की, विधान किया, उन शुभभावों की बात नहीं चल रही। यहां जो विशुद्धि बता रहे हैं, वह अलग टाइप की है। वे केवलज्ञानगम्य बातें हैं। उसकी स्थिरता अधिक होगी कि नहीं होगी ? स्थिरता में काल अधिक होता है ऐसा मत समझना। हम ऐसा कहे कि चौथे में जानेवाला थोड़े समय के लिये हैं, पांचवें में अधिक समय तक अंतरंग में है - ऐसा नहीं है। जितने ऊपर के गुणस्थान हैं, उनका काल और छोटा-छोटा होता जाता है। हमने श्रेणी में भी देखा। जो छठे का काल है उससे आधा है सातवें का, उसके संख्यातवें भाग प्रमाण आठवें का, उसके संख्यातवें भाग प्रमाण नौवें का। ऊपर विशुद्धि अधिक बढ़ती है तो उसका काल भी छोटा हो जाता है। परंतु स्थिरता अधिक है, एकाग्रता बहुत अधिक है, आनंद का अनुभव भी उतना अधिक बढ़ता है। किसीको केवलज्ञान होने के लिये ४८ मिनट नहीं लगते हैं।

श्रोता: पहले से सातवें गुणस्थान में जानेवाला जो जीव होगा, उसको बाह्य में द्रव्यलिंग धारण करना आवश्यक है ? वैसा पंचम गुणस्थानवर्ती जीव को भी ? उसके अणुव्रत धारण करना आवश्यक है। *श्रोता: अणुव्रत में ग्रहण क्या करेगा ?* ग्रहण करेगा यानी जिसको हम प्रतिमा नाम देते हैं, वही तो बात है। परंतु पहली प्रतिमा में क्या होता है ? दर्शनप्रतिमा का अर्थ क्या है ? जो निरतिचार सम्यग्दर्शन है, अतिचार रहित होते हैं उसीको कहेंगे। परंतु अभी पहले से पांचवें में जानेवाला है तो वह पांच अणुव्रतों को ग्रहण करेगा। *श्रोता: हम तो समझते हैं भगवान के दर्शन करना ही दर्शनप्रतिमा है ?* नहीं, वह थोड़े ही दर्शनप्रतिमा है ? मिथ्यादृष्टि भी रोज भगवान के दर्शन करता है। पांचवें गुणस्थान में जाने के पूर्व पांच अणुव्रत धारण किये इतना तो कम से कम होगा, व्रतादि अधिक भी हो सकते हैं। परंतु अधिक व्रत किये इसलिये वह और ज्यादा ऊपर चढ़ेगा ऐसा जरूरी नहीं है। पांचवें गुणस्थान के भी असंख्यात लोकप्रमाण भेद हैं। अरे, चौथे गुणस्थान के भी श्रद्धा अपेक्षा असंख्यात लोकप्रमाण भेद हैं।

देखो, धवला में ऐसा आता है जिनबिंब दर्शन से निधत्ति, निकाचितपना नष्ट

होता है। वहां कहते हैं जिनबिंब दर्शन भी असंख्यात लोकप्रमाण हैं। हम तो समझते हैं जिनबिंब दर्शन यानी भगवान को देखा, ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शन होने को जिनबिंब दर्शन कहा है - वहां स्पष्ट शब्दों में लिखा है। सम्यग्दर्शन होगा, तब करण परिणामों के कारण निधत्ति-निकाचितपना छूट जाता है। बाकी अन्य किसी परिणाम के कारण वैसा नहीं होता है। केवल भगवान के दर्शन करना तो साधारण शुभभाव है। उससे कर्मों की इन दस अवस्थाओं में से निधत्ति, निकाचित और उपशम नष्ट नहीं होते। जो कथन होता है उसके पीछे का रहस्य जानना चाहिये। यहां लिखा है न, जिनबिंब दर्शन से ! तो आपने आज तक जिनबिंब दर्शन नहीं किया ? हम रोज कर रहे हैं। क्यों कर रहे हैं ? वे निकाचित खिपाने हैं इसलिये क्योंकि हमने सुन रखा है न वे बहुत डेंजरस कर्म हैं।

देखो, यहां क्या कहते हैं- **जो जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करके पहले से पांचवें गुणस्थान में जाता है उसके इससे भी संख्यातवां भाग इतना स्थितिबंध होता है।** क्योंकि उसकी विशुद्धि ज्यादा है तो जो नया स्थितिबंध होता है वह और कम होता है। **जो जीव पहले से सातवें गुणस्थान में जाता है उसका स्थितिबंध उससे भी संख्यातवें भाग होता है।** सबका सामान्य कथन क्या है ? अंतःकोड़ाकोड़ी सागर। परंतु उसमें भी डिफरन्स होगा। दो पॉइंट कौनसे हो गये ? (१) प्रतिसमय अनंतगुणा विशुद्धि होती है। (२) स्थितिबंधापसरण। पहले से चौथे, पहले से पांचवें, पहले से सातवें में जानेवाले की स्थिति का अपसरण यानी बंध में कटौती कितनी होगी और वहां होनेवाला स्थितिबंध कितना होगा उसकी बात हमने देखी।

(३) प्रशस्त प्रकृतियों में अनंतगुणा बढ़ता ऐसा चतुःस्थानगत अनुभागबंध होता है। स्थितिबंध तो सातों ही प्रकृतियों में घटता है हां, आयु को छोड़ा। परंतु अनुभागबंध प्रशस्त में बढ़ता है और अप्रशस्त में घटता है। सात कर्मों में से प्रशस्त कितने होंगे ? घातिकर्म तो अप्रशस्त ही हैं उनकी बात छोड़ो। यहां अघातिकर्म की प्रशस्त प्रकृतियां बंधेगी न ? कौन-कौनसी बंधेगी ? *श्रोताः सातावेदनीय, उच्चगोत्र, शुभनाम।* सातावेदनीय, उच्चगोत्र, शुभनाम। और आयु ? आयु तो बंधना रुक गयी है। अनुभागबंध प्रशस्त में बढ़ता है अप्रशस्त में घटता है। **प्रशस्त प्रकृतियों के अनुभाग अपेक्षा चार प्रकार बताये थे, याद है ? गुड़, खाण्ड, शर्करा और अमृत नाम के स्पर्धक हैं। अधःप्रवृत्तकरण की बढ़ती हुयी विशुद्धि के कारण यहां प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ता हुआ बंधता है, हम कहेंगे**

अमृत तक सभी बंधेंगे। अमृत के बंधेंगे, परंतु उसमें भी अनंत स्पर्धक हैं और वे भी बढ़ते हुये अनुभाग से बंधते रहेंगे। जिसमें चारों प्रकार के स्पर्धक पाये जाते हैं।

(४) अप्रशस्त प्रकृतियों में अनंतगुणा घटता अनुभाग बंध होता है, वह भी द्विस्थानगत होता है - घाति में लता और दारु भागरूप होता है। और अघाति में नीम और कांजीररूप क्योंकि अघाति के भी अप्रशस्त बंध रहे हैं। लता और दारु के साथ नीम और कांजीररूप भी वहां बंधते हैं। **अधःप्रवृत्तकरण के पश्चात् अपूर्वकरण परिणाम होते हैं। उसकी चर्चा हम आगामी पत्र में करेंगे।** आगे बढ़ते हैं।

प्रश्न: अलग-अलग समय सिद्ध बने जीवों की परिणामों की कौलिटि और कौलिटि कैसी होती है ? अलग-अलग होती है ? अरे सिद्ध तो सभी समान होंगे न ? अभी तो वे सिद्ध हो चुके। प्रश्न: क्या तीर्थंकर जीव चौथे गुणस्थान से सातवें गुणस्थान में ही जाता है ? बिलकुल नहीं, पांचवें में भी जा सकता है। प्रश्न: परिणाम का नंबर मतलब विशुद्धि की डिग्री ? हां, ये जघन्य से लेकर बढ़ती हुयी विशुद्धि के स्थान हैं।

प्रश्न: दूसरे जीव के परिणाम सीखने से हमारे जीव को क्या फ़ायदा ? हम अपने ही जीव के परिणामों को बहुत अच्छे से नहीं समझें ? क्योंकि यूं तो पर में नहीं करना, ऐसा शास्त्रों में आता है। हमारा जीव यानी हमसे कोई अलग जीव है ? अरे, मैं जीव हूं, हमारा जीव नहीं है। अपने जीव के नहीं, अपने परिणाम। अपने परिणाम क्या हैं ? यह जानन- देखन जो मेरा स्वभाव है। तो अपने स्वभाव को समझते-समझते उसमें स्थिर होते-होते ये सब बातें बिलकुल अपने आप होनेवाली हैं। शास्त्र में कहा है पर में नहीं करना, अरे, कर ही नहीं सकता। पर में कुछ नहीं कर सकता परंतु पर को जान सकता है कि नहीं ? अरे, अपने में रहकर अनंत द्रव्यों को जानेंगे, उनके अनंतगुणों को जानेंगे, पूरे अनंतक्षेत्र को जानेंगे, अनंतकाल यानी उनके परिणामन को जानेंगे, अनंत भावों को जानेंगे। जानना तो स्वभाव है परंतु यहां कुछ अधिक जानने की बात आती है तो क्यों जानना ? क्या फ़ायदा ? ऐसी बातें होती हैं। जानना यह स्वभाव है।

प्रश्न: एक जीव की अपेक्षा विशुद्धि क्रमशः बढ़ते हुये पहले अधःप्रवृत्त फिर अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण में उल्लेखित परिणामों जितनी होती जायेगी क्या ? हां, तीनों के जितने अंतर्मुहूर्त के समय हैं, उतने विशुद्धि के परिणाम बढ़ेंगे। एक जीव की विशुद्धि किस प्रकार बढ़ेगी ? एक-एक समय में पूर्व विशुद्धि से और अनंतगुणा,

अनंतगुणा, अनंतगुणा बढ़ती है। प्रश्न: अंतर्मुहूर्त यथायोग्य होता है, इसको कुछ उदाहरण देकर समझाने की कृपा करें ? अभी यही समझा रहे हैं न, कौन-कौनसे अंतर्मुहूर्त ? जैसे प्रायोग्यलब्धि में एक पूरा अंतर्मुहूर्त, उसमें स्थितिबंधापसरण का काल बहुत छोटा अंतर्मुहूर्त है। अधःप्रवृत्तकरण में हर अंतर्मुहूर्त में स्थितिबंधापसरण हो रहे हैं। तो इतने सारे हजारों-करोड़ों अंतर्मुहूर्त होंगे। वे छोटे-छोटे हैं और पूरा मिलकर अधःप्रवृत्तकरण का बड़ा अंतर्मुहूर्त है। प्रश्न: ४६ प्रकृतियों का संयोगरूप बंध का रुकना बताये ? ४६ का इकट्ठा संयोग नहीं है। उसमें संयोग किस प्रकार का है ? हमने बताया था जहां एक से अधिक प्रकृति कॉम्बिनेशनरूप बंधती हैं उसको संयोग कहा था। जब एकेन्द्रिय संबंधी नामकर्म बंधता है तो एकेन्द्रिय अपर्याप्त सहित २३ प्रकृतियां एक साथ बंधती हैं, उसका जो पैकेज है उसकी बात है। देवगति बंधती है तो देवगति सहित टोटल २८ प्रकृतियां बंधती हैं। उसका जो कोई कॉम्बिनेशन है उसको ले लेना।

प्रश्न: सम्यग्दर्शन के लिये पहली चार लब्धि में हमें तत्त्वनिर्णय और तत्त्वश्रद्धान करना है और करणलब्धि में भी निज शुद्धात्मा की ओर बढ़ना है तो हमारे उपयोग में करणलब्धि के लिये क्या फर्क लाना है ? करना है, बढ़ना है ये तो बेकार की बात है। करणलब्धि के लिये उपयोग में कुछ नहीं लाना है। प्रश्न: तत्त्वनिर्णय में कहां ध्यान बढ़ाना ? देखो तत्त्वज्ञान के अभ्यास से, स्वाध्याय से ये कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होंगे। जितना तत्त्व का अभ्यास होगा, जितनी तत्त्व संबंधी निर्मलता होगी, संशय, विपरीतता सब कम हो जायेगी। ऐसे सारे प्रश्न भी उत्पन्न नहीं होंगे। इन्हीं प्रश्नों में अभी उसकी सब कचास या उसकी भूलें ख्याल में आती हैं।

प्रश्न: एकेन्द्रिय और स्थावर को अलग-अलग क्यों गिनते हैं ? वे नामकर्म जुदे-जुदे हैं। एकेन्द्रियजाति नामकर्म है, त्रस और स्थावर नामकर्म अलग हैं। एकेन्द्रियजाति के साथ स्थावर नामकर्म बंधेगा। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय वगैरह जाति के साथ त्रस नामकर्म बंधेगा। प्रश्न: पहले गुणस्थान से पांचवें गुणस्थान में जानेवाले का पहले गुणस्थान से सातवें गुणस्थान जानेवाले का समय एक सरीखा होता है क्या ? समयों में काल की बात इतनी नहीं आती, परंतु उसमें विशुद्धि अधिक होगी, विशुद्धि ज्यादा होगी।

हां, अभी समय हो गया। हम यहीं रुकेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२३. करणलब्धि - अपूर्वकरण

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है और उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका लिखी है। इसी ग्रंथ के आधार से हम यहां प्रथमोपशम सम्यक्त्व से पूर्व जो पांच लब्धि होती हैं उसका स्वरूप देखने जा रहे हैं।

हमने देखा था क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि और प्रायोग्यलब्धि जिसके हैं, उसकी जब करणलब्धि होती है तो उसमें तीन अंतर्मुहूर्त में तीन करण होते हैं। उनके नाम क्या देखे थे ? *श्रोता: अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण।* अधःप्रवृत्तकरण को अधःकरण भी कहते हैं। दूसरा अपूर्वकरण और तीसरा अनिवृत्तिकरण। जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व के लिये करणलब्धि मांडता है, ऐसे करण परिणाम कब-कब होते हैं ? यहां प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति के पूर्व में तीन करण होते हैं। जब क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि अनंतानुबंधी की विसंयोजना करता है यानी सत्ता में से अनंतानुबंधी नष्ट होती है वहां भी तीन करण परिणाम होते हैं। जब द्वितीयोपशम करता है तब भी तीन करण परिणाम होते हैं। क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त होता है तब भी उसके तीन करण परिणाम होते हैं। श्रेणी चढ़ते समय तीन करण परिणाम होते हैं - उपशमश्रेणी के जुदे, क्षपकश्रेणी के जुदे। सर्वत्र इन करणों के नाम ये ही हैं। परंतु हर जगह के जो करण हैं वहां की विशुद्धि जुदी-जुदी होगी। इन करण परिणामों के नाम अलग-अलग जीवों के परिणामों में समानता या असमानता के अनुसार पड़े हैं।

नाम सर्वत्र समान हैं। कौनसे ? अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। परंतु अभी यहां जो तीन करण परिणाम हो रहे हैं और जो श्रेणी में होंगे उसमें डिफरन्स है कि नहीं है ? *श्रोता: है।* हां, है। क्योंकि अलग-अलग जगह अलग-अलग विशुद्धि के साथ जो कोई बातें होती हैं उसमें उसका जो कार्य है - कौनसे कर्मों में क्या परिवर्तन होना - वह बात भी जुदी-जुदी होगी और जीव की विशुद्धि भी जुदी जाति की होगी। जब तीन करण परिणाम कहेंगे तो उसका अर्थ है कि यहां भिन्न-भिन्न जीवों की अपेक्षा परिणामों में क्या सदृशता-विसदृशता है ? बस इसलिये उनके नाम पड़े हैं। अधःप्रवृत्तकरण में नीचे के समयवर्ती परिणाम - नीचे यानी पहले समय, दूसरे समय के परिणाम और ऊपर के समयवर्ती जो परिणाम हैं;

यानी जिनको अधःकरण शुरू करके अधिक समय हुये हैं ऐसे जीवों के परिणामों में समानता हो सकती है। उसको अनुकृष्टि रचना कहते हैं और हमने उसकी सारी बात विस्तार से संदृष्टि के द्वारा काल्पनिक संख्यायें लेकर देखी थी।

पृष्ठ १२५ तीसरा पैराग्राफ- **अनेक लोगों के मन में सवाल उठता है कि यहां कई लोगों के लिखित प्रश्न भी आये हैं कि करणानुयोग की इतनी सूक्ष्म बातें जाने बिना भी सम्यक्त्व प्राप्त हो सकता है तो इसमें क्यों उलझना ?** क्योंकि उलझना लगता है न, कठिन लगता है। **सिर्फ द्रव्यानुयोग के अभ्यास से हम सम्यक्त्व प्राप्त कर लेंगे।** तो अभी तक क्यों नहीं किया ? नहीं किया न ? इसलिये हम ये कठिन बातें आपको बता रहे हैं क्योंकि आपका विश्वास नहीं है कि तत्त्वविचार और तत्त्वनिर्णय करने से सम्यग्दर्शन होगा। जिसको जिस बात में रुचि होती है उसके बारे में उसके सर्वांगीण अभ्यास की उसे सहजरूप से रुचि हो जाती है।

यह जो सवाल है न, इन बातों की क्या आवश्यकता है ? हम रोज भोजन करते हैं। दो रोटी-तीन रोटी, एक सब्जी, दाल हो तो पेट भर जाता है। तो रोज नया चेंज क्यों चाहिये ? उसकी क्या आवश्यकता है ? हमें पेट भरने के लिये जितना आवश्यक है उतनी कमाई हम करते हैं फिर लगातार व्यापार-धंधा क्यों चल रहा है ? इतने पैसों की क्या आवश्यकता है ? सात पीढ़ी बैठकर खायें इतना पैसा है फिर भी व्यापार-धंधा चालू क्यों रखते हैं ? वहां कभी लगता नहीं है कि इसकी क्या जरूरत है। जरूरत की बात कहां ख्याल में आती है ? करणानुयोग पढ़ते समय। यह हमारी रुचि दर्शाती है। परिग्रह बढ़ता है तो ऐसा कभी नहीं लगता है कि अरे इतने परिग्रह की क्या आवश्यकता है। अभी मेरा काम चल रहा है जितनी आवश्यक हैं उतनी चीजें मेरे पास हैं तो यह मैं क्यों लूं। उसको ऐसा प्रश्न कभी नहीं आता है, यहां उसका प्रश्न आता है। यानी वह अपने ही ज्ञान का निषेध कर रहा है।

जीव का स्वभाव ही जानना है। करणानुयोग के अभ्यास से द्रव्यानुयोग के सिद्धान्तों को अत्यंत पुष्टि मिलती है। द्रव्यानुयोग के अभ्यास के साथ करणानुयोग पढ़कर देखो। आपको स्वयं पता चलेगा। अभी तो हमने अलग विषय निकाला है। इतनी सूक्ष्म बातें जानने की आवश्यकता नहीं है। परंतु उसका जो निषेध हो रहा है न, अपने अभिप्राय में उसका निषेध चल रहा है उसमें तो अपने स्वभाव का निषेध हो रहा

है। हमारी समझ में कम आता है, कुछ नहीं आता है वह बात अलग है। परंतु कहता है इसकी क्या जरूरत है ? बिलकुल जरूरत नहीं है। आठ वर्ष का बालक भी सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है। हमने इतनी बार यह सब सुना है - गुरुदेवश्री के प्रवचन भी रोज सुनते हैं, क्यों नहीं हो रहा है सम्यग्दर्शन ? कहीं तो अटक गये हैं कि नहीं ?

देखते हैं आगे- **सम्यक्त्व प्राप्त कर लेना तो हमारा आद्य कर्तव्य है।** यह तो सबसे पहले में पहली बात है। **द्रव्यानुयोग तो कार्यकारी है ही।** उसके बिना तो आगे बढ़ना ही नहीं होगा। **परंतु करणानुयोग के सूक्ष्म वर्णन से द्रव्यानुयोग के सिद्धान्तों को पुष्टि मिलती है, हमारे ज्ञान, श्रद्धान में दृढ़ता आती है। हमें मोक्षमार्ग और मोक्ष की रुचि है, अपने शुद्धात्मा की रुचि है तो उसके संबंध में सर्वांगीण जानकारी हासिल करने में भी उतनी ही रुचि हो जाती है।** करनी नहीं पड़ती, हो जाती है। वह क्रिकेट का हमने उदाहरण तो देखा ही था। अब आगे बढ़ते हैं। अधःप्रवृत्तकरण के बाद अभी **हम अपूर्वकरण की चर्चा करेंगे।** पहला जो अंतर्मुहूर्त था, उसमें अलग-अलग जीवों के परिणाम अलग-अलग समयों में सट्टा हो सकते थे। **यहां भी परिणामों की विशुद्धि प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ती ही रहती है, उस कारण अपूर्व-अपूर्व परिणाम होते हैं।**

अधःकरण में भी एक जीव की अपेक्षा, प्रतिसमय उसकी विशुद्धि अनंतगुणा बढ़ती है। उसके कारण क्या-क्या होता है ? स्थितिबंधापसरण होता है, प्रशस्त-अप्रशस्त प्रकृतियों में अनुभाग का बढ़ना-घटना भी होता है। विशुद्धि का बढ़ना यहां अपूर्वकरण में भी चलता है। जहां तक उसकी विशुद्धि बढ़ी है उससे भी और अनंतगुणा, और अनंतगुणा, और अनंतगुणा बढ़ती जाती है। यहां भी परिणामों की विशुद्धि प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ती ही रहती है **उस कारण अपूर्व-अपूर्व परिणाम होते हैं।** अपूर्व यानी पहले समय से दूसरे समय के सभी परिणाम अपूर्व होंगे, वह पहले समय के किसी परिणाम के साथ उसकी सट्टाता नहीं होगी। **नीचे के और ऊपर के समयवर्ती किसी भी जीव के परिणाम कभी भी सट्टा नहीं हो सकते अर्थात् यहां अनुकृष्टि रचना नहीं होती।** यह अनुकृष्टि रचना कहां देखी थी ? *श्रोताः अधःकरण में/* हां, अधःकरण में।

भिन्न समयवर्ती नाना जीवों के नाना जीव यानी अनेक जीव, वह

गुजरातीवाला नाना नहीं समझना। भिन्न समयवर्ती नाना जीवों के **परिणाम भिन्न ही होते हैं, एक सदृश नहीं होते**। तो एक समयवर्ती सदृश हो सकते हैं ? सदृश भी, विसदृश भी हो सकते हैं क्योंकि उसकी जघन्य से उत्कृष्ट तक की रेंज होगी। **परंतु एक ही समयवर्ती जीवों के परिणाम सदृश अर्थात् समान हो सकते हैं अथवा असदृश अर्थात् असमान भी हो सकते हैं**। क्योंकि वहां इतने असंख्यात भेद हैं न। एक-एक समय में असंख्यात लोकप्रमाण भेद होंगे। **एक ही समय में त्रिकालवर्ती अनंत जीवों की अपेक्षा जघन्य से उत्कृष्ट तक अनेक प्रकार की विशुद्धि संभवती है। अधःप्रवृत्तकरण के अंत समय में जितने भिन्न-भिन्न प्रकार के परिणाम थे उनमें से एक-एक परिणाम से असंख्यात लोक प्रमाण भेदों की उत्पत्ति होती है।**

जरा यह बात गौर से सुनो- अभी हमने देखा था, कितने अलग-अलग प्रकार के परिणाम होते हैं ? हम १६वें समय में २२२ परिणाम तक पहुंचे थे न, पृष्ठ १२२ निकालना- हां, ५४, ५५, ५६, ५७ यानी २२२ प्रकार के अलग-अलग परिणाम थे। यथार्थ में यह प्रमाण असंख्यात लोक ही है। तो उसके एक परिणाम से कितने जुदे-जुदे परिणाम हो जायेंगे। एक परिणाम से असंख्यात लोकप्रमाण जुदे-जुदे भेद होंगे। मूल में परिणाम कितने हैं ? असंख्यात लोक। जब अपूर्वकरण के पहले समय में आयेगा तो टोटल परिणाम कितने होंगे ? असंख्यात लोक मल्टिप्लाईड बाय असंख्यात लोक। **इसकारण अधःप्रवृत्तकरण में असंख्यात लोकप्रमाण $\equiv 0$ परिणाम होते हैं**, यह हमने देखा था न, तीन आड़ी लाइन यानी लोक और उसके बाजू में जो साइन है वह असंख्यात। पढ़ते समय हम अंकों को राइट से लेफ्ट तक पढ़ते हैं- पहले असंख्यात का नाम लेंगे फिर लोक का नाम लेंगे। **तो अपूर्वकरण में सर्व परिणाम असंख्यात लोक $\times$ असंख्यात लोक अर्थात् $\equiv 0 \equiv 0$ होते हैं**। ऐसा दो बार लिखते हैं, इसका अर्थ उनका आपस में गुणाकार है।

प्रथम समय में परिणामों के जघन्य से उत्कृष्ट तक अनेक भेद पाये जाते हैं, उसमें जघन्य विशुद्धि से उत्कृष्ट विशुद्धि अनंतगुणा होती है। प्रथम समय के परिणामों की यह विवक्षित रेंज होगी, मर्यादा होगी। क्योंकि उसकी हम रेंज कहेंगे न, जघन्य से उत्कृष्ट तक अलग-अलग इतने भेद हो सकते हैं। दूसरे समय में जो होंगे वे प्रथम समय के किसी भी परिणाम के समान नहीं होंगे। **परंतु दूसरे समय के परिणामों की जघन्य विशुद्धि भी प्रथम समय के उत्कृष्ट विशुद्धि से अनंतगुणा**

होती है। ख्याल में आती है न बात ? पहले समय के परिणामों की जो रेंज है उसके उत्कृष्ट परिणाम से द्वितीय समय का जघन्य परिणाम भी अनंतगुणा विशुद्ध होगा। **उससे अनंतगुणा द्वितीय समय की उत्कृष्ट विशुद्धि होती है।** यानी दूसरे समय के जघन्य से दूसरे समय की उत्कृष्ट विशुद्धि अनंतगुणा होती है।

तीसरे समय में क्या होगा ? दूसरे समय के उत्कृष्ट परिणाम से तीसरे समय का जघन्य परिणाम अनंतगुणा विशुद्ध और उससे उसी समय का उत्कृष्ट परिणाम अनंतगुणा विशुद्ध होगा। इसको सर्प की चालवत् ऐसा शास्त्र में कहते हैं। **दूसरे समय के परिणामों की अपनी विवक्षित रेंज होती है। द्वितीय समय के परिणाम प्रथम समय के किसी भी परिणाम से मिलते नहीं हैं,** इसलिये उसको क्या कहा ? अपूर्व-अपूर्व ही होते हैं। इसीतरह प्रतिसमय के परिणामों की विशुद्धि अनंतगुणा-अनंतगुणा होती जाती है। यह तो विशुद्धि की बात हुयी। जैसे हमने अधःकरण में संख्या की बात भी की थी न ? १६२ थे, फिर १६६ हुये, वगैरह-वगैरह। यहां अपूर्वकरण में भी देखते हैं। **प्रतिसमय के परिणामों की संख्या का विचार करेंगे तो प्रथम समय के परिणामों की संख्या में एक चय प्रमाण संख्या बढ़कर द्वितीय समय के परिणामों की संख्या आती है।** वहां हमने देखा था चार-चार से संख्या ज्यादा थी।

पढ़ने के पहले इसकी सट्टि देखते हैं, पृष्ठ १२८ निकालना। अधःप्रवृत्तकरण के हमने कितने समय माने थे ? *श्रोताः सोलह।* सोलह। इसका काल उसके संख्यातवें भाग प्रमाण है तो हम यहां आठ समय मानेंगे; यह अंतर्मुहूर्त हमने आठ समय का मान लिया है। पहले कॉलम में नीचे से ऊपर एक से आठ तक समयों की संख्या लिखी है। पहला समय, दूसरा समय, तीसरा समय, ... आठवें समय तक। कुल परिणाम पहले समय में ४५६ और उसको कैसे कहेंगे ? नंबर १ से लेकर ४५६ तक के परिणाम होंगे। दूसरे समय में परिणामों की संख्या १६ से बढ़ गयी- ४७२ हुयी परंतु पूर्व में क्या था ? वे परिणाम ओव्हरलैपिंग थे। अभी यहां क्या होगा ? ४५६ में से कोई परिणाम ऊपर नहीं है। ऊपर के ४७२ अपूर्व हैं। ४५७ से लेकर ९२८ तक ये ४७२ हो गये।

पहले हमने अधःकरण में देखा था वह बात अलग थी और यह बात अलग है। वहां उसमें कितने ही परिणाम रिपीटेड थे, यहां वैसा नहीं है। ये कुल परिणाम ४५६ थे, अब ४७२ हुये, केवल इतने थोड़े से परिणाम नहीं बढ़े। सभी के सभी जुड़े परिणाम हैं

परंतु उनकी टोटल संख्या ४७२ है। उसमें कहां से शुरू होते हैं ? ४५७ से काउंट करो तो ४७२ कहां आयेगा ? ९२८ नंबर जो है वह है ४७२वाला परिणाम। अब तीसरे समय में कहां से शुरू हो जायेगा ? ये ९२८ थे न, तो ९२९ से शुरू होंगे। परंतु टोटल संख्या कितनी होनेवाली है ? ४८८। तो ९२९ से लेकर १४१६ तक ये ४८८ अलग-अलग जुड़े परिणाम होंगे। उसके ऊपर कहां से शुरू होगा ? १४१७ से और टोटल परिणाम हैं ५०४। १४१७ से ५०४ गिनेंगे तो १९२० हो जाते हैं। हम यहां कैसे गिन रहे हैं ?

पहले हम गिनते थे, उसमें परिणाम ओव्हरलॉपिंग थे। यहां वैसा नहीं है। अब १९२० तक आ गये न, तो पांचवां समय है- ५२० टोटल नंबर ऑफ़ परिणाम हैं, परंतु वे कौनसे होंगे ? १९२१ से २४४० तक। अब उसके ऊपर परिणामों की संख्या ५३६ है, परंतु वे होते हैं २४४१ से लेकर २९७६ तक। सातवें समय में टोटल संख्या है ५५२। शुरू होते हैं २९७७ से और होते हैं ३५२८ तक। अंतिम समय में टोटल परिणाम हैं ५६८, वे ३५२९ से लेकर ४०९६ तक के हैं। यानी वह हमने १ नंबर से लेकर ४०९६ तक के जुड़े-जुड़े समय में जुड़े-जुड़े परिणाम देखे। इसमें कोई ओव्हरलॉपिंग नहीं थी। टोटल परिणाम ४०९६, १ नंबर से वहां तक के कहां कौनसे समय में वह हमने देख लिये। कोई भी एक समय का परिणाम ऊपर के किसी समय के साथ सट्टा नहीं होता। पृष्ठ १२७ पर हमने उसका टेबल देख लिया, अब पढ़ेंगे तो हम थोड़ा समझ सकते हैं कि क्या बात चल रही है। आप पृष्ठ पलटकर देखना, मैं पढ़ूंगी।

श्रोता: परिणामों में क्लेरिफिकेशन जो हैं वे कौलिटि और क्वांटिटि दोनों की अपेक्षा है ? कौलिटि तो अनंतगुणा बढ़ती ही है। एक समय में उसकी विशुद्धि जुदी-जुदी है - विशुद्धि को अगर आप कौलिटि कहना चाहते हैं। यानी कम विशुद्धि, अधिक विशुद्धि, अधिक विशुद्धि, अनंतगुणा विशुद्धि है। हमने १ से लेकर ४५६ तक के भेद देखे थे, उनकी संख्या को हम क्वांटिटि कहेंगे। श्रोता: मोहनीय का भी विशुद्ध है ? ना-ना, जीवों के विशुद्धि की बात चल रही है - यहां तत्त्वज्ञान की निर्मलता व श्रद्धा संबंधी निर्मलता समझना। अभी सम्यक्त्व की ओर जा रहा है उस निर्मलता को लेना। इसको यहां विशुद्धि कहा है, विशुद्धि को भी अविभागप्रतिच्छेदों में गिनो। वह अनंतगुणा-अनंतगुणा-अनंतगुणा बढ़ रही है।

श्रोता: यह १६ का डिफरन्स क्यों ले लिया ? यह ४५६, ४७२, ४८८ में चय

कितना है ? चय यानी फिक्स्ड डिफरन्स। ४७२ में १६ मिलाओ तो ४८८ हो जाते हैं। पहले हमने चय का प्रमाण चार देखा था, यहां चय का प्रमाण १६ है। १६ बढ़े, उसमें और १६ बढ़े, और १६ बढ़े। एक बार १६ बढ़े तो बढ़े हुये १६ में और एक्स्ट्रा १६ बढ़े इसतरह से। फिर से- हमने क्या देखा ? प्रत्येक समय की उत्कृष्ट विशुद्धि से अनंतर समय की जघन्य विशुद्धि भी अनंतगुणा है यह तो विशुद्धि की बात हुयी। **प्रतिसमय के परिणामों की संख्या** अभी संख्या की बात ख्याल में आयी न ? पहले समय में संख्या थी ४५६, दूसरे समय में ४७२ - यह संख्या है। प्रत्येक समय के परिणामों की संख्या का विचार करेंगे तो **प्रथम समय के परिणामों की संख्या में**। किसमें ? पहले कितने थे ? ४५६ में **एक चय प्रमाण** चय का अर्थ होता है फिक्स्ड डिफरन्स - संख्या बढ़ते जानेवाली है, संख्या में प्रतिसमय उतनी की उतनी वृद्धि होगी उसको चय कहते हैं। एक चय प्रमाण **संख्या बढ़कर द्वितीय समय के परिणामों की संख्या आती है।**

हमने यहां चय कितना माना है? १६ तो ४५६ में हमने १६ मिलाये, ४७२ हो गये। उसमें **एक चय मिलानेपर तीसरे समय के परिणामों की संख्या आती है।** इसीतरह प्रतिसमय एक-एक चय बढ़ता जाता है। हम इसे अंकसंदष्टि द्वारा समझेंगे यानी काल्पनिक संख्या जो हमने अभी टेबल देखा था। अर्थात् काल्पनिक संख्या द्वारा समझेंगे। मान लो पहले समय में ४५६ परिणाम होते हैं अर्थात् जघन्य विशुद्धिवाला यहां का जघन्य; नीचे के अधःकरण की अपेक्षा तो यह अनंतगुणा विशुद्ध था। तो जघन्य विशुद्धिवाला **पहला परिणाम और उत्कृष्ट विशुद्धिवाला ४५६ वां परिणाम है। उनके बीचवाले मध्यम परिणाम हैं।** दूसरे समय में विशुद्धि तो पूर्व परिणाम से अनंतगुणा होती है परंतु परिणामों की संख्या १६ से बढ़कर ४७२ परिणाम होते हैं। जुदे-जुदे टोटल परिणाम कितने हैं ? ४७२। परंतु उनको हम नंबरिंग करेंगे तो कहां से शुरू हो जायेंगे ? ४५७ से लेकर।

श्रोता: सभी जीवों के चय सेम होते हैं कि अलग होते हैं ? सभी अनंत जीवों के प्रथम समय में विशुद्धि के जो भेद हैं उनको कहेंगे संख्या। वह संख्या प्रतिसमय विशिष्ट प्रमाण में बढ़ती है उसे कहेंगे चय। देखो, एक जीव के अनंतगुणी विशुद्धि बढ़ी है। एक जीव में कोई चय नहीं है। सभी जीवों की विशुद्धि के वहां भेद कितने हैं ? तो ४५६ हैं। वे भेद और कितने बढ़ेंगे ? १६ से बढ़ेंगे। एक जीव में कोई चय लागू नहीं पड़ेगा, यहां अनेक जीवों के अलग-अलग कितने भेद हैं ? उसकी बात है।

इसका तात्पर्य यह है कि पहले समय में १ से ४५६ परिणाम हैं, दूसरे समय में ४५७ से ९२८ तक कुल ४७२ परिणाम होते हैं। यह बात समझ में आती है न ? हम नंबर डालेंगे- ४५७वां परिणाम, ४५८वां परिणाम। यानी १, २, ३ ऐसा हम गिनेंगे तो टोटल कितने हो जायेंगे ? ४७२। पहले समय का ४५६वां उत्कृष्ट परिणाम है, उससे भी दूसरे समय का ४५७वां जघन्य परिणाम अनंतगुणा विशुद्ध है। ४५७वें परिणाम से दूसरे समय का उत्कृष्ट यानी कौनसा ? ९२८वां उत्कृष्ट परिणाम अनंतगुणा विशुद्ध है। यानी हर समय में अपने जघन्य से अपना उत्कृष्ट अनंतगुणा है और नीचे के उत्कृष्ट से ऊपर का जघन्य अनंतगुणा है। इसतरह से विचार करना है। हमने अधःप्रवृत्तकरण में देखा था कि पहले समय में १६२ परिणाम थे और दूसरे समय में १६६ परिणाम थे परंतु वहां अनेक परिणाम दोनों समयों में समान थे। कौनसे ? ४०वें से लेकर आगे। ४०वें परिणाम से लेकर १६२वें परिणाम तक के परिणाम दोनों में समान थे। वैसी समानता यहां अपूर्वकरण में नहीं पायी जाती। यही इसकी विशेषता है। इसलिये उसका नाम अपूर्वकरण है।

१ से ४५६ का कोई भी परिणाम दूसरे समय में नहीं पाया जाता। दूसरे समय के सभी परिणाम अपूर्व ही होते हैं, पूर्व समय में किसी भी जीव के नहीं पाये जाते। दूसरे समय के ४५७ से ९२८ तक ४७२ परिणामों में चय १६ बढ़कर अभी दूसरे में और १६ अँड होंगे तो तीसरे समय में टोटल संख्या कितनी हो जायेगी ? ४८८ परिणाम होते हैं। वे ९२९ से १४१६ तक होते हैं। इसे भी हम कोष्टक यानी आकृति द्वारा समझेंगे। पहले हमने देखा था कि अपूर्वकरण का काल एक अंतर्मुहूर्त होता है, परंतु वह अधःप्रवृत्तकरण के अंतर्मुहूर्त काल के संख्यातवें भाग प्रमाण होता है। हमने उसका आधा मान लिया। हम मान लेते हैं कि उससे आधा अर्थात् ८ समय का है। तथा अपूर्वकरण के सभी परिणाम ४०९६ हैं। प्रत्येक समय में जघन्य से उत्कृष्ट तक कितने परिणाम होते हैं उसे निम्न आकृति द्वारा समझेंगे। हमने पहले ही समझ लिया था। नीचे की आकृति है न ?

एक ही समय में जघन्य विशुद्धि से उत्कृष्ट विशुद्धि अनंतगुणा है और पहले समय की उत्कृष्ट विशुद्धि से दूसरे समय की जघन्य विशुद्धि अनंतगुणा है। देखो, इसतरह से इधर से उधर, उधर से इधर, ऐसा बताया। यानी १ले परिणाम से ४५६वां परिणाम अनंतगुणा, ४५६वे से ४५७वां अनंतगुणा, उससे ९२८वां अनंतगुणा, उससे

९२९वां अनंतगुणा और उससे १४१६वां अनंतगुणा। शास्त्र में इसको सर्प की चालवत् ऐसा कहा है। ऊपर दिखाये अनुसार विवक्षित समयवर्ती जघन्य विशुद्धि से उसी समय की उत्कृष्ट विशुद्धि अनंतगुणा होती है और उस उत्कृष्ट विशुद्धि से अनंतर समय की जघन्य विशुद्धि अनंतगुणा होती है। इसे सर्प की चालवत् कहते हैं। यह पढ़ते हैं तो हमें भाषा ख्याल में आती है कि क्या कहना चाहते हैं ? बस इतना ही समझना है। ना याद करना है, ना रटना है, ना चिंता करनी है। समझना है, बस।

श्रोता: यह लॉजिकलवाली बात ४५६, ९२८ को लिया है इसमें लॉजिक ? लॉजिकल यानी संख्या १६-१६ से बढ़ती है यही बताना है। वह नया परिणाम है, पहले परिणाम से मॅच नहीं है इसलिये उसका नंबर ४५७ है। ४५६ तक परिणाम देख लिये। अभी उसको नंबरिंग करेंगे, वह कौनसा होगा? ४५७वां होगा। कितना डिफरन्स है ? मॅच कैसे नहीं होता ? अरे, ४७२ काउंट करो न ! देखो, टोटल संख्या कैसे निकालते हैं ? ९२८ मायनस ४५७। कितने हुये ? प्लस वन करो, दोनों संख्याओं को गिनना है। श्रोता: कोई एक्झाम्पल हैं ये अनंत परिणाम हैं ? अनंत परिणाम नहीं, असंख्यात लोकप्रमाण। हम क्या एक्झाम्पल देंगे ? उसकी विशुद्धि बढ़ रही है। तत्त्वज्ञान संबंधी निर्मलता बढ़ रही है, अभी सम्यक्त्व की ओर बढ़ रहा है।

श्रोता: उसका भावभासन कैसे करना है ? भावभासन है वह तो उसकी अंतरंग में लीन अवस्था है। लीन अवस्था यानी ? हमारी भाषा में शुद्धोपयोग शुरू हो गया उसका। हां, वह सब जो हमने शास्त्र में पढ़ा है, अभी ज्ञान किसके सन्मुख हुआ है ? कहां स्थिर हुआ है ? उसने स्वभाव का निर्णय किया है, अभी उसने उसका लक्ष किया है। अभी अनुभव नहीं हुआ है, होने जा रहा है ऐसी स्थिति में है। अभी उसको समझाने के लिये हम क्या उदाहरण देंगे ? है न ? करके देखो, फिर हमें बताना। उस समय ऐसा कोई विकल्प ही नहीं है, कोई दूसरी चीज का कि कौनसे विकल्प हो रहे हैं। अभी तो विकल्प भी सूक्ष्म हो रहे हैं, वे मिट भी जायेंगे। बस विकल्परहित अवस्था है तो उसकी क्या बात ? उसको उदाहरण द्वारा कैसे समझायेंगे ?

श्रोता: अपूर्वकरण में ४५६ से ४५७ में जो अनंतगुणे परिणाम हैं उनमें कितना अंतर है ? अनंतगुणा। ४५६ के जो अविभागप्रतिच्छेद हैं उनसे अनंतगुणे अविभागप्रतिच्छेद ४५७ में हैं। उसके लिये षट्स्थानवृद्धि क्या होती है, अनंतगुणा क्या

होता है वह सब पूरा विषय समझना पड़ेगा। आप जरूर करणानुयोग पढ़ना। इन सारे प्रश्नों के उत्तर हैं परंतु अभी संक्षेप में हम इसको समझना चाहते हैं, यह पॉसिबल नहीं है। श्रोता: पहले समय के परिणाम से दूसरे समय का परिणाम कितना उत्कृष्ट होगा ? यथायोग्य उत्कृष्ट होगा। अभी उसमें कोई विशिष्ट रेंज होगी यानी पहले समयवाला परिणाम दूसरे समय में ४५७ के ऊपर तो पहुंच ही जायेगा। ४५७ भी होगा, ४५८ भी होगा, यथायोग्य होगा। अभी उसको हमारी ओर से हम कुछ कथन नहीं करेंगे। अभी यथायोग्य - दूसरे समय के उस रेंज में उसकी विशुद्धि बढ़ेगी इतना हम कह सकते हैं।

श्रोता: ४५६ परिणाम जो है वह नंबर से जाता है कि डिग्री जाता है यह समझ में नहीं आता ? ४५६वां परिणाम ? अविभागप्रतिच्छेदों में जायेगा। परंतु हम उसको नंबर दे रहे हैं; यह पहले नंबर का है, उसकी विशुद्धि इतनी है। यह दूसरे नंबर का है, उसमें विशुद्धि इतनी है। यह ४५६ वां है, उसमें विशुद्धि इतनी है। हम उसको नंबरिंग दे रहे हैं। वैसे असंख्यात लोक-असंख्यात लोक परिणाम हैं परंतु उसमें हम कैसे कथन करेंगे ? तो हमने उसको समझाने के लिये छोटी संख्या में ऐसे नंबर दिये। यह पहले नंबरवाली विशुद्धि, यह दूसरे नंबरवाली विशुद्धि, यह तीसरे नंबरवाली। अधिक बढ़ती-बढ़ती-बढ़ती विशुद्धि है वह भी जुदी-जुदी।

श्रोता: अधःकरण में जब हम कहते हैं जो मॅक्झिमम जो है वह नीचेवाला जब दूसरे समय में जाता है तब वह कम नहीं हो सकते ? ना, किसीके कम नहीं होगी। पहले ३९वाला जो ग्रुप था, उसकी ४०वाले ग्रुप जैसी विशुद्धि बढ़ी है। पहले समय में ही ४०वाले ग्रुप की ज्यादा ही थी, अनंतगुणा थी। वैसे ३९वाले ग्रुप की विशुद्धि दूसरे समय में ४० जैसी बढ़ गयी है। कम तो किसीकी नहीं होगी। एक जीव की अपेक्षा तो विशुद्धि अनंतगुणी बढ़ती ही बढ़ती है। एक जीव की अपेक्षा बढ़ती है, यहां नाना जीवों की अपेक्षा तुलना चल रही है। तो यहां टोटल परिणाम कितने हैं ? हैं तो असंख्यात लोक x असंख्यात लोक। उनको हमने ४५६ मान लिये हैं। अभी उसमें कैसे समझेंगे ? उसमें जो कुछ वृद्धि के स्थान हैं वह सब यहां विस्तार से बता नहीं सकते। केवल जघन्य से उत्कृष्ट तक इतना ही हमने बताया। बीच में असंख्यात लोक बार षट्स्थानवृद्धि होगी।

श्रोता: नाना जीवों की अपेक्षा क्यों तुलना करते हैं ? क्योंकि उनके परिणाम कैसे हो सकते हैं ? बस इसकी बात है। करण परिणाम के नाम ही तुलना की अपेक्षा

से पड़े हैं। वह तो ज्ञान का ज्ञेय है। एक जीव में क्या हो रहा है ? विशुद्धि अनंतगुणा बढ़ रही है। उसमें क्या कार्य हो रहा है ? वह हमें देखना है। गुणश्रेणी क्या है ? गुणसंक्रमण क्या है ? वह सब हमें देखना है। अधःकरण में क्या कार्य हुये थे ? विशुद्धि अनंतगुणा बढ़ी थी, स्थितिबंधापसरण हुआ था, अप्रशस्त में ऐसा हुआ था, प्रशस्त में ऐसा हुआ था। यहां विशुद्धि और बढ़ी है तो यहां उनके साथ-साथ और क्या-क्या बातें होगी ? गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण वगैरह सब यहां चालू हो जायेगा। वह बात अभी हम पढ़ेंगे।

पृष्ठ १२९ पर आते हैं- **अब यहां जो चार आवश्यक होते हैं, उसका स्वरूप देखते हैं।** यानी पहलेवाले चार आवश्यक तो यहां चल ही रहे हैं, उनके अलावा और हो रहे हैं। **यह बात समझ लो कि अधःप्रवृत्तकरण में बताये हुये चार आवश्यक तो यहां भी होते हैं, उनके साथ-साथ और भी चार बातें होती हैं उनकी अब चर्चा करते हैं। उनके नाम तो हमने पहले ही देखे थे -** और यहां बोर्ड पर चार्ट में भी लिखे हैं। देखो, यहां क्या लिखा है ? अधःकरणवत् पहले बताया है। चार बातों के साथ, कौनसी चार बातें ? जो हमने पहले देखी थी - विशुद्धि का प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ना, स्थितिबंधापसरण, अप्रशस्त कर्मों का द्विस्थानगत घटता हुआ अनुभागबंध और प्रशस्तों का चतुःस्थानगत बढ़ता हुआ अनुभागबंध। उनके साथ अन्य चार आवश्यक और भी होते हैं। चार आवश्यक यानी चार बातें जो नियमरूप से यहां होनेवाली हैं उनके नाम यहां बताये हैं- गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात जिसको हमने पहले देखा था - प्रयोग्यलब्धि में एक ही बार हुआ था और यहां हर अंतर्मुहूर्त में एक-एक स्थितिकांडकघात होगा और अनुभागकांडकघात। इन सबका अर्थ देखेंगे हम।

अपूर्वकरण

अधःकरणवत् चार बातों के साथ अन्य चार आवश्यक और भी होते हैं -

- १) गुणश्रेणी
- २) गुणसंक्रमण
- ३) स्थितिकांडकघात
- ४) अनुभागकांडकघात

एक स्थितिकांडकघात को जितना अंतर्मुहूर्त काल लगता है, उसमें हजारों बार

अनुभागकांडकघात होते हैं। एक कांडक के बाद दूसरा कांडक, दूसरे के बाद तीसरा - ऐसे निरंतर चलता है। स्थिति का घटना, अप्रशस्तों में अनुभाग का घटना और वह भी कांडक प्रमाण में - वह बात यहां बारंबार होगी। अब इसका विशेष स्वरूप देखेंगे। **उनके नाम तो हमने पहले देखे थे- गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात** इसीका दूसरा नाम है **स्थितिखंडन** यानी सत्ता की स्थिति में से अनेक निषेकों का एक छोटे अंतर्मुहूर्त में घात होकर उनके परमाणु नीचे के निषेकों में आ मिलते हैं **और अनुभागकांडकघात**, उसीका दूसरा नाम है **अनुभागखंडन**। **अधःप्रवृत्तकरण के समान स्थितिबंधापसरण तो होता ही रहता है।** उसका अर्थ था- स्थितिबंध घटते चला जाता है। स्थितिबंध जो कम हुआ है, अंतर्मुहूर्त तक उतना ही रहेगा।

श्रोता: अभी आप एक जीव की अपेक्षा से बोल रहे हैं ? हां, प्रत्येक जीव में ये बातें होंगी। अभी यह कार्य सब मिलकर नहीं करेंगे। प्रत्येक जीव की विशुद्धि और अनंतगुणा बढ़ते-बढ़ते यहां तक आ गयी न, अपूर्वकरण के परिणाम हुये तो अपूर्वकरण जितनी विशुद्धि है। सब जगह हम एक ही बात कर रहे हैं कि विशुद्धि बढ़ रही है-विशुद्धि बढ़ रही है तो कितनी बढ़ी ? कि कर्मों में ये बातें हो जाती हैं ऐसी बढ़ी। हमें तो कर्मों की तरफ से समझाना है न। हमारे यहां ठंड बढ़ रही है, बहुत बढ़ रही है, बहुत बढ़ रही है। कैसे बताते हैं ? कितने डिग्री टेम्परेचर हुआ ? यह ऐसा है। कौनसे कर्मों में क्या परिवर्तन हो रहा है ? उस डिग्री में जीव के परिणाम और विशुद्ध हुये - और विशुद्ध हुये ऐसा कह रहे हैं।

देखो, **गुणश्रेणी-** पहले इसका अर्थ देखते हैं। **श्रेणी अर्थात् पंक्ति, निषेकों की पंक्तियां। कर्मों की निषेक रचना में हमने आकृति द्वारा एक-एक समय के एक-एक निषेक को बताया था।** हम इसको बोर्ड पर देखेंगे, पहले पढ़ लेते हैं। निषेक रचना याद है ? तीन नंबर के चार्ट में निषेक रचना बतायी है, आपको याद है ? नीचे आबाधाकाल बताया है। वह एक समय की निषेक रचना थी और यहां जो हम बतायेंगे वह सत्ता की निषेक रचना बता रहे हैं। फिर से- प्रत्येक समय में बंध हो रहा है। तो एक समय में बंधनेवाले समयप्रबद्ध की आबाधाकाल नीचे दिखाते हैं और ऊपर निषेक रचना बताते हैं। अब ये नये बंधे हुये निषेक सत्ता में मिल जाते हैं। अब सत्ता के निषेक कैसे समझना ? देखो यहां बोर्ड पर। नीचे वर्तमान समय में वर्तमान का एक निषेक है। ऊपर एक-एक समय से अधिक उनकी स्थिति पड़ी है। नीचे का निषेक

उदयरूप होकर खिर जाता है और ऊपर प्रत्येक समय में एक-एक आड़ी लाइन यानी एक-एक निषेक है और एक-एक निषेक में अनंत-अनंत परमाणु पड़े हैं।

अभी क्या होगा ? यहां परिणाम के कारण गुणश्रेणी भी होनेवाली है और क्या-क्या होगा ? गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात। अभी ये विधान एक साथ होंगे। स्थितिकांडकघात भी चलेगा और इतना ही नहीं, इन सभी निषेकों में से अपकर्षण यानी स्थिति घटकर नीचे आना - यह कार्य भी होगा। जैसे हमने सबसे चंदा इकट्ठा किया और फिर सबमें बांट दिया। यहां क्या करेंगे ? पहले सभी निषेकों में से चंदा इकट्ठा करेंगे और फिर उसको सभी निषेकों में बांट देंगे। तो हमने पहले सबमें से माल निकाला। देखो, यह दोनों विधान एक साथ हो रहे हैं। कौनसे ? सबमें से अपकर्षण होकर परमाणु नीचे आना भी हो रहा है और स्थितिकांडकघात भी हो रहा है। गुणश्रेणी के लिये क्या आवश्यक है ? कि स्थितिकांडकघात में से भी कुछ परमाणु आ रहे हैं और सभी निषेकों में से कुछ परमाणु; हमने वह सब इकट्ठा कर दिया है। उसमें से जो विभाजन होगा, तो कुछ द्रव्य यहां उदयावली में थोड़ा घटते हुये दिया जायेगा। जहां गुणश्रेणी होती है वहां नीचे के निषेक में थोड़ा और ऊपर के निषेकों में असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा दिया जायेगा। फिर बाकी शेष द्रव्य गुणश्रेणी के ऊपर शेष सभी निषेकों में घटते क्रम से दिया जायेगा।

हमने क्या किया था ? सभी निषेकों में से थोड़ा-थोड़ा इकट्ठा किया था। वह कितना निकालना ? वहां जितने परमाणु होंगे उसको विशिष्ट संख्या से भाग देंगे तो उतना। जैसे आप कितनी कमाई करते हो ? हर एक की अपनी जुदी-जुदी है न ? हम कहेंगे आपका एक दशांश प्रतिशत यानी पॉइंट वन परसेंट हमें दे दो और फिर हम उसको बांटेंगे। यहां कैसे बांटेंगे ? नीचे उदयावली में आवली प्रमाण निषेकों में कुछ अलग हिस्सा देंगे। उदयावली के ऊपर जहां गुणश्रेणी बनती है वहां बहुत सारा हिस्सा देंगे और वह भी किसतरह से देंगे ? नीचे के निषेक में कम, फिर ऊपर उससे असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा। बीच में गुणश्रेणी की रचना दिखेगी। इसमें क्या हो रहा है ? प्रतिसमय एक-एक निषेक गल रहा है। तो जो गुणश्रेणी की रचना हुयी वह भी नीचे-नीचे आयेगी कि नहीं आयेगी ? सिर्फ एक समय में गुणश्रेणी में नहीं दिया, दूसरे समय में उससे और असंख्यातगुणा परमाणु गुणश्रेणी में दिये जाते हैं। अभी इतने सारे कांडकघात होते रहते हैं तो उसका द्रव्य भी नीचे आ रहा है तो नीचे आनेवाले

परमाणुओं की संख्या बहुत अधिक हो जाती है। वह गुणश्रेणी में दिया जाता है।

जब वे निषेक उदय में आने लगते हैं तो बहुत सारे परमाणु यानी प्रदेश खिरने लगते हैं। प्रदेश बहुत अधिक प्रमाण में जा रहे हैं। मिथ्यात्व के भी खिरनेवाले प्रदेश बहुत होंगे। अभी तो सम्यक्त्व नहीं हुआ तो भी निर्जरा होगी ? प्रदेश जरूर अधिक खिरेंगे क्योंकि अभी सम्यक्त्व तो होने ही वाला है। परंतु प्रदेश ज्यादा खिरे इसलिये उसका अनुभाग ज्यादा आ रहा है ऐसा नहीं है। अनुभाग मंद होकर प्रदेश अधिक जा रहे हैं। सत्ता में पड़े हुये परमाणु अधिक मात्रा में घट रहे हैं। यहीं से शुरुआत होगी। गुणश्रेणी की रचना होकर बाद में गुणित प्रमाण में उसकी निर्जरा भी हो जायेगी जब ये निषेक नीचे आ जायेंगे। अभी तो हम गुणश्रेणी की रचना कैसे होती है उसको देखेंगे। फिर से पुस्तक के आधार से पढ़ेंगे। अभी एक-एक विधान हम अलग-अलग पढ़ेंगे। परंतु हमें ऐसा समझना है कि ये सभी विधान एक साथ चल रहे हैं। सामान्य से अपकर्षण भी हो रहा है, गुणश्रेणी भी बन रही है, उसी समय ऊपर स्थितिकांडकघात होकर वहां के परमाणु और मात्रा में नीचे आ रहे हैं। इन सबके द्वारा क्या होगा ? एक तो स्थिति घटेगी, नीचे के निषेकों में अधिक परमाणु आयेंगे और वे निषेक उदयरूप होंगे तो अधिक परमाणु खिर जायेंगे। समझ में आती है न बात ?

श्रोता: आयुक्रम को छोड़कर सब में होगा ? बिलकुल, आयु को छोड़कर सबमें होगा। यहां अकेले मोहनीय में नहीं हो रहा है; ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि सबमें हो रहा है। सबकी अपनी-अपनी निषेक रचना है और सबमें स्थितिकांडकघात, अपकर्षण ये सब हो रहा है। गुणश्रेणी भी सभी कर्मों में हो रही है। फिर से पढ़ते हैं- **श्रेणी अर्थात् पंक्ति।** गुणश्रेणी का अर्थ क्या है ? गुणित प्रमाण में श्रेणीरूप रचना, पंक्तिरूप रचना। गुणित प्रमाण में यानी नीचे के निषेक में जितना दिया; समझने के लिये मान लेते हैं एक हिस्सा दिया। तो दूसरे में कितने दिये ? एक गुणा चार - चार। तीसरे में ? चार गुणा चार - सोलह और चौथे में सोलह गुणा चार - चौंसठ। मान लेते हैं ८५ परमाणु नीचे आते हैं। तो पहले में दिया १, दूसरे में दिये ४, तीसरे में दिये १६, चौथे में दिये ६४ - टोटल हुयी ८५। दूसरे समय में ८५ से चार गुणा परमाणु नीचे आयेंगे। जहां एक दिया था वहां चार दिये जायेंगे, जहां चार दिये थे, वहां सोलह दिये जायेंगे। यथार्थ में ऐसे हर समय असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा दिये जायेंगे। तो निषेक बड़े-बड़े होंगे और जब उदय का समय आयेगा तो क्या होगा ? खिर जायेंगे। निर्जरा किस पद्धति से होती है

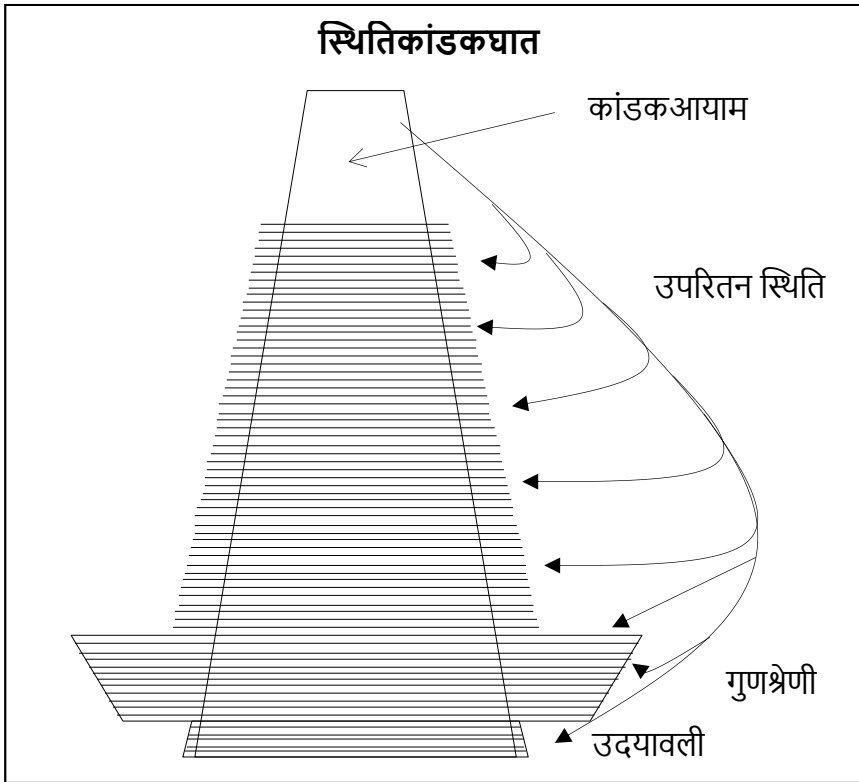
उसका एक छोटा उदाहरण हम एक छोटी संख्या लेकर बता रहे हैं आपको।

देखो- **श्रेणी अर्थात् पंक्ति**, किसकी पंक्ति ? **निषेकों की पंक्ति। कर्मों की निषेक रचना में हमने आकृति द्वारा एक-एक समय के एक-एक निषेक को बताया था।** पहले हमने आपको एक समयप्रबद्ध की निषेक रचना का चार्ट बताया था। यहां सत्ता की निषेक रचना बता रहे हैं। **वर्तमान समय का निषेक सबसे नीचे आड़ी रेखा द्वारा बताया जाता है।** यह सत्तावाला निषेक है। **उसके ऊपर द्वितीयादि** यानी दूसरा, तीसरा, चौथा **एक-एक समय का निषेक एक-एक आड़ी रेखा द्वारा बताया जाता है।** हमें समझ में आये इसलिये चार्ट्स इसतरह से बनाये जाते हैं। **उसमें वर्तमान समय से लेकर एक आवली काल तक के निषेकों को उदयावली कहते हैं।** आवली में कितने समय होते हैं ? जघन्ययुक्तासंख्यात होते हैं। यहां चार्ट देखना। यह नीचे का वर्तमान का पहले नंबर का निषेक, उसके ऊपर दूसरा, तीसरा, चौथा आदि आवली तक के निषेक हैं उसे उदयावली कहा है। उदयावली का अर्थ क्या है ? उदय के सन्मुख हुये आवली प्रमाण निषेक। आवली यह संख्या का नाप है। जघन्ययुक्तासंख्यात इतने निषेक यहां हैं। उनको क्या कहेंगे ? उदयावली।

जब नीचे का निषेक खिर जायेगा, तो ऊपर का निषेक उदयावली में आयेगा। उसको कहेंगे वह उदयावली का निषेक है। ऐसे नीचे से एक-एक निषेक खिरता जाता है और ऊपर-ऊपर से उदयावली में प्रवेश करता है। उसको उदयावली कहते हैं। **ऊपर के निषेकों को उपरितन स्थिति कहते हैं।** जब तक गुणश्रेणी नहीं बनती तो हम निषेकों के दो ही विभाग करेंगे - उदयावली और उपरितन स्थिति। **परिणामों की विशुद्धि के निमित्त से विशुद्धि बढ़ रही है, अब उसके निमित्त से।** यहां सब निमित्त-नैमित्तिक भाषा ही चलेगी। हमें तो पता है कि परमाणु में कार्य उसकी अपनी योग्यता से होते हैं, जीव तो अपने में पुरुषार्थ कर रहा है। ये बातें सहज होती हैं, उसमें कोई करने-धरनेवाला नहीं है। कहते हैं परिणामों की विशुद्धि के निमित्त से **सत्ता में पड़े हुये कर्मों का अपकर्षण होता है अर्थात् उनकी स्थिति कम होती है।**

जब अपकर्षण होता है तब पूरा का पूरा निषेक अपकर्षण होकर नीचे नहीं आता। पूरे के पूरे निषेक का घात कैसे होगा ? स्थितिकांडकघात से होगा। परंतु प्रत्येक निषेक में अनंतानंत परमाणु पड़े हैं, उसमें से थोड़े परमाणु नीचे आते हैं उसको कहेंगे

अपकर्षण। यानी उतने परमाणुओं की स्थिति कम होती है, वे नीचे के निषेकों में आ मिलते हैं। नीचे आये तो कुछ परमाणुओं की स्थिति उदयावली जैसी बनेगी। किसी की स्थिति ऊपर के निषेकों जैसी बनेगी। उसमें जैसी स्थिति होती है उस निषेक में वे आ मिलते हैं। तो ऊपर के निषेकों के परमाणुओं की स्थिति घटने के कारण वे नीचे के निषेकों में आ मिलते हैं। यहां ऊपर नीचे जो बताया जाता है वह समझने के लिये बताया जाता है। कर्म कहीं कतार से खड़े नहीं है। यह ख्याल में लेना। अपकर्षित किये हुये परमाणु जिन विवक्षित पंक्तिबद्ध निषेकों में गुणित प्रमाण में दिये जाते हैं उतने निषेकों की गुणश्रेणी रचना होती है।



अब यहां दुबारा बोर्ड पर देखना। यह उदयावली थी। इसमें तो नीचे के निषेक में ज्यादा दिये थे, फिर थोड़े घटते क्रम से दिया था। उदयावली के ऊपर अंतर्मुहूर्त प्रमाण निषेकों में कैसे दिया ? गुणित क्रम से दिया। एक के बाद एक निषेक पड़े हैं न

यहां ? वे कितने हैं ? अंतर्मुहूर्त प्रमाण असंख्यात निषेक हैं। उसमें किस पद्धति से दिया जायेगा ? वहां मूल निषेक तो थे ही थे हमेशा जो मूल निषेक पड़े रहते हैं वे घटते क्रम में होते हैं। अंदर यह डॉर्क लाइन बतायी है न, ये मूल निषेक इसतरह से पड़े थे। हां, और यह बाजू में दिखाये हैं न, ये उनमें अधिक दिये हैं। ख्याल में आयी बात ?

मूल निषेक थे कि नहीं थे ? शास्त्र में उसको कहते हैं गोपुच्छ। गोपुच्छ यानी घटते हुये। हमेशा निषेक रचना होती है तो नीचे के निषेक बड़े होते हैं, ऊपर के निषेकों में परमाणुओं की संख्या घटती चली जाती है। इसतरह से इसको समझना। यह डॉर्क लाइन इसलिये बनायी है कि मूल में उसकी क्या पोझिशन थी और उसमें अधिक क्या दिया, यह बताने के लिये बनायी है। जितने निषेकों में गुणित प्रमाण में दिया जायेगा उसको क्या कहेंगे ? यहां गुणश्रेणी रचना हुयी। अब उसका जो अंतर्मुहूर्त का प्रमाण है उसको कहेंगे गुणश्रेणी आयाम। आयाम यानी लंबाई; लंबाई यानी कितने निषेकों में दिया जायेगा ? अंतर्मुहूर्त प्रमाण, तो उस अंतर्मुहूर्त के एक-एक समय में एक-एक निषेक है इसलिये इसको क्या कहेंगे ? गुणश्रेणी आयाम। *श्रोता: अंतर्मुहूर्त यह आयाम ही है ?* आयाम है, पूरा ही अंतर्मुहूर्त है।

कितने निषेक हैं ? अभी मान लेते हैं न, आवली में हम चार समझेंगे और वहां मान लेते हैं सोलह हैं। तो उसको कहेंगे गुणश्रेणी का आयाम। *श्रोता: चार और सोलह दोनों को मिलाकर ?* नहीं, उदयावली अलग और गुणश्रेणी अलग। देखो, **एक समय में जितने परमाणु गुणश्रेणी में दिये जाते हैं** हमने देखा हमने सबसे चंदा इकट्ठा किया था, मालूम है न ? अब इसको हम विभाजित कर रहे हैं तो कुछ द्रव्य हमने उदयावली में दिया और कुछ द्रव्य गुणश्रेणी में दिया जायेगा। गुणश्रेणी में बटवारा समान होगा क्या ? कहते हैं नहीं। गुणश्रेणी के जितने निषेक हैं, उनमें सबसे नीचे के निषेक में कम, उसके ऊपर असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा क्रम से दिया जायेगा। *श्रोता: उदयावली में सब समान देंगे ?* नहीं, उसमें घटते क्रम से दिया जाता है - नीचे के निषेक में थोड़ा ज्यादा, ऊपर थोड़ा कम। चय से हीन। अभी हम पढ़ रहे हैं वह सुनो, आगे मत देखो।

क्या कहते हैं ? **एक समय में जितने परमाणु गुणश्रेणी में दिये जाते हैं** यहां गुणश्रेणी में प्रतिसमय ऊपर से परमाणु आनेवाले हैं। पहले समय में जितने परमाणु आयेंगे, दूसरे समय में उससे असंख्यातगुणा परमाणु आयेंगे, तीसरे समय में उससे

असंख्यातगुणा आनेवाले हैं। गुणश्रेणी में एक समय में जितने परमाणुओं का बटवारा होगा उनका बटवारा किसतरह से होता है उसे देखते हैं। सबसे नीचे के निषेक में यानी गुणश्रेणी के सबसे नीचे के निषेक में जितने परमाणु दिये जाते हैं, उससे असंख्यातगुणा परमाणु दूसरे निषेक में दिये जाते हैं, उससे असंख्यातगुणा परमाणु तीसरे निषेक में इसतरह गुणश्रेणी के असंख्यात निषेकों में असंख्यातगुणा क्रम से दिये जाते हैं। यह तो एक समय की बात हुयी।

पूर्व के निषेकों में तो कर्म परमाणु थे ही, यह हमने देखा था डॉक लाइन के अंदर तो परमाणु यानी निषेक तो थे ही। अब उनके साथ इतने सारे परमाणु आ मिलते हैं, सभी निषेकों में से कुछ परमाणु निकालकर अधिक परमाणु गुणश्रेणी में दिये गये हैं जो उनके साथ-साथ उदय में आ जायेंगे। नीचे आवली प्रमाण निषेक हैं तो एक-एक करके आवली प्रमाण निषेक गल जायेंगे। गुणश्रेणी में अधिक माल दिया था उसका नंबर आयेगा तो अधिक प्रमाण में परमाणु खिर जायेंगे। मान लो एक समय में ८५ परमाणुओं का अपकर्षण होकर गुणश्रेणी में दिये गये। तो प्रथम निषेक में १, दूसरे में ४, तीसरे में १६, चारगुणा-चारगुणा दिये न ? और चौथे में ६४ परमाणु दिये गये। यहां हमने गुणश्रेणी ४ समयों की मान ली है। समझाने के लिये ऊपर एक उदाहरण बनाया, असंख्यात का प्रमाण भी हमने ४ माना है। यह बात एक समय की है। दूसरे समय में उससे भी असंख्यात गुणा परमाणु अपकर्षित होते हैं। पहले समय में ८५ अपकर्षित हुये थे। दूसरे समय में ? उससे असंख्यातगुणा यानी चारगुणा ३४० परमाणु अपकर्षित हुये और वे गुणश्रेणी में दिये जायेंगे। यह भी उसी पद्धति से असंख्यातगुणा क्रम से दिये जायेंगे। उसी प्रकार से बटवारा होगा।

प्रथम निषेक में अभी ४ आ जायेंगे; जहां पहले १ दिया था न, वहां ४ आ जायेंगे। देखो, नीचे एक फिगर बनायी है - पूर्व निषेक लिखे हैं; प्रथमादि समयों में उन्हीं पूर्व निषेकों में १ दिया, ४ दिये, १६ दिये, ६४ दिये। यह अधिक दिये हुये द्रव्य की बात है। द्वितीय समय में और एक्स्ट्रा - जहां १ दिया था वहां ४ मिले, जहां ४ थे वहां १६ आ गये, १६ थे ६४ आये। यानी मूल निषेक प्लस पहले समय का १, दूसरे समय के ४, तीसरे समय के १६ इसतरह से जितने समय तक आते जायेंगे, जब वह निषेक उदय में आता है तो उसमें कितने अधिक-अधिक परमाणु आयेंगे। इसी पद्धति से असंख्यातगुणा निर्जरा होती है।

तत्त्वार्थसूत्र में गुणश्रेणी निर्जरा के दस स्थान बताये हैं। सबसे पहले स्थान में प्रथमोपशम सम्यक्त्व है वहां जितनी गुणश्रेणी निर्जरा होती है उससे असंख्यातगुणा श्रावक की होती है। उससे असंख्यातगुणा संयत की होती है। उससे असंख्यातगुणा अनंतानुबंधी के विसंजयोजक की होती है। उससे असंख्यातगुणा दर्शनमोह की क्षपणा करनेवाले की होती है। ऐसे आगे दस स्थान तक बताये हैं। तो गुणश्रेणी का आयाम छोटा-छोटा होता जाता है और उसमें निर्जरा होनेवाले परमाणु असंख्यातगुणा होते हैं क्योंकि अपकर्षण ज्यादा होता है। क्यों ? ऊपर के गुणस्थानों में विशुद्धि भी ज्यादा होती है। इसलिये कहते हैं ज्ञानी की जितनी निर्जरा एक अंतर्मुहूर्त में होती है, अज्ञानी भी तप करता है, वह भी इतने उपवास आदि करता है, उसने भी मुनिदीक्षा अंगीकार की तो ऐसे तप वह असंख्यात यानी करोड़ों भवों तक करेगा तो भी उसकी इतनी निर्जरा नहीं हो सकती।

हमें तो लगता है कि ऐसे ही ये कुछ कथन करते होंगे परंतु उसके पीछे करणानुयोग की इतनी बड़ी बात है। कथन तो ऐसे आते हैं परंतु उसके पीछे का रहस्य इतना बड़ा है। हमने यह वाक्य पढ़ा था कि नहीं पढ़ा था ? तत्त्वार्थसूत्र का यह सूत्र भी पढ़ा था। असंख्यातगुणा निर्जरा के स्थान घटाओ। तो हमने फटाफट बोल दिये दस स्थान होते हैं। परंतु वे क्यों होते हैं और उसका कारण क्या है वह ख्याल में आना चाहिये। देखो, अभी हम पढ़ रहे थे। **प्रथम निषेक में ४, द्वितीय में १६, तीसरे में ६४ और चौथे में २५६। इसीप्रकार** यह तो तरीका बताया - छोटी संख्या लेकर उदाहरण बताया। **प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम से परमाणु अपकर्षित होते हैं** उनकी स्थिति घटकर नीचे आते हैं - उदयावली में भी दिये जायेंगे, गुणश्रेणी में भी दिये जायेंगे, ऊपर भी दिये जायेंगे। **और गुणश्रेणी में दिये जाते हैं। जब वे निषेक उदय में आयेंगे** क्योंकि अभी आवली के ऊपर तो पड़े थे और हर समय वे नीचे की ओर उदय के सन्मुख हो रहे हैं। जब वे उदय में आयेंगे **तब असंख्यातगुणा निर्जरा होती है, इसे गुणश्रेणी निर्जरा कहते हैं।** आपने सबने पढ़ा होगा न ?

गुणश्रेणी निर्जरा होती है यानी प्रतिसमय निर्जरा यानी खिरनेवाले जो कर्म परमाणु हैं; वे गुणित प्रमाण में खिरते ही रहते हैं। जैसे दूसरे समय में ३४० आये न, अभी ३४० को ४ गुणा करके उतने ही परमाणु तीसरे समय में नीचे आयेंगे और जहां १ और ४ दिये थे वहां १६ दिये जायेंगे, चौथे समय में वहां ६४ दिये जायेंगे। इसतरह से

आप गिनना। यह तो हमने समझाने के लिये उदाहरण तैयार किया। आप इसको और बढ़ाओ। ४ गुणा बहुत छोटी संख्या है, वहां परमाणु असंख्यात गुणा आते हैं। **आयुकर्म को छोड़कर अन्य सात कर्मों में यह गुणश्रेणी रचना होती है।** प्रत्येक की अपनी-अपनी क्योंकि हर एक की निषेक रचना अलग होती है और हर एक में यह कार्य होगा। ज्ञानावरण में होगा, दर्शनावरण में होगा, हर कर्म में होगा। **यहां जो गुणश्रेणी होती है वह उदयावली के निषेकों के ऊपर के निषेकों में होती है।** यहां हमने देखा उदयावली में गुणित प्रमाण में नहीं दिया जाता, उसके ऊपर दिया जाता है।

तुम पूछोगी कितने निषेकों में - अर्थात् कितने समयवाले निषेकों में यह गुणश्रेणी होती है ? उसका उत्तर यह है कि गुणश्रेणी का आयाम यानी लंबाई अर्थात् निषेकों की संख्या समयों में बताते हैं। अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण दोनों का मिलाकर जो अंतर्मुहूर्त होता है उससे थोड़ा अधिक है। फिर से सुनो-प्रश्न क्या पूछा था ? कितने निषेकों में यह गुणित प्रमाण में दिया जायेगा ? यहां गुणश्रेणी कितनी बड़ी बनेगी ? यह गुणश्रेणी कब से शुरू हुयी है ? अपूर्वकरण से। अपूर्वकरण से शुरू हुयी है, आगे भी चलनेवाली है। तो अपूर्वकरण का काल, उसके बाद होनेवाला अनिवृत्तिकरण का काल, उसमें और थोड़ा काल मिलाओ - इतनी गुणश्रेणी ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय आदि सभी सात कर्मों में होती है। *श्रोता: थोड़ा ज्यादा काल तो फिर प्रथमोपशम सम्यक्त्व का हो जायेगा ?* अभी उसमें अलग है। मोहनीय की गुणश्रेणी अंतर में चली जायेगी। उसकी बात और विधान दोनों जुड़े हैं। बाकी कर्मों में गुणश्रेणी चलेगी। उसकी यथासमय बात करेंगे।

उसमें जितने समय होते हैं अभी वह दोनों अंतर्मुहूर्त और थोड़ा अधिक है। उतने समयों में अर्थात् उन निषेकों में यह गुणश्रेणी रचना होती है। थोड़े अधिक का जो प्रमाण है उसे गुणश्रेणीशीर्ष कहते हैं। शीर्ष यानी टॉप, गुणश्रेणी का टॉप। अपकर्षण किया हुआ द्रव्य गुणश्रेणी के ऊपर के शेष निषेकों में भी दिया जाता है, जिसे उपरितन स्थिति कहते हैं। परंतु यहां घटते हुये प्रमाण में दिया जाता है।

वह बात हम थोड़ी देर के बाद समझेंगे। बाकी विषय भी आगे बढ़ेगा।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२४. करणलब्धि - अपूर्वकरण - विशेष चर्चा

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका लिखी है। उसके आधार से हम यहां पांच लब्धि की चर्चा कर रहे हैं। पांच लब्धि के नाम हैं क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि। करणलब्धि में भी तीन करण परिणाम हैं। उनके नाम क्या हैं ? श्रोताः अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। हां, अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण।

ऐसे अटपटे नाम क्यों पड़े ? नाना जीवों के जो परिणाम हैं उनकी तुलनात्मक स्थिति क्या है ? उनमें सदृशता है या विसदृशता ? उसके संबंध से ऐसे नाम हैं। प्रत्येक जीव में क्या हो रहा है ? विशुद्धि प्रतिसमय अनंतगुणा बढ़ रही है। तो सबको प्रश्न और चिंता हो रही है कि नाना जीवों की अपेक्षा बात ही क्यों कर रहे हैं ? वह जानने का फल क्या है ? जानने का फल यह है कि हमें पता चले कि क्या सबका समान एक ही परिणाम है कि अलग-अलग हैं ? जुदे-जुदे हैं तो पांच-दस प्रकार हैं कि कितने हैं ? ये तो असंख्यात लोकप्रमाण हैं, तो द्वितीयादि समयों में सभी उतनी ही संख्या में उतने ही असंख्यात रहते हैं ? जैसे १६२ परिणाम थे तो १६२ के १६२ उतने ही रहते हैं कि उनमें भी कुछ विशेषता होती है ? यह जो कुछ विशेषता होती है, वस्तु का स्वरूप जैसा है वैसा यहां बताया है और यह सब केवलज्ञानी ने जानी हुयी बातें हैं।

यह हमारे आपके ज्ञान का विषय है और हम इसको जानते हैं। कैसे ? आगम से जानते हैं जो परोक्ष प्रमाण है। इस जानने को भी प्रमाण कहेंगे क्योंकि वह आगम में बताया है, केवलज्ञानी ने जानकर बताया है और उन्होंने जो बताया है वह हम जानते हैं। तो इस जानने को सही जानना कहेंगे कि खोटा जानना कहेंगे ? ख्याल में आयी न बात ? हमारा आगम तो इतना अलग-अलग विषयों से भरा पड़ा है, जिसमें बहुत सारे ऐसे विषय हैं कि उनकी सूक्ष्मता से यहां चर्चा होती है। इस सूक्ष्मता से हमें जीवों के परिणामों का और कर्मों का जो निमित्त-नैमित्तिक संबंध हैं वह अच्छी तरह से ख्याल में आता है। ना जीव कर्म में कुछ हेराफेरी करता है, ना कर्म जीव में कुछ हेराफेरी करते हैं। यह बात ख्याल में रखकर हमें आगे बढ़ना है। हमें प्रश्न उठते हैं कि यह क्यों ? ऐसा क्यों ? वैसा क्यों ? आचार्य कहते हैं तुम्हारे क्यों प्रश्न का उत्तर देने के लिये वस्तुव्यवस्था

बाध्य नहीं है। आपको नहीं जानना है ? मत जानिये। किसीने फोर्स तो नहीं किया है। हमारे कहने से या यहां आने से या कुछ सुनने से आप नहीं जान रहे हैं। आप जो जान रहे हैं वह अपनी पर्याय की योग्यता से जान रहे हैं। यहां बताया, उसकी चर्चा हुयी इसलिये आपने जाना ऐसा बिलकुल नहीं है। अभी हम पृष्ठ १३० पर आते हैं।

हमने गुणश्रेणी रचना देखी थी, उसके बारे में कन्फ्यूजन चल रहा है। उसको देखकर फिर आगे बढ़ते हैं। हमने देखा था निषेक रचना यानी सत्ता की निषेक रचना। उदय के समय का निषेक नीचे दिखाते हैं और ऊपर क्रम से एक-एक समय में एक-एक निषेक पड़ा है। मूल में जो निषेक रचना होती है, वह नीचे से ऊपर तक ऐसी पतली होती जाती है, जिसको गोपुच्छ भी कहते हैं। गोपुच्छ जैसे गाय की पूंछ ऊपर से नीचे पतली होती है। अब यहां निषेक रचना नीचे से ऊपर पतली होती है। इसलिये इसका नाम है गोपुच्छ रचना। शास्त्र में क्या नाम आता है उसकी यहां बात है। नीचे के निषेकों में परमाणु अधिक होते हैं और ऊपर थोड़े कम, थोड़े कम होते जाते हैं।

अभी हमने देखा था अपकर्षण होता है। यह क्या है ? विशुद्धि बढ़ रही है और उसके कारण अपकर्षित होनेवाले परमाणुओं की संख्या बढ़ती है। कितने प्रमाण में अपकर्षण होता है ? उसके लिये विशिष्ट संख्या से भाग देते हैं। वहां जितने परमाणु हैं, उनको विशिष्ट संख्या से भाग देकर जो प्रमाण आयेगा उतने प्रमाण में परमाणु प्रत्येक निषेक में से नीचे आयेंगे यानी अपकर्षित होंगे। सभी निषेकों में से जितने परमाणु नीचे आयेंगे उसे कहेंगे अपकर्षित द्रव्य। अब उसमें हम भाग करेंगे - उसका एकभाग जुदा रखेंगे और बहुभाग गुणश्रेणी के ऊपर सर्वत्र दे देंगे। परंतु गुणश्रेणी के ऊपर निषेक कितने हैं ? अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण। भले बहुत बड़ा भाग उसमें दिया परंतु हर एक निषेक के खाते में कितना आयेगा ? बहुत थोड़ा आयेगा। जो एकभाग है वह उदयावली और गुणश्रेणी में मिलकर दिया, दोनों में मिलकर बांटा। उसमें से उदयावली में बहुत थोड़ा दिया और गुणश्रेणी में बहुत सारा दिया - अंतर्मुहूर्त प्रमाण निषेकों में बटा। गुणश्रेणी के ऊपर मूल निषेकों में तो नीचे परमाणु ज्यादा थे, ऊपर कम होते गये थे उनमें जो अपकर्षित द्रव्य दिया वह भी घटते क्रम से दिया।

फिर नीचे उदयावली में ऐसा ही घटते क्रम से दिया और घटते क्रम से दिखेगा। गुणश्रेणी में कैसा दिया ? मूल में तो गोपुच्छाकार निषेक थे, परंतु उनमें १, ४, १६, ६४

इस क्रम से दिया। यह तो दृष्टांत हुआ, परंतु पहले निषेक में थोड़े, दूसरे निषेक में उससे असंख्यातगुणा, उससे असंख्यातगुणा इसतरह से गुणश्रेणी में असंख्यातगुणा क्रम से द्रव्य दिया जाता है। इसलिये जहां गुणश्रेणी बतायी उसके निषेक बड़े और ऐसे ऊपर बढ़ते हुये दिखते हैं। देने के बाद यह फायनल दृश्य है। फिर से- एक है दिया जानेवाला द्रव्य उसको कहेंगे दीयमान द्रव्य। जो यहां डार्क लाइन है न, डार्क लाइन तक तो मूल निषेकों का द्रव्य था। यह दिया द्रव्य कैसा है ? तो हम कहेंगे उदयावली में हीन क्रम से दिया, फिर गुणश्रेणी में असंख्यातगुणा क्रम से दिया और ऊपर हीन क्रम से दिया। यह दिया जानेवाला द्रव्य है।

अब मूल द्रव्य और उसमें मिला हुआ द्रव्य - दोनों मिलकर कैसा दिखेगा ? इसको कहेंगे दृश्यमान द्रव्य, ऐसा दिखेगा। कैसा दिखेगा ? उदयावली में घटता हुआ फिर गुणश्रेणी में बाहर आया हुआ और फिर ऊपर घटता हुआ दिखेगा। दिया जानेवाला द्रव्य कितना है ? हर एक निषेक में से निकाला, फिर उसका विभाजन किया। एकभाग है वह उदयावली और गुणश्रेणी में मिलकर दिया। उसमें उदयावली में बहुत थोड़ा दिया और गुणश्रेणी में बहुत अधिक दिया। बहुभाग जो ऊपर दिया वह द्रव्य बहुत अधिक था; एकभाग तो अंतर्मुहूर्त में बटा और बहुभाग तो अंतःकोड़ाकोड़ी सागर के निषेकों में बटा। इसलिये प्रत्येक निषेक के खाते में बहुत थोड़ा-थोड़ा द्रव्य आया। इसलिये फायनल दृश्य चार्ट में बताया है वैसा दिखेगा। इस चार्ट में एकदम सही जैसा दिखाना चाहते थे वैसा कर दिया है। यह बात समझ में आयी न कि यह ऐसी फिगर क्यों दिख रही है ? गुणश्रेणी में ऐसे बाहर क्यों आया है ? क्योंकि वहां द्रव्य ज्यादा दिया है। सब निषेकों में से निकालकर इसमें अधिक मात्रा में दिया है। जब गुणश्रेणी के निषेक उदय में आयेंगे तब अधिक मात्रा में परमाणु खिरेंगे।

श्रोता: तो हर समय में गुणश्रेणी में बढ़ते जायेंगे ? हां, हर समय में बढ़ते जायेंगे। पहले समय में जितना द्रव्य दिया, दूसरे समय में वहां दिया जानेवाला द्रव्य उससे असंख्यातगुणा होता है। तीसरे समय में उससे भी असंख्यातगुणा होता है और यह विधान चलता ही रहता है। कब तक ? अपूर्वकरण में भी चलेगा, अनिवृत्तिकरण में भी चलेगा। यह जब उदय में आयेगा तो अधिक मात्रा में द्रव्य खिरेगा। *श्रोता: इसमें अतिस्थापनावली नहीं लिखी ?* वह नहीं लिखी क्योंकि उसका अलग कारण है। एक निषेक की अपेक्षा बात करेंगे तो उस निषेक का अपकर्षित द्रव्य उसके नीचे आवली

प्रमाण निषेकों में नहीं दिया जाता, उनको लांघकर नीचे के सर्व निषेकों में दिया जाता है। इसलिये अतिस्थापनावली बताने का प्रयोजन नहीं है क्योंकि चार्ट में क्या-क्या बतायेंगे ? जहां-जहां अपकर्षण होता है वहां सर्वत्र अतिस्थापनावली होती है।

एक सिंगल निषेक का द्रव्य कहां दिया जायेगा ? उसके नीचे आवली प्रमाण निषेक छोड़कर नीचे उदय के समय से लेकर सर्वत्र दिया जाता है। परंतु अभी संक्षेप में उसको बताना है तो हमने सब निषेकों में से इकट्ठा किया और फिर उसको विशिष्ट संख्या से भाग देकर फिर उसका वापस वितरण कर दिया। उदयावली में थोड़ा दिया, गुणश्रेणी में बहुत दिया, ऊपर और ज्यादा दिया परंतु वह अनेकों में बट गया है। इसलिये वहां दिया जानेवाला द्रव्य कम दिख रहा है और वह कम भी कैसे ? वहां जितने ऊपर के निषेक हैं न, उनमें चय घटते क्रम से दिया गया है। इसका गणित बहुत बड़ा है, परमाणु-परमाणु का हिसाब है, परंतु हमें स्थूलरूप से चर्चा करनी है।

गुणश्रेणी होती है यानी क्या होती है तो इसतरह से उसकी रचना होती है। यहां तो गुणश्रेणी बस अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण के काल में होगी। बाद में चौथे गुणस्थान में कायम के लिये गुणश्रेणी नहीं होगी। परंतु जो पांचवें गुणस्थान में जाता है उसकी गुणश्रेणी कायम रहती है, केवल शुद्धोपयोग में नहीं, शुभ-अशुभभाव में जायेगा तो भी। मुनि की गुणश्रेणी सदैव चलती रहेगी। ऊपर के गुणस्थानों की गुणश्रेणी की बात अलग है। गुणश्रेणी क्या होती है उसकी हमने चर्चा की है। *श्रोता: चौथे में कायम नहीं रहेगी?* नहीं, कायम नहीं रहेगी। अभी चौथे में शुरुआत में होगी, बाद में गुणश्रेणी नहीं होगी। हां, चौथे में कब होगी ? अगर करण परिणाम मांडकर अनंतानुबंधी की विसंयोजना करता है तो होगी या चौथेवाला दर्शनमोहनीय की क्षपणा करता है तो होगी अन्यथा चौथे में गुणश्रेणी हमेशा नहीं होती। चौथे में प्रथमोपशम के काल में हो रही है।

श्रोता: उदयावली के ऊपर अंतर्मुहूर्त में ज्यादा है ? ज्यादा है, उदयावली आवली प्रमाण है। उदयावली यानी आवली और अंतर्मुहूर्त यानी संख्यात आवली। अंतर्मुहूर्त काल बड़ा है। *श्रोता: चार्ट में सबसे ऊपर कोई निषेक नहीं है ?* वह ब्लॉक दिखाया है क्योंकि वहां स्थितिकांडकघात समझाना था और अकेले अपकर्षण नहीं हो रहा है। अपकर्षण तो हो ही रहा है, अभी स्थितिकांडक यानी ऊपर के पूरे निषेक के निषेक नीचे आ रहे हैं। उनका भी द्रव्य दिया जायेगा कि नहीं ? वह भी गुणश्रेणी में

दिया जायेगा। समझाते समय हम एक-एक विधान क्रम से समझाएंगे। यही चार्ट हमने गुणश्रेणी के लिये भी बताया है और इसी चार्ट में स्थितिकांडकघात भी बताया गया है। स्थितिकांडकघात में तो कितने परमाणु थे, वे सारे परमाणु नीचे आये हैं। उसका भी द्रव्य ऐसा ही दिया जायेगा - उदयावली में थोड़ा, गुणश्रेणी में बहुत और ऊपर कुछ घटते हुये। यानी गुणश्रेणी में परमाणु बहुत अधिक मात्रा में आ जायेंगे और जब वे नीचे-नीचे आयेंगे, उदय में आयेंगे तो अधिक मात्रा में खिर जायेंगे। इसप्रकार गुणश्रेणीरूप निर्जरा चलेगी। किसमें ? आयु छोड़कर सातों कर्मों में।

श्रोता: उपरितन स्थिति यानी ? उपरितन यानी गुणश्रेणी के ऊपर के जो निषेक हैं उसको उपरितन स्थिति कहते हैं। उपरितन यानी ऊपरवाले। *प्रश्न: अपूर्वकरण परिणाम और अपूर्वकरण गुणस्थान में क्या अंतर है ?* अपूर्वकरण गुणस्थान तो आठवां गुणस्थान है और अपूर्वकरण परिणाम हमने देखा था, जहां-जहां तीन करण परिणाम होते हैं वहां-वहां सर्वत्र होंगे। करण परिणाम कहां होते हैं वह हमने बताया था।

श्रोता: सादि मिथ्यादृष्टि जब फिर से क्षयोपशम सम्यक्त्व करेगा उस समय वापस दुबारा करण मांडेगा ? बहुत छोटे काल में करेगा तो बिना करण परिणाम के करेगा, वहां स्थितिकांडकघात भी नहीं करेगा। शास्त्र में तो ऐसा आता है कि सम्यग्दृष्टि है, मिथ्यात्व में चला गया है और अंतर्मुहूर्त में उसने ७० कोड़ाकोड़ी सागर का बंध किया है। फिर उसका संक्लेश परिणाम प्रतिभग्न हुआ और उसने विशुद्धि चालू की और अंतर्मुहूर्त में वेदक सम्यक्त्व प्राप्त किया। ना स्थितिकांडकघात किया, ना कुछ किया। वेदक सम्यक्त्व के विधान अलग हैं और प्रथमोपशम सम्यक्त्व के विधान अलग हैं। वहां भी बहुत लंबे काल के बाद क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करेगा तो वहां पहले दो करण परिणाम में ही कार्य होता है। अभी यह सारा विषय हमने देखा था यहां, जब हमने सम्यग्दर्शन विषय पर शिबिर लिया था। उसमें तीन प्रकार के सम्यग्दर्शन की चर्चा की थी। बहुत विस्तार से देखा था - प्रथमोपशम भी देखा और क्षयोपशम भी देखा, द्वितीयोपशम भी देखा, क्षायिक भी देखा था। तभी बोर्ड पर सारे चार्ट्स भी देखे थे। अब यहां अपना प्रथमोपशम सम्यक्त्व का ही विषय समाप्त करना है। जल्दी है न ? सबको चिंता हो रही है कि सम्यक्त्व होगा कि नहीं होगा।

देखो, पृष्ठ १३१- प्रत्येक समय में कितने परमाणु अपकर्षण होकर नीचे

आते हैं, उसका भी गणित है। हमारे शास्त्र तो गणित से भरपूर हैं। अरे, जयधवला में तो कितने परमाणु सत्ता में हैं, उनके एक-एक परमाणु के डिफरन्स से सारे हिसाब बताये हैं। उसमें इतने कठिन गणित हैं, उनके सामने यह तो बहुत सरल गणित है। कितने परमाणु नीचे आते हैं ? तो विशिष्ट संख्या से भाग दो, उतने परमाणु नीचे आयेंगे। **यहां मैं लिखती हूं, समझ में आये तो ठीक है, यदि नहीं समझ में आये तो चिंता की बात नहीं है,** पहले टेंशन कम कर दो, फिर सुनो। **प्रत्यक्ष मुलाकात में समझा दूंगी। सभी निषेकों में कुल परमाणुओं की संख्या को विवक्षित संख्या से भाग देते हैं,** उस संख्या को क्या कहते हैं ? **इसे अपकर्षण भागहार कहते हैं।** भागहार यानी भाजक। जाननहार होता है न ? जाननेवाला। ऐसे जिस संख्या से भाग देते हैं, उसको भागहार कहते हैं और जिसको भाग देते हैं उसको भाज्य कहते हैं।

अपकर्षण भागहार नामक विशिष्ट संख्या से **भाग देने पर जो संख्या आती है** उसे अपकृष्ट द्रव्य कहते हैं। जैसे हमने २० को ५ से भाग दिया तो ४ संख्या आती है। वहां तो निषेकों में अनंत परमाणु हैं। इसको अपकर्षण भागहार जिसका प्रमाण विशिष्ट असंख्यात है, उससे भाग दिया तो जो संख्या आती है, उतने परमाणुओं का अपकर्षण होता है। अपकर्षण होता है का अर्थ है उनकी स्थिति घटती है और नीचे के जिस निषेक जैसी स्थिति होगी वहां जाकर वे परमाणु मिल जायेंगे। **उतने परमाणुओं का अपकर्षण होकर नीचे के निषेकों में अर्थात् उदयावली में, गुणश्रेणी में और उपरितन स्थिति में दिया जाता है। कहां कितना दिया जाता है, उसे भी देखते हैं। इस संख्या को पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग देकर बहुभाग जो हमने देखा न,** पहले हमने सबमें से निकाला। कैसे निकाला ? अपकर्षण भागहार से भाग देकर। तो जितना द्रव्य आया, उसको पल्य के असंख्यातवें भाग से भाग दिया तो एकभाग बहुत छोटा आया। बहुभाग बहुत बड़ा आया तो सारा ऊपर दे दिया। परंतु ऊपर दिया तो वहां निषेक कितने हैं ? अंतःकोड़ाकोड़ी सागर। उसमें दे दिया तो प्रत्येक निषेक में बहुत थोड़ा द्रव्य आया। नीचे एक भाग दिया परंतु कितने में ? उदयावली और गुणश्रेणी मिलकर अंतर्मुहूर्त प्रमाण निषेकों में दिया।

उपरितन स्थिति में दिया जाता है परंतु वहां अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण निषेक होने से प्रति निषेक थोड़ा ही द्रव्य दिया जाता है। यहां सबसे ऊपर के एक आवली प्रमाण निषेकों में अपकर्षित द्रव्य नहीं दिया जाता क्योंकि सबसे

ऊपर का जो निषेक है, उसका द्रव्य उसके नीचे आवली में नहीं दिया जायेगा। दूसरे निषेक का द्रव्य कहां दिया जायेगा ? उसके नीचे आवली प्रमाण छोड़कर। तीसरे का ? उसके नीचे आवली प्रमाण छोड़कर। इसका अर्थ है ऊपर के आवली प्रमाण निषेकों में ऊपर से कहीं से द्रव्य नहीं आयेगा, वह नीचे ही नीचे जायेगा। **उसे अतिस्थापनावली कहते हैं।** समझ में आया कि नहीं ? मान लेते हैं कि हम चार समयों को आवली कहेंगे। जो टॉप मोस्ट है, उसका द्रव्य कहां जायेगा ? चार छोड़कर नीचे। दूसरे का ? चार छोड़कर नीचे। तीसरे का ? चार छोड़कर नीचे। यानी १ ले, २रे, ३रे, ४थे निषेक में ऊपर से कहीं से भी द्रव्य नहीं आयेगा। इसलिये उसको अतिस्थापनावली कहते हैं। बाकी सर्वत्र ऊपर से कहीं न कहीं से द्रव्य आयेगा।

गुणश्रेणी और उदयावली में एकभाग दिया जाता है। बहुभाग कहां दिया ? उपरितन में। जो एकभाग बचा वह उदयावली और गुणश्रेणी में मिलकर दिया। उस एकभाग का फिर और भाग करेंगे। **उसको असंख्यात लोक से भाग देकर बहुभाग गुणश्रेणी में दिया जाता है जो असंख्यातगुणा क्रम से दिया जाता है जो अभी हमने देखा था १, ४, १६, ६४ वगैरह। और शेष एकभाग उदयावली में दिया जाता है। प्रत्येक समय में इसप्रकार से अपकर्षण होता रहता है।** अपकर्षित होनेवाला द्रव्य यानी उसकी संख्या भी असंख्यातगुणा बढ़ती चली जाती है। क्यों ? क्योंकि विशुद्धि भी अनंतगुणा बढ़ रही है। **गुणश्रेणी में प्रतिसमय असंख्यातगुणा द्रव्य दिया जाता है। यह गुणश्रेणी विधान सातों कर्मों में होता है, आयुकर्म का तो एक समय में एक ही निषेक खिरता है, उसमें गुणश्रेणी विधान नहीं होता।** आयुकर्म में कोई चेंज नहीं होता। बाकी सात कर्मों में ये सब विधान होते हैं।

अपकर्षण द्वारा स्थिति घटती है परंतु स्थिति घटती है तो कुछ परमाणुओं की घटती है। निषेक तो सबके सब वैसे ही रहे, केवल उसमें से कुछ परमाणु नीचे आ गये। **उसके साथ-साथ अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग प्रतिसमय अनंतगुणा हीन-हीन होकर उदय में आता है।** हमने देखा था कि अप्रशस्त में उदयरूप परमाणुओं में जो अनुभाग था, वह पूर्व अनुभाग से भी हीन होकर उदय में आता है। **गुणश्रेणी के ये निषेक जब उदयावली में आकर उदयरूप होंगे तब प्रतिसमय, यहां असंख्यात समयप्रबद्ध लिखा है परंतु यहां इतनी निर्जरा नहीं होती, वह श्रेणी में होती है। गुणश्रेणी निर्जरा होती है** ऐसा कहना योग्य है। क्योंकि असंख्यातगुणा द्रव्य तो वहां दे दिया,

परंतु मूल निषेक भी थे न ? जब श्रेणी चढ़ते हैं वहां असंख्यात समयप्रबद्धों की निर्जरा होती है। परंतु यहां असंख्यातगुणी निर्जरा होती कहेंगे या गुणश्रेणी निर्जरा कहेंगे तो बात ठीक है। असंख्यात समयप्रबद्ध लिखा है उसमें से समयप्रबद्ध शब्द वहां नहीं रखना। **इसे गुणश्रेणी निर्जरा कहते हैं।** इसीलिये छहढाला में चौथी ढाल में कहा है-

**कोटि जन्म तप तपै, ज्ञान बिन कर्म झरै जे।
ज्ञानी के छिनमाँहि, त्रिगुप्ति तैं सहज टरै ते।**

इसका अर्थ है अज्ञानी जीव करोड़ों भवों तक; एक भव में कितने समय होंगे ? असंख्यात समय। तप कहां होगा ? कर्मभूमि के मनुष्यों में होगा। ऐसे कोटि जन्म - ऐसे करोड़ों जन्मों में उसने तप किया, परंतु कर्म कैसे झरे ? आत्मज्ञान के बिना कितना झरेगा ? एक-एक समयप्रबद्ध खिरेगा। ज्ञानी के छिनमाँहि - छिन यानी क्षण वह अंतर्मुहूर्त प्रमाण है। त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते। उसके एक-एक निषेक भी खिरेगा तो उसमें बहुत सारा द्रव्य खिरता है। ज्ञानी की एक क्षण में जितनी निर्जरा होती है उतनी निर्जरा अज्ञानी की करोड़ों भवों में तप करने से भी नहीं होती। अज्ञानी नये कर्म भी बांध रहा है। अज्ञानी यानी अभी मिथ्यादृष्टि है। केवल तप कर रहा है तो केवल पुण्य-पुण्य ही बांध रहा है कि अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में पाप भी बांध रहा है ? *श्रोता: पाप भी बांध रहा है।* लिमिट ही अंतर्मुहूर्त की है। साता-असाता का बंध तो होता ही रहता है भले उसकी कोई भी लेश्या क्यों न हो, लेश्या भी पलटती रहती है। नहीं समझें ?

चौथे गुणस्थानवाला भी क्यों न हो, छहों लेश्यायें अंतर्मुहूर्त-अंतर्मुहूर्त में पलटेंगी। तो जो अज्ञानी तप कर रहा है उसकी पलटेंगी कि नहीं पलटेंगी ? *श्रोता: पलटेंगी।* तो उसके भी यथायोग्य पाप और पुण्य बंधते रहेंगे। उसकी निर्जरा कितनी हो रही है ? एक समयप्रबद्ध की निर्जरा हो रही है। ज्ञानी की इसतरह से असंख्यातगुणा निर्जरा होती है। अगर मुनि की अपेक्षा बात करेंगे तो उनकी गुणश्रेणी और छोटी होती है और उसमें दिया जानेवाला द्रव्य असंख्यातगुणा होता है। उनकी गुणश्रेणी कायम चलती रहती है। उनकी कर्मों की निर्जरा असंख्यातगुणा ज्यादा होती है। इसलिये अज्ञानी की करोड़ों भवों में तप तपने से जितनी निर्जरा होगी, उतनी ज्ञानी की एक क्षण यानी अंतर्मुहूर्त में होती है। केवल शुभपरिणाम करने से अर्थात् शुद्धोपयोगरहित व्रत तप करने से गुणश्रेणी निर्जरा नहीं होती।

लोगों को ऐसा लगता है अरे, कुछ तो फल मिलेगा ? पुण्य तो बंधेगा ? बंधेगा-बंधेगा, परंतु वह कहां ले जायेगा ? स्वर्ग में ले जायेगा और क्या होगा ? अज्ञानी है, तो मिथ्यात्व, रागद्वेष वैसे ही होते रहेंगे। हो सकता है वह देव मरकर एकेन्द्रिय में चला जायेगा। शुद्धोपयोगरहित व्रत तप करने से गुणश्रेणी निर्जरा नहीं होती। क्यों ? क्योंकि उसका गुणस्थान कौनसा है ? *श्रोता: पहला*। पहला मिथ्यात्व गुणस्थान। वहां ऐसी गुणश्रेणी निर्जरा बिलकुल नहीं होती। एक-एक समयप्रबद्ध खिरेगा और एक-एक समयप्रबद्ध बंध भी रहा है तो उसका कर्मों का स्टॉक जितना का उतना रहता है। उसकी तो एक समयप्रबद्ध प्रमाण ही निर्जरा होती है जिसे स्थिति पूर्ण होने पर होनेवाली सविपाक निर्जरा कहते हैं। यानी उदय होकर खिरनेवाली उसको निर्जरा कहने की पद्धति है, परंतु वह मोक्षमार्गवाली निर्जरा नहीं है। और तो और, वहां नया बंध भी होता है। अब हम छठे-सातवें गुणस्थानवर्ती की बात करेंगे। उनकी तप से जो निर्जरा हो रही है और बंध कितना रुकेगा ? सामान्य से चौथे में जानेवाले को ४१ प्रकृतियों का और मनुष्य, तिर्यच के और भी छह प्रकृतियों का बंध रुकता है। ऊपर के गुणस्थान में चले जाये तो और कितनी-कितनी बंधव्युच्छिति होगी।

मुनिराजों को बहुत थोड़ी कर्म प्रकृतियां बंध रही हैं और अज्ञानी के मिथ्यादृष्टि के योग्य सारा का सारा बंध चल रहा है। अज्ञानी के संवर नहीं पाया जाता - ना उसको संवर है और ना ही निर्जरा है। एक समयप्रबद्ध प्रमाण नया कर्म बांध रहा है और उतना ही पुराना सत्ता में पड़ा हुआ कर्म छोड़ रहा है बस इतना है। ज्ञानी जीवों में कुछ प्रकृतियों की बंधव्युच्छिति होने से वे प्रकृतियां बंधने से बिलकुल रुक जाती हैं। हम यहां सम्यक्त्व होने के पहले की बात नहीं कर रहे हैं, ज्ञानी की बात कर रहे हैं जो ऑलरेडि सम्यग्दृष्टि हैं, जो मुनिअवस्थावाले हैं, उनकी बात कर रहे हैं। उनके संवर होता है और पूर्वबद्ध कर्म अधिक प्रमाण में खिरने से अधिक निर्जरा होती है। संवर और निर्जरा ज्ञानी के ही होगी। मिथ्यादृष्टि कितना भी तप करेगा तो भी उसको निर्जरा नहीं होगी। अज्ञानी - भोले जीवों की मान्यता है कि तप से निर्जरा होती है; वे तप किसे मानते हैं ? हमने इतने उपवास किये तो हमारा तप हो गया। ऐसी मान्यता चलती है।

उनको ऐसा भी लगता है कि अरे सर्वार्थसिद्धि के देव ३३ सागर आयुवाले हैं और ३३ हजार वर्षों के बाद भोजन की इच्छा होती है और कंठ से अमृत झरता है तो उनके कितना अधिक तप होता होगा। हमारे भूगोल के शिबिर में एक महिला ने पूछा

था, उनको तप क्यों नहीं होता ? मान्यता क्या थी ? उपवास करेंगे उतना तप होता है और तप से निर्जरा होती है। उपवास क्यों करते हैं ? क्योंकि हमें निर्जरा करनी है। पता ही नहीं है कि हम क्या कर रहे हैं और उसका फल क्या है। बस यह देखा-देखी कहो या सुनी हुयी बातें हैं कि यह तप है और इससे निर्जरा होती है इसलिये उपवास करते रहते हैं, परंतु उसका फल तो कुछ नहीं है। गुरुदेवश्री की भाषा में वह 'लांघण छे लांघण।' वे कहते थे पेट को खड्डा पड़ जाये तो भी उसमें कोई लाभ नहीं है यानी सरखा शुभभाव भी नहीं । क्यों ? करणानुयोग में मिथ्यादृष्टि को पापद्रव्य कहा है। उसके शुभभाव को पुण्य भी नहीं कहा है। जब तक सम्यग्दर्शन नहीं होता तब तक उसको पुण्यद्रव्य भी नहीं कहते हैं यानी उसको अशुभोपयोग में ही डाला है। शुभोपयोग चौथे से स्वीकार किया है। पुण्य-पाप प्रकृतियां बंध रही हैं, परंतु जिस अपेक्षा नौ पदार्थों की संख्या बतायी जाती है, वहां पुण्य पदार्थ में तो पहले-दूसरे गुणस्थानवाले जीवों को लिया ही नहीं है। हमें वस्तुस्थिति क्या है, मालूम ही नहीं है न।

अभी तो अपूर्वकरण की बात है, अब तक सम्यक्त्व की प्राप्ति तो हुयी नहीं है, उसके पूर्व ही गुणश्रेणी निर्जरा कैसे हो सकती है ? हमारे बच्चे ऐसे थोड़े ही सुननेवाले हैं ? जैसे कहते हैं न, सामने से डटकर विरोध करके प्रश्न पूछेंगे। अरे, निर्जरा की बात कर रही हो ? अभी तो मिथ्यादृष्टि है कि नहीं है ? यह प्रश्न समझ में आता है ? **उसका समाधान यह है कि करण परिणाम में ज्ञानोपयोग निजशुद्धात्मा के सन्मुख ही होता है परंतु परिणति में अभी मिथ्यात्व है,** अरे, छद्मस्थ साधारण चीज को जानेगा तो असंख्यात समय तक जाने बिना उस चीज का भी ज्ञान नहीं होता। तो शुद्धात्मा को उसने लक्ष में भले लिया है, असंख्यात समय वहां टिकेगा तभी तो उसको आनंद की अनुभूति होगी यह कहना चाहते हैं। अभी उसने उपयोग कहां लगाया है ? शुद्धात्मा में। परंतु परिणति में अभी मिथ्यात्व है। **क्योंकि अनिवृत्तिकरण के अंतसमय तक मिथ्यात्व का उदय रहता है।**

ये सब केवलज्ञानगम्य बातें हैं। उस जीव को द्रव्यानुयोग में वहां शुद्धोपयोग कहेंगे क्योंकि उसके वहां बुद्धिगोचर कुछ पाप-पुण्य हैं क्या ? नहीं हैं। वह तो तद्रूप होकर उसमें लीन हो गया है बस इतनी बात है। **अत्यंत मंद होता हुआ अर्थात् अनुभाग प्रतिसमय अनंतगुणा हीन होता हुआ मिथ्यात्व उदय में आता है।** इस

जीव को इन करण परिणामों के अनंतर समय में नियम से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती ही है। यहां से कोई वापस लौट जाये, करण परिणाम बीच में टूट जाये, मर जाये ऐसा कुछ नहीं होगा। अब यह जीव सम्यक्त्व लेकर ही रहेगा। इसलिये शुद्धोपयोग के फल स्वरूप यहां गुणश्रेणी निर्जरा होती है। यहां शुद्धोपयोग स्वीकार किया है। किसीको प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि गुणश्रेणी द्वारा तो असंख्यातगुणा परमाणु उदय में आते हैं तब तो मिथ्यात्व के अधिक परमाणुओं के उदय से मिथ्यात्व भी बढ़ता होगा ? हम तर्क लगाते हैं न ? परमाणु अधिक उदय में आ रहे हैं तो मिथ्यात्व भी अधिक होना चाहिये। वैसा नहीं है। परमाणुओं की संख्या पर उस कर्म का फल निर्भर नहीं है, परंतु उसके अनुभाग उदय से ही फल मिलता है अनुभाग कितनी मात्रा में उदय में आता है ? संख्या से कोई मतलब नहीं है, अनुभाग से फल का निमित्त बनता है। अर्थात् उनका जीव के परिणामों के साथ निमित्तपना बनता है।

यहां परमाणुओं की संख्या अर्थात् प्रदेश उदय जैसे हमने बंध में चार प्रकार देखे थे न, वैसे उदय में भी चार प्रकार होंगे। परमाणु जितनी संख्या में खिरते हैं उसको क्या कहेंगे ? प्रदेश उदय। प्रदेश उदय बढ़ने पर भी अनुभाग उदय यानी उदयरूप परमाणुओं में अनुभाग कितनी मात्रा में है उसके अनुसार उसका फल मिलता है। हमने देखा था मिथ्यात्व अप्रशस्त प्रकृति है और उसका अनुभाग अनंतगुणा हीन-अनंतगुणा हीन होकर उदय में आ रहा है। तो अनुभाग उदय अत्यंत मंद होने से जीव का मिथ्यात्व परिणाम भी मंद और मंदतर होता चला जाता है। प्रतिसमय अनंतगुणा हीन-हीन-हीन होकर उदय में आ रहा है। अन्य अप्रशस्त कर्मों की गुणश्रेणी द्वारा भी ऐसे ही समझना। जैसे ज्ञानावरण है, दर्शनावरण है। ये भी सब घातिकर्म अप्रशस्त हैं, उनमें भी गुणश्रेणी हो रही है। सातों ही कर्मों में हो रही है। अप्रशस्तों में इसतरह से अनुभाग घटकर उदय में आता है। प्रशस्तों में अनुभाग घटने का सवाल ही नहीं है। उसका अनुभाग तो अनंतगुणा बढ़कर उदय में आयेगा।

अभी हमारा प्रकरण दर्शनमोह की उपशमना करनेवाले जीवसंबंधी चल रहा है। अभी उपशमना हुयी नहीं है, उसका विधान अभी हमने देखा नहीं। अभी तो अपूर्वकरण में हैं और गुणश्रेणी की बात अभी हो रही है। दर्शनमोह की क्षपणा करनेवाले तथा श्रेणी चढ़नेवाले जीव के भी करण परिणाम होते हैं। वहां होनेवाली गुणश्रेणी निर्जरा यहां के गुणश्रेणी निर्जरा से असंख्यातगुणा होती है।

आपने तत्त्वार्थसूत्र में नौवें अध्याय में ४५ नंबर का सूत्र पढ़ा होगा। उसमें असंख्यातगुणा निर्जरा के स्थान बताये हैं। सबसे पहला स्थान यह दर्शनमोह के उपशामक का है। **अर्थात् ऊपर के गुणस्थानों में निर्जरा होनेवाले परमाणुओं की संख्या असंख्यातगुणा हो जाती है।** कौनसा विधान अभी देखा ? गुणश्रेणीवाला। पहले गुणश्रेणी की रचना होती है। जब उसका उदय आयेगा, तब अधिक प्रमाण में निर्जरा होना चालू हो जायेगी।

अब गुणसंक्रमण का स्वरूप देखते हैं। यहां के अपूर्वकरण में यहां के का अर्थ क्या है ? यहां जो मिथ्यादृष्टि जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व करने जा रहा है उसके **गुणसंक्रमण नहीं होता।** परंतु जहां-जहां अपूर्वकरण परिणाम होते हैं, जैसे दर्शनमोह की क्षपणा में, श्रेणी में, अनंतानुबंधी की विसंयोजना में वहां सर्वत्र गुणसंक्रमण होगा। गुणसंक्रमण का अर्थ है गुणित प्रमाण में संक्रमित होना। संक्रमित होना यानी वह प्रकृति अन्य प्रकृतिरूप होना। पहले समय में थोड़े परमाणु संक्रमित होंगे, दूसरे समय में असंख्यातगुणा होंगे, तीसरे समय में उससे असंख्यातगुणा होंगे इस विधान को कहेंगे गुणसंक्रमण। इससमय कौनसा अपूर्वकरण है ? अभी दर्शनमोह की उपशमना करनेवाला है। यहां गुणसंक्रमण नहीं होगा। प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त होने के पहले समय से गुणसंक्रमण काल चलेगा क्योंकि तब जाकर मिथ्यात्व में से गुणसंक्रमण होकर सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति तैयार होगी। अनुभाग का संक्रमण होगा, नयी प्रकृति तैयार होगी, उस प्रकृतिरूप परिणमित होगा। यहां कुछ नहीं होगा। यहां गुणसंक्रमण लागू नहीं होता। तो फिर क्यों बताते हैं ? जहां-जहां अपूर्वकरण है वहां-वहां गुणसंक्रमण होता है इसलिये गुणसंक्रमण क्या होता है, वह यहां बता रहे हैं।

फिर से देखो- **गुणसंक्रमण की परिभाषा** क्या है ? अपूर्वकरण परिणाम अन्यत्र भी जहां-जहां होते हैं, वहां गुणसंक्रमण भी होता है। इसलिये इस विधान का यहां विस्तार से वर्णन करेंगे। परंतु यहां गुणसंक्रमण नहीं होता है यह बात हमें ख्याल में लेनी है। **जिन अप्रशस्त प्रकृतियों का बंध नहीं होता उन प्रकृतियों का जो द्रव्य है द्रव्य यानी उसके परमाणु, वह प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम से, जिनका बंध हो रहा है ऐसे स्वजातीय प्रकृतियों में संक्रमित होता है, संक्रमण होना यानी क्या होना ?** एक प्रकृति के थोड़े परमाणु अपनी स्वजातीय दूसरी प्रकृतिरूप हो जाते हैं। जैसे ज्ञानावरण की पांच प्रकृतियां हैं; मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण आदि। एक प्रकृति

के कुछ परमाणु दूसरीरूप संक्रमित होते रहते हैं। दर्शनावरण के जो नौ भेद हैं उनका आपस में संक्रमण चलता रहता है। चारित्रमोह के भी अनंतानुबंधी वगैरह क्रोध-मान-माया-लोभ आपस में संक्रमित होते रहते हैं। नियम क्या है ? बंधनेवाली प्रकृति में संक्रमण होता है। साता-असाता का भी आपस में थोड़ा-थोड़ा संक्रमण होता है। वहां प्रकृति पूरी की पूरी नष्ट नहीं होती है। थोड़े परमाणु अन्यरूप होते हैं। परंतु नियम क्या है ? जिसमें संक्रमण होता है उसका बंध होना चाहिये। जब साता का बंध हो रहा है तो असाता के कुछ परमाणु सातारूप होते हैं। जब असाता का बंध होता है तो साता के कुछ परमाणु असातारूप होते हैं। नये बंध की जरूरत है।

छठे गुणस्थान तक कौनसी अप्रशस्त प्रकृतियां बंधती हैं ? असाता वेदनीय, अस्थिर, अशुभ, अयशस्कीर्ति, अरति और शोक। ऊपर के गुणस्थानों में वे नहीं बंधती परंतु उनके ऑपोजिट शुभप्रकृति हैं, वे बंधती हैं। तो नहीं बंधनेवाले का संक्रमण उसरूप हो जायेगा। **ऐसे स्वजातीय प्रकृति में संक्रमित होता है, अपना स्वरूप छोड़कर उन अन्य प्रकृतिरूप परिणमता है, इस विधान को गुणसंक्रमण कहते हैं।** इसे गुणसंक्रमण कहते हैं क्योंकि गुणित प्रमाण में संक्रमण होता है। श्रेणी वगैरह में गुणसंक्रमण चलता है। जब किसी क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि के सत्ता में से अनंतानुबंधी नष्ट होती है, उसको अनंतानुबंधी की विसंयोजना कहते हैं। सत्ता में जितनी अनंतानुबंधी पड़ी है, वह गुणित प्रमाण में संक्रमित होते-होते अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलनरूप होकर एक अंतर्मुहूर्त में पूरी नष्ट हो जायेगी। सत्ता में से अनंतानुबंधी चली जायेगी। अपूर्वकरण से उसका गुणसंक्रमण शुरू होता है।

इसको गुणसंक्रमण कहते हैं परंतु संक्रमण होता है वहां हर बार गुणसंक्रमण नहीं होता। जब गुणित प्रमाण में असंख्यातगुणा क्रम से संक्रमण होता है तभी उसको गुणसंक्रमण कहते हैं। कितनी मात्रा में संक्रमित होता है उसके अनुसार संक्रमण के जुदे-जुदे नाम हैं। अभी हमारा संक्रमण का विषय नहीं है। **इसप्रकार प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम से।** यह असंख्यातगुणा क्रम है इसलिये इस संक्रमण का नाम है गुणसंक्रमण। असंख्यातगुणा क्रम से **सजातीय अन्य प्रकृतियों में संक्रमित होना गुणसंक्रमण कहलाता है।** इसतरह का गुणसंक्रमण श्रेणी चढ़ते समय अपूर्वकरण यह गुणस्थान का ही नाम है और अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में होता है। वहां असातावेदनीय प्रकृति का सातावेदनीय प्रकृतिरूप संक्रमण होता है। अन्य

भी कहां कौनसी प्रकृति में कौनसे संक्रमण और क्या-क्या बातें हो सकती हैं वह कर्मकाण्ड का विषय है। गुणसंक्रमण किसको कहना बस इतनी बात यहां देखनी है।

अपूर्वकरण में एक्स्ट्रा और चार बातें कौनसी हुयी ? *श्रोता: गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात।* गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात। हमने कांडकघात देखा था। परंतु यहां एक कांडकघात होने के बाद दूसरा शुरू हुआ, फिर तीसरा हुआ, फिर चौथा हुआ, इसतरह कांडकघात निरंतर चलते रहेंगे। **उसीप्रकार अनंतानुबंधी की विसंयोजना होते समय** देखो, यहां प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पहले अनंतानुबंधी में कुछ नहीं हो रहा है। कोई क्षयोपशमिक सम्यग्दृष्टि अनंतानुबंधी की विसंयोजना करता है उसके जहां शुद्धोपयोग यानी तीन करण परिणाम होंगे; हर बार शुद्धोपयोग को तीन करण परिणाम से मत जोड़ना। उसकी विशुद्धि विशिष्ट बढ़कर तीन करण परिणाम होंगे तो सत्तावाला सारा अनंतानुबंधी एक अंतर्मुहूर्त में नष्ट हो जायेगा उसको कहेंगे अनंतानुबंधी का विसंयोजक। सारे क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि विसंयोजना नहीं करते हैं।

अनंतानुबंधी की विसंयोजना होते समय अनंतानुबंधी के सर्व परमाणु गुणसंक्रमण विधान द्वारा अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन प्रकृतिरूप परिणामित हो जाते हैं। चौथे गुणस्थानवाला इनका बंध कर रहा है, वे कुछ प्रशस्त प्रकृतियां नहीं हैं परंतु बंधनेवाली प्रकृति में नहीं बंधनेवाली प्रकृति संक्रमित होती है। *श्रोता: विसंयोजना और संक्रमण में अंतर क्या है ?* संक्रमण अनेक प्रकृतियों में होता है और विसंयोजना अनंतानुबंधी में ही होती है, अन्य किसी प्रकृति में नहीं। अनंतानुबंधी सत्ता में से नष्ट होना उसको विसंयोजना कहते हैं। परंतु वही जीव जो अनंतानुबंधी की सत्ता रहित है और उसकी सत्ता में मिथ्यात्व है न ? अभी उसने उनका क्षय नहीं किया है तो वह मिथ्यात्व में जा सकता है। अनंतानुबंधी का अन्यरूप होना संक्रमण है वह सामान्य है। विसंयोजना होने का विधान कौनसा है ? संक्रमण द्वारा उसकी विसंयोजना होती है। परंतु सभी संक्रमण को विसंयोजना नहीं कहते।

विसंयोजना स्पेशल टर्मिनॉलॉजी है क्योंकि मिथ्यात्व में आने पर फिर अनंतानुबंधी का बंध और फिर अनंतानुबंधीरूप उलटा संक्रमण भी हो सकता है। विसंयोजना की संयोजना हो जाती है। अनंतानुबंधी जो सारे नष्ट किये थे वे फिर सत्ता में

तैयार हो जाते हैं। अनंतानुबंधी की विसंयोजना एक विशेष विधान है। मिथ्यात्व की क्षपणा करने के पहले अनंतानुबंधी की विसंयोजना करेगा। बाद में मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति का नाश करेगा, क्षय करेगा। वह विधान जुदा है। परंतु वहां ये तीन करण परिणाम होते हैं और गुणसंक्रमण होता है बस इतना बताना है। संक्रमण के द्वारा अनंतानुबंधी सत्ता में से नष्ट होगी उसीका नाम है विसंयोजना।

जब जीव क्षयोपशम सम्यक्त्व में से क्षायिक सम्यक्त्व प्रकट करता है तब पहले तीन करण द्वारा अनंतानुबंधी की विसंयोजना करता है, उसकी विसंयोजना द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के पहले भी करनी पड़ती है और उसके बिना भी होता है। अरे, सातवें नरक का नारकी भी कर सकता है। क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि है, उसके तीन करण परिणाम के द्वारा अनंतानुबंधी की विसंयोजना हो गयी यह हो सकता है। **उस कारण सत्ता में पड़े हुये अनंतानुबंधी के सर्व परमाणु अन्य तीन कषाय कर्मरूप हो जाते हैं।** चौथे गुणस्थानवाले के तीन में जायेंगे, पांचवेंवाला विसंयोजना करेगा तो दो में जायेंगे और मुनिराज विसंयोजना करेंगे तो संज्वलन में जायेंगे। बंधनेवाले में संक्रमण होता है यह नियम है। **उसके पश्चात् एक अंतर्मुहूर्त के बाद जीव पुनः तीन करण परिणाम मांडता है उसके कारण** यह पश्चात् दुबारा तीन करण द्वारा लिखा है न, वह काट दो क्योंकि तीन करण परिणाम विसंयोजना के लिये लगते हैं।

दुबारा तीन करण परिणामों में ही **मिथ्यात्व, और सम्यग्मिथ्यात्व के सर्व परमाणु सम्यक् प्रकृतिरूप संक्रमित होकर उन दो प्रकृतियों का सत्ता में से पूर्ण क्षय हो जाता है।** यह क्षायिक सम्यक्त्व का विधान है। अभी हमें वह नहीं लेना है। दो बार तीन करण होते हैं- पहली बार विसंयोजना के लिये और दूसरी बार दर्शनमोह की क्षपणा के लिये। मिथ्यात्व के लिये अलग तीन करण और सम्यग्मिथ्यात्व के लिये और अलग तीन करण ऐसा नहीं होता है। वहां भी गुणसंक्रमण से ही क्षपणा का कार्य संपन्न होता है। कहां-कहां गुणसंक्रमण से क्या-क्या कार्य होता है उसकी यहां चर्चा है। हमें गुणसंक्रमण क्या चीज है उसको समझना था। परंतु ऐसा गुणसंक्रमण यहां प्रथमोपशम के पहले अपूर्वकरण में नहीं होता बस इतना ही है। इतनी बात ख्याल में आयी ?

पहले अधःकरण देखा। उसमें नीचे के और ऊपर के समयों में परिणामों की समानता हो सकती है। फिर अभी कौनसा विषय चल रहा है ? अपूर्वकरण।

अपूर्वकरण में पहली चार बातें तो होती ही हैं- अनंतगुणा विशुद्धिवाली। यहां और क्या होता है ? गुणश्रेणी होती है। गुणश्रेणी क्या है वह हमने देख ली। दूसरा और क्या होता है ? हां, अन्यत्र अपूर्वकरण में गुणसंक्रमण होता है, परंतु यहां नहीं होता है बस इतनी बात है। आगे बढ़ते हैं। अभी यहां विध्यातसंक्रमण की बात की, परंतु हम उसको गौण करके आगे बढ़ेंगे। यहां गुणसंक्रमण नहीं होता है बस इतना है यानी दर्शनमोह का कोई संक्रमण यहां नहीं है। सम्यक्त्व होने के बाद मिथ्यात्व में से दो प्रकृतियां तैयार होंगी, उसकी बात प्रथमोपशम सम्यक्त्व शुरू होगा तब करेंगे। **अपूर्वकरण के चार आवश्यकों में** पहले चार तो अधःकरण से ही शुरू हुये थे, यहां एक्स्ट्रा और चार हैं। उसमें से **स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात भी होता है।**

अब स्थितिकांडकघात किसको कहना ? हमने देखा था, दुबारा पढ़ते हैं- **सत्ता में पड़े हुये कर्मों की स्थिति अर्थात् स्थितिसत्त्व** देखो, एक होता है स्थितिबंध यानी नये बंधनेवाले कर्म की स्थिति को क्या कहेंगे ? स्थितिबंध और स्थितिसत्त्व यानी सत्ता में जो निषेक पड़े हैं वे कितनी स्थितिवाले हैं, उसको कहेंगे स्थितिसत्त्व। तो स्थितिसत्त्व **कांडकरूप से हीन होना**। कांडक हमने देखा न, एक-एक अंतर्मुहूर्त में ऊपर के अनेक निषेक नष्ट होना, नीचे आ जाना। हमने यहां चार्ट में भी देखा है। कांडकरूप से हीन होना **स्थितिकांडकघात कहलाता है। कांडक का अर्थ है टुकड़ा - अनेक निषेकों के समूह को यहां कांडक कहते हैं। एक कांडक में अनेक समयों के जो निषेक हैं उनका अभाव होकर उनके सर्व परमाणु एक अंतर्मुहूर्त काल में नीचे के निषेकों में आ मिलते हैं।** एक समय में एक कांडक नहीं हो रहा है। एक कांडक को नष्ट होने के लिये अंतर्मुहूर्त काल लगता है। पहले समय में कुछ परमाणु आये, दूसरे में कुछ आये, तीसरे समय में कुछ आये, ऐसे एक छोटे अंतर्मुहूर्त में असंख्यात निषेक हैं वे नष्ट होकर नीचे के निषेकों में आ मिलते हैं। हमने यहां चार्ट में देखा था।

प्रायोग्यलब्धि के प्रकरण में हमने इसका स्वरूप देखा था। परंतु प्रायोग्यलब्धि में स्थितिकांडकघात होने पर भी सम्यक्त्व होगा ही ऐसा नियम नहीं है। वहां एक ही बार स्थितिकांडकघात हुआ था। एक ही झटके में स्थितिसत्त्व अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण किया था। यहां स्थितिकांडकघात लगातार बारंबार होते रहेंगे और यहां तो सम्यक्त्व होकर ही रहेगा क्योंकि अपूर्वकरण से कोई पीछे उलटा नहीं जायेगा। **हमने देखा था कि अधःप्रवृत्तकरण के प्रथम समय से ही**

स्थितिबंधापसरण होता रहता है, जिसके कारण नया होनेवाला बंध कम स्थितिवाला होता रहता है, वह भी हर अंतर्मुहूर्त में घटता जाता है। उसीको हमने स्थितिबंधापसरण कहा है। अपूर्वकरण में स्थितिबंधापसरण तो होता ही रहता है, वहां विधान शुरू हुआ वह अभी चालू ही है। साथ-साथ हजारों स्थितिकांडकघात द्वारा स्थितिसत्त्व घटता जाता है। जितने काल में स्थितिबंधापसरण का समान बंध हो रहा है उतने काल में एक स्थितिकांडकघात होता है यानी एक स्थितिबंधापसरण के साथ एक स्थितिकांडकघात। फिर दूसरे अंतर्मुहूर्त में एक बाजू स्थितिकांडकघात चल रहा है और उतना का उतना समान स्थितिबंध हो रहा है। यह ऐसा विधान चलता ही रहता है। एक अंतर्मुहूर्त में एक स्थितिकांडकघात होता है उसमें अनुभागकांडकघात हजारों बार होते हैं। एक साथ ये सब विधान चलते रहते हैं।

श्रोता: डॉ साहब यह जो दोनों विधान हैं सत्ता में जो कर्मों की स्थिति है और जो नयी बंधती है यह सब बराबर आ जाते हैं ? बराबर नहीं है। सत्ता की जो स्थिति है उससे नया बंध तो बहुत छोटा है। फिर भी कांडकघात होते हैं तो स्थिति और घटती ही चली जाती है और बंध उससे भी छोटा होगा। कहते हैं अंतर्मुहूर्त में घटता रहता है। स्थितिबंध अर्थात् बंधनेवाले कर्मों की स्थिति और स्थितिसत्त्व अर्थात् सत्ता में पड़े हुये कर्मों की स्थिति। क्योंकि शब्द आते हैं तो हमें तो वैसा का वैसा ही लगता है। स्थितिसत्त्व, स्थितिबंध। यहां संख्यात हजार स्थितिकांडकघात होते हैं। कांडक का प्रमाण छोटा यानी जघन्य या बड़ा यानी उत्कृष्ट तथा मध्यम हो सकता है। यह प्रमाण स्थितिसत्त्व के अनुसार होता है। प्रश्न पूछा था न ? अनेक जीवों के कांडक क्या समान होंगे ? कहते हैं यहां उनमें भेद होंगे। जिसकी स्थिति ज्यादा है उसके कांडक भी बड़े होंगे। स्थिति घटने पर कांडक भी छोटे होते चले जाते हैं।

भिन्न-भिन्न जीवों का स्थितिसत्त्व का प्रमाण अन्य-अन्य होता है। क्योंकि सत्ता में हीनाधिक स्थिति पड़ी है। किसीके जघन्य स्थितिसत्त्व अंतःकोड़ाकोड़ी पल्प होता है तो किसीके उत्कृष्ट स्थितिसत्त्व अंतःकोड़ाकोड़ी सागर होता है, मध्यम भेद असंख्यात हैं। तो स्थिति के अनुसार कांडक भी छोटा-बड़ा होगा। जितने निषेकों का अभाव होता है उसे कांडक कहते हैं और उतने समयों को कांडक आयाम अर्थात् कांडक की लंबाई कहते हैं। हम बोर्ड पर देखते हैं। श्रोता: लेकिन यहां सबकी स्थिति अंतःकोड़ाकोड़ी रह गयी थी न ? अंतःकोड़ाकोड़ी सामान्य कथन है

परंतु वहां किसीके और भी बड़े घात हो तो बताया न, वह मिनिमम अंतःकोड़ाकोड़ी पल्य भी आता है। शास्त्र में आता है। *श्रोता: नया बंध भी है ?* नया बंध तो थोड़ा होता है, स्थिति से थोड़ा होता है। कांडक किसको कहना ? नंबर ऑफ़ निषेक हैं उसको कांडक का आयाम कहेंगे। कांडक का आयाम यानी लंबाई। जैसे हम कहेंगे पल्य का संख्यातवां भाग - यह जो कुछ विशिष्ट प्रमाण है, उसको क्या कहेंगे ? उसका आयाम।

देखो- जितने निषेकों का अभाव होता है उसे कांडक कहते हैं और उतने समयों को कांडक आयाम अर्थात् कांडक की लंबाई कहते हैं। जघन्य स्थितिकांडक आयाम पल्य के संख्यातवें भाग प्रमाण होता है, तो उत्कृष्ट स्थितिकांडक आयाम पृथक्त्व सागर यानी सात या आठ सागर प्रमाण होता है। यानी इतनी स्थिति एक अंतर्मुहूर्त में घटेगी। पृथक्त्व का अर्थ है कुछ, कुछ यानी अभी गिने चुने। कितने ? यहां पृथक्त्व का प्रमाण सात या आठ है। पृथक्त्व शब्द अलग-अलग जगह अलग-अलग अर्थों में आता है और उसका प्रमाण कितना है वह संख्या वहां बतायी जाती है। **एक स्थितिकांडक घात होने पर इतनी स्थिति घटती है।** फिर दूसरा स्थितिकांडकघात होगा, फिर तीसरा होगा। तो स्थिति घटती चली जायेगी।

एक बार स्थितिकांडकघात होता है उसे एक अंतर्मुहूर्त काल लगता है क्योंकि प्रत्येक समय में कुछ परमाणु अपकर्षित होकर नीचे के निषेकों में आ मिलते हैं जिसको हमने क्या कहा था ? एक फालि। एक लॉट नीचे आया, फिर दूसरा लॉट नीचे आया, फिर तीसरा लॉट नीचे आया। फिर एक छोटे अंतर्मुहूर्त में पूरा का पूरा कांडक नष्ट होकर उसके सारे परमाणु नीचे के निषेकों में आकर मिल जाते हैं। **और एक अंतर्मुहूर्त में कांडक के सर्व निषेकों के सभी परमाणु नीचे आकर उन निषेकों का अभाव होता है।** अभी वह स्थिति घटेगी कि नहीं ? जितनी स्थिति पहले थी उसमें से कांडकघात होकर जो कोई सागर या पल्य जितना निकलता है उतनी कम हो जाती है। **इस काल को** यानी जितने काल में एक स्थितिकांडकघात होता है उतने काल को **स्थितिकांडकोत्करण काल कहते हैं।** यानी स्थितिकांडकघात होने के लिये जितना एक अंतर्मुहूर्त लगता है। नये-नये शब्द आ रहे हैं, है न !

यहां एक बात समझ लो कि ये सारे परमाणु सत्ता में ही रहते हैं, अभी कुछ खिर नहीं गये हैं। ऊपर से घात होकर नीचे आकर रुके हैं। **ऊपर के निषेकों में**

से नीचे के निषेकों में आते हैं। नीचे के निषेकों में परमाणुओं की संख्या बढ़ती चली जाती है। और क्या-क्या होता है ? पहले हमने देखा था कि स्थितिकांडकघात के साथ-साथ यहां स्थितिबंधापसरण यानी स्थितिबंध भी घटते चला जाता है। और अनुभागबंधापसरण होता है। यानी अप्रशस्त कर्मों का नया होनेवाला अनुभागबंध भी हीन होता चला जाता है। स्थितिबंध घटता है तब अंतर्मुहूर्त काल तक समान स्थितिबंध होता है इस अंतर्मुहूर्त काल को स्थितिबंधापसरण काल कहते हैं। हमने यह बोला था जितने काल को स्थितिबंधापसरण कहा उतना ही काल एक स्थितिकांडकघात होने के लिये लगता है। वहां दोनों ही विधान एक साथ चल रहे हैं। स्थितिकांडकोत्करण काल और स्थितिबंधापसरण काल दोनों ही समान अंतर्मुहूर्त हैं। परंतु अनुभागकांडकोत्करण काल उससे अल्प है। हमने यह भी देखा था- एक बार स्थितिकांडकघात होता है उतने ही काल में संख्यात हजार यानी हजारों बार अनुभागकांडकघात होते हैं। उसका स्वरूप क्या है वह हम कल देखेंगे।

प्रश्न: क्या हर प्रकार के अंतर्मुहूर्त में असंख्यात समय होते हैं ? अनंत नहीं ? अनंत बिलकुल नहीं क्योंकि सबसे बड़ा अंतर्मुहूर्त ४८ मिनट में एक समय कम है। २४ मिनट की एक घड़ी होती है। *प्रश्न: छहों द्रव्य की वीर्य गुण की पुरुषार्थरूप पर्याय हर समय होती है। इसका क्या मतलब ?* हमने देखा है हर समय कौनसे द्रव्य में कार्य होता है ? सब द्रव्यों में। जड़ और चेतन सभी में ? तो सभी में पांच समवाय लगते हैं कि नहीं लगते ? कौनसे पांच समवाय ? *श्रोता: स्वभाव, पुरुषार्थ...* / पुरुषार्थ किसका लगेगा ? उस द्रव्य का। पुद्गल का ? पुद्गल का पुद्गल में लगेगा ? लगेगा। तो पुद्गल में पुरुषार्थ होगा कि नहीं होगा ? उसमें पुरुषार्थ यानी वीर्य गुण उसमें है कि नहीं है ? प्रत्येक द्रव्य में वीर्य गुण है। हम सिद्धान्त प्रवेशिका सीखें थे तब उसे जीव का विशेष गुण बताया था। छहों द्रव्यों में अपना-अपना पुरुषार्थ चल रहा है क्योंकि उसमें अपना बल लगा है। द्रव्य की जो पर्याय होती है उसमें उस द्रव्य का बल काम करता है। इसलिये उस द्रव्य का पुरुषार्थ कहलायेगा। *प्रश्न: सम्यक्त्व का कार्य अपने आप होता है तो यह सीखना जरूरी है क्या ?* बिलकुल नहीं, सम्यक्त्व प्राप्त कर लो झट से।

अब यहीं रुकते हैं हम।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२५. करणलब्धि - अनिवृत्तिकरण

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने गोम्मटसार जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार, त्रिलोकसार आदि अनेक ग्रंथों की रचना की है। उसमें से लब्धिसार के आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका द्वंद्वारी भाषा में लिखी है। उसीके आधार से प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने से पूर्व पांच लब्धि पायी जाती हैं उसकी हम चर्चा कर रहे हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व की पात्रता क्या है पहले हमने देखा था।

पांच लब्धि के नाम याद हैं कि भूल गये ? श्रोता: क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि और करणलब्धि। हां, क्षयोपशमलब्धि, विशुद्धिलब्धि, देशनालब्धि, प्रायोग्यलब्धि, करणलब्धि। करणलब्धि में भी क्रम से तीन करण होते हैं। उनके नाम हैं- अधःप्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। ये सब हमने क्रम से देखे। प्रायोग्यलब्धि में बहुत सारे विधान होते हैं, उनकी भी हमने चर्चा की। जब तत्त्वविचार, तत्त्वनिर्णय में शुद्धात्माभिमुख परिणाम होते हैं द्रव्यानुयोग उसे शुद्धोपयोग कहता है और करणानुयोग तीन करण परिणामों की बात करता है। सबसे पहले अधःप्रवृत्तकरण होता है। जीव के परिणामों की विशुद्धि प्रतिसमय अनंतगुणा-अनंतगुणा बढ़ती चली जाती है। उसके कारण स्थितिबंधापसरण होता है और प्रशस्त-अप्रशस्त कर्मों का अनुभागबंध कैसा होता है उसको हमने देखा था। अलग-अलग जीवों के परिणामों की अपेक्षा उसमें जो विशेषता पायी जाती है, उसको हम अनुकृष्टि रचना कहते हैं, उसकी भी हमने चर्चा की थी।

जब अपूर्वकरण परिणाम शुरू होते हैं तब एक-एक समय के परिणामों में समानता या असमानता होगी। परंतु नीचे और ऊपर के समयों में कोई समानता नहीं पायी जायेगी। अपूर्व-अपूर्व परिणाम होंगे उसको कहेंगे अपूर्वकरण। एक जीव की अपेक्षा विशुद्धि अनंतगुणा बढ़ती है। उसके फलस्वरूप पहले चार आवश्यक तो यहां होते ही होते हैं, उनके साथ और भी बातें होती हैं। कौनसी चार बातें और होती हैं ? श्रोता: गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात। गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात। हमने प्रायोग्यलब्धि में एक ही स्थितिकांडकघात देखा था और एक ही अनुभागकांडकघात देखा था। यहां हर

अंतर्मुहूर्त में दोनों ही निरंतर होते ही रहते हैं। जिसकी स्थिति ज्यादा है उसके कांडक भी बड़े-बड़े होंगे। जिसकी स्थिति कम है उसके कांडक भी उस प्रमाण में छोटे होंगे। यहां लगातार हर अंतर्मुहूर्त में एक स्थितिकांडकघात हुआ, फिर दूसरा हुआ, फिर तीसरा हुआ, फिर चौथा हुआ। सातों कर्मों में स्थितिकांडकघात तो होते ही रहते हैं और अनुभागकांडकघात किसमें होंगे ? अप्रशस्त में। अनुभागकांडकघात होने का अर्थ है कि अधिक अनुभागवाले स्पर्धकों का घात होकर वे परमाणु नीचे के अनुभाग के समान हो जाते हैं। यह कार्य अप्रशस्त प्रकृतियों में होता है, प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग तो बढ़ता चला जाता है।

प्रशस्त प्रकृतियों का नया अनुभागबंध चतुःस्थानगत होता है और सत्ता में पड़ी हुयी उन प्रकृतियों का अनुभाग भी नये बंध के साथ बढ़ता चला जाता है। गुणश्रेणी के बारे में हमने चर्चा की थी। वैसे तो कर्मों में सामान्य से अपकर्षण होता रहता है। कुछ परमाणु उदयावली में यानी नीचे के उदय सन्मुख निषेकों में आते हैं, कुछ उसके ऊपर के निषेकों में दिये जाते हैं। सामान्य से अपकर्षण, उत्कर्षण, सजातीय प्रकृतियों में संक्रमण सात कर्मों की प्रकृतियों में होता ही रहता है। यहां अभी करण परिणाम हैं। विशुद्धि इतनी बढ़ रही है उसके कारण अपकर्षित होनेवाले परमाणुओं की संख्या बढ़ जाती है। परमाणु अधिक मात्रा में और वह भी प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम से अपकर्षित होते हैं। एक समय में जितने अपकर्षित होते हैं उसके दूसरे समय में उससे असंख्यातगुणा, तीसरे समय में उससे असंख्यातगुणा - यह क्रम चलता रहता है। ये अपकर्षित हुये परमाणु कहां से आये ? सभी निषेकों में से वे परमाणु नीचे आये।

वे कहां दिये जायेंगे ? सभी निषेकों में परमाणुओं की जो संख्या है उसे विशिष्ट भागहार से भाग देकर एकभाग प्रमाण द्रव्य सबसे निकाला था उस एकभाग का बहुभाग तो ऊपर में दिया जाता है परंतु वह अंतःकोड़ाकोड़ी सागर में बटता है। इसलिये प्रति निषेक थोड़ा-थोड़ा द्रव्य आता है। एकभाग उदयावली प्लस गुणश्रेणी में मिलकर दिया जाता है; उदयावली में बहुत थोड़ा दिया जाता है और बहुभाग गुणश्रेणी में दिया जाता है। गुणश्रेणी का अर्थ होता है यथायोग्य अंतर्मुहूर्त के जितने समय हैं उतने निषेकों में वे परमाणु गुणित प्रमाण में दिये जाते हैं। वहां मूल निषेक पड़े हैं और उनमें जितने निषेक हैं, मान लेते हैं दस हैं। नीचे का जो गुणश्रेणी का निषेक है उसमें थोड़ा द्रव्य दिया जायेगा और फिर उससे ऊपर क्रम से असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा

द्रव्य दिया जाता है। हमने दस निषेक माने थे तो दस तक असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा क्रम से द्रव्य यानी परमाणु दिये जायेंगे। हमने यह संख्या आपको समझाने के लिये बतायी। अंतर्मुहूर्त में असंख्यात समय होते हैं। तो असंख्यात निषेकों में असंख्यातगुणा क्रम से दिया जायेगा। यह एक समय की बात है। दूसरे समय में अपकर्षित होनेवाला द्रव्य उससे भी असंख्यातगुणा है; वह भी वहां पर वैसा ही दिया जायेगा। इसतरह से वह कार्य चलता ही रहेगा।

गुणश्रेणी में देने का कार्य चलता ही रहता है। नीचे से एक-एक निषेक उदयरूप होकर खिर जाता है। यहां इस गुणश्रेणी का एक विशिष्ट नाम है। इस गुणश्रेणी की रचना उदयावली के ऊपर हुयी थी। मान लेते हैं दस निषेकों की गुणश्रेणी बनी है। अभी नीचे का एक-एक निषेक गल रहा है, यह बात सही है न ? जैसे उदयावली समाप्त होगी तब गुणश्रेणी का नंबर आयेगा। उसमें से एक-एक निषेक उदयरूप होकर निकल जायेगा। तो गुणश्रेणी नीचे-नीचे आयेगी, गलित होकर अवशेष रहेगी। तो गुणश्रेणी छोटी-छोटी होगी कि नहीं ? गलित-अवशेष। गलित यानी जो गल गयी है और जो अवशेष है। गुणश्रेणी जब बनायी थी तो उसका आयाम कितना था ? तो अपूर्वकरण का काल प्लस अनिवृत्तिकरण का काल प्लस अनिवृत्तिकरण के काल का संख्यातवां भाग मिलकर पूरी गुणश्रेणी बनायी थी। अभी अपूर्वकरण का जितना समय निकल जायेगा उतनी गुणश्रेणी के निषेकों की संख्या भी कम हो जायेगी। क्योंकि निषेक नीचे से खिरते रहते हैं, उदयरूप होकर चले जाते हैं।

गुणश्रेणी कौनसे कर्मों में होती है ? सातों कर्मों में होती है। गुणश्रेणी में अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण काल प्रमाण निषेक तो हैं ही परंतु ऊपर अनिवृत्तिकरण के संख्यातवें भाग प्रमाण निषेक ज्यादा हैं उसको कहेंगे गुणश्रेणी का शीर्ष। यह बातें इतनी क्यों बतायी हैं ? क्योंकि अभी दर्शनमोहनीय के निषेकों में अंतरकरण और उपशम आदि कुछ विशेष बातें होनेवाली हैं। कहां-कहां के निषेक अंतर में चले जाते हैं उसकी बात बाद में करेंगे। अभी हमने गुणश्रेणी की बात देखी। गुणश्रेणी की रचना अनेक जगह होती है। सबसे पहली बार गुणश्रेणी कब होगी ? जब मिथ्यादृष्टि जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व के सन्मुख है, अभी उसे प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त नहीं हुआ है। अभी तो उपशमने का कार्य बाकी है। गुणश्रेणी अपूर्वकरण में बनायी है, अभी अंतर नहीं किया, उपशम नहीं किया। वह अनिवृत्तिकरण में किया

जायेगा। ऐसी ही गुणश्रेणी और कहां होती है ? जहां-जहां करण परिणाम होंगे वहां होती है। अकेले करण परिणाम में नहीं; पांचवें गुणस्थान में भी गुणश्रेणी कायम होती है, छठे-सातवें गुणस्थान में भी गुणश्रेणी कायम होती है, श्रेणी में भी अलग होती है। इसतरह से अनेक जगह गुणश्रेणीरूप से रचना होना और अधिक प्रमाण में निर्जरा होना ये कार्य तो ज्ञानी के होते ही रहते हैं। यह हुयी गुणश्रेणी।

हमने दूसरा नाम क्या देखा था ? गुणसंक्रमण। गुणसंक्रमण का अर्थ है गुणित प्रमाण में संक्रमण। संक्रमण के कुछ नियम होते हैं। आयु में कभी कोई संक्रमण नहीं होता। मनुष्यायु संक्रमित होकर देवायु हो जाये ऐसा नहीं होता। संक्रमण होगा तो मूल प्रकृति के अपनी सजातीय उत्तरप्रकृति में होगा परंतु उसके लिये नियम है- कि जिसका बंध होता है उसमें संक्रमण होता है। यहां गुणसंक्रमण नहीं होता है। यहां यानी प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पहले जो अपूर्वकरण शुरू हुआ है, इस काल में किसी भी प्रकृति का गुणसंक्रमण नहीं हो रहा है। परंतु अन्यत्र जहां करण परिणाम होते हैं वहां अपूर्वकरण में गुणसंक्रमण होता है।

अब किसका किसमें गुणसंक्रमण होता है ? तो कहां के करण परिणाम हैं उस पर यह निश्चित होता है कि कौनसी प्रकृति का किसमें गुणसंक्रमण होता है। अनंतानुबंधी की विसंयोजना चल रही है, दर्शनमोहनीय की क्षपणा चल रही है या श्रेणी का कार्य चल रहा है ? वहां उस विशिष्ट प्रकृति का संक्रमण होकर वह अन्य प्रकृतिरूप हो जाती है। जहां ज्यादा विशुद्धि है, वहां संक्रमित होनेवाले परमाणु भी एक समय में जितने संक्रमित हुये उससे असंख्यातगुणा दूसरे समय में, उससे असंख्यातगुणा तीसरे समय में संक्रमित होते हैं। जैसे हमने देखे न, कांडक की फालि नीचे आती है। ऐसे ही बहुत बड़े कांडक का संक्रमण एक अंतर्मुहूर्त में हो जाता है पहले समय, दूसरे समय, तीसरे समय में। वह कांडक संक्रमित हुआ, फिर और नीचे के कांडक के परमाणु संक्रमित होते हैं। यह विशुद्धि के कारण होता है। जहां विशुद्धि कम होती है, वह स्लो डाउन होता है यानी संक्रमण होता है परंतु कम प्रमाण में होता है। जितने प्रमाण में संक्रमण होता है उसके अनुसार संक्रमण के अलग-अलग नाम हैं, वह यहां अपना विषय नहीं है। परंतु हमें गुणसंक्रमण क्या है उसको देखना था। हमने दो बातें देखी, कौनसी ? गुणश्रेणी और गुणसंक्रमण।

अपूर्वकरण में और क्या होता है ? स्थितिकांडकघात और अनुभागकांडकघात। स्थितिकांडकघात क्या होता है हमने देखा था। यहां अपकर्षण भी हो रहा है यानी अपकर्षण होनेवाला द्रव्य भी नीचे आ रहा है और स्थितिकांडकघात भी उसीके साथ-साथ हो रहे हैं। अपकर्षण में तो प्रत्येक निषेक में से थोड़े - असंख्यातवें भाग प्रमाण परमाणु नीचे आते हैं, परंतु स्थितिकांडकघात में तो कांडक के पूरे के पूरे निषेकों का घात होकर उनका द्रव्य नीचे आयेगा। जब कांडकघात होते हैं तब उनके जो परमाणु नीचे आनेवाले हैं वे भी नीचे उदयावली में, गुणश्रेणी में और कांडक के नीचे सर्वत्र दिये जायेंगे। स्थितिकांडकघात और अपकर्षण विधान दोनों के द्वारा गुणश्रेणी में बहुत सारा द्रव्य दिया जायेगा।

स्थितिकांडकघात में हमने देखा था, पहले समय में पहली फालि यानी पहला लॉट नीचे आयेगा। फिर दूसरे समय दूसरी फालि, तीसरे समय तीसरी फालि। अंतर्मुहूर्त में पल्य के संख्यातवें भाग या यथायोग्य आयामवाले कांडक का घात होकर उसके सारे निषेक वहां से नष्ट होंगे। स्थिति उतनी घटेगी। एक छोटे अंतर्मुहूर्त में इतनी सारी स्थिति घट जाती है। स्थितिकांडकघात द्वारा क्या होता है ? सत्ता की स्थिति घटती चली जाती है। स्थितिबंधापसरण द्वारा नया बंध तो घटते हुये चल ही रहा है। स्थितिबंधापसरण और स्थितिकांडकघात के लिये एक समान अंतर्मुहूर्त लगता है।

स्थितिकांडकघात का जो एक अंतर्मुहूर्त है, उतने काल में अनुभागकांडकघात हजारों बार होते हैं। यानी एक पूरा हुआ, फिर दूसरा पूरा हुआ, फिर तीसरा... एक बार अनुभागकांडकघात होता है तो अनुभाग कितना घटता है ? अनंतगुणा घटता है यानी जितना है उसका अनंतवां भाग शेष रहता है। यह विधान चलता ही रहता है। इसतरह से अपूर्वकरण के शुरुआत में जितना स्थितिबंध था वह घटते-घटते अंत में कम रह जाता है। कांडकघात होते-होते स्थिति भी कम होती है। अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग भी घटते-घटते और घट जाता है। इसतरह से सबमें समझना। ये सारे विधान अनिवृत्तिकरण में भी चलते रहेंगे। अब यहां जाकर होनेवाली विशेष बात की अभी हम चर्चा करेंगे। यहां तक समझ में आया ?

पृष्ठ १३६, देखो- एक-एक अंतर्मुहूर्त में एक-एक अनुभागकांडकघात होता है, उस अंतर्मुहूर्त काल को अनुभागकांडकोत्करण काल कहते हैं। स्थितिकांडक

जितने काल में होता है उसका नाम क्या था ? श्रोता: स्थितिकांडकोत्करण काल। हां, स्थितिकांडकोत्करण काल और यह अनुभागकांडकोत्करण काल। कांडक का उत्कीरण; उत्कीरण कहो या उत्करण कहो एक ही बात है। **अनुभागकांडकघात द्वारा अप्रशस्त प्रकृतियों का अनुभागसत्त्व घटता है।** यानी सत्ता में सभी निषेकों में जो अनुभाग था वह अनुभाग घटकर हीन अनुभाग हो जाता है। पहले हमने देखा न, अप्रशस्त कर्मों का अनुभागबंध भी द्विस्थानगत - वह भी घटता हुआ होता है और प्रशस्तों का बढ़ता हुआ चतुःस्थानगत होता है। वह विधान यहां भी चलता ही रहता है।

पहले हमने स्पर्धकों का स्वरूप देखा था। एक-एक प्रकृति में अनंत स्पर्धक पाये जाते हैं। अप्रशस्त प्रकृतियों के अनंत स्पर्धकों को अनंत का भाग देनेपर उसमें से बहुभाग स्पर्धकों का अनुभाग घटकर शेष एक भागरूप स्पर्धकों के समान हो जाता है। इसतरह अनंत बहुभाग स्पर्धकों का एक कांडक द्वारा घात होता है उसे एक अनुभागकांडकघात कहते हैं। अभी जितना अनुभाग शेष है, उसमें फिर दूसरा अनुभागकांडकघात होगा। उसमें से जो शेष रहेगा उसमें फिर तीसरा अनुभागकांडकघात होगा। इसतरह से अप्रशस्त कर्मों का अनुभाग घटते ही चला जाता है। तो मूल में कितने अनंत स्पर्धक होंगे इसकी कल्पना कर सकते हैं। ऐसे अनुभागकांडकघात संख्यात हजार बार होते हैं उतने काल में स्थितिकांडकघात एक बार होता है और अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण में ऐसे स्थितिकांडकघात भी संख्यात हजार बार होते हैं।

एक बात ध्यान में रखो कि अनुभागकांडकघात में सातावेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभागकांडकघात नहीं होता, उलटा प्रतिसमय उनका अनुभाग अनंतगुणा बढ़ता चला जाता है। नया अनुभागबंध भी बढ़ता हुआ चतुःस्थानगत होता है, तो सत्ता में उनका जो अनुभाग पड़ा था न, पूर्व में हीन पुण्य बांधा था। तो नये बंध के साथ उनका अनुभाग भी बढ़ता चला जाता है। उसको अनुभाग का उत्कर्षण कहते हैं। स्थितिकांडकघात द्वारा स्थिति तो प्रशस्त-अप्रशस्त दोनों ही प्रकार के प्रकृतियों की घटती है। इसतरह अपूर्वकरण के प्रथम समय में प्रशस्त और अप्रशस्त दोनों प्रकृतियों का जो अनुभागसत्त्व था अपूर्वकरण की बात है। उससे उसके अंत समय में प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभागसत्त्व यानी सत्ता में पड़ा हुआ अनुभाग अनंतगुणा बढ़ा हुआ तथा अप्रशस्त

प्रकृतियों का अनुभागसत्त्व अनंतगुणा हीन हुआ पाया जाता है। इसतरह अपूर्वकरण का एक अंतर्मुहूर्त काल समाप्त होने पर अनिवृत्तिकरण प्रारंभ होता है। यहां तक समझ में आयी बात ?

जो गुणश्रेणी बनायी थी न, कितनी बड़ी बनायी थी ? अपूर्वकरण का काल प्लस अनिवृत्तिकरण का काल प्लस अनिवृत्तिकरण का काल संख्यातवां भाग। तो अभी गुणश्रेणी कितनी बाकी रहेगी ? अपूर्वकरण का काल बीत गया है, अब अनिवृत्तिकरण का काल और उसका संख्यातवां भाग इतनी गुणश्रेणी बाकी रहेगी। *श्रोता: संख्यातवां भाग क्यों लेना है ?* गुणश्रेणी का प्रमाण कितना है वह बताना है। वह गुणश्रेणी उन दोनों कालों से थोड़ी बड़ी है। जो थोड़ी बड़ी है वह और उसके ऊपर के बहुत सारे निषेक इनका नाश करके अंतर किया जायेगा। दर्शनमोहनीय में अंतर होनेवाला है। कौनसे निषेकों का अंतर किया जायेगा यह बताने के लिये उसकी बात की है। अनिवृत्तिकरण का संख्यातवां भाग अधिक लेकर वहां तक असंख्यातगुणा क्रम से दिया जाता था। यानी वह गुणश्रेणी का शीर्ष यानी टॉप मोस्ट पार्ट है। वहां से वे परमाणु नीचे ऊपर होकर वहां अंतर होनेवाला है।

अब **अनिवृत्तिकरण** की बात यहां से पढ़ेंगे। **ऊपर अपूर्वकरण के जो चार आवश्यक बताये थे** पहले अधःकरण के बताये थे, वे अपूर्वकरण में चालू ही थे। उनके अलावा अन्य और चार आवश्यक हुये थे, वे यहां भी चालू रहेंगे। **वे यहां भी होते हैं अर्थात् गुणश्रेणी, गुणसंक्रमण, गुणसंक्रमण का नाम इसलिये लिया कि सामान्य अनिवृत्तिकरण में होता है, परंतु यहां प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पूर्व में नहीं हो रहा है। स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात होता रहता है, स्थितिबंधापसरण भी होता रहता है।** वह तो हमने पहले अधःप्रवृत्तिकरण से ही देखा था। **परंतु अंतर इस बात का है** यानी यहां क्या विशेषता है ? **कि यहां समान समयवर्ती सभी जीवों के यानी अनिवृत्तिकरण मांडनेवाले त्रिकालवर्ती अनंत जीवों के परिणाम समान ही रहते हैं।** यह यहां की विशेषता है। इसलिये इसका नाम ही अनिवृत्तिकरण पड़ा है।

अनिवृत्तिकरण के अंतर्मुहूर्त काल में प्रतिसमय विशुद्धि तो अनंतगुणा बढ़ती जाती है विशुद्धि का बढ़ना करण परिणाम में शुरू से ही चालू हुआ था। **परंतु प्रत्येक समय में एक-एक ही परिणाम पाया जाता है।** हमने जितने अनंत जीवों की

बात देखी जो अनिवृत्तिकरण में प्रवेश करते हैं, उन सबका एक समान परिणाम होगा। **इसकारण अनिवृत्तिकरण के अंतर्मुहूर्त काल के जितने समय हैं** कितने होंगे ? अंतर्मुहूर्त प्रमाण। यह अंतर्मुहूर्त छोटा होगा। अधःकरण के संख्यातवें भाग अपूर्वकरण का काल है और उसके भी संख्यातवें भाग अनिवृत्तिकरण का काल है। इसमें विशुद्धि ज्यादा है और विधान ज्यादा होनेवाले हैं परंतु फिर भी काल छोटा होता है।

श्रोता: एक जैसे परिणाम हुये हैं ये जाति अपेक्षा परिणाम होते हैं ? एक-एक जो परिणाम है; यह विशुद्धि की बात है, तत्त्वज्ञान की निर्मलता की बात है। अभी श्रद्धा संबंधी जो दृढ़ता पायी जायेगी उसकी बात है। परंतु अन्य परिणाम - अगर हम चारित्रमोहनीय की बात देखते हैं तो कोई क्रोध के, कोई मान के, कोई माया के, तो कोई लोभ के उदय सहित हैं। अभी अनंतानुबंधी भी है, भले हीन हो रहा है परंतु अकेला अनंतानुबंधी नहीं है; अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन चारों ही के क्रोध या मान या माया या लोभ के उदय हैं। इतना फर्क-अंतर है। कोई पीतलेश्यावाले हैं, कोई पद्मलेश्यावाले हैं, कोई शुक्ललेश्यावाले हैं। नरक में तो कृष्ण, नील, कापोतलेश्यावाले भी हैं। वह फर्क-अंतर है। समझ में आती है बात ? उन परिणामों की यहां बात नहीं है। योग में भी फर्क-अंतर है - किसीका मनोयोग है, किसीका वचनयोग है, किसीका काययोग है। शरीर के आकार जुदे-जुदे हैं। जो जिस गति में है, उसका गति औदयिकभाव अलग है। शरीर के वर्ण जुदे हैं, शरीर की अवगाहना जुदी है। बाकी किसीकी बात नहीं चल रही है, यहां केवल विशुद्धि की बात है। विशुद्धि यानी केवल वह शुद्धभावरूप उसको नहीं लेना यहां। इसलिये एक-एक समय में एक-एक परिणाम सबके लिये समान है।

यहां के अंतर्मुहूर्त के जितने समय हैं **उतने ही जुदे-जुदे वहां परिणाम हैं।** यानी पहले समय में सबका समान परिणाम, दूसरे समय में सबका समान परंतु अनंतगुणा विशुद्ध, तीसरे समय में अनंतगुणा विशुद्ध होकर भी सबका समान इसतरह से है। यानी उनमें अंतर नहीं है कि कोई जघन्य है, कोई मध्यम है, कोई उससे ज्यादा है। यहां ऐसा कोई भेद नहीं है। **अब एक-एक समय के परिणाम एक-एक ही होने से वहां जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद नहीं पाये जाते। इसलिये इसका नाम अनिवृत्तिकरण है। निवृत्ति यानी परिणामों में भेद, अनिवृत्ति यानी परिणामों में भेद नहीं होना। यहां मात्र विशुद्धि की अपेक्षा ही परिणामों की समानता**

समझनी चाहिये।

परिणाम शब्द अनेक अर्थों में आता है। पर्याय को भी परिणाम कहेंगे। किसी भी गुण की पर्याय को परिणाम कह सकते हैं। चारित्रगुण के परिणाम को भी परिणाम कहते हैं। अलग-अलग अर्थों में यह शब्द आता है। यहां विशुद्धि के लिये भी परिणाम शब्द आया है। तो समान परिणाम का अर्थ क्या है ? सबकी विशुद्धि समान है। **गति, लेश्या, शरीरादि का आकार, वर्ण, ज्ञान, ज्ञान भी हीनाधिक होगा कि नहीं ?** क्योंकि हमने देखा कोई विशेष क्षयोपशम ज्ञानी होगा, कोई सामान्य बुद्धिवाला है। संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यचों का जो ज्ञान होगा और मनुष्यों का जो ज्ञान होगा उसमें अंतर है न ? कोई बहुत शास्त्रों का अभ्यासी हो सकता है, कोई साधारण होगा। हां, सात तत्त्व संबंधी उनके ज्ञान है परंतु क्षयोपशम में हीनाधिकता हो सकती है। तो ज्ञान, **उदयरूप कषाय** जो क्रोध या मान या माया या लोभ **आदि में भेद होने पर भी सभी अनंत जीवों की विशुद्धि समान ही होती है।** सभी की विशुद्धि में चौथे में जानेवाले की समान, पांचवें में जानेवाले की आपस में समान और पहले से सातवें में जानेवाले की आपस में समान। चौथे में जानेवाले की सातवें में जानेवाले के साथ समानता नहीं है क्योंकि पहले गुणस्थान से सातवें में जानेवाले की विशुद्धि और ज्यादा होगी।

श्रोता: इसे आत्मा का वेदन हो गया ? अभी वेदन नहीं हुआ है। औपशमिक सम्यक्त्व शुरू होगा तब वेदन होगा। उसने शुद्धात्मा को विषय कर लिया है, करण परिणामों में स्वसन्मुखता हो गयी है। परंतु अभी अल्पज्ञानी है न ? असंख्यात समयों तक स्वसन्मुखता करेगा तब सम्यक्त्व होगा। बस शुद्धोपयोग हुआ और उसी समय संवेदन होगा ऐसा नहीं है। वह केवलज्ञानी थोड़े ही है ? क्षयोपशम ज्ञानी है। उसने अंतर्मुहूर्त तक स्व में उपयोग लगाया है तब स्वसंवेदन होगा। औपशमिक सम्यक्त्व का पहला समय आयेगा तब अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव होगा। सम्यक्त्व हुआ नहीं तो उसके अतीन्द्रिय आनंद कैसे होगा ? *श्रोता:* आगे बढ़ता रहता है तब भी ? किसमें आगे बढ़ता है ? यहां आगे-पीछे कुछ नहीं है। अभी विशुद्धि बढ़ रही है बस इतना ही।

देखो- **अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण में और भी एक अंतर है। यहां जो स्थितिकांडकघातादि होते हैं उनमें स्थितिकांडक, अनुभागकांडक और स्थितिबंध का प्रमाण घटता है।** क्यों ऐसा होता है ? क्योंकि अभी स्थितिसत्त्व - सत्ता

की स्थिति घट रही है। अभी कांडक भी छोटे-छोटे होंगे। बंध में कटौती होती है वह भी कम होगी। तो कहते हैं कि **उसका कारण यह है कि स्थितिसत्त्व उत्तरोत्तर घटते जाने से** उत्तरोत्तर यानी जैसे आगे बढ़ेंगे - एक कांडक हुआ तो स्थितिसत्त्व घटा, दूसरे कांडक में और घटा। तो सत्ता की स्थिति जितनी घटेगी **इन कांडकों तथा स्थितिबंध का प्रमाण भी उत्तरोत्तर घटता चला जाता है। कांडक भी छोटे-छोटे होते हैं और स्थितिबंध में होनेवाली घट भी कम होती है।**

अपूर्वकरण समाप्त कर जो अनिवृत्तिकरण के पहले समय में आता है तब उसका स्थितिकांडक आयाम अलग-अलग स्थिति के साथ कांडकघात वगैरह किये थे तो किसीका कांडक छोटा होगा तो किसीका बड़ा होगा। तो कांडक आयाम यानी कांडक का प्रमाण **जघन्य** यानी कम से कम कितना होगा ? **पल्य के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट उससे संख्यातवां भाग अधिक होता है।** गुजराती पुस्तक में सुधार करना है - अनंतवां भाग के बदले असंख्यातवां भाग करो - गुजराती में भूल रह गयी है। पल्य इटसेल्फ असंख्यात संख्या है, उसका अनंतवां भाग नहीं हो सकता। स्थितिकांडक आयाम जघन्य पल्य का असंख्यातवां भाग - करेक्शन कर देना, और उत्कृष्ट उससे संख्यातवां भाग अधिक।

पहले ही समय में उस कांडक का घात होने पर जो अंतिम कांडक था न; कहां का हुआ ? अपूर्वकरण का अंतिम कांडक। कांडक हीनाधिक था। क्यों ? क्योंकि हीनाधिक स्थिति थी। अब सबने अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार छोटा-बड़ा कांडक किया और अनिवृत्तिकरण में पहुंच गया। इसलिये कहते हैं पहले ही समय में उस कांडक का घात होने पर यानी घात हुआ और पहला समय हुआ। **सभी जीवों के परिणाम की विशुद्धि समान होने के कारण** अब यहां जो **स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात, स्थितिबंधापसरण, गुणश्रेणी निर्जरा और गुणसंक्रमण** का प्रमाण होगा उनमें **समानता पायी जाती है।** यहां दर्शनमोहनीय में ये बातें नहीं हो रही हैं। जहां होती हैं, वहां गुणसंक्रमण की बात है। यहां नहीं हो रहा है, वह तो पहले ही बता दिया। परंतु हम अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण सीख रहे हैं; जहां-जहां होते हैं वहां यह समान होता है।

परंतु यहां योग की सदृशता का कोई नियम नहीं है क्योंकि योग गुणस्थानों

के अनुसार नहीं होता है। संज्ञी पंचेन्द्रिय के यथायोग्य योग कहीं भी हो सकता है। जैसे जन्म के पहले समय में उपपादयोग होता है, बहुत कम होता है। बाद में शरीरपर्याप्ति तक बढ़ता है परंतु उसके बाद थ्रूआऊट लाइफटाइम तक जो परिणामयोग है वह हीनाधिक कैसे भी हो सकता है। उसके लिये कोई विशुद्धि है, संक्लेश है, कोई न कोई कषाय है उसका कोई संबंध नहीं है। उसके शरीर नामकर्म के उदय से पंचेन्द्रिय के योग्य हीनाधिक कोई भी योग हो सकता है। इसलिये कहेंगे यहां योग की सदृशता का कोई नियम नहीं है। किसीके योग कम होगा, किसीके अधिक होगा, किसीके असंख्यातगुणा भी अधिक होगा। **इसलिये उनके प्रदेशबंध में समानता का नियम नहीं है।** परंतु स्थितिबंध कितना होगा, निषेक कितने बनेंगे ? कांडक कैसे होंगे ? उन सब में समानता पायी जायेगी।

पहले हमने देखा था कि अपूर्वकरण के काल से अनिवृत्तिकरण का काल अल्प है हमने देखा था उसके संख्यातवें भागप्रमाण है। हमने अंकसंदृष्टि द्वारा अपूर्वकरण का काल ८ समय माना था। आपको याद होगा अधःकरण में हमने १६ समय माने थे, अपूर्वकरण समझाने के लिये ८ समय माने थे। और ८ समयों के सभी परिणाम मिलकर उनकी संख्या ४०९६ मानी थी। जो हमने कल देखा था। अब यहां अनिवृत्तिकरण का काल ४ समय मानेंगे, है तो अंतर्मुहूर्त। तो प्रत्येक समय का एक परिणाम इस हिसाब से यहां कुल ४ परिणाम होंगे जो क्रमशः अनंतगुणा विशुद्धिवाले होंगे। प्रत्येक समय का एक-एक सुनिश्चित परिणाम। चार समय हैं तो सभी जीवों के ४ जुदे-जुदे परिणाम होंगे - पहले समय का, दूसरे समय का, तीसरे समय का, चौथे समय का।

अपूर्वकरण में होनेवाले सभी आवश्यक यहां भी होते रहते हैं। ज्ञानोपयोग शुद्ध आत्मा में एकाग्र रहता है, फिर भी अभी परिणाम में मिथ्यात्व है, देखो, यह सूक्ष्मता पकड़नी पड़ेगी। अरे, शुद्धोपयोग हुआ और मिथ्यात्व है ? हां है, क्योंकि अभी शुद्धोपयोग से सम्यक्त्व होनेवाला ही है। परंतु अभी मिथ्यात्व अत्यंत मंद होता हुआ उसका बंध भी चल रहा है। यहां मिथ्यात्व का बंध भी है और वह भी कितना होगा ? यथायोग्य। अंतःकोड़ाकोड़ी सागर का जो यथायोग्य प्रमाण है उतना होगा, जो घटते-घटते रह गया है उतना यहां बंध भी होगा। तो कहते हैं ज्ञानोपयोग शुद्ध आत्मा में एकाग्र रहता है, क्योंकि अंतर्मुहूर्त में लगातार रहेगा तब जाकर उसको

सम्यक्त्व होनेवाला है। फिर भी अभी परिणाम में मिथ्यात्व है। **अभी मिथ्यात्व के निषेक उदय में आते रहते हैं।**

इसीप्रकार अनिवृत्तिकरण काल को संख्यात से भाग देकर बहुभाग बीत जाने पर संख्यात से भाग देकर बहुभाग का अर्थ क्या होता है ? मान लेते हैं जितना काल था न, उसको हमने ५ से भाग दिया। १०० को ५ से भाग दिया और उसमें से बहुभाग बीत गया। एकभाग का प्रमाण २० और ४ भाग का प्रमाण ८०। इतना बहुभाग निकल गया। तब कुछ विशेष बात होती है उसकी बात यहां करेंगे। बहुभाग बीत जाने पर **अर्थात् मान लो ५ भागों में से ४ भाग व्यतीत होने पर अंतरकरण होता है।** अभी अंतरकरण क्या है उसकी बात हम यहां थोड़ी देर में देखेंगे।

निषेक रचना निरंतर थी। अंतरकरण किसमें होता है ? दर्शनमोहनीय में होता है। अन्य कर्मों की यहां कोई बात नहीं है। दर्शनमोहनीय मिथ्यात्व कर्म है। अभी हम एक मिथ्यात्व को लेंगे। कोई सादि मिथ्यादृष्टि है, किसीके तीन प्रकृतियों की सत्ता है उसकी बात अभी नहीं करेंगे। प्रथमोपशम प्राप्त करनेवाले मिथ्यादृष्टि की बात करते हैं। अनादि मिथ्यादृष्टि भी हो सकता है और सादि मिथ्यादृष्टि ऐसा कि जिसकी सम्यक् प्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्व की उद्वेलना पूरी हुयी है और एक मिथ्यात्व बाकी है। इसलिये जिसके एक मिथ्यात्व प्रकृति है उसकी चर्चा हम पहले करेंगे।

अंतर होता है का अर्थ क्या है ? अभी कहां तक आया है ? अनिवृत्तिकरण के थोड़े समय बचे हैं। गुणश्रेणी कितनी शेष है ? अनिवृत्तिकरण के थोड़े समय और उसके ऊपर गुणश्रेणीशीर्ष के निषेक इतनी गुणश्रेणी शेष है। तो गुणश्रेणीशीर्ष और उसके ऊपर के अनेक निषेक नष्ट होकर अंतर बनेगा। नष्ट हो जायेंगे यानी उसके परमाणु कहां जायेंगे ? कुछ नीचे आयेंगे और कुछ ऊपर चले जायेंगे। ऊपर चले जायेंगे उसके लिये एक नियम है। जहां-जहां परमाणुओं का उत्कर्षण होता है, स्थिति बढ़ती है उसके लिये नये बंध की आवश्यकता होती है। अब यहां मिथ्यात्व का बंध हो रहा है उसकी आबाधा कितनी है ? अंतर्मुहूर्त की है। वह आबाधाकाल का अंतर्मुहूर्त यहां जो अंतर होनेवाला है उससे भी बड़ा है। यानी यहां जो प्रतिसमय निषेक बंधेंगे उनकी निषेक रचना अंतर के ऊपर होगी। अंतर जिनमें होनेवाला है वहां के परमाणु नये बंध के साथ ऊपर चढ़ेंगे और कुछ परमाणु अपकर्षण होकर नीचे आयेंगे। नीचे

प्रथम स्थिति में अभी गुणश्रेणी चल रही है, उदीरणा वगैरह सब चल रही है। अपकर्षण चल रहा है यानी निषेकों में जो अंतर होनेवाला है, जो निषेक नष्ट होनेवाले हैं उनमें से कुछ परमाणु अपकर्षण होकर नीचे आ जायेंगे और कुछ ऊपर चले जायेंगे। एक छोटे अंतर्मुहूर्त में बीच में अंतर हो जायेगा। इस विधान को कहेंगे अंतरकरण। यानी उसने अंतर करने का कार्य कर दिया।

अब यहां पढ़ेंगे और फिर हम चार्ट के साथ देखेंगे। **विवक्षित निषेकों का** अभी विवक्षित निषेक कौनसे हैं ? देखो, पहले में पहले यहां दर्शनमोहनीय की क्या अवस्था थी ? नीचे से ऊपर तक निषेक रचना थी। अभी हमने यहां डिटेल में गुणश्रेणी वगैरह नहीं दिखायी है, तो समझ लेना क्योंकि सभी बातें एक साथ बताने जाये तो बहुत घोटाला होगा। यहां जो निषेक पड़े हैं वे लगातार प्रत्येक समय में एक-एक निषेक है। अभी तक अंतर नहीं हुआ था। स्थितिकांडकघात आदि सब चल रहे थे। अब यहां विशेष बात क्या होगी ? इतने सारे जो निषेक यहां थे; ऐसा मान लो, उसमें से परमाणु ऊपर भी चले जायेंगे और नीचे भी चले जायेंगे। ये हैं विवक्षित निषेक - जिनका अभाव होकर अंतर तैयार होगा। उन निषेकों के नीचे तक अनिवृत्तिकरण का काल है और गुणश्रेणी इससे भी ऊपर तक थी। तो गुणश्रेणी का शीर्ष और ऊपर के उससे भी संख्यातगुणे निषेक - इनको मिलाकर यहां अंतर तैयार होगा।

देखो क्या कहते हैं ? **विवक्षित निषेकों का सर्व द्रव्य** सर्व यानी सारे के सारे परमाणु। एक समय में नहीं आते, इसके लिये भी अंतर्मुहूर्त लगेगा। एक-एक समय में थोड़े-थोड़े परमाणु **अन्य निषेकों में** ऊपर नीचे चले जायेंगे **अर्थात् यहां ऊपर के** ऊपर के कहने से क्या है ? जहां अंतर पड़नेवाला है उसके ऊपर के। **तथा नीचे के** नीचे के यानी अंतर के नीचे के। अंतर के नीचे क्या है ? अनिवृत्तिकरण का शेष काल और उसके शेष निषेक हैं। अंतरवाले निषेकों के कुछ परमाणु ऊपर दिये जायेंगे, कुछ नीचे दिये जायेंगे। नीचे दिये जायेंगे तो उन निषेकों के साथ वे खिर जानेवाले हैं। ऊपर दिये जानेवाले वे जाकर अभी ऊपर बैठेंगे, बाद में उपशमित हो जायेंगे। *श्रीता: यह अंतर किसमें होगा ?* मात्र दर्शनमोहनीय में, अन्य किसी में नहीं। अनंतानुबंधी में कोई अंतर नहीं होता है। दर्शनमोहनीय में अंतर करने का कार्य यहां प्रथमोपशम के पूर्व अनिवृत्तिकरण के काल में होगा और श्रेणी में अनंतानुबंधी बिना चारित्रमोहनीय में अंतर होगा। अन्यत्र किसी भी कर्म में कभी भी अंतर करने का कार्य नहीं होता। ख्याल

में आती है न बात ?

फिर से पढ़ते हैं- **विवक्षित निषेकों का सर्व द्रव्य** सर्व द्रव्य क्यों ? क्योंकि ये निषेक नष्ट होनेवाले हैं। **अन्य निषेकों में अर्थात् यहां ऊपर के तथा नीचे के निषेकों में निक्षेपण करके** निक्षेपण करना यानी डालना - कुछ ऊपर गये और कुछ नीचे आये। यानी कोई परमाणु उत्कर्षण होकर ऊपर गये। उत्कर्षण के लिये आवश्यकता क्या होती है ? नये बंध की। यहां बंध तो हो ही रहा है। और नीचे कैसे जायेंगे ? अपकर्षण द्वारा। **उन विवक्षित निषेकों का अभाव करना अंतरकरण कहलाता है।** अंतर यानी गॅप तैयार हुयी। अनादि से क्या हो रहा था ? हर समय मिथ्यात्व का उदय हो रहा था और यहां जीव भी मिथ्यात्व कर रहा था। उदय हो रहा था इसलिये मिथ्यात्व नहीं कर रहा था। दोनों बातें एक साथ होती हैं। अब यहां जीव स्वयं सम्यक्त्व प्राप्त करने जा रहा है। यहां उसके परिणाम हो रहे हैं और वहां कर्मों में सहजरूप से अंतर होता है। अनिवृत्तिकरण के सब निषेक खिर जायेंगे तो अंतर का पहला समय आ जायेगा। वहां सामने मिथ्यात्व कर्म का उदय भी नहीं है और यहां जीव का मिथ्यात्व परिणाम भी नहीं है और जीव ने सम्यक्त्व प्रकट किया है।

श्रोता: *यहां जो अंतर किया है यहां कोई निषेक नहीं हैं। बाकी के...* यह अंतर केवल दर्शनमोहनीय में हुआ है। दर्शनमोहनीय की निषेक रचना पूरी जुदी है। हर एक कर्म की अपनी-अपनी निषेक रचना अपने अपने में है। ज्ञानावरण की निषेक रचना निरंतर है, दर्शनावरण की निरंतर है, चारित्रमोहनीय की निरंतर है, अंतराय की निरंतर है, वेदनीय की निरंतर है, नाम-गोत्र की निरंतर है। सबकी निरंतर है। आयु में कोई परिवर्तन होता ही नहीं। अन्य कर्मों में सभी विधान चलेंगे - अभी उनमें तो गुणश्रेणी वगैरह सब हो रहे हैं। दर्शनमोहनीय की गुणश्रेणी का शीर्ष है वह अंतर में चला जाता है। बाकी कर्मों में गुणश्रेणी और उसका शीर्ष रहेगा। अभी उनमें अपकर्षण, स्थितिकांडकघात वगैरह सब चलेगा। गुणश्रेणी का कार्य भी चलेगा। अभी यहां जाकर दर्शनमोहनीय में गुणश्रेणी में देना, स्थितिकांडक, अनुभागकांडक वगैरह सब कुछ रुकेगा। बाकी कर्मों में चलता रहेगा।

श्रोता: *अनंतानुबंधी का ?* अनंतानुबंधी में भी अंतर नहीं तैयार होता। उसकी भी गुणश्रेणी वगैरह चलेगी। अनिवृत्तिकरण के पश्चात् जब सम्यक्त्व होगा तो क्या होगा

उसकी चर्चा अभी हम करेंगे। अभी बाकी सभी कर्मों में गुणश्रेणी चल रही है। किसी भी कर्म में अंतर नहीं हुआ है, मात्र दर्शनमोहनीय के निषेकों में अंतर हुआ है। हर एक प्रकृति की अपनी-अपनी निषेक रचना जुदी-जुदी है। मूलप्रकृति के उत्तरप्रकृतियों की सबकी जुदी-जुदी है। *श्रोता: कोई जीव पहले गुणस्थान से अगर पांचवें गुणस्थान में जाता है तो अनंतानुबंधी में अंतरकरण नहीं करेगा, परंतु अप्रत्याख्यानावरण कर्म में करके जायेगा ?* बिलकुल नहीं। किसी भी अन्य कर्म में यहां अंतर नहीं होता। चारित्रमोहनीय में अप्रत्याख्यानावरणादि में अंतर तो श्रेणी में होगा। यहां नहीं। यहां तो मात्र दर्शनमोहनीय में ही अंतर होगा। हां, जो सादि मिथ्यादृष्टि है और सम्यक् प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व की कुछ सागर प्रमाण स्थिति शेष है, उनके तीनों में अंतर होगा। वह विषय अभी नहीं। क्योंकि वह अंतर भी समान नहीं होगा, असमान होगा, हां।

पढ़ते हैं, देखो- **यह अंतर केवल** यानी मात्र-सिर्फ **दर्शनमोहनीय कर्म में ही किया जाता है।** अभी अनंतानुबंधी का भी उदय मिटनेवाला है। कब ? सम्यक्त्व होने पर परंतु उसका विधान जुदा है। उसमें कोई अंतर नहीं बनेगा। **अनादि मिथ्यादृष्टि जीव की सत्ता में दर्शनमोहनीय कर्म की एक मात्र मिथ्यात्व प्रकृति ही विद्यमान रहती है, इसलिये वहां मिथ्यात्व प्रकृति में अंतर किया जाता है।** यह समझना तो आसान है, हमने अभी बात की थी। **सादि मिथ्यादृष्टि जीव की सत्ता में जिसे दर्शनमोहनीय की मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति इन तीन की सत्ता विद्यमान है वहां इन तीनों ही प्रकृतियों में अंतर किया जाता है।** परंतु विशेष बात है तीनों का अंतर समान नहीं होगा। जो अंतर के नीचे निषेक हैं उसको कहेंगे प्रथम स्थिति और अंतर के ऊपर हैं वह द्वितीय स्थिति। उनमें कुछ विशेषता होगी। अभी उसकी विशेषता को यहां गौण करके आगे बढ़ते हैं।

यहां प्रथम स्थिति किसको कहना ? जरा चार्ट देखना। अपूर्वकरण में होनेवाले सभी आवश्यक यहां अनिवृत्तिकरण में भी होते हैं। यह तो हमने देख लिया। अभी यहां अनिवृत्तिकरण का संख्यात बहुभाग बीत गया तब जाकर यह कार्य हुआ। यहां निषेक निरंतर-लगातार थे। उनमें क्या हुआ ? जहां अंतर होना है वहां के जो निषेक हैं उनमें से कुछ परमाणु नये बंध के साथ ऊपर चले गये और द्वितीय स्थिति के निषेकों में जा मिले। कुछ परमाणु अपकर्षण द्वारा नीचे आ गये और उदय के समय से लेकर अंतर्मुहूर्त प्रमाण निषेक हैं उनमें जाकर मिले। कुछ उदयरूप हुये, कुछ गुणश्रेणी में

दिये। अब यहां अंतर तैयार हुआ। अंतर के ऊपर जो स्थिति है उसको कहेंगे द्वितीय स्थिति और अंतर के नीचे है उसको कहेंगे प्रथम स्थिति। अभी भी प्रथम स्थिति में अंतर्मुहूर्त प्रमाण निषेक हैं। भले छोटा अंतर्मुहूर्त है। क्योंकि यहां नीचे अनिवृत्तिकरण का संख्यातवां भाग शेष है। यहां उतने अंतर्मुहूर्त प्रमाण निषेक हैं और द्वितीय स्थिति में यथायोग्य अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण निषेक पड़े हैं। बीच में अंतर तैयार हुआ है।

अब यह अंतर तैयार हुआ है परंतु अभी भी अपकर्षण द्वारा द्वितीय स्थिति में से अंतर को लांघकर परमाणु नीचे आ रहे हैं। मिथ्यात्व का नया बंध हो रहा है क्योंकि इसके अंत समय तक मिथ्यात्व का बंध होगा। तो अभी भी नये बंध के साथ प्रथम स्थिति के कुछ परमाणु अंतर को लांघकर ऊपर भी जा रहे हैं। अंतर को लांघकर नीचे आते हैं उसको कहेंगे आगाल और अंतर को लांघकर बंधनेवाले के साथ ऊपर जायेंगे उसको कहेंगे प्रत्यागाल। आगाल और प्रत्यागाल अभी भी चलेगा। अंतर करने के पश्चात् अगले समय से क्या बात होगी ? द्वितीय स्थिति में जितने निषेक हैं, उनमें से एक समय में कुछ परमाणु उपशमित हो जायेंगे।

जैसे हमने स्थितिकांडकघात में पहली, दूसरी आदि फालि देखी थी वैसे द्वितीय स्थिति में से कुछ परमाणु उपशमित हो गये। उपशमित हुये यानी क्या ? अभी वे अपनी जगह छोड़कर नीचे नहीं आ सकते। अभी यहां उनमें कुछ नहीं होगा। फिर दूसरे समय में और कुछ उपशमित होंगे, तीसरे समय में और कुछ उपशमित होंगे। असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा प्रमाण में उपशमित होना चालू हो जाता है। अभी अंतर्मुहूर्त तक वे नीचे नहीं आ सकते क्योंकि नीचे आते रहते तो उदय हमेशा चलता रहेगा। फिर अंतर करने से भी कुछ फ़ायदा नहीं है। क्योंकि ऊपर से नीचे आते ही रहेंगे तो उनका उदय भी होता ही रहेगा। जब नीचे प्रथम स्थिति में दो आवली प्रमाण निषेक शेष रहते हैं - आवली प्लस दूसरी आवली, तब जाकर उनका नीचे आना यानी आगाल और ऊपर जाना यानी प्रत्यागाल दोनों रुक जाते हैं। *श्रोता: यहां प्रथम स्थिति एक ही है ?* प्रथम स्थिति अंतर्मुहूर्त प्रमाण है, जो मात्र दर्शनमोहनीय में है।

अब उसमें नीचे के निषेक गलते रहे। गलते-गलते प्रथम स्थिति में दो आवली प्रमाण निषेक बाकी रहते हैं तभी आगाल और प्रत्यागाल रुक जाते हैं। प्रथम स्थिति में दो आवली शेष हैं न, यह नीचे की आवली और ऊपर की आवली। ऊपर की आवली

प्रमाण निषेकों में से अभी भी कुछ समय तक उदीरणा होकर नीचे आयेंगे। कब तक ? आवली प्लस एक निषेक शेष हैं तब तक। तो अंत में उसमें से कुछ परमाणु उदीरणा होकर नीचे के कुछ निषेकों में आ जायेंगे। बाद में जब केवल उदयावली रहेगी तो उदीरणा भी नहीं होगी। तो क्या होगा ? एक-एक निषेक क्रम से उदय में आते-आते अनिवृत्तिकरण का अंत आ जायेगा। जब तक प्रथम स्थिति के शेष निषेकों का खिरना चल रहा है। उसी समय द्वितीय स्थिति में सारा उपशमने का कार्य चल रहा है। ऊपर अंतिम लॉट उपशमित होगा उस समय यहां अंतिम निषेक खिरेगा। अनिवृत्तिकरण का अंतिम समय है वहां मिथ्यात्व का अंतिम उदय है, उसी समय मिथ्यात्व का अंतिम बंध है। ख्याल में आया न ? उसी समय ऊपर अंतिम फालि उपशमित हो जायेगी।

अभी क्या बात होगी ? दर्शनमोहनीय सभी उपशमित है, अभी कोई नीचे नहीं आ सकता। अभी नीचे अंतर्मुहूर्त प्रमाण अंतर है। मिथ्यात्व नहीं है और जीव ने भी अपने परिणामों में सम्यक्त्व प्राप्त किया है। यह औपशमिक सम्यक्त्व का पहला समय है। यहां से यथायोग्य अंतर्मुहूर्त तक औपशमिक सम्यक्त्व चलेगा। उपशमने का कार्य हुआ उसको कहेंगे उपशम विधान। औपशमिक सम्यक्त्व तो बाद में हुआ, उपशमने का कार्य कब हुआ ? उसके पहले हुआ। अंतर करने के बाद उपशम विधान हुआ। यहां तक बात समझ में आयी ? अभी यहां उसकी कुछ विशेषतायें हम देखते हैं।

श्रोता: नहीं समझी। देखो-देखो पहली स्थिति और दूसरी स्थिति इतना तो समझ में आया ? कर्मों में क्या होता था ? पहले से ही अपकर्षण होता था। अभी द्वितीय स्थिति में निषेक तो हैं ही, उनका अपकर्षण होगा। परंतु अपकर्षण करके अंतर को लांघकर परमाणु नीचे आ रहे हैं; क्योंकि अभी अंतर पूरा करने का कार्य नहीं हुआ। अंतर करने के पहले भी अपकर्षण हो रहा था। अंतर का कार्य शुरू करने पर अंतर को लांघकर नीचे आ रहे थे और प्रथम स्थिति के कुछ परमाणु उत्कर्षण करके अंतर को लांघकर नये बंध के साथ ऊपर भी जा रहे थे। ऐसे करते-करते अंतर करने का कार्य पूर्ण हो गया। अंतर हुआ यानी अभी बीच में कोई निषेक नहीं है। अपकर्षण रुक गया क्या ? अभी नहीं रुकेगा। अंतर को लांघकर परमाणु नीचे आयेंगे और नये बंध के साथ अंतर को लांघकर ऊपर भी चले जायेंगे। अंतर को लांघकर नीचे-ऊपर जाना इसीको आगाल-प्रत्यागाल कहते हैं। यहां तक समझ में आयी बात ? *श्रोता: द्वितीय स्थिति अंतर्मुहूर्त प्रमाण है न ?* ना-ना, अनिवृत्तिकरण का शेष भाग यह प्रथम स्थिति है और

अंतर के ऊपर अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण निषेक वह द्वितीय स्थिति है, वह अंतर्मुहूर्त नहीं है। सत्ता में पड़ी हुयी स्थिति है वह द्वितीय स्थिति है। उसका प्रमाण है अंतःकोड़ाकोड़ी सागर।

श्रोता: सत्ता के जिन निषेकों का उदय और बंध ? मिथ्यात्व का जहां उदय है वहां बंध होता ही होता है। अब जो अंतिम समय उदय का है तो अंतिम समय बंध का है। बाद में सम्यक्त्व होने पर मिथ्यात्व का उदय भी नहीं है और मिथ्यात्व का बंध भी नहीं है। *श्रोता:* अभी जो बंध होगा वह द्वितीय स्थिति में ही होगा ? हां, बंध होता है उसका आबाधाकाल है वह अंतर के प्रमाण से अधिक है। देखो, यहां जो बंध होगा उस समयप्रबद्ध की निषेक रचना कैसी कहेंगे ? वर्तमान समय में बंध हो रहा है तो अंतर के ऊपर तक उसकी आबाधा होगी और ऊपर उसके निषेक बनेंगे। बंध के बाद निषेक अपनी-अपनी समान स्थितिवाले द्वितीय स्थिति के निषेकों में जाकर मिल जायेंगे। प्रथम स्थिति के कुछ परमाणु भी उत्कर्षण करके ऊपर जहां बंध हुआ है उसमें जाकर मिलेंगे। *श्रोता:* अंतिम स्थितिबंध भी अंतःकोड़ाकोड़ी का ही होगा ? हां, क्योंकि संज्ञी पंचेन्द्रिय में मिथ्यात्व का मिनिमम बंध अंतःकोड़ाकोड़ी सागर ही है, भले सातवें गुणस्थान के सन्मुख भी क्यों न हो। वह सागरवाला जघन्य बंध एकेन्द्रिय जीव करते हैं, यहां नहीं।

श्रोता: प्रथम स्थितिवाले निषेक द्वितीय स्थिति में जाते हैं क्या ? पूरे निषेक नहीं, कुछ परमाणु जाते हैं। निषेक कोई कहीं नहीं जाता, प्रत्येक निषेक अपनी जगह है। उसमें से कुछ परमाणुओं का ऊपर-नीचे आना-जाना होता है। जैसे ऊपर के निषेक अपनी जगह हैं, उनमें से कुछ परमाणु अंतर को लांघकर नीचे आते हैं। अपकर्षण तो पहले से ही चल रहा था न। यहां अपकर्षण हो रहा है परंतु अपकर्षण होनेवाले परमाणु अंतर के निषेकों में नहीं दिये जाते। अगर वहां पर भी दिये जायेंगे तो अंतर करने का कार्य कभी पूरा नहीं होगा। इसलिये जब अंतर करना शुरू होता है तब सहज ही अपकर्षित परमाणु अंतर में नहीं दिये जायेंगे, उसके नीचे आ जायेंगे। अंतर करने का कार्य पूरा हो जायेगा, फिर भी अभी अपकर्षण चल रहा है। *श्रोता:* मिथ्यात्व का अपकर्षण होगा तो उदय भी होगा ? मिथ्यात्व का, हां बिलकुल ऐसा ही है। अच्छा प्रश्न है। आपने क्या कहा समझ में आया ? बाकी तो उपशमित हुये हैं, परंतु अभी लास्ट-लास्ट में बंध हुआ है उसका क्या होगा ? वे उदय में आवे तो क्या होगा ? कर्मों के बंध

में यह नियम है कि बंधने के बाद एक आवली तक उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता। ना उनका अपकर्षण होगा, ना उदय होगा, ना कुछ होगा। तो अभी जो नया-नया बंधा है न, उसको नवक समयप्रबद्ध कहते हैं। तो उनका क्या होगा ? बंध के आवली के बाद उसका उपशमने का कार्य हो जायेगा। यहां सम्यक्त्व हो गया है और जो नया-नया लास्ट-लास्ट में बंधा है वह उपशमित हो जायेगा।

श्रोता: यह अंतर सबमें बनता है ? कोई पहले से चौथे में जाता है, कोई पांचवें में जाता है, कोई सातवें में जाता है - उन सभी का अंतर बनता है ? सभी का अंतर बनता है क्योंकि यह प्रथमोपशम सम्यक्त्व है। सबमें अंतर बनेगा ही बनेगा। *श्रोता: और अंतर समान नहीं होगा ?* नहीं, समान होने में कोई बाधा नहीं है क्योंकि दर्शनमोहनीय में अंतर किया। चौथे, पांचवें या सातवें में जानेवालों की विशेषता किसमें है ? वहां अनंतानुबंधी का अप्रशस्त उपशम है कि अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण का है या तीन कषाय चौकड़ी का मिलकर अप्रशस्त उपशम है - उसमें फर्क होगा। मिथ्यात्व में जो अंतर बनना है वह सबके लिये वैसा ही होगा। *श्रोता: अंतर में कौनसे निषेक चले जायेंगे ?* गुणश्रेणीशीर्ष प्लस ऊपर के उससे संख्यातगुणा निषेक। शीर्ष मान लेते हैं कि १० समय का है तो और ऊपर के ८० निषेक और ले लो। इतना बड़ा अंतर होगा। जितना बड़ा अंतर है उतना पूरा प्रथमोपशम सम्यक्त्व का काल नहीं है। उसमें से प्रथमोपशम सम्यक्त्व का काल बहुत छोटा है। वह बात तो बाद में आगे आयेगी। अभी यहां तक की बात समझ में आयी ?

यहां हम पढ़ते हैं- **यह अंतर अनिवृत्तिकरण के काल के पश्चात् उदय आने योग्य निषेकों में।** समझ में आया ? अनिवृत्तिकरण का जो काल है उसमें जितने निषेक शेष हैं वे तो रहेंगे, क्योंकि उनका उदय तो उसके अंतिम समय तक चलेगा। तो उसके पश्चात् उदय आने योग्य निषेकों में **अर्थात् गुणश्रेणीशीर्ष और ऊपर के कुछ निषेकों में किया जाता है।** अर्थात् उन विवक्षित निषेकों के सभी परमाणु कुछ नीचे के तथा कुछ ऊपर के निषेकों में निक्षेपित किये जाते हैं। यह कार्य अपकर्षण और उत्कर्षण द्वारा होता है। अपकर्षण करके नीचे के निषेकों में आयेंगे और जिनका उत्कर्षण होता है तो वे ऊपर चले जायेंगे। **उस कारण वहां के निषेकों का अभाव हो जाता है। जितने निषेकों का अभाव होता है उतनी संख्या को अंतरायाम कहते हैं।** आयाम यानी लंबाई, अंतरायाम यानी अंतर की लंबाई। यानी

कितना बड़ा अंतर हुआ ? वह भी अंतर्मुहूर्त प्रमाण समयों में गिनते हैं। उतने निषेकों का अभाव हो जायेगा।

इस अंतरकरण द्वारा यह जो विधान हुआ न, उसको कहेंगे अंतरकरण। इस अंतरकरण द्वारा **निषेकों की एक अटूट पंक्ति टूटकर** अभी तक अनादि से अटूट पंक्ति थी - हर समय मिथ्यात्व का उदय भी था और जीव भी मिथ्यात्व कर रहा था। ऐसा नहीं कि कर्म के कारण जीव मिथ्यात्व कर रहा था, वह स्वयं के कारण कर रहा था और कर्मों में भी लगातार उदय चालू था। निषेकों की जो अटूट पंक्ति थी, लगातार जो निषेक थे, **दो भागों में विभाजित हो जाती है - एक प्रथम या पूर्व स्थिति और एक द्वितीय उपरितन स्थिति।** प्रथम स्थिति यानी नीचे की, अंतर के नीचे प्रथम स्थिति कहेंगे और अंतर के ऊपर द्वितीय स्थिति कहेंगे। **बीच में अंतर्मुहूर्त प्रमाण अंतर पड़ जाता है। अंतर करने का यह विधान - यह कार्य एक अंतर्मुहूर्त में पूर्ण होता है उस काल को अंतरकरण काल कहते हैं। एक स्थितिकांडकघात होने में जितना अल्प समय लगता है उतने ही काल में अंतरकरण होता है।** अभी यहां अन्य कर्मों में स्थितिकांडकघात वगैरह तो चल ही रहा है उतने ही काल में यहां एक अंतरकरण विधान पूर्ण होता है।

अंतरकरण द्वारा जिन निषेकों का अभाव किया जाता है उनके नीचे के निषेकों को प्रथम स्थिति कहते हैं। प्रथम स्थिति के निषेक अनिवृत्तिकरण के शेष काल में उदय में आकर खिर जाते हैं। अभी उसका कुछ काल बाकी है। जितना काल बाकी है उसमें ऊपर के निषेकों में उपशम किया जानेवाला है। क्योंकि अभी वे परमाणु खुले हैं, कभी भी नीचे आ सकते हैं। अभी उनमें ऐसी अवस्था हो जायेगी वे अपनी जगह नहीं छोड़ सकते उसको कहेंगे उनको उपशमित किया जायेगा। **अंतर के ऊपरवाले निषेकों को द्वितीय स्थिति कहते हैं। वहां कितने निषेक बताये ? वहां अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण निषेक हैं। प्रथम स्थिति के मिथ्यात्व कर्म के निषेक** अकेले मिथ्यात्व कर्म में अंतर हुआ है और उसके प्रथम स्थिति में जो निषेक हैं वे **प्रतिसमय उदय में आते हैं एक-एक समय में नीचे से एक-एक निषेक उदय में आकर खिर जायेगा। और वहां जीव के भी मिथ्यात्वभाव हो रहा है।** देखो, अभी अनुभाग मंद-मंद हो रहा है फिर भी मिथ्यात्व का उदय है।

मिथ्यात्व कर्म का उदय होता रहे और जीव को सम्यक्त्व प्राप्त हो जाये यह बात कभी हो नहीं सकती। उसके कारण जीव को सम्यक्त्व नहीं हो रहा है, यह बात नहीं है। परंतु वहां अगर उदय है तो यहां जीव को सम्यक्त्व हो जाये ऐसा कभी नहीं होगा। क्योंकि जीव का मिथ्यात्व परिणाम बता रहा है कि वहां मिथ्यात्व कर्म का उदय भी चल रहा है। दोनों एक साथ होते हैं। यहां सम्यक्त्व होते ही वहां मिथ्यात्व के अंतर का काल होगा। किसीके कारण किसी दूसरे में कुछ नहीं हो रहा। अभी आपने गुरुदेवश्री के प्रवचन में घंटे भर क्या सुना ? किसी एक द्रव्य के कारण दूसरे द्रव्य की पर्याय बिलकुल नहीं होती। यह मूल सिद्धान्त है न ? पंचास्तिकाय में, द्रव्यसंग्रह में; जो मूल सिद्धान्त हैं अगर उनका हम अपनी बुद्धि में निर्णय नहीं करेंगे तो समयसार पढ़ेंगे-सुनेंगे तो ऊपर-ऊपर से चला जायेगा। उसका जो मूल रहस्य है वह ग्रहण नहीं होगा। जब तक वस्तुव्यवस्था ख्याल में नहीं आती तो जीव आगे बढ़ ही नहीं सकता।

क्या कहते हैं ? देखो- **मिथ्यात्व कर्म का उदय होता रहे और जीव को यहां सम्यक्त्व प्राप्त हो जाये** ऐसा नहीं हो सकता। निमित्त कुछ नहीं कर रहा है, परंतु निमित्त बता रहा है कि अभी यहां कार्य नहीं हुआ है। ख्याल में आया ? दो द्रव्यों में भिन्न-भिन्न कार्य हो रहे हैं और निमित्त को देखकर हम इस कार्य का अनुमान लगा सकते हैं। इसके कारण वह नहीं है और उसके कारण यह नहीं है। बस सभी द्रव्य स्वयं अपने-अपने में स्वतंत्ररूप से परिणमित हो रहे हैं। जब तक जीव को यह स्वतंत्रता ख्याल में नहीं आती तब तक उसकी निमित्ताधीन दृष्टि बनी रहती है। हमें ज्ञानी नहीं मिलेंगे तो क्या होगा ? ऐसा होगा तो क्या होगा ? हमारे कर्म नहीं हटेंगे तो क्या होगा ? हम पुरुषार्थ करेंगे, वहां कर्म अंतर करना ही भूल जायेंगे तो क्या होगा ? हमारे निधत्ति का क्या होगा ? हमारे निकाचित का ? ऐसा जो कहते हैं न, उनका उसके बारे में अज्ञान है, तो वे कुछ न कुछ सोचते रहते हैं। क्यों ? अभी तक उनकी निमित्ताधीन दृष्टि - निमित्त से कार्य होता है यह मान्यता छूटी नहीं है।

अपना समय हो गया, यहीं रुकेंगे।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२६. करणलब्धि – प्रथमोपशम सम्यक्त्व

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से हम यहां पंचलब्धि का प्रकरण देख रहे हैं।

अनिवृत्तिकरण का संख्यात बहुभाग बीतने पर मात्र दर्शनमोहनीय कर्म में अंतर किया जाता है। अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन किसीमें अंतर नहीं होता है। सभी में गुणश्रेणी की रचना हुयी थी। सभी में यानी आयु बिना सातों मूलप्रकृतियों की उत्तरप्रकृतियों में, परंतु अंतर केवल दर्शनमोहनीय की एक मिथ्यात्व प्रकृति में होता है; जो सादि मिथ्यादृष्टि है उसकी दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों में अंतर होगा। हमने देखा था गुणश्रेणी कब शुरू हुयी थी ? अपूर्वकरण से। उसकी लंबाई कितनी थी ? अपूर्वकरण का काल प्लस अनिवृत्तिकरण का काल प्लस अनिवृत्तिकरण काल का संख्यातवां भाग इतनी बड़ी सातों कर्मों की अपनी-अपनी गुणश्रेणी होती है।

अब अपूर्वकरण बीत गया। अनिवृत्तिकरण का भी संख्यात बहुभाग बीत गया, एकभाग रहा। गुणश्रेणी भी उतनी गल गयी, कुछ शेष रही। ऊपर भी गुणश्रेणी का शीर्ष था। अब अंतर किसमें हुआ ? अनिवृत्तिकरण के जितने निषेक हैं उनको छोड़ो। उसके ऊपर शीर्षवाले निषेक थे और उससे भी संख्यातगुणा ऊपर के निषेकों में से कुछ परमाणु नीचे, कुछ ऊपर चले जाते हैं। नीचे यानी अनिवृत्तिकरण के जो अवशेष निषेक हैं उनमें जायेंगे, ऊपर यानी ऊपर जो अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण निषेक हैं उनमें बंधनेवाले में चले जायेंगे। तो बीच में अंतर तैयार होता है। यानी गुणश्रेणी का शीर्ष अंतर में चला गया। केवल उतना ही नहीं, उससे संख्यातगुणा ऊपर के निषेक भी अंतर में चले गये। अब जो निषेक रचना है वह कैसे दिखेगी ? नीचे के निषेकों को कहेंगे प्रथम स्थिति, फिर अंतर और ऊपर द्वितीय स्थिति। कौनसे कर्म में ? हां, यह कार्य दर्शनमोहनीय में ही होगा। ज्ञानावरणादि बाकी सभी कर्मों में गुणश्रेणी जितनी शेष है वह चलेगी।

अनंतानुबंधी आदि में अंतर वगैरह कार्य नहीं होता है। जब सम्यक्त्व होगा तब पहले समय में क्या होगा वह अलग बात है। यह अंतर का कार्य मात्र दर्शनमोहनीय में होता है। जो चौथे में जाये, पांचवें में जाये या सातवें में जाये - सबके लिये दर्शनमोहनीय

की यही अवस्था है। सम्यक्त्व होने पर जितने कषाय चौकड़ी का अनुदय होगा, उनका अप्रशस्त उपशम होगा। दर्शनमोहनीय में जो उपशम होने जा रहा है उसका नाम है प्रशस्त उपशम। अंतर के ऊपर द्वितीय स्थिति में अभी जो उपशम होनेवाला है उसको कहेंगे प्रशस्त उपशम और अनंतानुबंधी में जो होनेवाला है वह है अप्रशस्त उपशम। उसीको सदवस्थारूप उपशम कहते हैं। यानी वे अपनेरूप से उदय में नहीं आयेंगे, एक-एक निषेक अन्यरूप से उदय में आयेगा।

श्रोता: करणलब्धि में प्रवेश करनेवाला जीव अगर सिर्फ अधःकरण या अपूर्वकरण मांडकर अनिवृत्तिकरण तक नहीं गया तो वापस मिथ्यात्व में आता है ? बिलकुल नहीं आता। करणलब्धि में आ गया तो अभी सम्यक्त्व लेकर ही रहेगा - ना उसका मरण होगा, ना वह मिथ्यात्व में आयेगा। *श्रोता: दर्शनमोहनीय के जो विवक्षित निषेक कहे वे क्या जिनका अनुभाग हीन है वे होते हैं ?* नहीं क्योंकि अनुभागसत्त्व सभी निषेकों में से घट गया है। जघन्य से यथायोग्य जितना अनुभाग वहां सत्ता में पड़ा है, वह सभी निषेकों में होता है। ऐसा नहीं कि नीचे के निषेकों में कम अनुभाग है, ऊपर ज्यादा अनुभाग है - ऐसा बिलकुल नहीं है।

श्रोता: लास्ट में बंधे हुये मिथ्यात्व कर्म का उपशम होता है ऐसा आपने कहा तो वे कब तक उपशमित रहेंगे ? जब तक सम्यक्त्व चल रहा है तब तक। बाद में सब नीचे आयेंगे। फिर अंतर भर दिया जायेगा, तीन में से किसी एक प्रकृति का उदय शुरू होगा। *श्रोता: कभी न कभी तो उदय में आयेंगे ?* जब तक सम्यक्त्व है तो मिथ्यात्व के परमाणु अपनेरूप से उदय में नहीं आयेंगे। भले उपशम छूट गया, उसके बाद क्षयोपशम सम्यग्दर्शन हो जायेगा तो सम्यक् प्रकृति का उदय होगा। बाद में क्या होता है उसकी चर्चा हम आगे करेंगे। प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में मिथ्यात्व में से तीन प्रकृतियां तैयार होती हैं। अंतर्मुहूर्त बीत गया और उपशम छूट गया तो तीन में से जिसका उदय है उसकी उदयावली से नयी निषेक रचना तैयार होगी। अंतर में जहां निषेक नहीं थे वहां दुबारा निषेक तैयार होंगे। परंतु वह विषय बाद में देखेंगे।

श्रोता: मिथ्यात्व मोहनीय का जो कोई कार्य होता है उसके साथ अनंतानुबंधी का कार्य होता है ? अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय तक अनंतानुबंधी का तो केवल उदय होता है। उसमें ना कोई उपशमित करने का कार्य हुआ है, ना कोई अंतर का

कार्य हुआ है। जब सम्यक्त्व होगा तब उसका उदय रुकेगा बस इतना ही कार्य है। पांचवें में जानेवाले के अनंतानुबंधी और अप्रत्याख्यानावरण दोनों का ही उदय रुक जायेगा।

श्रोता: चारों गति में ध्यान बिना सम्यक्त्व प्राप्त हो सकता है ? ध्यान किसको कहना, पहले यह निश्चित करो। *श्रोता: शुद्धात्मा में जो एकाग्रता है ?* शुद्धात्मा में जो एकाग्रता है वही ध्यान है। हम विकल्प को ध्यान कहने लगे हैं। हम ध्यान करने को बैठे तो क्या करते हैं बोलो ? मैं शुद्ध हूं, मैं बुद्ध हूं - यह ध्यान नहीं है, यह विकल्प है और विकल्प है वह शुभभाव है। जब तक शुभभाव है तब तक आत्मा का ध्यान नहीं है। यह सविकल्प ध्यान है परंतु वह शुभभाव है। विकल्प करते-करते निर्विकल्प नहीं हो सकता। विकल्प की भूमिका भले हो सकती है परंतु जिस ध्यान में आत्मा का अनुभव होता है वह ध्यान विकल्पात्मक नहीं है। मैं निर्विकल्प हूं ऐसा कहते तो हैं परंतु उसका अर्थ भी भासित नहीं होता है। अर्थ भासित नहीं होता, भावभासन नहीं है और केवल उन शब्दों का रटन-जल्प चलता है। भले स्वयं करे या कोई आपको ध्यानसूत्र बतावें और आप उस पर विचार करें परंतु वह तो मतिज्ञान का भेद है। वह तो इन्द्रियज्ञान चल रहा है या मन से चल रहा है या सुनकर चल रहा है। वह उपयोग आत्मा की तरफ नहीं है। उपयोग विकल्प की तरफ है।

विकल्प आपके ज्ञान का श्रेय है। आत्मा आपके ज्ञान का श्रेय नहीं हुआ तब तक आत्मा का ध्यान नहीं कहेंगे। आत्मा का ध्यान नहीं, वह विकल्प का ध्यान चल रहा है। किसमें स्थिर है ? विकल्प में स्थिर है। आत्मा में स्थिर होने की बात है। रागरहित ऐसा जो शुद्धात्मस्वभाव है उसमें स्थिरता की बात है। नारकी हो या देव हो - जिस काल में उसको आत्मानुभूति होती है तब शुद्धात्मा में स्थिरता के बिना होगी ही नहीं। ध्यान अवस्था में ही निश्चय और व्यवहार दोनों उत्पन्न होते हैं। द्रव्यसंग्रह की गाथा ४७ है न - 'दुविहं पि मोक्खहेउं ज्ञाणे पाउणदि जं मुणी णियमा॥' निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग दोनों ही ध्यान अवस्था में प्राप्त होते हैं। चौथे गुणस्थानवाले को भी ध्यान अवस्था में ही आत्मा की प्राप्ति होती है; आत्मा में यानी जिसको शुद्धात्मा कहा है। शुद्धात्मा किसको कहा है ? पर्याय में राग है परंतु रागरहित ऐसा जो शुद्धस्वभाव है उसमें अभेद एकाग्र होने पर - मैं ऐसा हूं, वैसा हूं यह विकल्प भी छूट जाते हैं। हमने आमरस की बात बतायी थी कि नहीं बतायी थी ? नहीं बतायी ? सामने आम रखकर

या आमरस रखकर यह कितना पीला है, कितना मीठा है, कितना सुंदर है - ऐसा आप विकल्प करते बैठते हैं क्या ? या गटक-गटक पीते हैं ?

आत्मा के बारे में विकल्प में रुक जाते हैं। विकल्प में रुके हैं तब तक आत्मा का निर्विकल्प ध्यान नहीं है; तब तक आत्मा का अनुभव भी नहीं होगा। हां, विकल्प सहज छूट जायेंगे, हमने गलत माना है कि विकल्प करने से आत्मा का ध्यान होगा। हम ध्यान के नाम पर क्या करते हैं ? किसीने मुझे पूछा ध्यान कैसे करना ? कैसे विकल्प करना ? मैंने बोला अभी विकल्प कि क्या आवश्यकता है ? आपको विकल्प का आधार क्यों लेना है ? निर्णय हो चुका है न, अभी विकल्प की क्या आवश्यकता है ? अभिप्राय में कहीं पड़ा है कि विकल्प करते-करते मुझे आत्मा का अनुभव होगा। अरे, शांत हो जाओ न ! सभी प्रकार से निर्णय हो चुका न, अभी यह अंदर ही अंदर विकल्प उठाने की कोशिश करता है। अभी अभिप्राय में पड़ा है कि मैं यह विकल्प करूंगा तो मुझे ध्यान हो रहा है और इसलिये मुझे अनुभव होगा। स्थिरता की बात रह जाती है - स्थिर होने की बात छूट जाती है। विकल्प में तो उसके अभी तक अस्थिरता ही है।

वह रागभाव है, शुभभाव है। उस शुभ राग का लक्ष है, वहां आत्मा का लक्ष नहीं है। ध्यान बिना सम्यक्त्व नहीं होगा परंतु कौनसा ध्यान ? सविकल्प ध्यान की बात नहीं है। जिस काल में स्वयं तत्त्वविचार में मग्न है वहां बाह्य इन्द्रियों का लक्ष छूट गया है। जो सविकल्प ध्यान होता है या जो सामूहिक ध्यान की जो कुछ प्रेरणा वगैरह दे रहे हैं उस ध्यान के काल में आत्मा का अनुभव नहीं होगा। हां, वह छूटकर होगा, उसका लक्ष छूटकर होगा। जो बोल रहे हैं उसका भावभासन होगा तो छूटकर होगा। परंतु तत्त्व का अभ्यास नहीं है, तत्त्व का निर्णय नहीं है, देव-गुरु-शास्त्र का निर्णय नहीं है और बस हमने ध्यान का क्लास अटेंड किया और हमें बहुत शांति हुयी। उस शांति से कुछ लेना-देना नहीं है। ऐसी भ्रमणा चल रही है न ? बहुत चल रही है।

श्रोता: ज्ञानावरणादि कर्म बंधन का कारण मोहनीय कर्म है, दर्शनमोहनीय के उदय और बंध के अभाव में ज्ञानावरणादि कर्मों का बंध रुक जाता है ? देखो, मोहनीय कर्म कहा, दर्शनमोहनीय नहीं कहा। ज्ञानावरण कर्म का बंध कौनसे गुणस्थान तक है ? दसवें तक है। पहले मिथ्यात्व गुणस्थान से ही दर्शनमोहनीय का बंध रुक गया है, उदय भी रुका है परंतु अभी पूरा चारित्रमोहनीय पड़ा है। चारित्रमोहनीय के सूक्ष्मलोभ

का उदय दसवें तक है, वहां भी ज्ञानावरणादि का बंध है। श्रोता: अबुद्धिपूर्वक है न ? क्या अबुद्धिपूर्वक ? शुद्धोपयोग के काल में अबुद्धिपूर्वक है। बाकी तो चल ही रहा है न। अभी तो अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण वगैरह का उदय चल रहा है। बुद्धिपूर्वक का अर्थ होता है अपने ख्याल में आते हैं, अबुद्धिपूर्वक का अर्थ है शुद्धोपयोग में राग का लक्ष छूट गया है। अभी शुद्धात्मा का लक्ष किया है परंतु वहां राग है कि नहीं है ? अभी मिथ्यादृष्टि है तो मिथ्यादृष्टि के योग्य वहां बंध वगैरह सब चल रहा है। ज्ञानावरण की पांचों, दर्शनावरण की नौ, अंतराय की पांचों बंध रही हैं। अभी भी मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, हास्य, रति, पुरुषवेद भी बंध रहे हैं। अघाति भी बंध रहे हैं।

जब चौथे में जायेगा तो यथायोग्य प्रकृतियों का बंध रुकेगा परंतु ज्ञानावरणादि का नहीं रुकेगा। कौनसी प्रकृतियों का बंध रुकेगा उसका हिसाब हम आपको बतायेंगे। हमने इकतालीस प्रकृतियों का बंध रुकता है वह बात जो कभी बतायी थी - बंधव्युच्छिति - उतना बंध रुकेगा परंतु यहां अनिवृत्तिकरण में यथायोग्य बंध चल रहा है। यथायोग्य क्यों कहा ? प्रायोग्यलब्धि में कुछ बंध रुके थे आपको याद होगा। अभी तक वैसी ही अवस्था है परंतु शेष प्रकृतियों में से अभी मनुष्य है तो देवगति वगैरह बांध रहा है। नामकर्म की प्रकृति भी बंधेगी। ज्ञानावरण की ५, दर्शनावरण की ९, मोहनीय की मिथ्यात्व, १६ कषाय और भय-जुगुप्सा कुल १९, अंतराय की ५, नामकर्म की ९ ये सब ध्रुवबंधी है। ध्रुवबंधी का अर्थ है हर समय बंधती रहती हैं जब तक बंधव्युच्छिति नहीं होगी। वे सभी यहां बंध रही हैं। अप्रशस्त कुछ प्रकृतियों का बंध रुका है, सभी का नहीं रुका है। आयु बिना सभी कर्मों का बंध हो रहा है।

अगर हम शुद्धोपयोग यानी आत्मा की अनुभूति के काल में बंध नहीं मानेंगे तो पूर्ण वीतरागी मानना पड़ेगा। ख्याल में आयी न बात ? यह तो प्राथमिक भूमिकावालों को कहते हैं कि वह आत्मा में लीन है तो राग नहीं हो रहा है। अरे, राग नहीं हो रहा है यानी राग का लक्ष नहीं हो रहा है। परंतु वहां राग है। जीव ने उसका लक्ष छोड़ा है और अपने शुद्धात्मा का लक्ष किया है। परंतु अभी वहां अनंतानुबंधी भी है तो बाकी तीन भी हैं। जब सम्यक्त्व होगा तब अनंतानुबंधी का उदय नहीं है। जीव के परिणाम भी नहीं हैं। परंतु वहां अन्य तीन कषाय हैं।

पृष्ठ १४०, दूसरा पैरेग्राफ- **अंतरकरण होने के पश्चात्** यानी अभी अंतरकरण

कर लिया। दर्शनमोहनीय की निषेक रचना कैसी दिखती है ? प्रथम स्थिति और दूसरी स्थिति, बीच में अंतर है। **अनिवृत्तिकरण के काल में ही** यानी अभी अनिवृत्तिकरण के कुछ निषेक बाकी हैं, कुछ काल बाकी है। **द्वितीय स्थितिवाले मिथ्यात्व के निषेकों का उपशम किया जाता है** प्रथम स्थिति तो उदय में आकर नष्ट होनेवाली है। प्रथम स्थिति में ही हम उपशम करेंगे तो क्या होगा ? ऐसा नहीं हो सकता। अंतर के ऊपर द्वितीय स्थिति में अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण निषेक पड़े हैं। उनमें से पहली फालि, दूसरी फालि, तीसरी फालि ऐसे करते-करते उपशमने का कार्य चल रहा है। जब तक नीचे के निषेक पूरे गलते हैं उतने ही समयों में द्वितीय स्थिति के सारे निषेक उपशमित होते हैं। **अर्थात् उनकी उदीरणा या उदय होकर वे जल्दी उदय में न आ सके इस योग्य किये जाते हैं।**

पहले क्या होता था ? अपकर्षण होकर नीचे आते थे। अभी उदय किसका चलेगा ? प्रथम स्थिति का। ऊपर द्वितीय स्थिति के निषेकों में से एक-एक फालि का उपशम चालू हो जायेगा। उपशम होने के बाद क्या होगा ? वे वहीं पड़े रहेंगे। उनमें से नीचे आना, उदय में आना आदि कुछ नहीं हो सकेगा। अभी अनिवृत्तिकरण का जितना काल बाकी है उतने ही काल में उपशम का कार्य पूरा हो जायेगा। अब **उपशमकरण:- दर्शनमोहनीय कर्म में अंतर करने पर द्वितीय स्थितिवाले निषेक अर्थात् मिथ्यात्व प्रकृति के परमाणु उदय आने के अयोग्य किये जाते हैं इसे उपशमकरण कहते हैं।** करण यानी करना, उपशम का कार्य करना। जिस तरह हमने गुणसंक्रमण में देखा था कि प्रतिसमय असंख्यातगुणा द्रव्य संक्रमित होता है - गुणित प्रमाण में संक्रमण यह उसका अर्थ था।

अभी यहां उपशम करने का कार्य कैसे होगा ? गुणित प्रमाण में। एक समय में जितने परमाणु उपशमित होंगे, दूसरे समय में उससे असंख्यातगुणे, तीसरे समय में उससे असंख्यातगुणे उपशमित होंगे। **उसीतरह यहां भी प्रतिसमय असंख्यातगुणा द्रव्य परमाणुओं को द्रव्य कहेंगे। उपशमित किया जाता है।** उसका अर्थ क्या ? **उदय या उदीरणा के अयोग्य किया जाता है।** उदय यानी नीचे का एक-एक निषेक उदय में आता है; अपकर्षण करके उसमें जो मिलते हैं उसको भी उदय कहेंगे। ऊपर के निषेकों में से स्थिति घटकर जो उदयावली में प्रवेश करते हैं उसको कहेंगे उदीरणा। जिसका उदय होता है उसीकी उदीरणा हो सकती है। तो यहां द्वितीय स्थिति

में से ना उदीरणा होगी, ना उदय होगा। तो उन परमाणुओं का क्या होगा ? उपशमित होकर वहीं के वहीं ऐसे ही बने रहेंगे। जैसे हमने देखा न, कांडकघात फालि में नीचे आता है। यह भी फालि में उपशमित होगा। एक फालि उपशमित हुयी, दूसरी हुयी, तीसरी हुयी तो सारे ऊपर के जो निषेक हैं उनमें सभी परमाणु उपशमित हो जायेंगे।

इस उपशमविधान में अर्थात् उपशमकरण में द्वितीय स्थिति के मिथ्यात्व के परमाणुओं को एक समय में कितने उपशमित होते हैं ? उसका प्रमाण कैसे निकालना ? जिस संख्या से भाग देते हैं उसका नाम है गुणसंक्रमण भागहार संख्या से भाग देकर जो संख्या आती है उतने परमाणु प्रतिसमय उपशमित किये जाते हैं। प्रत्येक समय में असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा द्रव्य उपशमित किया जाता है और इसप्रकार एक अंतर्मुहूर्त काल में द्वितीय स्थिति का सभी द्रव्य - सभी परमाणु उपशमित किये जाते हैं। अभी जो सम्यक्त्व होना है वह कौनसा है ? प्रथमोपशम सम्यक्त्व। द्वितीय स्थिति के सारे परमाणु उपशमित हुये और बीच में अंतर है। अभी एक-एक करके प्रथम स्थिति के निषेक गल जायेंगे और अंतर का काल आयेगा। अब मिथ्यात्व उदय में नहीं आ सकता। जीव के भी अभी सम्यक्त्व के परिणाम होंगे और वहां मिथ्यात्व का उदय भी नहीं रहेगा। **इस काल को उपशमकरणकाल कहते हैं। इसीको उपशम विधान भी कहेंगे, उपशम का काल कहेंगे - उपशमकरणकाल कहेंगे। सम्यक्त्व होने पर उसको औपशमिक सम्यक्त्व कहेंगे। परंतु उपशमने का कार्य कब किया ? उसके पहले। पहले अंतरकरण किया। अंतरकरण का एक अंतर्मुहूर्त बीत गया उसके बाद उपशमकरण कर दिया। ख्याल में आती है न बात ? इसीको उपशम विधान कहेंगे।**

प्रथम स्थिति में प्रथम यानी अंतर के नीचे दर्शनमोहनीय कर्म के जितने निषेक हैं उतने समय तक अर्थात् अनिवृत्तिकरण के शेष काल में अंत समय तक यह उपशमविधान होता रहता है। नीचे का एक-एक निषेक गलता रहता है, ऊपर के अधिक-अधिक परमाणु उपशमित होते चले जाते हैं। यहां अंतिम निषेक का गलने का समय और वहां अंतिम लॉट उपशमित होने का काल एक ही होगा। ऊपर सारे उपशमित होंगे और नीचे का अंतिम निषेक उदय में आयेगा। **इस काल में मिथ्यात्व कर्म की गुणश्रेणी नहीं होती** क्या कहा ? गुणश्रेणी का अर्थ क्या था ? ऊपर से अपकर्षित होकर गुणित प्रमाण में दिया जाता था। यहां अनिवृत्तिकरण में जब

दर्शनमोहनीय में अंतर किया था तब गुणश्रेणीशीर्ष अंतर में चला गया था। पहले जो अधिक परमाणु देकर गुणश्रेणी बनी थी वह तो शेष है वहां परंतु उसमें गुणित प्रमाण में और एक्स्ट्रा द्रव्य नहीं दिया जा रहा है क्योंकि ऊपर से नीचे आना वगैरह बातें बंद हो गयी हैं।

यहां गुणश्रेणी नहीं होती का अर्थ क्या है ? गुणश्रेणी में और नया द्रव्य नहीं दिया जायेगा। अधिक-अधिक-अधिक परमाणुओं की जो ऑलरेडि गुणश्रेणीरूप से रचना हुयी थी वह क्रम से उदय में आकर खिर जायेगी। अब यहां मिथ्यात्व कर्म में गुणश्रेणी नहीं हो रही **परंतु आयु बिना अन्य सब कर्मों की गुणश्रेणी होती रहती है।** उनकी गुणश्रेणी कितनी बड़ी थी ? अनिवृत्तिकरण के भी आगे और थोड़ी थी। अन्य कर्मों में कोई अंतर नहीं किया है। उनमें ऊपर का अपकर्षण होना, नीचे देना वह सब चल रहा है। यानी यहां उनकी अधिक निर्जरा चालू है। **पूर्व में जो मिथ्यात्व कर्म में गुणश्रेणी रचना हुयी थी उनका एक-एक निषेक उदय में आकर खिरता रहता है।** देखो- **इसतरह जब तक उपशम विधान द्वारा** यानी उपशम करने का कार्य जो हो रहा है उसको कहेंगे उपशम विधान। **द्वितीय स्थिति के मिथ्यात्व द्रव्य को उपशमित करने का कार्य होता रहता है,** होता रहता है क्यों कहा ? इसमें यथायोग्य अंतर्मुहूर्त लगता है। **तब तक प्रथम स्थिति के मिथ्यात्व के निषेकों का उदय होता रहता है।** यह समझ में आता है न ? यह भाषा हमें ख्याल में आती है कि नहीं ? प्रथम स्थिति में कुछ निषेक हैं उनका एक-एक का उदय होता रहता है और ऊपर में जो पड़े हैं उनका एक-एक लॉट उपशमित हो रहा है। **उपशम विधान के काल में जीव सासादन गुणस्थान को प्राप्त नहीं होता** यह सासादन गुणस्थान क्या होता है ?

औपशमिक सम्यग्दृष्टि जिसका मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व सब उपशमित हो गये हैं, उनका तो उदय नहीं आ सकता; अनंतानुबंधी का उपशम किसतरह हुआ है ? उसके निषेक तो लगातार थे और दूसरा निषेक जब नीचे पहले नंबर पर आता है तब वह अप्रत्याख्यानावरणादिरूप होकर उदय में आता है जिसको सदवस्थारूप उपशम या अप्रशस्त उपशम कहेंगे। तो औपशमिक सम्यक्त्व होने के पश्चात् मिथ्यात्व का उदय नहीं आ सकता, परंतु कुछ काल के बाद अभी औपशमिक सम्यक्त्व का काल पूरा होने में एक समय से लेकर छह आवली काल बाकी है - उतने काल में अनंतानुबंधी का उदय हो सकता है। तब जीव सासादन में जाता है। सासादन कैसा

गुणस्थान है ? अनंतानुबंधी का उदय है इसलिये सम्यक्त्व तो छूट गया है परंतु अभी मिथ्यात्व नहीं हुआ क्योंकि मिथ्यात्व उपशमित पड़ा है।

सासादन गुणस्थान उपशम विधान में नहीं होता। क्यों ? उपशम विधान कब होता है ? सम्यक्त्व होने के पूर्व में होता है। उस समय मिथ्यात्व का भी उदय है और अनंतानुबंधी का भी उदय है गुणस्थान पहला है - यहां सासादन नहीं हो सकता। पहले गुणस्थान से कोई दूसरे में नहीं जाता है। हां, दूसरे से गिरकर पहले में आयेगा। उपशम विधान यानी उपशम का कार्य चल रहा है उस काल में सासादन नहीं होगा। औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त किया, बाद में सासादन में आ सकता है यह उसका अर्थ है। फिर से देखो- **उपशम विधान के काल में जीव सासादन गुणस्थान को प्राप्त नहीं होता।** लब्धिसार की गाथा ९९ में उपशमकरण करनेवाले की कुछ विशेषता बतायी है।

उवसामगो य सव्वो णिवाघादो तहा णिरासाणो।

उवसंते भजियव्वो णिरासणो चेव खीणम्हि॥९९॥

इसका अर्थ होता है **सर्व ही दर्शनमोह का उपशम करनेवाला** करनेवाला का अर्थ क्या है ? उपशमित करने का कार्य हो रहा है वह जीव। अभी अनिवृत्तिकरण के अंत में वह उपशमित करने का कार्य कर रहा है। शुरू से उसको उपशम करनेवाला कहेंगे। उपशमकरण अंत में होता है। उपशम करनेवाला **जीव निर्व्याघात अर्थात् विच्छेद यानी मरण से रहित है**, यानी करणलब्धि के परिणाम में कोई जीव मरेगा नहीं। **निरासादक अर्थात् सासादन को प्राप्त नहीं होता।** क्योंकि अभी मिथ्यात्व का उदय है। सासादन कैसी अवस्था है ? अनंतानुबंधी का उदय हो और मिथ्यात्व का उदय न हो - यहां वह बात नहीं हो सकती। तो कहते हैं निरासादक यानी सासादन को प्राप्त नहीं हो सकता। **उपशम होने के पश्चात्** यानी जब औपशमिक सम्यग्दृष्टि हो जाये, **उपशम सम्यक्त्वी हो जाये तब भजनीय है** - भजनीय यानी उसकी शक्यता है। **कोई जीव सासादन को प्राप्त नहीं होता, तो कोई जीव सासादन को प्राप्त होता है।**

यह जरूरी नहीं कि औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त होने के बाद सासादन में गिरना ही चाहिये, यह भजनीय है। **पुनश्च क्षीणे अर्थात् औपशमिक सम्यक्त्व का**

काल पूर्ण होने पर सासादन नहीं होता। क्योंकि अगर औपशमिक सम्यक्त्व का काल पूर्ण हो जाये तो जो परमाणु उपशमित थे उनका उपशम छूट जायेगा और अनंतानुबंधी का उदय होता है तो उसके साथ-साथ मिथ्यात्व का भी हो जायेगा तो जीव सीधा पहले गुणस्थान में आ जायेगा। उसके लिये अन्य भी शक्यतायें यानी विकल्प हैं - सम्यक् प्रकृति के उदय के साथ उसका सम्यक्त्व बना रहेगा। या सम्यग्मिथ्यात्व के उदय से तीसरे गुणस्थान में जायेगा। यहां कहते हैं कि इस उपशमकरण काल में उसको सासादन नहीं होगा, मरण भी नहीं होगा।

अभी हम पढ़ रहे थे पृष्ठ १४१, तीसरी लाइन फिर पढ़ते हैं- **उपशम विधान के काल में** उपशम विधान चल रहा है यानी अभी औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त नहीं हुआ है, उसके पूर्व की बात है। **जीव सासादन गुणस्थान को प्राप्त नहीं होता कारण** उसके मिथ्यात्व का उदय है और गुणस्थान भी पहला है, जबकि सासादन में आनेवाला जीव औपशमिक सम्यक्त्व में से भ्रष्ट होकर अनंतानुबंधी के उदय से सासादन सम्यक्त्व नामक दूसरे गुणस्थान में आता है। यानी सम्यक्त्व में से भ्रष्ट होकर आता है, अभी तो वह सम्यग्दृष्टि भी नहीं हुआ है यह कहना चाहते हैं। **अनिवृत्तिकरण के अंत समय में प्रथम स्थिति का अंतिम निषेक खिर जाता है** अंतिम निषेक खिरा तो ऊपर अंतिम लॉट उपशमित हुआ। **और उसके अनंतर समय में** यानी नेक्स्ट समय में **अंतरायाम है - अंतर है।** देखो, बोर्ड पर देखना है।

नीचे से एक-एक समय में, एक-एक निषेक खिरता गया। ऊपर एक-एक लॉट उपशमित होता गया। अभी मिथ्यात्व का केवल एक निषेक बाकी है यानी मिथ्यात्व का अंतिम निषेक उदयरूप है। यहां मिथ्यात्व का नया बंध भी होगा और यह मिथ्यात्व के उदय का अंतिम समय है। यह जब खिर जायेगा और उसका अनंतर समय प्राप्त होगा तब क्या होगा ? सम्यग्दर्शन। जीव के परिणामों में भी सम्यग्दर्शन है और वहां मिथ्यात्व का उदय भी नहीं रहा। सारे उपशमित हैं न ऊपर ? यही कह रहे हैं, देखो फिर से- **अनिवृत्तिकरण के अंत समय में प्रथम स्थिति का अंतिम निषेक खिर जाता है और उसके अनंतर समय में** यानी इमीजिएट नेक्स्ट समय में **अंतरायाम है - अंतर है।** वहां तो मिथ्यात्व का निषेक ही नहीं है इसलिये मिथ्यात्व का उदय भी नहीं रहा। देखो, यहां मिथ्यात्व कर्म में उसकी निषेक रचना में अंतर हुआ है। उसी काल में बाकी सभी आठ कर्मों का उदय चल रहा है। अंतर मात्र एक दर्शनमोहनीय में पड़ा है,

बाकी सब यहां उदयरूप हैं न।

द्वितीय स्थिति में मिथ्यात्व का द्रव्य सत्ता में पड़ा है परंतु वह सर्व ही उपशमित कर दिया गया है इसकारण वहां से छूटकर अंतरायाम के काल में उदय में आ सके यह संभावना भी नहीं रही। उनमें अपकर्षण-उत्कर्षण आदि नहीं हो सकता। अभी हमने देखा सारे परमाणु उपशमित हैं तो उनका अपकर्षण होकर नीचे आ जाये, उदय में आ जाये यह नहीं हो सकता और उत्कर्षण के लिये हमेशा नये बंध का नियम है तो उत्कर्षण भी नहीं होता। सत्ता में पड़े-पड़े नीचे-ऊपर हो जाये यह नहीं हो सकता। इसलिये अनिवृत्तिकरण के अनंतर समय में अंतर का काल प्रारंभ होते ही जीव को प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। यह प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति का पहला समय है। यहां दर्शनमोहनीय कर्म में अंतरकरण और उपशमकरण द्वारा उपशम होता है और अब यहां अनंतानुबंधी का भी उदय मिटेगा। सम्यक्त्व हुआ है तो उसमें क्या होता है ? कहते हैं- अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ में अप्रशस्त उपशम होता है। जिसको सदवस्थारूप उपशम भी कहते हैं।

अनंतानुबंधी प्रकृति में अंतर नहीं पड़ता परंतु उनका उदय अप्रत्याख्यानादि अन्य प्रकृतिरूप से होता है। जो पहले से चौथे में गया है अभी उसका अनंतानुबंधी का उदय रुकेगा। उसकी निषेक रचना तो पड़ी है - जहां दर्शनमोहनीय में अंतर है वहां अनंतानुबंधी के निषेक सब पड़े हैं। जैसे क्षयोपशम में सर्वघाति स्पर्धक देशघातिरूप होकर उदय में आते थे, वैसे चौथे गुणस्थान में अनंतानुबंधी कर्म अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलनरूप होकर उदय में आयेंगे। जो पहले से पांचवें में जानेवाला है उसके अनंतानुबंधी और अप्रत्याख्यानावरण कर्म प्रत्याख्यानावरण और संज्वलनरूप होकर उदय में आयेंगे। पहले से सातवें में जानेवाले हैं उनके तीनों ही कषाय कर्म संज्वलनरूप से उदय में आयेंगे। सातवें में जानेवाले के संज्वलन के देशघाति स्पर्धकों का उदय चलेगा। कषायों में विशेषता है परंतु सबके लिये दर्शनमोहनीय की बात यही है कि उसमें अंतर है और पूरा द्रव्य उपशमित है। अंतर में उसके निषेक ही नहीं हैं और जीव को सम्यक्त्व प्राप्त हुआ है।

यहां अनंतानुबंधी में अप्रशस्त उपशम होता है। अप्रशस्त उपशमना के

द्वारा जो कर्म उपशांत होता है उसमें अपकर्षण, उत्कर्षण, संक्रमण शक्य है, केवल उदयावाली में प्रविष्ट होना शक्य नहीं है। उदयावाली में प्रविष्ट होने का अर्थ है उदीरणा। उदीरणा उसीकी होती है जिसका उदय है यह नियम है। उदीरणा होना यानी क्या ? परमाणु अपकर्षित होते हैं। हमने क्या देखा था ? जिसका अपकर्षण होता है, उदय के समय से लेकर सर्वत्र दिया जाता है। परंतु जो उदयरूप प्रकृति नहीं है; अभी अनंतानुबंधी का उदय नहीं है तो उदयावाली के जो निषेक हैं उसमें ऊपर से कुछ द्रव्य नहीं दिया जायेगा यानी उसकी उदीरणा नहीं होगी। तो क्या होगा ? क्रम से निषेक नीचे-नीचे आते जायेंगे, उदय के सन्मुख होते ही एक ही समय में अन्यरूप होकर उदय में आयेंगे। चौथे गुणस्थानवाले के अप्रत्याख्यानादिरूप से उदय में आयेंगे। यह अलग टाइप की उपशमना है। दर्शनमोहनीय में क्या देखा था ? अंतर किया था, वहां उसके निषेक ही नहीं थे। वह जो उपशमना है उसको प्रशस्त उपशम कहते हैं। यह अनंतानुबंधी का उपशम है उसको कहेंगे अप्रशस्त उपशम, उसीका दूसरा नाम है सदवस्थारूप उपशम।

श्रोता: उत्कर्षण में नया बंध चाहिये न ? यहां उत्कर्षण की कहां बात है ? उत्कर्षण में नया बंध चाहिये। अब यह चौथे गुणस्थानवाला है। चौथे गुणस्थानवाला यहां कौनसे मोहनीय कर्म का बंध कर रहा है ? श्रोता: अप्रत्याख्यानावरण। अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन और बाकी यथायोग्य नोकषाय हैं। अभी यहां अनंतानुबंधी के कुछ परमाणु नये बंधनेवाले अप्रत्याख्यानावरणादिरूप होकर ऊपर चले जायेंगे। इसरूप से उसका उत्कर्षण होगा। प्रकृति संक्रमण और उत्कर्षण के लिये यह नियम है। संक्रमण के लिये भी नये बंध की आवश्यकता है, उत्कर्षण के लिये भी। यानी वे उसरूप से ऊपर चढ़ सकते हैं। श्रोता: यहां जो उपशम काल है उसमें अनंतानुबंधी का अप्रशस्त उपशम हो गया जो आपने बताया सदवस्थारूप उपशम, तो क्षयोपशम के समय भी और यहां जो अनंतानुबंधी कर्म अप्रत्याख्यानावरण आदिरूप से उदय में आता है उनमें सिमिलैरिटी है न ? अनंतानुबंधी सर्वघाति प्रकृति है, उसका कभी भी क्षयोपशम नहीं होता। हमने मतिज्ञानावरणादि में क्षयोपशम घटित किया था। क्षयोपशम चारित्रमोहनीय के संज्वलन में घटित होगा। क्योंकि देशघाति प्रकृति में सर्वघाति, देशघाति दोनों प्रकार के स्पर्धक होते हैं उसीका क्षयोपशम होता है। अनंतानुबंधी का या तो उदय होगा या

अप्रशस्त उपशम होगा, उसमें कोई क्षयोपशम नहीं होता। ख्याल में आयी न बात ? हां, उदय के समय में अन्यरूप उदय में आना इतनी ही समानता है परंतु यहां प्रकृति ही अन्य है, स्पर्धकों की बात नहीं है।

इस रीति से अंतरायाम के पहले समय से ही दर्शनमोहनीय और अनंतानुबंधी क्रोधादि के प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग का संपूर्णतः उपशम होने से हां, किसीका तो प्रशस्त उपशम है, किसीका अप्रशस्त है परंतु उपशम का अर्थ होता है अभी कोई भी उदय में नहीं आ रहे। ना उनकी प्रकृति उदय में आ रही है, ना कोई परमाणु उदय में आ रहे हैं, ना उनका उदयरूप निषेक उदय में आ रहा है, ना उनका कोई अनुभाग का उदय है। वे पूर्ण रीति से अनुदयरूप पड़े हैं, इसलिये उसको उपशम कहा। तो कहते हैं संपूर्णतः उपशम होने से **औपशमिक तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्व प्राप्त करके** यानी तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्व और यहां उसके नाम क्या है ? औपशमिक, **जीव प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि होता है।**

अनादिकाल से प्रतिसमय मिथ्यात्व कर्म का उदय तथा जीव का मिथ्यात्व भाव चलता आया था दोनों एक साथ चल रहे थे। कर्म के कारण कर रहा था ऐसा कहीं भी नहीं आता है। ख्याल में आया ? हमने मानकर रखा है। क्या करें ? हमारे आकरे कर्म हैं। आकरा कर्म यानी हमें तकलीफ देनेवाले कर्म हैं, कर्म के कारण हम मिथ्यादृष्टि हैं, कर्म के कारण हम रखड़ रहे हैं, कर्म के कारण हम दुःखी हैं। बराबर हैं न ? अरे, वह तो जड़ है। अनादिकाल से प्रतिसमय मिथ्यात्व कर्म का उदय तथा जीव का मिथ्यात्व भाव चलता आया था, **अब उसमें रुकावट आ गयी। यहां मिथ्यात्व कर्म का उदय भी नहीं रहा और जीव के मिथ्यात्व भाव भी नहीं रहा** कर्म के कारण नहीं रहा ऐसा नहीं कहा - उसके अपने से। **अपितु सम्यक्त्व की प्राप्ति हो गयी। अब उपयोग भी शुद्ध है और परिणति भी शुद्ध है।** पहले उपयोग शुद्ध में लगा था परंतु मिथ्यात्व मंद-मंद होते-होते अंत में करण परिणाम में भी मंद होते-होते उदयरूप चल रहा था। अभी दोनों ही शुद्ध हो गये। **उपयोग अर्थात् जानन क्रिया का झुकाव और परिणति अर्थात् श्रद्धा-अभिप्राय-प्रतीति।**

करण परिणाम में उपयोग की शुद्धता के कारण क्या कहा ? करण परिणाम में ही उपयोग की शुद्धता को स्वीकार है। **अर्थात् निजशुद्धात्मा को अपने**

ज्ञान का विषय बनाकर उसीको जानते रहने से यही ध्यान कहलायेगा, अन्य विकल्परूप ध्यान की यहां बात नहीं है। फिर से- **करण परिणाम में** अभी हमने जो तीन करण परिणाम देखे हैं **उपयोग की शुद्धता के कारण अर्थात् निजशुद्धात्मा को अपने ज्ञान का विषय बनाकर उसीको जानते रहने से सहजरूप से परिणति में सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाती है।** यहां कोई खिंचाव नहीं है - उपयोग को यहां से हटाव, यहां लगाव ऐसी कोई खिंचा-तानी वहां नहीं होती। ये सभी सहजरूप होनेवाली बातें हैं। **सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्ररूपी मोक्षमार्ग का प्रारंभ होता है, अतीन्द्रिय आनंद की प्राप्ति होती है।** जीव को कैसे पता चलेगा कि उसे सम्यग्दर्शन हुआ ? उसी समय उसको अतीन्द्रिय आनंद की प्राप्ति होती है, अनुभूति होती है।

जयसेनाचार्य की भाषा में कहना हो तो निजशुद्धात्मभावनारूप हमने देखा था न, निजशुद्धात्मा की भावना यानी उसमें एकाग्र होना, उसरूप भवन। हमने भावना भायी कि ऐसा हो जाये, वैसा हो जाये वह भावना नहीं है। निजशुद्धात्मभावनारूप का अर्थ होता है उसमें एकाग्रता। **सविकल्प स्वसंवेदन ज्ञान के बल से**, कल हमने देखा था- ज्ञान को ही सविकल्प कहते हैं परंतु वह रागरहित है तो उसको निर्विकल्प कहेंगे। सविकल्प स्वसंवेदन यानी अपना ही संवेदन करता है, अपनी ही अनुभूति करता है। ज्ञान के बल से **निर्विकल्प निजशुद्धात्मानुभूति प्राप्त होती है।** यहां निर्विकल्प के दो अर्थ हैं, भेद रहित अभेद आत्मा और राग रहित आत्मा। मैं पर्याय हूं, यह द्रव्य है - ऐसा भी भेद नहीं। वहां कुछ विकल्प यानी राग भी नहीं है क्योंकि पर्याय राग रहित स्वभाव को जानती रहती है तो वहां अतीन्द्रिय आनंद प्राप्त होता है। **यहां पूर्व पर्याय का ज्ञान करवाया है।** कौनसी पूर्व पर्याय ? करण परिणाम। **ज्ञान अपने निजशुद्धात्मा को जानने में एकाग्र होता है तब उसे भेदरहित अखंड आत्मा तथा रागरहित आत्मा का अनुभव होता है।**

निर्विकल्प शब्द से दो चीजें बतायीं। कौनसी दो ? भेदरहित को भी निर्विकल्प कहेंगे। भेदरहित अखंड आत्मा क्योंकि चीज तो एक है, उसमें कोई भेद नहीं। हम समझाने के लिये भेद करते हैं परंतु है तो एक अखंड चीज। भेदरहित अखंड आत्मा और कैसा है ? रागरहित आत्मा का अनुभव। अज्ञानी अभी तक तो राग और ज्ञान को एकमेक करके जान रहा था। वह अपने को रागरूप अनुभव कर रहा था। अभी राग का लक्ष छोड़ दिया है और निजशुद्धात्मा में एकाग्र होने से उसीका अनुभव उसको

पर्याय में हो गया। यहां भावना का अर्थ एकाग्रता है, सविकल्प यह ज्ञान का विशेषण है और निर्विकल्प यह भेदरहित अभेद निजशुद्धात्मा तथा रागरहित शुद्धोपयोग का सूचक है। निर्विकल्प शब्द से दो अर्थ किये- भेदरहित अभेद को भी निर्विकल्प कहा क्योंकि विकल्प का एक अर्थ होता है भेद। विकल्प का दूसरा अर्थ होता है राग। तो निर्विकल्प का अर्थ क्या है ? जो रागरहित शुद्धोपयोग है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त हुआ, अब यहां से क्या-क्या बातें होती हैं ? अभी तक इसके पहले क्या-क्या बातें होती थी वह तो देखी। अभी तो मिथ्यात्व एक ही प्रकृति थी न और आप तीन-तीन की बात करते हैं वह कैसे होगी ? क्या होगा ? तो उसकी बात अभी चलेगी।

श्रोता: जब शुद्धात्मा का निर्विकल्प अनुभव करते हैं तब हर बार यह अंतर होता है ? जब-जब प्रथमोपशम होगा तब-तब अंतर होगा। चौथे गुणस्थानवाला है, ज्ञानी है, क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि है वह शुद्धोपयोग में अपना निर्विकल्प अनुभव कर रहा है तो वहां कोई अंतर की बात ही नहीं है। उसके तीन टुकड़े पहले से ही हो गये हैं और सम्यक् प्रकृति का उदय चल रहा है। उसका उदय तब भी चलेगा। उसमें कोई अंतर नहीं होगा। दूसरा ऐसा भी जीव है जो सम्यक्त्व से भ्रष्ट होकर मिथ्यात्व में गया है और अभी उसकी सत्ता में तीन टुकड़े हैं। उसको भी जब वेदक सम्यक्त्व प्राप्त होता है तब कुछ अंतर नहीं होता। मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व का उदय रुक जाता है यानी उनका सदवस्थारूप उपशम होता है और सम्यक् प्रकृति का उदय शुरू हो जाता है तो उसके वेदक सम्यक्त्व शुरू होता है। यह अंतर और उपशम करने का कार्य मात्र औपशमिक सम्यक्त्व में होता है।

श्रोता: तो वे सम्यक्त्व का अनुभव क्यों नहीं करते ? कब ? *श्रोता: ज्ञानी।* ज्ञानी का वैसा अनुभव कहेंगे तो निरंतर रहता है। परंतु शुद्धोपयोग जो एकाग्र उपयोग की बात होती है - शुभोपयोग हो, अशुभोपयोग हो या शुद्धोपयोग हो - उसकी मर्यादा अंतर्मुहूर्त की है। किसीको अंतर्मुहूर्त से ज्यादा शुद्धोपयोग भी नहीं हो सकता। वह उसकी मर्यादा है। भले वह सम्यग्दृष्टि है, अभी मुनिराज की भी बात है न, छठा-सातवां क्यों कहते हैं ? कोई औपशमिक सम्यक्त्व के साथ सातवें में गया। तो औपशमिक सम्यक्त्व का जो अंतर्मुहूर्त है उसी काल में हजारों बार छठा-सातवां होता है। सातवें से छठा, छठे से सातवां यानी उस एक अंतर्मुहूर्त में हजार अंतर्मुहूर्त होंगे न ? सातवें से छठे में आया यानी अभी उसकी विशुद्धि कम हो गयी कि नहीं ? फिर छठे से सातवें में

गया। तो शुद्धोपयोग लगातार कायम क्यों नहीं रहा ? यह उसकी मर्यादा है। उसमें जीव का पुरुषार्थ कम पड़ा ऐसा नहीं है, ऐसी सहज अवस्था बन जाती है।

हमने देखा न, श्रेणी में भी शुद्धोपयोग का काल छोटा अंतर्मुहूर्त है और केवलज्ञान हो जाता है। केवलज्ञान को शुद्धोपयोग नहीं कहेंगे, वह पूरा ही उपयोगस्वरूप है। इसलिये तेरहवें गुणस्थान का काल बड़ा होने पर भी शुद्धोपयोग का काल बहुत बड़ा है ऐसा कभी नहीं कहेंगे। उसकी मर्यादा अंतर्मुहूर्त की है बस उससे ज्यादा नहीं। उसमें क्या होता है ? उसमें जितना राग है वह अबुद्धिपूर्वक में जा रहा है। उसने आनंद का विशेष अनुभव किया, परंतु ज्ञायकपने की प्रतीति और उसका अनुभव तो हरसमय चल रहा है। भले वह शुद्धोपयोग में नहीं हो तो भी। राग सहित अवस्था में भी उसका राग से भेदज्ञान हर समय चल रहा है। हर समय वैसा अनुभव, उसकी वैसी प्रतीति हो रही है। अपने को ज्ञायकरूप ही फील हो रहा है। जैसे अभी वस्त्र पहने हुये किसीको वस्त्ररूप में हो गया ऐसा नहीं लगता, है न ? ऐसे ही शुभ और अशुभ के काल में भी मैं रागरूप हो गया ऐसा ज्ञानी को कभी भी नहीं लगता। इसरूप से उसकी अनुभूति चलती रहेगी। हां, परंतु विशेष अनुभव - आनंद का प्रचुर संवेदन उसको शुद्धोपयोग के काल में होता है।

श्रोता: यह शुद्धोपयोग का काल ? अभी उसकी बात बाद में करेंगे। अभी आगे बढ़ते हैं। *श्रोता: आपने बताया कि सादि मिथ्यादृष्टि जीव क्षयोपशम सम्यक्त्व कर लेता है तो उसको यह सब अंतर करने की जरूरत नहीं है ?* जरूरत नहीं यानी अंतर होता ही नहीं। *श्रोता: अंतर होता नहीं है बराबर, वहां अधःकरण और अपूर्वकरण दो ही करण करेगा ?* दो करण करेगा या बिना करण के भी सम्यक्त्व होगा क्योंकि अभी-अभी जो सम्यक्त्व में से मिथ्यात्व में आया है और बहुत छोटे काल में - अंतर्मुहूर्त में दुबारा सम्यक्त्व प्राप्त करता है वह बिना करण के भी कर लेता है। अभी उसमें बहुत सारी विशेषतायें हैं। *श्रोता: दो करण करेगा तो अधःकरण और अपूर्वकरण ?* हां, परंतु दो करण किये इसलिये उसकी विशुद्धि कम हुयी ऐसा नहीं है। उसके लिये आगम में बहुत सारे प्रूफ-प्रमाण हैं परंतु उसकी सूक्ष्मता शायद अभी आपके पकड़ में नहीं आयेगी और उसकी चर्चा यहां करने से कुछ फायदा नहीं है।

अनादिकाल से अपने मिथ्यात्व परिणाम के कारण क्या कहा ?

अनादिकाल से कर्म के कारण यह जीव संसार में भटक रहा है - ऐसा लिखा न ? बराबर है ? क्योंकि इसको आदत है न ? अपना दोष तो देखता नहीं है, उसको सामने कोई न कोई दोष का कारण तो मिलता है। क्या कहा ? अनादिकाल से किसके ? अपने मिथ्यात्व परिणाम के कारण **यह जीव** हम दूसरे की बात नहीं कर रहे, अपनी बात है। अभी मनुष्यपर्याय में आये हैं, जन्म लिया है। जन्म से तो यहां कोई सम्यग्दृष्टि है नहीं है - पंचमकाल में यहां मनुष्य या तिर्यच होकर जो जन्मता है, वह जन्म से तो मिथ्यादृष्टि है। पहले कभी सम्यक्त्व प्राप्त होकर छोड़ा होगा हमें पता नहीं, हो सकता है, शक्यता है। परंतु हम ऐसा देखते हैं कि **अनादिकाल से अपने मिथ्यात्व परिणाम के कारण यह जीव जन्म-मरणरूपी संसार में परिभ्रमण करता आ रहा है।** अभी हम मनुष्यपर्याय में हैं, अभी मोक्ष नहीं हुआ है। अभी परिभ्रमण चल रहा है।

जब विशिष्ट योग्यतावाला जीव विशिष्ट यानी अभी उसकी योग्यता है। प्रत्येक द्रव्य अपनी योग्यता से निश्चित समय पर अपनी-अपनी उस पर्यायरूप से परिणमित होता है - होता ही है। इसलिये क्या कहा ? विशिष्ट योग्यतावाला जीव **जिनेन्द्रकथित तत्त्वों का उपदेश ग्रहण करके**, ग्रहण करके यानी जानकर, यह निमित्तरूप से बताया क्योंकि देशनालब्धि तो नियमरूप से आवश्यक है। **तत्त्वनिर्णय और तत्त्वविचार करता है।** लोग यहां अटकते हैं - तत्त्वविचार करना यानी क्या ? निर्णय करना यानी क्या ? पहले तो तत्त्व यानी क्या ? मालूम तो हो। रोज सुबह यहां गुरुदेवश्री के पंचास्तिकाय विषय पर प्रवचन चल रहे हैं। छह द्रव्य क्या हैं; परिणमन व्यवस्था क्या है; गुण पर्यायों का स्वरूप क्या है; वह निमित्त, नैमित्तिक, उपादान; ये सब सिद्धान्त पहले सुनने पड़ेंगे, समझने पड़ेंगे। वे ऐसे ही हैं उसका अपनी बुद्धि के द्वारा निर्णय करना पड़ेगा। एक दो सिद्धान्त नहीं, ये तो बहुत सारे हैं।

तो कहते हैं **उपदेश ग्रहण करके तत्त्वनिर्णय और तत्त्वविचार करता है तब पांच लब्धिपूर्वक उसे प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। जीव के वृद्धिगत विशुद्ध परिणामों वृद्धिगत यानी बढ़ते हुये विशुद्ध परिणामों के निमित्त से यानी उसका तत्त्व संबंधी ज्ञान का जो निर्णय परफेक्ट होने जा रहा है तो उसकी विशुद्धि वृद्धिगत हो रही है। कर्मों में भी जो परिवर्तन होते हैं उनकी हमने चर्चा की। जीव के परिणाम जीव में होते हैं परंतु नियमरूप से कर्मों में भी परिवर्तन होते हैं। अनिवृत्तिकरण के अनंतर समय में** अभी अनंतर समय कौनसा है ? सम्यक्त्व का

पहला समय। जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है। परिणामों की विशुद्धि के कारण यहां भी जो विशेष बातें बनती हैं उसकी हम चर्चा करेंगे। अभी अनिवृत्तिकरण में तो बढ़ती हुयी विशुद्धि थी ही थी। अब सम्यक्त्व प्राप्त हुआ तो विशुद्धि एकदम घटेगी नहीं। यहां भी कुछ विशेष कार्य होंगे जिसको हम गुणसंक्रमण वगैरह नाम देंगे। पहले अपूर्वकरण में गुणसंक्रमण नहीं हुआ था, अब यहां होगा।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व के प्रथम समय से ही द्वितीय स्थिति में उपशमित किये हुये मिथ्यात्व प्रकृति का गुणसंक्रमण प्रारंभ होता है। क्या कहा ? उपशमित हुये हैं। उपशमित यानी उदय नहीं हो रहा है, अपकर्षण नहीं हो रहा है, उत्कर्षण नहीं हो रहा है परंतु उसका संक्रमण होगा। संक्रमण होगा का अर्थ क्या है ? मिथ्यात्व में जितना अनुभाग है; कितना है ? वह शैल, अस्थिवाले स्पर्धक करोड़ों अनुभागकांडकों द्वारा अनुभाग घटकर द्विस्थानगत यानी दारु के बहुभाग जैसे हुये थे क्योंकि मिथ्यात्व सर्वघाति प्रकृति है। अब उसमें से भी अनुभाग और अनंतगुणा हीन होगा तो सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति तैयार होगी जो सर्वघाति है। अनुभाग और अनंतगुणा हीन होकर सम्यक् प्रकृति तैयार होगी जो देशघाति है। उसको भी संक्रमण कहेंगे। गुणसंक्रमण नाम क्यों लिया ? एक समय में जितना द्रव्य संक्रमित होगा उसके दूसरे समय में उससे असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा संक्रमित होगा। **दर्शनमोहनीय की मिथ्यात्व प्रकृति का द्रव्य द्रव्य यानी परमाणु प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम से सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृतिरूप से परिणमता है।** समझ में आयी बात ?

मिथ्यात्व एक ही प्रकृति थी, अब दो प्रकृतियां और तैयार होंगी। कैसे ? मिथ्यात्व के कुछ परमाणु तो मिथ्यात्वरूप से ही रहेंगे, कुछ परमाणु सम्यग्मिथ्यात्वरूप होंगे और कुछ परमाणु सम्यक् प्रकृतिरूप से होंगे। यहां तक की बात समझ में आयी ? मिथ्यात्व में बहुत तीव्र अनुभाग था वह घटकर ही नयी दो प्रकृतियां तैयार हो गयी। उन सबकी स्थिति समान होगी। जितनी स्थिति मिथ्यात्व की है न – अंतःकोड़ाकोड़ी सागर, सम्यग्मिथ्यात्व की स्थिति भी उतनी अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण यानी निषेक उतने ही होंगे और सम्यक् प्रकृति के निषेक भी उतने ही होंगे। परंतु अगर परमाणु की संख्या देखेंगे; मिथ्यात्व में जो अनंत परमाणु हैं उसके असंख्यातवें भाग प्रमाण परमाणु सम्यग्मिथ्यात्व के हैं और उसके असंख्यातवें भाग प्रमाण परमाणु सम्यक् प्रकृति के हैं। अनुभाग की अपेक्षा बात करेंगे तो मिथ्यात्व के

अनुभाग से अनंतगुणा हीन सम्यग्मिथ्यात्व का अनुभाग है, उससे अनंतगुणा हीन सम्यक् प्रकृति का अनुभाग है। हमने देखा था मिथ्यात्व सर्वघाति प्रकृति है। तो उसमें दारु के बहुभागवाले स्पर्धक थे क्योंकि शैल-अस्थिवाले स्पर्धक तो नष्ट हुये थे न; शैल, अस्थिपना नहीं रहा था तो दारु के बहुभागवाले हुये थे।

अब दारु के बहुभाग स्पर्धक सर्वघाति हैं उसके नीचे दारु के एकभाग स्पर्धक देशघाति हैं। उसके नीचे लता तो उसमें है नहीं। मिथ्यात्व का जघन्य अनुभाग घटते-घटते-घटते कुछ परमाणु दारु के बहुभाग का नीचे का पोर्शन है ऐसे अनुभागवाले होंगे। वे सम्यग्मिथ्यात्व के होंगे और सम्यक् प्रकृति के कैसे होंगे ? वह दारु का एकभाग और लता ये सम्यक् प्रकृति के होंगे क्योंकि वह देशघाति प्रकृति है। सम्यक् प्रकृति नयी तैयार हुयी है, वह देशघाति प्रकृति होने पर भी उसमें सर्वघाति स्पर्धक नहीं होंगे। मात्र देशघाति स्पर्धक ही होंगे। प्रकृति ही ऐसी हीन अनुभागवाली हो गयी क्योंकि मिथ्यात्व का अनुभाग घटकर ही वह तैयार हुयी है। वह बंधनेवाली प्रकृति नहीं है। अन्य जो बंधनेवाली देशघाति प्रकृतियां होती हैं मतिज्ञानावरण वगैरह उनमें सर्वघाति और देशघाति स्पर्धक होते हैं। यह अभी स्पेशल प्रकृति तैयार हुयी है। उसमें सभी स्पर्धक देशघाति ही होंगे।

अभी यही बात हम पढ़ेंगे देखो, तीसरा पॅरेग्राफ- **प्रथमोपशम सम्यक्त्व के प्रथम समय से ही द्वितीय स्थिति में उपशमित किये हुये मिथ्यात्व प्रकृति का गुणसंक्रमण प्रारंभ होता है।** अभी यहां मिथ्यात्व की प्रथम स्थिति रही ही नहीं है क्योंकि अंतर चल रहा है। सारा मिथ्यात्व का द्रव्य द्वितीय स्थिति में पड़ा है। दर्शनमोहनीय की मिथ्यात्व प्रकृति का द्रव्य यानी परमाणु प्रतिसमय असंख्यातगुणा क्रम से सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृतिरूप से परिणमता है। परंतु अब मिथ्यात्व की गुणश्रेणी नहीं होती क्योंकि अभी मिथ्यात्व का उदय भी नहीं है, वह सारा उपशमित है। **तथा उसका स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात भी नहीं होता परंतु ज्ञानावरणादि अन्य कर्मों में यह सब होता है।** अनिवृत्तिकरण के ऊपर भी अन्य कर्मों की गुणश्रेणी अभी बाकी है जिसे हमने गुणश्रेणीशीर्ष कहा था। तो उनमें गुणश्रेणी की वैसी रचना अभी भी चलेगी। **यहां मिथ्यात्व का उदय भी नहीं है और बंध भी नहीं है।**

पूर्व में मिथ्यात्व का जो अनुभाग था उसके हजारों अनुभागकांडकघात द्वारा अनंतवां भाग अनुभाग शेष रहता है। यह पूर्व में जो हमने देखा न, अनुभागकांडकघात होते गये-होते गये; कब ? वे हमने अंतर करने के पहले से ही देखे थे। उसमें क्या हुआ था ? उसका अनुभाग घटते-घटते-घटते बहुत कम शेष रहा था। उसमें से कुछ परमाणुओं का अनुभाग उससे भी अनंतवां भाग होता है जिसे सम्यग्मिथ्यात्व कहते हैं। यह कब हुआ ? प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने पर हुआ। उसके पहले केवल मिथ्यात्व का ही अनुभाग घटते-घटते गया था। उसको मिथ्यात्वरूप से ही कहते थे। प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पहले समय में उसका अनुभाग और अनंतगुणा हीन होकर सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति और उससे भी अनंतगुणा हीन होकर सम्यक् प्रकृति तैयार होती है।

श्रोता: परंतु ज्ञानावरणादि कर्मों की सबकी गुणश्रेणी, स्थितिकांडकघात आदि सब चल रहा है ? चल रहा है - अन्य कर्मों में चल रहा है। श्रोता: प्रथमोपशम सम्यक्त्व काल तक ही यह बनेगा ? फिर बाद में ? बाद में बंद हो जायेगा क्योंकि अभी करण परिणाम तो रुक गये हैं। परंतु अभी भी विशुद्धि एकदम से हीन नहीं हुयी है। तो उनमें यह कार्य चलेगा। अभी उनका ऊपर गुणश्रेणीशीर्ष बाकी है। उसमें यह रचना चलेगी।

फिर से- उसमें से कुछ परमाणुओं का अनुभाग उससे भी अनंतवां भाग होता है जिसे सम्यग्मिथ्यात्व कहते हैं और उससे भी जिन परमाणुओं का अनुभाग अनंतवां भाग रहता है वह सम्यक् प्रकृतिरूप होते हैं। यानी उसमें दारु का एकभाग और लताभाग इसतरह से सम्यक् प्रकृति में परमाणु होंगे। श्रोता: अनुभाग कितना होता है ? सम्यक् प्रकृति में अनुभाग अनंतवां भाग होता है और परमाणु की संख्या असंख्यातवें भाग होती है। गुजराती पुस्तक में कुछ अलग लिखा है ? मैं फिर पढ़ती हूं। मैं नीचे से दूसरा पॅरेग्राफ पढ़ रही हूं, सेकंड लाइन- उसमें से कुछ परमाणुओं का अनुभाग उससे भी अनंतवां भाग होता है जिसे सम्यग्मिथ्यात्व कहते हैं और उससे भी जिन परमाणुओं का अनुभाग अनंतवां भाग रहता है वह सम्यक् प्रकृतिरूप होते हैं। बराबर है ? इसतरह मिथ्यात्व का अनुभाग अनंतगुणा हीन होकर एक मिथ्यात्व प्रकृति में से तीन प्रकृति बनती हैं- मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति। यानी कुछ परमाणु मिथ्यात्वरूप से ही रहते हैं, कुछ परमाणु सम्यग्मिथ्यात्वरूप होते हैं और कुछ परमाणु सम्यक्

प्रकृतिरूप होते हैं।

इसे ही कहते हैं कि प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में मिथ्यात्व के तीन टुकड़े हो जाते हैं। ऐसा कोई वहां हथौड़ा लेकर नहीं बैठा है कि उसके तीन टुकड़े करनेवाला है। यह सहज प्रक्रिया है। **मिथ्यात्व** का अनुभाग घटकर ये तीन अलग-अलग प्रकृतियां बन जाती हैं। देखो- **इनमें अनुभाग तो क्रमशः अनंतवां भाग-अनंतवां भाग होता है परंतु इनके परमाणुओं की संख्या क्रमशः असंख्यातवां भाग-असंख्यातवां भाग हो जाती है।** मिथ्यात्व के अनंत परमाणु थे, उस अनंत का असंख्यातवां भाग सम्यग्मिथ्यात्व के अनंत हुये; उसका भी असंख्यातवां भाग सम्यक् प्रकृति के हुये इसतरह से तीन प्रकृतियां तैयार होंगी। सबकी स्थिति समान और तीन में से उदय कौनसा चलेगा ? किसीका भी नहीं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व चल रहा है। यहां उदय किसीका भी नहीं है। उदय नहीं रहते हुये, उपशमित रहते हुये संक्रमित होने का कार्य चल रहा है। ऐसे उपशमित हैं, उदय-उदीरणा कुछ नहीं है। उत्कर्षण, अपकर्षण कुछ नहीं है परंतु संक्रमण यहां चल रहा है।

मिथ्यात्व में से दो प्रकृतियां तैयार होने का यह कार्य हर समय चल रहा है। पहले समय में जितने परमाणु संक्रमित हुये उससे द्वितीयादि समयों में असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा संक्रमित होंगे क्योंकि गुणसंक्रमण का काल चल रहा है। सम्यक्त्व में आते ही एक छोटा अंतर्मुहूर्त है उसको कहेंगे गुणसंक्रमण काल। यहां अभी भी विशुद्धि बहुत है और इस काल में उसका अन्य दो प्रकृतिरूप होने का कार्य चलेगा। बाद में विशुद्धि थोड़ी कम होगी, बढ़ेगी नहीं। अब उसको गुणसंक्रमण नहीं होगा, विध्यातसंक्रमण होगा। यानी संक्रमित होने का प्रमाण थोड़ा कम हो जायेगा, परंतु संक्रमण तो चलेगा। *श्रोता: लगातार ?* हां, वह लगातार चलेगा। मिथ्यात्व में से अन्य दो प्रकृतियां तैयार होती रहेंगी। *श्रोता: द्वितीय स्थिति के साथ तैयार होती रहेंगी ?* अभी मिथ्यात्व केवल द्वितीय स्थिति में ही है। जितने निषेक मिथ्यात्व के हैं उतने ही निषेक अन्य दो प्रकृतियों के तैयार होंगे। यानी अभी मिथ्यात्व भी अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है - सम्यग्मिथ्यात्व भी और सम्यक् प्रकृति भी। सबके निषेक समान होंगे।

अब यहीं रुकते हैं, बाकी चर्चा दोपहर में।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२७. प्रथमोपशम सम्यक्त्व

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका ढूंढारी भाषा में लिखी है। उसके आधार से हम यहां पंचलब्धि का प्रकरण देख रहे हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व का पहला समय है वहां क्या होता है उसकी बात कर रहे थे।

प्रश्नः अंतरायाम के पहले समय से ही दर्शनमोहनीय व अनंतानुबंधी क्रोधादि कर्मों की प्रकृति, प्रदेश एवं अनुभाग का संपूर्णतः उपशम होने से... यहां प्रकृति और प्रदेशबंध कैसे उपशम हुआ ? प्रदेशबंध का उपशम नहीं कहते, प्रदेशसत्त्व का उपशम होता है। सत्ता की बात है न, पहले तो अंतर किया था। अंतर के बाद द्वितीय स्थिति के सारे परमाणु उपशमित हुये थे और अंतर में कोई निषेक ही नहीं थे। तो वहां ना ही प्रदेश हैं, ना प्रकृति है, ना अनुभाग है - कुछ नहीं है। यानी परमाणु ही नहीं हैं तो उसमें कुछ होने का सवाल ही नहीं है। जब अनिवृत्तिकरण समाप्त होकर अंतरायाम में प्रवेश किया का अर्थ क्या है ? जहां अंतर किया था वहां निषेक नहीं हैं। परंतु अन्य प्रकृतियों में, अन्य कर्मों में निषेक हैं न। तो वहां जब जीव पहुंच गया तो दर्शनमोहनीय नहीं है, अनंतानुबंधी भी उपशमित हुआ है। इसलिये अन्य कर्मों का उदय है परंतु दर्शनमोहनीय, अनंतानुबंधी का किसी भी प्रकार का वहां उदय नहीं है और बंध भी नहीं है। इसलिये वहां सम्यक्त्व हो जाता है।

श्रोताः गुणस्थान संक्रमण भागहार कैसे ज्ञात करना ? शास्त्र में सारे लिखे हैं - कौनसा भागहार कितना होता है। फिर उसमें भी और कैसे गुणित प्रमाण में वह प्रमाण बढ़ता जाता है उसके सारे प्रमाण शास्त्र में लिखे हुये हैं। हां, अभी हमने देखा था कि सम्यक्त्व शुरू होता है। सम्यक्त्व होता है यानी अभी क्या हुआ है ? मिथ्यात्व कर्म पूरा उपशमित हुआ है। यहां सम्यग्दर्शन शुरू हुआ। अब उपशम अवस्था में ही मिथ्यात्व कर्म का अनुभाग अनंतगुणा घटकर सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति - दो अलग प्रकृतियां तैयार होती हैं। उपशमित हुआ यानी उदय, उदीरणा, अपकर्षण-उत्कर्षण नहीं होगा परंतु अनुभाग का संक्रमण होकर अन्य दो प्रकृतियां तैयार होंगी। शुरुआत के काल में गुणसंक्रमण होगा। प्रतिसमय असंख्यातगुणा-असंख्यातगुणा परमाणु यानी द्रव्य अन्य दो प्रकृतिरूप परिणमित होते रहेंगे। इसको कहते हैं

गुणसंक्रमण। औपशमिक सम्यक्त्व के ही शुरुआत का जो काल है उसका नाम है गुणसंक्रमण काल। उसके बाद संक्रमित होनेवाले परमाणुओं की संख्या थोड़ी कम हो जाती है उसको कहेंगे विध्यातसंक्रमण। कितने परमाणु संक्रमित होते हैं उसका हिसाब जुदा है इसलिये इसका नाम विध्यातसंक्रमण है।

अब हम पढ़ते हैं- पहले हमने क्या देखा ? ये दो प्रकृति कैसे तैयार हुयी ? अनुभाग अनंतगुणा हीन हुआ। परमाणुओं की संख्या की अपेक्षा अगर विचार करते हैं, यहां लिखा है- **इसतरह संख्या अपेक्षा- मिथ्यात्व के द्रव्य से सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य असंख्यातवां भाग और सम्यक् प्रकृति का द्रव्य उससे भी असंख्यातवें भाग होता है।** यानी मिथ्यात्व में कितने अनंत परमाणु होंगे ! उसके असंख्यातवें भाग प्रमाण परमाणु सम्यग्मिथ्यात्व के होंगे। उसके भी असंख्यातवें भाग प्रमाण परमाणु सम्यक् प्रकृति के होंगे। तीनों के निषेकों की स्थिति समान होती है। अंतःकोड़ाकोड़ी प्रमाण निषेक तो सबमें समान हैं। परमाणुओं की संख्या की अपेक्षा असंख्यातवां भाग- असंख्यातवां भाग और अनुभाग की अपेक्षा अनंतवां भाग-अनंतवां भाग होता है।

यहां लिखा है न, तथा अनुभाग अपेक्षा- मिथ्यात्व का अनुभाग पूर्व अनुभाग के अनंतवें भाग हो जाता है। परंतु फिर भी वह मिथ्यात्वरूप से ही रहता है। सम्यग्मिथ्यात्व का अनुभाग उससे भी अनंतवें भाग होता है और सम्यक् प्रकृति का अनुभाग उससे भी अनंतवें भाग प्रमाण होता है। प्रथम समय से लेकर एक अंतर्मुहूर्त काल तक मिथ्यात्व का गुणसंक्रमण होता है। मिथ्यात्व गुणित प्रमाण में अन्य दोरूप संक्रमित होता है। **प्रतिसमय असंख्यातगुणा परमाणु संक्रमित होते हैं।** औपशमिक सम्यक्त्व का काल भी अंतर्मुहूर्त, उसमें से गुणसंक्रमण का काल भी छोटा अंतर्मुहूर्त। **पहले समय में मिथ्यात्व के कुछ परमाणु सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृतिरूप परिणमित होते हैं, वहां सम्यक् प्रकृति के द्रव्य से सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य असंख्यातगुणा है।**

हमने क्या देखा था ? मिथ्यात्व के असंख्यातवें भाग प्रमाण सम्यग्मिथ्यात्व के, उसके असंख्यातवें भाग प्रमाण सम्यक् प्रकृति के परमाणु होते हैं। पहले समय में जितने सम्यग्मिथ्यात्व के परमाणु थे, दूसरे समय में सम्यक् प्रकृति के परमाणु उससे असंख्यातगुणा होंगे और उसी समय सम्यग्मिथ्यात्व के उससे असंख्यातगुणा होते हैं।

इतने अधिक प्रमाण में वह सारा संक्रमण चलता है बस इतना कहना है। देखो, दूसरे समय में मिथ्यात्व का द्रव्य जो पहले समय से असंख्यातगुणा है, उन दो प्रकृतिरूप होता है। इस कारण यानी जो द्रव्य दो प्रकृतिरूप परिणमित होनेवाला है, संक्रमित होनेवाला है। हमने देखा था प्रतिसमय असंख्यातगुणा संक्रमण होता है। पहले समय में संक्रमण किसमें हुआ ? दो प्रकृतिरूप। यानी जितना द्रव्य दो प्रकृतिरूप हुआ, दूसरे समय में उससे असंख्यातगुणा द्रव्य दो प्रकृतिरूप होगा।

दो प्रकृतियों में किस प्रमाण में बटवारा होता है ? सम्यक् प्रकृति में असंख्यातवां भाग जायेगा तो सम्यग्मिथ्यात्व में असंख्यात बहुभाग जायेगा। दूसरे समय में भी प्रपोर्शन ऐसा ही है परंतु पहले समय का सम्यग्मिथ्यात्व का जो बहुभाग था उससे भी दूसरे समय का जो सम्यक् प्रकृति का एकभाग है वह असंख्यातगुणा होता है। इतना असंख्यातगुणा द्रव्य दूसरे समय में टोटल संक्रमित होता है कि पहले समय के बहुभाग से दूसरे समय का एकभाग भी असंख्यातगुणा है। श्रोता: यह सम्यक् प्रकृति में जो भाग मिलेगा सम्यग्मिथ्यात्व से मिलेगा कि मिथ्यात्व से सीधा ? सीधा मिलेगा। सीधे दो भेद तैयार हुये हैं। नहीं तो पहले समय में सम्यग्मिथ्यात्व तैयार होता है, दूसरे समय में सम्यक् प्रकृति तैयार होती है ऐसा कहना पड़ता - परंतु ऐसा नहीं है।

दूसरे समय में मिथ्यात्व का द्रव्य जो पहले समय से असंख्यातगुणा है, उन दो प्रकृतिरूप होता है। इसकारण पहले समय के सम्यग्मिथ्यात्व के द्रव्य से दूसरे समय का सम्यक् प्रकृति का द्रव्य असंख्यातगुणा है और उससे दूसरे समय का सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य असंख्यातगुणा होता है। उससे तीसरे समय का सम्यक् प्रकृति का द्रव्य असंख्यातगुणा है और उससे तीसरे ही समय का सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य असंख्यातगुणा है। इसीप्रकार अंतर्मुहूर्त काल तक उसीका नाम क्या है ? गुणसंक्रमण के काल में सर्प की चालवत् असंख्यातगुणा क्रम होता रहता है। हम इसे अंकसंदष्टि द्वारा देखते हैं।

मान लेते हैं पहले समय में सम्यक् प्रकृति का द्रव्य १ है। उसी पहले समय में सम्यग्मिथ्यात्व का द्रव्य चारगुणा यानी ४ है। ४ और १ पांच परमाणु पहले समय में संक्रमित हुये। दूसरे समय में ६४ और १६ कितने हो गये ? ८० हो गये। पहले समय में ५ परमाणु संक्रमित हो रहे थे। दूसरे समय में ८० हुये। ८० में से बटवारा कैसे होगा ?

१६ और ६४। यानी पहले समय के ४ से दूसरे समय का १६ भी चारगुणा है और उससे उसी समय का ६४ चारगुणा है, समझ में आती है न बात ? तीसरे समय में अभी यहां ८० थे वे १२८० हो गये। *श्रोता: यह ४ असंख्यात का चिन्ह है ?* हां, असंख्यातगुणा यानी चारगुणा - हमने संदृष्टि चारगुणा मानी है। यथार्थ में वह असंख्यातगुणा है। यहां लिखा है न, असंख्यात के लिये सहनानी यानी चिन्ह ४ का अंक मानकर निम्न प्रकार समझाते हैं। चारगुणा के बदले हम कहेंगे असंख्यातगुणा है।

गुणसंक्रमण का काल समाप्त होने पर अभी भी औपशमिक सम्यक्त्व का ही काल चल रहा है। अभी गुणसंक्रमण का काल समाप्त हुआ। यह संक्रमण अल्प प्रमाण में होता रहता है, उसे विध्यातसंक्रमण कहते हैं। विध्यात अर्थात् मंद। यहां विशुद्धि मंद होने से अल्प परमाणुओं का संक्रमण होता है। इसतरह प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करके कोई जीव पहले मिथ्यात्व गुणस्थान से चौथे असंयत गुणस्थान में, कोई पांचवें देशसंयत गुणस्थान में तो कोई सातवें अप्रमत्त गुणस्थान में जाते हैं। पांचवें और सातवें गुणस्थान में जानेवाले का स्थितिसत्त्व यानी सत्ता में जो स्थिति पड़ी है वह चौथे गुणस्थान में जानेवाले के स्थितिसत्त्व के संख्यातवें भाग-संख्यातवें भाग प्रमाण रहता है। हमने देखा था उनके कांडक बड़े-बड़े होंगे। क्योंकि उनकी विशुद्धि अधिक होती है।

चौथे गुणस्थान में जानेवाला जीव मिथ्यात्व के साथ मिथ्यात्व का कैसा उपशम किया था ? प्रशस्त उपशम, अंतर करके उपशम किया था और अनंतानुबंधी का कैसा होगा ? अप्रशस्त उपशम उसको सदवस्थारूप उपशम कहेंगे। तो मिथ्यात्व के साथ अनंतानुबंधी चौकड़ी का अप्रशस्त उपशम करता है, पांचवें में जानेवाला जीव दो कषाय चौकड़ी का अप्रशस्त उपशम करता है, तो सातवें में जानेवाला जीव तीन कषाय चौकड़ी का अप्रशस्त उपशम करता है। अप्रशस्त उपशम यानी उदय में नहीं आ रहे हैं, एक समय ऊपर पड़े हैं। वे अन्यरूप होकर उदय में आते हैं। सातवें में जानेवाले का क्या होगा ? सभी संज्वलनरूप होकर उदय में आयेंगे। क्योंकि वहां अभी संज्वलन के देशघाति का उदय चल रहा है। उनके अनुदय में अनुदय यानी उनका उदय नहीं हो रहा। जीव की मंदकषायरूप विशुद्धि बढ़ती है और उसकारण स्थितिसत्त्व अधिक प्रमाण में घटता है तथा गुणश्रेणी निर्जरा भी असंख्यातगुणा होती है।

चौथे में जानेवाले की अपेक्षा पांचवें में जानेवाले की गुणश्रेणी निर्जरा असंख्यातगुणा, उससे सातवें में जानेवाले की उससे भी असंख्यातगुणा होती है। **सातवें गुणस्थान में जानेवाला जीव चौथे, पांचवें गुणस्थान में होकर ऊपर चढ़ता है यह मान्यता ठीक नहीं है यह बात इन कर्मों की अवस्थाओं से सिद्ध होती है।** हम सोलापुर गये थे, वहां कोई विद्वान मिले तो वे कहते थे चौथे, पांचवें को टच करते-करते सातवें में जाते हैं। ऐसा बिलकुल नहीं है। शुरुआत से ही उनकी ये सारी अवस्थाएँ जुदी-जुदी हैं। उनका कहना था कि जो व्रत धारण करते हैं वे नियम से सातवें में ही जाते हैं - यह जरूरी नहीं है। जीव की जितनी विशुद्धि होगी - भले बाह्य में मुनिदीक्षा भी क्यों न ली हो, यदि विशुद्धि कम है तो चौथे तक ही जायेंगे। यानी व्रत लिये इसलिये सातवें में जाने का नियम नहीं है। यह नियम विशुद्धि के अनुसार है। *श्रोता: अगर ऐसा मानेंगे तो क्या करें ?* अगर ऐसा मानते हैं तो यह मान्यता आगम से विरुद्ध होगी।

अगर व्रतों के कारण सातवां गुणस्थान आता है तो सातवें-छठे के बाद वे नीचे क्यों आते हैं ? व्रत तो चालू है फिर नीचे आने का प्रयोजन क्या है ? व्रतों के कारण ही अगर सातवां गुणस्थान आता है ऐसा मानेंगे तो व्रत तो चालू ही हैं न ? व्रतों में तो उन्होंने कोई दोष नहीं लगाया फिर भी गुणस्थान नीचे ऊपर क्यों होते हैं ? जैसी विशुद्धि होती है वैसे परिणामों के अनुसार बाह्य में मुनिदशा होते हुये भी जीव छठे से कभी-कभी पांचवें में या चौथे में आकर फिर ऊपर चढ़ सकता है। कोई मिथ्यात्व में जाकर भी फिर सातवें में आ सकता है। बाहर में व्रत तो हैं न। *श्रोता: छठे में भी नहीं आयेगा ?* छठे में तो आता है न ? उनका छठा-सातवां तो ठीक है, छठे का भी और सातवें का भी स्वरूप है व्रत का परंतु यदि व्रत के कारण ही ऊपर जाता है ऐसा मानेंगे तो यह मान्यता ठीक नहीं है। *श्रोता: कारण क्या ?* अभी तो बताया न, जितनी विशुद्धि है, जैसी अंतरंग में स्थिरता है उतनी मात्रा में वह ऊपर के गुणस्थानों में पहुंचेगा।

श्रोता: प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में चौथे से पांचवें में चढ़ नहीं सकता ? नहीं चढ़ सकता। प्रथमोपशम सम्यक्त्व का काल इतना है कि इसके काल में कोई चौथे से पांचवें में जा ही नहीं सकता यह नियम है। *श्रोता: पहले से चौथे में गया फिर पांचवें में गया ?* पांचवें में जाने के लिये वेदक सम्यग्दृष्टि होकर पांचवें में जायेगा। उसमें और अंतर्मुहूर्त चला जायेगा, डायरेक्ट नहीं जा सकता। प्रथमोपशम सम्यक्त्व के साथ पहले से पांचवें में जा सकता है परंतु चौथा हुआ और प्रथमोपशम सम्यक्त्व का काल

चलता रहे और उसी काल में पांचवें में जाये यह बिलकुल नहीं हो सकता। हां, छठा-सातवां गुणस्थान होता रहता है परंतु चौथे से पांचवां और पांचवें से सातवां बिलकुल नहीं होता। यह आगम को मान्य ही नहीं है। हां, वेदक होगा फिर अंतर्मुहूर्त जायेगा, विशुद्धि यथायोग्य होगी फिर जा सकता है। उस गुणस्थान का जो मिनिमम काल है वहां उसको रुकना ही पड़ेगा। परंतु प्रथमोपशम सम्यक्त्व के उसी काल में वह और आगे बढ़ा ऐसा कभी नहीं होगा।

श्रोता: सातवें में से छठे में आ सकता है ? मुनि का ऐसा स्वरूप ही है। छठा-सातवां गुणस्थान ऐसा हजारों बार होगा। *श्रोता: औपशमिक सम्यक्त्व के काल में ?* बिलकुल, प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में भी हजारों बार छठा-सातवां होगा, एक दो बार नहीं। *श्रोता: एक अंतर्मुहूर्त में ?* उसका वह अंतर्मुहूर्त ऐसा है; छठे और सातवें का स्वरूप ही ऐसा है कि हजारों बार छठा-सातवां-छठा-सातवां चलेगा। परंतु चौथे गुणस्थान में होते हुये ऐसा नहीं होगा। प्रथमोपशम के काल में ही चौथे से पांचवें में जाये, चौथे से सातवें में जाये ऐसा कभी नहीं होगा। हां, जो द्वितीयोपशमवाला जीव उपशमश्रेणी चढ़कर उतरता है - छठे से पांचवें, पांचवें से चौथे और फिर चौथे से पांचवें या सातवें में भी जा सकता है; वहां द्वितीयोपशम के लिये ना नहीं है। परंतु प्रथमोपशम के काल में गुणस्थानों का ऐसा परिवर्तन नहीं होता है। यानी प्रथमोपशम में पांचवें से नीचे चौथे में भी नहीं आयेगा। *श्रोता: अभी आपने जो बताया सातवें से छठे में आने के लिये क्षयोपशम की जरूरत है ?* ना-ना, प्रथमोपशम में ही छठा-सातवां, छठा-सातवां चलता है। यह मुनि अवस्था का स्वरूप ही ऐसा है।

उसीप्रकार मिथ्यात्व अवस्था में द्रव्यलिंग धारण करने मात्र से उसके सम्यक्त्व के साथ सातवां गुणस्थान ही प्रकट होता है यह बात भी सिद्ध नहीं होती। हो सकता है उसकी ना नहीं है; द्रव्यलिंग है, अधिक आत्मस्थिरता हो गयी, उसकी विशुद्धि इतनी बढ़ी है - हो सकता है। हमने देखा शुरुआत से ही उसकी विशुद्धि अलग जाति की है, अधिक होती है। हां उसके सातवां हो सकता है परंतु इतनी विशुद्धि नहीं होगी तो चौथे में जायेंगे। **तुम्हें पता ही है कि पांचवें गुणस्थान में जानेवाला जीव द्रव्यलिंगी श्रावक होना आवश्यक है** द्रव्यलिंगी श्रावक का अर्थ है अणुव्रत आदि उसने धारण किये हैं। **तथा सातवें गुणस्थान में जानेवाला जीव द्रव्यलिंगी मुनि होना आवश्यक है।** क्योंकि यथोचित द्रव्यलिंग बिना भावलिंग

प्रकट नहीं होता। वहां निमित्तरूप से बिलकुल वैसा होगा ही। हमने बहुत विशुद्धि कर ली, अभी घर गृहस्थी में हैं और सातवां गुणस्थान प्रकट होगा ? तो कहते हैं ऐसा तीन काल में नहीं होगा। सहज निमित्त-नैमित्तिक संबंध ऐसा ही होता है। ऐसा ही सुमेल पाया जायेगा।

अब प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में क्या विशेषतायें होती हैं उसे देखते हैं। प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में मरण नहीं होता यह नियम है। हमने पहले देखा था प्रायोग्यलब्धि से ही आयुबंध भी रुका था और करणलब्धि में मरण नहीं होता है। यहां दर्शनमोहनीय और अनंतानुबंधी का उपशम होने से उदय भी नहीं है तथा बंध भी रुक जाता है। परंतु आयु बिना ज्ञानावरणादि शेष प्रकृतियों की गुणश्रेणी, स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात होता रहता है कब तक ? पूरे प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में नहीं, गुणसंक्रमण काल तक। गुणश्रेणी के शीर्ष तक ये बातें होंगी। जहां तक इसका गुणसंक्रमण काल है तब तक अन्य कर्मों में गुणश्रेणी, स्थितिकांडकघात, अनुभागकांडकघात वगैरह होता रहता है। **उसके फलस्वरूप उन कर्मों की गुणश्रेणी निर्जरा होती है।** मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी का उदय रुक गया है; अन्य कर्मों में जो गुणश्रेणीरूप से रचना हुयी थी उसका उदय होगा तो उतनी निर्जरा भी होगी। चौथे गुणस्थानवाले से पांचवें और सातवें गुणस्थानवाले की निर्जरा अधिक होती है क्योंकि उसकी विशुद्धि अधिक होती है।

पांचवें गुणस्थानवाले ने सम्यक्त्व प्राप्त करने से पहले जो गुणश्रेणी बनायी थी वह अलग है। पांचवें गुणस्थान संबंधी जो गुणश्रेणी होगी वह पांचवें में जाने पर प्रकट होगी। यहां फिर नये गुणश्रेणी की रचना होगी। पांचवें गुणस्थान में गुणश्रेणी सतत होती है, जब तक वह पांचवें गुणस्थान में रहेगा तब तक वहां की गुणश्रेणी होगी ही होगी। जो पहले से सातवें में जानेवाला है उसके सम्यक्त्व संबंधी गुणश्रेणी हुयी थी; अंतर होगा, उपशम होगा। ज्ञानावरणादि की भी गुणश्रेणी होगी परंतु संयम संबंधी गुणश्रेणी सातवें गुणस्थान में जाने पर बाद में होगी। उसका प्रमाण भी यथायोग्य होगा। *श्रोता: चौथे में अटक गयी थी ?* अटक गयी थी यानी उपशम के काल में उसकी गुणश्रेणी होती है बस इतना ही। बाद में चौथे गुणस्थानवाले की गुणश्रेणी सतत नहीं रहती। पांचवें गुणस्थान में गुणश्रेणी सतत चलेगी यह उसका अर्थ होता है।

देखो- प्रथमोपशम सम्यक्त्व के प्रथम समय से ही संवर और निर्जरा प्रारंभ होते हैं। हम कहते हैं न, संवर-निर्जरा ज्ञानी के ही होते हैं। जब तक मिथ्यात्व का उदय चल रहा था, मिथ्यात्व का बंध था, अनंतानुबंधी का बंध था तब यह संवर-निर्जरा नहीं थी। हां, अधिक मात्रा में परमाणु खिर रहे थे। परंतु मिथ्यात्व का मंद उदय हो रहा था इसलिये उसका निषेध नहीं किया था। **प्रायोग्यलब्धि में ही कितनी ही प्रकृतियों का प्रकृतिबंधापसरण हुआ था।** आपको याद है कितने स्थान देखे थे ? *श्रोता: चौंतीस।* चौंतीस। जैसे अभी सूक्ष्म का बंध नहीं होगा, अपर्याप्त का नहीं होगा, एकेन्द्रिय संबंधी नहीं होगा, स्थावर का नहीं होगा। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय संबंधी बंध अभी नहीं होंगे। संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त संबंधी बंध होगा। जिस गति में है उसके यथायोग्य बंधनेयोग्य प्रकृतियां बंधेंगी। तो वह यहां भी चालू रहता है। **उनके साथ-साथ प्रथम और द्वितीय गुणस्थान में जिनके बंध की व्युच्छिति होती है उन सभी प्रकृतियों का बंध रुक जाता है - उनका संवर होता है।**

यह बंध की व्युच्छिति क्या होती है ? प्रत्येक गुणस्थान की जो कोई बंधव्युच्छिति है वह तो आगम में प्रसिद्ध है। जो प्रकृतियां मात्र पहले गुणस्थान में बंधती हैं; दूसरे, तीसरे आदि ऊपर के किसी भी गुणस्थान में वे नहीं बंधती हैं उसको कहेंगे पहले गुणस्थान की बंधव्युच्छिति। जैसे मिथ्यात्व कर्म मात्र पहले ही गुणस्थान में बंधता है, ऊपर कहीं नहीं बंधता। तो उसकी बंधव्युच्छिति कहां हुयी ? पहले में बंधव्युच्छिति हुयी। इसका अर्थ है पहले में बंधेगी, ऊपर नहीं बंधेगी। जहां बंधती है वहीं व्युच्छिति कहने की पद्धति है। नहीं समझे ? हम सब यहां देवलाली में इकट्ठे हुये हैं। क्यों सूर्याबहन आप कहां से आयी ? लंदन से आयी। हमारी बहन अमेरिका से आयी। आप कहां से आये ? कोई बँगलोर से आये, भोपाल से आये और कहां-कहां से आये। कहां मिले थे ? *श्रोता: देवलाली में।* बिछुड़े कहां ? *श्रोता: देवलाली में।* अरे, यहां तो मिले थे आप बिछुड़ने की बात कर रहे हैं ? दो पद्धति हैं कहने की- जहां हैं वहीं बिछुड़े ऐसे कहने की पद्धति है। जब यहां से दूर जायेंगे तब बिछुड़े ऐसे कहने की दूसरी पद्धति है। दो हैं न ? दो नय से ऐसा कथन आता है। बंधव्युच्छिति में क्या कहते हैं ?

जहां जिस गुणस्थान में उसका बंध है और ऊपर के किसी भी गुणस्थान में बंध नहीं है उसको कहेंगे इनकी बंधव्युच्छिति इस गुणस्थान में हुयी। जैसे मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, हुंडकसंस्थान, असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन, एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप,

सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु, ये सोलह प्रकृतियां मात्र पहले गुणस्थान में ही बंधती हैं, ऊपर कहीं भी नहीं बंधती तो उसको क्या कहेंगे ? इन सोलह प्रकृतियों की बंधव्युच्छिति पहले गुणस्थान में हुयी। अब अनंतानुबंधी आदि पच्चीस प्रकृतियां पहले और दूसरे गुणस्थान में बंधती हैं, ऊपर कहीं नहीं बंधेंगी तो उनकी बंधव्युच्छिति दूसरे गुणस्थान में कहेंगे। नीचे के गुणस्थान में बंधती है परंतु ऊपर कहीं नहीं बंधेंगी। इसका अर्थ ऐसा नहीं समझना कि दूसरे गुणस्थान से कोई जीव ऊपर जाता है। दूसरे गुणस्थान तक यानी पहले और दूसरे गुणस्थानों में बंधनेवाली जो पच्चीस प्रकृतियां हैं वे ऊपर कहीं भी नहीं बंधेंगी।

जैसे अनंतानुबंधी चार, स्त्यानगृद्धित्रिक, चार संहनन, चार संस्थान, तिर्यचगति चार, आदि प्रकृतियां मात्र पहले और दूसरे गुणस्थान में बंधती हैं, ऊपर कहीं नहीं बंधती उसको कहेंगे यह दूसरे गुणस्थान की बंधव्युच्छिति है। तीसरे गुणस्थान में कोई प्रकृति बंधने से नहीं रुकती है, वहां कोई बंधव्युच्छिति नहीं है। पहले की सोलह, दूसरे की पच्चीस इन इकतालीस प्रकृतियों का बंध पहले से जो चौथे गुणस्थान में जाते हैं उनको नहीं होगा यह उसका अर्थ होता है। अब जो पांचवें में जाते हैं तो चौथे में जिनकी बंधव्युच्छिति होती है ऐसी दस प्रकृतियां उनके नहीं बंधेंगी। तो इकतालीस और दस प्रकृतियां मिलकर इक्यावन प्रकृतियों का बंध नहीं होगा। इसतरह से हर एक गुणस्थान में कहां कितनी कौनसी प्रकृतियों की बंधव्युच्छिति होती है ये सारे नियम हैं।

केवल बंध की व्युच्छिति नहीं, उदय की भी व्युच्छिति होती है। क्योंकि एक बार सम्यग्दर्शन होने पर एकेन्द्रियादि चतुरिन्द्रियजाति का उदय नहीं होगा, सत्ता में पड़े हैं। अभी मनुष्य है, जब तक सम्यग्दर्शन चालू है, अभी सम्यग्दृष्टि कितनी ही प्रकृतियों का बंध नहीं करेगा, उनका उदय भी नहीं होगा। बंध और उदय की व्युच्छिति के जो नियम हैं, हम उनको टेबल बनाकर याद करेंगे तो बिलकुल याद हो जाता है कि कौनसे गुणस्थान में कौनसी बंधव्युच्छिति होती है, कौनसी उदयव्युच्छिति होती है। पूरा मोक्षमार्ग हमारे ख्याल में आता है कि हां, यह इस गुणस्थान में है, इस गति में है तो बस इतनी प्रकृतियों का बंध होगा, अन्य प्रकृतियों का बंध नहीं होगा। यह जीव मरकर इन पर्यायों में जा सकता है, विशिष्ट पर्यायों में नहीं जा सकता, क्योंकि उन पर्याय संबंधी प्रकृतियों की उदयव्युच्छिति हुयी है।

ये सारे नियम जब ख्याल में आते हैं तो मोक्षमार्ग का स्वरूप बिलकुल स्पष्ट हो जाता है। पहले कैसे भी कर्म क्यों न बांधे हो, अब उनका उदय उसरूप से नहीं होगा। नहीं समझे ? जैसे मिथ्यादृष्टि अवस्था में एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय जाति सभी बांधी हैं, चारों गतियों का बंध किया हुआ है। है न ? उसने मिथ्यादृष्टि के योग्य शुभ और अशुभ सभी प्रकृतियां बांधी हैं, सत्ता में पड़ी हैं। सभी एक साथ नहीं बंधती हैं। परंतु कभी न कभी बंधी हुयी उनकी कोड़ाकोड़ी सागरों की स्थिति होती है। तीर्थंकर प्रकृति और आहारकद्विक बिना बाकी सब प्रकृतियां मिथ्यात्व में बंध सकती हैं तो वे उसकी सत्ता में पड़ी रहती हैं।

अब सम्यग्दर्शन होने पर जब तक सम्यक्त्व है तब तक कितनी ही प्रकृतियों का उदय कभी भी नहीं होगा। जैसे सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, एकेन्द्रिय इत्यादि का उदय नहीं होगा। तो उसका क्या होगा ? उदय में आते-आते अन्य सजातीय प्रकृतिरूप से उदय होकर परमाणु छूट जायेंगे। यह पूरा सायंटिफिक है ही, कर्म का सायन्स ऐसा है कि घबराने की कोई जरूरत ही नहीं है न। हमने अभी तक इतना पाप किया, अभी तक हमने अपना स्वरूप नहीं जाना। अभी क्या करेंगे ? हमने क्या-क्या पाप किया होगा हमें मालूम नहीं है। तो कहते हैं रोने से कुछ नहीं होगा। आप सही बात जान लो। तो उसमें कोई भय की बात ही नहीं रहेगी।

श्रोता: सम्यग्दर्शन का काल है उस समय में सारी बंधव्युच्छिति होती है या सम्यग्दर्शन पहले जो आयु है उसमें बंधव्युच्छिति होगी ? आपका प्रश्न है बंधव्युच्छिति कब तक रहेगी ? जब तक सम्यक्त्व चालू है। अभी चौथे गुणस्थान में है तो नीचेवाली सोलह और पच्चीस प्रकृतियां उसको नहीं बंधेंगी। सम्यग्दर्शन छूट गया, मिथ्यात्व में गया तो सभी प्रकृतियां बंधना चालू हो जायेंगी। ऊपर के गुणस्थानों में गया तो और कुछ प्रकृतियों की बंधव्युच्छिति होगी। मिथ्यात्व में जाने पर फिर पहले जैसे भवचक्र चालू हो जाता है। कोई भी प्रकृति बांधकर कहीं भी एकेन्द्रियादि में भी वह जन्म लेगा। भले कभी उसने सम्यक्त्व प्राप्त किया था, कभी मुनि भी हुआ था, परंतु यदि मिथ्यात्व में चला जाये तो मिथ्यात्व गुणस्थान में रहते हुये यथायोग्य परिणाम होंगे। वैसे कर्म बंधेंगे उसके अनुसार उस पर्याय में जन्म लेगा। परिणामों के अनुसार कर्म बंधते हैं और जैसे कर्म बांधेगा उसके निमित्त से वैसी पर्याय में चला जायेगा।

श्रोता: पहला ही गुणस्थान है और व्रतादि धारण करते हैं तो भी एकेन्द्रियादि पाँचों जाति का बंध अंतर्मुहूर्त में बदल-बदलकर होगा ? बंध होगा क्योंकि भले व्रतादि ग्रहण किये हैं परंतु सम्यक्त्व नहीं हुआ है। मिथ्यात्व में है और वहां मिथ्यादृष्टि के योग्य हीनाधिक संक्लेश तो होंगे। मिथ्यादृष्टि जीव में प्रकृतिबंध के नियम हैं। चार गति नामकर्म की बात करते हैं तो किसी भी गति के बंध में अंतर्मुहूर्त से ज्यादा अंतर नहीं पड़ता। एक होता है काल - कितने काल तक लगातार बंधती है ? एक होता है अंतर यानी किसीने नरकगति बांधी और रुक गया तो दुबारा उसकी नरकगति कितने काल में बंधेगी ? दो-चार घंटे नहीं चले जायेंगे, नियम से अंतर्मुहूर्त में बंधेगी ही। गुणस्थान पहला है, बाह्य में कुछ भी व्रतादि धारण किये हैं उससे कुछ लेना-देना नहीं है।

प्रकृतिबंध के अंतर, प्रकृतिबंध के काल, एक साथ कौनसी प्रकृतियां बंधती हैं उसको सन्निकर्ष कहते हैं। एक बंध रही है तो उसके साथ कौन-कौनसी नियम से बंधेगी ? कौनसी नहीं बंधेगी ? बंधी है तो कैसी बंधेगी ? उत्कृष्ट बंधेगी कि अनुत्कृष्ट बंधेगी ? महाबंध में इतना विस्तार से वर्णन है - जितना जानो उतना कम है। *श्रोता:* आप कहते हैं ख्याल में आया कि नहीं, ज्ञान में तो आया लेकिन पटता नहीं उसका क्या करें ? पटता नहीं क्योंकि हमारी जो मान्यता है न, उसको ठेस पहुंचती है तो क्या करें ? *श्रोता:* बार-बार शुभभाव को थोपते हैं। शुभभाव को नहीं थोपते हैं। शुभभाव करने से धर्म होता है इस मान्यता का निषेध हो रहा है। अगर शुभभाव ही छोड़ देंगे, जो है वह भी छोड़ देंगे तो अशुभ में चले जायेंगे। यहां तो जहां हैं वहां से ऊपर चढ़ने की बात है। कोई व्रत कर रहे हैं तो व्रतों का निषेध नहीं है, आत्मानुभव की अपेक्षा से वह बंध का कारण है कह दिया। तो शुभ या अशुभ दो ही बातें हो रही हैं। शुभ छोड़ दो ऐसा किसीको नहीं कहते हैं। उसको कहते हैं कि तत्त्वविचार करो, तत्त्वनिर्णय करो क्योंकि इसीसे सम्यक्त्व होनेवाला है और सम्यक्त्व से ही धर्म की शुरुआत होती है। तब तक धर्म की शुरुआत ही नहीं होगी।

कितने भी शुभभाव क्यों न किये हो ? शास्त्र में आता है न, मुनिव्रत धार अनंतबार प्रैवेयक उपजायो - एक-दो बार नहीं। तो मनुष्य कितनी बार हुआ ? क्योंकि हर बार मनुष्य होता है तो मुनि अवस्था तो धारण नहीं करता है। फिर भी मुनि अवस्था धारण करने के परिणाम अनंतों बार हुये यानी अनंत भव ऐसे हुये जिनमें उसने मुनिव्रत धारण किये थे। फिर भी आत्मज्ञान नहीं हुआ तो जन्म-मरण का यह चक्र चलता ही

काल में से प्रथमोपशम सम्यक्त्व का काल अंतर्मुहूर्त ही है। दो-चार दिन तक प्रथमोपशम चलता रहे ऐसा नहीं है। अभी उसका काल पूरा होने के पहले क्या हो सकता है ? अभी जरा बोर्ड पर देखो। प्रथमोपशम सम्यक्त्व में दर्शनमोहनीय की अवस्था कैसी है ? तीनों एक लेव्हल पर उपशमित होकर पड़ी हैं और उपशम सम्यक्त्व का काल चल रहा है। उपशम सम्यक्त्व के काल में ये तीनों द्वितीय स्थिति में पड़ी हैं। मिथ्यात्व में से ये दो प्रकृतियां तैयार हुयी हैं। जितने निषेक मिथ्यात्व के हैं, उतने ही निषेक इन दोनों के हैं। ये अंतर के ऊपर हैं और उपशमित हैं। यहां तक की बात समझ में आयी ? इन तीनों में से किसीका भी यहां उदय नहीं हो सकता। परंतु अनंतानुबंधी कैसा पड़ा है ? अनंतानुबंधी यहां सर्वत्र पड़ा है उसमें अंतर नहीं हुआ है और जब उदय का समय है तब वह अप्रत्याख्यानादिरूप से उदय में आ रहा है।

अब यहां गुणसंक्रमण का काल हुआ और जीव थोड़ा आगे बढ़ा। अब यह पूरा अंतर का काल उपशम सम्यक्त्व का काल नहीं है। उसमें उपशम सम्यक्त्व का काल थोड़ा ही रहता है। अब उपशम सम्यक्त्व का काल पूरा होने के पहले यह बात हो सकती है कि अनंतानुबंधी का उदय हो जावे यानी जीव के परिणाम उस जाति के हो जावें। मिथ्यात्वादि तीनों में से किसीका भी उदय नहीं हो सकता और अकेले अनंतानुबंधी का उदय आया तो क्या होगा ? सम्यक्त्व रहेगा कि छूटेगा ? सम्यक्त्व से भ्रष्ट होकर सासादन में आयेगा। अभी मिथ्यात्व में गया नहीं है। मिथ्यात्व का उदय कब होगा ? जब उसका उपशम का काल पूरा हो जायेगा तब। दर्शनमोहनीय की उपशम अवस्था में अनंतानुबंधी का उदय हो सकता है परंतु उपशम का काल पूरा होगा तब जाकर मिथ्यात्व का उदय भी चालू होगा। यानी अनंतानुबंधी के उदय से जहां सम्यक्त्व छूट गया है, और मिथ्यात्व का उदय अभी नहीं हुआ है वहां सासादन गुणस्थान होता है। ख्याल में आती है न बात ? उसका काल कितना लिखा है ? एक समय से छह आवली। यानी उपशम सम्यक्त्व के काल में कम से कम एक समय बाकी रहे तो अनंतानुबंधी का उदय आ सकता है तो एक समय के लिये सासादन रहेगा और दूसरे समय में मिथ्यात्व चालू हो जायेगा। किसी-किसी जीव को अधिक से अधिक छह आवली पहले ही अनंतानुबंधी का उदय हो जायेगा। तो छह आवली तक अनंतानुबंधी का उदय है, मिथ्यात्व का उदय नहीं है। जिस समय मिथ्यात्व का उदय आयेगा तब पहले गुणस्थान में जायेगा ही जायेगा। दूसरे गुणस्थान में कितने काल तक रहा ? एक

समय से छह आवली तक। यानी उपशम सम्यक्त्व के काल में ही अनंतानुबंधी का उदय हो जावे तब सासादन गुणस्थान में जाता है। यह बात समझ में आयी ?

अगर किसीका उपशम का काल पूर्ण होता है तो उसके अब क्या-क्या हो सकता है ? यहां तीन प्रकृतियां सत्ता में पड़ी हैं; अभी उपशमित हैं। जब उपशम का काल समाप्त हो जायेगा तब जीव के जैसे परिणाम हैं उस प्रकृति का उदय शुरू होता है। द्वितीय स्थिति में से अपकर्षण होकर अंतर में फिर निषेक रचना तैयार हो जाती है, अंतर को भर दिया जाता है। पहले अंतर किया था, उसमें से प्रथमोपशम सम्यक्त्व का काल छोटा है। ऊपर अंतर बाकी रहता है। अब एक ही समय में ऊपर के परमाणु नीचे आते हैं और अंतर में निषेक तैयार होते हैं। अब अगर उसके मिथ्यात्व परिणाम हो जावें तो उदय के समय से मिथ्यात्व के निषेक तैयार हो जायेंगे, इसका उदय शुरू हो जायेगा और बाकी दो प्रकृतियों की उदयावली के ऊपर निषेक रचना होगी वे क्रम से नीचे आयेंगी। *श्रोता: अभी उनकी उपशम अवस्था होगी न ?* उसके बाद की बात है।

यहां उपशम का काल पूरा हुआ। उपशम का काल पूरा होने के बाद तीन रास्ते हैं। उपशम के काल में अनंतानुबंधी का उदय हो जाये तो सासादन में जाता है। औपशमिक सम्यक्त्व का अंतर्मुहूर्त पूरा हुआ। अभी जीव के जैसे परिणाम हैं उस प्रकृति का उदय होगा। मिथ्यात्व का उदय हो जावे तो जीव मिथ्यादृष्टि हो जायेगा। यानी मिथ्यात्व के परमाणु नीचे आते हैं, बाकी दो प्रकृतियों के थोड़े ऊपर ही रहते हैं। अगर सम्यग्मिथ्यात्व का उदय हो जावे तो तीसरा गुणस्थान प्राप्त होता है और सम्यक् प्रकृति का उदय हो तो उसका वही गुणस्थान बना रहेगा और उसके वेदक सम्यक्त्व होगा। चौथेवाला चौथे में रहेगा, पांचवेंवाला पांचवें में रहेगा। हम कर्म की तरफ से कह रहे हैं परंतु जीव के परिणाम भी हो रहे हैं और कर्म का उदय भी है।

ऐसा नहीं है कि इतनी मेहनत करके सम्यग्दर्शन पाया और कर्म का उदय आया तो वह गिर गया। उसके अपने परिणामों के कारण वह गिर गया है। परिणामों की बात नहीं करते हुये निमित्त के द्वारा कथन किया जाता है। परंतु इसमें ऐसा नहीं समझना कि जीव पराधीन हुआ, कर्म का उदय आया इसलिये जीव को गिरना पड़ा। मिथ्यात्व का उदय है और यहां जीव का मिथ्यात्व का परिणाम है तो गुणस्थान पहला हो जाता है। सम्यग्मिथ्यात्व का उदय हो रहा है, जीव के परिणाम मिश्र अलग जाति के

होते हैं तो उसका तीसरा गुणस्थान होता है। सम्यक् प्रकृति का उदय होता है तो उसका सम्यक्त्व बना रहता है। उसको क्षायोपशमिक सम्यक्त्व या वेदक सम्यक्त्व कहेंगे। वेदक सम्यक्त्व ६६ सागर तक रह सकता है। यदि नहीं छूटे तो अनेक भवों तक रह सकता है। जघन्य से अंतर्मुहूर्त रह सकता है, एक समय में वेदक सम्यक्त्व छूट जाये यह बात नहीं हो सकती।

श्रोता: प्रतीति में और रुचि में क्या अंतर है ? कोई अंतर नहीं, सम्यग्दर्शन कहो, उसीका नाम प्रतीति है, उसीका नाम रुचि भी है। सम्यक् रुचि भी कहेंगे, प्रतीति भी कहेंगे। *श्रोता: सम्यग्दर्शन प्रतीतिरूप रहता है ?* सम्यग्दर्शन इटसेल्फ प्रतीति है। उसकी प्रतीति बनी रहती है यह कहना चाहते हैं। सम्यक्त्व है - सम्यक्त्व है यानी उसकी प्रतीति बनी रहती है। अभी शुद्धोपयोग नहीं है, जब तक अंतरंग में स्थिरता है तब तक अतीन्द्रिय आनंद का वेदन होता है। पूरा उपशम सम्यक्त्व का काल शुद्धोपयोग का काल नहीं है। शुद्धोपयोग तो करण परिणाम से ही शुरू हुआ था, गुणसंक्रमण के काल में भी होता है परंतु बाद में उसका शुभोपयोग हो जायेगा क्योंकि असाता वगैरह का प्रायोग्यलब्धि में बंध रुका था न ? औपशमिक सम्यक्त्व के काल में ही उसका बंध दुबारा शुरू होता है। अगर पूरा काल शुद्धोपयोग है कहेंगे तो उनका बंध नहीं हो सकता। उसमें अन्य अनेक बातें भी हैं, बंध संबंधी सूक्ष्म चर्चा महाबंध में आती है उससे यह निश्चित होता है कि पूरा औपशमिक सम्यक्त्व का काल शुद्धोपयोग का काल नहीं है। शुद्धोपयोग के बाद वहां शुभोपयोग भी होगा। *श्रोता: क्योंकि वहां अंतर्मुहूर्त से ज्यादा रह नहीं सकते ?* प्रतीति पूरी जिंदगी भर तक रहेगी। उसका सम्यग्दर्शन बना रहेगा क्योंकि अभी मनुष्य है, सम्यग्दृष्टि है तो मरकर देव में चला जायेगा। देव की सागरों की आयु भोगकर फिर मनुष्य में आयेगा। कोई जरूरी नहीं कि उसका सम्यक्त्व छूट जाये। प्रथमोपशम का काल ही एक अंतर्मुहूर्त है। बाद में वेदक हो जाता है यानी क्षयोपशम सम्यक्त्व यथायोग्य काल तक बना रहेगा। मिनिमम अंतर्मुहूर्त में छूट सकता है, मैक्सिमम ६६ सागर तक चल सकता है।

देखो नीचे का पॅरेग्राफ- उपशम सम्यक्त्व का काल पूरा होने पर नियम से दर्शनमोहनीय कर्म की तीन प्रकृतियों में से किसी एक प्रकृति का उदय होता है। वह किसतरह होता है, इसे आकृति द्वारा समझेंगे। यहां आकृति है न- नीचे उपशम सम्यक्त्व का काल छोटा बताया है और अंतरायाम उससे बड़ा बताया है और

उसके ऊपर द्वितीय स्थिति बतायी है। जब औपशमिक सम्यक्त्व का काल पूरा हो जायेगा तो जो अँरो दिखाया है उसका अर्थ क्या है ? ऊपर के द्वितीय स्थिति के निषेकों में से परमाणु नीचे आयेंगे और फिर जहाँ अंतर बना था उसमें दुबारा निषेक की रचना होगी। इसको कहते हैं अंतरपूरण हो जायेगा। अंतर पूर दिया जायेगा यानी भर दिया जायेगा। **उपशम सम्यक्त्व के काल में द्वितीय स्थिति में दर्शनमोहनीय के तीन टुकड़े होते हैं। उपशम सम्यक्त्व के काल में उनमें से किसीका अपकर्षण द्वारा उदय, उदीरणा संभव नहीं है।** हमने पहले देखा था वे ऊपर ही पड़े हैं।

उपशम सम्यक्त्व का काल पूरा होने तक अंतरायाम में दर्शनमोहनीय के निषेकों का अभाव रहता है। परंतु सम्यक्त्व का काल पूर्ण होते ही यानी उपशम की लिमिट है, उपशम कितने समय तक बना रहेगा ? अंतर्मुहूर्त तक, इससे अधिक उपशमित नहीं रख सकते। सम्यक्त्व का काल पूर्ण होते ही द्वितीय स्थिति के तीनों प्रकृतियों के परमाणु, एक के नहीं, तीनों के अपकर्षण द्वारा अंतरायाम में आते हैं और अंतर को भर देते हैं - वहाँ निषेक रचना होती है अर्थात् अंतरपूरण करते हैं। आप पूछेंगे आपने तो कहा किसी एक का उदय होता है ? हां, जिसका उदय है उसकी निषेक रचना उदय के समय से होती है और जो वहाँ उदयरूप नहीं है उनकी निषेक रचना उदयावली के ऊपर से होती है। **उपशम सम्यक्त्व का काल पूर्ण होने पर अंतरायाम में कोई निषेक है नहीं, उसके पश्चात् द्वितीय स्थिति में से अपकर्षण द्वारा नीचे आकर उनका उदय होता है। एक ही समय में उसका उदय चालू हो जाता है।**

इससे यह बात सिद्ध होती है कि दर्शनमोहनीय की प्रकृति के उदय के कारण उपशम सम्यक्त्व नहीं छूटता, क्या कहा ? उपशम का काल पूरा हुआ इसलिये वहाँ उसके निषेक नीचे आये और निषेक रचना हुयी परंतु उपशम का काल अंतर्मुहूर्त ही होता है उसके पश्चात् उपशम छूट जाता है परंतु सम्यक्त्व छूटने का नियम नहीं है। उपशम छूटा, सम्यक्त्व छूट जायेगा तो मिथ्यात्व में चला जायेगा या तीसरे में जायेगा। उपशम समाप्त हुआ यानी अभी परमाणु नीचे आयेंगे, निषेक रचना हो जायेगी। सम्यक् प्रकृति का उदय होगा तो सम्यक्त्व भी बना रहेगा। **उन तीन प्रकृतियों में से जीव के परिणाम के निमित्त से कोई ऐसा नहीं मान ले कि कर्म का उदय आया इसलिये जीव को मिथ्यात्व में जाना पड़े। वहाँ जीव के मिथ्यात्व परिणाम**

हैं। जो प्रकृति उदयरूप होती है वह तो उदयावली में आती है यानी उदय के समय से ही उसकी निषेक रचना होती है। और अन्य दो प्रकृति उदयावली के ऊपर ही रहती हैं और उदयरूप प्रकृति में संक्रमित होकर उसरूप उदय में आती हैं।

जैसे कोई मिथ्यात्व में चला जायेगा तो क्या होगा ? मिथ्यात्व की रचना उदय के समय से होगी और बाकी दो प्रकृतियां उदय में आते-आते मिथ्यात्वरूप होकर उदय में आयेगी। जैसे हमने क्या देखा था जब सम्यग्दर्शन हुआ था तो अनंतानुबंधी कर्म अप्रत्याख्यानावरणादिरूप होकर उदय में आया। अब यहां जीव मिथ्यात्व में आया तो अन्य दो प्रकृतियां सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति वे एक समय में मिथ्यात्व में टर्न होते-होते उदय में आयेगी। एक समयवाला उसको यहां संक्रमण नहीं कहेंगे। इसप्रकार प्रथमोपशम का काल पूर्ण होने पर- १) मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से जीव पुनश्च पहले मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त होता है, एक बात। अथवा २) सम्यग्मिथ्यात्व के उदय से देखो कथन करेंगे निमित्त की ओर से, जीव तीसरे सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त होता है। अथवा ३) सम्यक् प्रकृति के उदय से जीव क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि अर्थात् वेदक सम्यग्दृष्टि होता है, उसका सम्यक्त्व तथा विवक्षित गुणस्थान कायम रहता है।

इसप्रकार प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि जीव नियम से मिथ्यात्व में जाता ही है इस मान्यता का निराकरण होता है। कषायपाहुड, धवला, लब्धिसार, मोक्षमार्गप्रकाशक आदि ग्रंथों में इसका वर्णन है। यहां प्रथमोपशम सम्यक्त्व की बात हो रही है। हमने यह प्रथमोपशम सम्यक्त्व देखा। सामान्य से प्रथमोपशम सम्यक्त्व के चार रास्ते बताये हैं कि औपशमिक सम्यक्त्व के काल में अनंतानुबंधी के उदय से दूसरा सासादन गुणस्थान हो सकता है और उपशम सम्यक्त्व का काल पूर्ण होने पर ऊपर बताये हुये तीन रास्ते हैं।

श्रोता: आपने अभी कहा कि अगर मिथ्यात्व का उदय आ जाता है तो फिर उलटा संक्रमण होकर उसके ? ना-ना अभी उलटा संक्रमण नहीं हो रहा है। मिथ्यात्व का उदय शुरू हुआ और बाकी दो प्रकृतियां एक समय में मिथ्यात्वरूप होकर उदय में आती हैं जैसे अप्रशस्त उपशम में हमने देखा था। श्रोता: एक समय में टर्न होकर मिथ्यात्व में आकर फिर ? मिथ्यात्वरूप से उसका उदय चलेगा। श्रोता: अगर ऐसे ही

सम्यग्मिथ्यात्व का उदय आता है ? हां, अगर सम्यग्मिथ्यात्व का उदय आता है तो मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति दोनों ही उसरूप होकर उदय में आती हैं। सम्यक् प्रकृति का उदय होता है तो मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व सत्ता में पड़ी हैं, वे उदय के समय में उसरूप होकर उदय में आती हैं। अकेले उदय के समय टर्न होती है, सत्ता में से टर्न नहीं होती।

जयधवला, लाटी-संहिता, अमितगति श्रावकाचार वगैरह ग्रंथों में ऐसा लिखा है- अनादि मिथ्यादृष्टि सबसे पहली बार प्रथमोपशम सम्यक्त्व करता है तो नियम से गिरता है। अनादिकाल से सबसे पहली बार। बाद में बारंबार करेगा तो गिरने का नियम नहीं है। हमने देखा किसीको असंख्यात बार प्रथमोपशम सम्यक्त्व हो सकता है। दो प्रथमोपशम के बीच में भी असंख्यात वर्ष चले जाते हैं। अगर बीच के काल में सम्यक्त्व होगा तो वेदक सम्यक्त्व हो सकता है। एक बार उपशम करके सम्यग्दृष्टि हुआ, बाद में मान लेते हैं मिथ्यात्व में गया है, अब उसको अंतर्मुहूर्त में सम्यक्त्व हो सकता है परंतु कौनसा होगा ? *श्रोता: वेदक सम्यक्त्व।* वेदक सम्यक्त्व। ऐसे असंख्यात वर्षों तक उसको अगर सम्यक्त्व होता है तो वेदक सम्यक्त्व ही होगा। यहां मिथ्यात्व का नया बंध शुरू होता है तो और अन्य दो प्रकृतियां - सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति की उद्वेलना यानी उलटा संक्रमण होता है और उद्वेलना होते-होते वे प्रकृतियां ही नष्ट हो जाती हैं। नष्ट हो या बहुत कम स्थिति हो जाये तो फिर दुबारा उनका उपशम हो सकता है। उसके पहले असंख्यात वर्षों तक प्रथमोपशम सम्यक्त्व नहीं हो सकता, सम्यक्त्व होगा तो वेदक सम्यक्त्व होता है, उसको कहते हैं वेदकयोग्य काल।

एक बार प्रथमोपशम सम्यक्त्व होकर छूट गया तो असंख्यात वर्षों तक उसको कौनसा सम्यग्दर्शन हो सकता है ? वेदक सम्यक्त्व। अन्य दो प्रकृतियों की स्थिति बहुत ही कम हो जाये तो बाद में अगर करेगा तो प्रथमोपशम सम्यक्त्व होगा। बीच में मिथ्यात्व में पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल बीत जाये तो उन दो प्रकृतियों की उद्वेलना होती है - सम्यक् प्रकृति पहले नष्ट होगी, बाद में सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति नष्ट होगी। उनका मिथ्यात्व में उलटा संक्रमण होता है उसका नाम है उद्वेलना। ऐसी उद्वेलना होते-होते अन्य दो प्रकृतियों की स्थिति घट जाती है। ऐसे काल में तीनों को एक साथ उपशमा सकता है। *श्रोता: वेदककाल में उसको सम्यक्त्व होगा तो वेदक सम्यक्त्व ही होगा ?* हां वेदकयोग्य काल में सम्यक्त्व होगा तो उसको वेदक सम्यक्त्व

ही होगा। श्रोता: उसके पश्चात् अधिक काल के बाद प्रथमोपशम ? हां, उसके पश्चात् अधिक काल बीत जाने पर यदि उसको सम्यक्त्व करना है तो प्रथमोपशम ही करना पड़ेगा और वहां पांचलब्धि का नियम दुबारा लागू होगा। फिर उसको देशना वगैरह निमित्त बनेगा। पहले सम्यक्त्व हुआ उससे कोई लेना-देना नहीं है।

श्रोता: ऐसा समझे कि देशना मिलने के बाद असंख्यात काल तक सम्यक्त्व के लिये चल सकता है अगर दुबारा देशना नहीं मिलती है ? देखो, प्रथमोपशम के लिये देशना थी। अभी सम्यक्त्व होकर छूट गया तो वेदकयोग्य काल में असंख्यात वर्षों तक उसका पूर्व की देशनावाला निमित्त नहीं रहेगा, अभी उसके यथायोग्य निमित्त बनेंगे। परंतु जो पहलेवाला अनादि मिथ्यादृष्टि था वैसा नहीं है। ऐसा भी होता है एक बार नहीं, अनेक बार वेदक सम्यक्त्व होकर छूटता है। उसको क्या कहते हैं ? दृष्टपथ कहते हैं। नहीं समझे ? जिसने मार्ग देख लिया है। आप किसी नये गांव में जाते हैं और कोई पता ढूंढ़ना है, तो ढूंढ़ने में ज्यादा तकलीफ होती है - इसको पूछो, उसको पूछो, क्या करें ? अभी आपके हाथ में गूगल आ गया। पहले के जमाने की बात है कि ढूंढ़ने में तकलीफ होती थी। परंतु आपने किसी गांव को देखा है और दो-चार-पांच बार गये थे तो कैसा है ? हमें ढूंढ़ने के लिये अभी कोई मुसीबत नहीं होती। हम पहुंच जाते हैं क्योंकि अभी रास्ता हमारे पहचान का है। ऐसे बहुत बार वेदक सम्यक्त्व होकर छूटता रहता है ऐसा भी होता है। तो उसके जल्दी वेदक सम्यक्त्व प्राप्त होता है। उसको कहते हैं दृष्टपथ यानी उसने अभी मार्ग देख लिया है। वह कभी मिथ्यात्व में चला जाता है, कभी सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है ऐसा भी हो सकता है।

श्रोता: मिथ्यात्व में जाते ही वह कभी एकेन्द्रिय कभी चतुरिन्द्रिय में चला गया फिर भी वह दृष्टपथ कहलायेगा ? देखो, मिथ्यात्व में जाकर अगर एकेन्द्रियादि में चला गया। अभी संज्ञीपना ही नहीं रहा, ना मन रहा, ना उतना ज्ञान रहा, अभी पहले के संस्कार कुछ नहीं रहेंगे। अगर संज्ञी पंचेन्द्रिय से संज्ञी पंचेन्द्रिय में बने रहते हैं तो ही वे संस्कार रहेंगे। श्रोता: और वही नियम अनादि मिथ्यादृष्टि जो सबसे पहली बार प्रथमोपशम ? अनादि मिथ्यादृष्टि जो सबसे पहली बार सम्यक्त्व प्राप्त करता है वह नियम से मिथ्यात्व में जाता ही जाता है क्योंकि मिथ्यात्व के संस्कार इतने अनादि से पड़े हैं। यहां मैंने धवला में ऐसा लिखा है परंतु वह तो जयधवला में स्पष्ट लिखा है। श्रोता: वेदक सम्यक्त्व का काल ६६ सागर बताया ? वह मैक्झिमम पॉसिबल काल है।

श्रोता: अगर मॅक्झिमम पॉसिबल काल पूरा होता है तो या तो इसके पहले-पहले क्षायिक सम्यक्त्व कर ले या तो काल पूरा हो जाता है फिर वह मिथ्यात्व में आ जाता है ऐसा है ? देखो पूरा ६६ सागर कब होता है ? तो कृतकृत्य वेदक सहित ही ६६ सागर गिन सकते हैं। कृतकृत्य वेदक यानी जो क्षायिक होने जा रहा है उसकी जब मिथ्यात्व की क्षपणा हुयी, सम्यग्मिथ्यात्व की हुयी और सम्यक् प्रकृति के अंतर्मुहूर्त प्रमाण निषेक बाकी हैं उसको गिनते हुये ६६ सागर मॅक्झिमम हो सकता है। जो क्षायिक नहीं करेगा तो अंतर्मुहूर्त पहले सम्यग्मिथ्यात्व या मिथ्यात्व में जा सकता है और मिथ्यात्व का उत्कृष्ट अंतर लाने के लिये दो बार ६६ सागर तक अंतर करने के लिये तो उसको तीसरे में लाते हैं; जरूरी नहीं तीसरे में जावे, तीसरे में जाये तो भी अंतर्मुहूर्त कम ६६ सागर, पहले में जाये तो भी अंतर्मुहूर्त कम ६६ सागर। लगातार सम्यक्त्व उसको एक बार ही ६६ सागर में कुछ कम इतना रहा और उसमें से क्षायिक कर ले तो कृतकृत्य वेदक सहित पूरा ६६ सागर हो सकता है।

श्रोता: लेकिन अगर क्षायिक नहीं करता है तो पूरे ६६ सागर नहीं ? नहीं होता; अंतर्मुहूर्त पहले उसको मिथ्यात्व में या तीसरे में आना ही चाहिये। परंतु हम जो अंतर कहते हैं न, मिथ्यात्व से ऊपर के गुणस्थान में गया। अधिक से अधिक कितने काल तक रहा ? ६६ सागर में अंतर्मुहूर्त कम था तब तीसरे में आया। पहले में नहीं आया, तीसरे से फिर चौथे में चला गया तो दो बार ६६ सागर। परंतु सम्यक्त्व लगातार दो बार ६६ सागर इतना नहीं रहा। सम्यक्त्व तो कुछ कम ६६ सागर तक ही रहा। परंतु चौथे, पांचवें और छठे-सातवें का काल मिलकर ही ६६ सागर हो सकता है।

यदि वह मुनि नहीं हुआ यानी छठा-सातवां गुणस्थानवाला नहीं हुआ, केवल चौथे और पांचवें गुणस्थान में ही रहेगा तो ४२ सागर से ज्यादा नहीं हो सकता। मात्र चौथे गुणस्थान में रहा तो साधिक ३३ सागर रहता है, उससे ज्यादा नहीं। अभी उसके सारे नियम हैं। श्रोता: दूसरी बार ६६ सागर के बाद नियम से मिथ्यात्व में आयेगा ? अगर क्षायिक नहीं करता है तो नियम से मिथ्यात्व में जायेगा। यह जो भगवान के ज्ञान में आया है कि उसका वेदक सम्यक्त्व मॅक्झिमम कितने काल तक बना रह सकता है। उसका सम्यक्त्व किसी भी गति में शुरू हुआ हो, परंतु अगर ६६ सागर में क्षायिक नहीं किया है तो नीचे के गुणस्थानों में आयेगा।

अमितगति श्रावकाचार, लाटी-संहिता, जयधवला में यह बात आयी है कि प्रथम सम्यक्त्वी नियम से मिथ्यात्व में जाता है। अप्रथम यानी दूसरी आदि बार सम्यक्त्व हुआ हो तो, कहते हैं कि अनादि मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम बार प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है तब उपशम सम्यक्त्व का काल पूरा होने पर नियम से मिथ्यात्व में जाता है परंतु अप्रथम बार यानी द्वितीयादि बार प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है उसके लिये ऊपर बताये हुये तीन मार्ग खुले हैं। हमने देखा न मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व या उसी गुणस्थान में रहना; उसके लिये मिथ्यात्व में जाने का नियम नहीं है। तुम कहोगी, एक बार सम्यक्त्व प्राप्त होने पर पुनः पुनः सम्यक्त्व होने की बात कैसे कर रही हो ? सुनो, जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पश्चात् मिथ्यात्व में जा सकता है अथवा कोई क्षयोपशम सम्यक्त्व से छूटकर मिथ्यात्व में जाता है। जब वह जीव दुबारा सम्यक्त्व प्राप्त करेगा तो कोई जीव कर्मों का क्षयोपशम करके क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करेगा या कोई जीव उनका उपशम करके प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करेगा। वह असंख्यात बार हो सकता है। सम्यक्त्व हुआ छूटा, मिथ्यात्व में गया, फिर सम्यक्त्व प्राप्त किया, ऐसा अनेकों बार होता है।

सम्यक्त्व से मिथ्यात्व और दुबारा सम्यक्त्व इस प्रकार असंख्यात बार यानी पल्य के असंख्यातवें भाग बार हो सकता है। एक बार प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने पर दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृति की सत्ता असंख्यात वर्षों तक रहती है। यदि वह मिथ्यात्व में आता है तो असंख्यात वर्षों तक तीन की सत्ता है। असंख्यात वर्षों तक दो प्रकृतियों की उद्वेलना यानी उलटा संक्रमण होते-होते वे कालांतर में नष्ट होती हैं। परंतु वह जीव मिथ्यात्व में आने पर असंख्यात वर्ष के बाद दुबारा प्रथमोपशम सम्यक्त्व कर सकता है। परंतु सम्यक्त्व होने के लिये इतना काल रुकने की जरूरत नहीं है। परंतु क्षयोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति तो एक अंतर्मुहूर्त पश्चात् भी कर सकता है। इसको वेदकयोग्य काल कहते हैं। इतने काल में उसको वेदक सम्यक्त्व हो सकता है। अब यहीं रुकते हैं हम।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

२८. प्रथमोपशम सम्यक्त्व - विशेष चर्चा

सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र आचार्य ने लब्धिसार ग्रंथ की रचना की है। उसीके आधार से पं. टोडरमलजी ने सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका लब्धिसार-क्षपणासार भाषाटीका द्वंद्वारी भाषा में लिखी हुयी है। उसीके आधार से हम यहां पांच लब्धि का प्रकरण देख रहे हैं।

हमने देखा प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त हुआ है ऐसे जीव की क्या-क्या बातें होती हैं। दर्शनमोहनीय की एक मिथ्यात्व प्रकृति थी, उसमें से सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति ऐसी और दो प्रकृतियां तैयार होती हैं। शुरुआत के काल में गुणसंक्रमण होता है और बाद में संक्रमण का प्रमाण कम होता है उसको विध्यातसंक्रमण कहते हैं। मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति तीनों ही प्रकृतियां प्रथमोपशम के काल में उपशमित रहती हैं। उनका उपशमित रहने का काल अंतर्मुहूर्त है। उपशमित हैं यानी उनका अपकर्षण होकर उदय, उदीरणा हो यह बात अंतर्मुहूर्त तक संभव नहीं है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में से एक समय या अधिक से अधिक छह आवली शेष रहने पर अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ में से किसी एक का उदय होने पर जीव का सम्यक्त्व छूट जाता है क्योंकि अनंतानुबंधी प्रकृति सम्यक्त्व का घात करनेवाली है। सम्यक्त्व छूट गया है और अभी मिथ्यात्व में पहुंचा नहीं है क्योंकि मिथ्यात्व प्रकृति उपशमित होने से उसका उदय नहीं है तो उसका दूसरा सासादन गुणस्थान होता है। सासादन में से जीव नियम से श्ले मिथ्यात्व गुणस्थान में जाता है।

प्रथमोपशम सम्यक्त्व का अंतर्मुहूर्त काल पूरा होने पर जो उपशमित परमाणु हैं उनका उपशम छूट जाता है। उपशम छूट जाता है, सम्यक्त्व छूट जाता है नहीं कहा। उपशम छूट जाता है तो जीव के परिणाम के अनुसार मिथ्यात्व कर्म का उदय होगा तो जीव पहले गुणस्थान में जायेगा, सम्यग्मिथ्यात्व का उदय हो तो तीसरे में जायेगा और सम्यक् प्रकृति का उदय हो तो जिस गुणस्थान में है - चौथे या पांचवें या छठे-सातवें में - उसका वह गुणस्थान क्षयोपशम सम्यक्त्व के साथ चालू रहेगा। इसतरह से हमने अलग-अलग क्या-क्या बातें हो सकती हैं उनकी चर्चा की।

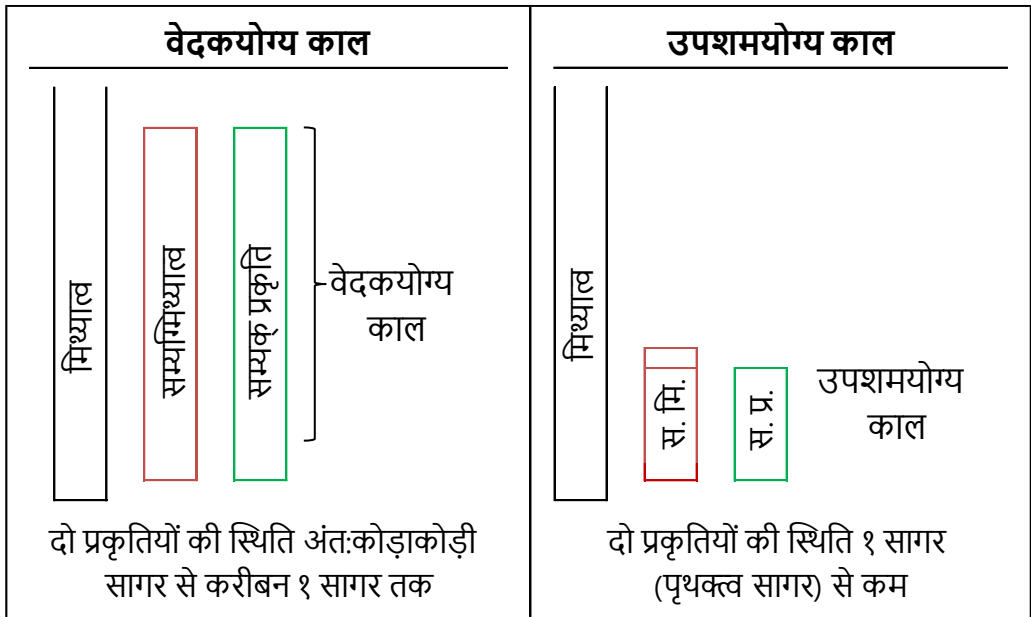
अनादि मिथ्यादृष्टि जब सबसे पहली बार सम्यक्त्व प्राप्त करता है तो अंतर्मुहूर्त तक प्रथमोपशम सम्यक्त्व में रहकर वह नियम से मिथ्यात्व में आता है। हो सकता है

कि बहुत छोटे से अंतर्मुहूर्त में वह क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर ले। इतना ही नहीं वह उस भव में मोक्ष भी जा सकता है - उसकी कोई ना नहीं है। पॉसिबिलिटीज् बहुत हैं। ऐसा भी हो सकता है मिथ्यात्व में कुछ कम अर्धपुद्गलपरावर्तन काल तक रहकर मोक्ष जाये। यानी मोक्ष के पहले फिर मनुष्य में आयेगा। प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करेगा, मुनि होगा, श्रेणी चढ़ेगा, मोक्ष चला जायेगा। प्रथमोपशम सम्यक्त्व पहली बार हुआ उस समय से लेकर अर्धपुद्गलपरावर्तन से अधिक काल उसका संसार नहीं रहता। अभी उसकी संसार की लिमिट हो गयी। पहली बार प्रथमोपशम होने के बाद सबको इतना काल नहीं लगेगा- कोई उसी भव में मोक्ष चला जायेगा, कोई कालांतर से चला जायेगा। मैक्झिमम पॉसिबिलिटी बतायी जाती है। हमने यह भी देखा कि जो सम्यक्त्व प्राप्त करता है उसकी कुछ प्रकृतियां बंधना रुक जाती हैं। मिथ्यात्व के साथ बंधनेवाली १६ प्रकृतियां जो मिथ्यात्व गुणस्थान में ही बंधती हैं और अनंतानुबंधी के साथ बंधनेवाली २५ प्रकृतियां जो पहले और दूसरे गुणस्थान में बंधती हैं वे प्रकृतियां अभी यहां नहीं बंधेंगी।

पृष्ठ १४९, हम दूसरा पॅरेग्राफ पढ़ेंगे- **जीव मिथ्यात्व में जाता है तब इन तीन प्रकृतियों की सत्ता की स्थिति** यानी प्रथमोपशम सम्यक्त्व में मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति इन तीनों की स्थिति एक समान हुयी थी। अब मिथ्यात्व में जाते ही पहले समय में तो तीनों की स्थिति समान है। बाद में वहां मिथ्यात्व का यथायोग्य बंध चालू हो जायेगा। अन्य दो प्रकृतियों का बंध नहीं है और मिथ्यात्व में से उनमें अभी संक्रमण भी नहीं होगा। सम्यक्त्व के काल में ही मिथ्यात्व में से दो प्रकृतियां तैयार हुयी थी। अब मिथ्यात्व में आया तो क्या होगा ? सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति के परमाणु मिथ्यात्वरूप परिणमित होते रहेंगे और होते-होते कालांतर में नष्ट हो जायेंगे। उसको कहते हैं उद्वेलना होती है। कहते हैं मिथ्यात्व में आते ही तीन प्रकृतियों की सत्ता की स्थिति **अंतःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण रहती है। तब अन्य दो प्रकृति मिथ्यात्वरूप से उदय में आती रहती हैं** मिथ्यात्वरूप होकर - टर्न होकर उदय में आती हैं **और उनका एक-एक निषेक खिर जाता है।**

नया होनेवाला बंध तो एक मात्र मिथ्यात्व का ही होता है। इसप्रकार यहां लिखा न, **एक-एक निषेक नष्ट होते-होते** वहां लिखना उद्वेलना द्वारा क्योंकि एक-एक निषेक नष्ट होकर सम्यक् प्रकृति नष्ट होने में बहुत काल लगता है। उसके पहले

उद्वेलना के द्वारा ही उसका नाश हो जाता है। उद्वेलना द्वारा जब सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति की सत्तारूप स्थिति बहुत अल्प रह जाती है, तब वह जीव दुबारा इन तीनों प्रकृतियों का तथा अनंतानुबंधी का उपशम करके प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है। यह उपशमयोग्य काल है। वेदकयोग्य काल और उपशमयोग्य काल को यहां चार्ट के आधार से देखते हैं। जब सम्यक्त्व में से गिरकर मिथ्यात्व में आया था तो तीन प्रकृतियों की सत्ता है न ? मिथ्यात्व भी है, सम्यग्मिथ्यात्व भी है और सम्यक् प्रकृति भी है।



वहां चार्ट में बताया है न, मिथ्यात्व नीचे की ओर है यानी वर्तमान समय में है। मिथ्यात्व का उदय हो रहा है और अन्य दो प्रकृतियां एक समय ऊपर पड़ी हैं। जब उदय का समय आता है तो वे दोनों मिथ्यात्वरूप होकर उदय में आती हैं। इतना ही नहीं ऊपर जो सत्ता में पड़ी हैं उनकी उद्वेलना होते-होते उनकी स्थिति कांडकरूप से घटती जाती है। जैसे हमने देखा न स्थितिकांडकघात होते हैं, ऐसे उद्वेलना में कांडकों के द्वारा ऊपर का एक कांडक मिथ्यात्वरूप हुआ। फिर दूसरा कांडक मिथ्यात्वरूप हुआ। तीसरा कांडक मिथ्यात्वरूप हुआ। इसतरह असंख्यात वर्षों में इन दोनों प्रकृतियों की सत्ता नष्ट हो जाती है। इसको वेदकयोग्य काल क्यों कहते हैं ? सादि

मिथ्यादृष्टि है, दो प्रकृतियों की सत्ता की स्थिति अंतःकोड़ाकोड़ी सागर की पड़ी है। ऐसी अवस्था में जो सम्यक्त्व होगा तो वेदक सम्यक्त्व ही होगा। क्यों ?

तीन की सत्ता है न ? अभी इसने तत्त्वविचार में अंतर्मुख परिणामों के द्वारा सम्यक्त्व प्राप्त किया तो क्या होगा ? सम्यक् प्रकृति का उदय चालू हो जायेगा। पहले मिथ्यात्व का उदय था। इसके बदले सम्यक् प्रकृति का उदय चालू हो जायेगा और बाकी की दोनों सम्यक् प्रकृतिरूप से उदय में आयेंगी। उसको वेदक सम्यक्त्व प्राप्त होगा। यहां दो प्रकृतियों की इतनी अधिक स्थिति के साथ उनको उपशमित नहीं कर सकता। उनमें अंतर नहीं कर सकता, इसलिये सम्यक्त्व प्राप्त करेगा तो वेदक सम्यक्त्व ही प्राप्त करेगा। अब इन दो की उद्वेलना होते-होते-होते क्या पोझिशन आ जाती है ? मिथ्यात्व का नया बंध होता है तो उसकी स्थिति अनेक कोड़ाकोड़ी सागरों की हो जाती है; सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति की उद्वेलना होती है तो ऊपर से उनके उद्वेलना द्वारा कांडकघात होते-होते यानी उद्वेलना होते-होते इन दो की स्थिति घट जाती है। वह जब एक सागर या कुछ अधिक शेष रहती है तब इन तीनों को एक साथ अंतर करके उपशमित कर सकता है।

उनमें स्थिति इतनी घटायी है तब जाकर उसको प्रथमोपशम सम्यक्त्व दुबारा होता है। इतनी स्थिति घटाने के लिये उसको पल्य का असंख्यातवां भाग काल लगता है। इसलिये अगर उसको इतने काल के पहले सम्यक्त्व होता है तो वह है वेदक सम्यक्त्व और उस काल को कहेंगे वेदकयोग्य काल। जीव सम्यग्दर्शन से छूटकर मिथ्यात्व में आता है तो उसको अंतर्मुहूर्त से लेकर असंख्यात वर्षों तक दुबारा सम्यक्त्व हो सकता है। कौनसा सम्यक्त्व होगा ? *श्रोता: वेदक सम्यक्त्व।* वेदक सम्यक्त्व। एक बार प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने के बाद दुबारा प्रथमोपशम सम्यक्त्व अर्लीएस्ट कब होगा ? पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल के बाद। यह बात समझ में आयी ? तब पांच लब्धि का सारा प्रोसेस फिर से होगा। तीनों में एक साथ अंतर करेगा और फिर तीनों को उपशमित करेगा। तब जाकर प्रथमोपशम के काल में उन दोनों प्रकृतियों की स्थिति अंतःकोड़ाकोड़ी सागर हो जायेगी। मिथ्यात्व में उनकी स्थिति कम हुयी थी। मिथ्यात्व में रहते हुये इनकी स्थिति नहीं बढ़ेगी।

अब तीनों प्रकृतियों में एक साथ यहां अंतरकरण हुआ। स्थितिकांडकघात

वगैरह सभी विधान करके सम्यक्त्व प्राप्त किया था। सम्यक्त्व प्राप्त करने के पूर्व समय में मिथ्यात्व की स्थिति अंतःकोड़ाकोड़ी सागर और अन्य दो की स्थिति यथायोग्य करीबन १ सागर या उससे भी हीन थी। सम्यक्त्व प्राप्त करते ही क्या हो जायेगा ? मिथ्यात्व में से संक्रमण होकर इन दोनों की स्थिति भी अंतःकोड़ाकोड़ी सागर होगी।

मेरा प्रश्न है किसीको सासादन सम्यक्त्व हुआ। तो उसका दूसरी बार सासादन होना है, अर्लीएस्ट कब होगा ? *श्रोता: पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण काल के बाद।* हां, क्योंकि प्रथमोपशम सम्यक्त्व में से सासादन में आता है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व ही नहीं होगा तो वह सासादन में भी नहीं आ सकता। ख्याल में आयी न यह बात ? दो बार सासादन होगा तो बीच में मिनिमम अंतर इतना जाता है - इसको अंतर कहते हैं। एक बार प्रथमोपशम सम्यक्त्व होकर छूटा फिर दुबारा हुआ तो दोनों में जघन्य अंतर कितना हुआ ? तो पल्य का असंख्यातवां भाग। कोई मुझे बतायेगा दो बार होने में उत्कृष्ट अंतर कितना होगा ? *श्रोता: अर्धपुद्गलपरावर्तन।* कुछ कम अर्धपुद्गलपरावर्तन। क्योंकि फिर उसको प्रथमोपशम सम्यक्त्व भी होना है, फिर क्षयोपशम सम्यक्त्व होकर क्षायिक भी करेगा। मुनि भी होगा और क्षपकश्रेणी चढ़कर मोक्ष भी होगा। पहली बार प्रथमोपशम सम्यक्त्व होने के बाद मोक्ष होने के लिये अर्धपुद्गलपरावर्तन काल उसकी उत्कृष्ट लिमिट है। जघन्य अंतर और उत्कृष्ट अंतर हमने देख लिया।

देखो, तीसरा पॅरेग्राफ- बहुत अल्प यानी कितना इसका प्रमाण गोम्मतसार कर्मकाण्ड गाथा ६१५ में बताया है। वहां कहते हैं कि इन दो प्रकृतियों की सत्तारूप स्थिति त्रस जीवों में पृथक्त्व सागर प्रमाण शेष रहती है और एकेन्द्रियों में पल्य के असंख्यातवें भाग से हीन एक सागर शेष रहती है, तब तक के काल को वेदकयोग्य काल कहते हैं। क्या कहना चाहते हैं ? यह जो स्थिति घटायी है न ? त्रस में रहते हुये अगर घटायी है तो पृथक्त्व सागर; पृथक्त्व यानी कुछ सागर की होगी। तब वह जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है। अगर उसने एकेन्द्रिय में जाकर स्थिति घटायी है - वहां स्थिति ज्यादा घटती है - वहां एक सागर में कुछ कम स्थिति होगी। फिर एकेन्द्रिय में से पंचेन्द्रिय में आ गया तो प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है। उसके पहले वेदकयोग्य काल में वह सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है। कौनसा ? वेदक सम्यक्त्व। वहां प्रथमोपशम सम्यक्त्व नहीं होगा। प्रथमोपशम हो या वेदक हो सम्यक्त्व तो सम्यक्त्व है। प्रथमोपशम नहीं करता, अभी इसका क्या होगा ?

अरे, कुछ नहीं होगा। सम्यक्त्व होने से मतलब है, है न ?

वेदकयोग्य काल में जीव दुबारा प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त नहीं कर सकता, वेदक अर्थात् क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है। परंतु उपशमयोग्य काल में वह प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है। यानी वेदकयोग्य काल के बाद। मिथ्यात्व में आने पर वे दो प्रकृतियां मिथ्यात्वरूप संक्रमित होने लगती हैं उसे उद्वेलना कहते हैं। पहले सम्यक् प्रकृति की उद्वेलना पूर्ण होकर वह सत्ता में से नष्ट होती है। देखो, उद्वेलना होते-होते अभी तो हमने छोटी स्थिति बतायी है। इससे आगे और उद्वेलना होती रहेगी तो क्या होगा ? पहले सम्यक् प्रकृति नष्ट हो जायेगी। फिर कुछ काल में सम्यग्मिथ्यात्व भी नष्ट होगी। तो जैसे एक मिथ्यात्व प्रकृतिवाला अनादि मिथ्यादृष्टि होता है वैसे यह सादि मिथ्यादृष्टि होते हुये भी उसकी सत्ता में एक मिथ्यात्व प्रकृति रह जायेगी। पहले सम्यक्त्व प्राप्त किया था, तीन टुकड़े किये थे। फिर मिथ्यात्व में आया, उद्वेलना हुयी, अब वे दोनों प्रकृतियां नष्ट हो जायेंगी। कर्म की सत्ता की अपेक्षा वह अनादि मिथ्यादृष्टि जैसा हो जाता है।

मिथ्यात्व गुणस्थान में मोहनीय की सत्ता अनादि मिथ्यादृष्टि जीव की २६ प्रकृति की होती है। अभी जो सम्यक्त्व से छूटकर मिथ्यात्व में आयेगा तो मोहनीय की सत्ता २८ की हो जायेगी - दर्शनमोहनीय की तीन और चारित्रमोहनीय की पच्चीस। उद्वेलना होते-होते पहले सम्यक् प्रकृति नष्ट होती है तो २७ की सत्ता हो जायेगी। सम्यग्मिथ्यात्व भी नष्ट होगी तो २६ की हो जायेगी। पश्चात् सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति भी उद्वेलना होकर नष्ट होती है। ऐसा जीव सादि मिथ्यादृष्टि होने पर भी उसकी सत्ता में दर्शनमोहनीय की एकमात्र मिथ्यात्व प्रकृति ही शेष रहती है। श्रोता: सादि सम्यग्दृष्टि ? सादि मिथ्यादृष्टि कहेंगे न उसको ? सादि सम्यग्दृष्टि नहीं, सादि मिथ्यादृष्टि।

इसलिये एक बार प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करके फिर मिथ्यात्व में गये हुये जीव को दुबारा प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करने में कितना लिखा है ? असंख्यात करोड़ वर्षों का काल बीच में जाता है - जो पत्य का असंख्यातवां भाग है। इसे प्रथमोपशम सम्यक्त्व का अंतर कहते हैं। परंतु प्रथमोपशम सम्यक्त्व से गिरकर मिथ्यात्व में आया हुआ जीव एक अंतर्मुहूर्त के पश्चात् ही क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है, क्योंकि वह उसका वेदकयोग्य काल है। यानी

क्षयोपशम सम्यक्त्व थोड़ा कमजोर है ऐसा कुछ नहीं है। कर्मों की अवस्था को यहां बताया जाता है। अभी हमने देखा था- जितना प्रथमोपशम सम्यक्त्व का जघन्य अंतर है उतना ही सासादन का भी जघन्य अंतर होगा। देखो- प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त होने पर जीव पहले मिथ्यात्व गुणस्थान से चौथे अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान में आता है तब उसके ४१ प्रकृतियों के बंध की व्युच्छिति होती है। अभी हमने देखा था न बंध की व्युच्छिति वगैरह ? हमने देखा था कि बंधयोग्य १२० प्रकृति हैं क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व बंधती नहीं हैं। बंधने योग्य १२० हैं उनमें से मोक्षमार्ग का प्रारंभ ही ४१ प्रकृतियों के बंध की व्युच्छिति से होता है। यहां व्युच्छिति का अर्थ देखते हैं। वह हमने देख लिया था। जहां तक वह बंधती है वहां उसकी बंधव्युच्छिति कहेंगे। हमने दो नयों से उसकी बात देखी थी। जहां पर बंध है उसके ऊपर के गुणस्थानों में बंध नहीं है, वहीं पर व्युच्छिति कहेंगे।

पृष्ठ १५१, दूसरा पॅरेग्राफ- पहले गुणस्थान में १६ प्रकृतियों की बंधव्युच्छिति होती है, तो दूसरे गुणस्थान में २५ प्रकृतियों की बंधव्युच्छिति होती है, तीसरे गुणस्थान में बंधव्युच्छिति नहीं होती। इसलिये जब जीव सम्यक्त्व प्राप्त करता है तब पहले से चौथे गुणस्थान में जाने पर उसके ४१ प्रकृतियों का बंध रुक जाता है। बंध रुकने को क्या कहेंगे ? उतना संवर प्रारंभ होता है। चौथे गुणस्थान में और १० प्रकृतियों की बंधव्युच्छिति होने के कारण पांचवें गुणस्थानवाले जीव के ५१ प्रकृतियों का बंध रुक जाता है। पांचवें गुणस्थान में चार प्रकृतियों की तथा छठवें गुणस्थान में छह प्रकृतियों की बंधव्युच्छिति है इसलिये पहले गुणस्थान से सातवें गुणस्थान में जानेवाले जीव के ६१ प्रकृतियों का बंध रुक जाता है। जो सीधा पहले से सातवें में जायेगा तो उसके ६१ प्रकृतियां नहीं बंधेंगी।

तुम कहोगी- यह अभी हमारी सयानी बेटी क्या बताती है देखो- 'मां, उन प्रकृतियों के नाम तो बता, जिससे हम लाभ या नुकसान का अंदाजा लगा सकें। मान लो अच्छे कर्म प्रकृतियों के बंधव्युच्छिति हो जाये तो क्या फायदा ?' देखो, अभी भी कुछ कर्म प्रकृतियां अच्छी हैं, लाभदायक हैं इस मान्यता को छोड़ने की तैयारी नहीं है। यही तो मिथ्यात्व है, है न ? फिर भी इस बात से तुम्हें खुशी होगी कि निसर्ग का ऐसा ही नियम है कि मोक्षमार्ग का प्रारंभ होते ही सर्वाधिक अप्रशस्त प्रकृतियों का बंध रुक जाता है तथा अन्य अप्रशस्त प्रकृतियों का

अनुभाग - फलदान शक्ति प्रतिसमय अनंतगुणा घटती जाती है। यहां सारा लाभ ही लाभ है इसलिये इसे लब्धि कहते हैं। अब तुम्हारी जिज्ञासा है इसलिये यहां उन ४१ प्रकृतियों के नाम लिख रही हूं। देखो, इसको कहते हैं मिथ्यात्वसंबंधी १६ प्रकृतियां जो यहां अभी नहीं बंधेंगी। हमने अभी गिनायी थी देखो- मिथ्यात्व, हुंडकसंस्थान, नपुंसकवेद, असंप्राप्तासृपाटिकासंहनन, एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी और नरकायु ये १६ प्रकृतियां पहले गुणस्थान में ही बंधती हैं आगे कहीं भी नहीं बंधती।

श्रोता: क्या मिथ्यादृष्टि को ये सब एक साथ बंधती हैं ? मिथ्यात्व गुणस्थान में ये बंध सकती हैं, दूसरे में, तीसरे में, चौथे आदि में कहीं भी ये १६ प्रकृतियां नहीं बंधेंगी यह उसका अर्थ है। वे सब एक साथ बंधती हैं ऐसा नहीं कहा। क्योंकि द्वीन्द्रियजाति बंध रही है उस समय त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति वगैरह अन्य जाति नहीं बंधती हैं परंतु एकेन्द्रियजाति से चतुरिन्द्रियजाति तक की प्रकृतियां मिथ्यादृष्टि को बंधती हैं, ऊपर के गुणस्थानों में नहीं बंधती। श्रोता: मिथ्यादृष्टि इन्हीं प्रकृतियों को बांधेगा ? ये प्रकृतियां मात्र मिथ्यादृष्टि ही बांधेगा परंतु उनकी अन्य प्रतिपक्ष प्रकृतियां भी तो यहां बंधेंगी। मिथ्यात्व का बंध कब है ? मिथ्यात्व गुणस्थान में, मिथ्यादृष्टि जीव को ये बंध सकती हैं। बंध सकती हैं न ? मिथ्यादृष्टि दूसरी प्रकृति नहीं बांधता उसकी बात नहीं है। यहां हुंडकसंस्थान कहा, परंतु मिथ्यादृष्टि जीव छहों संस्थान बांध सकता है परंतु हुंडकसंस्थान मात्र मिथ्यादृष्टि को बांधेगा, दूसरे, तीसरे, चौथे आदि गुणस्थानवाले को नहीं बांधेगा यह उसका अर्थ है। नपुंसकवेद कौन बांधेगा ? मिथ्यादृष्टि। तो क्या मिथ्यादृष्टि कभी पुरुषवेद नहीं बांधेगा ? बांधेगा परंतु नपुंसकवेद मात्र मिथ्यादृष्टि बांधेगा; दूसरे, तीसरे, चौथे आदि गुणस्थानवाला नहीं बांधेगा। दूसरे गुणस्थानवाला स्त्रीवेद या पुरुषवेद बांधेगा। अनंतानुबंधी सहित स्त्रीवेद चला जायेगा। तीसरे गुणस्थान से मात्र पुरुषवेद बांधेगा।

अब अनंतानुबंधी संबंधी २५ प्रकृतियां देखते हैं। अनंतानुबंधीसंबंधी का अर्थ क्या है ? ये प्रकृतियां पहले और दूसरे गुणस्थान में बंधेंगी, आगे कहीं भी नहीं बंधती। वे कौनसी हैं ? उनको याद करना आसान हो जाये इसलिये अलग-अलग लिखा है। अनंतानुबंधी की चार यानी क्रोध, मान, माया लोभ। फिर स्त्यानगृद्धि आदि ३ -

स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा और प्रचलाप्रचला, बीचवाले ४ संस्थान, हुंडकसंस्थान की बंधव्युच्छिति पहले गुणस्थान में हुयी थी। कौनसे ४ संस्थान ? न्यग्रोधपरिमंडल, स्वाति, कुब्जक और वामन। बीचवाले ४ संहनन - वज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच और कीलित। तिर्यचसंबंधी ४ - तिर्यचगति, तिर्यचगत्यानुपूर्वी, तिर्यचायु और उद्योत। उद्योत का बंध और उदय तिर्यचगति के बंध और उदय के साथ ही होता है। अन्य कौनसी ३ हैं ? दुर्भग, दुस्वर, अनादेय। और अन्य ३ - स्त्रीवेद, नीचगोत्र और अप्रशस्त विहायोगति। अब यहां जो दुर्भग आदि अशुभ प्रकृतियां देखी उनकी प्रतिपक्षी शुभ प्रकृतियां भी यहां बंध सकती हैं परंतु ये २५ प्रकृतियां दूसरे गुणस्थान तक ही बंधेंगी। इसके ऊपर के गुणस्थानों में ये नहीं बंधेंगी। जैसे ऊपर के गुणस्थानों में सुभग आदि प्रशस्त प्रकृतियां ही बंधेंगी, दुर्भग आदि नहीं, उच्चगोत्र ही बंधेगा, नीच गोत्र नहीं बंधेगा ऐसा उसका अर्थ समझना।

अभी हमने देखी न, कौन-कौनसी प्रकृतियों की बंधव्युच्छिति कहां होती है। मनुष्य और तिर्यच की अपेक्षा देखेंगे तो उनके के लिये मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, औदारिकशरीर, औदारिकअंगोपांग, वज्रवृषभनाराचसंहनन और मनुष्यायु की बंधव्युच्छिति दूसरे गुणस्थान में ही होती है। तो ४१ और ये ६ ऐसी ४७ प्रकृतियां मनुष्यों के लिये चौथे गुणस्थान में नहीं बंधेंगी। परंतु हम यहां इन जनरल बात कर रहे हैं इसलिये इसे छोड़ दिया। *श्रोता: मनुष्य, तिर्यच दोनों के लिये ?* मनुष्य, तिर्यच दोनों के लिये बंधव्युच्छिति समान है। हां, तिर्यचों में तो सिर्फ पांच ही गुणस्थान होते हैं। परंतु देव मनुष्यगति आदि प्रकृतियों को बांध रहे हैं। मनुष्य देवगति के साथ देवगति के योग्य प्रकृतियों को बांधेगा। सम्यग्दृष्टि मनुष्य देवगति का ही बंध करेगा, मिथ्यात्व अवस्था में चारों गति पलट-पलटकर बंधती रहती हैं। सम्यग्दृष्टि देव मनुष्यगति का ही बंध करेंगे। मिथ्यादृष्टि देव मनुष्यगति, तिर्यचगति का पलट-पलटकर बंध करते हैं।

श्रोता: मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय इन प्रकृतियों को बांधेगा ? पंचेन्द्रिय ? इसको एकेन्द्रिय जीव भी बांधते हैं न। पहले गुणस्थान में एकेन्द्रिय जीव भी हैं, उनके यथायोग्य प्रकृतियां बंधेंगी। एकेन्द्रिय देवगति, नरकगति नहीं बांधते। उनके बंधयोग्य प्रकृतियां वहां पर भी हैं। देखो, मिथ्यात्व में बंधती हैं इसलिये सब मिथ्यादृष्टि उसको बांधते ही हैं ऐसा नहीं लेना है। ये प्रकृतियां मात्र मिथ्यात्व गुणस्थान में ही बंधती हैं। किसको बंधती हैं ? यथायोग्य जिसको बंधनी हैं उसको बंधती हैं। यानी मिथ्यादृष्टि है

इसलिये ये ही प्रकृतियां बंधती हैं ऐसा नहीं है। परंतु ये प्रकृतियां ऊपर के गुणस्थानों में बंधती नहीं हैं। मिथ्यात्व गुणस्थान में ही बंधती हैं।

देखो, पृष्ठ १५३ पर गुणस्थान में बंधव्युच्छित्ति की संख्या का टेबल दिया है - पहले गुणस्थान में १६ हैं। दूसरे गुणस्थान में २५ अभी गिनायी हमने। तीसरे गुणस्थान में बंधव्युच्छित्ति नहीं है। चौथे गुणस्थान में १० बतायी। चौथे गुणस्थान की जो १० बतायी हैं वे देव, नारकी की अपेक्षा बतायी हैं। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी वगैरह छह तो हमने गिनायी हैं और अप्रत्याख्यानावरण ४ - इन १० की व्युच्छित्ति चौथे में होगी। पांचवें गुणस्थान में ४ की बंधव्युच्छित्ति बतायी है। कौनसी ? प्रत्याख्यानावरण ४, वे आगे नहीं बंधेंगी। छठे गुणस्थान की ६ - असातावेदनीय, अयशस्कीर्ति, अस्थिर, अशुभ, अरति और शोक ये छह प्रकृति छठे के बाद नहीं बंधेंगी। सातवें गुणस्थान में एक देवायु की ही बंधव्युच्छित्ति होती है।

आठवें गुणस्थान में ३६ बतायी हैं। पहले भाग में दो - निद्रा, प्रचला; छठे भाग में ३० और सातवें भाग में ४ - हास्य, रति, भय, जुगुप्सा। नौवें गुणस्थान में ५ - पुरुषवेद और ४ संज्वलन। दसवें गुणस्थान में ज्ञानावरण की पांच, दर्शनावरण की चार, अंतराय की पांच, यशस्कीर्ति और उच्चगोत्र ये १६ बंधने से रुकेंगी। ग्यारहवें, बारहवें गुणस्थान में बंधव्युच्छित्ति नहीं है क्योंकि वहां एक ही सातावेदनीय का बंध है, जो तेरहवें गुणस्थान तक है। तेरहवें गुणस्थान में १ की बंधव्युच्छित्ति होगी। चौदहवें में कोई बंध ही नहीं है। *श्रोता: ये जो ४१ बतायी तिर्यच में भी ऐसा ही लागू करना ?* हां, मनुष्य और तिर्यच के लिये वही नियम है।

देखो- उपरोक्त प्रकार से १२० प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती जाती है। चौदहवें अयोगकेवली गुणस्थान में योग का अभाव होने से बंध ही नहीं होता, जीव सर्वथा अबंध दशा को प्राप्त होता है। यहां सभी कर्मों का आस्रव और बंध सर्वथा रुक जाने से पूर्णरूप से संवर प्रकट होता है। हमने आस्रव के भेद देखे थे- मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग। सयोगकेवली के योग था वह भी मिट गया तो अभी अयोगी को कोई आस्रव नहीं रहा। तो वहां पूर्ण संवर होगा। जिस प्रकार बंध का अभाव होता जाता है उसी प्रकार विवक्षित गुणस्थान में विवक्षित प्रकृतियों के उदय का भी अभाव होते जाता है - उनके उदय की व्युच्छित्ति होती

जाती है। सम्यक्त्व प्राप्त होते ही चौथे गुणस्थानवाले जीव के अब मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी क्रोधादि चार, सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, आतप, स्थावर, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, सम्यग्मिथ्यात्व - इन सभी के उदय का अभाव हो जायेगा। इनमें भी पहले गुणस्थान के उदय की व्युच्छिति, दूसरे की, तीसरे की मिलाकर कहा कि चौथे गुणस्थानवाले के इनका उदय नहीं होगा।।

तुम पूछोगी 'परंतु हमने पूर्व में बांधे हुये कर्म जायेंगे कहां ?' इसमें घबराने की कोई जरूरत नहीं है। सत्ता में पड़े हुये कर्म कुछ भी लाभ नुकसान नहीं करते। पहले में पहले यह बात है। इन कर्मों की निर्जरा, क्षय अथवा सजातीय अन्य प्रकृति में संक्रमण आदि विधान का वर्णन क्षपणासार आदि ग्रंथों में से जानने पर हमारे सभी प्रश्नों का समाधान हो जाता है। जैसे सूक्ष्म नामकर्म बांधा है उसका क्या होगा ? उसके प्रतिपक्ष बादर का उदय चल रहा है तो बादररूप होकर खिर जायेंगे। एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति आदि बांधी हुयी सत्ता में पड़ी हैं उनका क्या होगा ? पंचेन्द्रियजाति का उदय है, एक-एक निषेक उसरूप होकर खिर जायेगा। जब क्षपकश्रेणी के नौवें गुणस्थान में जायेगा तब उनमें से बहुत सारी प्रकृतियों का वहां क्षय होगा। उसका क्या प्रोसेस है वह अपना यहां विषय नहीं है, पहले हो चुका है। जब हमने यहां श्रेणी संबंधी शिबिर लिया था उसमें इस संबंधी बात हो चुकी है।

देखो- **कर्मकाण्ड ग्रंथ में से बंध और उदय की व्युच्छिति पढ़कर उसे कंठस्थ करना।** यानी एक-एक गुणस्थान की बंधव्युच्छिति बताते जाना, प्रकृतियों के नाम याद करना। याद करने की कोशिश करेंगे तो अच्छा रहता है। नहीं समझे ? हमारी बुद्धि को जंग लगता है। उसके लिये रोज कुछ न कुछ नया याद करने की कोशिश करो। तो आपको अल्झायमर-स्मृतिभंश नहीं होगा। आप रोज याद करना। यह बंध और उदय की व्युच्छिति पढ़कर उसे कंठस्थ करना। **क्योंकि उनका ज्ञान होने पर मोक्षमार्ग का स्वरूप अत्यंत स्पष्ट रीति से अपने ख्याल में आता है, अन्यमतियों की अनेक भ्रांत कल्पनाओं का निराकरण हो जाता है।**

तुम कहोगी, 'बंध और उदय की व्युच्छिति जानकर अन्यमति की भ्रांतियों का निराकरण कैसे हो सकता है। कोई उदाहरण हो तो बताओ।' सब लोग उदाहरण ही चाहते हैं, है न ? उसके लिये प्रथम कुछ नियम जान लो। ये

नियम भी बंध और उदय की व्युत्पत्ति के कारण ही होते हैं। हमने देखा था कि चारों गतिवाले जीव सम्यक्त्व प्राप्त कर सकते हैं। नरक का जीव नपुंसकवेदी है, देव स्त्रीवेदी या पुरुषवेदी हैं, मनुष्य और तिर्यचों में तीनों वेदों में से कोई एक वेद होता है। सबको सम्यक्त्व तो हो सकता है। है न। ये सब जीव सम्यक्त्व प्राप्त कर सकते हैं। परंतु सम्यक्त्व के साथ मनुष्य, तिर्यच या देव में जन्मनेवाला जीव पुरुष ही होता है, स्त्री नहीं। नरक में तो एक नपुंसकवेद ही होता है। किसी भी गति की स्त्री, भले वह स्वर्ग की देवी हो, जन्म से सम्यग्दृष्टि हो नहीं सकती। मनुष्य में भी कोई स्त्री जन्म से सम्यग्दृष्टि हो नहीं सकती। हां, बाद में वह सम्यक्त्व प्राप्त करेगी। पंचम गुणस्थान तक जा सकती है।

दूसरी बात, मनुष्य में स्त्रियों को पांचवां गुणस्थान प्राप्त हो सकता है स्त्री कहने से यहां द्रव्य स्त्री की बात है। हां, जो द्रव्य से पुरुष हैं यानी शरीर से पुरुष हैं और भाव से जो स्त्रीवेदी हैं उनके मोक्ष भी हो सकता है। यहां उसकी बात नहीं है। जो द्रव्य से स्त्री हैं वे मुनि नहीं बन सकती। उनके छठवां या आगे का गुणस्थान नहीं हो सकता। अब हम भ्रामक कल्पना का खंडन किसतरह होता है वह देखते हैं। मल्लिनाथ स्त्री थे और स्त्री पर्याय में ही मोक्ष हुआ ऐसी श्वेताम्बरों की मान्यता है। हम अमेरिका गये थे। वहां मल्लिनाथ की स्त्री पर्याय के रूप में मूर्ति स्थापित करनेवाले थे। इतनी भ्रमणा चलती है। मल्लिनाथ भरतक्षेत्र के तीर्थंकर थे कि नहीं ? *श्रोता: थे।* भरतक्षेत्र के वर्तमान के जो २४ तीर्थंकर हैं उनके कितने कल्याणक हुये थे ? *श्रोता: पांचों।* पांचों यानी वे गर्भ में आये थे तब तीर्थंकर प्रकृति बांधकर आये थे। देव में से आये थे। जन्म से मति, श्रुत, अवधिज्ञान के धारी थे। जो जन्मतः सम्यग्दृष्टि है वह पुरुषवेद में ही जन्मेगा, द्रव्य से भी पुरुष और भाव से भी पुरुष।

वे कहां से मरकर आये थे ? *श्रोता: अपराजित से।* अपराजित से। अपराजित में सारे पुरुष ही होते हैं। अरे ग्रैवेयक और उसके ऊपर कोई स्त्रियां होती ही नहीं, पुरुष ही होते हैं। अपराजित में सारे सम्यग्दृष्टि ही हैं और पुरुष ही होते हैं। वहां पर भी वे पुरुष थे। उसके पूर्व भव में ? अपराजित जानेवाले मुनि ही होते हैं। तो वहां भी वे पुरुष ही थे। समझ में आती है न बात ? तीन-तीन भवों में पुरुषवेद होने की बात हमने करणानुयोग के आधार से सिद्ध की। उससे पहले भी हो सकता है वे पुरुष थे। उनको स्त्री मानना महा भयंकर अपराध है, भगवान का अविनय है, महान मिथ्यात्व है। लोग

कहते हैं अपने को क्या करना है ? अरे, अपने को क्यों कुछ नहीं करना ? अपने को निर्णय करना है कि यह बात बिलकुल गलत है। लोग तो भ्रमणा कर रहे हैं और आप ? नहीं-नहीं, हम तो जो कुछ हो रहा है...। अरे होनेवाला तो होकर रहेगा परंतु हम-आप उसके बारे में क्या कहते हैं? आपका निर्णय है कि नहीं है ? सही निर्णय करो।

जब देव कहेंगे तो अगर देव का सच्चा अंतर्बाह्य स्वरूप हमारे ज्ञान में सही नहीं है तो अभी निर्णय ही नहीं है। देव का ही निर्णय नहीं तो आगम कथित तत्त्वों का निर्णय कैसे होगा ? देव का स्वरूप, गुरु का स्वरूप, शास्त्र का स्वरूप - सभी के बारे में निर्णय होना चाहिये। कुछ लोग कहते हैं यहां थोड़ा चल जायेगा - अभी पंचम काल है। अरे, काल से कोई स्वरूप नहीं बदलता - ना धर्म का स्वरूप बदलता है, ना मोक्षमार्ग का स्वरूप बदलता है। इस काल में हमारे पास पैसा नहीं, सोना नहीं तो हम पीतल के आर्टिफिशियल गहने पहनेंगे। पहनो न, आर्टिफिशियल मानकर पहनो, उसको सोना मत मानो। क्या है ? ऐसा ही हुआ था। तीस-पैंतीस साल पहले हमारे पास कोई व्यक्ति आये थे, वे जैन पत्रिका चलाते थे। तो मैंने उनको पूछा आपकी पत्रिका में रजनीश की दृष्टि में महावीर स्वामी लेख छापा है तो आपको रजनीश चलते हैं, कानजीस्वामी क्यों नहीं चलते ? तो उन्होंने कहा हमको पत्रिका चलानी है क्योंकि पैसे तो उन्हीं से मिलते हैं और उनको कानजीस्वामी की अलर्जी है।

उसने कहा हमको पत्रिका चलानी है इसलिये हम कानजीस्वामी की बात नहीं छापते। आप तो मुनि को नहीं मानते। मैंने बोला 'हम तो सच्चे मुनि को मानते हैं। क्यों नहीं मानते ? अरे, मुनि को नहीं मानेगा वह जैन नहीं है। हम बिलकुल मुनि को मानते हैं। क्या हम कुंदकुंद आचार्य को नहीं मानते ? अमृतचन्द्र आचार्य, पद्मप्रभमलधारी मुनि, नेमीचन्द्र आचार्य को नहीं मानते हैं ? अरे, पूरे दिन हम इन मुनियों के - आचार्यों के ग्रंथों के सानिध्य में हैं। इतना मुनियों का सत्संग तो आप भी नहीं करते हैं। आप ही सच्चे मुनियों को नहीं मानते हैं।' नहीं-नहीं अगर उनको नहीं मानेंगे तो फिर जिनधर्म डूब जायेगा। अरे परंतु छोटे मुनियों को मानने से जिनधर्म तिरेगा ? यह पंचमकाल है, ऐसा भी चलेगा। अरे, यहां सोना महंगा है इसलिये खोटा कुछ पहनते हो परंतु उसको सोना तो मत मानो।

सच्चे देव, गुरु, शास्त्र के स्वरूप का निर्णय यह तो मूलभूत कंडिशन है। हमें

सम्यग्दर्शन नहीं होता, सम्यग्दर्शन नहीं होता। तो कैसे होगा ? यह बेसिक कंडिशन है। उसके बिना धर्म की कोई शुरुआत ही नहीं होगी। अंदर तत्त्वज्ञान भी नहीं पचेगा। समाज के लिये, भय, आशा, स्नेह, लोभ या कुछ अन्य चीज के लिये हम उन्हीं के पीछे लगते हैं। निर्णय नहीं है न ? तो आगे कुछ रास्ता ही नहीं है। यह मनुष्यभव तो ऐसा ही चला जानेवाला है। हमें पता ही नहीं न, इतनी सारी खोटी योनियों में भटककर आज मनुष्य हुये हैं और यह भव भी समाज के लिये, दिखावे के लिये हम बरबाद करते हैं तो क्या होनेवाला है ? यह तो उसकी होनहार कैसी है वह ख्याल में आता है। परीक्षा करना, सब चीज की परीक्षा करना है। तत्त्वों की परीक्षा करना है, देव-शास्त्र-गुरु की परीक्षा करना है - यह सब निर्णय बुद्धि में होना चाहिये। *श्रोता: क्या करें ! हमें आजूबाजू में कोई नहीं दिखता।* अरे स्वयं तो दिखता है न खुद को ? अपनेआप को ही देखना है। आजूबाजू में नहीं है तो क्यों देख रहे हैं ? सच्चा निर्णय करो और अपने में स्थिर हो जाओ। मनुष्यभव में दूसरा कुछ करने लायक नहीं है क्योंकि समाज कुछ साथ में आनेवाला नहीं है, हां निगोद में साथ आयेगा।

यही बात यहां लिखी है मल्लिनाथ तीर्थकर के बारे में। पृष्ठ १५४, लास्ट पॅरेग्राफ- **और एक नियम जान लो। भाव से स्त्रीवेदवाले पुरुषों को तीर्थकर प्रकृति का बंध तो हो सकता है।** फिर से- क्या कहा ? जो द्रव्य से पुरुष है और भाव से स्त्री है जिसको होमोसेक्शुअल कहते हैं, वे कहते हैं उनको तीर्थकर प्रकृति का बंध तो हो सकता है **परंतु** उसी भव में **उन्हें तीर्थकर प्रकृति का उदय नहीं होता।** तो क्या होगा ? अभी भाव से स्त्री है, फिर एक भव स्वर्ग का करेंगे, वहां द्रव्य और भाव से पुरुष ही होंगे, वहां से मरकर सम्यग्दर्शन के साथ पुरुष होकर मनुष्य में जन्म लेंगे और उस भव में तीर्थकर होंगे। तीसरे भव पहले तीर्थकर प्रकृति बांधी थी परंतु भाव से स्त्रीवेद था। किसीको नपुंसकवेद भी हो सकता है। उसे तीर्थकर प्रकृति का बंध होने में कोई रुकावट नहीं है। परंतु उसी भव में तीर्थकर प्रकृति का उदय नहीं होगा।

जिस भव में जो वेद है वह उस भव में वह पलटता नहीं है। फिर से- जैसे क्रोध-मान-माया-लोभ पलटते हैं वैसे एक भव में स्त्रीवेद से पुरुषवेद हो जाये, पुरुषवेद से स्त्रीवेद हो जाये ऐसा बिलकुल नहीं है। समाज में इसके बारे में भ्रमणा चल रही है और वह भी विद्वानों के द्वारा कही गयी है। कहते हैं रानी लक्ष्मीबाई जो स्त्रीवेदी थी, घोड़े पर बैठकर युद्ध करने गयी तो उसका पुरुषवेद चालू हो गया। ये सारे कथन

आगम से विरुद्ध हैं। उस भव में वेद का कोई परिवर्तन नहीं होता। हां, सम्यक्त्व प्राप्त करके दूसरे भव में चले जायेंगे तब पुरुषवेद होगा। ख्याल में आयी न बात ? **तीर्थकर प्रकृति का उदय तेरहवें गुणस्थान में होता है जबकि किसी स्त्री को पांचवें गुणस्थान से ऊपर जाने की योग्यता नहीं होती।**

इन बातों के ज्ञान द्वारा हमें बिलकुल सही निर्णय तक पहुंचना चाहिये। ऐसी जो कोई गलत बातें बताते हैं न - किसी स्त्री को केवलज्ञान हुआ - ये सारी बातें भ्रमणा हैं। स्त्री पर्याय में केवलज्ञान होता ही नहीं है और गृहस्थ दशा में रहते हुये भी किसीको केवलज्ञान होगा ही नहीं। *श्रोता: पुरुष को भी नहीं ?* पुरुष को भी नहीं होगा। स्त्रियों को क्यों नहीं होता ? उनके तो नीचे के तीन संहनन ही होते हैं - चौथे काल में भी। कर्मभूमि की स्त्रियों को नीचे के तीन संहनन होते हैं और पंचमकाल के पुरुषों को भी नीचे के तीन संहनन होते हैं। उनको सातवें के ऊपर के गुणस्थान भी नहीं होंगे। स्त्रियों को तो मोक्ष होगा ही नहीं। श्रेणी चढ़ते समय - उपशमश्रेणी चढ़नेवाले ऊपर के तीन संहननवाले ही होंगे और क्षपकश्रेणी चढ़नेवाले वज्रवृषभनाराचसंहननवाले ही होते हैं। भोगभूमि की स्त्रियों को वज्रवृषभनाराचसंहनन है परंतु वहां गुणस्थान चार ही होते हैं। यानी अगर हम ये सारे नियम देखते हैं तो कहीं कन्फ्यूजन नहीं होता, कहीं भ्रमणा होने का चान्स नहीं है। परंतु कहीं पढ़ा, कहीं सुना तो ऐसे ही हम खोटा मान लेते हैं। फिर कहते हैं नहीं-नहीं, पंचमकाल है। ऐसे अच्छे होते हैं वह अच्छे वछेरे क्या होते हैं ? हमें मालूम नहीं है।

हमें किसी व्यक्ति ने कहा था कि, 'मल्लिनाथ स्त्री थे या पुरुष थे इस झमेले में हम क्यों पड़े ? उससे हमें क्या लेना देना ? कोई उन्हें स्त्री माने या कोई उन्हें पुरुष माने इसमें क्या बिगड़ता है ?' बेटियों, जिसे जो मानना है वह वैसा मान ही रहा है। परंतु यथार्थ वस्तुस्थिति संबंधी अपना निर्णय यथार्थ है या नहीं यह देखना प्रत्येक जीव का कर्तव्य है। हम क्या मान रहे हैं यह महत्व की बात है। देव, मुनि तथा शास्त्र का यथार्थ स्वरूप ऐसा ही है, अन्यथा नहीं है इसतरह दृढ़ निर्णय हुये बिना सम्यक्त्व की प्राप्ति हो ही नहीं सकती। चारों ही अनुयोगों के अभ्यास द्वारा अपनी मान्यता एवं आचरण की विपरीतता दूर करके वीतरागता प्राप्त करना ही अपना आद्य कर्तव्य है। यहां अन्य जीवों के दोष दिखाना अपना प्रयोजन नहीं है, परंतु अपनी मान्यता सुधारने का प्रयोजन है। गुरुदेवश्री भी कहते

हैं न कि किसीको दुःख लगे इसलिये नहीं कह रहे हैं। परंतु सही वस्तुस्थिति क्या है वह बताना शास्त्र का प्रयोजन है। वहां वे बातें बतायी जायेंगी।

अन्य जीवों के आचरण तथा उनकी मान्यतायें देख-देखकर स्वयं कषायी होना योग्य नहीं है। मोक्षमार्गप्रकाशक में बताया न ? **स्वाध्याय तथा तत्त्वज्ञान का अभ्यास नहीं होने से मात्र आचरण सुधारने के उपदेश से मान्यतायें नहीं सुधरती।** क्या कहा ? तत्त्वज्ञान का अभ्यास नहीं है। ना द्रव्य-गुण-पर्याय मालूम हैं, ना पर्याय की स्वतंत्रता मालूम है, ना निमित्त-नैमित्तिक संबंध मालूम है और केवल आचरण सुधार दिया तो मान्यता सुधरेगी कि नहीं सुधरेगी ? नहीं सुधरेगी। हमें दूसरों के नहीं परंतु अपने आचार विचार एवं मान्यताओं का अवलोकन करके अपने दोषों का निराकरण स्वयं ही करना चाहिये। कोई देव या गुरु आकर हमारा सुधार कर दे ऐसा कभी होगा नहीं। बेटियों, अनंतकाल भटककर हम आज मनुष्यपर्याय में आये हैं। इस मनुष्यभव की दुर्लभता के बारे में हमने पूर्व में चर्चा की थी। अब तत्त्वजिज्ञासा, तत्त्वरुचि तो तुम्हें है ही, जिनेन्द्रकथित तत्त्व भी तुम्हें प्राप्त हैं, बस अब बारंबार उन्हीं तत्त्वों का विचार करते रहना। संयोगों को बदलने की रुचि छोड़ दो। क्या कहा ?

रुचि कहां पड़ी है ? संयोगों में - यह संयोग अच्छा नहीं, वह अच्छा है - इसीके विकल्पों में हम रुके रहते हैं। **सारे संयोग उनकी स्वयं की योग्यता से जैसे बनने बिगड़ने हैं वैसे होंगे।** बननेवाले होंगे तो बनेंगे, तुम्हारे इच्छा के कारण नहीं सुधरेंगे। बिगड़नेवाले हैं तो वैसे ही होंगे क्योंकि वह परद्रव्य की पर्याय है। हमारी इच्छा से उसका परिणमन नहीं होता। हमारी संयोगों में गृद्धता, रुचि पड़ी है। संयोगों से सुख दुःख होता है यह मान्यता है, उसके कारण ही हम अपनी कल्पना से दुखी हैं। संयोगों ने किसी जीव को आज तक दुखी नहीं बनाया है, ना ही सुखी बनाया है। तो कहते हैं **अपनी स्वयं की रुचि कायम रखो। छहढाला में कहा है - 'परद्रव्यनतै भिन्न आप में रुचि सम्यक्त्व भला है।'**

अनादिकाल से यह जीव संयोगों में, शरीर में, रागादि में ही रचा पचा है। यह जीव कहता है कि, 'भेदज्ञान तो करना है परंतु पहले धन तो कमा लूं, विदेश यात्रा कर लूं, बाल बच्चों को पढ़ाऊं, लिखाऊं, उनकी शादी ब्याह रचाऊं।' तो

इसके बाद हम निवृत्त होकर इसमें स्वाध्याय में चले आयेंगे। हमारे यहां स्वाध्याय में एक बहन आती थी, कहती थी अभी हमारे बेटे की शादी होनेवाली है, घर में बहू आयेगी तब हम फ्री हो जायेंगे। बाद में स्वाध्याय ही स्वाध्याय करेंगे। कितने ही महीनों के बाद मिली। क्या हुआ ? नहीं-नहीं, अभी बहू प्रेग्रंट है। अभी थोड़े दिनों में डिलिव्हरी हो जायेगी तो हम फ्री हो जायेंगे। कहां गयी हमारी बहन ? और थोड़े दिनों में - अभी हो गयी डिलिव्हरी ? अरे उसको ट्विन्स हो गये हैं। अभी बिचारी अकेली क्या करेगी ? कहां है हमारी सरलाबहन ? हां-हां, वहां बैठी है। वह हमेशा शिबिरों में आती है। अब स्वाध्याय में भी आने लगी है। ट्विन्स भी अभी बहुत बड़े हुये हैं और दोनों पाठशाला में जाते हैं, बहुत होशियार हो गये हैं। परंतु ऐसा होता है।

मुझे बताओ, स्वयं को संयोगों से भिन्न जानना है, शरीर से भिन्न जानना है, रागादि से भिन्न पहचानना है तो कौनसे संयोग हो तो भेदज्ञान होगा ? अमेरिका के कि भारत के ? झूंपड़ी से भेदज्ञान आसान होगा कि राजमहल से ? काला शरीर हो तो भेदज्ञान होगा कि गोरा शरीर ? काले बालों से भेदज्ञान करना आसान है या सफ़ेद बालों से ? बोलो, कौनसे राग से अपने को भिन्न पहचानना है। अशुभराग से भिन्न पहचानना है कि शुभराग से ? अरे, राग मात्र से भिन्न पहचानना है। अशुभ से तो यह जीव अपने को भिन्न कहता है परंतु देखो मुझे कैसा उच्चजाति का शुभभाव आता है कहकर संतुष्ट हो जाता है, यानी राग में अभी भी एकत्व बना है। उसके कारण स्वयं को महान मानता है। देखो, पहले कुछ नहीं करता था - अब स्वाध्याय करता हूं, व्रतादि करता हूं - मैं बहुत आगे बढ़ गया।

बेटियों, यह तत्त्वज्ञान मात्र सुनने या पढ़ने की चीज नहीं है। उसे आत्मसात करने की चीज है - अंतरोन्मुख पुरुषार्थ करने की चीज है। बहुत सारे विद्वान सोनगढ़ में मिले थे। आप थे न निलेशजी ? अनंतभाईजी शेठ ने सोनगढ़ में विद्वानों की गोष्ठी रखी थी। गोष्ठी-गोष्ठी, सब विद्वानों को एक-एक विषय दिया था और सबको बोलना था। मुझे भी विषय दिया गया - दृष्टि का विषय। मैंने पहले ही बोल दिया कि आजकल हमने दृष्टि के विषय को चर्चा का विषय बना दिया है। आपस में चर्चा - यह है, वह है, इस विद्वान ने ऐसा कहा, उस विद्वान ने वैसा कहा - किसीने उसको दृष्टि का विषय बनाया ही नहीं। तो दृष्टि के विषय को, दृष्टि का विषय नहीं रहने दिया - उसको चर्चा का विषय बना दिया; यह ऐसा है, वह वैसा है। अरे, दृष्टि का विषय

आत्मसात करके सम्यग्दर्शन प्राप्त करना है। यह तो रह ही गया। तत्त्वज्ञान सुनने और सुनाने की चीज नहीं है। स्वयं उसको अंतरंग में धारण करके अपना अनुभव करने की बात है।

आत्मख्याति ग्रंथ में आचार्य अमृतचन्द्र लिखते हैं 'अलम् अलम् अति विस्तरेन, बहु विकल्पेन।' कहते हैं बहुत विस्तार से अब बस करो अधिक विकल्प से अब बस करो। **तो क्या हमें लगता है हमने बहुत पढ़ा, कब अंदर में समा जाऊं ?** देखो, हमारे बच्चे भी इतने सयाने हैं की क्रिकेट मॅच देखते हैं। डेढ़ साल का एक छोटा बच्चा जो अभी हाथ में बॅट भी पकड़ नहीं सकता, वह क्रिकेट मॅच देखता है और वैसे करने लगता है। देखा होगा आपने ? यहां लिखा है देखो- **छोटा बच्चा भी मां यदि उसे खाना खिला रही हो, तो उसे मना करके अपने हाथ से खाने की कोशिश करता है। छोटे-छोटे बच्चे टीव्ही पर क्रिकेट मॅच देखकर स्वयं बॅट लेकर बॉल को मारने की अॅक्शन करते हैं, हमारी रुचि का कार्य हो तो सामनेवाला समझाने लगे तो उसे रोककर मैं समझ गया कहकर स्वयं वैसा करना प्रारंभ करता है। परंतु अध्यात्मशास्त्र के बारे में तो कोई समझायेगा तो मात्र सुनते रहते हैं और अन्य कार्य करने में लग जाते हैं।**

गुरुदेव की वाणी सुन ली एक घण्टे भर, फिर चलो अपना कार्य तो हो गया। बस आज का एक घंटे का सुनने का हमारा कोटा तो पूरा हो गया। चलो, अपने कार्य में लग जाओ। होता है कि नहीं होता ? तो कहते हैं **क्या हुआ है हमें ?** यह तवे की बात तो बतायी थी। तवा गरम है तब तक उस पर रोटी सेकते हैं। ऐसे जो स्वाध्याय कर रहे हैं, प्रवचन सुन रहे हैं, पुस्तक पढ़ रहे हैं उस समय जब हमारी विशुद्धि बढ़ती है उस काल में अगर हम अंतर्मग्न हो जाये, अंतरंग में स्थिर हो जाये तो उस काल में सम्यग्दर्शन हो सकता है। नहीं तो क्या है ? विशुद्धि कम हो जायेगी। स्वाध्याय के काल में या स्वाध्याय के बाद कोई एकांत में तत्त्वविचार करेगा। हर एक जीव के परिणाम जुदे-जुदे हैं परंतु जब विशुद्धि बढ़ती है उस काल में अगर वह स्थिर होने की कोशिश करेगा तब जाकर उसको सम्यक्त्व होगा।

नीचे का पॅरेग्राफ- **उसीतरह शास्त्र पढ़ते या सुनते समय आत्मा में विशुद्धि बढ़ जाये- अध्यात्म का रस पैदा हो- तो तभी शास्त्र का भी लक्ष छोड़कर**

अंतर्मुख परिणाम होंगे तो सम्यक्त्वरूपी कार्य होगा। लोग कहते भी हैं कि जब तक शास्त्र सुनते हैं तब तक परिणाम अच्छे रहते हैं। यह तो अनुभव की बात है कि नहीं ? और बाकी काम में लग जाते हैं तो रूटीन चालू हो जाता है। मात्र विशुद्धि अर्थात् शुभभावरूप परिणामन करना हमारा प्रयोजन नहीं है। वह तो अनंत बार कर चुके हैं। शास्त्र पढ़ते समय या उसके पश्चात् जब रस आये-अंदर से तीव्र रुचि लगे - अपने ज्ञानस्वभाव की अपूर्व महिमा आये तो पढ़ना छोड़कर अंतर्मुख हो जाओ। जीव सोचता है कि अब कितना पढ़ूं तो सम्यक्त्व होगा ? ये इतने शास्त्र पढ़े, तो अब कौनसा शास्त्र पढ़ूं कि सम्यक्त्व होगा ? ऐसे प्रश्न आते हैं। जब सिद्धान्त सुनकर सही तत्त्वनिर्णय करते हैं तो अब करना धरना क्या ? ना दूसरे की पर्याय पलटाना है, ना स्वयं की। हम सहज ज्ञाता दृष्टा हैं, उसरूप रह जाना है। हम परिपूर्ण हैं, तो बस दृढ विश्वास के साथ आनंद में रहो।

कोई कहते हैं, 'अब मैं कौनसे विकल्प करूं तो मुझे सम्यक्त्व होगा ?' इस प्रश्न में ही उसकी उल्टी मान्यता दिख रही है। पर्टिक्युलर विकल्प करने से मैं सम्यक्त्व की ओर बढ़ूंगा ऐसा उसे लगता है, है न ? उसे कहते हैं- 'अरे तूने तत्त्वनिर्णय कर लिया, विकल्पों द्वारा तो निर्णय तक पहुंचना था, अब तुझे किस विकल्प की जरूरत है ? अपने में ठहर जा, समा जा।' वह नहीं करता है और कुछ न कुछ करने-धरने में लगा रहता है। बाकी को छोड़ दिया परंतु अभी ध्यान के नाम पर भी विकल्प उठाने की कोशिश कर रहा है। विकल्प उठाना अलग बात है परंतु वह विकल्प उठाना चाहता है। हम बाकी दुनियादारी में तो बहुत होशियार हैं। दूध जमाती हो तब उसमें थोड़ासा दही डालकर क्या करती हो ? दूध जमाकर घंटे भर मिक्सर में घुमाते रहती हो ? तो दही हो जायेगा न ? तो क्या होता है ?

देखो- दही बनाने के लिये दूध जमाती हो तो क्या उसे हिलाती रहती हो ? उससे जम जायेगा ? बरसात के मैले पानी में फटकड़ी डालने के बाद पानी को हिलाती रहती हो या ठहर जाने देती हो ? कांच में से सूर्यकिरण को इकट्ठा करके कागज जला सकते हैं, वहां कांच हिलाते रहने से जलेगा या कुछ क्षण स्थिर रखने से ? वहां तो स्थिरता की बात होती है न ? इन बातों में तो तुम होशियार हो और अपने में जमना नहीं चाहती। विकल्पों के जाल बुनकर उसीमें उलझना चाहती हो ? हमने मान्यता में रखा है कि मैं कुछ विकल्प करूं तो मैं आगे बढ़ूंगा।

मुझे सम्यग्दर्शन क्यों नहीं होता ? क्यों नहीं होता ? फिर क्यों नहीं होता उसके विकल्प या अन्य कुछ विकल्प होते रहते हैं। फिर लोग पूछते हैं - कौनसे विकल्प करूं ? विकल्पों से नहीं होता सुनने पर दूसरा प्रश्न- अब विकल्प कैसे छोड़ूं ? वह भी विकल्प है। **विकल्प तो आयेंगे, परंतु पहले निश्चित करो कि विकल्प करते रहने से आत्मानुभव नहीं होगा। विकल्प स्वयं छूट जायेंगे।** उनको छोड़ने की भी चिंता नहीं करनी, वे स्वयं छूट जायेंगे। **और निर्विकल्प आत्मानुभूति होगी।** परंतु हमने अभिप्राय में कुछ न कुछ भूसा भरकर रखा है न, तो वैसे करने लग जाते हैं।

विकल्प भी राग है। राग अपनी योग्यता से आयेगा और छूटेगा, संयोग भी आते जाते रहेंगे। सबसे पहले उनसे अपनी भिन्नता जानना है। पहले में पहले लोगों की कोशिश क्या है ? राग को कम करो, क्रोध को कम करो। मैं तो कहती हूं राग होने दो - पहले उससे भिन्नता जान लो। हमने उसके साथ इतना एकत्व मानकर रखा है कि इसको कम करो, उसको कम करो- करने के लिये उसीका लक्ष हो रहा है। विकल्प छोड़ने के लिये विकल्प का लक्ष हो रहा है। अपना लक्ष करो तो विकल्प स्वयमेव छूट जायेंगे। सबसे पहले संयोगों और राग से अपनी भिन्नता जानना है। **हम तो संयोगों को हटाना या जुटाना चाहते हैं। हम देवलाली शिबिर में आते हैं, यहां का वातावरण देखकर प्रसन्न होते हैं तो मन में पहला विचार आता है कि मैं भी यहां एक बंगला या फ्लैट ले लूं।** सबके लिये ऐसा ही होता है न ? अमेरिकावालों को बहुत होता है क्योंकि पैसा ज्यादा है न, कहां डाले ? **परंतु यहां के भगवान का दर्शन करके क्या कभी सोचते हैं कि मैं भी भगवान कैसे बन जाऊं ?** यहां बहुत सारी मूर्ति हैं न ? एक भी मूर्ति को देखकर ऐसा नहीं लगता। यहां आठ बलभद्रों की मूर्ति विराजमान हैं क्योंकि यहां नजदीक ही उनका सिद्धक्षेत्र है।

शास्त्र में शुद्धात्मा तथा अध्यात्म की बातें सुनकर लोग कहते हैं कि, 'ये तो बहुत ऊंची बातें हैं। पहले तो शुभभाव तो करना ही चाहिये न।' बेटियों, शुभभाव आ जाते हैं परंतु करना चाहिये इसमें तो मान्यता की गलती है - विपरीत अभिप्राय है। तत्त्वविचार का भाव तो उत्कृष्ट शुभभाव है। पंचलब्धि के प्रकरण में हमने देखा कि तत्त्वविचार और तत्त्वनिर्णय से ही अल्प काल में सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। और उसकी चर्चा तो हमने सविस्तार देखी है। मुझे पूरा विश्वास है कि शास्त्र का यह मर्म समझकर, जिनेन्द्रकथित सिद्धान्तों का

बारंबार अभ्यास-विचार-निर्णय करके तुम सम्यक्त्व प्राप्ति का पुरुषार्थ करोगी। उसीके द्वारा पंचपरावर्तनरूप संसार का अभाव होकर मोक्ष की प्राप्ति होगी। हमने पंचपरावर्तन विषय पर शिबिर में देख लिया है वह क्या है। यहां जो हमने सारी चर्चा की है उसमें बहुत सारे पारिभाषिक शब्दों को लेते हुये पांच लब्धि का स्वरूप विस्तार से देख लिया।

जीव को सम्यक्त्व प्राप्ति में तो स्वयं ही पुरुषार्थ करना है। तत्त्वों को हम सुनते हैं, जानते हैं, उसीमें और आगे बढ़कर अपने में स्थिरता यानी स्वसन्मुखता का पुरुषार्थ करना है। कोई भी सिद्धान्त पढ़ते हैं तो आत्मा के सन्मुख होने के लिये वह कैसे कार्यकारी होगा ? उस पद्धति से विचार करना क्योंकि गुरुदेव की यह विशेषता है - कोई भी सिद्धान्त हो उसके द्वारा वे हमें आत्मा की ओर ले जाते हैं। इसीतरह से आगे बढ़ना है तो अल्प काल में सम्यक्त्व क्यों नहीं प्राप्त होगा ? जरूर होना ही चाहिये। अगर सहीरूप से आगे बढ़ोगे तो सम्यक्त्व प्राप्त होगा ही।

महावीर जयंती के दिन इस पंचलब्धि विषय पर पत्ररूप स्वाध्याय शुरू किया था, आज महावीर निर्वाण के दिन देवलाली में इसकी पूर्णता हो रही है। जहां जाते थे वहां लिखते रहते थे। यह पुस्तक लिखते-लिखते इसकी पूर्णता यहां इ.स. २००२ में दिवाली के अवसर पर देवलाली में हुयी थी।

पंचलब्धि का शिबिर यहीं समाप्त होता है।

बोलो, चौबीसों भगवान की जय।

